आरोग्यता प्राप्त करने की

नवीन विद्या

अर्थात्

लुई कुहनी—रचित

"दी न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग"

का

हिन्दी भाषानुवाद

अनुवाद—

स्वर्गीय श्रोत्रिय कृष्ण स्वरूप बी० ए०, एल-एल० बी०।
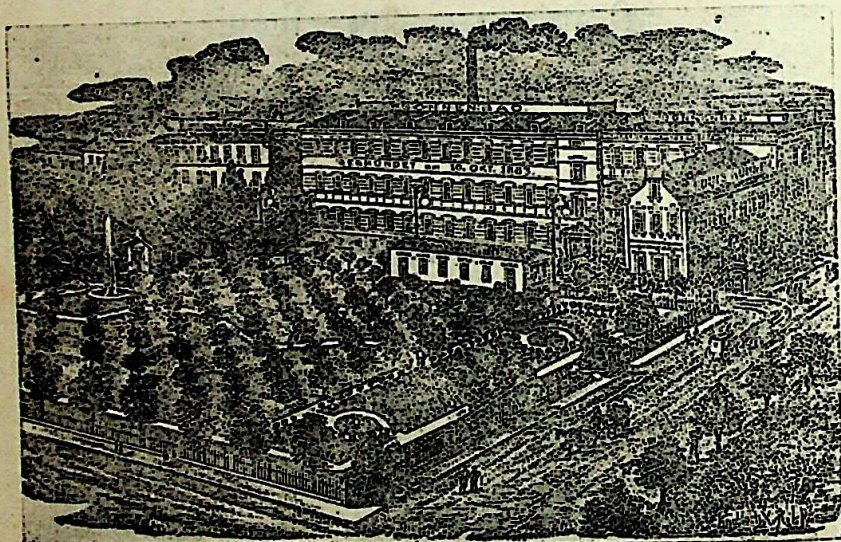
आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या

अर्थात्

लुई कुहनी रचित

'दी न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग'

का हिन्दी भाषानुवाद

—:※:—

अनुवादक

स्व० श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप बी० ए०, एल-एल० बी०

वकील, हाई कोर्ट, मुरादाबाद

प्रकाशक

श्रोत्रिय शान्तिस्वरूप, बी० एस-सी० (इंजीनियरिंग), बिजनौर

चतुर्थ संस्करण] सं० २००७ वि० मूल्य सजिल्द ८) अजिल्द ७)

लूई कुहनी साहिब

के

चिकित्सालय का चित्र

जहां कि सब देश और जाति के लोगों की चिकित्सा बिना औषधि और बिना चीरा-फाड़ी (शस्त्र क्रिया) के होती है।

यह चिकित्सालय १० अक्टूबर सन् १८८३ ई० में खोला गया और सन् १८६२, १६०१ और १६०४ में बढ़ाया गया।

[illegible] कूह्नी साहिब

के

चिकित्सालय का चित्र

जहां कि सब देश और जाति के लोगों की चिकित्सा बिना औषधि और बिना चीरा-फाड़ी (शस्त्र क्रिया) के होती है।

यह चिकित्सालय १० अक्टूबर सन् १८८३ ई० में खोला गया और [illegible] १८९४, १९०१ और १९०२ में बढ़ाया गया।

स्व० श्रोत्रिय कृष्ण स्वरूप बी० ए०, एल-एल० बी०

डाक्टर लुई कुह्नी

❀ ओ३म् तत्सत् ❀

भूमिका

—:❀:—
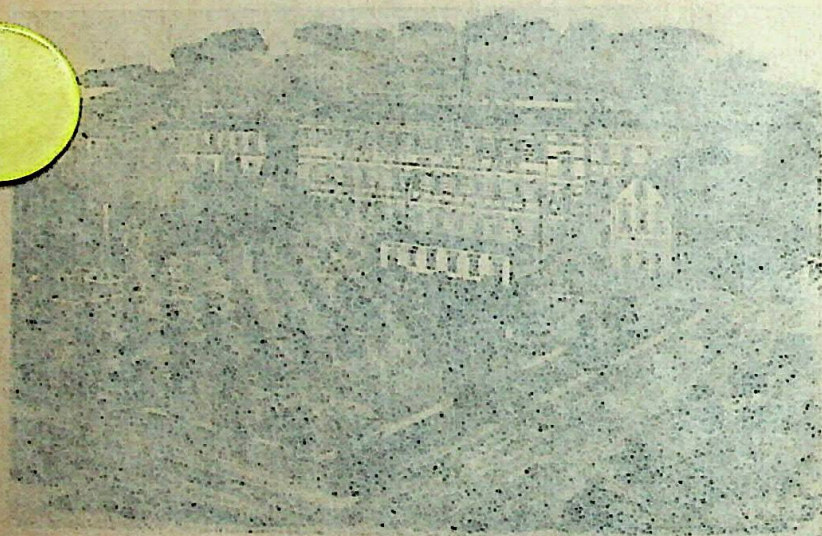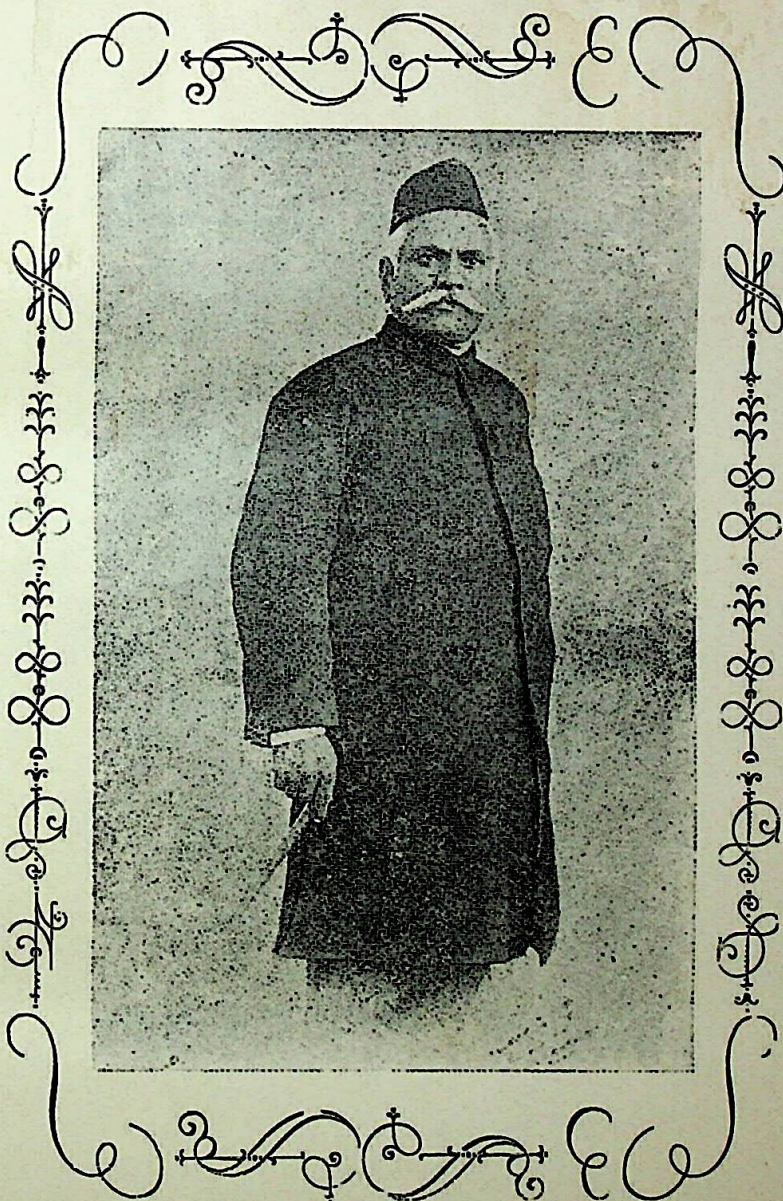
प्रिय पाठकगण ! शरीर और उसके द्वारा मनको शुद्ध करने वाली यह पुस्तक-जिसका भाषानुवाद सर्वसाधारण के हितार्थ अंग्रेजी और उर्दू से किया गया है—आदि में जर्मन देश की भाषा में रची गई थी और इसके रचयिता जर्मन देश के प्रसिद्ध विद्वान् मिस्टर लुई कुह्नी थे जिनका नाम उनके इस अदभुत आविष्कार के द्वारा भूमण्डल में विख्याता है और आप में से भी बहुतों ने अवश्य सुना होगा।

यथार्थ में यह परमोपयोगी पुस्तक संसार के प्रत्येक भाग के मनुष्य में अत्यन्त आदर के साथ प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुकी है। यही कारण है कि थोड़े ही काल अर्थात् केवल २५ ही वर्ष में इसका अनुवाद संसार की २५ भाषाओं में हो चुका है और प्रत्येक भाषा में अनेक बार छप चुका है। जर्मन भाषा में यह पुस्तक १०० बार, अंगरेजी में २० बार और उर्दू में भी ४ बार छप चुकी है।

मेरे बहुत से इष्ट मित्रों ने इस पुस्तक का प्रथम उर्दू अनुवाद करने की ओर मेरा ध्यान दिलाया, मैंने इसका उर्दू में अनुवाद किया। उर्दू अनुवाद जब लोगों के सामने आया तो सर्वसाधारण की ओर से इसके हिन्दी भाषानुवाद की इतनी प्रबल इच्छा प्रकट की गयी कि अवकाश न होने पर भी विवश हो कर मैंने इसके भाषानुवाद का प्रबन्ध किया।

मेरे मित्रों ने इसका अनुवाद करने में मुझे बड़ी सहायता दी जिसके लिये विशेषतः मैं अपने सम्बन्धी प० शङ्करलाल जी, मौतमिद अलवर हाउस, अजमेर कालिज, और लुधियाना निवासी महाशय विलायतीराम जी का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

मेरी प्रबल इच्छा थी कि यह हिन्दी अनुवाद अब से बहुत वर्ष पूर्व हिन्दी भाषा भाषियों के हाथ में पहुँचता, परन्तु मनुष्य की आशाएँ सदैव ही पूर्ण नहीं हुआ करती,

अतः बहुत से कारणों से जिनपर मेरा कुछ वश न था। अब तक यह आशा पूर्ण न हो सकी थी।

अब अपने मित्रों तथा हितैषियों के सहयोग से यह अनुवाद तैयार हो गया है जो आपके हाथों में है।

आशा है कि यह हिन्दी अनुवाद हिन्दी ज्ञाताओं के द्वारा मनुष्य जाति के लिये अंग्रेजी व उर्दू आदि के अनुवाद से भी अधिक लाभदायक सिद्ध होगा और असंख्य नर-नारियों को इस की सहायता से वास्तविक आरोग्यता और उनका खोया हुआ स्वास्थ्य शीघ्र प्राप्त होगा—यह अनुवाद कर्त्ता की परम दयालु पिता परमात्मा से प्रार्थना है।

सुविज्ञ पाठकगण से प्रार्थना है कि इस पुस्तक की अशुद्धियों को क्षमा करते हुऐ उनको शुद्ध करके अनुवादकर्त्ता को कृपया सूचित करें—जिसमें दूसरी बार पुस्तक छपने में वे दूर की जा सकें।

मुरादाबाद
नवम्बर, सन् १६१३

—श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप

❁ ओ३म् ❁

जर्मनी भाषा में इस पुस्तक के सातवे संस्करण

भूमिका

—:o:—

छठी बार पुस्तक को छपे हुये थोडे ही मास व्यतीत हुए थे कि उसकी माँग इतनी अधिक हुई कि सातवी बार इसके छापने का प्रबन्ध करना पड़ा। मेरे प्रारब्ध में इससे अधिक क्या सफलता हो सकती थी ? इस पुस्तक के ऐसी शीघ्र प्रचार से ज्ञात होता है कि मेरे निकाले हुए, रोगों की ऐक्यता के सिद्धान्त, और मेरे "मुखाकृति-विज्ञान" (शक्ल और सूरत को देख कर रोगों के पहिचान लेने की विद्या) ने दुनियां के सब भागों में पक्की नीव जमाली है। यही मेरी इच्छा इस पुस्तक के लिखने से थी, और मैं ख्याल करता हूँ कि बहुत ही कम किसी मनुष्य की इच्छा इस प्रकार पूर्ण हुई होगी। पृथ्वी पर बसे हुए सर्व देशों से मेरे पास नित्य प्रति बड़ी उमङ्गों से भरे हुए पत्र प्राप्त होते हैं जिनसे मुझे ज्ञात हो गया कि चिकित्सा सम्बन्धी उन सिद्धान्तों से, जो मेरी पुस्तक में लिखे गये हैं, किस प्रकार सदैव मेरे मित्रों की संख्या बढ़ती जाती है।

यह बात कठिनाई से समझ में आवेगी कि ऐसे मनुष्य का मिलना अति दुर्लभ हो गया था जो मेरे सिद्धान्तों को समझने की योग्यता रखता हो। बड़े परिश्रम का और अजेय काम मैं कर चुका हूँ। आज के दिन सब बातें बदल गई हैं। हर एक स्थान पर "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" भले प्रकार ग्रहण की जाती है। कुछ प्राकृतिक सन्देह रखने वाले मनुष्य, और अन्य मनुष्य जो यह विश्वास रखते हैं कि वह एक विषय को दूसरों से अधिक समझते हैं और जो कि मेरी चिकित्सा विधि की परीक्षा करना वृथा समझते हैं इसको ग्रहण नहीं करते। मैं आशा करता हूँ कि ऐसे मनुष्य मेरे विरुद्ध अपनी हलचल को जारी रक्खें। जैसा कि अनुभव से सिद्ध हो गया है, वे लोग सदैव के लिये तो मेरे सिद्धान्तों को हानि नहीं पहुंचा सकते, किन्तु मुझे अपने सिद्धान्तों को मनुष्यों के समझाने में उनसे कुछ सहायता नहीं मिलती।

परन्तु सफलता के साथ-साथ हमको सदैव डाह और लालच भी दीख पड़ते है, और यह भी ज्ञात होता है कि उस वस्तु को, जो बहुमूल्य सिद्ध हो चुकी है,

अपनाने का परिश्रम किया जाता है। यही दशा मेरे बतलाये हुए सिद्धान्तों की है। मैं देखता हूँ कि भिन्न-भिन्न स्थानों में, उस वस्तु की, जिसको मैंने बड़े यत्न और परिश्रम से अपना बनाया है, किस प्रकार स्पष्ट रूप से वेखटके चोरी की जाती है। एक अवसर पर एक प्रोफेसर (बड़े पण्डित) और राज्यवैद्य (शाही डाक्टर) ने मेरे उन व्याख्यानों में से जो मैंने दश वर्ष पहिले दिये थे, एक-एक शब्द और अध्यायों की नकल कर छापने में और उन बातों को अपने ही मस्तिष्क से आविष्कृत हुई प्रकट करने में कुछ भी भय न किया।

सत्य बात यह है कि मेरे विरोधी प्रत्येक स्थान पर मुझसे मेरी निकाली हुई बातों का चुराने का—उद्योग कर रहे हैं। यह प्रत्यक्ष है कि उन लोगों को मेरे सिद्धान्तों की व्याख्या के दीपक का वह प्रकाश जो मेरी इस पुस्तक ने फैलाया है बुरा प्रतीत होने लगा है। अतएव मैं अपने उन मित्रों का और भी अधिक कृतज्ञ हूँ जो बहुत हानि सहन करके सर्वदा मेरे सिद्धान्तों के फैलाने में सहायता देते हैं। मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे अपनी सहायता सदैव देते रहें जिससे कि जनता "आरोग्यता प्राप्त करने की इस नवीन विद्या" के सम अधिकार और अपने आप पर विश्वास करने के योग्य होना, विशेषरूप से समझने लगें।

निस्सन्देह बहुत से अन्य देशों के मनुष्यों को यह बात प्रिय लगेगी कि मेरी छोटी पुस्तक इस समय तक २५ भाषाओं में छप गई है अर्थात् जर्मन, अंग्रेजी—फरांसीसी—स्पेन की भाषा—पुर्तगाल की भाषा, डच, इटेलियन—रूसी—डेनमार्क की भाषा. स्वीटज़रलैन्ड की भाषा, नारवे की भाषा, रूमानिया, हैन्ग्रीयन, पोलेन्ड की भी भाषा बोहिमियां की भाषा, टेलगू, तामिल उर्दू और हिन्दुस्तानी (हिन्द की भाषा) में।

लोगों की अति प्रबल इच्छा की पूर्ति के लिये मैंने इस पुस्तक में कई चित्र "मुखाकृति विज्ञान" के सम्बन्ध के और लगा दिया हैं।

अब मुझे आशा है कि यह नवीन आवृत्ति उतनी ही लाभ दायक प्रमाणित होगी जितनी की इससे पूर्व आवृत्तियों की छपी हुई पुस्तकें प्रमाणित हो चुकी हैं, और चिकित्सा विद्या के सम्बन्ध में इसमें वर्णन किये हुये सिद्धान्त जगत के प्रत्येक भाग में पहुँचेंगे।

२४ फ्लास प्लेट्ज़
लिपज़िग
जनवरी, १८९४

—लुई कुहनी

जर्मन भाषा में पचासवीं आवृत्ति की भूमिका

—❀—

मेरी यह पुस्तक ४६ बार जल्दी-जल्दी एक के पश्चात् दूसरी बार छप चुकी है और अब पचासवीं बार भली भाँति शुद्ध करके और पहिले से बड़ी करके छापी जाती है। जनता के एक बड़े अंश की इच्छा-पूर्ति के लिये जिसको कि मेरे निर्माण किये हुए "सर्व रोगों की एकता के सिद्धान्त" और "मुखाकृति विज्ञान" में पूर्ण विश्वास है। यह पुस्तक छापी गई है और यह नये सिरे से इस कारण छापी गई है कि इस "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" के ठीक-ठीक जानने के लिये नये मार्ग खोल दिये जावें और पुराने मित्रों में नये अनुयायी मिलाये जावें, तथा उस प्रकाश के फैलाने में सहायता दी जावे जो कि एक न एक दिन उस अँधेरे में अवश्य पहुचेगा जो कि प्रकृति के अटल नियमों को इस समय तक छिपाये हुए है।

इस पुस्तक में कुछ ऐसे अध्याय हैं जो कि अपने विषय पर पूर्ण अधिकार रखते हैं, जिनके द्वारा मैंने यह बात समझाई है कि सम्पूर्ण रोग चाहे उनके नाम कुछ भी हों सदैव एक ही कारण से उत्पन्न होते हैं। इस स्थान पर फिर वही नियम ठीक ठीक घटता है जो कि मैं सृष्टि की एकता के सम्बन्ध में सिखलाता हूं। जो कुछ कि साधारण मनुष्य और जो कुछ कि प्राचीन प्रणाली, औषधि द्वारा चिकित्सा करने वाले विद्वान "रोग" शब्द से आशय लेते हैं, वे सबके सब मेरी ~~खोज~~ खोज के अनुसार केवल एक ही विन्दु पर जाकर इस प्रकार से एकत्रित होते हैं जैसे कि वृत्त के भीतर केन्द्र पर बहुत से अर्द्धव्यास—अर्थात् एक ही रोग में। सम्पूर्ण रीति से वे बातें जो कि रोग कहलाती हैं केवल अलग-अलग दशायें और भिन्न-भिन्न सूरतें हैं जोकि वाह्य दशा में भिन्न-भिन्न प्रकार से अपने आप को प्रकट करती हैं परन्तु किसी प्रकार से एक दूसरे से अलग नहीं होतीं, अर्थात् उनमें से प्रत्येक स्वयं रोग नहीं हैं। इस बात को ध्यान में रखने के पश्चात् रोगों के सैंकड़ों नामों की गणना करना बिल्कुल निरर्थक है। इस बात के होते हुए भी यदि मैं इस पुस्तक में उन रोगों का वर्णन किसी-किसी को सम्मिलित करके अलग-अलग करूँ तो उसका

कारण यह होगा कि ऐसा करने से पाठक गण इस विषय को निस्सन्देह शीघ्र समझ लेंगे। रोगों के उन साधारण नामों से जो कि चिकित्सा करने वालों ने रख दिये हैं लोग विज्ञ हैं और सहज में उनको छोड़ भी नहीं सकते । परन्तु वास्तव में, मेरी चिकित्सा-विधि केवल वाह्य और आभ्यन्तरिक अङ्गों के मुख्य रोगों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानती और न यह डाक्टरों की तरह बड़े-बड़े और क्लिष्ट लैटिन भाषा के शब्दों का ज्ञान रखते हैं। इस के विरुद्ध, मेरी चिकित्सा रीति की नीव, रोगों की एकता के अनादि (यद्यपि इस समय तक न जाने हुए) नियम के पहिचानने और उसके ठीक प्रकार से काम में लाने पर रक्खी गई है।

भाप के द्वारा चलने वाले एन्जिन में सदैव उन्नति करने का अवसर रहता है, परन्तु स्वयं भाप की शक्ति में ऐसी उन्नति नहीं हो सकती। मेरी चिकित्सा के सिद्धान्त की भी ठीक यही दशा है। इसमें मूल को हानि नहीं पहुच सकती। अधिक से अधिक इस की प्रणाली में कदाचित कुछ परिवर्तन हो जाये। उपरोक्त नियम (जो कि अनादि है यद्यपि अब तक विदित न था) के विदित हो जाने से सम्पूर्ण रोग रूपी रात्रियों में प्रकाश फैल गया है। जब सूर्य भगवान निकल आते हैं और प्रकाश के फैलाने वाले अन्य-कृत्रिम साधनों के सामने अपनी प्रबल तेज ज्योति फैला देते हैं तो हमें नगर के भीतर नाना प्रकार के दीपकों की आवश्यकता नहीं रहती। इसी प्रकार इस "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" के ज्ञाताओं को प्राचीन सब प्रकार की चिकित्साओं की निर्मित औषधियों और रोगों के सहस्त्रों नामों की आवश्यकता नहीं रहती। इन समस्त रोगों को केवल एक ही विधि से, डाक्टरों की सम्पूर्ण नाना प्रकार की औषधियों की अपेक्षा, अति शीघ्र और निस्सन्देह आराम हो जाता है।

प्रत्येक स्थान पर जहाँ कि रोग के सम्बन्ध में मेरी निकाली हुई विद्या पहुंची है, मैं इस बात को कहने के लिये बड़ा प्रसन्न हूं कि यह समस्त भूमण्डल में पहुंच गई है। वहां उसकी सत्यता सिद्ध करने के लिये नये-नये मार्ग निकलते आते हैं। बहुत सी बातें जो कि पिछले समय में ऐसी बतलाई जाती थी कि उन में फ़र्क़ आ ही नहीं सकता मुझे प्रायः अस्वीकृत करनी पड़ी। मुझे बहुधा ऐसे नियमों से विरोध करना पड़ा है जोकि सत्य माने जाते थे, और मेरे निर्मित नियम सत्य निश्चय हुए हैं, जिनकी दृढ़ता उन विश्वास देने वाली वार्ताओं से सिद्ध होती है जोकि मुझे चिकित्सा करने में सदैव प्राप्त होती रहती है। इस लिये मेरा सिद्धान्त एक ऐसी पक्की नीव पर स्थिर है जिससे उसको हटाने का परिश्रम करना निरर्थक है। उसके साक्षी वे

सहस्रों मनुष्य हैं जिनका अमूल्य स्वास्थ्य मेरी चिकित्सा के नियमो पर चलने से सुरक्षित रहा है। मेरी बातों की वास्तविक सत्यता के विषय में नई-नई साक्षियाँ दिन प्रति दिन इकट्ठा होती जाती हैं। अतः मैं साभिमान इस बात का विश्वास रखता हूँ कि मेरी चिकित्सा के सिद्धान्त भविष्य में भी अवश्य सफलता को प्राप्त होंगे।

प्रत्येक बात पर जोकि विचित्र तथा अद्भुत होती है, आदि में अवश्य आक्षेप हुआ करते हैं। यही दशा मेरी इस नवीन विद्या की भी हुई है कि जितना- जितना समय व्यतीत होता गया, उतनी-उतनी ही उन्नति करती गई और फैलती गई। इसके अतिरिक्त इस अवसर पर "एक * साधारण" मनुष्य है जिसका अनुसन्धान नया है, विचार नये है और जोकि बहुत सी निरर्थक बातों को त्याग कर और प्रायः उन बातों को, जिनकी जड़ चिरकाल से बहुत गहरी पहुँच गई है, मार्ग से हटा कर चिकित्सा के सुरक्षित मैदानों में हस्तक्षेप करता है। परन्तु मेरे विरोधियों ने जो जो विधि ग्रहण की थी वह ऐसी अपूर्ण और अशुद्ध थी कि आदि में ही वह स्वयं दोष लगाये जाने के योग्य थी। उन आरोग्यताओं से जो बहुधा ऐसे रोगी मनुष्यों की दशाओं में, जिनको कि पुराने चिकित्सकों (डाक्टरों अर्थात् औषधि द्वारा चिकित्सा करने वालों) ने असाध्य कह कर उत्तर दे दिया था; मेरी चिकित्सा ने दिखलाई है— इस चिकित्सा के लाभदायक होने का एक बहुत विश्वसनीय प्रमाण किसी वैज्ञानिक लेक्चर की अपेक्षा—प्राप्त होता है। यदि मैंने उस समय तक जब तक कि प्रशंसा पत्र प्राप्त पदार्थ-विद्या के प्रतिनिधि मेरी इन सिखाई हुई बातों की आकर साक्षी न देते और इस नवीन मार्ग के द्वारा सफलता प्राप्त करने की रिपोर्ट न देते, बाट देखी होती तो मैं अपनी आयु भर एक पग भी आगे न बढ़ा होता, परन्तु अब इन सफलता प्राप्त आरोग्यताओं का जो कि इस चिकित्सा ने प्राप्त की हैं धन्यवाद दिया जाता है कि मेरा चिकित्सा के सिद्धांतों ने भूमण्डल के समस्त भागों में प्रशंसा और प्रतिष्ठा के साथ अपना मार्ग निकाल लिया है और प्रत्येक श्रेणी के मनुष्यों में अर्थात्— महाराजाओं, राजाओं और दूसरे प्रतिष्ठित मनुष्य से लेकर साधारण मनुष्यों तक, सहस्रों दुखियों को जो कि मेरे चिकित्सालय में आते हैं उसने आरोग्यता प्रदान की है, जिसके लिये वे मनुष्य हाय-हाय कर रहे थे। इनमें अन्य मनुष्यों के

---

*लुई कुहनी का स्वयं अपनी ही ओर यह संकेत है क्योंकि यह कोई सनद पाये हुए डाक्टर न थे।

अतिरिक्त अफ़रीका के उत्तरीय भाग के निवासी मनुष्य भी जो कि 'मूज' कहलाते हैं सम्मिलित हैं। इन सफलताओं का कारण यह है कि मेरी चिकित्सा विधि प्राकृतिक नियमों पर निर्भर है और उन्नति को प्राप्त होकर एक नवीन विद्या हो गई है जिसका खंडन अब किया ही नहीं जा सकता।

इस पुस्तक का, जो कि अब तक २५ भाषाओं में अनुवादित हो चुकी है, अभिप्राय यह है कि मनुष्यों के शरीर के रोगों का तकाल निदान करले और उन रोगों से सुरक्षित रक्खे। प्राकृतिक नियमों (जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है) की सत्यता को अपनी सर्वाङ्ग पूर्ण सफलताओं की साक्षियों द्वारा फैलावे, जिससे रोगों के दूर करने और सत्य नियमानुसार जीवन व्यतीत करने का उचित सिद्धांत समझ में आता है, और अन्त में इस "अरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" के अपने आप पर भरोसा करने की योग्यता को विशेषतः सर्व साधारण में फैलावे,।

उन मनुष्यों के लिये, जो कि इस प्राकृतिक कार्यवाही को जो कि हमारे चारों ओर होती हुई देख पड़ती है, देखकर सहायता और सम्मति लेना चाहते हैं यह पुस्तक गुरु और पथ-प्रदर्शक व सम्मतिदाता बनने के निमित्त रची गई है। मैं सच्चे मन से आशा करता हूँ कि इस पुस्तक को रचने का मेरा मनोरथ पूर्णतया सफल होगा और यह पुस्तक दुखी मनुष्यों के लिये—अपने आपको—एक अत्यन्त लाभदायक रत्न सिद्ध करेगी।

२४ फ़्लास सेटेज़, लिपज़िग
१ अप्रेल, १८९९

—लुई कुहनी

अनुवादक की ओर से आवश्यक निवेदन

(यह उर्दू भाषानुवाद की प्रथम आवृत्ति में लगाया गया था)

प्रिय पाठकगण । यह पुस्तक 'दी न्यू आइन्स आफ हीलिंग' अर्थात् "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" जिसका अनुवाद मैंने अँग्रेजी से उर्दू भाषा में किया है वास्तव में जर्मनी भाषा में रची गई थी। इसके रचयिता और इस विद्या के निर्माता लुई कुहनी साहिब उसी जर्मनी देश के निवासी हैं जो कि आजकल की पूर्वी विद्याओं और कला-कौशलों का केंद्र स्थान है, और जहाँ कि संस्कृत और वेद भगवान् अथवा वेदांत का बहुत कुछ प्रकाश है,। "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" कुहनी साहिब की ही निकाली हुई विद्या है। इस पुस्तक में इस विद्या के जन्म-दाता ने यह बात दिखलाई है कि सब रोग एक ही प्रकार से उत्पन्न होते हैं बल्कि एक ही हैं और उनकी चिकित्सा भी एक ही प्रकार की है। जिस योग्यता और सौंदर्य्य के साथ निर्माता ने तर्क, बुद्धि, और अनुभव द्वारा सिद्ध करके दिखलाया है, वह अद्वितीय है—और पाठकों के मन में उसकी सम्मति से विरोध करने का कोई अवसर नहीं रह जाता।

वर्तमान समय में हम देखते हैं कि कितने थोड़े मनुष्य उन विद्याओं को अध्ययन करते हैं, जिनके द्वारा स्वास्थ्य दृढ़ रखने में सहायता मिलती है और जिनसे कि गया हुआ स्वास्थ्य फिर प्राप्त हो सकता। प्रायः १०० में ९९ अपितु उनसे भी अधिक मनुष्य अपना खोया हुआ स्वास्थ्य प्राप्त करने में दूसरों से सहायता लेने की खोज में रहते हैं, यद्यपि स्वास्थ्य प्राप्त करने के साधन प्रकृति में बहुत से मिलते हैं और उनसे मनुष्य स्वयम् ही काम ले सकता है।

वर्तमान काल में औषधि द्वारा रोगों की चिकित्सा इतनी महँगी हो गई है और होती जाती है कि साधारण मनुष्यों को उससे लाभ प्राप्त करना कठिन हो गया है। और ऐसे कितने ही मनुष्य हैं जो कि इलाज में अधिक व्यय हो जाने के कारण अपनी आमदनी में से कुछ बचाने ही नहीं पाते और सदैव निर्धन ही बने रहते हैं।

प्रकृति ने स्वास्थ्य स्थिर रखने के निमित्त और स्वास्थ्य प्राप्त करने के अर्थ उतनी ही वस्तुएँ प्राप्त की हैं जितनी की जीवन बनाये रखने के लिये आवश्यक हैं, जैसे कि पञ्चभूत—जितने कि स्वास्थ्य रक्षा के निमित्त आवश्यक हैं उतने ही गया हुआ स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिये भी आवश्यक हैं। अतः वही चिकित्सा प्राकृतिक समझी जावेगी, जो कि हमको स्वास्थ्य करने की सामग्री भी उतनी ही बहुतायत से प्राप्त करावे, जितनी सुगम और अधिकता से पञ्चभूत अर्थात् आकाश, अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी आदि प्राप्त हैं। वह चिकित्सा जिसको प्रत्येक मनुष्य न कर सके और ना समझ सके अवश्य प्राकृतिक चिकित्सा नहीं हैं। जितनी अधिक सुगमता किसी चिकित्सा के करने में मनुष्य को हो सकनी है उतने ही अधिक मनुष्य उससे लाभ उठावेंगे। पञ्चभूत जो कि मनुष्य जीवन के लिये अति आवश्यक हैं प्रत्येक स्थान पर मनुष्य को पर्याप्त मात्रा में, सुगमता से और सस्ते मिल सकते हैं यदि कहीं ये न मिलें तो उस स्थान पर मनुष्य का जीवन ही कठिन है। स्वास्थ्य प्राप्त करने और स्वास्थ्य स्थित रखने का तो प्रश्न ही वहां नहीं हो सकता।

यह 'आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या"—रोगों की चिकित्सा पञ्चभूत के द्वारा ही करती है, विशेषतः जल के द्वारा और जल का व्यवहार भी अन्तरीय नहीं बल्कि उससे स्नान करके। स्नान भी इतने कम कि केवल चार प्रकार के और इतने सरल कि मनुष्य उसको स्वयम् ले सके। क्या वह मनुष्य जो कि इस योग्य हो जावे कि अपने स्वास्थ्य को स्थिर रख सके और बिगड़े हुए स्वास्थ्य को फिर प्राप्त कर सके, अपने आपको भाग्यशाली नहीं कहेगा? इस पुस्तक को पढ़ने और उस पर चलने से मनुष्य, चाहे उसका स्वास्थ्य कितना ही क्यों न बिगड़ गया हो, अपने आपको ऐसा भाग्यशाली बनाने की आशा कर सकता है। इस चिकित्सा में दूसरी प्रचलित चिकित्साओं की अपेक्षा, निम्नलिखित अति आवश्यक लाभ हैं:—

(१) रोग के निदान की आवश्यकता नहीं, और वह भय जो कि मिथ्या निदान के द्वारा मिथ्या चिकित्सा से होता है इसमें प्राप्त नहीं।

(२) इसमें औषधियों का अन्तरीय व्यवहार ही नहीं जिसमें यदि औषधि ठीक नहीं दी गई तो हानि भी अधिक करती है।

(३) इसमें यह भी नहीं है जो कि औषधियों के नुसखे बनाने में कम्पौंडरों की असावधानी से हो जाया करता है और न इसमें वह भय है जो कि हकीमों

और डाक्टरों से कभी-कभी विषैली औषधि की मात्रा लिखने में भूल-चूक हो जाने के कारण उपस्थित हो जाया करता है, जिसका कि बहुधा मनुष्यों को सुनने और देखने का अवसर मिला होगा।

(४) इसमें वह भी डर नहीं है जो कि रोगी को एक पुड़िया या शीशी औषधि औषधि लेने के स्थान पर भूल से किसी तीक्ष्ण विष की पुड़िया या शीशी से औषधि ले लेने में होता है जिसके प्रमाण चिकित्सकों को बहुत मिले होंगे।

(५) इसमें चीर फाड़ (शस्त्र क्रिया) की तनिक भी आवश्यकता नहीं, न उस विष का डर है जो कि सर्जन को रोगी से, अथवा रोगी को शस्त्रों से कभी-कभी लग जाने का होता है, जिससे कि मृत्यु शीघ्र ही हो जाती है।

(६) हकीमों व डाक्टरों की फीस, औषधियों के मूल्य और पेशेवरों और कंपौंडरों की खुशामद से यहाँ कुछ मतलब ही नहीं।

(७) बहुमूल्य औषधियों के अतिरिक्त बहुमूल्य भोज्य पदार्थों से भी यहां कुछ मतलब नहीं, बल्कि जो पदार्थ मनुष्य को उसके देश में बहुत मिलते हैं उन्हीं प्राकृतिक भोजनों का उपयोग होता है।

(८) विशेषत: उन मनुष्यों के लिये भी जो कि अपने धर्मानुसार रात्रि में कोई औषधि नहीं खा सकते, जैसे कि जैनमतावलम्बी महाराय, यह चिकित्सा पूरी-पूरी लाभदायक है क्योंकि इसमें जल के केवल वाह्य व्यवहार से ही प्रत्येक रोग की चिकित्सा की जाती है।

(९) स्त्रियों के लिये सर्व प्रकार की लज्जा पद स्थानीय परीक्षाओं की इस चिकित्सा में तनिक भी आवश्यकता नहीं।

(१०) उन बालकों के लिये जो अपनी दशा का वर्णन नहीं कर सकते और जिनके रोगों का निदान बहुत बहुत कठिन है, यह विशेषत: लाभदायक है।

(११) यह चिकित्सा इतनी सुगम है कि बहुत थोड़ी पढ़ी लिखी स्त्रियाँ भी पुस्तक को पढ़कर और अनपढ़ स्त्रियाँ दूसरों से सुन कर ही अपनी और अपने परिवार की चिकित्सा सफलता के साथ कर सकती हैं।

अनुवाद कर्ता को इस फलीभूत चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त हुए १० वर्ष व्यतीत हो गये। इस काल में इस चिकित्सा विधि के अनुसार स्वयं अपनी और अपने ३—४

महीने से लेकर १४ वर्ष तक की आयु वाले बच्चों की दशा में अपने मित्रों और संबंधियों की दशा में भिन्न भिन्न रोगों में जांचने का अवसर मिला जिससे कि प्रमाणित हुआ कि सारे रोग चाहे उनके नाम कुछ भी क्यों न हो, एक ही प्रकार की चिकित्सा से अर्थात् इस जल चिकित्सा से—यदि चिकित्सा समझ कर की जावे और भोजन के संबन्ध में पथ्य-कुपथ्य पर पूरा-पूरा ध्यान दिया जावे, आरोग्यता को प्राप्त हो सकते हैं।

यद्यपि मुझे सब प्रकार के रोगों की चिकित्सा का अवसर नहीं मिला, परन्तु ऐसे रोगों की चिकित्सा मैंने की है कि जो असाध्य ख्याल किये जाते थे और इस चिकित्सा विधि से उनको आरोग्यता प्राप्त हो गई। जब कि अनुभव से इस चिकित्सा के द्वारा श्वास, वापतिल्ली ज्वर, बिगड़ा हुआ जुकाम, बच्चों का पक्षाघात, पुराना उपदंश मूत्राघात, प्रमेह, मधुप्रमेह, वर्ण का बहना, दर्दगुर्दा, कानों में झनझनाहट, इनफ्लूएंजा, विषूचिका बच्चों में पसली का चलना, आंखों की सूजन, आंखों के रोहे शीघ्र आरोग्यता प्राप्त कर चुके हैं तो मेरा यह कहना कि जब यह चिकित्सा इस प्रकार एक दूसरे से भिन्न और सर्वथा विरुद्ध रोगों में और किन्ही-किन्ही असाध्य रोगों में ठीक पाई जा चुकी है तो वह अवश्यमेव दूसरी बीमारियों में भी सत्य ही सिद्ध होगी, कुछ भी अनुचित नही है। विशेषतः जब कि इस चिकित्सा के निर्माता ने सैकड़ों प्रकार के रोग में इसका अनुभव द्वारा सत्य ही पाया है और उनके लेख की साक्षी मुझे अपने अनुभव द्वारा मिल चुकी हैं।

इन अनुभवों से मुझे प्रेरणा हुई कि इस पुस्तक का ऐसी भाषा में अनुवाद किया जावे जिससे कि सर्व साधारण इससे लाभ उठा सकें। अतः मैंने डाक्टर कुहनी से आज्ञा मांगी जिसको कि उन्होंने उसी उत्साह से जैसा कि उत्साह उन्होंने अपने इस आविष्कार को सर्व साधारण के उपकारार्थ प्रगट करने में दिखलाया हैं, प्रदान की। अतएव मैंने अपने योग्यतानुसार इसको प्रथम उर्दू भाषा में अनुवादित किया और इस अभिप्राय से कि इससे लोग शीघ्र लाभ प्राप्त करें एक बड़ी पुस्तक के स्थान में इसकी तीन जिल्द कर दी जिससे की प्रथम जिल्द छप जाने पर सर्व साधारण को शीघ्र हस्तगत हो सके और जब तक कि दूसरी और तीसरी जिल्द तैयार हो तब तक इस चिकित्सा का ज्ञान सर्व साधारण प्राप्त कर सकें। मैंने इस पुस्तक में नीचे-नीचे नोट भी दिये हैं जहां-जहां कि वे आवश्यक समझे गये और सामर्थ्य भर कोई ऐसी बात नहीं छोड़ी हैं जोकि पुस्तक के समझने के लिये आवश्यक हो। मुझे आशा है कि

हर दर्जे के स्त्री पुरुष इस पुस्तक और इस चिकित्सा-विधि से एकसा ही लाभ उठावेंगे। स्त्रियों को इसकी शिक्षा विशेषतः इसलिये लाभदायक है कि वह इस विद्या का ज्ञान प्राप्त करके अपना स्वास्थ्य स्थिर रख सकेंगी, नीरोग सन्तान उत्पन्न कर सकेंगी और रोगी सन्तान को नीरोग बनाने के योग्य हो जावेंगी और इसलिये उनके द्वारा जाति की जाति नीरोगावस्था प्राप्त कर सकेगी और पुरुषों का वह बहुत सा समय जो सन्तान की बीमारी में खर्च होता है, बच सकेगा। हिन्दुस्तानियों की स्त्रियों के पास बहुत समय इस बात के लिये है कि वे उसको अपनी सन्तान की स्वास्थ्य रक्षा के लिये खर्च कर सकें और पुरुषों को इस कार्य से छुटकारा दे सकें, जिस मुख्य कार्य्य में (अर्थात् सन्तान की स्वास्थ्य-रक्षा में) माता पुरुष की अपेक्षा प्रत्येक देश में अधिक भाग लेती है और प्रकृति ने भी इस काम के लिये माता को उचित बनाया है। ऐसे कितने सज्जन हैं जिनको अपने जीवन समय में स्वयम् अपनी ही दशा में दयालु माता के मातृस्नेह के बरतावे का अनुभव न हुआ होगा? और ऐसे कितने सज्जन हैं जो यह न चाहते हो कि सन्तति प्रेम के साथ ही साथ स्त्रियों को प्रत्येक बीमारी की उत्पत्ति का ज्ञान और उनसे आराम पाने की सुगम विधि प्राप्त न हो जावे।

मेरे विचार में साधारण बुद्धि के मनुष्य के लिए इस पुस्तक के पढ़ने में और इसके नियमों को भली प्रकार समझने में एक सप्ताह अथवा अधिक से अधिक दो सप्ताह बहुत हैं और चिकित्सा की विधि का कृत्रिम ज्ञान प्राप्त करने के लिये तो दिनों की कुछ भी आवश्यकता नहीं, केवल कुछ मिनटों का ही खर्च है। योग्य और शिक्षित स्त्रियाँ इसके नियमों को पुरुषों की भांति पुस्तक पढ़ कर शीघ्र समझ सकती हैं और अशिक्षित दूसरों से सुन कर और समझने से। अतः स्त्री और पुरुष दोनों के लिये इस विद्या का ज्ञान लेना कुछ कठिन नहीं है।

जैसा कि प्रत्येक विद्या की पुस्तक को, इसी प्रकार इस नवीन चिकित्सा की पुस्तक को भी आदि से अर्थात् भूमिका से ही पढ़ना चाहिये जिससे कि प्रत्येक विषय क्रमानुसार बुद्धि में आता चला जावे और जैसा कि हर एक विद्या की पुस्तक पढ़ने का नियम है कि जितनी बार उसको अध्ययन किया जावे उतना ही अधिक उसके नियमों का ज्ञान प्राप्त होगा, वैसी ही इस पुस्तक की भी दशा है।

मैंने इस पुस्तक का अनुवाद सर्व साधारण के लाभार्थ किया है और मैं अपने परिश्रम को उतना अधिक फलीभूत समझूँगा जितने ही अधिक लोग इस चिकित्सा से लाभ उठावेंगे और यही मेरी हार्दिक इच्छा भी है।

मैं इस भूमिका को बिना अपने उन मित्रों अर्थात् बा० व्रजनन्दन प्रसाद साहिब, एम ए०, एल० एल० बी० वकील हाईकोर्ट व रईस और आनरेरी मजिस्ट्रेट मुरादाबाद व पं० शम्भुनाथ साहिब, एम० ए०, एल एल० बी, व बाबू गोविन्द स्वरूप साहिब, बी० ए०, एल० एल बी० वुकलाव हाईकोर्ट, शहर मुरादाबाद और पं मोहनलाल साहिब हुक्कू, एम० ए०; व बाबू प्रतापसिंह साहिब, बी ए०, एल० एल० बी०, मुनसिफ़ (संयुक्त प्रान्त अगरा व अवध) जिन्होने कि इस पुस्तक के अनुवाद में मुझे अपने विद्यावल से अत्यन्त सहायता दी है और अपने मित्र बा० किशोरी लाल वकील, जजी, मुरादाबाद की जिनकी विशेष कृपा अनुवादक पर है, धन्यवाद दिये बिना समाप्त नहीं कर सकता। मुझे पाठक गण से आशा है कि वे मेरे इस थोड़े से परिश्रम को अपनी बड़ाई की दृष्टि से देख कर मेरी सर्व प्रकार की भूलों को क्षमा करेंगे और शुद्ध अशुद्ध तथा उर्दू भाषा के महावरों की गलती पर नज़र न डालेंगे, क्योंकि न तो मैं उर्दू भाषा का विद्वान हूँ और न अँग्रेजी भाषा ही जिससे कि अनुवाद किया गया है मेरी मातृभाषा है।

आपका शुभचिन्तक

बिजनौर

श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप

१ अप्रैल, सन् १९०४

द्वितीय संस्करण की

भूमिका

हर्ष का विषय है कि हिन्दी प्रेमी और गुणग्राहक पाठकों ने इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की खूब क़दर की है। उसी का यह फल है कि मैं आज इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण पाठकों की भेंट कर सका हूँ।

इतना ही नहीं, बल्कि इस पुस्तक ने जगत में अपूर्व गौरव तथा मान प्राप्त किया है। यह हिन्दी का सौभाग्य कहना चाहिये कि उसे प्रतिदिन अमूल्य तथा नवीन ग्रन्थ-प्राप्त होते जाते हैं। हिन्दी के सुप्रसिद्ध मासिक तथा समाचार पत्रों ने इस पुस्तक के विषय में उत्तमोत्तम सम्मतियां प्रकाशित की-हैं।

सर्वसाधारण में जल-चिकित्सा के सुलभ तथा अत्यन्तोपयोगी अमूल्य उपाय ने एक नवीन जागृति उत्पन्न कर दी है और बहुधा रोगियों को जो अन्य चिकित्सा करने निराश हो चुके थे इसने जीवन प्रदान करके उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त कराया है।

पहले संस्करण में जहां तहाँ भाषा-सम्बन्धी अशुद्धियां रह गई थी। वे इस संस्करण में संशोधित कर दी गई हैं। इस बार पहिले संस्करण की अपेक्षा, चिकित्सा सम्बन्धी दो चार बातें और आरोग्यता प्राप्ति विषयक रिपोर्टें अधिक बढ़ा दी गई है। एक प्रकार से यह पुस्तक अबकी बार नवीन ढंग में मुद्रित हुई है। इसका श्रेय एक श्रमशील युवक को है जिसने कि इसके छपाने और प्रूफ संशोधनादि में वृहत् परिश्रम से अहर्निश कार्य किया हे।

इस पुस्तक को सुन्दर बनाने का जैसा हमारा विचार था वह रक्खा ही रह गया, क्योंकि यूरोपीय युद्ध के कारण कागज़ आदि वस्तुओं की अत्यन्त महर्घता होते हुए भी समय पर न मिलना आदि अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ा और इन्हीं कारणों से पुस्तक का कुछ मूल्य भी बढ़ाना पड़ा।

अन्त में उस परम दयालु परमेश्वर का अनेक धन्यवाद है कि जिसकी अनन्त कृपा से निर्विघ्नता पूर्वक इस पुस्तक को मुद्रित करा पाये हैं

विनीत—

अनुवादक

आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या

की विषय सूची

—✿—

(प्रथम भाग)

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ
१—	आरोग्यता का नया मार्ग ढूँढने की इच्छा मेरे मन में कैसे उत्पन्न हुई ?	१—१५
२—	रोग किस प्रकार उत्पन्न होता है ? ज्वर क्या वस्तु है ?	१६ – ३७
३—	बच्चों के रोगों के लक्षण, उत्पत्ति, प्रयोजन, उनका उपाय और उनका एक होना अर्थात् एकता, खसरा, सुर्ख बुखार या रक्त ज्वर, डिफथेरिया, चेचक, सीतला या माता, काली खांसी, कण्ठमाला आदि।	३८ – ७५
४—	गठिया. लङ्गड़ी का दर्द, शरीर के भाग में बंक पड़ जाना, लङ्गड़ा व लुञ्जापन, हाथ पैर का ठंडा होना, शिर का गर्म होना. इन सब का कारण एवं चिकित्सा ।	७६ – १०५
५—	स्नान-विधि, मेरी निकाली हुई चिकित्सा के स्नान ।	१०६—१२६
६—	हम क्या खायें ? हम क्या पिऐं ? पाचन क्रिया ।	१३०—१५२
७—	इस जल चिकित्सा के सम्बन्ध में भाषानुवाद कर्त्ता की ओर से कई आवश्यक सूचनायें ।	१५३—१७७

(द्वितीय भाग)

८—	स्नायु (नरवस) वा मानसिक विकार, निद्रा न आने की व्याधि ।	१७८ —१९१

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ
९—फेफड़ों के रोग, फेफड़ों की सूजन जलन सहित, क्षयी रोग, प्ल्यूरिसी, ल्यूपस ।		१९२—२१३
१०—जननेन्द्रियों के रोग ।		२१४—२२७
११—मूत्राशय वा गुर्दों के रोग, बहुमूत्रता अर्थात् मधुप्रमेह, यूरेमियां, वेड वेटिंग, यकृत के रोग, यकृत की पथरियां, पांडु रोग, अँतड़ियों के रोग, तलवों का पसीजना, हरपिज अर्थात् मकड़ी ।		२२८—२४५
१२ हृदय और जलोदर के रोग ।		२४६—२५०
१३—रीढ़ के बांस का रोग, रीढ़ के बांस का नष्ट होने लगना, अर्श अर्थात् बवासीर के मस्सों का रोग ।		२५१—२५६
१४—मिर्गी के दौर ।		२५७—२६१
१५—अनेमियाँ अर्थात् रुधिर की न्यूनता ।		२६२—२६८
१६—कर्ण और नेत्र के रोग ।		२६९—२७९
१७—दन्त रोग जुकाम, इनफ्यूएनज़ा कंठ रोग, घेंघा		२८०—२८५
१८—शिर पीड़ा, माईग्रेन अर्थात् आधे शिर की पीड़ा से ग्रस्त होना आधा सीसी मस्तिष्क का क्षय हो जाना और मस्तिष्क की जलन)		२८६—२९०
१९—टाईफस, पेचिश, विसूचिका अर्थात् हैजा, अतीसार ।		२९१—२९६
२०—मौसमी और गर्म देशों के बुखार, मलेरिया, पित्त का ज्वर, पीला ज्वर, जाड़ा व बुखार ।		२९७—३०६
२१—ताऊन अर्थात् प्लेग की चिकित्सा (अनुवादक का नोट) ।		३०७—३१०
२२—जुज़ाम अर्थात् कुष्ट ।		३११—३२१
२३—खुजली, भिन्न-भिन्न प्रकार के कीड़े, गेंडुये, पैरेसाईट्स अर्थात् जूं आदि आंत का उतरना ।		३२१—३२६
२४—सर्तान, बदगोश्त ।		३२७—३३०

(तृतीय भाग)

क्रम सं०	विषय	पृष्ठ
२५	औषधियों और शस्त्र-क्रिया के बिना घावों की चिकित्सा और उनको आराम करना।	३३८—३४३
२६	कटे हुए, छिदे हुए कुचले हुए और फटे या चिरे हुए घाव।	३४३—३४८
२७	कुचट्—नीली चोटें और अन्दरूनी (भीतरी) चोटें।	३४८—३६३
२८	विषैले कीड़े मकौड़ों का डंक मारना, पागल कत्ते और सर्प का काटना, रुधिर विषैला हो जाना।	३६४—३६७
२९	स्त्रियों के रोग।	३६८—३८१
३०	पीड़ा रहित जनन, विना पीड़ा और बिना किसी भय के जनने की कार्रवाई कैसे हो सकती है ?	३८२—३६६
३१	जनने के पीछे का प्रवन्ध (पट्टी बाधने की विधि)।	३६७ ३६६
३२	आरम्भ के महीनों में दुग्ध पीते बालक की चिकित्सा, बालक का पालन-पोषण।	४००—४०४

॥ श्री ॥

आरोग्यता का नया मार्ग ढूँढने की इच्छा
मेरे मन में कैसे उत्पन्न हुई

व्याख्यान

प्रथम भाग

—:•:—

महिलाओं और सज्जनो !

यह मनुष्य का स्वभाव है कि प्रत्येक मनुष्य जो यह समझता है कि उसने कोई नई बात निकाली है तो उसका प्रयत्न, अपनी नई बात के स्थिर रखने का, इस अभिप्राय का होता है कि अन्त में वह उसको अपनी सजाति पर प्रकट करे। इस प्रयत्न के करने में निस्सन्देह एक प्रकार के स्वाभिमान व पद की इच्छा प्रतीत होती है, यह ठीक ही है और वस्तुतः यह इच्छा मनुष्य में स्वाभाविक होती है। सत्य का प्रकाशित करना आवश्यक है चाहे कोई मनुष्य साधारण रूप से सब प्रकार के दिखावटी ठाट बाट को तुच्छ समझे और दिन रात इस जीवन के झंझट में थकावट व स्वाभिमान के अतिरिक्त और कुछ भी प्राप्त न करे। सृष्टि के इस नियम के आगे मैं भी शिर झुकाता हूँ जब कि मैं इस समय अपने तीस वर्ष के लगातार परिश्रम का फल आपके सम्मुख प्रकट करता हूं। यह सच है, कि यह अधिक बुद्धिमानी की बात होती यदि मैं अपने अनुभवों को कागज़ के मूक पत्रों ही पर लिखा रहने देता और आगामी सन्तान से ही उनके विषय में व्यवस्था प्राप्त करने की आशा करता; परन्तु इस काम में जिसके निमित्त मैंने अपना जीवन अर्पण कर दिया है, केवल विद्या ही की बात नहीं

है, इससे हमारा उन कर्तव्यों से भी सम्बन्ध है जो इस विद्या से उत्पन्न होते हैं, वरन यों कहना उचित है कि हमारा प्रयोजन उन बातों को अनुभव में लाने से है जो कि हमने सीखी हैं।

अतः यदि मैं अपनी शिक्षा को अपनी सजातियों में फैलाना और आगामी सन्तान को हाथों हाथ देना चाहूं, और यदि यह मेरी इच्छा हो कि मेरे मरने पर लोग मुझे अर्द्ध वैद्य (नीमहकीम) के नाम से दूषित न करें, तो मुझको अवश्य उचित है कि उन सत्य बातों को जो मैंने निकाली हैं शिक्षा द्वारा और जीवित व्यक्तियों पर उनका प्रयोग करके प्रमाणित कराऊं और उनको सिद्ध करूँ और दूसरों को उन्हें बतलाऊँ।

परन्तु इतनी बड़ी समाज के सन्मुख जो इस समय उपस्थित है रोगियों को लाकर उपस्थित करना असम्भव है। अतः मुझको उचित है कि अपने विचारों को शब्दों ही में अपनी योग्यता के अनुसार वर्णन करके संतोष करूं। और पहले सूक्ष्म रुप से यह वर्णन करने दीजिये कि मेरी चिकित्सा के नियम कैसे बने।

सदा से मुझको प्राकृतिक रचनाओं से एक विशेष प्रेम रहा है। मुझ को सिवाय इसके और किसी बात में अधिक आनन्द नहीं प्राप्त होता था कि मैं बन व खेतों के जीवों का और उनकी उन दशाओं का जिनमें कि वे जीवन व्यतीत करते हैं और अपनी जाति वृद्धि करते हैं ज्ञान प्राप्त करूं, और अपनी सबसे बड़ी माता अर्थात् नेचर (प्रकृति) के कामों को पृथ्वी व आकाश में खोजूँ और उनके दृढ़ नियमों को जानकर उनको स्थापित करूँ। मैं सदा इस बात के सुनने का इच्छुक रहता था कि योग्य तत्ववेत्ताओं ने जैसे कि प्रोफेसर 'रासमासलर'[१] ने क्या २ बाते जान ली हैं और यह इच्छा इस समय के बहुत पूर्व हुई थी जब कि मुझे कोई भी विचार इस आरोग्यप्रद विद्या के निमित्त विशेषतः अपना जीवन अर्पण करने का नहीं हुआ था। आवश्यकता के बलवान् हाथ ने मुझे अन्त में इस काम पर बलात् लगाया—वह आवश्यकता जोकि जाति व प्रत्येक मनुष्य-दोनों को शिक्षा देने वाली है।

अपनी अवस्था का बीसवां वर्ष समाप्त करने के थोड़े ही दिनो पीछे मैंने देखा कि मेरा शरीर अपनी क्रिया करने में असमर्थ है, फेफड़ो व शिर में दर्द जान पड़ता था, प्रथम प्रशंसित डाक्टरों की सहायता ली परन्तु फल कुछ न हुआ। मेरी माता ने,

---

१.—जर्मनी देश के एक विद्वान का नाम है।

जो कि बहुत काल से कमजोर और रोगिणी चली आती थी, हम सब बच्चों को डाक्टरों से बहुत कुछ डरा दिया था और यह कहा करती थी कि इन डाक्टरों द्वारा उसकी यह दशा हुई है। मेरा पिता भी पेट के अन्दर पकी हुई रसौली (सरतान फोड़े) के रोग में डाक्टरों की औषधि करके परलोक सिधारा था। इस समय के निकट सन १८६४ ईस्वी में 'नेचरक्यूर'[1] के अनुगामियों की सभा का विज्ञापन मेरे दृष्टिगोचर हुआ, इस विषय में मेरी रुचि हुई और उस सभा का दूसरा विज्ञापन देख कर मैं उस सभा में उपस्थित हुआ। यह सभा किंचित् दृढ़ हृदय के मनुष्यों की थी जो कि हमारे 'मेलजर'[2] के चारों ओर (जिसको हम कभी न भूलेंगे) इकट्ठे हुए थे। बहुत आगा पीछा विचार करके मैंने उन सभासदों में से एक से पूछा कि फेफड़ों में सुई के चुभने के से दर्द के लिये, जिसमें कि मैं उस समय ग्रसित था, मुझे क्या करना उचित है? यह मैंने बहुत सन्देह के साथ पूछा था, क्योंकि बहुत काल से मेरी दशा ऐसी थी कि मैं बहुत से मनुष्यों के सम्मुख उच्चस्वर से नहीं बोल सकता था। उसने एक गद्दी का रखना बतलाया, जिसका प्रभाव तुरन्त हुआ और अच्छा प्रभाव हुआ। इसके पश्चात् मैं उन सभाओं में बराबर जाता रहा। इसके कई वर्ष पीछे सन् १८६८ ई० में मेरा भाई अत्यन्त बीमार हुआ और नेचरक्योर जो कि उस समय उन्नति के आरम्भ में था उसकी कुछ भी सहायता नहीं कर सका, परन्तु हम लोगों को 'थ्योडोहान'[3] की सफलता प्राप्त चिकित्सा विधि के सुनने का अवसर मिला। मेरे भाई ने उनसे सलाह लेने की पूरी चेष्टा की और कई सप्ताह पीछे आरोग्यता में बहुत सफलता प्राप्त करके मकान को लौट आया। मैं भी स्वाभाविक चिकित्सा की सफलता को प्रति समय अधिक २ अनुभव करने लगा—और उस समय इस चिकित्सा विधि की मूल की सत्यता में मुझे पूर्ण विश्वास हो गया।

इस बीच में मेरी बीमारी भी चुप नहीं रही थी। रोग के वे अंकुर जो कि माता-पिता से मुझे मिले थे, बहुत ही बढ़ गये थे। विशेषतः उस समय से जब कि पुरानी बीमारियों

१—सृष्टि के नियमों के अनुकूल रोगों के आराम करने की विधि को कहते हैं, अर्थात् कुदरती तरीका इलाज से अभिप्राय है।

२—जरमन देश में एक प्रसिद्ध पुरुष का नाम है।

३—यह भी प्रसिद्ध पुरुष जरमन देश में जल के द्वारा चिकित्सा करने में उन्नति करने वाला हुआ है।

की चिकित्सा मैंने औषधि द्वारा कराई थी और जिसके कारण रोगों के अंकुर उन (पुरानी बीमारियों) में और जा मिले थे। मेरी दशा शनैः-शनै और भी बिगड़ती गई—अन्त में सर्वथा असह्य हो गई। पेट में मौरूसी फोड़ा (सरतान) प्रकट होने लगा, फेफड़े किंचित् बिगड़ चुके थे, शिर की रगें ऐसी हो गईं थीं कि मुझे मैदान में ताज हवा में ही आराम मिलता था, आराम की नींद लेने या किसी काम के करने का तो प्रश्न ही नहीं हो सकता था। आज के दिन मैं इसको स्वीकार कर सकता हूँ कि चाहे मैं उस समय में खूब मोटा था और मुख मेरा लाल था, परन्तु मैं वास्तव में सर्वथा 'लेजार'[1] की सी दशा के समान था। तो भी मैंने उस समय तक के स्वाभाविक चिकित्सा के जाने हुए नियमों का पूरा-पूरा पालन किया। स्नान या भीगी हुई चादर में लपेटना—पिचकारियां, तरारें का देना या जल का किसी अवयव पर ज़ोर से बहाने की क्रिया—निदान प्रत्येक वस्तु का प्रयोग मैंने किया, परन्तु पीड़ा में कुछ कमी होने के अतिरिक्त और कुछ न हुआ। इस समय में मैंने स्वतन्त्र सृष्टि में ध्यान व विचार के साथ देखने से वह नियम निकाले जो कि मेरे इस समय व्यवहारित हुई व सिखाई हुई चिकित्सा विधि के मूल हैं। परीक्षार्थ मैंने स्वयं अपने ऊपर इस चिकित्सा विधि को एक बार आरम्भ किया और इस अभिप्राय के निमित्त अति ही प्रयोजनीय यन्त्र मैंने बनाये। परीक्षा में सफलता हुई। मेरी दशा दिन पर दिन अच्छी होती गई दूसरे मनुष्य जिन्होंने मेरी सलाह मानी और उसी विधि से क्रिया की, उनको भी इसमें विश्वास हो गया। यन्त्र जो मैंने बनाये थे उन्होंने भली प्रकार बहुत काम किया। वर्तमान रोगों का निदान और आगामी रोगों के निमित्त भविष्य वाणी, जिनको स्वयं रोगी ने अभी तक नहीं जाना था—चाहे मूल बीज उसमें स्थित था—सदा सच्ची सिद्ध हुई। मुझको विश्वास हुआ कि मेरी निकाली हुई बातें धोके की टट्टियाँ नहीं थीं। फिर भी जब मैंने उनका कथन किसी से किया, तो मेरे विचारों को अविश्वसनीय आश्चर्य, बेपरवाही, उदासीनता व घृणापूरित अस्वीकृति की पूर्ण दृष्टि से ही देखा गया, और ऐसा व्यवहार केवल औषधि द्वारा चिकित्सा करने वाले मनुष्यों की ओर से व औषधियों में विश्वास रखने वालों की ओर से ही नहीं था, वरन् (वास्तव में) नेचरक्योर के अनुगामी और कमी २ उसके प्रसिद्ध स्थानापन्न महाशयों की ओर से भी देखने

१—एक बहुत ही दनी अनाथ पुरुष का नाम है जो कोढ़ के रोग से ग्रसित था और जिसका वर्णन अंगरेज़ी धर्म पुस्तक बाइबिल में आया है—अब इस नाम से अर्थ कोढ़ी का होता है या किसी ऐसे पुरुष का जो कि उसके समान लाचार व दुःखी हो।

में आया। पीड़ित मनुष्यों की भलाई के निमित्त मैंने अपने यंत्र मुफ्त में काम आने के लिये कई एक चिकित्सकों के पास रख दिये थे पर उन यन्त्रों को भली भांति परीक्षा न करके उनको निकम्मा कह कर अलग रख दिया कि जिससे वे धूल मकड़ी के जालों में अट जावें। इस प्रकार से मुझे और भी अच्छी तरह से ज्ञात हो गया कि इतना ही पर्याप्त नहीं है कि रोग की उत्पत्ति व उसकी वृद्धि, व चिकित्सा के नियम स्थित किये जावें और रोगियों के चिकित्सार्थ यंत्र बनाये जावें, और न यह पर्याप्त है कि वर्तमान रोगों का निदान और आगे को जो रोग होनेवाले हैं उनके जान लेने कि निर्भ्रान्त विधि, जो स्वयं मनुष्य के शरीर की दशा पर रक्खी गई है, ज्ञात कर ली जावे—और न उस सफलता का प्रकट किया जाना ही पर्याप्त है जोकि इस आरोग्यप्रद नवीन मार्ग को स्वयं मेरी दशा में या मेरे सम्बन्धी मित्र प्रेमी व ज्ञातओं की दशा में प्राप्त हुई है, वरन् इसके विरुद्ध मैंने यह भली प्रकार से देख लिया कि मुझे स्वयं न्याय के लिये सर्वसाधारण मनुष्यों से ही अपील करनी पड़ेगी और बहुत से लोगों को आश्चर्यजनक स्वास्थ्य प्राप्त करके अपनी चिकित्सा विधि की उच्चता 'एलोपेथी'[1] (Allopathy) 'होमियोपेथी'[2] (Homoeopathy) और उससे पूर्व समय के स्वास्थ्य प्राप्त करने के मार्ग के सन्मुख सिद्ध करनी पड़ेगी, मेरे विचार में केवल इस ही रीति से सब श्रेणी के लोग विश्वास कर सकेंगे, कि मेरी चिकित्सा विधि सत्य है और सृष्टि के नियमों पर इसकी नींव रक्खी गई है।

इस प्रकार अन्तःकारण की प्रेरणा ने मन को बड़ी द्विविधा में डाल दिया क्योंकि यदि मैं यह निर्णय करता हूं कि इस नये स्वास्थ्यप्रद मार्ग के अनुकूल चिकित्सा कर्म में अपने आपको लगाऊँ तो मुझे अपना कार्य्यालय जोकि चौबीस वर्ष से बहुत अच्छी प्रकार से चल रहा था बन्द कर देना पड़ेगा, ताकि मैं अपना पूरा ध्यान इस दूसरे काम की ओर लगाऊँ जिस बात से मुझे आरम्भ में ही केवल और द्रव्य बुराई, देख

१—एलोपेथी से अभिप्राय उस चिकित्सा मार्ग से है जोकि सरकारी शफ़ाखानों में होता है और प्रायः डाक्टर लोग करते हैं।

२—होमियोपैथी से अभिप्राय चिकित्सा के उस मार्ग से है जिसका सिद्धान्त यह है कि कोई रोग उस ही औषधि से अच्छा हो जाता है जिस औषधि का प्रयोग निरोग मनुष्य पर उसी रोग के चिह्न उत्पन्न करे—औषधि बहुत ही कम परिमाण में दी जाती है—जैसे एक बूंद औषधि के अक को सहस्त्रों बून्द जल में मिलाकर हलका करते हैं—और इसका भी एक बूंद ही देते हैं।

की हानि प्राप्त होगी। वर्षों तक बुद्धि और मन में युद्ध होता रहा, बुद्धि रोकती थी और अन्तःकरण बारम्बार मुझे इच्छा पूर्ण करने को करता था।

१० अकतूबर सन् १८८३ ई० को आखिरकार मैंने कार्य्यालय खोल दिया। अन्तःकरण की जीत हुई। ठीक २ जैसा कि मेरा विचार था वही देखने में आया। आरम्भ के कई वर्षों तक शायद ही कोई मनुष्य मेरे चिकित्सालय में आया होगा, यद्यपि कई एक रोगियों की चिकित्सा में ऐसा सफलता प्राप्त हुई थी जोकि स्वयं ही लोगों का मन इस ओर खेंचने को पर्याप्त थी। तत्पश्चात आरम्भ में तो केवल स्नान लेने के हेतु और फिर कई मनुष्य इलाज कराने के प्रयोग से भी शनैः २ आने लगे। थोड़े काल में लोगों की कृपा अधिक हुई—मुख्यतः दूसरे नगरों से—क्योंकि लगभग प्रत्येक मनुष्य जिसका इलाज मैंने किया वह इस चिकित्सा विधि का प्रसिद्ध कर्ता बन गया और इसको (इस चिकित्सा विधि को) सहायता पहुँचाने लगा। मेरी चिकित्सा विधि व मेरी निदान विधि अर्थात् 'साइन्स आफ फेशियल एक्सप्रेशन' (Science of Faceal) (Expression) अर्थात् 'मुखाकृति-विज्ञान'[1] सहस्रों मनुष्यों की दशा में फलदायक सिद्ध हुई हैं और मैं बहुत से मनुष्यों को भविष्य में होने वाले रोगों को बतलाकर उसको बड़े कष्टों से बचाने के योग्य हुआ हूँ। इस अन्तिम बात पर मैं फिर विशेषतः जोर देता हूँ, क्योंकि केवल इस ही के द्वारा हम फिर संसार को निश्चय पूर्वक आरोग्य बनाने के योग्य होंगे।

मेरी आविष्कृत नियमों की सत्यता प्रत्येक रोगी की चिकित्सा में सिद्ध हो चुकी है मेरा अनुभव भी गत आठ वर्ष में अवश्य अधिक विस्तृत हो गया है और स्वयं मेरी स्वस्थता जो पहिले चिकित्सा के अयोग्य जान पड़ती थी—नवीन चिकित्सा विधि का दृढ़ता के साथ प्रयोग करने से इतनी अधिक बढ़ गई है कि आज दिन मैं अपने उस परिश्रम को अच्छी प्रकार से उठा सकता हूँ जोकि इस बढ़े हुए चिकित्सा कर्म के कारण मुझ पर पड़ा है; परन्तु बहुत ध्यान से विचार कर मेरे एक नये मार्ग 'सिट्ज-बाथ' के (Sitz Bath)[2] निकालने से ही ऐसी सम्भव हुआ है। यह स्नान ऐसा

१—जिसके द्वारा मुख की आकृति देख कर रोग का निदान करते हैं अर्थात् मुख को देख कर रोगी के वर्तमान व भविष्य रोग बतला सकते हैं। इस मुखाकृति विज्ञान विद्या का वर्णन इस पुस्तक में आगे कई स्थानों में आवेगा।

२—इसकी विधि विस्तार पूर्वक आगे स्नान विधि के बयान में आरम्भ हुई है।

प्रभावशाली सिद्ध हुआ है कि मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं, कि प्रत्येक रोग चाहे उसका नाम कुछ ही क्यों न हो अवश्य चिकित्सा के योग्य है। मेरा अभिप्राय प्रत्येक रोग से है, न कि प्रत्येक रोगी से; क्योंकि जिस दिशा में कि शरीर की जड़ बहुत ही दूर तक खोदी जा चुकी है--और विशेषतः उस दशा में जब शरीर बहुत दिनों तक औषधियों के खाने के कारण सर्वथा विष से भर गया है तो मेरा मार्ग निस्सन्देह दुःख को तो कम कर सकता है, परन्तु रोगी को सर्वदा मृत्यु से नहीं बचा सकता, या पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त नहीं करा सकता है।

मैं आपके सम्मुख इस हर्ष से पूरित व अभयदायिनी विद्या के साथ प्रस्तुत होता हूं, कि अपने शरीर के रोगों के विरुद्ध एक चतुर्थांश (२५ वर्ष) तक युद्ध करने के पश्चात् मैंने अपने आपको मृत्यु से बचा लिया है—और साथ ही सर्व साधारण के लाभ के निमित्त एक बार रोग के आराम करने की एक सत्य चिकित्सा जिसको कि महान प्रसिद्ध विद्वानों ने बहुत दिनों तक निष्फल खोजा था—निकाल ली है। इस प्रकार से बात करना अपना गुण स्वयं आप ही दिखाना व देखना समझा जावे, परन्तु परीक्षा ने प्रत्येक दशा में यह सिद्ध कर दिया; कि उन अवसरों पर भी जहाँ कि मैं अपने किसी रोगी को मृत्यु से न बचा सका, मेरा सिद्धांत सर्वथा सत्य तथा अटल है।

जिस वार्ता ने मुझे मेरे अनुभव तक पहुंचाया; वह परीक्षा का मार्ग था, जो कि अत्यंत सावधानी पूर्वक विचार तथा अनुसंधान एवं नियमित परीक्षाओं पर रक्खा हुआ था, और चाहे मुझे अधूरा वैद्य कहें और मुझे इस बात का दोष लगावें कि वर्तमान वैद्यक चिकित्सा करने के योग्य होने के लिये, मुझे नियमानुकूल इस क्रिया की शिक्षा नहीं हुई है—परन्तु मैं इन सब बातों को पूर्ण शांति और गंभीरता के साथ सहन कर सकता हूं, क्योंकि मनुष्य जाति के लिये महान लाभ पहुंचाने वाले और विशेषतः बड़े २ अनुभव व सिद्धांतों के निकालने वाले मनुष्य भी, बिना किसी विकल्प के इसी प्रकार से अधूरे वैद्य व सांसारिक कहलाये हैं। कृषक प्रेसनिट्ज़,[१] बोझ उठाने वाला[२] योगीजन (पाश्चात्य वनवासी) फेंक[३] (जे—एच—एस) और औषधि

१—एक जरमन डाक्टर है जो जल द्वारा चिकित्सा का कर्ता हुआ है। यह मनुष्य सन् १८५१ ई० में परलोक सिधारा।

२, ३—यह प्रत्येक दोनों व्यक्ति जरमनी में हुए थे जो कि नियमानुकूल किसी चिकित्सा की शिक्षा न पाने पर भी इस संसार में मनुष्य जाति के लाभ पहुँचाने वाली चिकित्सा के निकालने (ईजाद करने) वाले हुए हैं।

क्रियावेत्ता हान[1] का (जिनकी प्रतिभाशाली बुद्धि और दृढ़ हृदयों ने चिकित्सा विधि की एक नूतन और उत्तम प्रणाली निकाली है,) तो कथन ही क्या है।

एलोपेथी—होमियोपेथी और पहिले के प्राकृतिक चिकित्सा (कुदरती इलाज) के प्रचलित मार्गों से यह नवीन चिकित्सा का मार्ग क्या सम्बन्ध रखता है ?

इन चिकित्साओं के मार्गों के गुण अवगुण बताने और उनकी अपूर्णता और उनकी शक्ति-हीनता को (जो कि वे भी, जैसे कि और सब बातें, जिनका सम्बन्ध मनुष्य से है अपने में रखती हैं) प्रकाशित करने की मैं चेष्टा करता हूँ. परन्तु केवल उस स्थान तक जहां तक कि यह सब के लाभ के लिये, और मेरी व्याख्या के अच्छी प्रकार से समझने के लिये आवश्यक है। प्रत्येक मनुष्य इस बात में स्वतन्त्र है कि वह उसी बात को स्वीकार करे और उसी पर चले जिस बात को कि वह सब से अच्छा समझे, परन्तु मेरा सिद्धांत ठीक २ समझने के लिये इस बात का जानना आवश्यक है– कि किन २ बातों में यह वर्तमान चिकित्सा के अनुकूल है. और किन २ बातों में प्रतिकूल, जिनसे हम यह बात जान सकें कि किस बात में यह निस्सन्देह असली है और उसका सत्य मूल्य या मान स्वयं वा औरों के अपेक्षित क्या है ?

एलोपेथी से तो यह बिना औषधि व बिना चीर फाड़ की क्रिय वाली चिकित्सा का नवीन मार्ग, केवल एक ही विषय में मिलता है। अर्थात् दोनों मार्गों की चेष्टा मनुष्य के शरीर की चिकित्सा है। इसके अतिरिक्त उनकी चेष्टा व उनकी सफलता प्राप्ति के सिद्धांत एक दूसरे से ऐसे विरुद्ध हैं. जैसे कि आपस में व्यास के दोनों सिरे; निश्चयात्मक, रोगियों को विषों से भर देने की इस सर्व चिकित्सा को ही जो कि वर्तमान में बहुत उन्नति पर है; इस बात का (यदि मुख्य कारण नहीं) एक कारण तो होना, मैं विचारता ही हूं कि पूर्णरूपेण नीरोग (पूरे २ तन्दुरुस्त) मनुष्य आजकल क्यों कठिनाई से देखने में आते हैं और यह भी कि देर तक ठहरनें वाले रोग भयात्मक रूप से क्यों बढ़ते चले जाते हैं ? इस नवीन आरोग्यताप्रदमार्ग का समय पर व उचित प्रकार से बीच में आ जाना चीराफाड़ी की क्रिया को प्रायः सर्वथा बेकाम बना देगा।

होमियोपेथी का आना एक बहादुर मित्र के आगमन के समान शुभ समझता हूं जिसके साथ होकर औषधियों में लोगों के विश्वास के छुड़ाने के निमित्त युद्ध करना है। इसकी बहुत ही छोटी २ मात्रा से जिसमें कि रसायनवेत्ता (केमिस्ट) औषधि का

१—यह भी एक प्रसिद्ध जरमन प्राकृतिक चिकित्सक हुए हैं।

चिह्न भी नहीं जान सकता है, और उचित आहार की ओर इसका मुख्य ध्यान होने के कारण यह चिकित्सा होमियोपेथी इस नवीन आरोग्यप्रद विद्या के आगमन के निमित्त मार्ग या सीढ़ी बन रही है, क्योंकि आहार के सम्बन्ध में यह होमियोपेथी कोई नियत व स्पष्ट सिद्धान्त नहीं बताती है। मेरा अनुभव इस बात को सिद्ध करता है कि इसकी औषधि की बहुत थोड़ी २ मात्रा भी हानि पहुँचाने से सर्वथा रहित नहीं हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा जिस प्रकार कि आजतक काम में आती रही है—और जो कि अन्य चिकित्साविधानों से बहुत आगे बढ़ी हुई है—वही इस बिना औषधि व बिना चीराफाड़ी की क्रियाके नवीन आरोग्यप्रद मार्ग की नीव है; परन्तु मैंने यह अवश्य समझा है कि इस विधि (प्राकृतिक चिकित्सा) के बड़े २ कर्ता धर्ता अर्थात् प्रेसनिट्ज़, श्राथ, रास और थिओडोरहान् की अनुगमन (पैरवी) उनके स्थानापन्न के अनुगमन (पैरवी) की अपेक्षा अधिक करूँ—पीछे के अनुगामी मनुष्य अपने आपको अलग प्रगट करने की अत्यन्त चेष्टा रखने के कारण से—बनावट को पहुँच जाने और सृष्टि के स्पष्ट और सरल मार्ग से अलग होजाने के दुःख व डर में पड़े; इनसे पहले की स्वाभाविक चिकित्सा का मार्ग (कुदरती इलाज) विकृत[1] पदार्थ के गुण व स्वभाव से ज्ञात नहीं था, और न उन सृष्टि के नियमों को जानता था जिनके अनुसार वैकारिक पदार्थ शरीर के भीतर स्थान बदलता है—और कहीं २ बैठ जाता है। दूसरे शब्दों में यों कहेंगे कि इसको बहुधा रोग की, और विशेषतः प्रत्येक प्रकार के रोग के मूल की सच्ची पहिचान नहीं है, अर्थात् सृष्टि के सदा स्थिर रहने वाले नियम का (जिसको यद्यपि अब तक किसी ने जाना नहीं) जो कि मेरे अनुभव की हुई सब बातों की नींव है, इसको ज्ञान नहीं है। इसके अतिरिक्त इस (पहिले के स्वाभाविक मार्ग की चिकित्सा) को प्रचलित निदान की विधि की आवश्यकता पड़ती है—चाहे यह बात अच्छे प्रकार से प्रगट है कि इसको ऐसे "ठीक ठीक" पहिचानने की कोई आवश्यकता नहीं है। साइन्स में अभी तक प्राचीन विचार के पक्षपात लगे हुए हैं। इसके विरुद्ध यह 'आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या' एक भिन्न रीति से निदान की विधि बताती है, जोकि स्वयं रोग उत्पत्ति के कारण से निकली है

१—विजातीयद्रव्य से अभिप्राय शरीर में उन वस्तुओं से है कि जिनकी आवश्यकता शरीर में नहीं और जिनका बाहर निकलना आवश्यक है—और जिनके इकट्ठे हो जाने से ही शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।

और जो केवल मुख (चेहरा) व गर्दन की परीक्षा से होती है—अर्थात् मुखाकृति-विज्ञान।

'नेचुरलमेथड—अर्थात् स्वाभाविक चिकित्सामार्ग' में बहुत सी विधियों से जल काम में आता है—अर्थात् भीगी चादर में शरीर को लपेटना, पिचकारी लगाना—ज़ोर कि पानी की धार रोग-ग्रस्त अवयव पर गिराना—वर्षा की तरह जल बरसा कर स्नान करना—अर्द्ध, पूर्ण स्नान, बैठकर स्नान—और भिन्न प्रकार के भाप के स्नान; परन्तु जबकि रोग का सच्चा मूल कारण एक बार भी जान लेते हैं तो यह कई प्रकार कि चिकित्सा विधि निष्फल व घपले में डालने वाली जान पड़ती हैं। यह 'आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या का मार्ग' जल कि कई क्रियाओं को जहाँ तक सम्भव है बहुत कम और सरल कर देता है।

साधारण नेचर-क्यूर[1] सिस्टम के अनुसार आहार में अधिकतर सब प्रकार से अनियमित दशा रही है, या स्वयं प्रचलित वर्तमान मिले हुए[2] आहार को ही लाभदायक मान लिया है, यह न्यू साइन्स आफ हीलिंग निर्विकार आहार के सम्बन्ध में एक नया मार्ग बताता है जो सृष्टि के बहुत स्पष्ट और सच्चे बताये हुए नियमों पर अपनी नींव रखता है।

जैसा कि आप देखते हैं साधारण 'नेचरक्यूर सिस्टम' के मार्ग से (जिस को मैं फिर कहता हूँ कि आश्चर्यजनक बातें दिखलाई हैं) इतना अधिक फर्क किया गया है कि मैं अपनी विद्या व चिकित्सा मार्ग को एक नये नाम से पुकारना उचित समझता हूँ—अर्थात् 'न्यू[3] साइन्स आफ हीलिंग', बिना औषधि और बिना चीरा फाड़ी की

१—'नेचर' का अर्थ सृष्टि, 'क्यूर' का अर्थ चिकित्सा और 'सिस्टम' का अर्थ मार्ग या विधि है। पूर्ण वाक्य से स्वाभाविक चिकित्सा विधि से अभिप्राय है, अर्थात् उस चिकित्सा से जिसमें रोगों को सृष्टि के स्वाभाविक नियमों से आराम करते हैं।

२—उस आहार से अभिप्राय है जिसमें मांस व अन्नादि दोनों उचित समझे हैं।

३—अंग्रेज़ी में न्यू का अर्थ नया—साइन्स का विद्या—हीलिंग का स्वास्थ्यप्रद—वा चिकित्सा—कुलवाक्य का अर्थ आरोग्यता प्राप्ति का नया मार्ग है—या नवीन चिकित्सा की विद्या है जिसका वर्णन इस पुस्तक में किया गया है—जिसको डाक्टर कुहनी साहब इस पुस्तक के रचयिता ने निकाला है—आगे अधिकतर स्थानों में अंग्रेज़ी के शब्द ही काम में लाये गये हैं जिनसे पाठकगण इस व्याख्या के पश्चात् स्वयं ही अभिप्राय समझ लेंगे।

क्रिया (आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या) मैं अपने उन सब अनुभवों को जो मैंने अपनी चिकित्सा प्रणाली को पूर्ण कोटि पर पहुँचने से पहिले किये थे, व्याख्या पूर्वक या विस्तार से वर्णन नहीं कर सकता। अधिकतर मनुष्यों को वह मानोरञ्जक तो होगा परन्तु क्रिया रुपेण वह किसी लाभ का नहीं—वास्तव में इसमें एक मुख्य लाभ है; जब कि कोई मनुष्य अपने इष्ट स्थान पर सीधा पहुँच सकता है और उन झूठे मार्गों से बच सकता है जो कि उसको ठीक मार्ग ज्ञात होने से पहिले चलने पड़े थे।

आरम्भ में इतनी बात कहने के पश्चात् अब मुख्य विषय पर हमको आने की आज्ञा दीजिये, हमारा आशय यह है कि अन्तिम प्रश्न जिसको मुझे प्रथम जाँचना चाहिये और जिस पर कि पूरी २ इस चिकित्सा मार्ग की नींव रक्खी गई है वह यह है, अर्थात् कौनसा शरीर आरोग्य वा स्वस्थ है या नहीं? आजकल (इस विषयमें) नाना प्रकार की सम्मतियाँ हैं; कौनसा मनुष्य ऐसा है जिसको इस बात का अनुभव न हुआ होगा? कोई मनुष्य तो कहता है कि मैं सर्वथा आरोग्य हूँ केवल गठिया सताती है, दूसरा कहता है कि मुझे केवल घबराहट हो जात है नहीं तो और प्रकार से मैं स्वयं आरोग्यता की मूर्ति ही हूँ, (इस प्रकार से बातें करनी) मानो ऐसा कहना है कि शरीर के अलग २ टुकड़े हैं और प्रत्येक टुकड़ा दूसरे टुकड़े से सर्वथा अलग है और न उससे किसी ही प्रकार का सम्बन्ध रखता हुआ प्रतीत होता है; बड़ा आश्चर्य यह है कि इस विचार की सहायता उस चिकित्सा से होती है जो कि बड़ा सच्चा व पक्का समझा जाता है, यह पिछला मार्ग बहुत सी दशाओं में किसी अवयव का अकेला विचार करता है और प्राय: उसके आस पास के अवयवों पर ध्यान भी नहीं देता; यह सब बातें होने पर भी इस में सन्देह नहीं कि मनुष्य का सम्पूर्ण शरीर मिलकर अङ्ग बनता है जिसके विभाग लगातार एक दूसरे से ऐसा सम्बन्ध रखते हैं कि एक में बीमारी का होना दूसरे भाग पर अवश्य प्रभाव डालेगा। प्रति दिन विचार करने से आपको ज्ञात हो जावेगा कि ऐसा ही होता है। यदि तुम्हारे दाँत का दर्द है तो भी तुमको काम करने में कठिनता पड़ती है खान, पान, अच्छा नहीं लगता है; जरा सी उंगली में फाँस लग जाने से भी ऐसा ही होता है, पेट में दर्द होने के कारण हमारे सब शारीरिक व मस्तिष्क के (दिमागी) काम करने की चेष्टा दूर भाग जाती है। आरम्भ में तो यह वह प्रभाव है जो रगों के द्वारा पहुँचता है—परन्तु हम देखते हैं कि एक बुराई से दूसरी बुराई सीधी कैसे हो जाती है—यदि यह बुराई एक समय तक बनी रहे तो

उसके फल भी दीर्घ समय तक रहेंगे—चाहे वे हमको प्रतीत हों या न हों। अतः कोई शरीर उसी समय स्वस्थ हो सकता है जबकि उसके सम्पूर्ण अवयव ठीक दशा में हों, और अपना काम विना दवाव व तनाव व विना दुःख दर्द के करते हों, और सम्पूर्ण अवयवों का वाहरी स्वरूप ऐसा हो जो उनकी ठीक क्रिया करने का द्योतक हो और जो कि हमारे इस विचार से वहुत मिलता हो—कि अच्छा रूप कैसा होना चाहिये; जब की दृष्टमान् रूप ही ठीक नहीं है तो ऐसी दशा नियत कारणों से उत्पन्न होती है—पर प्रत्येक दशा के निमित्त ठीक २ शुद्ध स्वरूप का ज्ञान वाँधने के अभिप्राय से वड़ी जाँच खोज की आवश्यता है—प्रथम तो हमको वस्तुतः स्वस्थ मनुष्यों को उदाहरण के निमित्त खोजना चाहिये—जिससे कि दृष्टमान् रूप का ज्ञान हो परन्तु आज कल ऐसे मनुष्यों का मिलना प्रायः असम्भव होगया है। निसन्देह हम वहुत से मनुष्यों को वलवान् व स्वस्थ वताते हैं और वहुत से मनुष्य स्वयं कहते हैं कि हम ऐसे ही हैं भी—परन्तु यदि हम किञ्चत् उत्तम प्रकार के खोज करें तो प्रत्येक को कुछ न कुछ (जैसा कि वह कहता है) दुःख है; जैसे किंचत् दर्द कभी २ दर्द शिर, कभी २दाँतों की पीड़ा इत्यादि, जिस से कि सिद्ध होता है कि पूर्ण स्वास्थ्य का तो प्रश्न ही नहीं हो सकता; अतः वहुत देख व खोज करने की आवश्यता है जिससे स्वस्थ शरीर के स्वरूप को जान सकें; रोगी मनुष्यों को उन मनुष्यों से मुक़ाविला करने से जो कि लगभग नीरोग हैं हम कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं; और आगे विस्तार-पूर्वक वर्णन से यह स्पष्ट हो जावेगा कि यह कैसे सम्भव है।

मैं इस वात को वता चुका हूँ कि वीमारी से शरीर का रूप भी वदल जाता है, अव मैं आपके सामने कुछ जाने हुए उदाहरण रक्खूंगा। प्रथम मैं आपको उन मनुष्यों की याद दिलाता हूँ जो मोटापे से दुःख भोगते हैं अर्थात् जिनका शरीर उत्तम प्रकार से गोल मटोल वना रहता है, और उनके विरूद्ध आपको दुवले पतले मनुष्यों की याद दिलाता हूँ जिन के शरीर में कठिनता से ही कहीं चर्वी मिले। निस्सन्देह यह दोनों रोग के चिह्न हैं, इसके अतिरिक्त दाँतों का गिर जाना एक ऐसी वात है जिस से सम्पूर्ण मुखाकृति वदल जाती है; गठिया वाय—जिस में गूमड़ियाँ होती हैं और वह गठिया जिस में शरीर के सव-भागों में सूजन हो जाती है; इन सव दशाओं में परिवर्तन ऐसे आश्चर्यजनक रूप में प्रकट होते हैं कि केवल नया सीखने वाला भी उनको जान लेता है। रोग की भिन्न २ दशाओं में यह तवदीलियाँ थोड़ी २ दिखाई पड़ती हैं; परन्तु मैं आपको और वहुत सी प्रसिद्ध वातों का स्मरण करा सकता हूँ।

आप इस बात को जानते हैं कि स्वस्थ (तन्दुरुस्त) मनुष्य की दृष्टि स्वच्छ व सभ्यतायुक्त होती है और उसकी मुखाकृति भद्दी नहीं होती, परन्तु आप को इस बात की जाँच में कठिनता होगी कि मुख की ठीक आकृति कब और कौन सी है और आप इसको भी शीघ्र ही मान लेंगे कि इस विषय में एक मनुष्य की परीक्षा-शक्ति दूसरे से अधिक तीक्ष्ण होती है—जैसे हम प्रायः किसी ऐसे मनुष्य को मिल जाते हैं जिसको हमने बरसों तक नहीं देखा है—हमको दिखाई पड़ता है कि इस समय उस मनुष्य में बहुत ही परिवर्तन वस्तुतः दोष की ओर हुए हैं; चाहे हम इस परिवर्तन के मूल कारण को स्पष्ट रूप से न बतला सकें तो भी यह परिवर्तन जिनके द्वारा शरीर का रूप शनैः २ जाता रहता है कोई गंभीराशय रखते हैं, जिसका वर्णन मैं आगे चलकर करूंगा। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो गया कि शरीर और मुख्यतः शिर व गर्दन के रूपान्तर की दशा में रोग अपने को प्रकट करना एक आवश्यक बात है।

प्रत्येक मनुष्य इसके करने में सफलता प्राप्त करेगा या नहीं ? इसका निर्णय मैं नहीं करूंगा। इस[1] प्रकार दृष्टि द्वारा जाँच करने के लिये ध्यान पूर्वक अभ्यास व दृढ़ता की आवश्यकता है। जो मनुष्य कि इस साइन्स आफ़ फेशियल एक्सप्रेशन को उत्तम प्रकार से जानने की इच्छा रखते हैं उनको मैं अपनी छोटी[2] पुस्तक प्राप्त करने की सम्मति दूँगा—जो कि इस विषय तक पहुँचाने के लिये स्पष्ट रूप से मार्ग बताती है।

मैं आज के दिन आपका ध्यान स्वस्थता की एक दूसरी कसौटी की ओर दिलाता हूँ। प्रत्येक रोग की दशा में कुल शरीर पर उसका प्रभाव पड़ता है। इस कारण से हम स्वस्थता की जाँच एक अवयव के काम की परीक्षा करने से कर सकते हैं, इसके लिये सब से उत्तम यह बात है—कि उन्हीं अवयवों को हम देखें जिनके कामों की जाँच भली भाँति से और सहज में हो सकती है—और ऐसे अवयव वह हैं जिन को पान शक्ति के यन्त्र कहते हैं उत्तम पाचनशक्ति उत्तम स्वास्थ्य का चिह्न है। जब पाचन भली भाँति से प्रतिदिन होता रहता है तों शरीर निस्सन्देह पूर्ण स्वस्थ है। यह बातें पशुओं में बहुत सहज से देखी जा सकती हैं। मल से हम इस की जाँच पूर्ण प्रकार से कर सकते है, कि पांचन शक्ति की क्या दशा है; यह मल शरीर से ऐसे रूप में निकलना चाहिये

१—अर्थात् शरीर के और मुख्यतः गर्दन व मुख की आकृति में बदलाव के जानने में।

२—इस पुस्तक का नाम हिन्दी में 'मुखाकृति विज्ञान' है, जो छप गया है। उर्दू भाषा में भी इसका उल्था छप गया है।

कि शरीर सर्वथा स्वच्छ रहे। इस बात को आप प्रतिदिन घोड़ों और पक्षियों में जोकि स्वतंत्र दशा में रहते हैं, देख सकते हैं, इस महीन वा सूक्ष्म विषय की ओर अधिक व्याख्या करने से मुझे क्षमा कीजियेगा, परन्तु जब स्वस्थता व रोग का वर्णन किया जावे तो प्रत्येक वस्तु को उसके सही नाम से ही पुकारना उचित है।

पायखाने के स्थान का अंतिम सिरा ऐसा अपूर्व रूप का बना है कि यदि पायखाने का रूप (मलकी दशा) उस स्थान तक पहुँचते समय ठीक २ हो तो मल विना कष्ट व विना शरीर को मैला लिये हुए बाहर निकल जाता है; इस विषय का वर्णन अधिक विस्तार से मैंने अपनी (क्या मैं अरोग्य हूँ या रोगी ?) नाम की पुस्तक में किया है।

शरीर के गुप्त स्थान स्वच्छ करने का कागज रोगी मनुष्य के हेतु बनाया गया है, पूर्ण स्वस्थ मनुष्य को वस्तुतः इसकी आवश्यकता नहीं है। मेरी बात के समझने में भ्रम वा सन्देह न कीजियेगा मेरा अभिप्राय यह नहीं है–कि कोई ऐसा मनुष्य जिसकी आरोग्यता निश्चयपूर्वक पूर्णतः शुद्ध नहीं है यह विचार करे कि स्वच्छता की इस भली रीति को त्याग देने से कोई सफलता प्राप्त होगी, वरन इसके विरूद्ध अस्वस्थ रोगी मनुष्यों के हेतु यह रीति स्वच्छता रखने के अर्थ आवश्यक है। अपनी पाचनशक्ति की दशा से प्रति मनुष्य सहज ही में इस बात को जान सकता है कि वह आरोग्य है या नहीं ? जाँच की यह रीति बहुत ही आवश्यक है और संदेह करने वाले मनुष्यों के हँसीठट्ठे का किञ्चित भय न करके इस बात को मैं वलपूर्वक कहने में तनिक भी नहीं रूक सकता हूँ।

वास्तव में वह मनुष्य सौभाग्य शाली है जिसको ऊपर लिखी हुई बातें बतला देती हैं, कि उसका स्वास्थ्य पूर्णतया शुद्ध है; स्वस्थ मनुष्य अपने को सदैव अच्छा जानता है, उसको कोई दुःख व वेचैनी प्रतीत नहीं होती, केवल उस दशा को छोड़ जिस में कि यह दुःख या बेचैनी किसी बाह्य कारण से हो; निस्संदेह, उसको यह कभी विचार भी नहीं होता कि उसके पास शरीर है, काम करने में उसको सदा आनन्द प्रतीत होता है और काम तब तक अच्छा लगता है जब तक वह थक न जावे; और (थकजाने पर) भले प्रकार आराम लेने से ही उसको पूर्ण सुख या आनन्द प्राप्त होता है; मानसिक व्यथा का सहन करना उसको सहज है, उसका शरीर उसकी शांति के अश्रु रूपी ठंडक देने वाला सुखदायक मरहम दान करता है जिन अश्रु पात करने में ऐसे अवसर पर किसी मनुष्य को भी लज्जा करनी उचित नहीं है; आरोग्य मनुष्य अपने कुटुम्ब की चिन्ता व सोच के

दुःख को नहीं सहता (मानता), क्योंकि उसको आत्मीय जनों के पालन की शक्ति का अस्तित्व अपने भीतर प्रतीत होता है; स्वस्थ माता अपने बाल बच्चों के पालन में आनन्द प्राप्त करती है—क्योंकि वह अपने छोटे बच्चों का उस रीति[1] से पालन कर सकती है जो सृष्टि ने उनके हेतु रची है; यदि उसके प्यारे बच्चे भी स्वस्थ हों तो उनका जीवन किस श्रेणी के आनन्द के साथ व्यतीत होगा, उनकी मुखः श्री आनन्द द्योतकता से परिपूर्ण होंगी—वह लगातार बेचैनी, गुड़गुड़ाहट और हल्ला, कुछ न होंगे; सारांश यह—कि ऐसे बच्चों को शिक्षा देने में आनन्द प्राप्त होता है—विशेषतः (इस कारण से) कि उन पर उनके गुरू के आचरणों का प्रभाव अधिक होगा—और वे उसकी आज्ञा में चलेंगे।

संक्षेप रूप से फिर कहते हैः—मेरी स्वाभाविक प्रकृति ने मुझे साइन्स की ओर खींचा, कठिन रोग एवं उस बुरे अनुभव ने, जो मुझे शुद्ध चित्त शील सद्वैद्यों की ओर से, प्राप्त हुआ था, नेचर क्यूर की ओर लगाया, जब मैंने यह देखा कि नेचर क्यूर' भी जैसा कि उस समय में प्रचलित था, मेरे पुराने रोगों के वस्तुतः नष्ट करने में असमर्थ है, तो मुझे विवशतया नवीन अनुसन्धान करना पड़ा; जीवित सृष्टि (नेचर) में लगातार दृष्टि लगाने से मुझे वह अन्तर जान पड़ा जो प्रति शरीर के वाह्यरूप में रोग के कारण से उत्पन्न होता है, तथा उस रीति ने जिस में यह अन्तर रोग के मिट जाने पर फिर दूर होजाता है, मुझे अन्त में यह बात सिखला दी कि रोग क्या है और कैसे उत्पन्न होता है ?

मेरे दूसरे व्याख्यान का विषय यह होगा कि मैं आपके सन्मुख अपनी खोज के फल प्रकट करूँ और आपको यह बतलाऊँ (जैसे कि मैं देखता हूँ) कि रोग की जड़ (मूल) क्या है ? और किस प्रकार इसको दमन करना चाहिये।

१—अर्थात् दूध निकालकर; यही मार्ग सृष्टि ने बच्चों के पालनार्थ बनाया है—स्वास्थ्य माता ही ऐसा कर सकती है—और जो बच्चे अपनी नीरोग माता के दूध से पले होंगे वे स्वाभाविकतया ही नीरोग भी होंगे।

रोग किस प्रकार से उत्पन्न होता है ? ज्वर क्या है ?

व्याख्यान

रोग क्या है ? कैसे उत्पन्न होता है—और किस प्रकार से यह अपने आपको प्रकट करता है ?

इन्हीं प्रश्नों पर मैं आज आपके सन्मुख कथन करना चाहता हूँ; यदि आपने व्याख्यान के शीर्षक पर यह दूसरा प्रश्न पढ़ा है कि "ज्वर क्या वस्तु है ?" तो आपको बात प्रतीत हो जायगी कि और प्रश्नों के साथ में यह इसका उत्तर भी किस प्रकार दिया जाता है।

पूर्वोक्त प्रश्नों के उत्तर केवल विद्या दृष्टि से ही नहीं वरन् क्रिया दृष्टि से भी आवश्यक हैं—क्योंकि जब तक हमको रोग उत्पत्ति की वास्तविकता (असलियत) के विषय में स्पष्ट रूप से ज्ञान प्राप्त न हो जाय उस समय तक हम एक दम रोग के मिटाने के ठीक मार्ग तक पहुँचने की योग्यता प्राप्त नहीं करेंगे—और पूर्ण अनुभव से जानने के हेतु अँधेरे में टटोलने से बचेंगे।

जो मार्ग कि हम लेते हैं वह वही मार्ग है जिससे सब सृष्टि के नियम जाने जाते हैं; हम निरीक्षण की परीक्षा से प्रारम्भ करते हैं, इससे फल निकालते हैं और अन्त में इन फलों की सत्यता वा शुद्धि को अनुभव द्वारा सिद्ध करते हैं।

सब से प्रथम हमारी खोज उन सब चिह्नों तक पहुँचनी चाहिये जो कि रोगी में मिलते हैं, और लगातार वारम्बार प्रकट होते हैं; यह चिह्न वास्तव में सत्य हैं और रोग की उत्पत्ति के कारण ज्ञात करने के लिये हमें इनको अपने मार्ग पर चलने का आदि स्थान मान लेना चाहिये।

मैंने अपने पिछले व्याख्यान में यह कहा है कि कई रोगों की दशा में शरीर की आकृति में बड़े आश्चर्य जनक परिवर्तन होते हैं। और यही बात थी जिस के कारण मैंने इस बात पर और ध्यान दिया कि क्या इस प्रकार के परिवर्तन सब रोगियों में नहीं होते हैं ?

और परीक्षा ने बार २ सिद्ध कर दिया कि वस्तुतः यही दशा है—इस प्रकार के परिवर्तनों का प्रभाव मुख व गर्दन पर विशेषतः होता है और यह भेद (फ़र्क़) इन स्थानों पर सहज में ही जाने जा सकते हैं।

वर्षों तक इस बात के जानने पर मैंने ध्यान दिया है कि मेरी की हुई परीक्षाएँ सब मनुष्यों की दशा में अनुकूल होती हैं या नहीं और मनुष्य की सूरत शकल की तबदीली के साथ प्रत्येक मनुष्य की स्वस्थता में भी अन्तर आता है या नहीं, और मैंने उसे ऐसा ही पाया है।

अतः मुझको पूर्ण विश्वास हो गया कि प्रत्येक शरीर के निमित्त एक मुख्य और मध्यम प्रकार की शकल सूरत अवश्य होगी जो कि आरोग्यता की दशा ही में एकसी मिलेंगी, और इस मध्यम प्रकार की शकल सूरत में किञ्चित् भी अन्तर आना रोग के कारण हुआ करता है; मेरी समझ में यह बात अच्छे प्रकार से आ गई कि गर्दन व मुख की आकृति (शकल) जो परिवर्तन होवें उनके देखने से किसी मनुष्य के स्वास्थ्य की दशा का विश्वस्त रूप से ज्ञान हो सकता है - और इसी के द्वारा मैंने अपने निदान के मार्ग अर्थात् 'मुखाकृति विज्ञान' का मैं पन्द्रह वर्ष से अधिक समय तक अपने चिकित्सा कर्म में व्यवहार कर चुका हूँ।

वह परिवर्तन जो गर्दन व मुख पर हमको दिखाई देते हैं उन्हीं के अनुकूल पेड़ू व चूतड़ के भाग में भी किञ्चित् बाहुल्य से होते हैं, क्योंकि जैसा कि हमको आगे चलकर ज्ञात होगा वह स्वयं पेड़ू में ही उत्पन्न होते हैं। अतः रोगी की केवल गर्दन व मुख की परीक्षा करने से हमको उसकी सब शारीरिक व्यवस्था का ठीक-ठीक वृतान्त ज्ञात हो सकता है। यह बाह्य परिवर्तन गर्दन व मुखकी आकृति में इस रीति से प्रकट होते हैं, अर्थात् प्रथम उस समय जब यह विकृत पदार्थ मांस के रेशों के बीच में पहुँच जाता है तो उसके कारण शरीर, जो रबड़ के समान फैलने की योग्यता रखता है, फूल जाता है (यह दशा अधिक भयंकर नहीं है); दूसरे अधिक तनाव के कारण, जो कि अलग-अलग मांस के रेशों के कड़े हो जाने से होता है, इस दशा का अनुभव आप लोग बहुत सहज में कर सकेंगे। यदि आप एक चमड़े की थैली[1] का जिस में कुचला

१—इस कुचले हुए चर्म की थैली को अंग्रेज़ी भाषा में सासेज, अरबी व फ़ार्सी में कुल्मा कहते हैं।

हुआ मांस भरा हो अनुभव करें, साधारण रूप से भरे होने पर इसको जिधर चाहें मोड़ सकते हैं। यदि इसको अधिक ठूंसकर भर दिया जावे तो वह थैली इतनी कड़ी और तनी हुई हो जावेगी कि उसको जब तक कि उसकी खाल फट न जावे मोड़ न सकेंगे; इसी प्रकार से शरीर भी एक सीमा तक फैल सकता है। जिसके उपरांत मांस के रेशों में तनाव हो जाता है; ऐसा तनाव हो जाता है; ऐसा तनाव अति स्पष्ट रूप से उस समय प्रतीत होता है जब कि रोगी अपनी गर्दन व शिर को घुमाता है। यह दशा बहुत बिगड़ी हुई होती है; अब यदि पट्ठों की रगों के बीच में विकृत पदार्थ के इकट्ठे होने को यथोचित स्थान न रहे तो विकारी वस्तु माँस के रेशों के आस पास की खाल के नीचे टुकड़ों-टुकड़ों में इकट्ठी हो जाती है और उस समय गर्दन पर स्पष्टतः प्रकट होती है। जब कि हमको ऐसे टुकड़े शिर व गर्दन पर मिलते हैं तो हमको इन चिह्नों से यह परिणाम निकालने में सन्देह नहीं होता कि इसी प्रकार धड़ के भागों में भी बहुत ही अधिक टुकड़े उपस्थित हैं। पेड़ू की खाल में ऐसे टुकड़े बड़े छोटे क़द के सहज में छूकर व देखकर ज्ञात हो सकते हैं, क्योंकि गर्दन में ऐसी डलियां उस समय तक इकट्ठी नहीं हो सकतीं जब तक कि इस प्रकार के टुकड़े वा डलियां पेड़ू में इकट्ठे न होगये हों। इन टुकड़ों की उत्पत्ति की ठीक-ठीक व्याख्या जिसको अभी तक कहीं वर्णन नहीं किया है, मैं पीछे करूंगा जब कि फेफड़ों के रोगों का वर्णन किया जावेगा। इसके विपरीत दुर्बल रोगियों में हम देखते हैं कि किस प्रकार से शरीर में स्वस्थ रेशों के स्थान वस्तुतः विकारी पदार्थ से घिर जाते हैं, यहां तक कि रेशों के बचे हुए हिस्से, मानो कि सिकुड़ कर मिले हुए रेशे, विकृत वस्तु के बीच में दिखाई देते हैं।

खाल के नाना प्रकार के असाधारण रंग भी रोगों की पहिचान में ठीक सहायता पहुँचाते हैं और किसी-किसी रोग में तो ये (अर्थात् खाल के असाधारण रङ्ग) अवश्य मौजूद रहते हैं।

इस स्थल पर दिये हुए दो चित्रों में से जो कि एक जीवित मनुष्य के हैं, एक ऐसा रोगी दिखाई देता है जिसको हृदय रोग (दिल का मर्ज) व पांडु रोग ने आच्छादित कर रक्खा है। प्रथम चित्र उसका उस समय का है जब कि उसने मेरी चिकित्सा आरम्भ की और दूसरा चित्र उसकी उस आकृति (शक्ल) का है जो कि उसकी चार मास की चिकित्सा करने के पश्चात् हो गई। आपको स्पष्ट रूप से उसकी आकृति में वह बड़ा परिवर्तन जो कि उस समय हुआ था दिखाई देता होगा। जैसा कि आपको जान पड़ता होगा वह मनुष्य विकृत पदार्थ से भरा हुआ था, परन्तु तीन मास के भीतर

ही मेरी चिकित्सा की रीति की सहायता से उसने अपने शरीर से इस विकृत पदार्थ के बड़े भाग को मल त्यागने वाले अङ्गों के द्वारा निकाल कर शुद्ध कर लिया था जैसा कि चित्र—२ से स्पष्ट है। मैं इस अवसर पर मुखाकृति विज्ञान का केवल नाम मात्र कथन करता हूँ, क्योंकि उसका विस्तार पूर्वक कथन करने से हम इस वर्त्तमान व्याख्यान के विषय से बहुत दूर बाहर निकल जावेंगे।

परन्तु शरीर की आकृति (शक्ल) में यह परिवर्तन हमको रोग की जड़ या मूल के विषय में क्या बात बतलाते हैं ? प्रथम यह कि यह सूजन व उभार, या फूलना, एक न एक प्रकार के मल के इकट्ठे होने से वस्तुतः उत्पन्न होते हैं। आरम्भ में कोई

चित्र सं० १ चित्र सं० २

मनुष्य इस बात का बोध नहीं कर सकता है कि यह वह द्रव्य है जिसको शरीर काम में ला सकता है और जो अनुचित स्थान पर एकत्र हो गया है, या यह वह द्रव्य है जिसका शरीर से कुछ सम्बन्ध ही नहीं है ? और न हम आरम्भ में यह जानते हैं कि यह वह द्रव्य है जो कि रोग को उत्पन्न करता है या वह द्रव्य है जो रोग के कारण से इकट्ठा हुआ है—परन्तु और अधिक परीक्षा हम को सचाई के और भी निकट ले जाती है, क्योंकि प्रायः शरीर के एक ही ओर यह द्रव्य एकत्र होने लगते हैं और एक ओर में दूसरी ओर से अधिक होते हैं—वह सदा उस ओर होता है जिस करवट हमारा सोने का स्वभाव होता है। इससे हम देखते हैं कि विजातीय द्रव्य (फारेन मैटर) आकर्षण केन्द्र की ओर झुकने के नियम का आधीन है, मानो तली में नीचे को बैठ जाता है। परन्तु इस कारण से कि शरीर का यह भाग सदा अधिक रोगी होता है, अनुमान से यह सिद्ध होता है कि यह 'द्रव्य' ही रोग का कारण होता है नहीं तो

रोग दूसरी ओर भी, कभी कभी तो निस्सन्देह होता: आगे को इसकी पुष्टि में और अधिक प्रमाण दिये जावेंगे।

हम इससे यह भी अनुमान कर सकते हैं कि पूर्वोक्त द्रव्य अवश्य विजातीय द्रव्य होगा—अर्थात् उस प्रकार का जो कि अपनी सत्ता में किसी प्रकार से शरीर का भाग नहीं होता है। इस बात को हम नहीं मान सकते हैं—कि शक्ति-प्रद वस्तु इस शरीर के भीतर आकर्षण केन्द्र की ओर झुकने के नियम के आधीन होती है, नहीं तो नीरोग शरीर में एक ही ओर द्रव्य इकट्ठा होने लगेगा, यदि कोई मनुष्य एक ही ओर सोने का स्वभाव रखता हो।

इस के अतिरिक्त शरीर स्वयं भी इस द्रव्य के दूर करने की चेष्टा प्रकट करता है—नासूर अथवा बड़े चौड़े घाव उत्पन्न होने लगते हैं—या पसीना आता है या नाना प्रकार के चर्म रोग (खुजली-चेचक-दाद इत्यादि) फूट निकलते हैं—क्योंकि यही मार्ग हैं जिनमें से शरीर उपद्रवी द्रव्य को अपने में से निकाल देने का उद्योग करता है। यदि सफलता हुई तो रोग के पश्चात् चित्त में एक प्रकार का चैन सा प्रतीत होता है—यदि मल (विकृत द्रव्य) पूर्ण रूप से निकल गया हो।

अब हम स्वयम् ही उस श्रेणी तक पहुँच गये कि रोग किस को कहते हैं। शरीर में विकृत पदार्थ की उपस्थिति का[1] नाम रोग है। इस परिभाषा की सत्यता के लिये एक ऐसी परीक्षा का मार्ग उपस्थित है जो कभी चूक नहीं करता। यदि वह मल जिसको हमने विकृत पदार्थ के नाम से वर्णन किया है, शरीर में से उचित विधि से निकाल दिया जावे और उसके पीछे रोग स्वयं दूर हो जावें, और उसी समय शरीर फिर अपनी आरोग्यता की दशा को प्राप्त कर लेवे, तो हमने जो रोग की परिभाषा बाँधी है उस की सत्यता सिद्ध हो जाती है।

इसका प्रमाण मैं दे भी चुका हूँ और आगे के व्याख्यानों में जो मैंने अनुभव किये हैं दिखलाऊँगा, परन्तु अब हमको इस प्रश्न पर आना चाहिये कि विकृत द्रव्य का मूल और उस के गुण क्या हैं, और शरीर में यह किस प्रकार या किस मार्ग से प्रवेश करता है।

केवल दो मार्ग हैं जिनके द्वारा विकृत द्रव्य शरीर में जा सकता है, अर्थात् नासिका द्वारा फेफड़ों में और मुख द्वारा पेट में। इन दोनों मार्गों पर द्वारपाल स्थित

१—अर्थात् उपद्रवी द्रव्य का शरीर में होना ही रोग है।

हैं, परन्तु वे ऐसे नहीं हैं कि सर्वथा विगड़ न सकें, वे कभी ऐसी वस्तु को भी भीतर जाने देते हैं कि जो शरीर के अनुकूल नहीं है। ये द्वारपाल नासिका और जिह्वा हैं। एक तो वायु के लिए और दूसरा आहार ग्रहण करने के लिये।

जैसे हम सूंघने वाली व स्वाद वताने वाली शक्ति की आज्ञा पालन करने में तत्पर नहीं रहते वैसे ही, वे भी अपने कर्तव्य कर्मों के करने में ढीलापन दिखाती जाती हैं और शनैः-शनैः हानिकारक पदार्थों को विना रोक टोक के शरीर के भीतर प्रवेश करने देती हैं--आप सब इस वात से विज्ञ हैं कि क्यों कर कोई-कोई मनुष्य तम्बाकू के धुयें के वादलों में बैठने का और उसको श्वास के रास्ते उम्दा ताजी वायु के सदृश भीतर ले जाने का स्वभाव पकड़ सकता है। जिह्वा इस से भी अधिक विगड़ गई है, और हम इस वात को जानते हैं कि धीरे-धीरे इसमें कितना अधिक सृष्टि के विरुद्ध आहार स्वीकार करने का स्वभाव पड़ सकता है। क्या मुझको इस वात के कहने की आवश्यकता है कि मैं आपको वहुत सी ऐसी नाना प्रकार के खाने व पीने की वस्तुओं का स्मरण कराऊँ जोकि इस समय में आवश्यक समझी जाती हैं और जिनको कई सौ वर्ष पूर्व लोग जानते भी नहीं थे। वर्तमान काल में लोग इन वस्तुओं के ऐसे वशीभूत होगये हैं कि वे इनके सामने प्राकृतिक भोजन (कुदरती गिज़ा) को छोड़ देना स्वीकार करेंगे।

सब बातों पर विचार करने से विदित है कि हमारे फेफड़ों का आहार ऐसा खराब नहीं है जैसा कि हमारे पेट का। आज के दिन भी स्वच्छ वायु हमको सदा अच्छी लगती है, परन्तु स्वादिष्ट मोहनभोग (हलवा) का एक कटोरा जिस से हमारे पुरुषाओं में रक्त व शक्ति की वृद्धि होती थी वास्तव में बहुत कम मनुष्यों को स्वादिष्ट प्रतीत होता है[1]।

और अधिक स्पष्टरूप से समझाने के निमित्त-मैं आगे एक उदाहरण दूंगा कि सृष्टि के प्रतिकूल पाचन शक्ति का मूलोच्छेदन किस प्रकार से होता है। बोझ की गाड़ी खींचने वाला एक घोड़ा जो कि सहज में पचास मन बोझ खींच सकता है, उससे यह हो सकता है कि थोड़े समय के लिये वह चावुक के भय से अधिक भारी बोझ जैसे—अस्सी मन भी खींच लेवे, परन्तु यदि उसका स्वामी यह देख कर कि उसका घोड़ा अस्सी मन

१—यह दशा यूरोप देश की है जहां कि मांसाहार इतना वढ़ गया है कि वनस्पति व अन्न से वनी हुई वस्तुओं को बहुत कम लोग खाते हैं।

बोझ खींच सकता है प्रति दिन उससे उतना ही बोझ खिंचवाये, तो यद्यपि उसका पशु यह अधिक बोझ कुछ समय तक खींचने के समर्थ भी हो तौभी शक्ति से अधिक काम लेना उसको शीघ्र ही हानि कारक सिद्ध होगा। वह दिन पर दिन बोझ को अधिक कठिनाई से खींचने लगेगा, यहाँ तक कि वह फिर पचास मन भी नहीं ले जा सकेगा। उस पशु के पैरों में सथड़े व हड्डों एवं अन्य भिन्न-भिन्न चिह्नों से यह बात प्रतीत होगी कि उससे उसकी शक्ति से अधिक काम लिया गया है। मनुष्य के पाचन यंत्रकी भी यही दशा है। आजकल की तेज (तीक्ष्ण) वस्तुओं की लगातार एड़ के कारण बहुत समय तक वे अपना काम मामूली से अधिक करने लगते हैं—परन्तु उनकी वास्तविक शक्ति की जड़ उखड़ती चली जाती है—और तब वे उस काम को जो उनको दिया जाता है अधूरा ही करते हैं। आरोग्यता की दशा से बीमारी की दशा ऐसे अज्ञात रूप में पैदा होजाती है (बहुधा दस या बीस या अधिक वर्ष लग जाते हैं) कि रोगी इस परिवर्तन को बहुत समय तक ध्यान में भी नहीं लाता।

यह बतलाना बहुत कठिन है कि आहार की वह मात्रा कितनी है जिसे रोगी पचा सकता है—यथा, किसी दुर्बल रोगी को एक सेब प्रायः लाभदायक होगा—और दो उसके वास्ते हानिकारक; एक सेब चाहे दुर्बल आमाशय पचा लेवे, पर दो उसके लिये अत्यन्त अधिक होंगे। आहार में सब प्रकार की अधिकता शरीर के वास्ते विष है। हमको यह बात कदापि नहीं भूलनी चाहिये कि प्रत्येक पदार्थ जोकि हम आमाशय में भेजते हैं उसको पचाना पड़ता है। स्वस्थ आमाशय भी एक परिमित आहार को ही पचा सकता है—उससे अधिक प्रत्येक पदार्थ उसके लिये विष है—और यदि वह बाहर निकल न जावे तो शरीर में हानिकारक वस्तु (विजातीय द्रव्य) उत्पन्न करता है—अतः खान पान का विचार चिरस्थायिनी नीरोगता की नींव है।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि हानिकारक वस्तु[1] या विजातीय द्रव्य का क्या हो जाता है? मैं इसको विजातीय द्रव्य इस कारण से कहता हूँ—क्योंकि यह शरीर से दूसरी जाति का है। शरीर इसको बाहर निकालने की चेष्टा करता है—और 'यह

१—यह वही वस्तु है जो मल के विजातीय द्रव्य या विकृत पदार्थ के नाम से बताई गई है। जिसको अंग्रेज़ी में। 'फ़ारेन मैटर' कहते हैं।

भी उन्हीं मार्गों से जोकि सृष्टि ने इस काम के लिए नियत किये हैं। यह फेफड़े से सीधा-सीधा आस-पास की वायु में श्वास द्वारा निकाला जाता है। आमाशय में से अंतड़ियां उसको बाहर ले जाती हैं; या प्रथम यह रक्त में मिलता है और फिर पसीने, व मूत्र व श्वास की वायु के साथ यह बाहर निकलता है—अर्थात् हमारे चर्म, गुर्दों व फेफड़ों के द्वारा। इस प्रकार शरीर इस बात की बहुत ही चेष्टा रखता है, कि हमारे पापों या अपराधों का कुछ बुरा प्रभाव न पड़ने पावे। परन्तु हमको उससे बहुत अधिक काम न लेना चाहिये। यदि हम शरीर को इस प्रकार से बाहर निकालने का काम अति अधिक देवें तो वह अपने कामों को पूर्ण रूप से नहीं कर सकेगा, और उस विजातीय द्रव्य को अपने भीतर ही स्थान देने लगेगा। यह द्रव्य उस हानि को, जो कि शरीर को पहुँची है सुधारने में काम नहीं देता और वास्तव में हानिकारक होता है, क्योंकि यह रक्त के संचार को रोकता है—और इस कारण पाचन शक्ति को बिगाड़ता है। यह विजातीय द्रव्य धीरे-धीरे भिन्न-भिन्न स्थानों में, विशेषतः मल निकालने वाली इन्द्रियों के समीप जिनकी ओर जाने की यह चेष्टा किया है करता है, इकट्ठा हो जाता है।

जब इसका प्रारम्भ एक बार होगया तो यह विजातीय द्रव्य, यदि आहार विहार अकस्मात् न बदल दिये जायँ—शीघ्रता के साथ इकट्ठा होने लगता है।

अब शरीर की आकृति में अन्तर पड़ने लगता है, परन्तु प्रथम यह अन्तर इस विषय के ज्ञाता ही को जान पड़ता है। इस दशा में शरीर रोगी ही है, यद्यपि इसका रोग देर में जाने वाला या गुप्त और पीड़ा रहित है। रोग इस प्रकार से धीरे २ बढ़ता रहता है कि रोगी मनुष्य उसकी ओर कुछ ध्यान भी नहीं देता, केवल कुछ अधिक काल के पश्चात् उसको अपने शरीर में एक असह्य अन्तर प्रतीत होता है। उसको अब पहिले की सी क्षुधा नहीं लगती—और पूर्वकाल के समान अब शारीरिक परिश्रम करने के अयोग्य हो जाता है। इतना अधिक लगातार मस्तिष्क का काम नहीं कर सकता इत्यादि २—उसकी दशा तब तक सह्य होती है जब तक कि विजातीय द्रव्य के निकालने वाले यंत्र अपना काम करते रहते हैं—अर्थात् उस समय तक जब तक कि, अंतड़ियाँ, गुर्दे, और फेफड़े अपना कर्तव्य करते रहते हैं और त्वचा से गरम पसीना निकलता है; परन्तु जब कभी इनके कर्तव्यों में अन्तर पड़ता है तो तुरन्त ही अपने शरीर की दशा से अप्रसन्नता होती है।

जैसा कि हम जान चुके हैं यह विजातीय द्रव्य शरीर में उन्हीं यन्त्रों के आस पास ही इकट्ठा हुआ करता है जिनसे स्वयं तरी निकलती रहती है, परन्तु अधिक दूर के भागों में विशेषतः शरीर के ऊपर के विभागों में, शीघ्रता से इकट्ठा होने लगता है। यह बात गर्दन में बहुत अच्छे प्रकार से दिखाई पड़ती है। विजातीय द्रव्य के चलने के मार्ग में यह अन्तर शीघ्र ही देखे जा सकते हैं—और उसी के साथ जब कि गर्दन मोड़ी जावे तो तनाव भी प्रतीत होता है, जिससे कि हम यह बात जान सकते हैं कि विजातीय द्रव्य ने किस ओर से अपना मार्ग ऊपर के जाने का निकाला है।

इस से पहिले कि इस विजातीय द्रव्य के इकट्ठे होने के फल का विशेष वर्णन किया जावे, मैं यह अवश्य कहूँगा कि रोग की उत्पत्ति व प्रकट होने का सब हाल उसके आरम्भ से बहुत कम अवसरों में ध्यान से देखा जा सकता है—क्योंकि अधिकतर मनुष्य, इस लोक में विजातीय द्रव्य से लदे हुए ही जन्म लेते हैं। और इस ही अवसर पर इतना और कहता हूँ, कि यही कारण है कि बहुत ही कम कोई बच्चा बाल्यावस्था के रोगों से वञ्चित हो। यह[1] सचमुच एक प्रकार की आरोग्यता प्राप्त करने का मार्ग है—जिससे की शरीर अपने आप को विजातीय द्रव्य से स्वच्छ करने की चेष्टा करता है। इसका पूर्ण वर्णन मेरे आगामी व्याख्यान में किया जावेगा।

विजातीय पदार्थ आरम्भ में अधिकतर पेड़ू में इकट्ठे हो जाते हैं अन्त में सम्पूर्ण शरीर में फैलते हैं और अवयवों को ठीक २ बढ़ने से रोकते हैं।

यद्यपि अवयव कभी २ डील-डौल में बढ़ जावें तथापि उनका बढ़ना अपूर्ण और भद्दा ही रहेगा, क्योंकि जहाँ विजातीय द्रव्य वर्तमान है वह स्थान शक्तिप्रद वस्तुओं के लिये रिक्त नहीं। इसके अतिरिक्त रक्त संचालन में भी रुकावट पड़ जाती है, इस कारण शरीर के पोषण का काम रुक जाता है और अवयव उस विजातीय द्रव्य के कारण जो इनमें इकट्ठा हो गया है—छोटे रह जाते हैं।

यह द्रव्य कुछ समय तक शांति पूर्वक बिलकुल चुपचाप या छिपा हुआ अज्ञात रह सकता है—परन्तु जब समय इसके अनुकूल मिले तो तत्क्षण अकस्मात् अपना रूप सहज में बदल भी सकता है। यह विजातीय द्रव्य मुख्यतः ऐसी-ऐसी वस्तुओं

१—बाल्यावस्था के रोगों से अभिप्राय है, जो बच्चे कि जन्म लेते ही रोगी हो जाते हैं।

का बना हुआ होता है जो घुलने के योग्य होती हैं और जिनके परिमाणु नए सिरे से आपस में मिल जाने की शक्ति रखते हैं, अर्थात् ऐसी वस्तुएँ जिनके परिमाणु अलग-अलग हो सकते हैं और पृथक्-पृथक इस प्रयोजन से होते हैं कि अनुकूल दशा में नए रूप में हो जावें; अर्थात् ऐसी वस्तुएँ जोकि सड़न ग्रहण करती हैं।

अब यह बात है कि शरीर के भीतर बहुधा यह सड़न वास्तव में होती रहती है; और यह बात सब से अधिक विचारणीय है।

सब प्रकार की ऐसी सड़नों में विजातीय द्रव्य से ऐसे छोटे-छोटे पदार्थ फूट कर निकला करते हैं जिनको कि खुर्दबीन[1] (या सूक्ष्मदर्शक) से ही देख सकते हैं। और सड़ी हुई वस्तु में एक अद्भुत प्रकार का परिवर्तन हो जाता है, अर्थात् यह वस्तु बहुत ही फैल जाती है।

सड़न से सदा गर्मी फैलती है, जितनी अधिक तीव्र सड़न होगी उतनी ही गर्मी भी अधिक होगी। यह गर्मी द्रव्य के कीटाणुओं के आपस में एक दूसरे के साथ रगड़ खाने से और शरीर के साथ रगड़ खाने से उत्पन्न होती है, और स्वयं सड़न की क्रिया से और उन परिवर्तनों से जो कि सड़े हुए द्रव्य में[2] इस के कारण से होते हैं, उत्पन्न होती है।

अनुकूल दशा में उबाल या सड़न की प्रत्येक क्रिया को फिर अपने ही मार्ग पर लौटाया जा सकता है; और ऐसी सड़न से जो परिवर्तन शरीर के रूप में हो जाया करते हैं उनमें भी ऐसा ही किया जा सकता है। यह एक ऐसी बात है जो अब तक ठीक प्रकार से कभी समझ में नहीं आई है। परन्तु इतना ही पर्याप्त है कि आपको केवल याद दिलाऊँ कि सृष्टि में बर्फ़ क्योंकर पिघल कर पानी हो जाती है और जल अधिक गर्मी और वायु से क्यों भाप हो जाता है ? और यह वाष्प वायु रूप में अदृष्ट बन कर फिर इकट्ठी होती है और बादल के स्वरूप में दिखाई देती है, और नदियों और तालों को फिर भरने के लिये वर्षा, हिम या ओला (पत्थर) हो कर गिरती है—और अधिक ठंड से फिर जम कर बरफ़ हो जाती है; और यह सब बातें केवल गर्मी सर्दी के ही घटने बढ़ने से हुई हैं। गर्मी के लगातार बढ़ने से जैसे

१—एक शीशा होता है जिसकी सहायता से अति सूक्ष्म वस्तु को देख सकते हैं जिसको खाली आँखों से नहीं देख पाते।

२—अर्थात् सड़न के कारण।

पानी के रूप में यह परिवर्तन पैदा किये और बढ़ती हुई सर्दी ने जैसे उस के विरुद्ध कर डाला, वैसे ही शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य वृद्धि को प्राप्त होते हैं और वैसे ही उस से विरुद्ध दशा फिर उनको अपनी पूर्व दशा में ले आती है और उनको शरीर से बाहर निकाल देती है।

इन छोटे-छोटे वनस्पति के शरीर धारियों को अर्थात् उन जीवों को जो कि सड़न से उत्पन्न हुए हैं—उन के ठीक-ठीक गुणों को जानना हमारे वास्ते अधिक मनोरञ्जन की वार्ता नहीं है—परन्तु इस बात का जानना आवश्यक है कि वे उस ही स्थान पर बढ़ते हैं जहाँ उनके अनुकूल जगह मिलती है अर्थात् वह स्थान जहाँ वे वस्तुएँ उपस्थित हैं जोकि सड़ जाने के लिए तैयार हैं।

जहाँ ऐसी वस्तुएँ उपस्थित हैं—वहां केवल ठीक प्रकार की ऋतु व अन्य सड़ाने वाले कारण की ही आवश्यकता है। मनुष्य के शरीर में भी ऐसा उबाल प्रथम ही कारण पर उत्पन्न हो जाता है—अर्थात् उस ही समय जब कि उस में पूर्ण द्रव्य सड़ने के लिये तैयार है। ऐसा अचानक उबाल उत्पन्न करने वाला कारण केवल ऋतु का परिवर्तन ही हुआ करता है। इसी कारण से वे रोग जो कि बहुधा सर्दी लगने या जुकाम के नाम से प्रख्यात हैं, होते हैं। ऐसा भोजन करना जोकि सड़न की विशेष योग्यता रखता हो और जो कि भोजन की पचाने वाली नाली में अधिक काल तक ठहरता हो; क्रोध, भय, अधिक घबराहट, चोट या मानसिक आघात इत्यादि भी इसके (अचानक उबाल के) कारण हैं।

मेरी परीक्षा से यह बात प्रतीत होती है कि उबाल[1] (सड़न या जोश) सदा पेंड़ू में आरंभ होता है। बहुधा यह केवल दस्त लाता है और अच्छा हो जाता है; परन्तु बहुधा, विशेषतः उस दशा में जब कि मल रुक जाता है, शरीर स्वयं शीघ्रता से अपनी सहायता करने के उद्योग में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता और उबाल (जोश) बना रहता है, मुख्यतः उन भागों में जहां कि विजातीय द्रव्य इकट्ठा होगया है।

उसकी दशा वैसी ही होती है जैसी कि आगे के पृष्ठ में बोतल की दिखाई गई है। उसकी पेंदी या तली में कोई मार्ग निकलने का नहीं है, इस लिए उबलता हुआ द्रव्य ऊपर को मुँह की ओर चलता है। अतः इसके प्रभाव हमको पहिले शरीर के ऊपरी भाग में मिलते हैं—हमको दर्द मालूम होने लगता है। इस उबाल से गर्मी उत्पन्न होती

१—विजातीय द्रव्य के जोश में आने से मतलब है।

है, और रुधिर में गर्मी बढ़ जाने का हमको शीघ्र ही ज्ञान हो जाता है। यही वह वस्तु है जिसको हम ज्वर (बुख़ार या फ़ीवर Fever) कहते हैं; इस कारण से ज्वर केवल तब ही हो सकता है जब कि विजातीय द्रव्य मौजूद हो और उसके बाहर निकलने के मार्ग रुक गये हों अर्थात्—(१) जब कि पाखाना ठीक-ठीक न होता हो (२) जब कि मूत्र में न्यूनता होती हो (३) जब कि रोमकूप रुक गए हों (४) जब कि श्वास दुर्बलता से लिया जाता हो।

इन सब बातों से हमको एक अति साधारण कारण ज्वर का मिलता है जिसका सत्य होना वर्षों की परीक्षाओं और अनुसन्धानों ने सिद्ध कर दिया है। शरीर के भीतरी उबाल का होना ही ज्वर है। अब इस उबाल के कर्तव्यों का, जोकि मनुष्य के शरीर से पृथक् देखने में आते हैं, एक स्वरूप ठीक-ठीक बना कर हम ज्वर के लक्षणों को पूर्ण प्रकार से समझा सकते हैं। जैसे यदि नई खिंची हुई मदिरा की एक बोतल कुछ दिनों तक रख दी जावे तो उसके अंदर एक प्रकार का परिवर्तन दिखाई देवेगा, जिसको बहुधा उबलना, सड़ना या उठना कहते हैं। उबाल के लक्षणों के विषय में हम इतना जानते हैं कि यह किसी वस्तु के परिमाणुओं के पृथक्-पृथक् होजाने की क्रिया का नाम है—अर्थात् एक प्रकार की सड़न जिसमें कि (जैसा वर्णन कर चुके हैं) छोटे-छोटे वानस्पतिक शरीर जिनको अँग्रेज़ी भाषा में बेसिलाई (Bacili) कहते हैं उत्पन्न हो जाते हैं—परन्तु यह बात स्मरण रखने की है कि बेसिलाई (जैसा कि बहुधा मान लेते हैं) केवल बाहर से ही आकर उबलते हुए द्रव्य में मिलकर नहीं बढ़ती और फैलती हैं—वरन वे द्रव्य के रूप बदल जाने से भी उसमें उत्पन्न होती हैं, मानो वह स्वयं ही उस द्रव्य का एक दूसरा (बदला हुआ) रूप है या उबाल से उत्पन्न हुई वस्तु हैं। सड़न की क्रिया से या वस्तु के परिमाणु के अलग-अलग होने की क्रिया से मुख्य द्रव्य रूप में बदल जाता है। इसी प्रकार से जीवन रखने वाले शरीर खान-पान की वस्तुओं से उस समय पैदा होते हैं जब कि पाचन क्रिया के उबाल के कारण से उन वस्तुओं का रूप बदल जाता है अर्थात् पाचन के जोश की क्रिया से जो भोजन के परिमाणु अलग-अलग होते हैं उनसे ही इनकी जड़[1] उत्पन्न होती हैं।
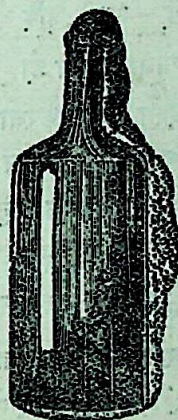
१—अर्थात् जीवन रखने वाले शरीर की जड़ जिनका वर्णन ऊपर आया है—भोजन ही के परिमाणु से होता है।

इस प्रकार हम स्वयं इस परिणाम को पहुँचते हैं कि एक नियत दशा में बारम्बार लगातार परिवर्तन का नाम ही जीवन[1] है, और यह बात कि विना उन क्रियाओं के जिनको कि मैं सड़न या उबाल के नाम से पुकारता हूँ—यह जीवन विचार में भी कभी नहीं आ सकता।

उबाल या सड़न की बाहरी-हालतों में निम्न-लिखित बातें हुआ करती हैं, अर्थात् प्रथम जोश खाता हुआ पदार्थ द्रव्य वस्तु से अलग होकर बोतल की पेंदी में बैठ जाता है—अब यदि बोतल को हिला दिया जावे या उसकी ऊष्णता में कोई परिवर्तन या न्यूनाधिकता हो जावे, तो नीचे बैठा हुआ द्रव्य चलने लगता है, और फैलने की सी दशा प्रकट करता है। फैलने की हालत में यह ऊपर को चलता है और यह ऊपर को चलना सदैव उस जोश खाये हुए पदार्थ (जो पेंदी में जमा है) की इयत्ता (मिक़दार) और गर्मी के अनुसार होता है।

उबाल के कारण को हमें और अधिक ध्यान से देखना चाहिये। यह सर्व साधारण को विदित है, कि यव (जौ) की शराब अथवा अंगूरी मदिरा बोतलों में बन्द करके तहख़ाने में इस अभिप्राय से रख देते हैं कि जहाँ तक हो सके उनमें उबाल व ख़मीर न उठने पावे। तहख़ाने का तापक्रम ग्रीष्म व शरद ऋतु दोनों में एकसा रहता है। गर्मी में कोई अन्तर अकस्मात् नहीं पड़ता। अतः यहाँ पर तीव्र रूप से जोश उत्पन्न करने वाले मुख्य कारण की कमी है। इसी प्रकार मनुष्य के शरीर में ग्रीष्म ऋतु में उबाल या ख़मीर अधिक शीघ्रता से उठता है।

हमको विदित है कि दक्षिण[2] में ऊष्ण कटिबन्ध में सदैव नाना प्रकार के एक्यूट[3] (Acute) ज्वर होते रहते हैं और इसके विरूद्ध यूरोप के ठंडे जलवायु

१—अर्थात् प्रत्येक वस्तु में जीव उसी ही बारंबार परिवर्तन से पड़ता है जो कि उसमें उबाल व सड़न के हो जाने से उत्पन्न होता है—जैसे गन्ने के रस को धूप में रख कर उसमें उष्णता से सड़न उत्पन्न करके जब उसका सिरका बनाते हैं तो आप देख सकते हैं कि उसमें कीड़े किस प्रकार उत्पन्न हो जाते हैं। संसार में यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो प्रत्येक जीवधारी के उत्पन्न होने की यही दशा है।

२—जरमन देश के दक्षिण भाग से अभिप्राय है।

३—एक्यूट बीमरियां वह हैं जो ज्यादा तेज़ी से होकर जल्दी ही शांत हो सकती हैं या रोगी को जल्दी ही शांत कर देती हैं।

में क्रानिक[1] (Chronic) रोग फैले हुए पाये जाते हैं—ऊष्णदेशों के जलवायु अधिक शीघ्रता से गर्मी में अधिक अन्तर पड़ने से विशेषतः ऐसा होता है—वहाँ दिन में थरमामीटर (ताप-मापक यन्त्र) का पारा १०० एक सौ अंश पर होता है, और रात्रि को ४० पर, जब कि उत्तर[2] के देशों में रात का अन्तर २२ अंश फेरनहाइट[3] से बहुत कम बढ़ता है और सामान्यतः इससे कम होता है। उस देश में ज्वर बहुधा बसन्त ऋतु में होते हैं—कारण यही है कि उस समय वहां गर्मी का अन्तर[4] अधिक होता है और बहुधा मनुष्यों को इसमें आश्चर्य प्रतीत होगा कि एक्यूट (तीव्र[5]) रोग अर्थात् बच्चों के प्रसिद्ध रोग विशेषतः बच्चों ही को क्यों हुआ करते हैं—और वृद्धावस्था में मुख्यतः क्रानिक (शिथिल) रोग ही होते हैं। इस दशा में उपरोक्त गर्मी के परिवर्तन को बच्चे की शारीरिक महान् शक्ति से सहायता पहुँचती है—जो शक्ति इतनी बढ़ी हुई होती है कि उसको किसी बाहरी गति देने वाले कारण की बहुत ही कम या कुछ भी आवश्यकता नहीं होती जोकि बच्चे के शरीर को अरोग्यता प्राप्त करने के निमित्त अधिक उद्योग करने को उतारू हो, अर्थात् तीव्र रोग के द्वारा विजातीय द्रव्य के निकालने का प्रयत्न करे।

वही दशा जो बोतल में उत्पन्न होती है, मनुष्य के शरीर में भी दिखाई पड़ती है इसमें भी उबलता या सड़ता हुआ द्रव्य शरीर के नीचे के भाग में इकट्ठा होता है—और फिर उसको ऋतु के बदलाव, बाहर के आघात, या मस्तिष्क के प्रमाद के कारण

१— क्रानिक बीमारियां वे हैं जो मन्द-मन्द होती हैं और बहुत दिनों तक रहती हैं।

२— जरमन देश से उत्तरी भाग से अभिप्राय है।

३— गर्मी नापने का एक प्रकार का यन्त्र है—फेरनहाइट जरमन में एक विद्वान पुरुष का नाम है जो कि सत्रहवीं वा अठारहवीं शताब्दी में हुवा है, जिसने यह यंत्र निकाला था। अतः उसके ही नाम से यह यंत्र बोला जाता है।

४— रात दिन कि गर्मी के अन्तर से अभिप्राय है।

५— डाक्टरी में रोग के शीघ्र व देर में उत्पन्न होने के कारण से उसके दो विभाग किये हैं—अङ्गरेज़ी में एक को 'एक्यूट' दूसरी को 'क्रानिक' कहते हैं, एक्यूट को तीव्र के नाम से और क्रानिक को शिथिल के नाम से ऊपर पुकारा है—एक्यूट या तीव्र उस रोग को कहते हैं जो तेज़ी से होता है और जिसमें शीघ्रमिटने की योग्यता होती है—जैसे ज्वर इत्यादि—और इसके विपरीत क्रानिक या शिथिल जो धीरे-धीरे चुपचाप उत्पन्न होता है।

चलने की शक्ति मिल जाती है। इस समय पर भी उसकी प्रकट गति ऊपर की ओर होती है। उवाल खाते हुए द्रव्य फैलने की चेष्टा करते हैं और शरीर को ढकने वाली त्वचा पर[1] दवाव डालते हैं। जब तक त्वचा इसके निकलने को रोकती रहती है तब तक (त्वचा से) इस दवाव को रुकावट मिलती है, इससे रगड़ उत्पन्न होती है और गर्मी बढ़ जाती है–ज्वर की गर्मी की जिसको सब जानते हैं यही व्याख्या है।

उसी प्रकार से यह बात वर्णन करनी सहज है कि ज्वर से पीड़ित मनुष्य के शरीर का घेरा साधारण शरीर से अधिक होता है। खींचने से बढ़ जाने की योग्यता के कारण शरीर की खाल फैलते हुए द्रव्य के दवाव को ग्रहण करती है—और जितना दवाव[2] अधिक होता है उतना ही खाल का तनाव भी अधिक होजाता है। जब कि खाल का तनाव उस अन्तिम सीमा को पहुँच गया जिस से अधिक नहीं हो सकता तब ज्वर अन्तिम सीमा को पहुँच गया है, और अब अधिक भय का समय है–क्योंकि उवाल खाते हुए द्रव्य के टुकड़ों में फैलने की चेष्टा अभी और है, और वे वाहर नहीं जा सकते तो अपने लिये भीतर ही स्थान कर लेते हैं। यह कह सकते हैं कि शरीर भीतर से जलता है और मृत्यु अवश्य हो जायगी यदि त्वचा ऐसी बनी रहे जिसमें से द्रव्य वाहर न निकल सके। और यदि हम वाहर निकलने के मार्गों (त्वचा के छिद्रों–या कूपों) को खोलने में सफल होवें तो भय दूर हो जाता है—क्योंकि उस समय उवाल खाते हुए द्रव्यों को वाहर निकलने का मार्ग मिल जाता है और विजातीय द्रव्य शरीर से पसीने के रूप में निकल जाता है। शरीर के भीतर अब चैन पड़ जाता है—गर्मी और त्वचा का तनाव उसी समय मिट जाता है। इस वात के दिखलाने के लिये किन्हीं शब्दों की आवश्यकता नहीं हैं कि उवाल खाते हुए द्रव्य से भरे हुए मनुष्य के शरीर और ऐसे ही द्रव्य से भरी हुई बोतल में सब प्रकार से समानता नहीं है। बोतल में उवाल को स्वतन्त्रता है, द्रव्य सब ओर को विना रुकावट के फैल सकता है जब तक चारों ओर की दीवारों तक न पहुँचे। मनुष्य के शरीर में उसको रुकावट प्रत्येक स्थान पर मिलती है। प्रत्येक अवयव इसको आगे वढने से रोकता है। रोकने वाले अवयव पर तब यह दबाव डालता है, उसको धक्का देता है और उस पर रगड़ करता है। इस प्रकार से उसके भीतर गर्मी उत्पन्न करता है और यदि उसके वाहर निकलने को कोई मार्ग न खोल दिया जाय या उसके फैलने का मार्ग न बदल दिया जाय तो उस अवयव को

१—अर्थात् भीतर से त्वचा पर फैलने को ज़ोर करता है।

२—अर्थात्—भीतर की ओर से दवाव अधिक-अधिक होता है।

नाश भी कर देता है; और जिस स्थान पर द्रव्य का प्रभाव विशेष रूप से पड़ता है उसी के नाम से (उसके) रोग को पुकारते हैं—पुराना यकृत का रोग व हृदय का रोग इत्यादि। परन्तु प्रत्येक मनुष्य के लिये उस द्रव्य संचित स्थान का होना उस मार्ग के अनुकूल होता है जिस पर कि द्रव्य फैलता हुआ चला है, और इस मार्ग का विचार, विजातीय द्रव्य के एकत्रित होने के ढङ्ग और स्थान पर हुआ करता है।

अतः आगे चलकर मेरा यह कर्तव्य होगा कि आप लोगों को दिखलाऊँ कि रुकी हुई त्वचा किस प्रकार से खोली जा सकती है। परन्तु प्रथम मैं एक दूसरे चिह्न का वर्णन करूँगा। गर्मी जान पड़ने से पहिले हम कई दिन, सप्ताह या महीनों तक एक चिह्न (जो कि बाहर से उपरोक्त चिह्न के सर्वथा विरुद्ध है) देखते हैं अर्थात् एक प्रकार की सर्दी जान पड़ती है। इसका कारण अति ही स्पष्ट है। यह तब ही उत्पन्न होती है जब कि विजातीय द्रव्य इतना अधिक इकट्ठा हो गया है कि रक्त शरीर के अन्तिम सिरों में ठीक प्रकार से फिर नहीं सकता है, वरन् यों कह सकते हैं कि भीतर के भागों में और भी अधिक दबकर इकट्ठा हो जाता है, अतः वहां अधिक गर्मी उत्पन्न हो जाती है।

द्रव्य उस समय तक (इसमें रोगी के अनुकूल भिन्न-भिन्न समय लगता है) इकट्ठा होता रहता है जब तक उन कारणों में से जिन का वर्णन हो चुका है कोई कारण—जैसे ऋतु का परिवर्तन, वाह्य आघात या मानसिक व्यथा न हो, और इस प्रकार से उसमें उबाल व सड़न न उत्पन्न करदे। यह एकत्रित द्रव्य रुधिर के फिरने और शक्ति के पहुँचाने[1] में बाधा डालता है—रुधिर चलने की नसें या नालियाँ, विशेषतः बारीक नसें, बादीपन से कुछ-कुछ रुक जाती हैं, इसलिये रुधिर त्वचा की बाहर की ओर तक नहीं जा सकता। हाथ पाँव ठण्डे होने और सब शरीर में सर्दी या फुरहरी प्रतीत होने का यही कारण है। अतः शीत की कँपकपी ज्वर के आने की सूचक है, और यदि हम इस पर ध्यान न देवें तो हम बहुत बड़ी भूल करेंगे, यदि ठीक-ठीक चिकित्सा तुरन्त की जाये तो ज्वर पूर्ण रूप से उत्पन्न नहीं होवेगा—मानो उसकी जड़ ही काट दी गई।

इससे पहिले जब मैं उबाल व सड़न के गुण वर्णन कर रहा था तो मैंने यह बात कही थी कि सब प्रकार की सड़नों में वानस्पतिक कीटाणु जिनको बेसिलाई (Bacili)

१—अर्थात्–भोजन से शक्ति पहुँचाने की विधि में।

कहते हैं स्वयं अचानक उत्पन्न होजाते हैं, में भी यही दशा होती है—अतः वेसिलाइस (वनस्पति के सूक्ष्म शरीर) की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जिस प्रश्न पर कि अधिक तर्क उठ चुका है उस का उत्तर सहज में ही मिल जाता है। ज्योंही उस द्रव्य में जो कि पेड़ू में इकट्ठा होगया है उबाल होना आरम्भ होता है वेसिलाइ (Bacili) अपने आप शरीर में उत्पन्न हो जाती है। उबाल व सड़न से उसकी उत्पत्ति है और जब उबाल व सड़न बन्द हो जाते हैं और शरीर निरोग हो जाता है तब वे उस ही प्रकार स्वयं नष्ट भी होजाते हैं—अर्थात् उसी समय जब कि उबाल की दशा नीचे को होने लगती है। अतः यह कथन कि शरीर में बिना विजातीय द्रव्य के उपस्थित हुए, वेसिलाई के द्वारा किसी गुप्त रीति से रोग उड़कर लगता है व्यर्थ है। प्रश्न यह नहीं है कि वेसिलाई को क्योंकर नष्ट करें—वरन् प्रश्न यह है कि—उबाल या सड़न के कारण को अर्थात् विजातीय द्रव्य (फ़ारेन मैटर) को क्योंकर दूर करें? ऐसा[1] कर देने पर ये छोटे देव जिन्होंने बहुत से कायरों को भयभीत कर दिया है अवश्य दूर हो जाते हैं। आगे चलकर मैं और अधिक विवरण के साथ छूत के भयों का वर्णन करूंगा।

कुछ साधारण उदाहरण मेरे कथन को भली भाँति सिद्ध कर देंगे। एक कमरे को जिसमें प्रतिदिन अधिक कूड़ा इकट्ठा होने पर झाड़ू भी न लगी हो और जो स्वच्छ न किया गया हो, आप लोग अपने विचार में लावें। बहुत ही शीघ्र सब प्रकार के कीड़े मकोड़े उस कमरे में हो जावेंगे और उस कमरे के रहने वालों को इतने दुःखदाई हो जावेंगे कि सब प्रकार से उनके नष्ट करने का उपाय किया जायगा। अब यदि हम प्राचीन रीति से विष द्वारा इनके दूर करने का यत्न करें तो निस्सन्देह हम बहुत से कीड़े-मकोड़ों को मार तो डालेंगे, परन्तु सदैव के लिये उस दशा को नहीं बदल देंगे—क्योंकि कूड़ा करकट स्वयं उन कीड़े-मकोड़ों का वास्तव में उत्पन्न करने वाला व वृद्धि करने वाला है, और वह लगातार इनके नये-नये झुंड के झुंड उत्पन्न कर देगा। हमको सर्वथा इसके विरुद्ध फल प्राप्त होगा यदि हम तुरन्त उस कमरे से सब कूड़ा करकट निकाल देवें; और इस क्रिया के करते रहने से हम कीड़े-मकोड़ों को उनके अनुकूल भूमि से वञ्चित कर देवेंगे और उनसे सदा के लिये छुटकारा पावेंगे।

१—विजातीय द्रव्य के दूर कर देने पर।

एक दूसरा उदाहरण और देते हैं—किसी जंगल के दलदली किनारे और ग्रीष्म ऋतु का ध्यान कीजिये। आप सब जानते हैं कि मच्छर ऐसे स्थान में कैसे दुखःदाई होते हैं। आप सब सज्जनों को यह स्पष्ट होगा। उनके नष्ट करने के लिये विष का प्रयोग कुछ लाभदायक न होगा। यह सत्य है कि लाखों तो मर जावेंगे परन्तु करोड़ों उस दलदल से निकलते रहेंगे। दलदल स्वयं इन छोटे-छोटे दुष्ट जीवों की जन्म भूमि है। अतः प्रथम उस दलदल को दूर करना उचित है और फिर मच्छरों को दूर करना। हम इस बात को जानते हैं कि ऊँचे सूखे स्थानों में मच्छर बहुत कठिनता से ज़िन्दा रह सकता है। यदि कोई मनुष्य बहुत से मच्छरों को इकट्ठा करे और ऐसे (ऊँचे) सूखे पहाड़ पर उनको वहीं रखने के लिये ले जावे तो वह बहुत शीघ्र ही यह बात देखेगा कि ये सब छोटे-छोटे जीव जो (इतने बड़े परिश्रम से वहाँ पहुँचाये गये थे) अपने मुख्य दलदली स्थानों को उड़े जाते हैं। सूखा ऊँचा पहाड़ उनके लिये अनुकूल स्थान नहीं हैं।

तीसरे उदाहरण से यह बात और भी स्पष्ट हो जावेगी। आप सब इस बात को जानते हैं कि अति गर्म देशों में (जहाँ गर्मी अधिक होने से शरद व साधारण गर्म देशों की अपेक्षा नाना प्रकार के अन्य बड़े-बड़े जीव पाये जाते हैं) नेचर (सृष्टि) अति आवश्यक और संख्या में अधिक मांसाहारी और मृतक-भक्षक जीव उत्पन्न करती हैं। उनके नष्ट करने का कितना ही प्रयत्न क्यों न किया जाय नई पौद उनका स्थान लेने के लिये जो कि नष्ट कर दिये गये हैं फिर उत्पन्न हो जावेगी। निदान आप लोग देखते हैं कि ऐसे[1] जीव उसी स्थान में अधिक हो जाते हैं जहां कि अधिक जीव उत्पन्न होने के कारण सड़न भी अधिक होती है। यदि कोई उपाय समीप ही में उपस्थित न होता तो मरे हुए जानवर तुरन्त अपनी सड़न से वायु को विषैली और जीवित जीवों के काम में न आने के योग्य बना देते, अब यह बात स्पष्ट हो गई बड़े-बड़े जीव जो मांस और मुर्दों को खाकर जीते हैं, वे किस कारण से अधिक गर्म देशों के रहने वाले हैं ? और पृथ्वी के अन्तिम उत्तरीय सिरे पर नहीं रहते—जहां कि शरद देश का हरिण भी, जो कि घास पात तथा काई या सिवार (एक प्रकार की घास) पर जीवन व्यतीत करता है, कठिनाई से जी सकता है।

यदि हम इन अपरिमित गर्म देशों के मांसाहारी व मृतक-भक्षक जीवों को नष्ट करना चाहें तो हम केवल उसी दशा में सफलता प्राप्त करेंगे जब कि उनके जीने

१—अर्थात् मांसाहारी, तथा मृतक-भक्षक या मुर्दाखोर।

५

की आवश्यक बातों को दूर कर देवें अर्थात् उन दूसरे जीवों के समूहों को जोकि वहां रहते हैं। हिंसक जीव तब उस स्थान से स्वयं अदृष्ट हो जावेंगे—अन्य सब रीतियाँ निष्फल होंगी। परन्तु जीव जितने कि छोटे होते हैं उतना ही उनका नष्ट करना कठिन हो जाता है—और इस बात का पक्का उदाहरण बेसिलाई (Bacili) में पाया जाता है। औषधियों का प्रयोग उनको विष देकर नष्ट करने के लिये लाभदायक नहीं होता। उनके शरीर के जीवित रहने के कारण को ही दूर करके अर्थात् शरीर से सब विजातीय द्रव्य को निकाल देने से ही हम उनको समाप्त कर सकते हैं।

इन उदाहरणों से मैंने आपको दिखलाया है कि नेचर (सृष्टि) किस प्रकार से बड़े मार्ग पर चलती है और उसका बर्तावा छोटी-छोटी बातों में भी ठीक उस ही प्रकार से होता है, क्योंकि उसके सब नियम एकसे होते हैं। और रोग के विषय को भी वह अपने नियम से अलग नहीं रखती है। जैसे कि कीड़े-मकोड़े, मच्छर, मांसाहारी तथा मृतक-भक्षक जीव ठीक-ठीक उन्हीं स्थानों में उत्पन्न होते, जीते और बढ़ते हैं जहां कि उनको उनके अनुकूल बातें मिलती हैं। ऐसे ही ज्वर भी बिना ऐसी[1] बातों के स्थित नहीं रह सकता अर्थात् यह हो ही नहीं सकता जब तक कि शरीर में विजातीय द्रव्य का भार न हो। जैसा कि हम जान चुके हैं, उबाल व सड़न केवल उस ही स्थान में किसी कारण से उत्पन्न हो सकती हैं जहां कि ऐसा द्रव्य स्थित है; इस उबाल तथा सड़न क्रिया को हम ज्वर कहते हैं।

अब जब कि एक बार हमको यह बात ज्ञात हो गई कि ज्वर क्या है? तो उस के लिये कोई चिकित्सा ढूंढनी कठिन बात नहीं है। त्वचा के रन्ध्र जो बन्द हो गये हैं और जिन पर उबाल खाते हुए द्रव्य के टुकड़े (परिमाणु) दबाव डालते हैं खोल—देने चाहिये और वह बात शरीर को केवल पसीना लाने से हो सकती है।

जिस समय पसीना फूट कर निकलने लगता है सड़े हुए द्रव्य के टुकड़ों (परिमाणुओं) को बाहर आने का मार्ग मिल जाता है और त्वचा का तनाव और ज्वर की गर्मी दोनों कम हो जाती हैं।

परन्तु पसीना निकलने के साथ रोग का कारण दूर नहीं हो जाता हैं, क्योंकि किसी एक रोग की दशा में उबाल केवल विजातीय द्रव्य के एक भाग में (उस सब में से जो कि शरीर में इकट्ठा हुआ है) होता है। शेष भाग जोकि चुपचाप पड़ा है उसमें सदा

१—अर्थात् अपनी उत्पत्ति के लिये अनुकूल दशा प्राप्त होने के बिना।

नया-नया विजातीय द्रव्य जुड़ने के कारण वह बढ़ता रहता है और ज्वर के लिये सदा के वास्ते एक स्रोत बन जाता है जो फिर नये सिरे से फूट कर निकलने के लिये अनुकूल समय की बाट देखता रहता है। अतः हमारी अभिलाषा यह होनी चाहिये कि इस द्रव्य को जो चुपचाप दशा में पड़ा है बाहर निकालें। इस प्रयोजन के लिये मैंने फ्रिकशन हिप बाथ[1] (Friction hip bath) और फ्रिकशन सिट्ज़ बाथ[2] (Friction sitz bath) निकाले हैं जिनको मैं आगे बतलाऊँगा, इनकी सहायता से शरीर विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने की चेष्टा करता है।

उसी के साथ प्रत्येक ऐसी वस्तु से अलग रहना भी उचित है जो शरीर के काम में बाधा डालने वाली होती हैं। रोगी को पूर्ण रूप से आराम मिलना चाहिये, जैसे—उसको किसी प्रकार की उत्तेजना नहीं होनी चाहिये, पढ़वाकर सुनाना या बातें करना, यहां तक कि गलियों में आने-जाने के शोर व गुल भी हानिकारक हैं। कमरे में कुछ-कुछ अँधेरा भी रखना चाहिये। परन्तु उसमें नई वायु का संचार अवश्य होता रहना चाहिये।

जब तक विजातीय द्रव्य पूर्ण रीति से निकल नहीं जाता है तब तक ज्वर का कारण दूर नहीं होता—और न रोग ही मिटता है।

जो कुछ हम ऊपर कह आये हैं उसे सूक्ष्म रूप से फिर विचार करने दीजिये जिससे कुछ आवश्यक अन्तिम परिणाम निकाले जा सकें—

सब रोगियों की दशा में शरीर के स्वरूप में अन्तर दीख पड़ता है। यह स्वरुपान्तर विजातीय द्रव्य के कारण होता है। शरीर में ऐसे विजातीय द्रव्य की स्थिति का नाम रोग है। यह द्रव्य उन परिमाणुओं से मिल कर बनता है जिनकी शरीर को कुछ आवश्यकता नहीं है-और जो शरीर के भीतर पाचन शक्ति के बिगड़ जाने से रह जाते हैं। विजातीय द्रव्य प्रथम उन अवयवों के समीप इकट्ठा होता है जिनका[2] कर्तव्य शरीर के रस को अलग करने या उत्पन्न करने का होता है - परन्तु शनैः-शनैः (विशेषतः उस समय जब तक कि उसमें उबाल उत्पन्न हो जाता है) सारे शरीर में फैल जाता है। जब तक कि शरीर के रस को अलग या उत्पन्न करने वाले अवयव

१—ये दो प्रकार के स्नान हैं जिनका विस्तार पूर्वक वर्णन आगे चल कर 'चिकित्सा विधि' के अध्याय में हुवा है।

२—ये अवयव यकृत, (जिगर) अन्तड़ियां, त्वचा फेफड़ा व गुर्दे हैं।

विजातीय द्रव्य के एक भाग को निकालते रहते हैं। उस समय तक शरीर की दशा सहने के योग्य रहती है—परन्तु जब कभी उनकी शक्ति कम हो जाती तब है बड़ी खराबियां पैदा हो जाती हैं। विजातीय द्रव्य के इकट्ठे होने की क्रिया दुःखप्रद नहीं होती है—मानो यह एक गुप्त और धीरे-धीरे होने वाला कार्य अज्ञात दशा में बहुत काल तक होता रहता है।

इस प्रकार विजातीय द्रव्य के इकट्ठे होने से जो रोग उत्पन्न होजाते हैं उनको हम गुप्त रोगों व विना दर्द के पैदा हुवे रोगों के नाम से पुकार सकते हैं। ये वास्तव में वे ही रोग हैं जोकि बहुधा शिथिल व देर तक रहने वाले अर्थात् क्रानिक (Chronic) कहलाते हैं।

विजातीय द्रव्य में सड़ जाने की योग्यता होती है। उबाल का भी मुख्य कारण यही द्रव्य है और यही द्रव्य वह स्थान बनाता है जिस पर वेसिलाई की वृद्धि होती है। उबाल पेड़ू से आरम्भ होता है जहाँ कि सब से अधिक विजातीय द्रव्य उपस्थित रहता है, परन्तु शीघ्रता से ऊपर को फैल जाता[1] है। रोगी की दशा में अन्तर पड़ जाता है—पीड़ा प्रतीत होने लगती है और ज्वर आने लगता है। रोग के इन स्वरूपों को हम दुःखदायी रोग व दाह उत्पन्न करने वाले रोग कहेंगे। ये वही हैं जिनको एक्यूट (Acute) अर्थात् तीव्र रोग कहते हैं।

उपरोक्त व्याख्या से अब हम को यह परिणाम निकलना चाहिये कि रोग का कारण केवल एक ही है और रोग भी केवल एक ही है—जोकि अपने आप को भिन्न भिन्न स्वरूपों में प्रकट करता है। अतः सत्य बात तो यह है कि हमको भिन्न-भिन्न रोगों में भेद न करना चाहिये—वरन् केवल रोगों के भिन्न-भिन्न स्वरूपों में भेद करना उचित है। यहाँ यह भी कह देना उचित है कि बाहर की चोटें जोकि उपरोक्त अर्थ से वास्तव में रोग नहीं हैं इनमें सम्मिलित नहीं हैं—उनका वर्णन मैं विस्तार पूर्वक आगे करूंगा जब कि जख़्मों (घावों) की चिकित्सा का वर्णन किया जायगा।

अतः यह रोगों की एकता का सिद्धान्त है जिसको कि मैं बताता हूँ और उपरोक्त विवरण और अर्थ तथा उदाहरणों से (जिसकी) पुष्टि करता हूँ।

१—अर्थात् विजातीय द्रव्यका उबाल पेड़ू से आरम्भ होकर ऊपर की ओर शीघ्रता से फैल जाता है।

अब मैंने वह मार्ग दिखला दिया है जिस मार्ग से मैं इस विश्वास पर (और बड़े साहस के विश्वास पर जैसा कि बहुत से लोग मानेंगे) पहुँचा हूँ कि रोग केवल एक ही है।

विचार करने व उस से फल निकालने के द्वारा हम एक ऐसी वार्ता पर आगये हैं जोकि रोगियों की चिकित्सा के निमित्त एक आवश्यक वस्तु है; परन्तु क्या मैं इसकी सत्यता को असली बातों से सिद्ध करने के योग्य हूँ ?

वर्तमान साइंस (Science) विद्या में एक ही प्रकार का प्रमाण है जिसको और सब प्रमाणों से अधिक मानते हैं, और केवल उसको ही विश्वसनीय समझते हैं—और उसको परीक्षा द्वारा सिद्ध होने वाला या प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। इस वर्तमान विवाद में परीक्षा केवल इस ही रीति से की जा सकती है कि सब प्रकार के रोगों की चिकित्सा एक ही रीति पर करें; यदि हमारा कथन सत्य है तो चिकित्सा में बराबर सफलता प्राप्त होगी। इस प्रकार का प्रमाण मैं दे चुका हूँ और दे रहा हूँ। इस पुस्तक के अन्त में जो रिपोर्ट छपी है उनमें आपको इन परीक्षा-फलों का संक्षिप्त वृत्तान्त मिलेगा।

इस समय ऐसे समाज में निस्सन्देह यह असम्भव है कि आप के सम्मुख सब रोगियों को परामर्श दिया जावे। और उनकी चिकित्सा की जावे, और उनकी दशा में, उनके स्वरूप में, उनकी योग्यता में जो-जो अन्तर पड़ें वे दिखलाये जावें; या स्वास्थ्य में जो वृद्धि उन्होंने की हो उसकी उनसे रिपोर्ट प्राप्त की जावे। इस अवसर पर मैं निम्नलिखित व्याख्यनों से केवल इतना ही कर सकता हूँ कि आपका ध्यान रोग के उन डरावने और प्रायः दृष्टि में आने वाले स्वरूपों की ओर लाऊँ—जिनसे कि मनुष्य बहुत परिचित हैं, और उनके कारण का विस्तार-पूर्वक वर्णन करूँ और उस मार्ग को भी दिखलाऊँ जिस पर चल कर स्वास्थ्य प्राप्त हुआ है। साथ ही साथ जहाँ तक हो सके अपनी की हुई चिकित्सा से उदाहरण भी देता जाऊँ, जिससे यह आपको स्पष्ट ज्ञात हो जावे, क्योंकि प्रत्येक अलग-अलग रोग का सम्बन्ध एक ही कारण से मिलाया जा सकता है।

मैं अपने दूसरे व्याख्यान में उन रोगों का वर्णन करूँगा जो साधारणतया 'बच्चों के रोग' के नाम से पुकारे गये हैं।

बच्चों के रोगों के लक्षण, उत्पत्ति,

प्रयोजन, उनका उपाय और उनका एक होना

खसरा (मीज़िल्स Measles) सुर्ख़ बुख़ार या रक्त ज्वर (स्कार लेट फ़ीवर Scarlet Fever) डिफ़थेरिया[1] (Diphtheria) चेचक, शीतला या माता (स्माल पाक्स Small Pox) कूकर खाँसी या काली खाँसी या डब्बा की खाँसी (हूपिंग कफ़ Whooping cough) ख़ुनाज़ीर या कंठमाला (स्क्रो फ्युला Scrofula)

---:o:---

विजातीय द्रव्य के शरीर में उपस्थित होने का नाम रोग है। यही मुख्य परिणाम उन बातों से हमने प्राप्त किया था जो कि पूर्व के व्याख्यान में आप लोगों को बतलाई गई थीं। विजातीय द्रव्य या तो जन्म के समय से ही शरीर में उपस्थित रहता है या बाद को हानिकारक वस्तुओं के भीतर पहुँचने से (शरीर में) प्रवेश करता है। इस द्रव्य को शरीर अंतड़ियों, फेफड़ों, गुर्दों तथा त्वचा के द्वारा बाहर निकालने का उद्योग करता है, और जब इस कार्य्य में अशक्त होजाता है तो जहाँ कहीं हो सकता है इसको एकत्रित होने देता है। इस रीति से शरीर का रूप बदल जाता है जो कि शरीर के सब से ऊपरी भागों अर्थात् गर्दन व मुख पर साफ़-साफ़ दिखाई देता है।

१—यह शब्द यूनानी भाषा का है—और शब्दार्थ झिल्ली है। यह एक छूत का तीव्र फैलने वाला रोग है जिसमें कि हवा की नालियों में और विशेषतयः कंठ में एक झिल्ली की तह, सूजे हुए स्थान से एक प्रकार का मवाद निकल कर जम जाने से उत्पन्न हो जाती है। इस रोगों में दुर्बलता अधिक होजाती है और बहुधा और-और रोग मिल कर कठिनता होजाती है; जैसे शीतांग या अर्धांग शून्य होजाता है। यह रोग बच्चों को अधिक होता है। और झिल्ली से हवा की नालियां रुक जाने के कारण दम घुट कर मृत्यु होजाती है।

इसकी व्याख्या के निमित्त प्रथम उस उबलते हुए द्रव्य की बोतल का, जिसका वर्णन पहिले हो चुका है और जिसका चित्र दूसरे पृष्ठ पर बना है उदाहरण लीजिये। उस समय तक जब तक कि बोतल का मुख खुला है उबलते हुए द्रव्य के लिए बाहर निकलने का मार्ग भी खुला है। परन्तु मानलो कि कोई फैलने वाली (रबड़की) खाली टोपी उस बोतल के मुंह पर ऐसी बाँध दीजावे कि भीतर की हवा बाहर न निकल सके—तो जितने-जितने अधिक स्थान की उस उबलते हुए द्रव्य को आवश्यकता होती जायगी उतना ही अधिक-अधिक वह रबड़ जो पहिले सुकड़ी हुई थी तनी हुई होती जायगी। तनाव की अधिकता से बढ़ने वाली टोपी के फूलने में भी अधिकता होगी। यदि आप कांच की बोतल के बदले में एक ऐसी बोतल की कल्पना करें जो फैल सकती हो—और जिसमें उबलता हुआ द्रव्य स्पष्ट दिखाई दे, तो ऐसा होने पर आपको मनुष्य के शरीर से अधिक समानता रखती हुई वस्तु उदाहरण के लिये मिलेगी। इस दशा में आपको दिखलाई देगा—कि इस तनाव का प्रभाव कुल बोतल पर किस प्रकार से होता है और किस प्रकार से बोतल की आकृति (शक्ल) में इस उबलते या उफनते हुए द्रव्य के दबाव से अन्तर पड़ता है। मनुष्य के शरीर की भी यही दशा है। अन्तर केवल इतना है कि इस के भीतर का कुल स्थान खाली एवं खुला नहीं है, वरन प्रत्येक स्थान में अवयव हैं—जिनके भीतर को या तो उबलते हुए द्रव्य का संचार प्रथम ही होना चाहिये या उन से बचकर (ऐसे द्रव्य को) चलना उचित है—क्योंकि उबाल को स्वतंत्रता के साथ फैलने से वे (अवयव) रोकते हैं। शरीर के भीतर उबाल का मुख्य स्थान पेड़ू है - जैसे कि बोतल में यह स्थान उसकी पेंदी या तली में होता है, परन्तु और बातों के विचार से इन दोनों हालतों में ठीक-ठीक एक ही रीति से आकृति में परिवर्तन पैदा होते हैं।

विजातीय द्रव्य से जोकि शरीर के भीतर इकट्ठा होता है एक प्रकार का परिवर्तन होता है। इस में उबाल आता है और उबाल खाता हुआ द्रव्य सारे शरीर में फैलता है। उबाल व सड़न से गर्मी भी उत्पन्न होती है—और सब शरीर में फैलती है—इस दशा को हम 'ज्वर' कहते हैं। यदि यह सड़न भीतर के भागों में होती है तो गर्मी भी मुख्यतः भीतर ही होती है, बाहर से भाग ठंडे रहते हैं। ज्वर की दशा से यह दशा अधिक भयानक है।

सर्दी, जैसा कि हमको ज्ञात है ज्वर के पहिले होती है, और यह एक आवश्यक बात है कि इस सर्दी की दशा को ज्वर में बदल देवें अर्थात् भीतर के ज्वर को बाहर

निकाल लावें, और इस प्रकार उबलते हुये द्रव्य को बाहर त्वचा पर ले आवें। यदि ऐसा करने में हम सफलता प्राप्त नहीं करते हैं तो ज्वर से भी भयानक कोई रोग उत्पन्न हो जाता है या मृत्यु भी हो जाती है। ऐसी दशा में यह कहना उचित है कि भीतर के अवयव जल गये हैं या (यदि इस दशा के पहुँचने से पहिले सड़न बन्द हो गई है) उनमें विजातीय द्रव्य बहुत ही भर गया है।

इसके पहिले कि बच्चों के रोगों का वर्णन आरम्भ करूँ मैंने यह आवश्यक समझा है कि इस विषय पर फिर आपका ध्यान दिलाऊँ और इसका विस्तार पूर्वक वर्णन करूँ। अब बच्चों के रोगों की ओर हम आते हैं।

बच्चों के रोगों से अभिप्राय बहुत प्रकार के ज्वर सम्बन्धी रोगों से है जो अधिकतर बचपन में साधारण रूप से होते हैं। मैं आपको यह बात दिखलाऊंगा कि किस प्रकार से सब रोगों की एक ही मिली हुई जड़ है। अतः बात यही है कि इन रोगों की एकता (आपस में एक होने) को भली भाँति समझ लिया जावे। अतः प्रत्येक रोग को किसी एक नाम से पहिचानना हमारे लिए आवश्यक नहीं है, वरन् यह भूलमें डालने वाला होता है। यह रोग भी केवल उस ही समय प्रकट हो सकते हैं—जब कि शरीर में एक आवश्यक दर्जे तक उबलता हुआ द्रव्य उपस्थित हो। बहुधा बच्चे ऐसे द्रव्य को लिये ही हुये संसार में आते हैं—अतः प्रत्येक बच्चा इन बाल्यावस्था के रोगों में से किसी एक या अधिक रोगों में फँस जाता है। इस बात का मैं पहिले वर्णन कर चुका हूँ कि बच्चों में वृद्धों की अपेक्षा क्यों तीव्र (एक्यूट Acute) रोग अधिक होते हैं।

परन्तु रोग को उसके होने से पहिले ही रोकना सम्भव है। मैं आपको एक दृष्टान्त देकर बतलाऊँगा कि क्योंकर ऐसा हो सकता है? नगर और ग्रामों के नष्ट होजाने के भय को मिटाने के कारण उनमें बारूद या और कोई उड़ा देने वाली वस्तुओं के बड़े-बड़े ढेर रखने की आज्ञा नहीं दी जाती है। हम इस बात को भली प्रकार जानते हैं कि बहुत ही चेष्टा करने पर भी दुर्भाग्य वश कोई चिंगारी किसी समय उसमें शायद जा लगे। अब मैं यह प्रश्न करता हूँ कि हम सब अपने शरीरों के निमित्त इतनी अधिक चेष्टा क्यों नहीं रखते? हम क्यों उनको बारम्बार विजातीय द्रव्य से भरते हैं जो एक बार में ही फूट निकलता है। इस से अधिक हम उपस्थित

द्रव्य को निकालने के लिये कष्ट क्यों नहीं उठाते हैं? सबको विश्वास है कि फोड़े फुनसियाँ शरीर को सदा क्षीण करने वाली नहीं होती तो भी उनसे कभी-कभी मृत्यु तक हो जाती है—विशेषतः उस समय जबकि उबाल खाते हुये द्रव्य को बाहर जाने का कोई मार्ग न मिले।

अब हमको बचपन के रोगों की चाल का विस्तार पूर्वक पता लगाने दीजिये—मैं ऐसा करने में उनके प्रचलित नाम रहने दूँगा। यद्यपि हमारे लिये उनका कोई विशेष प्रयोजन नहीं है फिर भी पुराने नाम रोगों के स्वरूपों का भली प्रकार पता देते हैं।

जैसा कि हम जानते हैं बच्चों के रोग भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होते हैं और भिन्न-भिन्न श्रेणी के भय उनके साथ लगे रहते हैं, अतः यह बात सहज नहीं है कि प्रत्येक दशा के लिये ठीक-ठीक चिकित्सा मालूम करली जावे। अब आपको स्पष्ट रूप से यह समझाने का उद्योग करता हूँ कि इन रोगों में आपस में क्या-क्या अन्तर हैं और उनकी चिकित्सा सफलता के साथ कैसे हो सकती है? परन्तु सबसे पहिले मैं आपको इस बात का स्मरण दिलाता हूँ कि रोग के भिन्न से भिन्न रूपों में भी दो बड़े सामान्य चिह्न [लक्षण] बने रहते हैं अर्थात् गर्मी और सर्दी। अलग-अलग चिह्नों के विवरण को समझाने के लिये कृपा करके इस बात को अवश्य स्मरण रखियेगा।

खसरा—एक बच्चे को जिसके खसरा निकल रहा हो, ध्यान में लाइये। हम देखते हैं कि उसको बेचैनी है और नींद नहीं आती तथा उसकी त्वचा गर्म और शुष्क है। साधारण बोलचाल में कहेंगे कि 'बच्चे को ज्वर हो रहा है'--परन्तु इस समय कोई यह न कह सकेगा कि यह रोग किस प्रकार का है। परन्तु यदि उस समय दूसरे बच्चों को भी खसरा निकल रहा है, तो हम अनुमान लगाते हैं कि इसकी भी वही दशा है। इन बातों के होने पर भी हम चिकित्सा तुरन्त आरम्भ कर सकते हैं। हमारे बतलाए हुए ज्वर के नियम से उसकी चिकित्सा की रीति सरलता से ज्ञात हो जाती है।

ज्वर को केवल निम्न-लिखित रीति से शान्त कर सकते हैं:—हम को त्वचा के रंध्र खोलने का उद्योग करना चाहिये जिससे शरीर में पसीना आ जावे; इसी के साथ किसी ठण्डक पहुँचने वाली वस्तु के द्वारा हमको गर्मी खींच लेनी उचित है। पसीना छूटने के पश्चात् ज्वर कम हो जावेगा।

६

ऐसा करने से कई एक दशाओं में तो खसरा वस्तुतः निकलेगा ही नहीं—अथवा यों कहना चाहिये कि विजातीय द्रव्य (फारेन मैटर) को ऐसे स्वरूप में ले जाकर निकाल देंगे कि उसको किसी एक रोग के नाम से नामाङ्कित नहीं कर सकते। शरीर से स्वाभाविक मार्गों द्वारा पसीने या मलमूत्र के रूप में या श्वास के संग बाहर निकाल देंगे। परन्तु यदि हम ठीक समय पर ऐसा करना भूल जावेंगे तो हम जानते हैं कि खसरा बहुत से लाल रंग के धब्बों में प्रकट होकर एकदम फूट निकलेगा। जितना ही अधिक खसरा निकलेगा (या यों कहना भी वही बात है—कि जितना अधिक तीव्रता के साथ उबाल खाया हुआ विजातीय द्रव्य त्वचा के मार्ग से निकलेगा) बच्चे के जीवन में उतना ही कम भय रह जावेगा। इसके विरुद्ध जितना ही कम व हलका खसरा निकलेगा उतना ही भीतर के अवयवों में अधिक गर्मी उत्पन्न होने के कारण से भय भी अधिक होगा—क्योंकि ऐसी दशा में उबलते हुए द्रव्य के टुकड़े उनको (भीतर के अवयवों को) जला देते हैं। फेफड़ों में सूजन बहुत सहज में उत्पन्न हो जाती है और बच्चा मर जाता है। इस कारण से नहीं कि उसको खसरा निकला था, बल्कि इस कारण से कि खसरा उसको पूर्ण रूप से नहीं निकलने पाया था। खसरे को पूर्ण रूपसे दूर करने के लिये हमको स्वाभाविक मार्गों का अर्थात् त्वचा, गुर्दे और अंतड़ियों को खोलना उचित है। हमें उस समय तक शरीर को ठंडक पहुँचानी चाहिये जब तक कि भीतर की गर्मी भली भाँति न निकल जावे। इससे पाचन शक्ति भी ठीक हो जायगी। फ्रिक्शन हिप बाथ एवं फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ जोकि द्रव्य को जड़ से निकालने का प्रभाव रखते हैं उनके द्वारा ठंडक पहुँचाई जा सकती है। (देखो, स्नान विधि का अध्याय)। पसीना बहुत सहज में लाया जा सकता है, यदि माता बच्चे को रात्रि में अपने पास सुलावे और अपने शरीर की गर्मी से उसके शरीर में पसीना आने में सहायता करे। बच्चे को पंख भरे गद्दे या कम्बल लगे बड़े पलंग पर उढ़ा कर लिटाना भी पसीना लाने के वास्ते पर्याप्त होता है। इस बात को स्मरण रखना चाहिये कि ऊपर की खिड़कियाँ खुली रख कर रात दिन नवीन ताजा और स्वच्छ वायु का संचार होता रहे। यदि इस रीति से सफलता प्राप्त न हो तो एक स्टीम बाथ अवश्य लेना चाहिये। यह स्नान उस यंत्र द्वारा सहज ही में हो सकता है, जिसे लपेट कर रख सकते हैं और जिसके साथ में भाप उत्पन्न करने के पात्र भी जो मैंने बनाये हैं उपस्थित रहते हैं। परन्तु आवश्यकता के समय स्नान दूसरी भिन्न-भिन्न रीतियों से कराया जा सकता है। (देखो, स्नान विधि अध्याय) प्रत्येक स्टीम बाथ की समाप्ति पर रोगी को फ्रिक्शन हिपबाथ देकर ठंडक पहुँचानी जरूरी है।

जब कि हम बच्चे को पसीना लाने में सफलता प्राप्त कर लेवेंगे, तो उसकी दशा भी बहुत अच्छी हो जावेगी और यदि ज्वर लौट आवे तो ठंडक पहुँचाने वाले फ्रिक्शन हिप व सिट्ज़ बाथ फिर देने चाहियें और उसके पीछे बच्चे को चारपाई पर लिटाना चाहिये जिससे फिर पसीना आवे। ठंडक पहुँचाने और पुनः गर्मी लाने का काम फिर इसी रीति से जब-जब ज्वर प्रकट हो तब तब करना चाहिये। जब कि शिर, आँख, या शरीर के किसी मुख्य भाग की ओर (ज्वर का) प्रभाव विशेष हो तो सब से प्रथम हमको उचित है कि एक स्थानीय स्टीम बाथ उस भाग में देकर जिसमें कि विजातीय द्रव्य भरा है उसके प्रभाव को कम करें। ज्यों ही त्वचा में पसीना आना आरम्भ होगा, शरीर के उस भाग को चैन पड़ने लगेगा और उबलते हुये द्रव्य से किसी भी अवयव के नष्ट होने का भय न रहेगा; ऐसे "एक भागीय[१] स्टीम बाथ" लेने के पश्चात् प्रत्येक बार एक फ्रिक्शन हिप या सिट्ज़ बाथ शरीर को ठंडक पहुँचाने और उसको शान्ति देने के लिये अवश्य देना चाहिये। अब यदि आप उन सब बातों पर जो मैंने ज्वर तथा ख़सरा के विषय में वर्णन की हैं ध्यान देंगे तो आपको ज्ञात हो जायगा कि यह रोग (ख़सरा) विजातीय द्रव्य के बहुत समय तक चुपचाप पड़े रहने से (जोकि किसी न किसी कारण से सड़ने लगता है) उत्पन्न होता है। इस प्रकार से ज्वर होता है और रोग का वह स्वरूप जिसको ख़सरा कहते हैं बन जाता है। अतः आप लोग देखते हैं कि ख़सरा भी ठीक उसी प्रकार से उत्पन्न होता है जिस प्रकार कोई दूसरा ज्वर। अब आगे चल कर मैं आपको यह समझाऊँगा कि सभी भिन्न-भिन्न स्वरूपों के रोगों का (जिन को मैं बताना चाहता हूँ) किस प्रकार से एक ही कारण[२] से क्रम मिलाया जा सकता है। (चतुर्थ भाग में रोग मुक्तों की रिपोर्टों में चिट्ठियों को देखिये।)

स्कारलेट फ़ीवर (Scorlet Fever) अर्थात् लाल बुखारः—उस बच्चे में जिसको स्कारलेट फ़ीवर हुआ है वही लक्षण दिखाई देते हैं जो किसी ऐसे बच्चे में जिसको कि ख़सरा हुआ हो; परन्तु ज्वर बहुधा बहुत तीव्र होकर माता पिता की अधिक चिन्ता का कारण बन जाता है।

इस लाल ज्वर में त्वचा पर लाल धब्बे दिखाई पड़ते हैं, इसी से उसको लाल ज्वर या रक्त ज्वर कहते हैं। वे धब्बे पहले छोटे होते हैं, परन्तु पीछे धीरे-धीरे

१—अर्थात् एक ही कारण से उत्पन्न होने का पता बतलाया जा सकता है।

२—शरीर के किसी एक मुख्य भाग जैसे शिर, हाथ, पेट को और भाप से स्नान कराना, स्नान की क्रियाओं के वर्णन को देखने से स्पष्ट जाना जायगा।

एक दूसरे से मिलकर बढ़ जाते हैं। ये फुंसियाँ खसरा की तरह कुल शरीर पर नहीं निकलतीं। बहुधा शरीर के एक भाग पर निकलती हैं; शिर, छाती, और पेडू में विशेषत: निकलती हैं और पाँव न्यूनाधिक उनसे खाली रहते हैं—पाँव बहुधा ठंडे रहते हैं, हालांकि शेष कुल शरीर तीव्र ज्वर से पीड़ित रहता है। रक्त ज्वर में सिर वा हृदय पर अधिक प्रभाव पड़ता है और यह बहुधा होता है कि इस रोग से पीड़ित बच्चे आँख वा कानों के दर्द की शिकायत किया करते हैं। ये लक्षण [1] अब आपकी समझ में सरलता से आजायेंगे। यह दशा जिसका वर्णन विस्तार पूर्वक हो चुका है उत्पन्न हो गई है। उबाल खाने की दशा में विजातीय द्रव्य ने पेडू से केवल ऊपर की ओर ही अर्थात् गर्दन व शिर की ओर को, अपना मार्ग बना लिया है, और केवल वही विजातीय द्रव्य जो शरीर के उच्च भाग में एकत्रित था तीव्रता से सड़ना आरम्भ हो गया है। जितना छोटा त्वचा का वह भाग जो विजातीय द्रव्य के बहिष्कृत करने में फुंसी निकाल कर सहायता करता है—होता है, उतना ही अधिक भयप्रद होता है।

परन्तु मुख्य प्रश्न अब भी शेष है, अर्थात् शीघ्रता के साथ और पूर्ण सहायता हम क्या उपाय करके पहुँचा सकते हैं, ? पहले हमको इस बात की चेष्टा करनी चाहिए कि आँख वा कानों में सदा के लिये हानि पहुँचाने के भय को हटावें। शिर को पूर्ण प्रकार से भाप देकर त्वचा के छिद्र खोलने से यह बात हमको प्राप्त हो सकती है।" (सारे शरीर को या शरीर के एक भाग को भाप का स्नान देने की विधि मेरी चिकित्सा विधि के अध्याय में वर्णन की गई है) ज्योंही कि शिर पूर्ण प्रकार से (भाप से) गीला होजाता है तो त्वचा के छिद्र खुल जाते हैं और पीड़ा मिट जाती है और पूर्व भय दूर हो जाता है।

परन्तु बहुधा ऐसा होता है कि शिर के लिये ऐसी भाप का देना कई-कई बार आवश्यक होता है, क्योंकि पीड़ा बहुधा थोड़ी देर पीछे फिर होने लगती है। यदि हम इस बात का उपाय न करें कि उबलता हुआ द्रव्य किसी और मार्ग से निकाल दिया जावे तो वास्तव में दर्द थोड़ी-थोड़ी देर पीछे बराबर होने लगता है। पेड़ू के लिये ठंडक पहुँचाने वाला फ्रिकूशन बाथ [2] देकर ऐसा किया जा सकता है। इस रीति में

१—अर्थात् पैरों का ठंडा होना, आँख और कान में दर्द होने की शिकायत।

२—अर्थात् फ्रिक्शन हिपबाथ से विजातीय द्रव्य दूसरे मार्ग से निकाल दिया जाता है।

अंतड़ियों और गुर्दों के मार्ग से और त्वचा के द्वारा भी द्रव्य निकल जाता है। निस्सन्देह ज्वर के आरंभ ही से पाचन शक्ति ठीक न रही होगी, और न इसके पूर्व ही, चाहे माता पिता ने इस पर ध्यान दिया हो या न दिया हो। चेंपवाली वस्तु जो पाचन के अवयव से निकलती है इस ज्वर के कारण सूख जाती है, उनमें[1] सूखा पन आ जाता है। वे अपना काम आगे को नहीं कर सकते, और कोष्ठ बद्ध (कब्ज) होना इसका आवश्यक फल है। उपरोक्त ठंडक पहुँचाने और उसके साथ मलने का[2] एक बहुत अच्छा प्रभाव पाचन शक्ति पर पड़ता है। अधिक समय नहीं लगेगा कि पाखाना खुल कर आने लगेगा। यह सदा इस बात का सूचक है कि रक्त ज्वर अब अनुकूल मार्ग को पकड़ेगा। रक्त ज्वर के रोगियों की दशा में सफलता प्राप्त होने के पहिले प्रायः सदा अधिक समय तक उपरोक्त चिकित्सा के पूर्ण प्रकार से करने की आवश्यकता होती है। यह इस बात का एक दूसरा प्रमाण है कि (रक्त ज्वर में) खसरा की अपेक्षा विजातीय द्रव्य अधिक परिमाण में उपस्थित रहता है।

आप देखते हैं कि स्कारलेट फ़ीवर (रक्तज्वर) भी, शरीर में उपस्थित—विजातीय द्रव्य के उवाल खाने से ही पैदा होता है। इस दशा में केवल उबलते हुए द्रव्य की अधिकता होती है। इसी कारण से ज्वर बहुत तीव्र होता है, और उसका जोर ऊपर की ओर दूर तक फैलता है। अतः इस रोग का कारण भी वही प्रतीत होता है जो और सब ज्वरों का है। रक्त ज्वर की विस्तृत चिकित्सा की विस्तार पूर्वक मैं अपने रोगियों में से एक रोगी के वृत्तान्त द्वारा समझाता हूँ।

लिपज़िंग नगर में एक शिल्पकार के दो वर्ष की आयु वाले पुत्र और सात वर्ष की आयुवाली कन्या को रक्त ज्वर हुआ। उनके परिवारिक डाक्टर ने रोग को अति कठिन बतला आरोग्यता प्राप्त करने में ६ से ८ सप्ताह तक लग जाने की अवधि बताई। मिस्टर डब्ल्यू[3] ने जिन्होंने मेरा भाप से स्नान करने का यंत्र केवल अपने

१—अभिप्राय है पचाने वाले अवयवों से।

२—क्योंकि फ्रिक्शन हिपबाथ में पेड़ू को जल के भीतर मलते हैं। विस्तार पूर्वक इसका विवरण आगे चिकित्सा विधि के अध्याय में देखिये।

३—पूरा नाम नहीं लिखा है केवल नाम का पहिला अक्षर लिख दिया है इसी प्रकार इस ग्रन्थ में बहुत जगह लिखा गया है।

ही लिए मोल लिया था, मुझ से अपने बच्चों के विषय में सम्मति ली। औषधियों के द्वारा चिकित्सा जोकि उसके पारिवारिक डाक्टर ने बतलाई थी कुछ कठिन सी जान पड़ी। बच्चों के जाँच करने पर मैं उनके पिता को यह संतोषजनक विश्वास दिला सका कि मेरे उपाय से यह रोग लगभग एक सप्ताह के भीतर दूर हो जावेगा। उस उपाय के अतिरिक्त जिसका मैं ऊपर वर्णन कर चुका हूँ, मेरा कोई दूसरा उपाय नहीं था। बच्चों को प्रति दिन एक स्टीम बाथ और तत्पश्चात् फ्रिक्शन हिप बाथ ७० या ७२ दर्जे (फ़रहन हाइट) के जल से दिया जाता था। जब कभी कि ज्वर बहुत तीव्र हो गया तभी एक हिप बाथ दिया गया, बल्कि आरम्भ में तो प्रति दो-दो घण्टे में तो ऐसा करना पड़ा। यह प्रकट है कि आहार की ओर ऐसी दशा में मुख्य ध्यान देना पड़ा। क्योंकि मांस इत्यादि के बने हुए मसालेदार गर्म भोजन निस्सन्देह ज्वर की वृद्धि करते हैं और उससे छुटकारा पाना अधिक कठिन हो जाता है। अतः बच्चों को केवल गेहूँ के बिना छने आटे की रोटी और लपसी और कच्चे या उबले हुये फलों पर रक्खा गया, और उनको केवल उसी समय भोजन करने की आज्ञा मिलती थी जब कि वास्तव में वे भूखे होते थे। जैसा कि मैंने पहिले ही कह दिया था, बच्चे एक सप्ताह के भीतर ही निरोग हो गये, और माता पिता प्रसन्न हुये। उस पारिवारिक डाक्टर ने जिसने कहा था कि ऐसी शीघ्रता से आराम होना अवश्य गुर्दों का रोग उत्पन्न कर देगा इस बात को अन्त में मान लिया कि बच्चे बिल्कुल स्वस्थ होगये।

डिफ़थीरिया का शब्द सब माता पिताओं को भयानक सुनाई देता है, क्योंकि वह बड़ा भय जो इस के साथ में लगा रहता है बहुत प्रसिद्ध है। उपरोक्त रोगों की अपेक्षा इस के वाह्य लक्षण कुछ भिन्न होते हैं; परन्तु ज्वर भी उसका एक आवश्यक लक्षण है। यह सत्य है कि किसी समय ज्वर अति साधारण प्रतीत होता है। विशेषतः उन बच्चों की दशा में जो कि बेहोशी में शय्या पर पड़े रहते हैं, और केवल साँस लेने में ही कठिनता बतलाते हैं। वास्तव में ठीक-ठीक ऐसे ही वे बच्चे हुआ करते हैं जो बहुधा बीमार रहते हैं। इन दशाओं में भीतर की ओर ज्वर बहुत तीव्र होता है, त्वचा लगभग सर्वथा काम नहीं करती, अँतड़ियाँ और गुर्दे सर्वथा शिथिल होजाते हैं, तो भी उबलते हुये द्रव्य के टुकड़े (परिमाणु) बाहर की ओर आने की चेष्टा करते हैं, क्योंकि भीतर उनके लिये स्थान नहीं मिलता। ऐसी दशायें बहुत ही भयदायक होती हैं। यदि विजातीय द्रव्य को त्वचा द्वारा निकालने की सफलता शरीर को प्राप्त हो जाती है, जैसे कि ख़सरा वा रक्तज्वर की दशा में, तो सब भय दूर हो जाता है। परन्तु उस दशा में जब

कि ज्वर मुख्यतः भीतर होता है तो भय अधिक होता है। यदि इस भीतरी ज्वर के शरीर की वाह्य त्वचा पर लाने में सफलता नहीं मिलती तो निरोग होने की आश भी कम रहती है। ऐसी दशा में शरीर का केवल एक ही मार्ग खुला रहता है अर्थात कंठ, और उसी की ओर उबलता हुआ द्रव्य पूर्णशक्ति के साथ जाने की चेष्टा करता है। अतः बहुधा स्वास रुक कर अकस्मात् मृत्यु होने का भय लगा रहता है।

जहाँ यह भय लगा रहता है तो उस दशा में सब से प्रथम करने की फिर वही बात है कि स्थानीय[1] चिकित्सा करें और कंठ को खोलें चाहे ऐसा कुछ मिनट के लिये ही हो।

डिफ़थीरिया में यह बात अति शीघ्र और प्रभाव-दायक भाप के द्वारा की जा सकती है। यह पीड़ा को कम करती है और एकत्रित द्रव्य को निकालती है। यह सत्य है कि ऐसा करने से हमें कोई नवीन बात प्राप्त नहीं होती, परन्तु इस प्रकार थोड़े समय तक चैन मिल जाने के कारण हमको विजातीय द्रव्य की मुख्य जड़को स्वच्छ करने के लिये समय अवश्य मिल जाता है। अब इस मूल जड़ को हमको उदर के भीतर अवयवों में फिर ढूंढना होगा। मेरे संतोषदायक स्नानों से कंठ की दशा में बहुत शीघ्रता से अन्तर पड़ना स्वयं मुझे भी आश्चर्य में डालता है। फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ का बहुत ही अच्छा प्रभाव होता है। यहाँ तक कि बेढब बढ़ी हुई वास्तुएँ कुछ ही स्नानों में दूर हो जाती हैं, परन्तु विजातीय द्रव्य की अधिकता के कारण से कंठ में तुरन्त ही परिवर्तन हो जाता है। इसमें सूजन व जलन उत्पन्न हो जाती है और यह सूजन व जलन बढ़ी हुई खाल या झिल्ली की अपेक्षा अधिक भयानक है। डिफ़थीरिया के होने के पूर्व रोगी प्रायः जोड़ों (गांठों) में जैसे घुटनों व कंधों में पीड़ा होना बतलाया करते हैं। इन स्थानों की बहुत ही अधिक जलन को भी कोई मनुष्य सह सकता है, पर कंठ की सूजन व जलन को नहीं। अतः पिछली[2] दशा में बहुत प्रभाव जनक उपाय करने उचित हैं। बढ़ी हुई झिल्ली में दूर होजाने के पश्चात पेड़ू की चिकित्सा उस समय तक करना उचित है जब तक कि पखाना आसानी से न आने लगे और पाचन शक्ति ठीक न हो जाय। जब तक ऐसा न हो जावे तब तक यह नहीं कह सकते कि रोगी को कोई डर नहीं रहा। परन्तु जैसा वर्णन कर चुके

१—अर्थात् उस स्थान पर कि जहाँ ज्यादा तकलीफ है चिकित्सा करे जिससे कि अंदेशा दम घुटने का दूर हो जावे।

२—अर्थात् कंठ की जलन व सूजन।

हैं और सब अवयव के साथ त्वचा भी एक बड़ा आवश्यक यन्त्र द्रव्य निकालने का है। इस का मुख्य काम उस हानिकारक द्रव्य के निकाल देने का है जो उसके ऊपरी भाग के समीप एकत्रित हो जाता है।

अब उस फैलने वाली बोतल को फिर ध्यान में लाइये। जिस समय तक वह बन्द है उस समय तक उबाल खाता हुआ द्रव्य बाहर नहीं निकल सकता और बोतल फैल और तन जाती है, पर उसको चारों ओर सुई से छेद देने पर, और उसमें हमारी त्वचा के समान छोटे-छोटे छेद बना देने से वे उबाल खाते हुए द्रव्य के टुकड़े उन छेदों के द्वारा बाहर निकल जाते हैं, और बोतल फिर अपना असली स्वरूप बना लेती है। त्वचा की भी ठीक यही दशा है। पसीना वही हानिकारक द्रव्य है जो उबाल की क्रिया के द्वारा भीतर से बाहर को निकाला जाता है। पसीना कोई वस्तु नहीं है। पाचन क्रिया में एक प्रकार का उबाल होता है; अतः यदि शरीर को बीमारी से बचाने की इच्छा हो तो त्वचा को अपना काम अच्छे प्रकार करना चाहिये। इस कारण सब स्वस्थ लोगों की त्वचा गर्म और तर हुआ करती है। शुष्क व ठण्डी त्वचा रोग की पूरी पहिचान है।

डिफ़्थीरिया के रोगियों की त्वचा सर्वथा शिथिल रहती है और उससे काम लेने के लिये बड़ी शक्ति की आवश्यकता होती है। इस रोग में भी स्वस्थ माता को अपने बच्चे को अपने पास लिटाने में किसी प्रकार का भय न करना चाहिये। ऐसा करने से शायद बच्चे की जान बच जावे। विशेष कर उन दशाओं में जब कि पाख़ाना नियमानुकूल नहीं होता है तो शरीर त्वचा से द्रव्य को बाहर निकालने का काम लेता है। वस्तुतः त्वचा का सदा यही काम है।
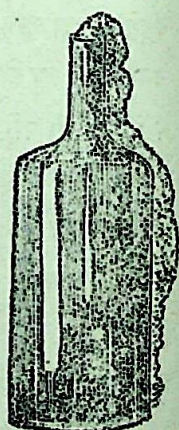
उसी समय जब कि त्वचा में सूखापन आने लगा था यदि उसकी माता ने अपने शरीर की गर्मी से बच्चे के रंध्र खोल दिये होते और उस के साथ-साथ गुर्दों[1] और अँतड़ियों[2] की क्रियाओं को ठीक कर दिया होता तो डिफ़्थीरिया रोग कभी न हुआ होता।

१—गुर्दों का काम द्रव्य को मूत्र के स्वरूप में।

२—अतड़ियों का काम मल को (पख़ाने) के रूप में बाहर निकालने का है।

केवल उसी समय जब किसी दूसरी रीति से पसीना लाना असम्भव हो तभी मनुष्य रचित वस्तुओं से सहायता लेना उचित है और तभी बच्चों को स्टीम बाथ देना चाहिये अन्यथा नहीं।

अब आपको ज्ञात हो गया होगा कि डिफ़थीरिया की उत्पत्ति ठीक-ठीक वैसे ही है जैसी रोग की उसके और और स्वरूपों[1] में। अन्तर केवल बाहर के लक्षणों में है। केवल वही व्यक्ति जो सर्वथा बाहर की बातों को देखता है इस बातके विश्वास करने में धोखा खा सकता है कि रोगों के भिन्न भिन्न स्वरूपों के कारण भी भिन्न-भिन्न हैं। एक रोगी का वृत्तान्त जिसकी चिकित्सा मैंने अपने चिकित्सालय में की थी इस विषय को अधिक स्पष्ट कर देगा।

एक स्त्री मिसेज एस ने जिसके नौ वर्ष के पुत्र को डिफ़थीरिया के रोग ने घेर लिया था मुझे बुलाया। लड़के को प्रथम एक स्टीम बाथ (भाप का स्नान) दिया गया। चूँकि भाप देने का उस प्रकार का यन्त्र जैसे कि मैं बनाता हूँ उस जगह उपस्थित न था एक दूसरे प्रकार का यन्त्र उसी समय बनवाया गया। उस लड़के को एक बेंत से बुनी हुई छिद्रों वाली कुरसी पर बिठाया, और उसके नीचे एक देगची में एक गैलन[2] खौलता हुआ जल भर कर रख दिया और एक बरतन के ऊपर जिसमें कि खौलता हुआ जल आधी दूर तक भरा था दो पतली-पतली लकड़ियाँ रख कर उसके पैर उन लकड़ियों पर रख दिये; सब शरीर पहले ही कम्बल से इस प्रकार से ढक दिया गया था कि कुछ भी भाप बाहर न निकल सके। खूब पसीना आ जाने पर रोगी को फ्रिक्शन हिप बाथ में बिठलाया गया जिस में जल ७२ अंश (फ़ेहरनहाइट) का उपस्थित था। इसमें पेड़ू को उस समय तक स्नान दिया गया जब तक कि उसके शरीर से गर्मी दूर न होगई। पहले श्वास लेने में जो बहुत कष्ट होता था वह शनैः-शनैः मिट गया, प्रत्येक तीन घण्टों के बाद और रात्रि में भी आध-आध घंटे के लिये, फ्रिक्शन हिप बाथ देना पड़ा जिससे ज्वर बढ़ने न पावे। जब तक बच्चा शय्या पर पड़ा रहता था तब तक मकान की खिड़की रात व दिन जरा सी खुली रक्खी जाती थी, जिस से ताजी वायु सदा भीतर आती रहे। बारम्बार स्नान कराने से प्रत्येक बार ज्वर के कम करने में

१—अर्थात् दूसरे रोगों की। रोग एक ही माना गया है, सब रोग उस एक ही के भिन्न भिन्न स्वरूप हैं।

२—गैलन में ३ सेर १० छटांक पानी होता है।

हमने सफलता प्राप्त करली—अतः चिकित्सा करने के प्रथम दिन ही सब भय जाता रहा। पाँच दिन तक इसी प्रकार उपाय करने पर बच्चा फिर पूर्ण स्वस्थ होगया। इस प्रकार भयानक डिफ़्थीरिया रोग दूर हो जाता है—जब अन्य चिकित्सक उस के लिये किसी औषधि की ही खोज करते रहते हैं।

स्माल पाक्स (Small Pox) (चेचक, शीतला, माता) का जितनी बार लोग निकलना समझते हैं इस से कहीं अधिक बार वह निकलती है। सरकारी रजिस्ट्रों से यह बात ज्ञात नहीं हो सकती, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य जो कि इस प्राकृतिक चिकित्सा को कुछ थोड़ा सा भी जानता है उसको इस बात की कुछ जल्दी नहीं रहती कि वह नियमानुकूल रिपोर्ट[1] पुलिस में करे। व्यर्थ में आपको और अपने कुटुम्ब को एक बड़े बंधन में क्यों डाले ? ठीक उपाय करने से शीतला (चेचक) एक साधारण रोग रह जाता है जिससे कोई हानि नहीं होती। इस बात पर हम आगे चल कर विचार करेंगे। रोग जिन में मुख्यतः छाले पड़ते हैं, जैसे पानी की शीतला, मोतिया शीतला, चेचक शीतला, पहिले यह सब रोग जो त्वचा को फोड़ कर निकलते थे पाक्स (Pox) (छाले, फोड़े, फुंसी) के नाम से बोले जाते थे। निस्सन्देह इन सब में चेचक (शीतला) अधिक ख़तरनाक है क्योंकि इस में ज्वर बहुत तीव्र होता है और उपाय ठीक न होने से मृत्यु बहुत शीघ्र हो सकती है। और इसी कारण से इसका इतना अधिक भय करते हैं। वे रोग जिन में ग़लत चिकित्सा होने से प्राण शीघ्र चले जाते हैं; उन रोगों की अपेक्षा जिनमें बहुत काल तक रोग बना रह कर अन्तिम फल देर में निकलता है, सदा अधिक भयानक समझे जाते हैं। परन्तु वास्तव में जहाँ आराम हो जाना भी सम्भव है यह पिछले कहे हुए रोग ठीक-ठीक चिकित्सा होने पर भी कष्ट साध्य होते हैं। और उनका मूल से नाश करने में तो बहुत ही ज्यादा समय लगता है। चेचक शीतला केवल इस कारण से भयानक समझी गई है, क्योंकि इसकी चिकित्सा को समझा नहीं; इसी कारण टीका लगाना (गोदना) स्वीकार कर लिया गया। ठीक चिकित्सा ज्ञात होने पर हुए यह टीका कभी विचार में भी न आता।

चेचक (शीतला) जब पूर्ण प्रकार से निकल आती है तब वह सहज में पहीचाती जाती है, परन्तु आरम्भ में यह बच्चों के और रोगों के समान ही होती है, क्योंकि अधिक

१—यह नियम जर्मनी देश का है जहाँ कि चेचक के निकलने की रिपोर्ट पुलिस में करना ज़रूरी कर्तव्य है।

ज्वर के अतिरिक्त और कोई बात दृष्टि में नहीं आती। धीरे-धीरे लाल धब्बे छोटी मटर के बराबर (जैसे कि खसरा में) दिखाई देते हैं, वे बढ़ते जाते हैं यहां तक कि उनका आकार मुनक्का (दाख) का सा हो जाता है। आधे शरीर के भीतर और आधे बाहर निकले रहते हैं, उनके बीच में एक काला बिन्दु पड़ जाता है। ये छाले (आंवले) चाहें सब शरीर पर फैल जावें चाहे भिन्न-भिन्न दूर स्थानों में हों। शरीर में विजातीय द्रव्य का कहीं कम कहीं अधिक इकट्ठा होना (और शरीर के भिन्न स्थानों में उसका) न्यूनाधिक विस्तृत होना इनका कारण हुआ करता है। और इसी से उबलते हुए विजातीय द्रव्य के) चलने के मार्ग की, और अधिकता की पहिचान की जाती है। उन दशाओं में रोगी अधिक कष्ट में पड़ता है जिनमें कि चेचक मुख पर निकलती है; क्योंकि यदि ठीक प्रकार से चिकित्सा न की जावे तो उसके पश्चात् चेचक के चिह्नों का शेष रह जाना सम्भव होता है।

यह केवल सहसा नहीं होता कि किसी एक रोगी की दशा में तो छाले फुंसियां शरीर के किसी एक मुख्य भाग पर दृष्टि पड़ते हैं और किसी दूसरे की दशा में अन्य स्थान पर; अथवा यह कि शिर पर विशेषतः प्रभाव पड़ता है जिसके कारण रोगियों के शरीर पर तो चिह्न बहुत कम पाये जाते हैं, परन्तु सारा चेहरा सर्वथा कुरूपवान बन जाता है। पाठक-गण ! आप लोग किञ्चित उस बोतल का ध्यान अपने मन में फिर लाइये जिसके शिर पर फैलने वाली टोपी लगी है, और जिसका वर्णन पीछे पर हुआ है। शरीर के जिस ओर विजातीय द्रव्य अधिक इकट्ठा हो जाता है उस ओर उबाल सब से अधिक होता है, और इसी स्थान पर चेचक की फुन्सियां या छाले अधिक निकलते हैं। यदि शरीर के और भागों में, शरीर के शेष भागों की अपेक्षा अधिक विजातीय द्रव्य भरा हुआ है तब ऐसे स्थान पर और स्थानों की अपेक्षा अधिक फुन्सिया निकलेंगी। अतः ऐसा हो सकता है कि किसी मनुष्य का मुख एक कान से दूसरे कान तक सब स्थान में खुदड़ा हो जावे और शरीर के अन्य भागों में केवल कहीं-कहीं चेचक के चिह्न हों। शिर मानो शरीर का एक सिरा है, जब उबलते हुए द्रव्य के टुकड़े चलते हैं तो इस स्थान पर उनको एक सीमा (हद) मिलती है। हमने उस बोतल में, जिसको रबड़ की टोपी पहनाई थी देखा था कि उबलता हुआ द्रव्य सदा ऊपर को दबाव करता है, और यदि शिर में उसके उफान के लिये रुकावट मिल जावे तो वह और भी अधिक दबाव इस स्थान पर डालता है।

ज्योंही चेचक के दाने पूरी तरह बढ़ जाते हैं, त्योंही प्राण का भय मिट जाता है, क्योंकि प्रायः वही रोगी मृत्यु को प्राप्त होते हैं जिनका शरीर उबलते

हुए द्रव्य के निकाल देने की योग्यता नहीं रखता। बहुधा यह भी होता है कि छाले फुन्सियां मृत्यु हो जाने पर तत्क्षण निकल आती हैं, और इस दशा में भी यह भली-भांति कह सकते हैं कि रोगी इस कारण से नहीं मरे कि उनको चेचक निकली थी, वरन् वे इस कारण से मर गए कि उनको चेचक नहीं निकली। इसके रोगी सदा ऊँचे ज्वर की दशा में प्राण त्याग करते हैं।

इसमें भी कोई संदेह नहीं कि इस रोग के साथ वहुत वेग का ज्वर होना भी उचित ही है और वास्तव में मुख्यतः फुन्सियाँ निकलने से पहिले चेचक के रोगियों को हम वहुत ऊँचे दर्जे के ज्वर से पीड़ित पाते हैं। शरीर की जलन की दशा में इन छालों में अपरिमित खाज व जलन मालूम पड़ती है, जिसके कारण से रोगी स्वयं अपने आपको खरोंच लेता है। अतः वे छाले पूर्ण रूप से पकने के पहिले ही फोड़ दिये[1] जाते हैं, और रूप को विगाड़ने वाले चेचक के चिह्न शेष रह जाते हैं। पहिले समय में भी इस वात पर ध्यान दिया जाता था, क्योंकि बेचारे रोगी के हाथ खुजलाने से रोकने के अर्थ वहुधा वाँध दिये जाया करते थे। जर्मन भाषा की एक पुस्तक 'विद्या संग्रह' जो बहुत पढ़ी जाती है अब तक यही उपाय वताती है। बेचारे रोगियों को कैसा कष्ट दिया जाता है। परन्तु हमारे पास इससे भी उत्तम रीति चेचक से आरोग्यता प्राप्त करने की है, जिस से वे रूप के विगाड़ने वाले चिह्न शेष नहीं रहते, और वह ऐसी विधि है जिस से इस भयानक रोग का सब डर मिट जाता है। महज़ खुजली व खुजलाने को ऐसे साधारण उपाय से रोकते हैं, जिसका प्रयोग हम उपरोक्त ज्वर में करते हैं। अर्थात् हम त्वचा के छिद्रों को खोल देते हैं, जिससे शरीर में पसीना आने लगता है, और पेड़ू को जहां कि विजातीय द्रव्य की नींव है ठण्ड पहुँचाते हैं। प्रत्येक मनुष्य जानता है कि अंगूर की मदिरा व यव की मदिराओं में उफान उतना ही धीरे होता है जितनी उनमें गर्मी कम होती है। शरीर के भीतर उफान खाता हुआ द्रव्य भी उसी सृष्टि के नियम के अनुकूल चलता है। गर्मी बढ़ाने से उफान को सहायता मिलती है, ठंड से उसमें रुकावट होती है, उफान कम होकर बन्द हो जाता है।

चेचक ऐसा भयानक रोग है जिसमें बड़े ही ध्यान व सावधानी की आवश्यकता है, क्योंकि इसमें शरीर में उफान का जोर होता है। परन्तु मेरी रीति से चिकित्सा करने

१—अर्थात् रोगी स्वयं उनको खुजला कर फोड़ देता है।

पर भयानक स्वरूप बदल जाता है, और प्रत्येक मनुष्य को विश्वास करना उचित है कि बहुत ही कम दशाओं के अतिरिक्त पूर्ण आरोग्यता शीघ्र प्राप्त होगी। वह दशायें ये हैं कि जब शरीर विजातीय द्रव्य से इतना भरा हुआ होता है कि त्वचा के पूर्ण कार्य्य करने पर भी वह द्रव्य ठीक-ठीक शीघ्रता से नहीं निकल सकता, या यह बात हो कि शरीर उसके निकालने की शक्ति न रखता हो, परन्तु यह दशा प्राय: तभी होती है जब कि चिकित्सा आरंभ करने में बहुत देर हो गई हो। अत: मैं बार-बार भी इस बात पर ध्यान दिलाना काफ़ी नहीं समझता हूँ कि ज्वर के साथ उसी समय से युद्ध[२] करना उचित है जब कि उसका आरंभ ही हुआ हो। हमको इस बात की प्रतीक्षा न करनी चाहिये कि रोग बाह्य रूप से क्या स्वरूप स्वीकार करेगा?

आप देखते हैं कि हम इस भयानक चेचक के लिये ठीक-ठीक वही उपाय करते हैं जो दूसरे उपरोक्त रोगों के लिये, परन्तु यह बात उसी समय सम्भव है जब कि यह मान लिया जावे कि इस रोग का भी वही कारण है जोकि उपरोक्त रोगों का—अर्थात् शरीर में विजातीय द्रव्य के भार का होना। और हम देख चुके हैं कि यह बात ऐसे ही है। वर्तमान काल में जब कि खसरा और रक्त ज्वर पहले की भाँति चेचक या शीतला की श्रेणी में नहीं गिने जाते और चेचक (शीतला) इसी कारण प्रत्यक्ष में घट गई है, तो हमारे लिये उस समय का पूर्ण अनुभव करना असम्भव है जिस समय में उसका आगमन अति डरावना प्लेग व मूर्तिमान् भय दिखलाई पड़ता था। अब हम सब रोगों के ऐक्य और उनके उपाय से विज्ञ हो गए हैं तो हमको रोग का वैसा स्वाभाविक भय भविष्य के लिये नहीं रहा। इसके अतिरिक्त मुखाकृति विज्ञान (Science of Facial Expression) की सहायता से हम वर्षों पहिले इस बात की पहिचान कर सकते हैं कि किस स्थान पर विजातीय द्रव्य का इतना अधिक दबाव है कि शरीर अपने में चेचक (शीतला) के सदृश रोग पैदा करके अपने को स्वच्छ करने का उपाय करेगा और इस स्थान पर भी मैं आपको चेचक (शीतला) के एक दूसरे रोगी के विवरण से जिसकी मैंने एक बार चिकित्सा की थी विदित करूँगा।

एक शिल्पकार के घर में उसके तीन बच्चे—सात, नव एवं तेरह वर्ष की आयु के थे, जिनको शीतला निकली थी। उनके पिता ने जिसको यह बीमारी हो चुकी थी

२—अर्थात् उसकी चिकित्सा आरम्भ कर देनी चाहिये।

शीघ्र ही जान लिया कि उसके बच्चे किस आपत्ति में हैं। उसको उस असह्य कष्ट तथा कठिनाई का भी परिचय था जिसमें वह और उसके कुटुम्बी उस समय पड़ जावेंगे जब राज्य के कर्मचारियों को इसकी सूचना मिल जावेगी। निदान उसने अत्यन्त गोप्य रीति से मेरी चिकित्सा विधि का तीनों बच्चों के लिये प्रयोग किया। केवल स्टीम बाथ्ज़ व फ्रिक्शन हिप बाथ्ज़ उनको दिये। बच्चे बहुत ही कठिन दशा में थे। त्वचा पर काले-काले फफोले भरे हुए थे। इनको गुप्त रखने के लिये उसने बच्चों के मुख और हाथ राख से लपेट रक्खे थे, जिससे आधुनिक काल के स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी नियमों से जोकि ऐसे रोगों को फैलने से रोकने के लिये निर्माण किये गये हैं-बच जावें, चाहे ऐसा करने में कितनी ही हानि क्यों न हो। केवल चार स्टीम बाथ्ज़ और ७१ अंश (फेरनहाइट) जल में दश फ्रिक्शन हिप बाथ्ज़ लेने के पश्चात् ज्वर पर इतना प्रभाव हो गया था कि सब भय निवृत्त हो गया और खाल उतरने लगी थी। बिना प्रमाद के भोजन व स्वच्छ वायु ने भी चिकित्सा में काफी सहायता पहुँचाई। स्टीम बाथ्ज़ व फ्रिक्शन बाथ्ज़ के बराबर लेने से थोड़े ही काल में बच्चे इतने स्वस्थ हो गये थे कि वे फिर चलने-फिरने और बाहर जाने के योग्य हो गये थे। यद्यपि पूर्ण आरोग्यता की उपलब्धि के लिये उन्हें एक सप्ताह मेरी रीति के अनुकूल चिकित्सा और करनी पड़ी। सबसे अधिक मनोरंजक बात इन तीनों भयानक चेचक के रोगियों के सम्बन्ध में यह है, कि उन बच्चों में से एक के भी कोई चेचक का दाग़ कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता था। इस घर के पाँचों बच्चों के बार-बार चेचक का टीका लगाया गया था, तो भी उनमें दो-तीन बच्चों को चेचक (शीतला) निकली। इन दृष्टान्तों से हमको ज्ञात होता है कि चेचक (शीतला) के रोग में कितना कम भय रह जाता है जबकि उसका उपाय समझ में आ जावे। और यह भी ज्ञात हो गया कि टीका लगा कर चेचक (शीतला) से बचाव रहने में कितना संदेह है। जो मनुष्य उन बड़े-बड़े सृष्टि विरुद्ध नियमों को जानता है, जो स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारी चेचक (शीतला) के आरम्भ होने की सूचना पाकर बरतते हैं। वह उनको और भी नहीं समझ सकता जब चेचक का टीका लगा दिया है, क्योंकि इस टीके के विषय में यह समझ लिया जाता है कि यह पूर्णतः चेचक से सुरक्षित रखता है। टीके की बुराइयों पर मुझे कोई विशेष बात कहने की आवश्यकता नहीं है। टीके द्वारा विजातीय द्रव्य (फ़ारेन मेटर Foreign matter) स्पष्टतया अस्वाभाविक नियमों में कृत्रिम रीति से रक्त में शामिल किया जाता है। वास्तव में यह एक आश्चर्य की बात है कि मनुष्य किस प्रकार सृष्टि के विरुद्ध ऐसा काम कर सकता

है। परन्तु जहाँ विद्या की न्यूनता है वहाँ जादू में विश्वास करने को लोग उद्यत हो जाते हैं। बच्चों के पालन पर जो पुस्तक मैंने लिखी हैं, उसमें मैंने अधिक विस्तार से इस टीके के विषय में कथन किया है।

काली खांसी, कूकर खांसी, (हूपिंगकाफ़ Whooping cough) यद्यपि काली खांसी या कूकर खांसी को इतना भयानक नहीं मानते जितना डिफ़थीरिया या चेचक को, परन्तु बहुत से बच्चे इसकी भेंट हो जाते हैं, और कुछ नहीं तो खांसी के दौरे उठने का कष्ट तो सहन करते ही हैं। इस विषय में मैं यह कथन करना उचित समझता हूँ कि प्रत्येक खांसी[1] को रोग का चिह्न मानना चाहिये, क्योंकि मनुष्य कोई ऐसा जीव नहीं है जो खाँसने व थूकने के लिये बनाया गया हो। जब तक विजातीय द्रव्य (फ़ारेनमैटर) का दबाव ऊपर की ओर न हो और नीचे की ओर निकलने के मार्ग में रुकावट न हो, तब तक खांसी कभी नहीं उठती है, चाहे त्वचा अपना कर्तव्य ठीक प्रकार भले ही न करती हो या अंतड़ियां और गुर्दे अपना काम ठीक प्रकार से न करते हों।

उन बच्चों में जिनको कि काली खांसी होती है, साधारण चिह्न (विजातीय द्रव्य में) उफान होने के भी पाये जाते हैं। दूसरे शब्दों में यों कहेंगे कि उनको ज्वर होता है। विजातीय द्रव्य बाहर जाने को अपना मार्ग कंठ व शिर में ढूँढते है, यद्यपि उन स्थानों में कोई शरीर का भाग इस द्रव्य को बाहर निकालने के लिए नहीं है। सब से प्रथम यह बात जानना आवश्यक है कि खांसी आते समय रोगी को पसीना आता है या नहीं। यदि पसीना आता है तो रोगी बिना किसी उपाय के निरोग हो सकता है, परन्तु यदि खाँसी आते समय कुछ पसीना नहीं आता तो रोगी का मुख पीला पड़ जाता है. और यदि कोई उपाय न किया जावे तो काली खांसी से निस्संदेह मृत्यु तक हो जाती है। अन्त में आंख, नाक और कानों से .खून निकलने लगता है, क्योंकि विजातीय द्रव्य इन स्थानों से बाहर निकलने के लिये अपना मार्ग ढूंढता है। ऐसी दशा में साधारण सहायता पहुँचाना असम्भव नहीं है तो बहुत कठिन व असाध्य दशाओं में भी रोगी अच्छा हो जाता है।

इस रोग में भी उपाय वही एक है। उपाय कोई दूसरा नहीं हो सकता, क्योंकि रोग का मूल भी तो एक ही है। सब से प्रथम और मुख्य कर्तव्य यह है कि पसीना

१—इसी प्रकार से हिन्दी में कहावत है,—रोग की जड़ खांसी।

तत्क्षण निकालें। यह भी आवश्यक है कि इस विजातीय द्रव्य को जो ऊपर की ओर चल रहा है नीचे की ओर अर्थात् मल मूत्र त्यागने के मार्ग की ओर आकर्षित करें। शरीर के लिये द्रव्य निकालने के मार्ग नियत हैं और इन्हीं के द्वारा सृष्टि के नियमानुकूल हानिकारक द्रव्यों का निकालना सम्भव है। हमारा अभिप्राय या काम पूर्ण प्रकार से उपरोक्त स्नानों के करने से निकल आता है, ज्योंही पसीना आना आरम्भ होता है खांसी को भी चैन हो जाता है और जब पाचन शक्ति बढ़ जावेगी तो खांसी भी अवश्य सर्वथा मिट जावेगी। स्वस्थ होने के लिये कोई समय नियत नहीं है। सम्भव है कि खांसी पूर्ण प्रकार से थोड़े ही में मिट जावे। यह समझना भूल है कि यह दो तीन महीने तक रहेगी।

अब मैं यह सिद्ध कर चुका कि काली खांसी उसी तरह उत्पन्न होती है जिस तरह अन्य रोग, अर्थात् शरीर में उपस्थित विजातीय द्रव्य सड़ना आरम्भ होकर ज्वर उत्पन्न कर देता है। इन सब कथनों के पश्चात् आपको विश्वास हो गया होगा कि शरीर के उस विजातीय द्रव्य को जिसका स्वामी यह शरीर नहीं है बाहर निकाल कर स्वास्थ्य लाभ करने के उद्योग के कारण ही सब तीव्र (चिरकाली) ज्वर प्रकट होते हैं। अतः ऐसे तीव्र (एक्यूट Acute) ज्वर का आगमन शुभ समझना चाहिये। वास्तव में यह स्वास्थ्य प्राप्त करने का एक समय है, अब हम जान चुके कि (यह समय[1]) शरीर को ठीक उपाय के सर्व विजातीय द्रव्यों से स्वच्छ करके कैसा उपयोगी सिद्ध हो सकता है। अपना अभिप्राय क्या है? इसके समझाने को एक दूसरा दृष्टान्त देना ठीक होगा।

हम शरीर के भीतर के ज्वर को आंधी व वर्षा से उपमा दे सकते हैं। जैसे एक्यूट (तीव्र) ज्वर के कुछ काल पूर्व ठंड व बेचैनी हुआ करती है, वैसे ही आँधी मनुष्य का आगमन वायु के शुष्क व भारी होने से (जिसका कथन किये बिना प्रत्येक मनुष्य नहीं रुकता) प्रतीत हो जाता है। हम कहते हैं कि हवा भारी है, हमारा श्वास घुटा जाता है और हमको भीतर से ऐसा प्रतीत होता है कि आंधी के द्वारा ही हमें कुछ चैन पड़ेगा, क्योंकि यह सुख मानो वायु में ही है। गर्मी व सूखापन उस समय तक बढ़ता है जब तक कि उस दशा को न पहुँचे जो कि ठीक आंधी के पूर्व

१—स्वास्थ्य प्राप्त करने से उस समय से अभिप्राय है जिसका वर्णन पहिले हो चुका है।

होती है। हमको समीप आने वाली आंधी का भय ज्ञात होता है, परन्तु वास्तव में भय उस समय आरम्भ होता है जबकि आँधी हम पर आही जाती है, और ज्योंही आंधी समाप्त हो जाती है त्योंही यह भय भी दूर हो जाता है। इसके पश्चात् ही ताजगी व ठंडक आ जाती है, मानो प्रकृति में नये सिरे से जीवन पड़ गया। वायु के विजातीय द्रव्य (फ़ारेन मैटर) में जोश (उबाल) आने की क्रिया का नाम आंधी है। इसके द्वारा वायु उस अदृष्ट व तैरती हुई भाप को जो इस दशा में विजायतीय द्रव्य है निकालने की चेष्टा करती है। अतः आंधी वायु को स्वच्छ करने की एक प्रकार की क्रिया है जो सड़न के कारण भाप के रूप में परिवर्तित होती है। यह भाप पहले अदृष्ट थी, अब ऊष्णता के परिवर्तन के कारण वही बादल (मेघ) बन जाती है, और उसके बाद वर्षा तथा ओले (पत्थर) के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

ज्वर में भी ऐसा ही होता है। जब ज्वर आ जाता है तो शरीर को भय होता है और वह तभी मिटता है जब ज्वर दूर हो जाता है और शरीर में नये सिरे से ताजगी आ जाती है। आप देखते हैं कि इन दोनों दशाओं में आंधी व ज्वर के द्वारा भय उत्पन्न होता है, परन्तु इसके पश्चात् वही ताजगी पहुँचाते हैं और आराम हो जाता है। ताजगी व आरोग्यता केवल भयानक क्रिया से प्राप्त हुये हैं। एक[१] दशा में इसका कारण वायु में अधिक बोझ व भारीपन होता है, और दूसरी[२] दशा में शरीर का हानिकारक व विजातीय द्रव्य से भरा होना। यह दृष्टान्त तर्क की रीति से आपको विश्वास दिलायेगा कि सब दशाओं में सृष्टि के नियम एक से ही होते हैं।

अब मैं इस रोग के उस रोगी का हाल वर्णन करता हूँ जिसने मेरे चिकित्सालय में आरोग्यता प्राप्त की थी।

मध्य जुलाई सन् १८८६ ई० में लिपजिग नगर के किसी कुटुंम्ब में चार वर्ष के एक लड़के को काली खांसी हो गई; अगस्त मास के आरंभ में रोग अन्तिम अवस्था में पहुँच चुका था। इसके पश्चात् दो वर्ष की छोटी लड़की रोग ग्रस्त हुई। दश दिन तक

१—आंधी व वर्षा की दशा में।

२—अर्थात्–ज्वर की दशा में।

रोग बराबर बिगड़ता रहा, इस बीच में बालक कुछ भोजन (आहार) नहीं कर सके। अन्त में उनके माता-पिताने जो अपनी समझ के अनुकूल उनकी प्राकृतिक रीति से चिकित्सा कर रहे थे मुझसे प्रार्थना की। मैंने उसकी चिकित्सा करना स्वीकार कर लिया। छोटी लड़की इतनी कमजोर हो गई थी कि वह खड़ी भी नहीं हो सकती थी। मैंने उसे चार फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ प्रति दिन लेने, और उसके पश्चात् पसीना लाने के लिये बच्चों को शय्यापर लिटाना या सनबाथ[1] (sun bath) अर्थात् धूप का स्नान देना; और साधारण सृष्टि के अनुकूल भोजन करना बतलाया। अनुकूल ऋतु होने के कारण धूप के स्नान (sun bath) लिये जासके, जिन्होंने फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ के साथ आश्चर्यजनक फल दिखाये। कुछ सप्ताह तक ठीक-ठीक उपाय करने के पश्चात् बच्चे भय (खतरे) से बाहर निकल गये, और दो मास में वे पूर्ण स्वस्थ हो गये। भोजन के विषय में यह कैसी अचम्भे की बात देखने में आई कि छोटी लड़की ने जई के आटे की लपसी को जो बिना नमक, बिना शकर व बिना घी के बनती और जो उसको बहुत लभदायक होती छूने से भी इन्कार किया। वह केवल अपना नित्य का बिना गर्म किया हुआ दूध और शोकोलेट[2] ही खाती थी। (इसबात को प्रत्येक मनुष्य जान सकता है कि बच्चों को सादे से सादा[3] भोजन कराने का स्वभाव डालना कितना आवश्यक है) और न यही सम्भव हो सकता था कि उसको माता के पास शय्या पर रक्खा जा सके, यद्यपि पसीना लाने के लिये यह रीति सब से अच्छी थी। वह अपनी छोटी शय्या की इतनी वशीभूत हो गई थी कि उसके वास्ते वह बहुत रोती थी, हमको लाचार होकर उसका कहना मानना ही पड़ता था। इन सब बातों के होने पर भी मनुष्य के शरीर की गर्मी ही पसीना लाने और सुख देने के लिए सब से श्रेष्ट क्रिया है। किसी मनुष्य को रोगी के शरीर से निकलती हुई वायु से डरना नहीं चाहिये। पशु हमारे लिये (इस काम में) सबसे श्रेष्ट नमूना हैं। वे अपने रोगी व निर्बल बच्चों को बल पहुँचाने के हेतु उनको स्वयं

१—धूप के स्नान का वर्णन मेरी चिकित्सा विधि के अध्याय में देखिये।

२—नारियल के दुग्ध के योग से बना एक भोजन जो कुछ अन्य वस्तुओं के साथ मिला कर बनाया जाता और गर्म जल में घोल कर खाया जाता है।

३—धनी पुरुषों को इस विषय में सावधान होना उचित है। उनके बच्चे मसालों, घृत, रबड़ी तथा मिष्टान्न इत्यादि के ऐसे चटोरे हो जाते हैं कि रोगी हो जाने के समय उनसे पथ्य कराना अति कठिन, और कभी-कभी असम्भव हो जाता है।

अपने ही शरीर से गर्मी पहुँचाते हैं। आरोग्यता की दशा में ही बच्चों को माता की छाती से लग कर सुख पाने का स्वभाव डाल देना उचित है। तब रोग की दशा में उनको ऐसा करने में कोई नयी बात न मालूम होगी। 'आरोग्यता' व 'रोगी' शब्द इस स्थान पर साधारण अर्थ में ही प्रयोग में लाये गये हैं, क्योंकि यह बात हमको ज्ञात है कि वास्तव में स्वस्थ बच्चा किंचित् भी रोगी नहीं हो सकता, यदि उसका पालन ठीक प्रकार से किया गया हो।

कंठमाला अर्थात् स्क्रोफ्युला (Scrofula) ऐसा रोग नहीं है जिससे गर्मी उत्पन्न होती हो। अतः इसे प्रायः ज्वर की गणना में नहीं रक्खा जाता है, परन्तु वास्तव में ऐसा होना उचित है। कम से कम यह भी वैसा ही दुःखदायी रोग है जैसे और रोग जिनका वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ। बल्कि यह उनसे भी अधिक निकृष्ट है। यह उन गुप्त चिरस्थायी व कष्ट-साध्य रोगों में से है जो प्रायः पीढ़ियों से चले आते हैं। शरीर इतना बलिष्ठ नहीं होता कि वह ज्वर [1] उत्पन्न कर देवे, जैसा मैं अपने दूसरे व्याख्यान में बता चुका हूँ। इस रोग की उत्पत्ति प्रायः अधिक ठंडे या मध्यम ऋतुओं वाले प्रदेशों में हुआ करती है। उसके वाह्य चिह्न बहुधा निम्न लिखित होते हैं;—बड़ा शिर, वर्गाकर अर्थात् चौखूंटा मुख, आखें सूजी हुई, शरीर फूला हुआ, टाँगें निर्बल, हाथ पैर कुरूप, तथा मस्तिष्क में शिथिलता। परन्तु इनमें से एक या एक से अधिक लक्षण ही प्रत्येक रोगी में पाये जाते हैं, सब एक साथ नहीं। इन लक्षणों के अतिरिक्त हाथ पांव ठंडे हुआ करते हैं और सब शरीर में एक प्रकार की ठण्ड सी लगा करती है। यह ठण्ड लगने की दशा रोग को भयानक बनाती है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि विजातीय द्रव्य के बोझ के कारण से शरीर के अन्तिम भागों की शक्ति व कार्य्य करने की योग्यता जाती रही है—और यह भीतर की ओर एक प्रकार की नष्ट करने वाली गर्मी उपस्थित है।

इस बात को यों समझना चाहिये कि शरीर के बाहर के भाग, विशेष कर रक्त पहूँचाने वाले बाल के समान बारीक रगों के सिरे विजातीय द्रव्य से ठीक-ठीक ऐसे ही रुक गये हैं—जैसे मैला पानी ले जाने वाली नालियां मिट्टी से रुक जाती हैं। अतः रक्त का संचार त्वचा तक नहीं होता और इसी कारण ठण्ड लगने की दशा उत्पन्न हो जाती है।

१—पहिले बता दिया है कि ज्वर वास्तव में क्या वस्तु है? वह स्थल देखना उचित है।

इस रोग के एक्यूट (तीव्र) प्रकार के होने के कारण रोगी को कोई कष्ट नहीं होता। अतः केवल शरीर की साधारण दशा को देख कर ही हम जान लेते हैं कि इसमें रोग स्थित है। अब तक कोई यह भी नहीं कह सका है कि यह रोग कैसे उत्पन्न होता है और इसमें क्या क्या बातें होती हैं, फिर यह कहना कि यह रोग किस उपाय से अच्छा हो सकता है अत्यन्त ही कठिन है। जलवायु के बदलने पर इस में कुछ सहायता मिलने की आशा की जा सकती है। और यदि रोगी खर्च उठा सकता है तो उसको देश के दूसरे भाग में या किसी जल के किनारे के स्थान पर भेज देते हैं। इससे भी पूर्ण लाभ नहीं होता, यद्यपि कभी-कभी बीमारी कम होती हुई सी मालूम पड़ती है।

हमारी परीक्षा के अनुसार वह बच्चा जिसको कि स्क्रोफ्युला (Scrcfula) का रोग है सर्वथा विजातीय द्रव्य से भरा हुआ होता है। यह विजातीय द्रव्य उसे अधिकतर अपने माता-पिता से मिलाता है। यह विजातीय द्रव्य विशेषतः सिरों[1] की ओर दबाव करता है, और बड़े दबाव के कारण से शिर की आकृति गोल न रह कर तथा वर्गाकार चौखूंटी हो जाती है।

अब रबड़ की टोपी वाली उस बोतल की ओर, जिसमें उबलते हुए द्रव्य पदार्थ भरे हैं, और जिसका वर्णन पहले हो चुका है फिर ध्यान दीजिये। जिस प्रकार यह रबड़ की टोपी इस उबलते हुए द्रव्य के टुकड़ों से भर जाती है उसी प्रकार स्क्रोफ्युला के रोगी का शरीर भी फूल जाता है—परन्तु अपने मुखाकृति विज्ञान के द्वारा हम इस रोग की थोड़ी सी भी चेष्टा जान सकते हैं। वास्तव में यह आवश्यक है कि हम आरोग्य शरीर के स्वरूप को पहिले जान लेवें। इस बात का विवरण मेरी छोटी पुस्तक मुखाकृति विज्ञान में मिलेगा।

हाथ और पैरों का कुरूप होना भी उसी एक कारण से होता है। त्वचा न्यूनाधिक शिथिल हो जाती है और विजातीय द्रव्यों के उन टुकड़ों को जो उसके नीचे एकत्रित हो जाते हैं निकाल नहीं सकती। जैसा पहिले कहा गया है, इनसे रक्त संचार रुक जाता है। इस कारण बहुधा मनुष्यों की त्वचा ठण्डी प्रतीत हुआ करती है।

१—अभिप्राय है शरीर की अन्त की सीमा से अर्थात् अवयवों के अन्तिम भाग से, जैसा हाथ पैर व शिर, और शरीर की सर्व त्वचा से भी, क्योंकि धड़का अन्तिम भाग उस के चारों ओर की त्वचा ही है।

भीतर के अवयवों में इसी कारण गर्मी और भी अधिक होती है और एक प्रकार की बेचैनी भीतर ही भीतर प्रतीत होती है, जैसी कि स्क्रोफ्युला के रोगियों में सदा हम को मिलती है। वास्तव में यह दशा एक प्रकार की गुप्त (कष्ट साध्य) ज्वर की है, परन्तु यदि इसमें आरोग्यता न प्राप्त हुई तो इस पूर्व रोग से अन्य नवीन-नवीन दशाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। जिनका दूर होना स्क्रोफ्युला से भी अधिक भयानक व कष्ट साध्य हो जाता है। ज्योंहीं उपाय में असावधानी हुई त्योंही स्क्रोफ्युला से प्रायः क्षयी रोग हो जाया करता है। अतः एक अर्थ में स्क्रोफ्युला को स्वयं उस से भी अधिक किसी बुरे रोग की प्रारम्भिक दशा समझनी चाहिये।

इसका उपाय करते हुए हमको चाहिये कि ठंड को ज्वर में बदल देवें या शिथिल (क्रानिक Chronic) दशा को तीव्र (एक्यूट Acute) में भीतर के ज्वर को बाहर लावें। क्योंकि हमको फिर ज्वर से ही काम पड़ता है तो हमको उपाय भी वैसा ही करना चाहिये जैसा कि दूसरे ज्वरों का। हमको उचित है कि मार्गों को खोल देवें जिससे उबलते हुए द्रव्य शनैः-शनैः बाहर निकलता जावे। अतः हमको उचित है कि उसी रीति से जिसको हम अब अच्छी प्रकार से जान गए हैं अंतड़ियों, गुर्दों और त्वचा को अपने-अपने कामों के करने में प्रवृत्त करें। त्वचा क्रम से गर्म होने लगेगी, कदाचित् अधिक गरम हो जावे परन्तु ऐसी केवल उसी समय तक रहेगी जब तक पसीना नहीं निकलता है। इसके बाद अच्छी हालत में फिर आ जावेगी। प्रथम तो इस उपाय से थोड़े दिनों के लिये छुट्टी मिलती जान पड़ेगी, परन्तु सन्तोष एवं परिश्रम से सदा के लिये लाभ होगा। यह बात कहना कठिन है कि कितना समय पूर्ण आरोग्यता प्राप्त करने में लगेगा। और इसके लिये कभी-कभी कई दिन या कई सप्ताह भी काफ़ी न होंगे। बल्कि महीनों कभी कभी वर्षों लग जाते हैं और कभी-कभी आराम भी नहीं होता जब कि शरीर में पर्याप्त जीवन शक्ति मौजूद नहीं है।

मैंने अपने दूसरे व्याख्यान में यह बात दिखलाई थी कि रोगियों में ठण्ड प्रतीत होने का वही कारण है जोकि अधिक गर्मी का, और यही बात आपको स्क्रोफ्युला के समान रोगों में दिखाई पड़ेगी। इस प्रकार से रोग की दो दशाएँ जो देखने में एक दूसरे से भिन्न हैं, ठीक ठीक एक ही स्थान से उत्पन्न होती हैं। वे केवल इसी कारण से भिन्न-भिन्न प्रतीत होती है कि वे रोग की वृद्धि की भिन्न-भिन्न श्रेणियों में अपने को प्रकट करती हैं। तितली और तितली के उस कृमि में जिसके अभी पर नहीं निकले हैं हमको वही कीड़ा पहिचान में आता है जिसको कि हम आगे चल कर तितली के

रूप में देखते हैं जिसकी पहली व दूसरी दशाएँ केवल आदि के स्वरूप हैं। यही दशा भिन्न-भिन्न रोगों की भी है। हम उस मनुष्य पर हँसेंगे जो इस बात का पक्ष ले कि तितली का कृमि तितली से और तितली अपने कृमि से भिन्न। यह आश्चर्य की बात है कि आजकल भी लोगों का विश्वास रोगों के सम्बन्ध में प्रायः ऐसा ही फैला हुआ है। रोगों की एकता को अब तक किसी ने भी नहीं समझा है।

मैं स्क्रोफ्युला के एक ऐसे रोगी का वर्णन करता हूँ, जिसकी चिकित्सा मेरे यहां हुई थी। पांच वर्ष की अवस्था का एक लड़का अपनी अवस्था के दूसरे वर्ष से ही कंठमाला के रोग में ऐसा ग्रसित हुआ कि पांच वर्ष की अवस्था में भी वह चलने फिरने योग्य नहीं हुआ था। बालकों की गाड़ी में वह लकड़ी के टुकड़े की तरह पड़ा रहता था। उसके पिता ने उसका उपाय बड़े-बड़े डाक्टरों तथा वैद्यों से कराया परन्तु सब विष्फल हुआ। वास्तव में जिन औषधियों का प्रयोग किया गया था उन्होंने उसकी दशा में अन्तर अवश्य डाला। परन्तु केवल बुराई की ओर ही यहां तक कि उस प्रोफेसर ने जिसकी रक्षा में वह बच्चा था, अन्त में कह दिया कि बच्चा चलने फिरने के योग्य कभी भी न होगा। औषधियाँ, पेरिड्रेसिंग[1] के प्लास्टर, स्नान, बिजली (Electricity) मानो सर्व उपायों की परीक्षा करली गई, परन्तु सब निष्फल हुए, क्योंकि जिन डाक्टरों द्वारा चिकित्सा कराई गई थी उनको स्क्रोफ्युला के लक्षणों का कुछ भी ज्ञान नहीं था। अपनी अवस्था के पांचवें वर्ष के अंत में वह बचा मुझसे चिकित्सा कराने के लिये आया। पाचनशक्ति जिसकी ओर पहले चिकित्सकों में से किसी का भी ध्यान नहीं हुआ था सर्वथा बिगड़ी रही थी, शरीर तना हुआ, कड़ा और गुमड़ियों वाला था। प्रथम सप्ताह में ही मेरी चिकित्सा द्वारा पाचन शक्ति को लाभ हुआ और इसी लिये आरोग्य होना सम्भव हो गया। सप्ताह-सप्ताह के पीछे शरीर नया होता गया, और छः सप्ताह में रोगी विना सहारे के खड़ा हो सका। उसका शरीर लम्बाई-चौड़ाई में बहुत घट गया और वह बहुत कड़ा भी न रहा और बहुत सी गुमड़ियां जो हाथ से छूकर सहज प्रतीत होती थीं अब घट घट कर लोप हो गई। छः महीने पीछे उस बच्चे का शिर जो बहुत ही बड़ा था घट कर मध्य कोटि का रह गया, और अब उसे अरोग्यता प्राप्त हो गई। अब वह दूसरे बच्चों की तरह कूद-फांद सकता था और प्रसन्न चित्त था।

१—यह एक प्रकार का मसाला होता है जिसको पट्टी बांध कर उसके ऊपर लगा देने से सूखकर बहुत सख़्त हो जाता है। इसके लगाने से पट्टी नहीं हटती, एक जगह क़ायम रहती है।

क्या मैं अन्य रोगों की भी गणना करना आरंभ करूँ ? थोड़े ही से नाम बतलाना उपयुक्त होगा। जैसे कर्णमूल, पित्ती का उछलना, सर्व प्रकार की ऐंठन, अतीसार, गंज[1] मुँह आना[2] इत्यादि इन सब का सम्बन्ध एक ही कारण से मिलाया जा सकता है। इन सब में कुछ न कुछ ज्वर हुआ करता है। अतः इनसे आरोग्यता भी एक ही प्रकार की चिकित्सा द्वारा हो जानी चाहिये।

इन सब रोगों में हम सदा दो बातों में से एक बात देखते हैं, या तो अधिक गर्मी, या अधिक ठंड। हम जान चुके हैं ये दोनों लक्षण ज्वर के ही हैं, अतएव यह निश्चय है कि एक ही उपाय से दोनों दशाओं में आरोग्यता भी प्राप्त हो जायगी। यह बात मैं सहस्रों रोगियों की चिकित्सा करके सिद्ध कर चुका हूँ। रोग के सब रूपों का सम्बन्ध शरीर में विजातीय द्रव्य के भार से मिलाया जा सकता है; अथवा दूसरे शब्दों में इसी को यों कहेंगे कि रोग केवल एक ही है, बहुत से भिन्न-भिन्न रूपों में प्रगट होता है। अतः आवश्यक बातों के विचार से केवल एक ही विधि से चिकित्सा करने की आवश्यकता है। हम सिद्ध कर चुके हैं कि रोग के भिन्न-भिन्न स्वरूप शरीर की आरोग्यता प्राप्त करने के यत्न हैं। अतः उनको दवाना या गुप्त रखना भूल है। औषधियों से उपाय करने वाले यही रोग की अवस्था में हैं, शरीर को सहायता देनी चाहिये जिससे वह आरोग्यता प्राप्त करने के अवसर जितनी शीघ्रता से हो सके कम भयानक रीति से उत्पन्न करे। केवल इसी रीति से शरीर वास्तव में आरोग्य हो सकता है। यदि रोग दबा दिया जाता है या लोप कर दिया जाता है, तो वह तन्दुरुस्ती में शनैः-शनैः कठिन और सर्वथा असाध्य दशाएँ पैदा कर देता है, क्योंकि विजातीय द्रव्य शरीर में ऐसी दशा में शिथिल नहीं रहता, उसमें सदा परिवर्तन या रूपान्तर हुआ करते हैं।

रोग के सब रूपों में अब एक बात आहार (भोजन) के विषय में कहते हैं। यह ऐसा होना चाहिये कि शरीर में कोई नवीन विजातीय द्रव्य प्रवेश न करने पावे, और न उसके कारण सड़न ही बढ़ने पावे, क्योंकि शरीर के भीतर एक बलवान क्रिया होती रहती है। इस कारण से इस पर जहाँ तक हो सके पाचन करने का काम कम

१—शिर में गोल-गोल चिह्न हो जाते हैं और बालों की जड़ से पीप निकल कर बाल गिर जाते हैं, और गंज शिर में हो जाता है, अंग्रेजी में स्काल्ड हेड (Scaldhead) कहते हैं।

२—मुँह में छाले पड़ जाने का रोग है।

डालना चाहिये। अतः सब से प्रथम बात यह है कि रोगी को बहुत थोड़ा भोजन दिया जावे, जब कि वह स्वयं खाना पीना नहीं चाहता[1] है तो उसे खाने पीने की रुचि नहीं दिलानी चाहिये।

इस स्थान पर मैं रोगियों से कुछ बातें छूत लगने के भय के विषय में कहना चाहता हूँ। कोई भी तीव्र (एक्यूट Acute) रोग (ज्वर) विचार में नहीं आसकता जिसके पहिले कोई शिथिल (क्रानिक Chronic) दशा जिसमें कि शरीर में बिजातीय द्रव्य का भार होता है, हो न चुकी हो। इस कारण से शिथिल (क्रानिक) दशा बहुत ही भयानक होती है। यह सत्य है कि यह बुरी दशा बच्चों को केवल माता पिता से ही प्राप्त होती है, परन्तु यह बात प्रत्येक दशा में होती है जहाँ कि माता पिता विजातीय द्रव्य से भरे हुये होते हैं। अतः ऐसे द्रव्य के पीढ़ी दर पीढ़ी वृद्ध करने का यही सहज मार्ग है। जिस प्रकार बच्चे अपने माता पिता के द्वारा अपने बाह्य शरीर के रूप, उनकी आँखों के रंग, और उनकी मस्तिष्क शक्तियों को उनसे प्राप्त करते हैं, तो यह बात सहज ही विचार में आती है कि विजातीय द्रव्य (फ़ारेन मैटर) भी विशेष कर उन्हें माता के शरीर से ही प्राप्त होते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि रोग के वही रूप प्रायः बच्चों में प्रकट होते हैं जो पहले उनके माता-पिताओं में हो चुके हैं।

अब तक ऐसा विचार करते हैं कि छूत केवल तीव्र (एक्यूट Acute) रोगों की ही दशा में लगा करती है, परन्तु जैसा मैं दिखला चुका हूँ, माता-पिता के शरीर से बच्चों में विजातीय द्रव्य का आना रोग के आने से कुछ भिन्न नहीं है। यही छूत है। इस विजातीय द्रव्य के आने से अभिप्राय तीव्र रोग के कारण के आने का है। जैसा मैं बता चुका हूँ विजातीय द्रव्य के भार का माता-पिता से पहुँचना मान कर ही बच्चों के रोग समझ में आ सकते हैं।

प्रश्न यह किया जा सकता है कि तीव्र (एक्यूट) रोग क्या एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को पहुँच सकते हैं? इसका उत्तर 'नहीं' और 'हाँ' दोनों शब्दों में हो सकता है। पूर्ण प्रकार से स्वस्थ्य मनुष्य, अर्थात् वे मनुष्य जिनके शरीर में विजातीय द्रव्य नहीं है, उनको छूत से कोई रोग नहीं लग सकता, चाहे वह कितनी ही

१—भोजन के विषय में और आगे चल कर 'हम क्या खायें और हम क्या पीवें' के अध्याय में देखिये।

वेसिलाई[1] (Bacilli) वेक्टेरिया[2] (Bacteria) या माइक्रोब्स[3] (Microbes) श्वांस या मुख द्वारा भक्षण क्यों न कर जावें । परन्तु उन मनुष्यों की दशा में जिनमें कि विजातीय द्रव्य (फ़ारेनमैटर) स्थित है सड़ने से उत्पन्न हुई, यह वस्तुएँ उस द्रव्य के सड़ने के लिये एक चेष्टा करने वाला कारण बन जाती हैं, मुख्यत: उस समय जब कि गर्मी उसके अनुकूल हो।

तीव्र रोग की दशा में विजातीय द्रव्य लगातार उफान में आता रहता है और शरीर उसको बाहर निकालता रहता है; यह दशा विशेषत: उस समय में होती है जब कि रोगी को आरोग्य हो रहा हो अर्थात् जब कि विजातीय द्रव्य शरीर की उन वस्तुओं[4] के द्वारा निकल रहा है जो शरीर से तरी के रूप में निकलती हैं। अत: उन रोगियों के द्वारा छूत का अधिक भय है जो रोग मिट जाने के पीछे बल प्राप्त करने की दशा में होते हैं। स्वयम् छूत कैसे लगती है इस बात को एक जाने हुए दृष्टान्त द्वारा मैं स्पष्ट करके समझाऊँगा।

(यदि हम सहज में उफान (ख़मीर) आने वाली किसी वस्तु (जैसे मदिरा का फेन या ख़मीर,) को सड़ावें और इस दशा में उसको किसी ऐसी दूसरी वस्तु में मिलावें जिसमें उफान (ख़मीर) शीघ्र आ जाता हो, जैसे गुंधे हुए आटे या दुग्ध इत्यादि में, तो इन पूर्वोक्त वस्तुओंमें यदि उष्णता पूरी हो तो शीघ्र ही ख़मीर उठ आवेगा ; अत: ख़मीर या मदिरा का फेन, जो स्वयं उफान उठने से ही प्राप्त होता

१—वेसिलाई—ये वनस्पति के ऐसे छोटे-छोटे शरीर हैं जो कि सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा ही देखते हैं, इनका रूप लकड़ी के सदृश सीधा होता है, यह भी एक प्रकार के बेक्टेरिया ही है।

२—वेक्टेरिया—इनके विषय में जाना जाता है कि यह एक प्रकार के अत्यन्त सूक्ष्म जीव हैं जोकि सूक्ष्म दर्शक यन्त्र से देखे जा सकते हैं। ये जीव द्रव पदार्थों में जिसमें कि कोई परमाणु किसी वस्तु के स्थित हों, वायु के स्पर्श से कुछ काल में उत्पन्न हो जाते हैं। यह एक प्रकार के महीन सूक्ष्म सूत से होते हैं। प्रायः उनका रूप गांठवाली छड़ी सा होता है, और एक इंच का ६ सहस्रवां भाग लम्बे होते हैं।

३—माइक्रोब्स—गोल या वृत्ताकार रूप के वेक्टेरिया को माइक्रोब्स कहते हैं।

४—नाक, कान, मुख, लिंग, गुदा, और त्वचा के द्वारा जो गीली या पतली वस्तुए निकलती हैं उन से अभिप्राय हैं।

है, यदि दुग्ध या गुंधे हुए आटे में मिला दिया जाय तो वह ख़मीर उत्पन्न कर देता है। जिस प्रकार रोटी फुलती या दूध जम जाता है। तीव्र रोगों में भी ऐसी ही क्रिया होती है। उफान खाता हुआ विजातीय द्रव्य रोगी के श्वास, शरीर की त्वचा से निकली हुई वायु, या[1] वाष्प या मल (पाखाने) से निकल कर वायु में मिल जाता है। अब यदि यह ऐसे मनुष्य के शरीर में प्रवेश करे जिसमें विजातीय द्रव्य उपस्थित है और वहां ठहर जावे, अर्थात् शीघ्र न निकल जावे, तो उसका प्रभाव उस विजातीय द्रव्य पर जो शरीर में पहिले से व्याप्त है ठीक ठीक ऐसा ही पड़ेगा जैसा कि गुंधे हुए आटे में मदिरा के फेनका, या दुग्ध में जामन का, अर्थात् ख़मीर के सदृश। अतः दूसरे शरीर में वैसाही ख़मीर (उफान) अर्थात् वैसीही बीमारी होती है जैसे कि पहिले में, स्पष्टतया यह कहना उचित ही है कि छूत लगने की सब क्रियायें, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं कि उबाल खाते हुए विजातीय द्रव्य का, इसकी स्वाभाविक साधारण दशा में, किसी दूसरे के शरीर में टीका लगाना है। परन्तु ऐसा द्रव्य जामन (ख़मीर) के सदृश तभी प्रभाव करता है जब कि उसको पर्याप्त विजातीय द्रव्य (फ़ारेन मैटर) पर्याप्त परिमाण में गुप्त रूप से किसी दूसरे शरीर में मिलता है। केवल उन्हीं लोगों को किसी तीव्र रोग से छूत लग जाने का भय है जिनके शरीर में विजातीय द्रव्य का पूरा-पूरा भार उपस्थित है, या (जैसा कि मामूली बोल चाल में कहते हैं) उन लोगों को जिनकी प्रकृति इन्ही को[2] ऐसे रोगों को ग्रहण कर लेने की होती है छूत लगने की आशंका होती है। इस समय तक यह बात ज्ञात नहीं हुई है, कि रोगों को ग्रहण कर लेने की यह प्रकृति क्यों होती है? इस स्वाभाविक रीति से विजातीय द्रव्य में टीका लगने और बनावटी रीति से शस्त्र द्वारा चेचक (शीतला) के टीका लगाने में इतना ही अन्तर है जितना कि टीका लगाने के द्रव्य में और उसके हलके व भारीपन में भेद है। होमियोपैथी यह बात बतलाती है कि सब पदार्थ, द्रव अवस्था में होने के कारण अत्यन्त प्रभावशाली होते हैं, इस कारण से उबलता हुआ हानिकारक द्रव्य अपनी

१—त्वचा से विजातीय द्रव्य पसीने या वायु के रूप में निकलता है।

२—कोई कोई शरीर ऐसे होते हैं कि उनमें किसी खास रोग को पकड़ने की योग्यता होती है, वे उसी रोग को शीघ्रता से पकड़ लेते हैं जिसकी ओर उनकी चेष्टा होती है, जिन शरीरों में जिस जिस रोग के अंकुर अर्थात् विजातीय द्रव्य उपस्थित होते हैं वे शरीर उसी उसी रोग को ज्यादा पकड़ते हैं। शरीर में किसी रोग की ओर चेष्टा होने का वृत्तान्त इसीसे जान लेना उचित है।

स्वभाविक हलकेपन की दशा में अत्यन्त ही प्रभावशाली होता है, जब कि उसको भूमि अनुकूल मिलती है। एलोपेथिक की औषधियों की मात्राओं में, चेचक के टीके का प्रभाव (एलोपेथिक की और सर्व औषधियों की सदृश), जीवन की शक्तियों (चेतनता) पर शिथिलता व अचेतनता का प्रभाव डालता है अर्थात् यह शरीर से उस शक्ति को मिटा देता है जोकि शरीर के लिये तीव्र (एक्यूट Acute) रोगों को (क्यूरेटिव क्राइसिस ज्वर Curative crisis, Fever) उत्पन्न करके विजातीय द्रव्य को निकाल देने के लिये आवश्यक है। बुरे द्रव्य के परिमाण की भी यह बृद्धि करता है और इस रीति से एक अधिक बुरी शिथिल दशा बना देता है जैसा कि शिथिल (क्रानिक Chronic) रोगों के उस बृद्धि करने से जोकि चेचक के टीके के व्यवहार के समय से हुई है, यह बात पूर्ण प्रकार से सिद्ध होती है। ज्वर की सब औषधियाँ जैसे क्यूनीन [१] (Quinine) एन्टीपाइरीन [२] (Antiphrin) एन्टीफ़ेब्रीन (Antifybrin) मर्फ़िय [3] (Morphia) इत्यादि का ऐसा ही प्रभाव हैं; शरीर के स्वास्थ्य प्राप्त करने की शक्तियों को वे सर्वथा शिथिल कर देती हैं और विजातीय द्रव्य के उफान को कम और कभी बंद भी कर देती हैं, परन्तु उसको निकालती कभी नहीं हैं। इसी से वे रोग उत्पन्न होते हैं, जो पहिले बहुत कम दृष्टि में आते थे, जैसे केन्सर (Cancer), अत्यन्त घबराहट, पागलपन, पक्षाघात (फ़ालिज), उपदंश, क्षयी, कंठमाला इत्यादि इत्यादि। शरीर में अधिक अधिक विजातीय द्रव्य भरता तो जाता है, परन्तु तीव्र ज्वरों के द्वारा उसको बाहर निकालने की योग्यता शरीर में नहीं होती। उपरोक्त रोगों की दशा में शरीर में विजातीय द्रव्य का भार अत्यन्त अधिक हो जाता है, और पूर्ण प्रकार आराम होना प्रायः असम्भव हो जाता है। वही औषधियां जिन में ज्वर को बहुत तीव्रता के

१—क्यूनीन ज्वर की बहुत प्रसिद्ध औषधि सब लोग जानते हैं।

२—ये दोनों अर्थात् एन्टी पाइरीन व एन्टी फेब्रीन वे औषधियां हैं जोकि डाक्टर लोग पसीना लाने के वास्ते रोगी को दिया करते हैं, ये औषधियां विष की हैं, ये बड़ी सावधानी से नियत परिमाण के साथ काम आती हैं और असावधानी से मृत्यु दायक विष बन जाती हैं।

३—मारफिया अफीम का सत है, बहुधा पीड़ा के कम करने को दिया करते हैं। यह भी विष की औषधि है और नशा भी लाती है; नियत परिमाण से अधिक यह भी मृत्यु दायक विष बन जाती है।

साथ दवा देने की योग्यता है जैसे क्यूनीन, एन्टीफ़ेब्रीन, एन्टीपाइरिन, फीनिष्टीन इत्यादि इत्यादि चिकित्सकों की सम्मति में ज्वर की श्रेष्ठ औषधियाँ हैं। यह हमारा पूर्ण विश्वास है कि इस प्रकार की औषधियाँ स्वास्थ्य को सब से बढ़ कर हानि पहुँचाती हैं। एक और भी बात कह सकते हैं।

हम सब को इस बात का परिचय है कि मेडिकल साइन्स (औषधि द्वारा चिकित्सा करने की विद्या) प्रति दिवस नवीन औषधियों के व्यवहार करने की खोज में रहती है, क्योंकि पहिली औषधियाँ पहिला सा प्रभाव नहीं दिखलातीं। (Tuberculin inoculation) ट्यूबरक्युलिन इनआक्यूलेशन) क्षयी रोग के लिये टीके की मदान्ध उन्मत्तता का जितनी उस समय (जब कि एक भी रोगी उससे अच्छा नहीं हुआ था) हुई थी, किंचित् स्मरण तो कीजिये; ऐसा तमाशा इस संसार में इससे पहले कभी भी नहीं देखा गया है। प्रथम प्रत्येक औषधि शक्तियों को अवश्य निकम्मा (निर्बल) कर देती है, और कुछ काल में शरीर उसके लिये ऐसा निर्जीव हो जाता है कि फिर आगे को उसका सामना नहीं कर सकता। फिर एक नवीन और अधिक तीव्र अन्य औषधि की आवश्यकता होती है जो आवश्यक शक्तियों को अधिक निकम्मा करे यहां तक कि विजातीय द्रव्य में उफान का उठना फिर किसी प्रकार से भी नहीं रोका जा सकता, और फल यह होता है कि प्राण जाते रहते हैं। एक दृष्टान्त से यह बात और अधिक स्पष्ट हो जावेगी।

प्रत्येक मनुष्य को जो तम्बाकू पीना सीखता है अपने आमाशय से उस समय तक लड़ना पड़ता है जब तक यह (आमाशय) तम्बाकू की विषैली नाईकोटाईन (Nicoitne) को ग्रहण करने के लिये सर्वथा निकम्मा न हो जावे। पहिले तो आमाशय में पूर्ण शक्ति इस बात की होती है कि इस विष के प्रभाव से अपने लिये बचाने में सफलता प्राप्त करले, परन्तु बहुत शीघ्र ही इसकी शक्ति कम हो जाती है और फल यह होता है कि विष के प्रभाव को वह सर्वथा अनुभव भी नहीं कर पाता पहिले की अपेक्षा अब उसको अधिक तीव्र विष की आवश्यकता होती है जिससे अमाशय पर पहिला सा ही प्रभाव पुनः पड़े।

१—यह वह चिकनी विपरस द्रव वस्तु है जो तम्बाकू पीने से उसमें निकलती है।

२—यह भी ज्वर की एक औषधि है जिसका प्रयोग प्रायः डाक्टर लोग करते हैं; शिर के तीव्र दर्द के समय भी इसको खिलाते हैं।

वे लोग जो तम्बाकू पीना आरम्भ करते हैं और उसको एक दम सह नहीं सकते वह हमसे आश्चर्य में डालने वाली यह बात कहा करते हैं कि उनके आमाशय अभी बहुत कमज़ोर (निर्बल) हैं, उनको तम्बाकू पीने का स्वभाव पड़ना उचित है. अभी वे धूम्रपान को सहन नहीं कर सकते। वास्तव में वार्ता तो सर्वथा इसके विरुद्ध हैं; जिस समय तक आमाशय तम्बाकू से युद्ध करता है तो उससे यह बात सिद्ध होती है कि इसमें अभी पूर्ण आवश्यक शक्ति उपस्थित है, अर्थात् उसके विष को बल करके निकाल देने की उस में पूर्ण शक्ति प्राप्त है; जब यह कुछ भी युद्ध नहीं करता तो मानो पूर्व की स्वाभाविक शक्ति जाती रही, और पहिले की अपेक्षा अधिक निर्बल हो गया।

इस प्रकार इस गुप्त विजातीय द्रव्य से भरने के पीछे शरीर को किसी और अधिक बाहरी कारण की आवश्यकता होती है। यदि इससे विजातीय द्रव्य को निकलवाने की इच्छा है, कारण यह कि इसकी आवश्यक शक्ति कम हो गई है। मैं यह बतला चुका हूँ कि बाहरी कारण क्या है ? प्रायः ऋतु परिवर्तन इसका प्रथम कारण होता है, और यही कारण है कि असाधारण ठंड पड़ने के पश्चात् ही सदैव महान् रोग प्रकट हुआ करते हैं।

इस स्थान पर मैं कई एक दृष्टान्त दूंगा। यदि मदिरा की एक बोतल किसी अँधेरे और ठण्डे तहखाने में आप ले जावें तो उसमें सहज में नहीं उफान आवेगा; परन्तु बोतल को धूप में अथवा अधिक गर्मी में रखने से उस में तत्क्षण उफान आने लगेगा, चाहे वह बोतल बहुत अच्छे प्रकार से ही क्यों न बंद कर दी गई हो। यह उफान न तो वेसिलाई (Bacilli) से और न माईक्रोब्स (Microbes) से उत्पन्न होता है, वह केवल प्रकाश व गर्मी से उत्पन्न होता है। इस के साथ ही, मदिरा में भी रूपान्तर हो गया है, पहिले वह और स्वच्छ थी। अब गंदली हो गई है। और यदि अब वेसिलाई स्थित हैं तो वे सड़न से उत्पन्न हुए हैं।

वायु में भी हमको वही बात प्रतीत होती है। एक दिन गर्मियों का हमको स्वच्छ व निर्मल मिलता है, दूसरे दिन आकाश आच्छादित होता है। परन्तु प्रत्येक मनुष्य जानता है कि जल की भाप जो वायु में अदृष्ट दशा में रहती है वह एकत्रित होकर ऋतु परिवर्तन से (और इस समय पर उष्णता की न्यूनता से) जम जाती हैं। इस स्थान पर हम इस बात को भी देखते हैं कि किस प्रकार से प्रत्येक मुख्य

दर्जे की ठण्डक से स्वयं उस दर्जे की ठण्डक के अनुकूल ही वस्तु नीचे गिरती है (ओस, वर्षा कुहरा, ओला, वा पाला, और हिम) तो भी इस बात के जानने में कोई कठिनता नहीं होती कि यह सब वस्तुएँ जल से ही बनती हैं।

गर्म देशों के दलदल वाले स्थानों में सड़ता हुआ द्रव्य दलदल से उठकर वायु में मिलता रहता है, अतः ऐसे मनुष्य का जिसमें विजातीय द्रव्य का भार स्थित है थोड़ी देर उस स्थान पर खड़ा रहना ज्वर (सड़न उफान) उत्पन्न करने को काफ़ी है। दलदल से निकलते हुए परिमाणु (वाष्पाकार) शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य (फ़ारेनमैटर) पर ऐसा प्रभाव डालते हैं जैसा ख़मीर गुंधे हुये आटे में, अर्थात् सड़न (ज्वर) उत्पन्न करते हैं। बन्द जल भी ऐसा ही प्रभाव करता है चाहे वह इतना तीव्र न हो। पहाड़ की स्वच्छ निर्मल झीलों (जिनकी पेंदी पथरीला होने के कारण जल में सड़न पैदा नहीं होती) और पृथ्वी के दूसरे बद्ध और गदले तड़ागों के भेदों को तनिक ध्यान में लाइये।

कभी-कभी ये पिछले कहे हुए तड़ाग भी पूर्ण स्वच्छ रहते हैं, परन्तु ऋतु के परिवर्तन के साथ जल में सड़न उत्पन्न होती है। सड़न नीचे से उठकर सब तड़ाग को गदला कर देती है, अतः यह बात बहुधा पहिचानी जा सकती है कि उसके जलके नीचे पेंदी में जमीन कैसी हैं। ठहरे हुए जल में जिसकी तली में कीचड़ है प्रायः एक प्रकार का उफान ठीक-ठीक उसी प्रकार से आता है जैसे कि दलदल के जल में ऋतु के परिवर्तन से आया करता है, और यह दूसरी वस्तुओं में ख़मीर (जामन) के समान काम देता है तो यह उफान की क्रिया स्पष्ट दिखाई दे सकती है। यदि ग्रीष्म व सरद ऋतु की समानता की जावे। शरद ऋतु में दलदल का ठहरा हुआ जल कुछ अधिक स्वच्छ होता है। क्योंकि ठंड से सब उफान व सड़न रुकती है, परन्तु ग्रीष्म ऋतु में (वही जल) गदला हो जाता है और घृणित प्रतीत होता है।

प्रश्न केवल यह है कि जब सीधे रास्ते से छूत का लगना असम्भव है तो देश भर में फैलने वाले (अर्थात् महामारी) रोग को आज हम एक स्थान पर देखते हैं और कल दूसरे पर।

यह बात प्रगट की जा चुकी है कि शरीर के भीतर बिना विजातीय द्रव्य (फ़ारेन-मैटर) होने के महामारी रोग होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता। अधिक ध्यान

करने पर महामारी रोग प्रति वर्ष हमको होते हुए प्रतीत होते हैं, चाहे सदा इतने फैले हुए नहीं होते जैसा कि सन् १८६० के आरम्भ का इनफ्लूएञ्जा Influenza था। परन्तु इस बात से कौन वाकिफ़ नहीं है कि प्रति वर्ष नियत समय पर खसरा रक्त ज्वर, डिफ़थीरिया Diphtheria काली खांसी, जुकाम, इनफ्लूएञ्जा बवाई हालत में फैलते हुवे प्रतीत होते हैं। प्रायः सब के एक से ही आचरण व आहार व्यवहार के कारण यह बात सिद्ध होती है कि उन में विजातीय द्रव्य का भार वहुधा (चाहे उस के परिमाण से और चाहे उसकी योग्यता से) उसी के सदृश एक प्रकार की एक समान दशा प्रगट किया करता है। अब यदि एक वही परिवर्तन करने वाला कारण इस द्रव्य पर प्रभाव डाले, अर्थात् यदि ऋतु एक ही प्रकार से बाहर से शरीर की आवश्यक शक्तियों को भड़कावे तो वे शरीर की शक्तियां भी ऐसे ही (ज्वर प्राप्त कराके) विजातीय द्रव्य को निकाल कर स्वास्थ्य प्राप्त करने का उद्योग करेंगी। और जब कि बहुत से मनुष्यों में विजातीय द्रव्य का भार समान है, तो उसी के अनुकूल कारण से उसी के सदृश उसका एकसा प्रभाव बहुत से मनुष्यों में होगा, इस प्रकार से कोई बवाई रोग उत्पन्न हो जायगा। परन्तु किसी मनुष्य को यह कदापि न भूलना चाहिये कि बवाई रोगों में भी अलग-अलग रोगियों की दशा एक सी नहीं होती, सदा उनमें रोगों के चिह्न व रोगों के चलने चलाने के मार्ग में कुछ न कुछ भिन्नता होती ही है। जब कभी कोई बवाई रोग, जैसा कि हमने इनफ्लूएन्जा की दशा में देखा है, आज कहीं और कल कहीं प्रकट होता है तो एक मात्र उसका कारण एक मध्य ऋतु (मोसम) ही है। इस बात में ऐसे रोग आंधी एवं वर्षा के तूफ़ान से समता रखते हैं, जो वर्षा व आंधी की बवाई रीति में दिखाई पड़ते हैं। अर्थात् आज एक स्थान में और कल दूसरे स्थान में जब कि कोई बवाई रोग किसी स्थान में एक बार भी उत्पन्न होजाता है तो सीधे मार्ग से छूत का लगना, जैसा कि प्रगट हो चुका है, रोग के फैलाने में शेष बातों की न्यूनता को पूर्ण कर देता है, ठीक-ठीक वैसे ही जैसे इनफ्लूएन्जा की पिछली दफ़ा की बवाई बीमारी में।

ऐसी महामारी (अर्थात् बवाएँ) जो बहुत दूर तक फैली हों वर्तमान वर्षों में कम हुई हैं। परन्तु जैसा कि कथन हो चुका है इसका कारण केवल एक यही है कि चिकित्सकों ने लोगों की आवश्यक शक्तियों को ऐसा अधिक कमज़ोर करना सीख लिया है कि लोगों को नष्ट कर डालने वाली बवाई बीमारी के संकट के समयों

(क्यूरेटिव क्राइसिस, (Curatve crises) में शरीर फिर केवल उसी समय जीवन की आवश्यक शक्तियों को नियमानुकूल एकत्रित करता है जब कि मुख्य प्रभाव पड़ने के कारण से ऐसा करने को वह विवश कर दिया जाता है। परन्तु इसका आवश्यक फल यह होता है कि सब शरीर में रोग की एक अधिकतर बुरी और गुप्त और शिथिल दशा उत्पन्न हो जाती है, और इसमें हमको सन्देह नहीं कि वह समय अवश्य आवेगा जब कि इस वार्ता को लोग सर्वत्र जान जावेंगे।

इस सब कथन के सारांश से हम यह बातें प्राप्त करते हैं। (प्रथम) शिथिल दशा में रोगों के विस्तीर्ण होने में (अर्थात् माता पिता से बच्चों में) केवल विजातीय द्रव्य (फ़ारेन मैटर) ही इस आगमन का कारण है। जो कोई मनुष्य इस प्रकार रोग के एक से दूसरे में पहुँचने के रोकने का इच्छुक है तो उसको सब से प्रथम इस द्रव्य से मुक्त होने की चेष्टा करनी उचित है। यह संप्रदान[1] का मार्ग रोग के बढ़ाने का बहुत बुरा मार्ग है, क्योंकि यह बात[2] प्रत्येक रोग में होती है, हालांकि तीव्र रोग के द्वारा छूत केवल उसी समय लगती है जब कि प्रकृति की चेष्टा उस ओर को है।

इस बात की परीक्षा कि शरीर में किस सीमा तक विजातीय द्रव्य शिथिल दशा में भरा हुआ है, मुखाकृति विज्ञान के द्वारा हो सकती है।

(द्वितीय) तीव्र (एक्यूट Acute) रोगों के द्वारा छूत लगने की दशा में तीव्र रोग एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में सड़े हुए द्रव्य के प्रायः वायु के द्वारा पहुँचने से लगते हैं। परन्तु इस दूसरे मनुष्य के शरीर में, विजातीय द्रव्य के (स्वाभाविक चेष्टा) स्थित होने के बिना छूत का लगना असम्भव है, क्योंकि रोग केवल इस द्रव्य के सड़ने से ही उत्पन्न होता है। अतः रोगी के कमरे में स्वच्छ वायु का होना आवश्यक है। सिवाय इस के कि मकान की खिड़कियां खुली रक्खी जावें या स्थान की वायु स्वच्छ रखने का कोई यन्त्र काम में लाया जाय, और कोई तीसरा मार्ग इस (स्वच्छ वायु के) प्राप्त करने का नहीं है। सब सुगंधियाँ और सब औषधियाँ जो कि वायु के विष के दूर करने के लिये बहुत ज्यादा वर्ती जाती हैं वे विजातीय द्रव्य को नहीं मिटातीं, वरन वायु को और भी निकृष्ट कर देती हैं। उसी के साथ वे हमारी

१—अर्थात्-माता पिता के द्वारा गर्भ से ही सन्तान में रोग का पहूँचना।

२—अर्थात्-प्रत्येक रोग माता पिता द्वारा उनकी सन्तानों में जन्म ही से आ सकता है।

स्वास्थ्य रक्षक अर्थात् प्राणेन्द्रिय की शक्ति को शिथिल कर देती हैं, और रोगी के बहुत ही दुर्गन्धित श्वांस की ओर से वे उसको बेख़बर बना देती हैं; अर्थात् उनका प्रभाव ठीक-ठीक उपरोक्त औषधियों के सदृश ही हुआ करता है, श्रेष्ठ नहीं वरन् निकृष्ट। इन बानस्पतिक शरीरों को जोकि सड़न से उत्पन्न होते हैं, नष्ट करने के चाहे सब यत्न किये जावें, परन्तु उनमें सफलता कभी न होगी; क्योंकि अल्प हानि-कारक द्रव्य शरीर में सड़न उत्पन्न होने के लिये पर्याप्त होता है, अतः वायु की दुर्गंधियों का औषधियों के द्वारा स्वच्छ करने का प्रयत्न निष्फल है। ठीक उपाय केवल वही एक है जोकि शरीर को स्वच्छ करता है और विजातीय द्रव्य अर्थात् रोग की ओर होने वाली प्रकृति के मूल को बाहर निकाल देता है। आप इसको जानते हैं अर्थात् फ्रिक्शन हिप व सिट्ज़ बाथ और स्टीम बाथ[1]। रोगियों के इलाज करने में बहुधा मुझको उनकी दुर्गंधित वायु विवश होकर सूँघनी पड़ी हैं, इसके पश्चात् फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ लेने के समय वैसी ही बुरी दुर्गंधि मेरे शरीर से निकली है, यह कुछ कम तीव्र थी। इस स्थान पर हमको इस बात का एक बहुत स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि शरीर की आवश्यक शक्तियां स्नान द्वारा इतनी प्रबल हो गई थीं कि रोग की दुर्गंधि को वह अपने बाहर निकालने में समर्थ हो सका।

(तृतीय) यह सादा उपाय हमको सब वबाई रोगों के उड़ कर लगने से भी बचाता है. क्योंकि इस के द्वारा विजातीय द्रव्य (रोग की ओर शरीर की स्वाभाविक चेष्टा) शरीर से निकल जाता है, और विना इस के किसी रोग का, और इसी तरह किसी वबाई रोग का होना सम्भव नहीं होता।

इस प्रकार मैं दिखला चुका कि रोग का एक शरीर से दूसरे शरीर में पहुँचना और उस से छूत का लगना केवल उसी समय सम्भव है जब कि शरीर में विजातीय द्रव्य उपस्थित हो; विना इसके कोई रोग नहीं होता और बिना रोग के छूत नहीं लगती। शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य (फ़ारेन मैटर) के भार से अभिप्राय केवल आन्तरिक मल से ही है। जो मनुष्य अपने शरीर को भीतर से, न कि केवल बाहर से स्वच्छ रखना जानता है वह सब प्रकार की छूत लगने से सुरक्षित रहती है।

१—और सन बाथ, अर्थात् 'धूप से स्नान कराना' इसमें और गिनना चाहिये; इसका वर्णन चिकित्सा विधि के अध्याय में देखिये।

केवल स्वच्छता ही एक ऐसी वस्तु है जिससे आरोग्यता प्राप्त होती है। प्रत्येक मनुष्य सदा यह विचार करता है कि रोगों के नाना प्रकार के स्वरूपों में नवीन तथा भिन्न-भिन्न कारण छिपे रहते हैं. और इस बात को भूल जाता है कि प्रकृति (नेचर Nature) एक ही पदार्थ को अनेक भिन्न रूपों में दिखलाती है। यह बात तितली के कीड़े और तितली में, और वर्षा, हिम, ओला, ओस और कोहरा की दशा में हमको प्रत्यक्ष हो जाती है।

उपरोक्त बातों पर ध्यान देकर यदि हम अब उन उपायों का विचार करें, जोकि डाक्टरी में तीव्र रोगों—जैसे डिफ़थीरिया, चेचक, शीतला, हैज़ा, की दशाओं में छूत लगने की रोक के लिये काम में लाये जाते हैं, तो प्रत्येक मनुष्य को वास्तव में दुःख होगा। हम देखते हैं कि सब घरों में सम्बन्ध तोड़ दिया जाता है, और घरों के प्रत्येक स्थानों में कारबोलिक एसिड़[1] (Carbolic Acid) और वायु स्वच्छ करने वाली दूसरी निकम्मी औषधियों की, जिन के विषय में ख़याल किया जाता है कि छूत वाले परमाणुओं को नाश करती हैं, गन्ध भरी रहती है। प्रत्येक मनुष्य का जब कि वह बारम्बार समाचार पत्रों में जहाज़ों के न कई सप्ताह, अपितु महीनों तक, इस अभिप्राय से क्वारेन्टाइन[2] (Quarantine) में रक्खे जाने का वृत्तान्त पढ़ता है कि जिस से छूत न लगे तो उसका धैर्य्य जाता रहता है। जो मनुष्य इतने समय तक रोगियों की चिकित्सा करने में लगा रहा हो, जितना कि मैं लगा रहा हूँ, तो उसको (यदि उसकी आखें बन्द न हों) छूत के भय का नितान्त ही भिन्न एक दूसरा ही स्वरूप दिखलाई देगा। मैंने डिफ़थीरिया, रक्त ज्वर, खसरा, चेचक या शीतला के रोगी बच्चों को उनके भाई या बहन के साथ एक ही शय्या पर सोते हुए देखा है क्योंकि उन के कुटुम्ब की दशा के विचार से कोई और उपाय नहीं किया जा सकता था। इस पर भी छूत न लगी, क्योंकि उन दूसरे बच्चों की चेष्टा रोग की ओर स्वाभाविक न थी, अर्थात् उन में विजातीय द्रव्य का भार न था, जोकि रोग के बढ़ाने

१—एक प्रकार का तेजाब है।

२—यह सामुद्रिक नियम है कि यदि किसी जहाज़ पर किसी अव्यक्त रोगी के होने का सन्देह हो तो उसको एक नियत समय के लिये सब जहाज़ों से अलग कर देते हैं—जिस से उसकी छूत दूर हो जावे। नियत काल के व्यतीत होने पर वह दूसरे जहाज़ों से मिल सकता है और उसका आना जाना खोल दिया जाता है। पहले ये समय चालीस दिन का नियत था; अब समय कम भी कर देते हैं; इस रीति से अलग रक्खे जाने को "क्वारेन्टाइन" कहते हैं।

के लिये आहार पहुँचाने वाला होता। इस के विपरीत मैंने किसी-किसी कुटुम्ब में देखा है कि सब बच्चे एक दूसरे के पीछे रक्त ज्वर, डिफथीरिया व चेचक (शीतला) के रोगों में ग्रस्त हो गये हैं। यद्यपि चिकित्सकों की सम्मति के अनुकूल वायु स्वच्छ करने वाली औषधियों के सम्बन्ध की समस्त शिक्षाओं का पूर्ण समादर किया गया था। ऐसी दशाओं में भी मैंने बच्चों के माता पिताओं से पहिले ही कह दिया था कि यद्यपि एक ही बचा रोगी हुआ है, परन्तु दूसरे बच्चों को भी रोग लग जावेगा क्योंकि "मुखाकृत विज्ञान" के द्वारा मुझको यह बात ज्ञात हो गई थी कि ऐसे रोगों की ओर इनकी प्राकृतिक प्रवृत्ति है। अतः हम देखते हैं कि डाक्टरी में इन वबाई रोगों को रोकने वाले नियत उपाय कितने निष्फल हैं। हमको तनिक प्रकृति (नेचर) की ओर देखना चाहिये जिससे यह प्रतीत हो जावे कि वास्तव में बात ऐसी ही है। वन में हम को कुछ ऐसे पुराने वृक्षों की जड़ें मिलती हैं जिनको कीड़े मकोड़ों ने खा डाला है, और जिनके ऊपर की लकड़ी पर फूल कर भिन्न पदार्थ उत्पन्न हो गये हैं; और इसके विपरीत उसी के समीप एक नवीन वृक्ष बड़ी शोभा के साथ निकल रहा है, और यद्यपि भयानक शत्रु उसके चारों ओर उपस्थित हैं यह उनसे कुछ भी भयभीत नहीं होता, यदि इस नवीन छोटे वृक्ष में रोगों के अंकुर बैठ गये होते और दूषित पालन करने वाला द्रव्य उसमें भरा होता तो अवश्य यह कीड़े मकोड़ों और साँप की टोपी इत्यादि की उत्पत्ति से वञ्चित न रह सकता। परन्तु वर्तमान दशा में इसकी शाखाएँ बल के साथ निकलती हैं; कोई कीड़ा मकोड़ा इसको हानि नहीं पहुँचा सकता; न साँप की टोपी इत्याकि के सदृश कोई पदार्थ इस पर जम सकता है, इन सब बातों का कारण यह है कि (उन पदार्थों के लिये) अनुकूल भोजन इसमें स्थित नहीं हैं।

मेरी इच्छा यह है कि जो कुछ छूत के विषय में मैंने कहा है उसकी आवश्यकता को मनुष्य मात्र पूर्ण प्रकार से समझ लेवें, जिससे औषधिओं द्वारा चिकित्सा कराने के पक्षपाती मनुष्यों की अशुद्ध तथा भ्रमात्मिक शिक्षाएँ प्रभाव न कर सकें। तब सब लोग किसी वबाई रोग के फैलने पर अपनी बुद्धि न खो बैठेंगे, वरन संतोष, साहस व विश्वास के साथ उपाय में लगेंगे।

गठिया, लँगड़ी का दर्द

शरीर के भाग में बंक पड़ जाना, लङ्गड़ा व लुञ्जापन, हाथ पैर का ठंडा होना, शिर का गर्म होना।

इन सब का कारण एवं चिकित्सा

एक व्याख्यान

गठिया (रूमाटिज़म) (Rheumatism) का रोग इतना अधिक फैला हुआ है कि उस उन्नति के वर्णन सुनने से जो मैंने इसकी चिकित्सा में प्राप्त की है आप लोगों को प्रसन्नता होगी। प्राचीन समय में केवल बड़ी अवस्था के मनुष्य, विशेषकर पुरुष, इस गठिया के रोग में ग्रसित होते थे, परन्तु आज कल किसी अवस्था व किसी मनुष्य (पुरुष तथा स्त्री) को यह नहीं छोड़ती; बच्चे भी विशेषतः इस में ग्रसित होते हैं। यह बात विश्वासपूर्वक कही जा सकती है कि अगणित औषधियों के होने पर भी जो इस रोग के लिये काम में आती हैं, यह रोग अब बढ़ गया है; शरीर का कोई सा भाग इससे ग्रसित हो सकता है। ऐसा कौन है जिसने किसी न किसी समय गठिया की दुखदाई पीड़ाओं को पैर, हाथ, कंधे, शिर या दांतों में सहन न किया हो। सबसे बड़ी भयानक प्रायः वह पीड़ा है जो जोड़ों में हुआ करती है, अर्थात् आर्टीक्यूलर रूमेटिज्म[1] (Articular Rheumatism)। लोग इस रोग के कारण जानने का बहुत ही कम परिश्रम करते हैं, यह बात सदा कही जाती है कि 'मुझे सर्दी लग गई है; वास्तव में यह आश्चर्य की बात है कि हमारी शताब्दी के मनुष्यों की आविष्कार करने वाली बुद्धि ने किसी प्रकार की ऐसी ऋतु ज्ञात करने की चेष्टा नहीं की जिसमें युवा और वृद्धों को जुकाम (प्रतिश्याय) उत्पन्न करने की योग्यता न हो, परन्तु इस सर्दी लगजाने

१—इस को रियुमेटिक फीवर भी कहते हैं अर्थात् गांठों या जोड़ों में पीड़ा व तीव्र ज्वर होता है।

के विषय में कुछ और भी कथन शेष है। कल्पना कीजिये कि शरद एवं तरी की ऋतु में सिपाहियों (योद्धाओं) की एक रेजीमेंट खुले हुए मैदान में बाहर भेजी गई है, ये लोग लग भग एक ही अवस्था के, और साधारण मनुष्यों की सम्मत्यानुसार लगभग समान स्वास्थ्य के चुने हुए मनुष्य हुआ करते हैं, उनके लौटने पर अर्थात् रेजीमेंट के खेत से लौट कर आने पर भिन्न-भिन्न प्रभाव प्रकट होंगे; उनमें से कुछ तो खांसी और जुकाम की पुकार करेंगे, कुछ दांतों की पीड़ा की, कुछ गठिया की पीड़ा की। परन्तु उनमें से अधिक संख्या अपनी स्वास्थ्य की दशा में होगी, या किञ्चत पीड़ा से (शिर की पीड़ा से) निवृत्त हो चुकी होगी। परन्तु इन सबका कारण ऋतु ही बताया जाता है, और वे लोग जो ऐसा कहते हैं सत्य कहते हुए भी प्रतीत होते हैं, क्योंकि लोगों के शरीरों में परिवर्तन (जैसा स्वयं उनको प्रतीत हुआ) खुली हुई वायु में होने से हुए। पर उसका प्रथम कारण गलत जगह में ढूंढा जाता है। संसार में इसकी अपेक्षा अधिक अशुद्ध कभी ही कोई सिद्धान्त निकाला गया होगा, अर्थात् एक ही ऋतु एक मनुष्य को तो एक ही समय में रोगी कर सकती है और दूसरे को आरोग्य।

वास्तव में बात यह है कि शताब्दियों पर्यन्त रोगी मनुष्यों को बहुत ही थोड़ी सहायता रोग के एक ऐसे सिद्धान्त से पहुँचाई गई है जो कि इस प्रकार की एक दूसरे से विरुद्ध बातों का समाधान करने के अयोग्य है; इसके विरुद्ध गठिया की वृद्धि अधिक तर होगई है।

गठिया का प्रभाव केवल शरीर के एक ओर हुआ करता है, या केवल एक टांग एक बांह या एक कंधे पर। मेरी सम्मति में केवल यही बात पूर्ण प्रकार से सिद्ध करती है कि ऋतु का दोष नहीं है, क्योंकि यह बात कभी विचार में नहीं आती कि गठिया केवल एक टांग या एक बांह को ही पकड़ लेती है जब कि दोनों बाहों पर और दोनों टांगों पर एक सा ही प्रभाव बाहर की ओर से पड़ा था। यह भी बहुधा होता है कि मनुष्य किसी हवादार खिड़की की ओर अपना दाहिना हाथ करके बैठता है, परन्तु गठिया का प्रभाव उसके बाए हाथ में होता है, यद्यपि बांया हाथ दाहिने हाथ की अपेक्षा वायु से अधिक दूर और अधिक रक्षित था। अतः यदि हम गठिया से बचने में पहिले की अपेक्षा अधिक सफलता चाहते हैं तो हमको उचित है कि उसके कारणों को अधिक सावधानी से खोजें।

प्रथम हमको यह बात ध्यान से देखनी चाहिये कि इस रोग में और अन्य रोगों में क्या-क्या बात मिलती हैं।

यदि हम अच्छे प्रकार से गठिया के किसी रोगी की परीक्षा करें तो हमको ज्ञात होगा कि इसको ज्वर भी है, और पीड़ा के स्थानों में सूजन और जलन भी है, पाचन शक्ति भी ठीक नहीं हैं। हम यह बात भी देखते हैं कि जलन मुख्यत: आर्टीक्यूलर रूमेटिज्म की दशा में सदा नियत स्थानों में प्रकट हुआ करती है। वे लक्षण जो बताये हैं हमको तत्काल कारण के निकट तर लेजाते हैं। अभी तक हमको केवल तीन ही लक्षणों तक अपने को सीमित रखना पड़ेगा; अर्थात् ज्वर, जलन और पाचन शक्ति का ह्रास। अब इस बात को खोजना चाहिये कि किस कारण से ये बातें उत्पन्न हुई। यह बात मैं कह चुका हूँ कि जोड़ों या गांठों की गठिया में पीड़ा सदा नियत स्थानों पर हुआ करती है। आश्चर्य है कि मेरे इतने बड़े समय की परीक्षा में एक बार भी ऐसा नहीं हुआ कि आर्टीक्यूलर रूमेटिज्म के रोग में बड़ा भाग पीड़ा का जोड़ (गांठ) के नीचे के अतिरिक्त किसी और दूसरे स्थान पर भी प्रतीत हुआ हो, जैसे घुटने के ऊपर की ओर कभी नहीं, वरन् सदा उसके नीचे की ओर। यह बात निरर्थक ही नहीं है वरन् इसका कोई न कोई कारण अवश्य होगा।

जैसा कि वर्णन कर चुके हैं शरीर में "फ़ारेन मैटर" (विजातीय द्रव्य या हानिकारक द्रव्य) विना ज्वर उत्पन्न किये हुए, जिससे कि द्रव्य शरीर से निकले, बहुधा शरीर में फैल जाता है ऐसी दशा में शरीर इतना अधिक फ़ारेन मैटर से भर जाता है। जितना कि उसका भर जाना सम्भव है; बरफ़ के स्थानों (देशों) में और मध्य कटिवन्धीय देशों में यह दशा वास्तव में युवा मनुष्यों की हुआ करती है। यदि ऐसी दशा में वायु की गर्मी एक साथ घट जावे तो द्रव्य अपने पूर्व स्थान को फिर लौटने लगेगा। यह बात सब को विदित है कि गर्मी से सब वस्तुएँ फैलती हैं और सर्दी से सिकुड़ती हैं। प्रकृति का यह "सार्वभौम" नियम मनुष्य के शरीर में भी ठीक पाया जाता है, ज्वर की दशा में इस फैलने को हम स्पष्ट रूप से अनुभव करते हैं, और इसके विरुद्ध सर्दी से दस्तानों और जूतों के भीतर हाथ पैरों का सिकुड़ना' अवयवों का इस प्रकार से सिकुड़ना इस विजातीय द्रव्य पर जोकि उन में एकत्रित है एक प्रकार का दबाव डाल कर उसको (विजातीय द्रव्य को) प्रगति शील बना देता है, और उसके मुख्य स्थान अर्थात् पेड़ू की ओर उसको लौटाता है। जोड़ों में विजातीय द्रव्य इकट्ठा होजाता है; इसकी चाल में, जोड़ों के बराबर हिलने (काम करने) से,

रुकावट हो जाती है' इस रुकावट के सामने (मुक़ाबिला) दबाव' पड़ने से जलन और सूजन उत्पन्न हो जाती है जिस से कि कठिन पीड़ा प्रतीत होने लगती है, और चूंकि द्रव्य लौटने की दशा में है, जलन व सूजन और पीड़ा सदा जोड़ों से नीचे प्रतीत हुआ करती है, अर्थात् घुटने के नीचे, कंधे के जोड़ के नीचे इत्यादि, इत्यादि।

सिपाहियों के दृष्टान्त पर यदि हम फिर ध्यान देवें तो हमको इस बात का और भी अधिक विश्वास हो जावेगा कि रोग का मुख्य कारण स्वयम् शरीर ही के अन्दर होना चाहिये, और वे सब बातें जो ऋतु करती है ये हैं कि शरीर में एक प्रकार का परिवर्तन उत्पन्न कर देती है-अर्थात् क्रानिक Chronic (दीर्घकालीन) और हानिकारक दशा को एक्यूट Acute (तीव्र) अर्थात् ज्वर की दशा में बदल देती है, अतः रोग के चिह्न केवल शरीर के उन्हीं भागों मे प्रगट होते हैं जिन में कि फ़ारेन (विजातीय द्रव्य का हानिकारक द्रव्य) कुछ स्थित है।

हमको यह बात स्पष्ट रूप से प्रतीत होगई कि आर्टीक्यूलर रूमेटिज्म किस प्रकार से उत्पन्न होती है। यदि हम गठिया के किसी रोगी का उपाय करना प्रारम्भ करें, तो पीड़ित स्थान का केवल कोई स्थानीय (Local) उपाय करना निस्सन्देह बुद्धि के विरुद्ध होगा। पीड़ा कम करने के लिये, द्रव्य को पतला करने के हेतु, और उस के लिये मार्ग खोल देने को एक स्थानीय स्टीम ब्राथ दिया जा सकता है; परन्तु आरोग्यता प्राप्त करने के हेतु, फ़ारेन मैटर (विजातीय द्रव्य, हानिकारक द्रव्य) को शनैः शनैः उन इन्द्रियों की ओर खेंच लेना चाहिये जो स्वाभाविक रीति से उसको बाहर निकालती हैं, और उनके द्वारा उस हानिकारक द्रव्य को बाहर कर देना चाहिये।

निस्सन्देह यह बात केवल आर्टीक्यूलर रूमेटिज्म के ही विषय में नहीं वरन् प्रायः सर्व रूमेटिज्म के विषय में सत्य है। जहां कहीं कि यह (गठिया) प्रगट होती है जैसे कंधों में, कमर में किसी ओर को, गर्दन या जोड़ों में, वहां यह रगड़ के कारण से प्रगट होती है; विजातीय द्रव्य को कोई रुकावट या सामना करने को कुछ न कुछ होना चाहिये, शरीर के भीतर उबलते हुए द्रव्य को रुकावट मिलती है। क्योंकि उफ़ान, जैसे कि बोतल में, बिना रुकावट पाए हुए नहीं फैल सकता। उस रुकावट के कारण

१—अर्थात्—द्रव्य के दबाव पड़ने से जोकि पेड़ू की ओर लौट कर आ रहा है।

से जोकि अवयवों से—जैसे गुर्दों, आमाशय, हृदय, फेफड़ों, और जोड़ों से पहुँचती है, प्रत्येक स्थान में रगड़ उत्पन्न होती है। यदि गति अधिक है तो पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। परन्तु यह बात स्पष्ट है, क्योंकि फ़ारेन मैटर अवयवों से लगता है, उन में इकट्ठा हो जाता है, और वहाँ अपना स्थान बना लेता है, इस कारण पुर्वोक्त (अवयवों) में एक प्रकार का अन्तर पड़ जाता है, और उन में रोग उत्पन्न हो जाता है।

सब पीड़ा, सब रूमेटिज्म अर्थात् गठिया (किसी एक मुख्य शब्द से कुछ प्रयोजन नहीं है) सब प्रकार की चीस, जलन का प्रतीत होना, सब प्रकार का दबाव, केवल रगड़ से ही उत्पन्न होता है, और रगड़ केवल चलने से (हिलने से) होती है।

यही बात है जोकि मैं आप महाशयों से गठिया अर्थात् रूमेटिज्म के कारण के सम्बन्ध में सब से आदि में कहना अच्छा समझूंगा।

इस बात के सिद्ध करने के लिये बहुत सी दशाओं में से कई एक दशाओं का जो चिकित्सा करने में प्रतीत हुई हैं, अब मैं कथन करूँगा, और इस प्रकार से मैं आप को इसकी चिकित्सा का मार्ग समझाऊँगा।

इस वर्ष के आरम्भ में मुझे एक स्त्री ने बुलाया जोकि उसके पति के कथनानुसार रूमेटिज्म के रोग में, विशेषतः दाहिनी टांग, उसके ऊपर भी, जोड़ में कमर और गर्दन में अत्यन्त ग्रसित थी।

स्त्री ने यह प्रश्न किया कि :—

"ऐ मिस्टर कुहनीं, आप कौनसी चिकित्सा करना चाहते हैं" ? पहिले के उपायों से जोकि कई सप्ताह तक हुए थे कोई सफलता न हुई थी। इस प्रकार के प्रश्न सुनते-सुनते मैं निठुर हो गया हूँ। प्रथम मैंने यह बात बतलाई कि ये दर्द किस प्रकार उत्पन्न हुए। फिर मैंने उत्तर दिया कि "मेरी परीक्षाओं के अनुकूल टांगों, कमर और जंघाओं के उपाय करने से (अर्थात् उनको गद्दे, रजाई इत्यादि में लपेटने से) कुछ सफलता न होगी। सब पीड़ा जिसकी आप पुकार करती हैं, वे भीतर के ज्वर के लक्षण हैं। अतः हमको गर्मी से काम नहीं लेना चाहिये, वरन् रोग की जड़ तक पहुँचना चाहिए और बढ़ी हुई गर्मी को कम करना चाहिए, इस चिकित्सा की सत्यता आप को शीघ्र दिखाई देगी"। क्योंकि स्त्री सर्वथा हाथ पैर नहीं हिला सकती थी इस कारण से स्नान करने का टब उसकी शय्या के समीप रक्खा गया। उस रोगिणी को जो तनिक हिलने पर बड़े स्वर से चिल्लाती थी, तीन मनुष्यों ने मिल

कर पानी में बिठलाया। मैंने रोगिणी की सेवा करने वाली एक स्त्री को बताया कि उस दीन रोगिणी को एक फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ करावे। मैं समझ सकता हूँ कि पन्द्रह मिनट भी न हुए होंगे कि वह रोगिणी जो पहिले लगातार कराहती थी चुप हो गई; मैंने कहा "अच्छा आप तो एक दम चुप हो गई"। इसका उत्तर उसने यों दिया "हाँ सब पीड़ा जाती रही।" इससे आप देखते होंगे कि उपाय ठीक हुआ था। कमर, जाँघों और गर्दन में दर्द उसी प्रकार से उठते थे जैसे कि मैं बतला चुका हूँ और केवल ऐसे ही उपाय से अच्छे हो सकते थे। कुछ दिनों में वह स्त्री स्वयम् शय्या से बिना सहारे के उठने और स्नान करने के योग्य हो गई और कुछ सप्ताह में वह फिर अपना काम करने लगी।

एक दूसरा दृष्टान्त और है। एक अधिक अवस्था के मनुष्य ने जो कि महीनों से एक्यूट आर्टीक्यूलर रूमेटिज्म की चिकित्सा, बिना किसी प्रकार की सफलत प्राप्त करने के, करा रहा था मुझे बुलाया और मुझसे पूछा कि क्या मैं उसकी ऐसी दशा में सहायता कर सकता हूँ। मुखाकृत विज्ञान के द्वारा जाँच करने पर मैंने कहा कि उसकी सहायता करने के लिये अभी बहुत देर नहीं हुई है। उसकी बाँई टाँग में दर्द था वही उपाय किया गया, जो कि पहिले रोगिणी की दशा में किया था, दो स्नानों ने उस मनुष्य को पैदल लौट कर जाने के योग्य बना दिया, यद्यपि वह गाड़ी में आया था। अब प्रश्न यह है कि केवल बाँई टाँग में क्यों रोग हुआ और दाहिनी टाँग में क्यों नहीं हुआ।

इस बात को मैं दृष्टान्त द्वारा समझाऊँगा। उस व्याख्यान में जो मैंने ज्वर पर दिया है, मैं विजातीय द्रव्य के एक ही ओर एकत्रित होने को बोतल में उस ही के सदृश क्रियाओं को दिखला कर विस्तार से कथन कर चुका हूँ। प्रायः आप लोगों को भी और अधिक समझाये बिना ही स्पष्ट ज्ञात हो गया है कि एक ओर का रोग, फ़ारेन मेटर (विकृत पदार्थ) के एक ही ओर इक्ट्ठा होने से उत्पन्न होता है। अब आप कदाचित् यह प्रश्न करेंगे कि यह पिछली कही हुई दशा कैसे उत्पन्न होती है, क्योंकि यह सम्भव है कि शरीर यथा सम्भव अधिक स्नान करने के हेतु (अलग-अलग) विभाग[1]

१—अर्थात् शरीर विजातीय द्रव्य को अपने भिन्न-भिन्न भागों में अलग-अलग पहुँचा देवेगा।

कर देवेगा। हाँ वास्तव में ऐसा इक्ट्ठा होना साधारणतया सर्वथा एक ही ओर नहीं होता है, वरन् यह इक्ट्ठे होने की क्रियायें लगभग सदा एक ही ओर आरम्भ हुआ करती है और उसी ओर होती रहती हैं; जब तक कि वह दिशा (तरफ) आवश्यकता से अधिक न भर जावे जिसके कारण द्रव्य न्यूनाधिक दूसरी ओर विवश हो कर जाता है। परन्तु पहली ओर वहुत काल से द्रव्य इक्ट्ठा हो रहा है। एक ओर इक्ट्ठे होने का कारण, केवल आकर्षण से सम्बन्ध रखता है; यह कारण केवल इस बात से उत्पन्न होता है कि द्रव्य उस नियम के आधीन है जो सब पदार्थों को आकर्षण केन्द्र की ओर ले जाता है। थोड़ी सी सीधी साधी परीक्षाओं से यह बात स्पष्ट हो जावेगी। मान लो कि हम कांच की दो बोतलों को लेवें; पहिले उनको जल से भर कर बन्द कर दें; और इसी दशा में उनको रात्रि भर रहने देवें। प्रातःकाल देखने से हमको उन में कोई अन्तर दिखाई नहीं पड़ेगा और न यह जान सकते हैं कि बोतलें किस करवट रात भर पड़ी रहीं। परन्तु दूसरी रात्रि यदि हम थोड़ी सी मिट्टी प्रत्येक बोतल के जल में मिला कर उसको हिला देवें, और फिर उन बोतलों को पूर्ववत् दशा में रख देवें, तो आगामी प्रातः काल को एक अन्तर दिखाई देवेगा। बोतलों को सावधानी से उठाने से हम को तत्क्षण ज्ञात हो जाता है कि गत रात्रि में वे किस ओर से रक्खी रही हैं, क्योंकि जिस ओर से वे रक्खी रही हैं, उस ओर को मिट्टी इकट्ठी हो जावेगी; जिस के ऊपर जल पूर्ण स्वच्छ मिलेगा। और तीसरी रात्रि को यदि इस मिट्टी में शीघ्र उफान उत्पन्न करने वाली कोई वस्तु मिला देवें, तो उसके पश्चात् प्रातःकाल को प्रगट दशा तो एक सी ही जान पड़ेगी, पर बोतलों को खोलने पर और उनको किसी गर्म स्थान में ले जाने पर बोतल के भीतर इस बैठी हुई मिट्टी में उबाल उत्पन्न होने लगेगा। उबलता हुआ द्रव्य उठ कर उस ओर को निकल जाता है जिस ओर को बोतल पड़ी रही है (देखो 'अ' और 'उ' बोतलों के चित्र)। अतः यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है, कि द्रव्य बोतल के एक विशेष ओर से निकल जाता है, क्योंकि यह सदा उसी ओर से निकलेगा जिस ओर यह बोतल में इकट्ठा हुआ है।

मिट्टी में बिना किसी मुख्य उफान उत्पन्न करने वाली वस्तु के भी उफान आरम्भ हुआ होता, ऐसी दशा में उसका होना केवल ऋतु के प्रभाव पर होता है, और इसके लिये शायद हमको बहुत काल तक बाट देखनी पड़ती। यदि आप उफान खाते हुये द्रव्य को किसी फैलने वाली और अच्छे प्रकार से बन्द बोतल के भीतर ध्यान में लावें तो उस में आपको मनुष्य के शरीर से और भी अधिक समता रखता हुआ

उदाहरण मिलेगा, उबलते हुए टुकड़ों को स्थान की आवश्यकता है जिसको वह बोतल को फैला कर प्राप्त करते हैं, क्योंकि बोतल तो बन्द है।

उन क्रियाओं को जो शरीर के भीतर होती रहती हैं यह साधारण परीक्षायें उदाहरण के साथ बतलाती हैं। द्रव्य नीचे एकत्रित हो जाता है, यह नीचे की दिशा कौन सी है, यह मुख्यतः उस दशा पर निर्भर होता है जिस ओर सोने का हम अपना स्वभाव डाल लेते हैं।
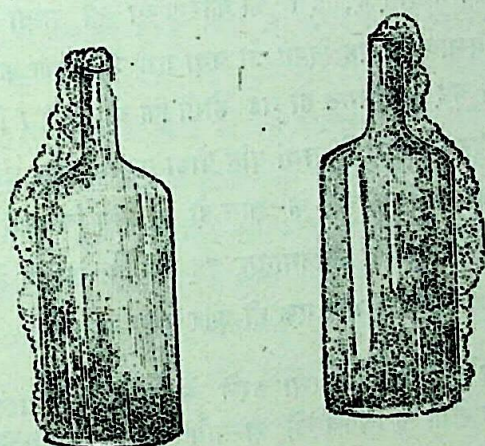
किसी पूर्ण आरोग्य मनुष्य को देख कर कोई यह नहीं जान सकता कि यह मनुष्य किस बल (करवट) से सोया करता है। उसको भी यह एक सा है, चाहे दाहिनी करवट सोये चाहे बाईं। क्योंकि वह एक ओर वैसे ही चैन से लेट सकता है जैसे दूसरी ओर। परन्तु जब कि शरीर में फ़ारेन मैटर (विजातीय द्रव्य या हानि-कारक द्रव्य) का भार उपस्थित है, तो मेरी जाँच की विधि से यह बात जान लेना कि द्रव्य एक ओर की अपेक्षा दूसरे ओर कम है या अधिक, बहुत सहज है जब कि द्रव्य बहुत ही इकट्ठा हो गया है तो उसका विस्तीर्ण[1] होना नियमानुकूल हो जाता है, यद्यपि दशा ऐसी बेचैनी की हो जाती है कि रोगी किसी करवट भी चैन से नहीं लेट सकता, वरन् बेकली के साथ पैर मारता है और करवटें बदलता है।

१—अर्थात् फ़ारेन मैटर का शरीर में बढ़ना या फैलना और पहुँचना।

जब कि एक दिशा मुख्यतः द्रव्य से भरी हुई है तो यह दिशा दूसरी दिशा की अपेक्षा अधिक सहज में और अधिक शीघ्रता से रोग ग्रस्त हो जावेगी। निदान आप देखते हैं कि यह बात कैसे सम्भव है कि जैसे कोई मनुष्य अपना दाहिना हाथ किसी वायु आने वाली खिड़की के सामने रख कर बैठे और फिर भी उसके बायें हाथ में गठिया हो जावे।

यह बात सत्य है कि मनुष्य के शरीर में एक ओर द्रव्य का इकट्ठा होना ऐसी शीघ्रता से नहीं होता जैसा शीघ्र कि बोतल में, परन्तु बच्चे बहुधा द्रव्य का भार एक ही ओर लिए हुए उत्पन्न होते हैं, इस का कारण या तो माता का गर्भावस्था में एक ही ओर लेटने का स्वभाव या वह दिशा जो बच्चा गर्भ में धारण कर लेता होता है।

अब आप को यह बात प्रगट हो गई होगी कि योद्धाओं (सिपाहियों) की दशा में जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है, क्यों दांत पीड़ा एक ही ओर हुई थी। और दूसरी प्रकार से आप को यह भी बिना कष्ट के ज्ञात हो जावेगा कि क्यों मेरे रोगी के केवल बांई टांग में गठिया हुई थी, वर्षों से लगातार वह एक ही करवट से सोया करता था, इस कारण (फ़ारेन मैटर का) भार एक ही ओर हुआ था।

सब से पिछले रोगी की चिकित्सा करने के थोड़े काल पश्चात् मैगडीबर्ग नगर में एक ऐसे गठिया के रोगी के विषय में सम्मति लेने को जिस को कि बहुत आश्चर्य जनक समझते थे, मुझे बुलाया। मैं गया और देखा कि रोगी सर्वथा साधारण प्रकार का था केवल लक्षण बहुत तीव्र थे, उसके घुटने और टखने अत्यन्त सूजे हुए थे, और उनमें पीड़ा भी होती थी। घुटने के ऊपर का भाग भी बहुत सूजा हुआ था। अतः रोगी अपनी टांग सीधी नहीं कर सकता था। उसने मुझ से कहा कि उसने अपने जीवन में बहुत कष्ट भोगा है; रोग ने प्रति वर्ष उस पर आक्रमण किया है, और बार-बार वह अधिक बिगड़ता गया है; शिर से पैर तक वह मनुष्य हानिकारक द्रव्य से भरपूर था। क्या फ़ारेन मैटर (विजातीय द्रव्य) उस के घुटने की ओर दबाव डाल रहा था, जब कि पुराना लौट कर जाना चाहता था। यदि कड़ापन[1] शीघ्र आगया होता तब यह गाउट (Gout) कहलाता। इस का मामूली कारण यह था कि रोग का उपाय अब तक केवल

१—अर्थात् यदि उपाय ठीक मेरी रीति से न किया जाता तो घुटने में कड़ापन आ गया होता, और यही फिर Gout (अर्थात् बात) रोग कहलाता।

स्थानीय गर्मी से ही किया गया था। उस[1] उपाय से दशा अवश्य बदल गई थी और देखने में आरोग्यता प्रतीत होती थी, परन्तु वास्तव में वह रोग बदल कर अब शिथिल रोग (दीर्घ कालीन गुप्त रोग) हो गया था; द्रव्य चुप चाप पड़ा था, परन्तु सब प्रकार की नवीन सड़न से वह चलायमान होने को था।

रोगग्रस्त स्थान प्रथम स्टीम बाथ (भाप का स्नान) द्वारा मुलायम किया गये, और हानिकारक द्रव्य को खेंचने के लिये बहुत देर देर तक ठण्डे स्नान दिये गये।

थोड़े ही दिनों में इस उपाय से बहुत ही सफलता प्राप्त हुई।

एक बार एक स्त्री ने जिसके हाथ पैरों में गाउट (Gout) रोग का बहुत ही कष्ट था, मुझसे सम्मति ली। उसने कहा कि सब उपाय जो अब तक किये गये निष्फल हुये हैं। मैंने उसको यह समझाने की चेष्टा की, कि उसका रोग केवल बुरी पाचन शक्ति के कारण हुआ है, और कष्ट की निवृत्ति होना तभी सम्भव है जब पाचन शक्ति ठीक हो जावे और[2] अंतड़ियां और त्वचा[3] अपने-अपने को शुद्ध रीति से करने लगें। मैंने उसके लिये तीन फ्रिक्शन सिटजबाथ, प्रति दिवस लेना निश्चित किया, और उचित भोजनों का प्रबन्ध कर दिया जिस से कोई नया फ़ारेन मैटर (विजातीय द्रव्य या हानिकारक द्रव्य) शरीर में प्रवेश न करने पावे। कई सप्ताह पीछे जोड़ उतने ठण्डे नहीं रहे जितने कि पहले थे, वरन पूर्ण गर्म हो गये अब थोड़ी सी दूर से गर्मी प्रतीत होती थीं। निदान ठण्डे स्नानों ने शरीर में ठंड उत्पन्न नहीं की, वरन गर्मी पैदा की उनका काम फ़ारेन मैटर को अलग कर रुधिर का समुचित सँचार कर देने भर का है, इससे स्वाभाविक गर्मी आजाती है। थोड़े दिनों में जोड़ों में से गर्मी मिट गई, और शरीर में स्वाभाविक (साधारण) गर्मी आगई, रोगिणी को आराम हो गया।

गाउट का एक दूसरा रोगी एक कुटुम्ब में जहां पहले मैंने कई सप्ताह कुछ बच्चों की चिकित्सा सफलता के साथ की थी मुझे एक छोटे से कमरे में बुलाया गया। और बतलाया कि उन बच्चों की दादी यहां रहती है। उसने मुझसे एक बात करने की इच्छा प्रकट की और कहा "मैं अनुभव करती हूँ कि मेरे पोतों की चिकित्सा में आप को आशातीत सफलता प्राप्त हुई है, क्या आप मेरी सहायता नहीं कर सकते ? मैं बड़े

१—अर्थात् स्थानीय उपाय में जो सदा गर्मी पहुँचा कर किये गये थे।

२—अंतड़ियों के मार्ग से मल निकलता है।

३—त्वचा के मार्ग से पसीना निकलता है, अर्थात् द्रव्य वाष्प रूप में निकलता है।

कष्ट में हूँ और उन सब मनुष्यों को जो मेरे पास रहते हैं मैं बहुत बड़ा कष्ट देती हूँ, मैं तीन वर्ष से पलंग पर पड़ी हूँ" मैने संक्षेप में उत्तर दिया, "यह सर्वथा सम्भव है यदि एक बात में सफलता प्राप्त करली जावे, अर्थात् यों कहिये–कि अंतड़ियां गुर्दे और त्वचा पहिले से अच्छा काम करने लगें। आपका रोग विजातीय द्रव्य के निकलने में कमी होने से उत्पन्न हुआ है। 'मिस्टर कोहनी! कदाचित् आपका यह कथन सत्य हो, मैं इससे वस्तुतः बड़ी प्रसन्न हुई, कई वर्ष से मुझे पसीना नहीं आया है, पहिले मुझे बहुत पसीना आया करता था; चौथे पाँचवें, छटे दिन एक बार वैसे मेरी पाचन शक्ति ठीक है अँतड़ियों की भी यही दशा है। लोगों को यह प्रायः कहते हुये सुना जाता है कि उनका आमाशय और पाचन-शक्ति बहुत ही अच्छी हैं, केवल उनको पाखाना ठीक नहीं होता है। यह इस बात का एक बड़ा प्रमाण है कि लोग यथार्थ पाचन शक्ति से कितने अनभिज्ञ हैं। मैंने रोगिणी को उत्तर दिया कि 'हां, भोजन शरीर में प्रवेश तो सहज में करता है पर वह बाहर नहीं निकलता; तब उन वस्तुओं का क्या होता है जो शरीर में प्रवेश करती हैं; वात रोग (Gout गाउट) बुरे पाचन का परिणाम है, और कुछ नहीं। मेरा यह कथन उस वृद्धा को जिसका यह सत्तरवां वर्ष था ठीक प्रतीत हुआ और उसने मुझ से निवेदन किया कि एक या दो दिन के भीतर उसकी चिकित्सा आरम्भ कर दी जावे। मैंने अपने यहां की स्नान कराने वाली स्त्री भेज दी और वह रीति जिससे स्नान किया जाता है उसे बतलादी। रोगिणी को तीन स्नान प्रति दिन लेने पड़े, जिनके पीछे उसको शय्या पर इस अभिप्राय से रक्खा गया कि यदि संभव हो तो उसको पसीना आने लगे। मेरी आशा के अनुसार उसको पसीना शीघ्र आने लगा, और वह प्रति स्नान के पीछे इतना खुल कर आता था कि रात्रि के समय उसके कपड़े दो बार बदलने पड़ते थे। कई सप्ताह में उसका कष्ट इतना कम हो गया था कि वह बिना कष्ट के उठ बैठ सकती और अपने कमरे में टहल सकती थी।

इस रोगिणी को वात रोग अर्थात् गाउट (Gout) था। प्रथम कारण यह था कि इसकी पाचन शक्ति ठीक नहीं थी, और उसके बुरे पाचन का पहिला परिणाम गठिया हुआ।

रोगिणी ने एक दिन मुझसे कहा कि "जब मेरी दुकान थी तब मुझे सदा ही बहुत सा काम करना पड़ता था यहाँ तक कि मैंने अपने गठिया के दर्दों पर भी अधिक ध्यान नहीं दिया। फलतः दुकान छोड़ने के पीछे ही मुझे वात रोग हो गया।" दूसरे शब्दों में इसे यों कहेंगे कि गठिया का उपाय न किया गया इस लिये वात रोग (Gout) हो गया।

Sciatica (सायटिका, अर्कुन्निसा, लंगड़ी का दर्द) यह रोग भी कूल्हे के जोड़ में जलन व सूजन होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। यह भी ठीक वैसे ही उत्पन्न होता है जैसे गठिया, अतः वह गठिया की भांति ही अच्छा भी हो जाता है। मेरा एक पहिले का रोगी मुझ को धन्यवाद देते हुए कथन करता है उसे आप सुनिये :—

"मैं अपने अकथनीय कष्टों के निवारण हो जाने के फलस्वरूप आपको इस लेख द्वारा अपने हार्दिक धन्यवाद समर्पित करता हूँ।

"मैं सन् १८८५ ई० के पतझड़ के दिनों में अपने बाएँ कूल्हे को प्रबल पीड़ा में, जिसके साथ कड़ापन भी बहुत था, ग्रसित हुआ; उसके पीछे दाहिने कूल्हे में और कमर के नीचे के भाग में (दर्द होकर) सब शरीर में कड़ापन और अकड़ापन बढ़ गया। उस वैद्य ने जिसकी मैंने चिकित्सा आरम्भ की इसको लंगड़ी (Sciatica) का रोग बताया। उसके उपाय से अत्यन्त फ़ोटोफ़ोबिया (Photophubia) अर्थात् प्रकाश का भय, निसटेगमस (Nystagmus) अर्थात् आंख के पपोटों का कांपना, मुख में दर्द, शिर में भारीपन, बांई बांह और हाथ में बहुत-ही दर्द और ऐंठन की पीड़ा, और कुल शरीर में कमजोरी पैदा हो गई, यहां तक कि मैं न तो अपने मोज़े या जूते अपने आप निकाल सकता था और न बिना सहायता के शय्या पर लेट ही सकता था। कठिन पीड़ा के कारण मेरे बाल (केश) थोड़े-ही समय में श्वेत हो गये।

बारह से भी अधिक इस नगर के प्रसिद्ध प्रोफ़ेसरों और डाक्टरों ने मेरी चिकित्सा निष्फलता के साथ की थी और कई यूनीवर्सिटी के व्याख्यानदाताओं ने मुझे एक आश्चर्यजनक रोगी के सदृश अपने विद्यार्थियो को दिखाया था। एक नए वैद्य ने परीक्षा उत्तीर्ण करने के अभिप्राय और सरकार से सनद प्राप्त करने के लिये मुझे (अपनी परीक्षा का) एक विषय माना था। मैंने प्रायः महीनों तक म्यूनीसिपल औषधालय और यूनीवर्सिटी के निर्बल रोगियों के स्थान में रह कर चिकित्सा कराई थी, अन्त में लिपज़िग यूनीवर्सिटी पालीक्लोनिक Leipsic University Policlinic के एक डाक्टर ने मुझे सन् १८८६ ई० में मिस्टर लूई कुहनी से जो कि उस समय में सबको व्याख्यान देते थे सम्मति लेने को कहा और २३ जनवरी सन् १८८६ ई० को मैंने यह सम्मति प्राप्त की।

"२४ जनवरी को मैंने उन के निकाले हुए स्नान आरम्भ किये। प्रथम ही स्नान से मूत्र बहुत आया, पेड़ू छोटा हो गया, शिर हलका प्रतीत हुआ और वर्षों पश्चात् पहिली बार बिना लकड़ियों की सहायता के जिनको मैं उस समय तक बराबर काम

में लाता रहा था, चलने के योग्य हुआ। उसी दिन यूनीवर्सिटी पालीक्लीनिक के प्रोफेसरों की इच्छा पर मैं उनके सन्मुख उपस्थित हुआ जिससे मैं अपनी दशा में आश्चर्यजनक लाभ होने का प्रमाण उन से प्राप्त करूँ।

"आप की नवीन आविष्कृत चिकित्सा-प्रणाली द्वारा चिकित्सा करने के पश्चात् मैं एक सर्व साधारण समाज में २० या ३० विद्यार्थियों के सामने १३ फरवरी सन् १८८६ ई० के दिन आप से यह रिपोर्ट करने के योग्य हुआ कि मैं पूर्ण आरोग्यता की दशा में हूँ, और उस के साथ ही अपने बचनों की सिद्धि के लिये प्रत्येक प्रकार से शरीर के अवयवों को मोड़ तोड़ कर दिखाया।"

"उस समय से मैं पूर्ण आरोग्य और काम करने योग्य हूँ; मैं एक सौ पौंड (लगभग ५० सेर) का बोझ प्रत्येक हाथ में ले जा सकता हूँ हालाँकि पहिले मैं हाथ हिला भी नहीं सकता था, काम करने और वोझ ले जाने का तो कथन ही क्या। सन् १८८५ ई० के ग्रीष्म ऋतु से २३ जनवरी सन् १८८६ ई० तक लिपजिग नगर के बड़े प्रसिद्ध चिकित्सकों ने मेरी चिकित्सा की थी, उससे मेरी दशा प्रति क्षण अधिक दुःखदाई ही होती गई थी। आपने अपने नवीन प्रकार की चिकित्सा से मुझे २३ जनवरी व १३ फरवरी सन् १८८६ के बीच के समय में स्वास्थ्य की दशा और काम करने की योग्यता को पहुँचा दिया।"

"भेजा लिपजिग से—हेनिरिक, क"

अब हम को ठंडे हाथ और पैरों की और गर्म शिर की मूल जड़ पर ध्यान देने दीजिये—हम सब लोग जानते हैं कि शिर वास्तव में ठंडा होना चाहिये और हाथ और पैर गर्म, परन्तु हमको बहुधा इस के विरुद्ध दशा मिलती है। अब विचारना यह है कि रोग के यह लक्षण कैसे उत्पन्न होते हैं। मैंने अपने किसी पहिले व्याख्यान में कहा था कि बिना ज्वर के कोई रोग नहीं होता, और बिना रोग कोई ज्वर नहीं होता। अतः मेरे कथन के अनुसार यह बात भी एक प्रकार की ज्वर की दशा होनी चाहिये। शिर गर्म होने की दशा में वास्तव में ऐसा-ही होता है, इस में कोई मनुष्य सन्देह नहीं करता परन्तु ठंडे हाथ पावों में ज्वर के लक्षण बहुधा कम समझेंगे। मैं प्रमाण के साथ कहता हूँ कि दोनों, ही दशाएँ अर्थात् गर्म शिर और ठण्डे हाथ पांव एक-ही प्रकार से होते हैं। यह क्योंकर हो सकता है? प्रत्येक रोग शरीर के भीतर फ़ारेन मैटर (विजातीय द्रव्य-हानिकारक द्रव्य) की स्थिति से उत्पन्न होता है। ज्वर अर्थात् सड़न के द्वारा यह द्रव्य पेडू के स्थान से चल कर शरीर के अतिदूरवर्ती भागों शिर,

पांव व हाथों में इकट्ठा हो जाता है। उफान खाता हुआ द्रव्य यदि पांव और हाथों में पहुँच जाता है तो वहां उसको बहुत ही कम रुकावट मिलती है। फ़ारेन मैटर (हानिकारक द्रव्य) प्रथम पैर की उँगलियों और अगूठों में एकत्रित होता है, तत्पश्चात् पांव में; और पुनः रक्त के संचालन को कम करता और गर्मी को घटाता हुआ, शनैः-शनैः ऊपर की ओर टांगों में फैलता है। हाथों की भी यही दशा है। बहुत से लोगों को केवल उँगलियों के सिरे ही पहले ठंडे होते हैं। और किसी का केवल एक पैर; फिर आगे चल कर उन लोगों के टांगों का दुःख भी खड़ा हो जाता है, वे घुटनों तक ठण्डी हो जाती हैं। गर्म मोजों का प्रयोग किया जाता है, परन्तु वे भी अधिक समय तक सहायता नहीं करते। समूर के जूते भी थोड़े-ही काल तक सुख देते हैं; फिर एक समय ऐसा आ जाता है कि कोई गर्म कपड़ा भी काम नहीं देता। पांव अब गर्म नहीं किये जा सकते। इस से यह बात स्पष्ट हो गई, कि वस्त्र शरीर को गर्म नहीं करते प्रत्युत इसके विपरीत शरीर-ही उन्हें गर्म करता है। और यदि पहिले पहल गर्म आवरण (कपड़े) यदि किसी को ठण्ड रोकते हैं, तो समझिये कि अभी हाथ-पैरों में कुछ गर्मी शेष है जो मोटे कपड़ों में पहुँचकर उस में स्थित हो जाती है। परन्तु यह बचाव जो गर्म कपड़ों से मिलता है वह बहुत काल तक लाभ नहीं पहुचाता। त्वचा से द्रव्य को निकालने और रक्त के ठीक संचारन में जब कभी शनैः-शनैः न्यूनता आवेगी तो गर्म से गर्म कपड़ा भी निष्फल सिद्ध होगा।

शिर की दशा इसके सर्वथा विपरीत है। मस्तिष्क (Brain) जिस में पूर्ण रक्त पहुँचता रहता है, हाथ और पैरों की अपेक्षा, इस हानिकारक द्रव्य (फ़ारेन मैटर) को जो उस पर दबाव डाले हुए है, बहुत-ही अधिक रोकने की शक्ति रखता है। अतः अधिक रगड़ इसका परिणाम है, और उसका[1] फल गर्मी है। इस विधि से यह रहस्य स्पष्ट हो गया। ठीक-ठीक वही वस्तु जिस से हाथ और पैर ठंडे हो जाते हैं, पहिले शिर को गर्म कर देती है। परन्तु शिर की गर्मी भी थोड़ा बहुत देर में समाप्त हो जाती है। अपने चिकित्सा क्रम में मैंने कई रोगी ऐसे देखे हैं जिन के शिर सर्वथा ठंडे हो गये थे। जब शिर में हानिकारक द्रव्य (फ़ारेन मैटर) बहुत-सा इकट्ठा हो कर शिर की ओर दबाव डालता है और कुछ समय पीछे यहां से भी रुकावट जाती रहती है, और शिर ठण्डा प्रतीत होने लगता है। इस विचार की सत्यता का प्रमाण केवल उन्हीं आरोग्यता की प्राप्तियों द्वारा किया जा सकता है जो उस उपाय से, जो इस

१—अर्थात्—रगड़ का फल गर्मी है रगड़ने से गर्मी उत्पन्न होती है।

विचार के आधीन हैं, प्राप्त होती हैं। यदि कोई रोगी हाथ और पांव की ठण्ड और शिर के भीतर की जलन से निवृत्त होना चाहता है, तो उसको अपना यत्न उसी स्थान से आरम्भ करना चाहिये जहां सड़न (उफान) आरम्भ हुई है, अर्थात् पेड़ू से। प्रथम पाचन शक्ति ठीक करनी चाहिये, पश्चात् हाथ और पाँव स्वतः ही ठण्ठे हो जावेंगे। और फिर शिर जो ठण्डा[1] हो गया है प्रथम गर्म हो जावेगा, और फिर आवश्यकतानुसार ठण्ड प्राप्त करेगा। यह बात सहस्रों रोगियों में देखी गई है; मेरी चिकित्सा क्रिया में इस के नए-नए उदाहरण प्रति-दिन मिलते हैं। इस स्थान पर मैं यह बात और कहूँगा कि मुख्यतः ठण्डे हाथ और पांव के रोगियों को सदा गठिया की पीड़ा होने का भय रहता है।

अब मैं अवयवों के मुड़ जाने या टेढ़े हो जाने का वर्णन करता हूँ।

आपको मेरे कथन से यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि रोग के सब रूपों का सम्बन्ध (जिनका वर्णन अब तक किया गया है) एक-ही मिश्रित कारण से मिलान खाता है। सम्भव है कि इस पर भी आपको आश्चर्य हो कि बात रोग और गठिया का वर्णन कर के मैं सीधा शरीर के स्वरूपों जैसे उभरे हुए कंधे, रीढ़ का तिर्छा होना, अवयव का मुड़ जाना और ऐंठ जाना इत्यादि-इत्यादि के परिवर्तन की ओर आता हूँ। और बात भी यही है कि इन पिछले कहे हुए रोगों की जड़ भी, जैसा कि मैं आपको दिखलाऊँगा, वहीं है जो उन रोगों की है जिनका अभी वर्णन हो चुका है। अर्थात् शरीर में फ़ारेन मैटर (विजातीय द्रव्य) का भार और शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में उसका अधिकता के साथ इकट्ठा हो जाना। ये रोग बहुधा एक साथ प्रगट होते हैं। यदि हम इनका कारण आप से पूछने लगें तो आप लोग स्वयं ही यों उत्तर देंगे कि "ये परिवर्तन केवल हानिकारक द्रव्य (फ़ारेन मैटर) के एकत्रित हो जाने से ही होने सम्भव हैं। वे एक प्रकार के बढ़े हुए बात (Gout गांउट) रोग हैं।" और आप का यह उतर शुद्ध है। परन्तु यहाँ प्रश्न यह है कि यह कैसे इकट्ठा हुआ और फिर किस प्रकार शनैः-शनैः इस मुख्य स्थान तक इसने अपना मार्ग निकाला ? मैं आप को कई उदाहरणों की सहायता से इसे समझाऊँगा। परीक्षाओं द्वारा सिद्धि होता है, कि विजातीय द्रव्य (फ़ारेन मैटर) को शरीर में बड़े-बड़े उभार तथा परिवर्तन उत्पन्न करने के योग्य होने में बहुत काल लगता है; इस काम में वर्षों व्यतीत हो जाते हैं।

१—अर्थात् जो रोगी हो कर गर्म हुआ था—और फिर रोग के कारण ठंडा हो गया है—इसका वर्णन पृष्ठ—में आ चुका है।

कभी-कभी शरीर को किसी एक्यूट (तीव्र) रोग के द्वारा इतना अधिक विजातीय द्रव्य निकाल कर ऐसा समय मिल जाता है कि शरीर के उभार और वदलाव कुछ काल के लिए मिट से जाते हैं। अतः सम्भव है कि रोग के आरम्भ होने के पश्चात् पूर्ण कुरूपता प्राप्त होने तक वर्षों व्यतीत हो जावें। वही फ़ारेन मैटर जोकि एक दशा में चेचक-शीतला उत्पन्न करता है, दूसरी में टाइफ़ाइड फीवर (TyPhoid Fever) और तीसरी में डिफ़थीरिया इत्यादि। जब शरीर में इस द्रव्य का किसी तीव्र (एक्यूट) रोग द्वारा निकाल देने की पूर्ण शक्ति न रही हो तो यही इन कुरूपताओं और अवयवों के मुड़ जाने का भी कारण हो जाता है। विजातीय द्रव्य प्रायः कई स्थानों में एकत्रित होता है। विशेषतः उन्हीं स्थानों में जहां यह शरीर को सब से कम दुःखदाई प्रतीत हो और जहां तक हो सकता है यह शरीर के उन भागों से दूर रहता है जिनमें लगातार हिलना चलना बना रहता है। अतः जब विकृत पदार्थ ऐसे स्थानों में इकट्ठा होता है जो मुख्य अवयव नहीं हैं तो रोग थोड़ी-ही वेकली उत्पन्न करता है। परन्तु बाहरी परिवर्तन शनैः-शनैः ध्यान को उस ओर खेंचते हैं, और जहाँ तक सम्भावना होती है उनके समझने पर विचार दौड़ाये जाते हैं। सामान्यतः इसका दोष किसी ऐसे व्यवसाय पर लगाया जाता है कि जिस में शरीर के एक ही भाग से काम लिया जाता है या किसी एक मुख्य स्वभाव पर; जैसे सीधे न बैठने का स्वभाव। निस्सन्देह बात भी कुछ-कुछ ऐसी ही है, परन्तु क्योंकि इस प्रकार के स्वभाव केवल मार्ग[1] पकड़ने में सहायक होते हैं, इस कारण वे केवल परिवर्तन के रूप पर एक प्रकार का प्रभाव भर डालते हैं। पूर्ण आरोग्य मनुष्य में जब वह थकने पर विश्राम लेते हैं झुक कर बैठने से टेढ़ापन नहीं आ सकता। यह क्रिया शरीर को कुछ-कुछ समय पीछे उस हानि को जो पहुँची है पूर्ण करने के लिये केवल समय देती है।

इस प्रकार मैंने बहुधा देखा है कि ग्रामीण, जो दिन भर झुके हुए ही काम किया करते हैं उनका शरीर जब वह सीधे खड़े हो जाते हैं तो बहुत ही श्रेष्ठ और सीधा दिखाई पड़ता है। यदि वह लोग आरोग्य न रहे होते, तो उनके स्वरूप पर निस्सन्देह फ़ारेन मैटर (विजातीय द्रव्य) का प्रभाव अवश्य पड़ा होता। प्रारम्भ में अधिकांश मनुष्य नित्य प्रति बृद्धि करने वाली इस कुरूपता को दूसरों की दृष्टि से छिपाने का उद्योग दर्जी व कपड़ा काटने वालों की सहायता द्वारा किया करते है। परन्तु बहुत काल तक ऐसा करना असम्भव है।

कुरूपता के भी भिन्न-भिन्न भेद हैं। व्यवसाय (पेशा), स्वभाव, सोने का जो

१—अर्थात् विजातीय द्रव्य को उस का मार्ग पकड़ने में।

ढंग पकड़ लिया जावे, और विशेषतः जन्म के ही स्वभाव के कारण[1] ये उत्पन्न होती हैं। कठिनता से दो मनुष्य ऐसे मिलेंगे जिनके रूप समान हों तो भी कई एक आरोग्य शरीर पहिचाने जा सकते हैं, जैसा कि आपको आगे के चित्रों में दिखलाऊंगा।

चित्र A (ए) का मनुष्य लगभग आरोग्य स्वरूप का दिखाई पड़ता है। यह तत्क्षण प्रकट हो जाता है क्योंकि उस के सभी अवयव प्रायः बहुत ही उत्तम और सुडौल बने हुए हैं, न तो कोई भाग बहुत न्यून है न बहुत लम्बा न अधिक मोटा और न अधिक पतला।

चित्र B (बी) में एक भिन्न प्रकार का स्वरूप दिखाई देता है। बांई ओर के परिवर्तन अर्थात् एक चूतड़ का ऊपर और नीचे दोनों ओर को बढ़ जाना आपको तत्क्षण ज्ञात हो जावेगा। दोनों में से पिछला कहा हुआ अर्थात् (नीचे की ओर का) प्रथम स्वयं दिखाई देगा, क्योंकि फ़ारेन मैटर पेड़ू से चलना आरम्भ हुआ करता है, और इसी स्थान के चारों ओर सदैव परिवर्तन आरम्भ होता है।

इस के पूर्व कि कंधा ऊपर को उभर गया हो यह दशा वर्षों तक रही होगी। यदि उसके सम्बन्धियों या कुटुम्बियों को नीचे की ओर का बढ़ना ठीक समय पर दिखाई दे गया होता और उन्होंने इसके भय को जान लिया होता तो निस्सन्देह उन्होंने ठीक उपाय करने में विलम्ब न किया होता। मैं वस्तुतः किसी मनुष्य को ऐसी दशा में दोष नहीं लगा सकता, क्योंकि चिकित्सा के वे मार्ग जो आज कल प्रचलित हैं ऐसे रोगों का किंचिन्मात्र भी उपाय नहीं कर सकते, और बहुधा वे उन को रोग ही नहीं समझते। वह मनुष्य जिस का इस प्रकार स्वरूप बिगड़ जाता है उसको क्रपिल[2] Criple कह देते हैं, और इतने कहने पर ही बात समाप्त हो जाती है। परन्तु यह बात कि यह कुरूपता कैसे उत्पन्न हुई, अर्थात् किन कारणों ने इस को उत्पन्न किया प्रायः पहिले कभी नहीं जानी गई। मेरी नवीन चिकित्सा प्रणाली जब कि उस के सन्मुख ऐसे रोगी आते हैं—ऐसी अशक्त नहीं बनती जैसी कि पहिले की चिकित्सा विधि हो जाया करती हैं, और जो आरोग्यता मनुष्यों को इस नवीन चिकित्सा से प्राप्त हुई हैं उन्होंने इसके सत्य होने को भिन्न-भिन्न दशाओं में सिद्धि कर दिया है। मेरे नियम सदा व्यवहार करने के पीछे नियत किये गये हैं।

१—अभिप्राय है कुरूपता अर्थात् शरीर के टेढ़े तिरछेपन से।

२—क्रपिल अंग्रेज़ी में लंगड़े लूले या उस मनुष्य को कहते हैं जिसका कोई अंग अपनी क्रिया करने से अशक्त हो जाता है।

हानिकारक द्रव्य शरीर में मुख्यतः बांईं ओर इकट्ठा हो गया है; इस स्थान पर भी इस का फैलना ठीक-ठीक उसी विधि से हुआ है जैसा कि उस फैल जाने वाली बोतल में जिस में सड़ता हुआ द्रव्य केवल बांईं ओर ही इकट्ठा हुआ था। द्रव्य को अधिक स्थान की आवश्यकता होती हैं। और जब बाहर जाने का मार्ग नहीं मिलता तो लगातार दबाव डाल कर यह द्रव्य (उस बोतल को) सब ओर फैला देता है।
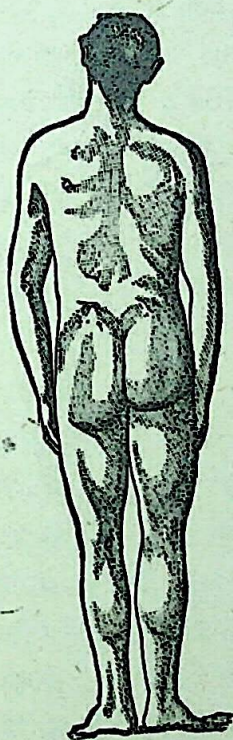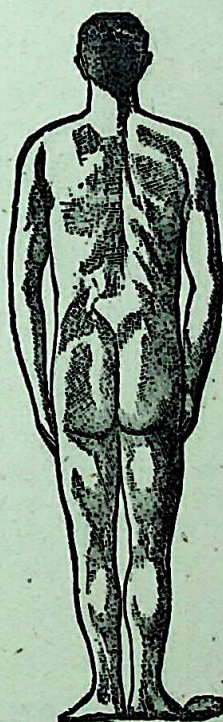
चित्र A (ए) चित्र B (बी)

अब यदि उबलता हुआ द्रव्य केवल बांईं ओर ही (जैसा कि इस स्थान पर हुआ है) उपस्थित हो तो वह स्थान जो साधारणतया फैलेगा, केवल यही पिछला[1] कहा हुआ स्थान होगा।

मेरे नवीन निदान की रीति अर्थात् मुखाकृति विज्ञान (साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्सप्रेशन) द्वारा यह रोग सहजही में (आरम्भ ही में) जान लिया गया होता,

१—बांईं ओर से अभिप्राय है।

और शरीर में से इस भार के कारण, अर्थात् फ़ारेन मैटर (हानिकारक द्रव्य, को निकालने के लिये चिकित्सा का उत्तम उपाय ग्रहण किया गया होता। चूतड़ों की बांई ओर कोई अधिक लम्बाई दिखाई देने के वर्षों पहिले गर्दन के बांई ओर भार का अधिक[1] होना जान लिया गया होता, और अब जब कि हमने सब रोगों की एकता को जान लिया है। और इस बात को जानते हैं कि यह अन्तर उसी फ़ारेन मैटर के

चित्र A (ए)
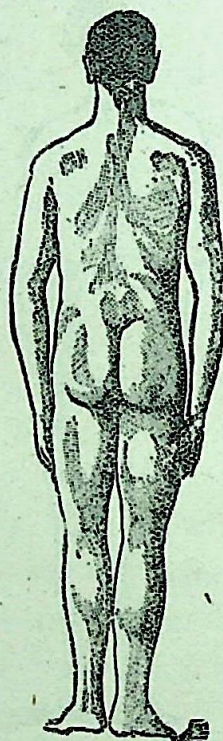
चित्र C (सी)

कारण से हुआ जिससे कि दूसरी दशाओं में टाइफ़ाइड फ़ीवर (ज्वर) डिफ़थेरिया इत्यादि उत्पन्न होते हैं, ऐसी कुरूपताओं को रोकना व उनका अच्छा करना दोनों बातें सहज हैं।

सभ्य पाठक! आपने आज प्रथम बार ही इस बात को सुना होगा कि कुबड़ापन तथा शरीर की कुरूपता कैसे उत्पन्न होती है? अब में आप को और अधिक दृष्टान्तों द्वारा दिखालाऊंगा कि ये सब दशाएं एक ही कारण से उत्पन्न होती हैं।

१—हानिकारक द्रव्य का भार या बोझ।

ऊपर के चित्र C (सी) में एक ऐसा शरीर आपकी दृष्टि के सन्मुख है जिस में कि चूतड़ दोनों ओर से बढ़ गये हैं। प्रथम आपको एक कल्पित विचार इस बात का हुआ होगा कि इस शरीर में जो इस स्थान पर दिखाया गया है—शरीरावयवों में उचित सामञ्जस्य की न्यूनता है परन्तु चित्र A (ए) के साथ तुलना करने से उसी क्षण यह भी ज्ञात हो जाता है, कि उस में सम्पूर्ण धड़ अधिक लम्बा है। नीचे का भाग विशेषतः ऐसा ही है। जिस के कारण से टांगें और गर्दन बहुत छोटी हो गई हैं। गर्दन कुछ-कुछ कंधों के बीच में छिप गई है। इस दशा में चूतड़ों में केवल एक ही ओर फ़ारेन मैटर का भार नहीं है, वरन यह भार सब में समान रूप से फैला हुआ है, इस कारण विजातीय द्रव्य ने दोनों नितम्भों (चूतड़ों) को एक-सा लम्बा कर दिया है। इन दशाओं में यह भी होता है कि द्रव्य बल पूर्वक गर्दन के मार्ग द्वारा ऊपर की ओर शिर को जाता है; और तब शिर की एक असाधारण आकृति बना देता है, जैसा कि आप लोग प्रायः देखते होंगे। मैं फिर आप को उस बोतल की याद दिलाता हूँ जिस के ऊपर हमने रबड़ की टोपी[1] पहिनाई थी। शिर की आकृति में उसी भांति, (समान रीति से) परिवर्तन होते हैं जिस प्रकार कि बोतल के भीतर हुए थे।

परन्तु कभी-कभी इन स्वरूपों के विरुद्ध दशा भी आप के देखने में आवेगी अर्थात् टांगें और हाथ (बांह) तो बहुत लम्बे और धड़ उनकी अपेक्षा बहुत छोटा होगा। फिर भी कारण एक ही है, इस दशा में केवल आरम्भ काल से ही फ़ारेन मैटर इन पिछले भागों[2] में प्रवेश हो गया इसी कारण धड़ कई वर्ष तक इन अवयवों की वृद्धि के साथ-साथ न चल सका। कोई मनुष्य कठिनता से इस बात पर विश्वास करेगा कि हम अपनी इस सीधी सादी चिकित्सा द्वारा इन (उपरोक्त) दशाओं में शरीर के अवयवों में उचित सामंजस्य पूर्ण प्रकार उत्पन्न कर सकते हैं। क्रानिक Chronic (चिरकाल तक रहने वाली) दशा को फिर ठीक किये जाने से पूर्व मेरी इस "चिकित्सा विधि" को, ठीक रीति से प्रायः वर्षों तक करते रहने की आवश्यकता है। और जब कि शरीर अधिक पुराना हो गया है और उसमें आवश्यकीय जीवन शक्ति नहीं रही है, तो पूरे प्रकार से आरोग्य करना असम्भव भी हो सकता है।

चित्र D (डी) में, एक ऐसा रूप हमको दिखाई देता है जोकि दुर्भाग्य वश वर्तमान समय में बहुधा मिलता है; विजातीय द्रव्य ने एकत्रित होकर कमर में उभार

१—देखो पृष्ठ ४५।

२—टांग और बांह से अभिप्राये है।

उत्पन्न कर दिया है। जिसके कारण इसी के साथ-साथ ठीक रीति से छाती का फैलना भी रुक गया है, अतः छाती की आकृति स्पष्ट चपटी दिखाई देती है। इससे प्रायः ऐसा प्रतीत होता है कि जो कुछ अधिकता पीठ में की गई है वह छाती में से ही लेकर की गई है। छाती उसी क्षण फैलेगी जब पीठ का भार दूर किया जावेगा। इस दशा में भी वस्तुतः दीर्घ काल पहिले से ही विजातीय द्रव्य का भार चूतड़ (नितम्भ) उठाये हुए हैं। अतः ऐसी दशा में हमको यह बात भी ज्ञात होती है। कि पेड़ू या
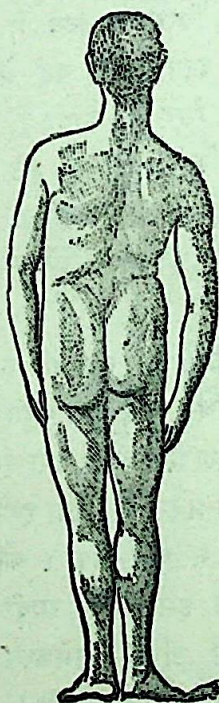
चित्र D (डी) चित्र E (ई)

तो अधिक बढ़ गया है या अधिक सख्त (कड़ा) हो गया है कभी-कभी यह भार बचपन या जन्म के पूर्व से ही उपस्थित रहता है, और इसी कारण केवल चार या पांच वर्ष के बच्चों में भी वृत्ताकार पीठ और चपटी छाती हमारे देखने में आती है। इस अवस्था में ये उपद्रव अति शीघ्र और सहज में मिट सकते हैं, क्योंकि हमारी चिकित्सा से कम अवस्था का शरीर प्रायः एक मास में इतनी अधिक उन्नति प्राप्त कर लेता है जितना कि अधिक अवस्था वाला एक वर्ष में। वस्तुतः अल्पवयस्कों में

आवश्यक शक्तियों के बढ़े हुए होने के कारण ही यह बात होती है। मैं आप को बतला चुका हूँ कि प्रत्येक मनुष्य इन कुरूपताओं को उनके आरम्भ ही में जान लेने में किस प्रकार सफलता प्राप्त कर सकता है। यह केवल मेरे मुखाकृति विज्ञान (साइन्स आफ़ फेशियल एक्सप्रेशन) के ही द्वारा सम्भव है।

चित्र F (एफ़)

यह विजातीय द्रव्य कभी-कभी एक अति विपरीत मार्ग का अवलम्बन भी कर सकता है, अर्थात् एक ओर से दूसरी ओर जाकर फिर पहिली ही ओर लौट कर आ सकता है। यह बात हमको चित्र (ई) (पृष्ठ ११०) में प्रकट होती हुई दिखाई देती है। हम देखते हैं कि इस दशा में द्रव्य प्रथम विशेष कर बांई ओर इकट्ठा हुआ है; परन्तु बीच में उसका मार्ग किसी अवयव विशेष के कारण जो उस स्थान में उपस्थित है रुक गया है, अतः उसको दाहिनी ओर जाना पड़ा और फिर पीछे से दूसरी ओर को चला। ऊपर और नीचे दोनों पार्श्वों को, बांई ओर की सब लम्बाई, आप स्पष्ट देखते होंगे, और बीच में उसका झुकाव दाहिनी ओर को भी देखते हैं। इस स्थान पर रीढ़ की हड्डी में कुछ टेढ़ आगई है। प्रथम यह बात है कि निस्सन्देह यह टेढ़ पीढ़ियों के भार (फ़ारेन मैटर के) कारण से हुई है यदि हम कन्धों को सहारने वाली रीति या दूसरे प्रकार की पट्टियां शरीर को सीधा करने के लिये काम में लावें, तो उन से हम कुछ भी सफलता न प्राप्त करके रोगी को केवल दुःख ही पहुँचावेंगे। वास्तव में द्रव्य को स्थान की आवश्यकता है, और मेरे चिकित्सा कर्म्म में यह बहुधा देखने में आया है कि, जिन दशाओं में टेढ़ी कमर बलात् नीचे को दबा दी गई थी तो उसके पश्चात् एक दम विजातीय द्रव्य तथा हानिकारक द्रव्य छाती पर इकट्ठा होने लगा। पीठ की ओर से इस द्रव्य के दूर करने के उद्योग में सफ़लता प्राप्त हुई, परन्तु उसके स्थानापन्न वह द्रव्य केवल सामने की ओर फिर दिखाई दिया। वह स्थान जो द्रव्य के लिये आवश्यक था उससे छीना न जा सका, केवल उसके इकट्ठा होने के स्थान को ही बदल सके।

चित्र F (एफ़) से एक ऐसा मनुष्य प्रकट होता है जिसमें कि फ़ारेन मैटर ने पीठ के बीच में अपने ठहरने का स्थान बनाया है; और शरीर को एक प्रकार से सदैव के लिये कुबड़े पन के रूप में बदल दिया है। इस प्रकार भी फ़ारेन मैटर कभी-कभी इकट्ठा होता है, क्योंकि प्रायः द्रव्य अन्त के सिरों की ओर जाने की चेष्टा किया करता है। इस दशा को समझाने के लिये मैं आपके समक्ष अपनी चिकित्सा विधि द्वारा निरोग किया हुआ एक और आश्चर्य्य जनक दृष्टान्त, जैसा कि G (जी) और H (एच) चित्रों (पृष्ठ ११४) में दिखलाया गया है, निवेदन करूँगा।

इस सम्बन्ध में आपको उन दीन कुबड़ी कमर वाले लोगों का स्मरण अवश्य आवेगा जोकि इस कूबड़ से निस्सन्देह कुरूप हो जाते हैं। बहुधा रीढ़ की हड्डी में हमको टेढ़ दिखाई देती है। इनमें से बहुत-सी दशाओं में इसका कारण (फ़ारेन मैटर) पैतृक रीति से मिले हुए विजातीय द्रव्य का भार हुआ करता हैं। परन्तु रोग के भिन्न-भिन्न रूपों का वर्णन करने के पहले एक मुख्य प्रकार की कुरूपता पर मुझे ध्यान देना चाहिये।

यह बहुधा होता है कि द्रव्य अपने आप को गर्दन के मार्ग से ऊपर की ओर वल करके ले जाता है और वह शिर के भीतर पहुँचकर इकट्ठा हो जाता है। मैं कह चुका हूँ कि शिर का ठण्डा हो जाना (इससे) किस प्रकार उत्पन्न होता है। इस कारण सहज ही में बच्चों का शिर, प्रकृति के विरुद्ध फैल (चौड़ा) जाता है। दूसरे अवयवों की अपेक्षा शिर का बड़ा होना किसी कष्ट साध्य वा शिथिल रोग का लक्षण है। शिर का इस रीति से फैल जाना प्रायः जन्म से पूर्व हुआ करता है—और उसका पहिला परिणाम यह है कि प्रसूत कष्ट से होता है। और यह बात तो सर्व साधारण के देखने में आती है कि बड़े शिर के बच्चे बहुत ही कम अधिक आयु प्राप्त करते हैं। आज आपका ध्यान इस बात के कारण की ओर प्रथम बार ही आकर्षित किया गया है, इसको कदाचित् ही आपने किसी से पहिले सुना होगा। इस भार का कारण मैं आपको उस बोतल का दृष्टान्त देकर बता चुका हूँ, कि जिसके ऊपर रबड़ की टोपी रक्खी गई थीं।

इन कथनों की सत्यता का प्रमाण केवल चिकित्सा द्वारा आरोग्यता प्राप्त करने वालों के उदाहरणों में ही उपस्थित किया जा सकता है, जो चिकित्सा विधि कि उन नियमों के आधीन है जो समझाये जा चुके हैं।

मेरे आदेशों द्वारा इस प्रकार से बहुत से लोगों ने वास्तव में रोग से निवृत्ति प्राप्त की है। चिकित्सा वही रही है जोकि रोगी की उन दशाओं में जिनका वर्णन पहिले

हो चुका है कीगई थी। चाहे यह बात आश्चर्यमय भले ही जान पड़े, कि मैं कुबड़ी पीठ को उसी उपाय से आरोग्य करता हूँ जिससे कि खांसी और जुकाम को; परन्तु मैं इसके विरुद्ध कर भी कैसे सकता हूँ जब कि रोगों का कारण भी एक ही है। अनेक प्रमाणों से मैंने इस बात को सिद्ध कर दिया कि मैं सत्य (ठीक) कहता हूँ, क्योंकि जब चिकित्सा दृढ़ता के साथ की जाती हैं तो रोग के सब लक्षण दूर हो जाते हैं। केवल यही एक बात आवश्यक है कि शरीर में पर्याप्त जीवन-शक्ति स्थित हो, और नसों व रगों का

चित्र G (जी)

चित्र H (एच)

सम्बन्ध शरीर में कहीं पर भी विछिन्न न हो गया हो, जिसके द्वारा आरोग्यता प्राप्त करने की क्रिया अपने मार्ग पर अग्रसर हो। जो बात मैंने पहिले कही है उसी को फिर दुहराता हूँ, अर्थात् सर्व रोग (या यों कहो कि रोगों के सब रूप) साध्य हैं, परन्तु सब मनुष्य साध्य नहीं।

अब मैं आपका ध्यान, कई ऐसे मनुष्यों की आरोग्यताओं की ओर जिनको मेरी चिकित्सा विधि द्वारा स्वस्थता प्राप्त हुई है, आकर्षित करता हूँ।

सन् १८८६ ई० में एक लेडी मिसेज H (एच) अपने १३ वर्ष के पुत्र को बच्चों की गाड़ी में लेकर मेरे पास उन समयों में आई जब कि मैं रोगियों को देखा

करता हूँ। वह लड़का रीढ़ के टेढ़ेपन से, जिसमें कि पीड़ा भी थी ग्रस्त था; रीढ़ के ऊपर जैसा कि चित्र G (जी) पृष्ठ ११४ में दिखाया गया है, एक अत्यन्त उभार उत्पन्न हो गया था। वह लड़का अत्यन्त कष्ट से दो लकड़ियों के सहारे चल सकता था, और बहुधा उसको गाड़ी में बिठला कर लाया करते थे। मैंने उसकी माता से प्रश्न किया कि इसके क्या-क्या उपाय हो चुके हैं। उसने उत्तर दिया कि दो वर्ष से कुछ अधिक समय तक यह रोग इतना कष्टदायक रहा, कि उसके विषय में डाक्टरों से सम्मति लेने की आवश्यकता हुई। एक प्रसिद्ध वैद्य (डाक्टर) ने जो लिपजिग नगर में अध्यापक था लड़के पर चीरा फाड़ी की क्रिया की थी और उस को बुरे प्रकार से, एक घटने बढ़ने वाले पलंग, लोहे की तख्तियों और न हिलने देने वाले, अन्य यन्त्रों के द्वारा जकड़ दिया था, परन्तु कुछ सफलता प्राप्त न हुई थी। मिसेज H (एच) ने यह बात स्पष्ट रूप से देख ली थी कि औषधियों और चीरा फाड़ी की क्रियाओं से कुछ लाभ न हुआ, इसी कारण उसने मेरे पास आने के पहिले कुछ काल तक घर की औषधियों का ही प्रयोग किया था। मैंने उसको समझाया कि इस रोगी की दशा में विजातीय द्रव्य ने इकट्ठे होने के लिये पीठ पर स्थान नियत कर लिया है, और रोग से निवृत्त होने की केवल यही एक रीति है कि इस द्रव्य को दूर किया जावे। वह मेरे कहने को समझ गई और उसी दिन से उसकी चिकित्सा आरम्भ की गई। उस लड़के ने तीन फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ प्रति दिन लिये प्रत्येक स्नान आधे घण्टे तक लिया गया), उसे पूर्ण प्रकार सात्विक भोजन दिया गया और मैंने इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया कि बच्चे को जितना हो सके नगर के बाहर शुद्ध खुली वायु में रक्खें, इस छोटी अवस्था के शरीर में फ़ारेन मैटर अपरमित शीघ्रता के साथ लौटने लगा, अतः फल भी अत्यन्त आश्चर्य्य जनक हुआ। एक सप्ताह के पीछे बच्चे को गाड़ी में फिराने की आवश्यकता न हुई, वरन् वह अपनी दो लकड़ियों के सहारे से अकेला चल फिर सकता था। दो सप्ताह पीछे ये पिछली (लकड़ियाँ) भी अनावश्यक हो गई, और शरीर पहिले से बहुत सीधा हो गया। इसके पश्चात् दो सप्ताह तक चिकित्सा और करने पर वह लड़का फिर पाठशाला जा सका, जहाँ कि वह बहुत काल से नहीं जा सकता था। उस बच्चे ने इस चिकित्सा को छः महीने तक किया और ऐसा आरोग्य हो गया कि फिर अपना शरीर सर्वथा सीधा रखने लगा जैसा कि चित्र H (एच) से विदित है।

यदि मैं यह कहता हूँ कि यह विकृत पदार्थ जिसने कि इस स्थान पर यह रोग उत्पन्न किया है वही है जोकि चेचक, शीतला, रक्त ज्वर, डिफ़थेरिया इत्यादि

दूसरे रोगों में था, तो यह शरीर से उसी रीति से निकाला भी जा सकता है, जिस प्रकार पूर्वोक्त रोगों में। अर्थात् इन रोगों से मुक्त होने का मार्ग भी एक ही होगा। उसके माता पिता को मैंने इस बात की सत्यता सिद्ध कर दी।

उसी दिन जिस दिन कि यह लड़का मेरे पास लाया गया था एक स्त्री ने जिसके कि मासिक धर्म्म होने के समय अत्यन्त अधिक रक्त निकला था, और एक ६ वर्ष की लड़की ने भी जिसको कि त्वचा के एक भयानक रोग (खुजली) ने ग्रसित कर रक्खा था, और जो अन्य सब औषधियों की निष्फल परीक्षा कर चुके थे, मुझसे सम्मति ली। निस्संदेह प्रति मनुष्य के अलग-अलग वृतान्त का विचार करके इन दोनों की चिकित्सा उसी रीति से की गई जैसे कि उस लड़के की, और तीनों को ही आरोग्यता प्राप्त हुई। यह बात तभी प्राप्त हो सकती थी जब कि तीनों रोगों का कारण भी एक ही हो। सो यह बात इन रोगियों के आरोग्य हो जाने ने सिद्ध कर दी।

एक दूसरा वृतान्त यह है कि एक पचास वर्ष की अवस्था का मनुष्य मेरी रीति से ४ वर्ष तक ठीक प्रकार चिकित्सा करने के पश्चात् अपने धड़ और टांगों में उचित सामञ्जस्य फिर प्राप्त करने में सफल हुआ था। पूर्वोक्त (धड़) सामान्य (धड़) की अपेक्षा बहुत बढ़ा हुआ था, यद्यपि गर्दन व टांगें बहुत छोटी थीं। चिकित्सा-काल में रोगी ने यह बात देखी कि उसका पायजामा छोटा होता गया, और उसका कोट कन्धों के समीप से ढीला होता गया। अतः कई-कई मास पश्चात् उसको अपने कपड़े दर्जी के यहां सुधारने को उस समय तक भेजने पड़े थे, जब तक कि अन्त में उसके शरीर ने अपनी ठीक आकृति प्राप्त न की थी।

मैं आशा करता हूँ कि इन सब बातों के कथन करने के पश्चात् अब आपको रोगों की एकता अर्थात् उनका एक सा कारण स्पष्ट रूप से ज्ञात हो गया होगा। इस बात के प्रमाण आपको मेरे चिकित्सा क्रम में प्रति दिवस मिल सकते हैं।

इस विषय के समाप्त करने के पूर्व मैं आपके सन्मुख कई ऐसे प्रमाण उपस्थित करूँगा जो मुखाकृति विज्ञान की उस श्रेष्ठ योग्यता को प्रमाणित करेंगे जो उसको आज कल के प्रचलित मार्ग (निदान) पर प्राप्त हैं।

मेरे बहुत से रोगयों ने जो अपने रोग की असाध्यता के निकट तक पहुँच चुके थे, और सब प्रकार की दूसरी चिकित्साओं की परीक्षा लेकर थक चुके थे, मुझ से सहायता चाही। मैं समझता हूँ मुझे आज कल के प्रचलित निदान की रीति पर

उससे ज्यादा, जैसा कि और मनुष्य भी विश्वास करेंगे, अधिक ध्यान देने का अवसर मिला है। एक बार एक दीर्घकाय मनुष्य ने (जिसको लोग आरोग्यता की मूर्ति कहते थे) अपने को काम करने से सर्वथा अशक्त बतलाते हुए मुझसे सम्मति ली। सब वैद्यों ने (उसने अन्य बहुतों से परामर्श लिया था) जहां तक कि ठोकने, छूने, सुनने से हो सकता है उसकी बहुत सावधानी से परीक्षा की थी, और अन्त में उसको पूर्ण प्रकार आरोग्य बतलाया था, अर्थात् वे लोग कोई रोग उसमें न जान सके, और कहते थे कि वह भ्रमवश स्वयं अपने आपको रोगी समझता है। उनके कथनानुसार सब से उत्तम[१] बात जोकि उस मनुष्य को इस दशा में करनी उचित है वह यह है कि वह यात्रा करे जिससे उसका मन बहले। फिर उसमें कोई रोग दिखाई नहीं देगा। उसने उनके कथनानुसार यात्रा की, पर कुछ लाभ न हुआ और फिर वह मेरे पास आया। गर्दन और शिर पर एक दृष्टि डालने से और गर्दन को दाहिनी व बाँई ओर मोड़ कर परीक्षा करने से मुझे यह बात स्पष्ट हो गई कि उसके शरीर में विकृत पदार्थ का बहुत ही अधिक भार स्थित है, सब शरीर उससे लदा पड़ा है। मैंने अपनी साधारण चिकित्सा बतलादी; छः सप्ताह में इससे इतना हानिकारक द्रव्य निकल गया कि वह अपने को दिन भर काम करने के योग्य हो जाने के शुभ समाचार मुझे भेज सका। आप देखते हैं कि कौन सा निदान इस दशा में अधिक लाभदायक हुआ। मेरी चिकित्सा में इस प्रकार की दशाएँ लगभग प्रति दिन देखने में आती हैं, जिनमें रोगियों को सर्व साधारण तो स्वास्थ्य की मूर्त्ति बताते हैं, परन्तु वह स्वयं अपने आप को बहुत रोगी समझते हैं। ऐसे रोगी किसी वैद्य से सम्मति लेने में बहुत ही हिचकिचाते हैं, क्योंकि पहिले के बुरे अनुभवों के कारण उनको यही आशा होती है कि उनका रोग फिर भी मानसिक ही[२] बताया जायगा। ठीक-ठीक ऐसे ही अवसरों पर मुझे इस बात को ध्यान पूर्वक देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिनसे प्रचलित निदान की रीति कैसी अपूर्ण है यह स्पष्ट सिद्धि होता है।

१—यह बात उस रोगी के पहिले वैद्यों ने जिन्होंने कि उसके रोग को वहमी बतलाया था उससे कही थी।

२—जिसको कि वैद्य भ्रम कह देते हैं कि इसकी औषधि लुकमान के पास भी नहीं है, भ्रम भी एक ऐसा रोग है जो उपाय साध्य है, इसका वर्णन इस पुस्तक के दूसरे भाग में मानसिक रोगों के विषय में हुआ है।

एक रोगी का हाल और सुनिये। १८ वर्ष की अवस्था की एक लड़की मेरे पास आई जो क्लोरोसिस[1] (ग्रीन सिकनेस) में ग्रस्त थी। डाक्टरों ने उससे कहा था कि वह कुछ-कुछ क्लोरोसिस की ओर चेष्टा रखती थी, परन्तु और प्रकार से वह सर्वथा अच्छी थी, उसको लोहा (Iron) खाना चाहिये। और इससे वह अपनी गई हुई आरोग्यता फिर प्राप्त कर लेगी। उसने लोहा खाया, परन्तु उसका रक्त इससे स्वच्छ न हुआ। मुख को देख कर मेरी निदान की विद्या (मुखाकृति विज्ञान) ने मुझे बता दिया कि उसमें एक साथ हीं 'बहुत अच्छी' व क्लोरोसिस की दो विरुद्ध दशाएँ एक साथ कदापि नहीं रह सकती थी; उसके शरीर में हानिकारक द्रव्य का अधिक भार उपस्थित था। रक्त संचार की महीन-महीन रगें जो रक्त को त्वचा तक पहुँचाती हैं सब रुक गई थीं, वाहर त्वचा-तक रक्त पूर्णतः नहीं पहुँच सकता था, इसी कारण त्वचा देखने में पीली व रोगी जान पड़ती थी। इस रोग का कारण, पाचन शक्ति की वर्षों की क्षीणता थी। मेरी यह बात रोगिणी ने भी स्वीकार की। खेद है कि बहुत से लोग दुर्भाग्यवश यह भी नहीं जानते कि वास्तव में ठीक पाचन शक्ति कैसी होती है, अतः इसकी पूर्ण आवश्यकता का भी उन्हें अनुभव नहीं होता। मेरी चिकित्सा में यह प्रति दिन देखने में आती है। इस युवती के लिये भी मैंने वही चिकित्सा नियत की जोकि उस रोगी की दशा में की थी जिसका वर्णन इस से पहले हो चुका है। कई महीने तक चिकित्सा प्रचलित रखने पर वह रोग जाता रहा और रोगिणी का रूप सर्वथा बदल गया। आप देखते हैं कि प्रचलित निदान ने इस रोगिणी का ठीक-ठीक हाल बताने के विषय में फिर भी भूल की। 'क्लोरोसिस तो रोग का केवल

१—क्लोरोसिस अंग्रेजी शब्द है, यह एक रोग का नाम है जो मुख्यतः स्त्रियों को होता है; यह रोग बहुधा १५ से २५ वर्ष की अवस्था में होता है, इसमें त्वचा का रङ्ग हरा या पीला हरियाली लिये हुए हो जाता है जिसके कारण इस रोग को ग्रीन सिकनेस के नाम से प्रसिद्ध करते हैं, इस रोग में एनिमिया रोग के सर्व लक्षणों के अतिरिक्त अर्थात् रक्त की न्यूनता के लक्षण प्रगट होते हैं। अर्थात् त्वचा का रंग पीला या हरियाली लिये हुए, शारीरिक क्षीणता व दुर्बलता, मस्तिष्क के कार्य से घृणा, हाथ पांव ठंडे, थोड़े परिश्रम से हृदय का धड़कना और रोगी का हांपना, शिर दर्द, शिर भ्रमण, कानों में भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्द आने, शरीर में कई स्थानों में और बांह कक्षा, व पृष्ठ में नसों की पीड़ा, कभी मृगी भी आ जाती है, और मासिक धर्म में बिगाड़ अवश्य होता है, और चिरकालीन, बद्धकोष्ठ और क्षुधा की कमी भी अवश्य होती है।

एक वाह्य लक्षण था, जोकि स्वयम् विकृत द्रव्य से उत्पन्न हुआ था, और यह पीछे कहा हुआ अर्थात् विकृत द्रव्य शरीर में पाचन शक्ति के बिगड़ जाने से छूट गया था। रोगिणी की गर्दन व शिर पर दृष्टि डालने से मैंने इन सब बातों को जान लिया यद्यपि मैडीकल साइंस के पक्षपाती इसको किञ्चित् भी नहीं जान सके थे।

एक दूसरा दृष्टान्त यह है :—एक स्त्री जिसको अत्यन्त कोष्ठ बद्ध (सख्त कब्ज) रोग की पीड़ा थी मेरे पास आई। कोई उपाय उसको लाभ नहीं पहुँचाता था, और डाक्टर ने उससे कह दिया था कि उसे चिन्ता नहीं करनी चाहिये. पूर्ण आरोग्य मनुष्यों को भी क़ब्ज रहता है। यह स्वयं ही अच्छा हो जायगा। मैंने जान लिया कि वह स्त्री हानिकारक द्रव्य से बहुत भरी हुई है जिसने मुख्यतः पेड़ू में एक उच्च श्रेणी के पुराने ज्वर की गर्मी उत्पन्न कर दी थी; जिस गर्मी ने आँतों से निकलने वाला चिकना रस सब सुखा दिया था और मल को सर्वथा जला दिया था, अतः यह आंतों में कड़ा और शुष्क दशा में रह गया था। अपनी चिकित्सा की रीति मैंने बतला दी, और आश्चर्य जनक थोड़े समय में प्रारम्भिक स्नानों के पश्चात् ही भीतर की गर्मी बाहर को खिच आई और अँतड़ियाँ पूर्ववत् अपना काम करने लगीं। इस दशा में भी, आप स्पष्ट रूप से प्रचलित निदान की अपूर्णता को देख सकते हैं। मैं इस बात पर जोर दूँगा कि इससे अधिक हानिकारक और बहुत बढ़ी हुई अशुद्धि वा भूल इसके सिवाय और कोई नहीं है कि कोई मनुष्य पूर्ण स्वस्थ भी हो और कोष्ठ बद्ध में (क़ब्ज में) भी ग्रस्त हो। रोग के विषय में ऐसा विचार कितनी सत्यता से दूर हटा हुआ है। वास्तव में यह ऐसा विचार है जैसा कि किसी बच्चे का हो सकता है, बच्चा जो कि केवल उन बाहर के चिह्नों को ही देखता है जिनका कारण वह कुछ भी नहीं बतला सकता। मैं दृढ़ता से कह सकता हूँ कि बुरी पाचन शक्ति सब रोगों की जननी है।

एक बुद्धिमान वैद्य ने मुझ से एक बार कहा "मैंने अपने मस्तिष्क को बहुत से मुर्दों (मृतक शरीरों) को चीर फाड़ कर परीक्षा करने में प्रायः लगाया है। इस पर काफी विचार किया है कि अमुक रोग से अमुक मृत मनुष्य क्यों मरा है ? अमुक अन्य से क्यों नहीं मरा ? शरीर के सम्पूर्ण वाह्य और आभ्यान्तरिक अवयव अच्छी दशा में थे और रोग का किसी स्थान पर चिह्न भी न मिल सका।" मैंने उत्तर दिया कि उसकी और मेरी रोग निदान करने की विधि में इतना ही अन्तर है कि वैद्य लोग (डाक्टर) तो मुख्य कर मृतक शरीरों को चीर फाड़ कर. ज्ञान प्राप्त करने का यत्न करते हैं और मैं केवल उन्हीं कार्यवाहियों पर दृष्टि डालता हूँ जोकि जीवित

शरीरों में होती रहती हैं—इसलिये मृतक शरीरों की देख भाल मेरे लिये व्यर्थ है अपना अभिप्राय स्पष्ट करने के लिये निम्नाङ्कित उदाहरण देता हूँ :—

कोई मनुष्य एक सीने की कल (मशीन) मोल लेने जाता है। बाजार में बहुत सी अव्वल क़िस्म की कलें रक्खी हुई देख पड़ती हैं और उनमें से वह एक को पसन्द कर लेता है। प्रगट में उसको कोई बिगाड़ दिखाई नहीं देता, देखने में उसकी बनावट हर बात में सर्वोत्तम व श्रेष्ठ है। उस मनुष्य का एक मित्र अब उसको बतलाता है कि मशीन बिना चले हुए बहुत श्रेष्ठ दिखाई दे सकती है, परन्तु प्रथम दोष तभी दिखाई पड़ेगा जब उसको चलावेंगे। चलने में एक ही दोष जो किसी दूसरी विधि से नहीं जाना जा सकता, पूरी मशीन को व्यर्थ कर देगा, इस लिये यह अच्छा है कि मशीन को चला कर देख लिया जावे। मनुष्य के शरीर की भी ठीक ऐसी ही दशा है। काम न करने की दशा में (इस स्थान पर अभिप्राय मृतक से है) यह बतलाना असम्भव हो जाता है कि भेद क्या है ? चैतन्य शरीर में प्रत्येक नियमानुकूल क्रिया स्पष्ट दिखाई दे जाती है। अतः जो कोई इन नियम विरुद्ध क्रियाओं पर (रोग के सब स्वरूपों और उसके लक्षणों को) ध्यान देकर विचार करन चाहता है, वह मृतक शरीरों को चीर फाड़ करके देखने से अपना प्रयोजन सिद्ध नहीं कर सकता, वरन् जीवित मनुष्यों को केवल ध्यान के साथ विचार करके अपना अभिप्राय निकाल सकता है। मेरा मुखाकृति विज्ञान इसी प्रकार के विचार के आधीन है।

अब रोग के सब स्वरूपों की एकता को (इस में मुझे विश्वास है कि सिद्ध हो गई) सिद्धि कर देने के पश्चात् इतना और कहूँगा कि वर्त्तमान समय के औषधि-विद्या वेत्ताओं की प्रचलित रीति की जांच, रोगों के नाम और उन रोगों के स्थान सर्वथा अनावश्यक हैं, और जहां तक कि उपाय से वे सम्बन्ध रखते हैं सर्वथा निष्फल हैं। वास्तव में हम उनके कारण सहज ही भूल में पड़ सकते हैं। प्रश्न केवल यह है कि यह बात जान ली जावे कि अमुक शरीर रोगी है या आरोग्य अर्थात् उस शरीर में हानिकारक द्रव्य उपस्थित है या नहीं, किस प्रकार से यह भार उसमें आ गया, और कितने काल से यह भार उस में आता रहा है; जिस से हम लगभग उस समय का अनुमान कर सकें जो आरोग्य होने में लगेगा। जिस समय हमने यह बात जान ली कि अमुक शरीर रोगी है तो उस समय हम को यह बात भी ज्ञात हो जायगी कि उसके आरोग्य बनाने में हमें क्या-क्या करना होगा; अतः रोगी की चिकित्सा करने में आरम्भ ही से किसी प्रकार की भूलें न होने पावेंगी।

स्नान-विधि

अर्थात्

मेरी निकाली हुई चिकित्सा के स्नान*

स्टीम बाथ्ज़ Steam-baths अर्थात् भाप के स्नान, सन बाथ्ज़ Sun-baths अर्थात् धूप के स्नान या विशेष रीति से शरीर को या उसके किसी हिस्से को धूप देना। फ्रिक्शन हिप बाथ्ज़ Friction hip-baths अर्थात् कटि और पेडू का स्नान। फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ्ज़ Friciton sitze-baths अर्थात् एक प्रकार का लिङ्ग स्नान

—: ❋ :—

बहुधा रोगों और उन के कारणों के वर्णन हो जाने के पश्चात् यह आवश्यक हुआ कि उन रोगों के दूर करने के उपायों का भी ज्ञान हो जावे। इस अवसर पर भी हम को एक ही प्रकार की चिकित्सा के ज्ञान हो जाने की आशा करनी उचित है, क्योंकि सर्व रोगों की उत्पत्ति का मूल-कारण भी एक ही है।

(1) सब से पहिले स्टीम बाथ्ज़ Steam-bats अर्थात् भाप के स्नानों का वर्णन किया जाता है, और यह कई प्रकार से लिये जाते हैं। त्वचा से उसका काम ठीक-ठीक कराने के लिये, यह स्टीम बाथ्ज़ की विधि एक बड़ी श्रेष्ठ क्रिया है। और उन सब

१—इस पुस्तक में स्नानों के नाम बहुधा अंग्रेज़ी के ही लिखे गये हैं। विस्तार पूर्वक हर एक स्नान का हाल इस अध्याय में दिया गया है। अंग्रेज़ी नामों से पाठकगण पृथक्-पृथक् स्नान को विचार में लावें।

मनुष्यों के लिये जो आरोग्य रहना चाहते हैं इसी बात की आवश्यकता है, (अर्थात् उनकी त्वचा अपना काम ठीक-ठीक करे)।

सर्व शरीर का स्टीम बाथ (अर्थात् वाष्प द्वारा स्नान), बहुत समय तक मैंने इस बात का बड़ा यत्न किया कि कोई ऐसा सीधा-सादा यंत्र (भाप लेने का) बनाऊँ जो सर्व साधारण के और निर्बल रोगियों के भी काम में आ सकें। अन्त में मैंने अपना भाप देने का वह यंत्र बनाया जिसको कि मोड़ तोड़ कर एक जगह रख सकते हैं (इस पुस्तक के अन्त में इसका विज्ञापन देखिये)। यह यंत्र यदि इसके भाग पृथक-पृथक करके रक्खे जावें तो साधारण कुर्सी से अधिक स्थान नहीं घेरता, और साधारण मनुष्य भी उसको ठीक-ठीक लगा सकता है[1]।

इस यंत्र को काम में लाने के लिये एक बड़े कम्बल, कुछ पतीलियों [देगचियों] और एक मेरे बनाए हुए टब[2] या स्नान करने के एक साधारण टब की आवश्यकता होती है। इस यंत्र में एक बड़ी बात यह है कि सर्व शरीर को या शरीर के किस भाग को जैसा चाहें भाप दे सकते हैं।

इस यंत्र को उस प्रकार, जैसा कि नीचे के चित्र में दिखाया गया है (चित्र A (अ) को (पृष्ठ १२५ पर देखिये) लगा कर रखने के पश्चात् ३ या ४ पतीलियों[3] (देगचियों) में कुछ जल भर कर चूल्हे पर पकावें; उत्तम होगा जो मेरे बनाए हुये भाप लेने के बर्तन काम में लाये जावें जिनमें जल भरने का स्थान भी होता है और जिनके साथ शराब से जलने वाले लैम्प पानी गर्म करने के लिये भी होते हैं। सर्व शरीर के स्टीम बाथ (भाप) देने के लिये ऐसे-ऐसे तीन वर्तनों की आवश्यकता होती है, और इनसे काम लेने में किसी दूसरे की सहायता की जरूरत नहीं पड़ती।

अगर साधारण पतीलियाँ काम में लाई जावें तो इसमें सुभीता होगा कि उनको ऊपर तक जल से न भरें।

१—इस यंत्र के अभाव में निर्बल रोगियों के लिये बानों से बुनी हुई चारपाई (खाट) से भी काम हो जाता है।

२—इस प्रकार के टबों के लिये इस पुस्तक के अन्त में विज्ञापन देखिये।

३—पतीलियों के बदले मिट्टी की बड़ी हांडी से भी काम लिया जा सकता है। जल गर्म करने में बर्तन को किसी दूसरे बर्तन से ढक देना चाहिये।

ज्योंहीं जल पकने लगे, रोगी को, कपड़े उतार कर, इस यंत्र के ऊपर, पीठ के बल लिटा देवें। तत्पश्चात् रोगी को चाहिये कि एक ऊनी कम्बल से अपने कुल शरीर को इस प्रकार ढक ले कि दोनों ओर काफ़ी नीचे तक लटकता रहे, जिससे भाप उसके बाहर न निकलने पावे। शिर को भी, आदि में, कम्बल से ढक लेना अच्छा होता है। कोई दूसरा मनुष्य कम्बल को थोड़ा उठा कर (पकते हुए जल के) बर्तनों को बेंच (अर्थात् यंत्र) के नीचे रख देवे। बर्तनों के ढकनों को जो न्यूनाधिक उघाड़ने से,
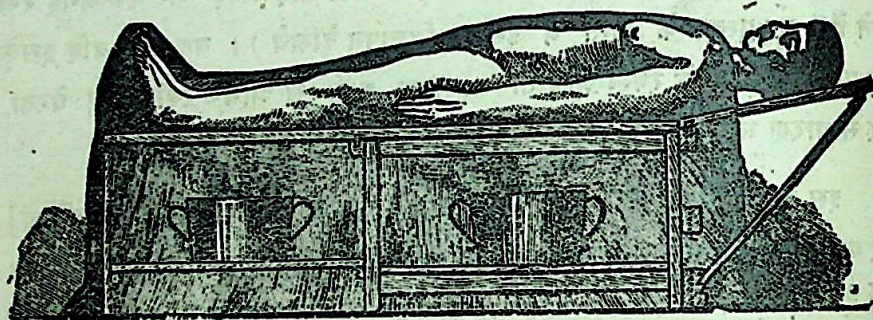
चित्र A (ए)

इच्छानुसार गर्मी में न्यूनता या अधिकता की जा सकती है, क्योंकि ऐसा करने से उनमें न्यूनाधिक भाप निकलेगी। बड़े मनुष्य के लिये २ या ३ बर्तन (पतीलियां) काम में लानी चाहिये; बच्चों के लिये एक ही पर्याप्त होगा। जल की एक फालतू पतीली चूल्हे पर पकती रहे। प्रथम पतीली (और बच्चों के लिये केवल यही एक होगी) बेंच के अगले खाने में रोगी की कमर (पीठ) के छोटे भाग के नीचे रखनी चाहिये; दूसरी पतीली पांव के नीचे, और तीसरी पतीली की यदि आवश्यकता हो तो पहिली से तनिक ऊपर को पीठ (कमर) के नीचे रख देवें।

ज्योंही भाप कम आने लगे (कोई १० मिनट में) तो फ़ालतू पतीली को उठा कर पहिली पतीली की जगह रख दो, और पहिली को उठा कर फिर चूल्हे पर चढ़ा दो। बहुधा पैरों के नीचे की पतीली को बदलने की आवश्यकता नहीं होती। जब कि भाप लेने को मेरे निर्माण किये हुए बर्तन, और पानी गर्म करने को स्प्रिट लैम्प (Spirit lamp) अर्थात् शराब से जलने वाले लैम्प, काम में लाये जावें तो इन बातों का कुछ काम नहीं। पात्रों के परिवर्तन करने की तब आवश्यकता नहीं रहती

जिसकी पूरी-पूरी सूचना उन पत्रों में भले प्रकार दी हुई होती है जोकि उन बर्तनों के भेजने के समय संग भेजे जाते हैं।

दस-पन्द्रह मिनट में रोगी को पेट के बल से लेट जाना उचित है जिससे, छाती और पेड़ू को भाप की गर्मी भले प्रकार लगे। यदि पसीना इस समय तक न आने लगा हो तो अब खूब ही आवेगा। शिर और पांव को एक ही संग पसीना आना आरम्भ होगा। बच्चों को पसीना देने में बर्तनों के तबदील करने की बहुधा आवश्यकता

चित्र B (बी)

चित्र C (सी)

नहीं पड़ती। उन मनुष्यों को जिनको जल्दी पसीना नहीं आता है उचित है कि शिर को ढके रक्खें, ऐसा करना इतना बुरा नहीं प्रतीत होगा जितना कि आरम्भ में समझा जाता है।

पाव या आधे घंटे तक अपनी इच्छानुसार बाथ लेना चाहिये और इच्छानुसार ही बर्तनों[1] को भी बदलना चाहिये। शरीर के वह भाग जिनमें विकृत पदार्थ का भार अधिक है, कठिनता से पसीजते हैं और रोगी को स्वयं इस बात की इच्छा भी

१—अर्थात् यदि भाप के बर्तनों के बदलने को चित्त न चाहे तो न बदलें। एक पतीली से १० या १५ मिनट तक भाप खूब निकलती है। इससे अधिक समय तक भाप लेने की यदि इच्छा हो तो पतीलियों को बदल देवें।

होती है कि इन स्थानों में गर्मी अधिक पहुँचे। उसकी इच्छा को सदैव पूरा करना उचित है, क्योंकि केवल यही एक बात है जिसके करने से इन भाप के स्नानों के द्वारा आरोग्यता प्राप्त करने में बड़ी सफलता होती है।

निर्बल मनुष्यों को, और ऐसे रोगियों को जिनकी दशा भयंकर है, विशेष कर पागलों (उन्माद के रोगियों) को स्टीम बाथ कभी नहीं देना चाहिये। ऐसे मनुष्यों की दशा में फ्रिक्शन सिट्ज़ व हिप बाथ्ज़ जोकि द्रव्य को जड़मूल से निकालते हैं—अगर सन बाथ्ज़ के साथ लिये जावें तो निस्सन्देह पूर्ण प्रकार से आरोग्यता प्राप्त होगी। जिन मनुष्यों को स्वयं पसीना भली प्रकार निकलता हो तो वह किसी-किसी दशा में स्टीम बाथ्ज़ को छोड़ भी सकते हैं। एक सप्ताह में दो से अधिक स्टीम बाथ्ज़ तभी लेने चाहिये जब कि ये विशेष प्रकार से बतलाये गये हों।

स्टीम बाथ (भाप द्वारा स्नान) के अन्त में एक फ्रिक्शन हिप बाथ ६८ से ८१ दर्जे तक फेरन हाइट[1] के जल में शरीर ठंडा करने के निमित्त लेना चाहिए। हिप-बाथ के लेने की क्रिया विस्तार पूर्वक इसी अध्याय में आगे बताई गई है। इस हिप[2] बाथ के आदि या अंत में पेड़ू के सिवाय कुल शेष भाग को (अर्थात् छाती, दोनों बांह दोनों टांग, शिर और गर्दन को) भी शीघ्रता से धो डालना चाहिये जिससे कि वे भी साफ़ सुथरे और ठंडे हो जावें। शरीर जितना अधिक गर्म होगा उतना ही उसको, शीत भी कम लगेगा; इस रीति से पसीना आने पर कोई भीतरी उत्तेजना नहीं होती, केवल त्वचा ही पूर्णत: गर्म हो जाती है; ऐसे स्नान से कोई बुरे प्रभाव उत्पन्न होने की आशंका करने का कुछ भी कारण नहीं है। लोहे को तपा कर जब लाल अंगारे के सदृश करते हैं तो उसको इच्छानुसार पुष्ट करने के लिये अवश्य ही शीतल जल में

१—एक आदमी का नाम है जिसने कि गर्मी जानने का एक यंत्र बनाया था, अब यह यंत्र उसी के नाम से प्रसिद्ध है; अब इस से अभिप्राय उसके बनाये हुये यंत्र से है जिससे कि जल की गर्मी सर्दी देखी जाती है। ऐसे यंत्र बड़ी दूकानों पर शहरों में मिलते हैं; इनको अंग्रेजी में थरमा मेटर (Thermometer) कहते हैं।

२—उस हिप बाथ से अभिप्राय है जोकि स्टीम बाथ के साथ में लिया जावे। जब किसी समय केवल हिप बाथ लिया जावे तो उसके आदि या अन्त से शरीर के शेष भागों को नहीं धोया जावेगा। कोई-कोई मनुष्य इसमें भूल कर देते हैं इस कारण यह नोट दिया गया है।

डुबोते हैं। इसी भांति मनुष्य का शरीर भी स्टीम बाथ के अंत में ठंडा किये जाने पर पुष्टता प्राप्त करता है और वह मेहनत करने के योग्य हो जाता है।

फ्रिक्शन हिप बाथ के पश्चात् यह आवश्यक है कि स्नान करने वाले को फिर गर्मी पहुँचाई जावे. जिस से उसके शरीर से कुछ-कुछ पसीना निकलने लगे। बलवान रोगी मनुष्य खुले हुए मैदान में. प्रायः धूप में कोई परिश्रम कर के यह गर्मी प्राप्त कर सकते हैं। निर्बल रोगी मनुष्यों को (इनको स्टीम बाथ बड़ी सावधानी से लेना उचित है) बिस्तरे पर उन को अच्छी तरह ढक कर लेटा देना चाहिये और घर की खिड़कियां[1] कुछ खोल देनी चाहिये।

भाप उस समय बनने लगती है जब कि पानी २१२ दर्जे फेरन हाइट की गर्मी प्राप्त कर लेता है; अतःपतीलियों में जो भाप बनती है वह वैसी ही भाप है जैसी भाप के ऐनजिनों (Steam Engine) में बनती है। भेद केवल भाप के परिमाण (अर्थात् थोड़ी या बहुत होने) का ही है। और एक बार ही अनुभव करने से प्रत्येक मनुष्य को इस का विश्वास हो जावेगा कि अपने कार्य के लिये पतीलियां ही बहुत काफी काम देती हैं।

जिस स्थान में मेरा रचा हुआ यंत्र (भाप देने का) प्राप्त न हो और न कोई बेत की बुनी हुई बेंच उसके बदले में काम देने के लिये प्राप्त हो सके, तो किसी साधारण कुर्सी से, जो बेंत की (जिस में छिद्र हों) बुनी हुई हो, काम[2] निकाला जा

१—यह वह खिड़कियाँ हैं जो मकानों में छत के समीप वायु और प्रकाश के निमित्त रक्खी जाती हैं जिन में शीशेदार किवाड़ लगे रहते हैं जिनको इच्छानुसार कम या ज़्यादा खोल सकते हैं। खिड़कियां का खोलना वायु शुद्ध रहने के लिये बतलाया गया है; इन के द्वारा घर में वायु आती रहती हैं जब कि और दरवाजे बंद हों, और छत के पास तक की अर्थात् सारे मकान की वायु शुद्ध रहती है।

२—बेंच और यंत्र के अभाव में साधारण बेंत से बुनी हुई कुर्सी अच्छा काम देगी; परन्तु जरा निर्बल रोगियों के लिये या जहां कुर्सी का भी अभाव हो तो साधारण बानों की छोटी सी चारपाई से भी काम सिद्ध हो जावेगा; परन्तु चारपाई के चारों ओर वस्त्र रोप देवें जिससे कि नीचे भाप का बर्तन रखने से भाप चारपाई के नीचे से बाहर न निकल सके। गरीब मनुष्य अपनी टूटी फूटी चारपाई और २ या ३ हँडियों से ही कार्य कर सकते हैं और कम्बल के बदले रजाई, लिहाफ़ अथवा गुदड़ी से भी काम चला सकते हैं।

सकता है। रोगी इस पर बैठ जावे और उसे भली प्रकार से कम्बल से ढक दिया जावे। जैसा कि ऊपर वर्णन हो चुका है। कुर्सी के नीचे खौलते हुए जल का बर्तन रख दिया जावे, और दोनों पांव एक दूसरे बर्तन के ऊपर जो कि खौलते हुए जल से आधा भरा होवे और जिसके ऊपर दो पतली-पतली लकड़ियां[1] रख दी गई हो, रख दिये जावें।

मेरे रचित यंत्र से एक बड़ा लाभ यह है, जैसा कि वर्णन कर भी चुका हूँ, उससे भाप अपनी इच्छानुसार शरीर के केवल किसी एक भाग को भी दे सकते हैं।

(ख) चित्र B (बी) (पृष्ठ १२६) से पेड़ू का स्टीम बाथ अर्थात् पेड़ू के लिये भाप स्नान दृष्टि गत होता है, जोकि कठिन-कठिन उदर रोगों में और क्लोरोसिस[2] (Chlorosis) रोग में जिस में शरीर कुछ-कुछ पीला पड़ जाता है, स्त्री के मासिक धर्म के बिगाड़ में और स्त्री के अन्य रोगों में अत्यन्त लाभ दायक है।

इस बाथ के लेने की क्रिया इस चित्र B (बी) से स्पष्ट हो जाती है। केवल एक ही पतीली एक समय में काम में लानी चाहिये, और रोगी की इच्छानुसार इसको बदल भी दिया जाता है। क्योंकि शरीर के शेष भाग भी इस में गर्म हो जाते हैं, तो सब पेड़ू ही को उसी प्रकार ठंडा करना चाहिये जैसे कि स्टीम बाथ अर्थात् भाप से पूरे शरीर को स्नान कराने के पश्चात् किया जाता है। वास्तव में दोनों दशाओं में सब कार्य एक सा ही है। बहुत से रोगों में विशेषतः स्त्रियों के रोगों में यह उत्तम है कि स्टीम बाथ के पीछे एक फ्रिक्शन-सिट्ज़—बाथ दिया जावे। यह बाथ अथवा फ्रिक्शन-हिप बाथ उस समय तक लेना उचित है जब तक कि ठंड प्रतीत होना आरम्भ न हो जावे।

यदि सावधानी से बाथ्ज़ लिये जावें तो इन स्टीम बाथ्ज़ का प्रभाव आश्चर्य-जनक होता है।

(ग) शिर और गर्दन का स्टीम बाथ, अर्थात् उनको भपारा देने की क्रिया चित्र C (सी) (पृष्ठ १२७) पर दिखलाई गई है। भाप का बर्तन बेंच के ऊपर एक तख्ते पर

१—यह दो लकड़ियां पैर रखने के निमित्त रक्खी जाती हैं।

२—स्त्रियों का रोग है जो रुधिर में कमी के कारण से होता है जो कमी कि १५ से २५ वर्ष की अवस्था में मासिक धर्म के बिगाड़ से उत्पन्न होती है; इस में त्वचा का वर्ण हरा अथवा हरा व पीला मिश्रित हुआ करता है।

रक्खा जाता है तथा शिर और गर्दन को उस समय तक भाप दी जाती है, जब तक कि उनसे भली प्रकार पसीना न निकल जावे। जब पसीना आना आरम्भ होगा तब प्रत्येक प्रकार का दर्द बन्द हो जावेगा; दांत के दर्द की दशा में यह बात विशेषतः देखने में आती है। शिर और छाती यदि गर्म हो गये हों तो उनको शीघ्रता से ठंडे जल से धो डालना चाहिये और तत्पश्चात् एक फ्रिक्शन हिप अथवा सिट्ज़ बाथ तुरन्त ही लेना चाहिये। यदि कुछ देर बाद दर्द फिर लौट आवे तो पूरे शरीर और गर्दन को बारी-बारी से स्टीम बाथ्ज़ दिये जावें; पूरे शरीर के स्टीम बाथ लेने में इसका ध्यान रहे कि पेड़ू को खूब भाप दी जावे।

यह प्रथक्-प्रथक् अङ्ग के स्टीम बाथ्ज़ बहुत ही काम करते हैं, इन से कष्ट में कमी होकर शरीर में बहुत ही शीघ्र चैन पड़ने लगता है अर्थात् कर्ण, चक्षु, नासिका, और कंठ के रोगों की दशा में; और विशेषतः दांतों के दर्द में, और साधारण फोड़े फुन्सी और अदृष्ट फोड़े (ढीट) की चिकित्सा में, इनसे बहुत ही शीघ्र सहायता प्राप्त की जा सकती है।

बिना मेरे रचित यंत्र के भी, यद्यपि ऐसी सरलता से नहीं, प्रथक्-प्रथक् अङ्ग के स्टीम बाथ्ज़ दिये जा सकते हैं। पेड़ू का स्टीम बाथ साधारण कुर्सी पर लिया जा सकता है; शिर के स्टीम बाथ के लिये बेंच काम दे सकती है, इस के ऊपर भाप का बर्तन रख कर एक कुर्सी हाथ रखने के लिये उसके अगाड़ी रखली जावे।

सन बाथ अर्थात् धूप के स्नान लेने की रीति आगे लिखते हैं; इस प्रकार धूप केवल ऐसे ही दिन ली जा सकती है जोकि धूप का दिन हो और बहुत[1] गर्म दिन हो। रोगी को हलके कपड़े पहिना कर किसी ऐसे स्थान में लिटाना चाहिये जहाँ वायु न लगती हो, और उसको किसी चटाई या गद्दे (या किसी ऊनी कम्बल) पर लिटाना

१—यह दशा जर्मन देश की है जहां कि सर्दी अधिक होती है वहां गर्म दिन धूप स्नान करने के लिये अच्छा होता है, शरद काल में यहां धूप अच्छी प्रकार नहीं निकलती। हिन्दुस्तान में गर्मी के दिनों का समय ठीक होता है परन्तु जब गर्म वायु या लूह चलती हो या पृथ्वी तप्त हो जाती हो उस समय सनबाथ न लेना चाहिये। जाड़ों में जिस समय धूप की तेज़ी हो वह समय इस के लिये अच्छा होता है।

उत्तम है। उसके जूते और मोजे उतरवा देने चाहिये और स्त्रियों और लड़कियों को चोली व वास्कट[1] इस समय नहीं पहिनाना चाहिये। शिर और मुख (चेहरे) को किरणों से बचाना चाहिये जोकि किसी वृक्ष के एक बड़े हरे पत्ते से भली प्रकार किया जा सकता है, जैसे कि दारचीनी के पत्ते से, अथवा बहुत से छोटे-छोटे पत्तों से[2] पेड़ू को नंगा करके उस पर भी कोई हरा पत्ता ढक देना चाहिये, यदि हरा पत्ता पास न हो तो किसी गीले वस्त्र से ऐसा करें।

सनबाथ आधे घंटे से डेढ़ घंटे तक लेना चाहिये। वह रोगी जिनको पसीना सहज में नहीं आता, और भी देर तक धूप ले सकते हैं, परन्तु इतनी ही देर तक कि जिसमें वह थकें नहीं। बहुत गर्म दिनों में धूप बहुत देर तक लेना उचित नहीं।

वह लोग जिनको सनबाथ लेने से आदि में शिर का दर्द हो जाता है या जिनका शिर घूमने लगता है उनको उचित है कि पहिले पहिल वे कुछ दिन तक ऐसे धूप के स्नान थोड़ी-थोड़ी देर के लेवें। यह दशा खास कर उन रोगियों की होती है, जिनको या तो पसीना जरा भी नहीं आता या जो आता भी है तो अत्यंत कठिनाई से।

सनबाथ के पश्चात् शरीर को ठंडक पहुँचाने वाला एक फ्रिक्शन हिपबाथ (देखो कुछ पृष्ठ आगे) अथवा फ्रिक्शन सिट्ज बाथ (देखो कुछ पृष्ठ आगे) इस प्रयोजन से लेना चाहिये कि विजातीय द्रव्य अर्थात् मल जो कि ढीला किया गया है, शरीर से बाहर किया जावे। उन रोगियों को जिनको फ्रिक्शन हिप वा सिट्ज बाथ के पश्चात्; गरमाई सहज में नहीं आती है अपने शिर को धूप से सुरक्षित रखकर धूप में फिर बैठना चाहिये, अथवा उनको चाहिये कि वे धूप में टहलें। यह बात खास कर उन रोगियों की दशा में जो कि अधिक रोगी हैं अथवा कोमल अंग वाले पुरुषों की दशा में करनी चाहिये। ऐसे पुरुषों व रोगियों के लिये सनबाथ की चिकित्सा विशेषतः कष्ट कर चिकित्सा होती है और आरंभ में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

१—अभिप्राय है कि कोई ऐसा वस्त्र न पहिनें जो बदन को कसा हुआ रक्खे, मामूली हलका और ढीला वस्त्र पहिने।

२—केले के पत्ते या उसके टुकड़े से यह कार्य्य अच्छी प्रकार सिद्ध होता है, नीम की छोटी-छोटी डालियां भी भली प्रकार काम देती हैं, अरंड के पत्ते भी काम देते हैं।

सनबाथ के लिये उत्तम समय १० बजे सवेरे[1] से ३ बजे दोपहर के पश्चात् तक होता है। यदि इच्छा हो तो सनबाथ दो पहर के भोजन के पश्चात् तुरन्त भी लिया जा सकता है, परन्तु भोजन के आधे या एक घंटे पश्चात् लेना अच्छा है, क्योंकि पाचन के निमित्त शरीर को गर्मी की आवश्यकता है, और सनबाथ के पश्चात् ठंडे स्नान (हिपबाथ, सिट्ज़ बाथ्ज़) जो कि लिये जाते हैं उनसे शरीर को गर्मी में विशेष न्यूनता प्राप्त हो जाती है।

शरीर के किसी अङ्ग को सनबाथ (धूप स्नान) देना—मैंने एक अङ्ग के सनबाथ का प्रयोग बड़ी सफलता के साथ उन दशाओं में जिनमें की गुमड़ियाँ पड़ गई थीं; और बहते हुए घावों की दशा में, किसी अवयव के सूख जाने की हालत में, रसौली में, और शरीर के भीतर किसी वस्तु के बढ़ जाने की दशा में[2], और शरीर के सब प्रकार के दर्द करते हुए स्थानों, तथा अन्य अन्य दशाओं में बड़ी सफलता के साथ किया है। यह छोटा सनबाथ भी उसी रीति से लिया जाता है जैसे कि पूरे अंङ्ग का सनबाथ; अन्तर, केवल इतना ही है कि इसमें शरीर के उस विशेष भाग को भी[3] जिसको कि यह छोटा सनबाथ देना इष्ट होता है, उघाड़ कर एक या अधिक हरे-हरे पत्तों से ढांक कर धूप दी जाती है।

सनबाथ के विषय में साधारणत: एक बात कही जा सकती है कि जल व आहार के संग में मिलकर हमारे पास सब से उत्तम चिकित्सक जो कि मौजूद है वह सूर्य्य ही है; और कोई दूसरा ऐसा मार्ग नहीं है जिसके द्वारा हम इसके समान फल प्राप्त कर सकें। विशेष कर क्रानिक chronic (दीर्घकालीन) दशाओं में विजातीय

१—यहां भारतवर्ष में जाड़ों में अथवा यहां के शरद प्रान्त में यही समय ठीक है, परन्तु गर्मी की ऋतु में अथवा गर्म प्रान्त में सवेरे ७ से १० बजे तक का समय उत्तम है। जिस समय गर्म वायु चलती हो उस समय न लेवें।

२—जैसे प्लीहा तिल्ली और यकृत जिगर के बढ़ जाने की दशा में, या अन्दर किसी फोड़े के हो जाने की दशा में।

३—पेडू शिर व चेहरे को भी हरे-हरे पत्तों से उसी प्रकार ढका जाता है जैसे कि शरीर को सनबाथ देने की दशा में, और इनके सिवाय उस खास अंग को भी हरे-हरे पत्तों से ढका जाता है जिसको कि विशेष धूप देना मंज़ूर है।

द्रव्य को उभारने और बाहर निकालने के लिये कोई दूसरा ऐसा अच्छा और सरल उपाय नहीं है जैसा कि सनबाथ। पाठकों को एक दृष्टान्त से यह बात स्पष्ट हो जावेगी :—यह बात सब भली भाँति जानते हैं कि मिट्टी में सना हुआ कपड़ा यदि धूप में डाला जावे तो मिट्टी शीघ्र ही सूख जाती है; परन्तु यदि उस कपड़े को वारी-वारी से धूप और जल में रक्खें तो धूप उसका कुछ न कुछ मैल अवश्य निकाल लेती है; और इस प्रकार कपड़ा स्वच्छ धुलता हैं, मानो इससे उसमें सफेदी आती है।

इस पृथ्वी पर सब जीवों का जीवन सूर्य्य, जल, वायु और मिट्टी के, क्रमानुसार उन पर प्रभाव पड़ने से ही बना हुआ है। छोटे पौधे और वृक्ष केवल उसी समय फलते-फूलते हैं जब कि उनको धूप, जल, वायु, और मिट्टी मिलती है; और ज्योंहीं कि जीवन की यह आवश्यक वस्तुएँ थोड़ी अथवा पूर्ण प्रकार से किसी पौधे या वृक्ष से अलग करली जाती हैं तो वह मुरझा जाता है या उसकी वृद्धि मारी जाती है। यही हाल अन्य समस्त जीवधारियों का भी है; अतः मनुष्य का भी यही हाल। है अभाग्यवश बहुधा मनुष्य सूर्य्य और जल से आवश्यकता से अधिक परहेज करते हैं; ऐसा करने से शरीर कोमल हो जाता है, परन्तु रोग की ओर उसकी प्रवृत्ति हो जाना इसका फल है। आरोग्य मनुष्य सूर्य्य की गर्मी को विना किसी दुष्परिणाम के सहन कर सकता है; और रोगी पुरुष इसके विरुद्ध इससे स्वाभाविक रूप से वचता है, क्योंकि इससे उस को वेचैनी प्रतीत होती है। धूप के कारण विजातीय द्रव्य तेज़ी से अपने स्थान से हटना आरंभ होता है, और उससे शिर में दर्द, घूमनी, थकावट, भारीपन उत्पन्न होता है। यदि रोगी की वह इन्द्रियाँ जिनका काम मल को निकालने का है अति निर्बल हो गई हो तो यह लक्षण इस बात को वतलाते हैं कि विजातीय द्रव्य अपनी जगह से हट कर फैलने लग गया है। बिना ठंडे स्नानों के जो सनबाथ के पश्चात् जल से लिये जाते हैं, अथात् बिना फ्रिक्शन हिप व सिटज वाथ्ज के केवल सनवाथ्ज से ही वह फल जिसको हम इच्छा करते हैं हमको प्राप्त नहीं हो सकता।

जल का यह प्रभाव है कि वह शरीर की जीवन शक्ति को बढ़ाता है, और इसी जीवन शक्ति का बढ़ाना हमारा प्रथम उद्देश्य होना चाहिये। पौधे भी केवल उसी समय बढ़ते हैं जब कि उन पर जल और धूप का प्रभाव वारी-वारी से पड़ता है और यदि उन पर केवल अकेली धूप ही धूप पड़ती रहे तो शीघ्र ही मुरझाने लगते हैं। यदि हमको एक बार भी उस नियम का ज्ञान हो जावे, जिसके अनुकूल नेचर Nature अर्थात् सृष्टि अपना काम कर रही है तो हमको इस कथन के समझने में कुछ भी कठिनाई

न हो क्योंकि—जैसा कि दीर्घ कालीन (Chronic क्रानिक) रोगों में हो जाता है—थोड़ी देर की यह ख़राबियाँ[१] (क्यूरेटिव क्राइसिस[२] Curative Crises) जो कि सनबाथ से उत्पन्न हो जाती है, ठंड पहुँचाने वाले जल के स्नान द्वारा तुरन्त ही रोक दी जा सकती हैं। जलद्वारा मेरे बताये स्नान, जिनका वर्णन पहले हो चुका है, यदि सन बाथ्ज़ के संग लिये जावें तो उनका रोग दूर करने का अद्भुत प्रभाव होता है।

प्रत्येक मनुष्य यह विचार कर सकता है कि नंगे शरीर पर सूर्य्य का प्रभाव ढके हुये या कपड़े पहिने हुए शरीर की अपेक्षा अधिक तेज होगा। लेकिन ऐसा समझना बड़ी भूल है। नेचर (प्रकृति) पर एक वार दृष्टि डालने से हमको इसका विश्वास हो जायगा। अंगूर की ओर देखिये! क्या अंगूर धूप से बचने के लिये सदैव पत्तों की आड़ में नहीं हो जाया करते हैं ? यदि वे सब ओर पत्तों द्वारा धूप से रक्षित रक्खे जावें, तो वे भली भाति पकते हैं; उनमें से जो धूप से नहीं बचते वे छोटे रह जाते हैं और खट्टे रहते हैं। शाहदाने के वृक्ष की भी यही दशा होती है। यदि फलों के पकने के समय उनके पत्तों को कीड़ों ने खा लिया हो, तो फल इतना अच्छा नहीं पकता जितना कि अन्य दशा में पकता है; वरन् शाहदाने के फल पूर्ण प्रकार से वढ़ने के बिना ही सूख जाते हैं। हर एक प्रकार के फल को उसके पकने के वास्ते पत्तों से रक्षा मिलने की आवश्यकत होती है। सृष्टि (नेचर Nature) में से लेकर जो उदाहरण अभी बताये गये हैं उनसे यह बात स्पष्ट विदित होती है कि सूर्य्य के सीधे प्रभाव और किसी वस्तु के द्वारा पड़ने वाले प्रभाव में कितना बड़ा अन्तर है।

सूर्य्य का प्रभाव नंगे शिर पर हानिकारक होता है इसके द्वारा अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न हो सकते हैं। यदि हम शरीर को अपने वस्त्रों से ढका रक्खें तो त्वचा अपने रन्ध्र शीघ्र ही खोल देती है और नर्म एवम् गर्म हो जाती तथा पसीजने लगती है। परन्तु यह काम अधिकतर उसी दशा में होता है जब नंगे शरीर को किसी ऐसी वस्तु से ढकें जिसमें रुकी हुई दशा में अधिक जल प्राप्त हो। ऐसा ठीक गिलाफ हरे-हरे बड़े ताज़े और रसीले पत्रों का बन जाता है।

१—अर्थात् शिर दर्द, चक्कर, थकावट, भारी पन, जो कि सनबाथ से कभी-कभी हो जाते हैं जिन का कुछ वर्णन ऊपर हुआ है।

२—यह वह मौके हैं जब कि रोग अच्छा होने को पलटा खाता है और चित्त में घबड़ाहट आदि पैदा होती और निर्बलता ज्ञात होती है।

यह वार्ता भली भाँति विदित है कि सूर्य्य की किरणों का प्रभाव काले वस्त्रों में सफेद वस्त्रों की अपेक्षा नितान्त भिन्न पड़ता है। अतः यह बात बिचारने योग्य है कि हमको शरीर की रक्षा के लिये पहिनने के वस्त्र, या और वस्त्र, या रसीले हरे-हरे पत्ते काम में लाने चाहिये। वर्षों के अनुभव ने जो मैंने अपने चिकित्सालय में प्राप्त किया है मुझे इसका विश्वास दिलायाा है कि शरीर पर धूप का हरे-हरे पत्रों के भीतर जाकर पड़ने से ही विजातीय द्रव्य (फारेन मैटर) के हटाने के लिये सब से श्रेष्ठ प्रभाव पड़ता है। मेरी दूसरी चिकित्सा विधियों से मिलकर सन बाथ, ग्रीन सिकनेस[1] में, पेड़ू के भीतर गूमड़े पड़ जाने की दशा में, रक्त की न्यूनता की दशा में, अति फलदायक प्रतीत होगा।

③ फ्रिक्शन हिप बाथ। यह स्नान निम्न लिखित रीति से लिया जाता है। स्नान करने का एक टब उस आकृति का जो चित्र D (डी) में दिखाई गई है, जल से इतना भरा जाता है कि नाभी और जंघाओं तक पहुँचे। जल की गर्मी ६८ और ८४ दर्जे[2] फेरनहाइट थरमा मेटर[3] के बीच की होनी चाहिये और स्नान करने वाला मनुष्य कुछ बैठकर और कुछ पीछे को सहारा लेकर विना ठहरे हुए और जल्दी-जल्दी कुल पेड़ू को नाभी से नीचे की ओर को, एक कोख से दूसरी कोख तक किसी साधारण मोटी और भींगी तौलिया या किसी दूसरे
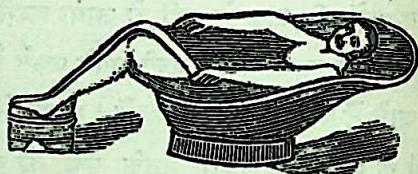
चित्र D (डी)

१—ग्रीन सिकनेस Green sickness. इसको क्लारोसिस Chlorosis भी कहते हैं, जिसका विस्तार पूर्वक वर्णन दूसरे भाग में किया गया है। इस रोग में त्वचा का रंग पीला व हरियाली लिये हुए हो जाता है; इसी कारण से इसे ग्रीनसिकनेस कहते हैं Green अंग्रेजी में हरे को और सिकनेस Sickness बीमारी को कहते हैं। यह रोग स्त्रियों को युवा अवस्था में हुआ करता है।

२—कुवे का ताज़ा जल प्रत्येक ऋतु में इस काम के लिये ठीक होता है; वह इन्हीं दर्जों के बीच का होता है। ताज़े जल में गर्म या ठंडा जल मिलाने से और थरमा मेटर से उसको देखने से जिस दर्जे का जल चाहें प्राप्त कर सकते हैं।

३—टब, थरमा मेटर व भाप देने के यंत्र के लिये इस पुस्तक के अंत में विज्ञापन देखिये।

वस्त्र से मले (सन के वस्त्र से या दूसरे मोटे[1] कपड़े से) यह स्नान उस समय तक करना चाहिये जब तक कि शरीर भलीभांति ठंडा[2] न हो जावे।

प्रथम तो ५ मिनट से १० मिनट तक का स्नान ही पर्याप्त होगा; पश्चात् कुछ अधिक देर तक भी स्नान किया जा सकता है। अति निर्बल मनुष्यों और बच्चों के लिये चंद मिनट ही काफ़ी होंगे। यह अति आवश्यक है कि टाँगें, पांव और शरीर का ऊपरी भाग शेष अंग के संग में ठंडे न किये जावें, क्योंकि इनमें रक्त की न्यूनता हुआ करती है; इस कारण इनको ऊनी कम्बल में लपेट[3] लेना उचित है। फ्रिक्शन हिपबाथ के पश्चात् , शरीर को तुरन्त फिर गर्म करना चाहिये, जोकि खुले हुए स्थान में कुछ[4] परिश्रम का काम करने से किया जा सकता है। उन रोगियों की दशा में जो अति निर्बल हैं, या जिनके शरीर अति कोमल हैं, यह गर्मी उनको पलंग पर अच्छे प्रकार उढ़ा कर लेटा देने से आ जाती है। यदि गर्मी के आने में अधिक देर लगे तो पेट पर लपेटने की एक ऊनी पट्टी को बाँधना चाहिये।

फ्रिक्शन हिप-बाथ प्रति दिवस एक से तीन बार तक लिये जा सकते हैं, और समय का अनुमान और जल की गर्मी सर्दी प्रति रोगी की दशा के

१—महीन गाढ़े के कपड़े से या मामूली गाढ़े के कपड़े के अंगोछे से यह काम हो सकता है।

२—अर्थात् गर्मी जो बढ़ी हुई है जब तक यह शान्त न हो जावे तब तक स्नान करना उचित है।

३—टब में बैठने के पश्चात् शरीर को शिर से पांव तक एक ऊनी कम्बल से ढक लेवें, कम्बल ऊपर से फैला लिया जावे ताकि टब के बाहर दोनों ओर कुछ-कुछ लटका रहे; और पांव उस में लपेट लिये जावें, शिर भी उससे ढक लिया जावे। कम्बल का भार शिर पर न पड़े और पेड़ू के मलने में हाथ को रुकावट न हो। यह उचित है कि बिना बाजू की एक कुर्सी उसके तकिये की ओर से टब के सिरहाने मिला कर रक्खे जिससे कि कम्बल शिर पर और कुर्सी के तकिये पर होता हुआ कुर्सी की बैठक पर रक्खा जावे। पांव को किसी चौकी या मूढ़े पर ज़मीन से ऊंचा रखना चाहिये।

४—जैसे टहलना, या गेंद बल्ला खेलना, या कोई व्यायाम करना जिससे गर्मी आवे और कुछ पसीना भी आवे। यदि खूब पसीना आवे तो उत्तम है।

'अनुकूल'[1] होनी चाहिये। कुछ दशाओं में इसके बदले फ्रिक्शन सिट्ज़ (Friction sitz bath) लेना उचित है या दोनों प्रकार के स्नान किये जावें।

फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ स्त्रियों के लिये—यह स्नान स्त्रियों के रोगों के लिये बड़ा ही लाभ दायक होता है और निम्न लिखित रीति से किया जाता है।

उस टब में जिसका कथन पीछे बतलाये हुए बाथ में किया गया है, एक स्टूल या लकड़ी की वैठक जैसी कि मैंने निर्माण की है रख दी जावे, तब उस टब में जल डाला जावे परन्तु वह इतना हो कि स्टूल के तख्ते के किनारे तक पहुँचे और ऊपर से तख्ता-सूखा रहे तत्पश्चात् स्नान करने वाली उस तख्ते[2] पर बैठे और एक मोटे कपड़े (सन का कपड़ा अथवा मोटी तौलिया) को जल में डुबो-डुबो कर बहुत ही हलके हाथ से बच्चा पैदा होने के रास्ते के मुंह को धोवे; कपड़े से जितना जल उठाया जा सके प्रति बार उतना ही उठावे। यह अति आवश्यक नहीं है कि योनि के बाहरी होंठ ही धोये जावें, भीतरी भाग, और उनको भी जोर से न मला जावे, धीरे-धीरे उतने जल से जितना कपड़े में आ सके उनको धोवें। विदित हो कि इस स्नान में भी टांगें, पांव और शरीर का ऊपरी भाग सूखा रहता है, परन्तु यदि नितम्ब भीग ही जावें तो भी इस स्नान के प्रभाव में इस से कुछ अन्तर नहीं पड़ता। स्त्रियों के मासिक धर्म के समय यह स्नान बन्द कर देने चाहिये। यदि रक्त का निकलना आरोग्यता की दशा से कुछ अधिक हो तो इन दिनों में भी यह स्नान किये जा सकते हैं; परन्तु यह स्नान यदि ऐसी दशा में कराए जावें तो उसी प्रकार से हों जैसा मैं प्रत्येक रोगिणी की दशा के अनुकूल बतलाऊँ। मासिक धर्म में दो या तीन दिवस से अधिक नहीं लगने चाहिये, अधिक से अधिक चार दिवस, इससे अधिक समय तक रुधिर के जारी रहने से यह ज्ञात होता है कि अब साधारण दशा न रहकर रोग की दशा प्राप्त हो गई है।

इन सिट्ज़-बाथ्ज़ के लिये जल उसी दर्जे का ठंडा होना चाहिये जितना कि

१—बलवान रोगी के लिये कम दर्जे का जल ले सकते हैं और निर्बल, वृद्ध या बालक के लिये ऊँचे दर्जे का जल लेना चाहिये, परन्तु ६८ से नीचे और ८४ से ऊँचे दर्जे का किसी दशा में भी न लेना चाहिये। यही नियम समय का भी है। बच्चे, बूढ़े, और निर्बल को थोड़ा और बलवान को उससे ज़्यादा देर का स्नान कराना चाहिये।

२—ऐसे बैठे कि पांव टब के बाहर रहें, और इस पर कपड़े निकाल कर बैठना चाहिये।

हमको नेचर[1] (कुदरत) से प्राप्त होता हैं। (५० से ६० दर्जे फेरन हाइट का); किसी-किसी दशा में इससे कुछ ऊँचे दर्जे का भी लिया जा सकता है (६६ दर्जे फेरन हाइट तक का)।

यह स्नान १० मिनट से १ घन्टे तक रोगी की अवस्था और दशा का विचार करके, लिया जा सकता है। विशेष कर शरद ऋतु में वह कमरा जिसमें बैठ कर यह स्नान किया जावे, उतना गर्म कर लेना चाहिये जितना कि अच्छा मालूम हो। इन फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ्ज़ में जितना अधिक ठंडा जल काम में लाया जावेगा उतना ही फल दायक होगा। परन्तु जल इनता ज्यादा ठण्डा न होना चाहिये जिसको स्नान करने वाले के हाथ सहन न कर सकें। गर्म देशों और पृथ्वी के उस भाग में जहां सदैव ही अत्यन्त गर्मी रहती है, वहां यह सम्भव नहीं है कि ऐसा ठण्डा जल प्राप्त हो सके जैसा कि यहां[2]; परन्तु वहां जितना शीतल जल प्राप्त होना संभव हो वही ले लिया जावे। ऐसी दशा में इस बात का कुछ भी भय नहीं होना चाहिये कि इस जल से बाथ (स्नान) का क्या प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि इन गर्म देशों के जल व वायु की गर्मी में आपस में लगभग वैसा ही अन्तर है जैसा कि हमारे[3] देशों के जल व वायु की गर्मी में होता है, अतः स्नान का प्रभाव दोनों दशाओं में एक सा ही होगा। इसकी सत्यता का परिचय उन रिपोर्टों से मिलता है जो मेरे पास अत्यन्त गर्म देशों से आई हैं।

१—यह वृतान्त जर्मनी देश का है, जहां पानी यहाँ से अधिक ठंडा मिलता है; यहाँ भी पर्वत के स्थानों पर यही दशा है। परन्तु हमारे मध्य देश में कुएँ का ताजा पानी ७० और ८० दर्जे फेरन हाइट के बीज का सदैव मिलता है। ग्रीष्म ऋतु में इसे मिट्टी के घड़े में रख कर ठंडा कर सकते हैं।

२—अर्थात् जर्मनी में। अर्थात् जर्मन देश में जहाँ से रहने वाले लुई कुहनी हैं।

३—मामूली टब जो बाजार में मिलते हैं उनसे या किसी बड़ी बाल्टी से या मिट्टी की पक्की नांद से भी काम लिया जा सकता है, और यदि उनके अन्दर कोई स्टूल रखने को न मिले तो उसके ऊपर आर पार कोई तख्ता रख लिया जा सकता है, और उस पर बैठ कर यह स्नान किया जा सकता है, देहात में जहां केवल मिट्टी की नांद ही मिल सकेगी, चाहिये कि घर में उस नाँद को ही कुछ दूर तक पृथ्वी में गढ़वा देवें जिससे रोगी के भार से नाँद टूट न जावे। और हिपबाथ भी बहुत सों दशाओं में इसी प्रकार के बर्तनों में लिया जा सकता है।

जिस स्थान में हिपबाथ लेने का टब न मिले तो कोई दूसरा टब कपड़ा धोने या स्नान करने का इस फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ के लिये काम दे सकता है। यह इतना बड़ा अवश्य हो, जिसमें एक स्टूल या बैठने की कोई चीज रक्खी जा सके, और बैठक के किनारे तक उसमें जल भरने से ५ या ६ गेलन[1] जल भी समा सके। इस प्रकार के स्नान के लिये यदि बहुत थोड़ा जल लिया जावे तो वह शीघ्र ही गर्म हो जाता है, और स्नान का प्रभाव थोड़ा ही होता है। हलके और विशुद्ध जल को, चश्मे (स्रोत) के जल पर महत्व दिया गया है। (परन्तु जिस स्थान में केवल चश्मे (स्रोत) का ही जल प्राप्त होता हो,) तो यह उत्तम होगा कि उसको कुछ देर रक्खा रहने दें, और इस बात का ध्यान रक्खें कि वह बहुत गर्म न हो जावे।

प्रायः सभी अच्छे घरानों में ऐसे ही स्नान एक प्रकार की चौकी पर, केवल शुद्धता और स्वच्छता के लिये किये जाते हैं, परन्तु वे लोग न तो इतना ठंडा जल ही काम में लाते हैं और न इस प्रकार स्नान ही करते हैं जैसे कि मैंने बतलाये हैं।

पुरुषों के लिये फ्रिक्शन सिट्ज़-बाथ पुरुषों को भी टब में[2] उसी प्रकार बैठना होता है (जैसे कि स्त्रियों को) और लिङ्ग के मुंह के ऊपर की खाल के अंतिम[3] सिरे को ठण्डे जल के भीतर धोना पड़ता है। स्नान करने वाला पुरुष अपने बाएं हाथ की मध्यमा और अनामिका अँगुली अंगुष्ठ और अनामिका से खलड़ी को पकड़ कर जितना हो सके लिंग के मुंह के आगे को इस प्रकार ले जावे कि जिससे उसकी सुपारी पूरी-पूरी ढक जावे और उस[4] को रगड़ न लग सके। तत्पश्चात् उस पुरुष को

१—एक गेलन ३ सेर १० छटांक के लगभग होता है, पांच छः गेलन १८ से २२ सेर तक हुआ।

२—टब व स्टूल आदि के लिये इस पुस्तक के अन्त में दिये विज्ञापन देखिये, जिन के व्यवहार से स्नान द्वारा चिकित्सा करने में सुगमता होती है और निर्बल रोगी भी सुविधा के साथ चिकित्सा कर सकते हैं।

३—उस खाल से अभिप्राय है कि जिसका मुसलमान लोग खतना कर देते हैं अर्थात् वह खाल जो पुरुषों में मूत्र निकलने के छिद्र को साधारण दशा में ढके रहते है। इसको अङ्गरेजी-भाषा में फोर स्किन Fore Skin और हिन्दी में खलड़ी कहते हैं।

४—अर्थात् फोर स्किन (खलड़ी) के धोने में सुपारी रगड़ से सुरक्षित रहे।

चाहिये कि टाट या सनके किसी कपड़े के जो साधारण रुमाल के बराबर[1] हो और जिसे दाहिने हाथ में जल के भीतर लिये हुए हो, उस खलड़ी[2], को जो कि अंगुलियों में पकड़ी हुई है बराबर धोता रहे।[3] यह आवश्यक है कि इन बताये हुए उपयों को अवश्य प्रयोग में लावें। अतः प्रत्येक मनुष्य को जिसको इसका विश्वास नहीं कि वह इन विधियों को ठीक ठीक समझ गया है, मैं यह सम्मति देता हूँ कि वह इन मुख्य बातों के सम्बन्ध में मुझसे पूछे; जिससे वह व्यर्थ के कष्ट उठाने से और अपना समय खोने से (और शायद अपनी आरोग्यता को हानि पहुँचाने से) बच जावे।

उन रोगियों की दशा में जिनके शरीर के भीतर कोई स्थान सूज गया है या भीतर किसी स्थान में सड़न हो गई है, या उस दशा में जब कि कोई छिपा हुआ दीर्घ कालीन (क्रानिक Chronic) रोग किसी एक्यूट Acute अर्थात् चिरकालीन रोग में परिवर्तित होने लगना है, तो भीतरी सूजन शीघ्र ही विशेष कर पहिले ही स्नान के पश्चात् नीचे को खिंच जाती है और इस स्थान में या उस स्थान के समीप प्रगट हो जाती है जो स्थान धोने में रगड़ गया है यह किसी प्रकार का कोई बुरा चिह्न नहीं है। मैं इस पुस्तक के दूसरे भाग में सरतान फोड़े के अध्याय में इस का विस्तार पूर्वक कथन करूँगा। रगड़ के स्थान पर सूजन और जलन पैदा हो जाना कोई

१—बारीक सन या टाट का कपड़ा लेवें जो ८ या १० गिरह लम्बा चौड़ा हो, या साधारण गाढ़े या लट्ठे या मोटी मखमल के साफ़रूमाल से धोवे।

२—बायें हाथ की अंगुलियों में जो खाल पकड़ी हुई है उसका वह कुल भाग जो अंगुलियो के बाहर, पकड़ने से आ जाता है मुलायमियत से धोया जायगा।

३—मुसलमान रोगियों को जिनके कि फोर स्किन नहीं होती, चाहिये कि उस स्थान को जो टांगों और अंड-कोष के बीच में है तौलिया से मालिश करें। कमर के नीचे के भाग को भी स्टूल के ऊपर तीन अंगुल ऊंचे जल में रखना उचित है। अर्थात् उस स्थान को जो गुदा और अंडकोष के बीच में होता है, जिसे सीवन भी कहते हैं और कमर के नीचे के भाग को टब में स्टूल के ३ अंगुल ऊपर तक जल भर कर बैठने के पश्चात्, तौलिया से मलें। इसमें नितम्ब ३ अंगुल भीग जावेंगे; परन्तु शेष शरीर और टांगे सूखी रहेंगी। इस प्रकार सिट्ज़बाथ स्टूल पर ३ अंगुल जल रख कर बाथ लेने के लिये जो जल लिया जावे। वह ६२ दर्जे फेरन हाइट से अधिक ठंडा न हो और इस से ऊंचे दर्जे का जितना ठंडा किसी ऋतु में मिल सके वही ले लिया जावे। जल में गर्म और ठंडा जल मिला कर जिस दर्जे का करना हो उसे कर सकते हैं।

भयभीत करने वाली बात नहीं है; सिटज़बाथ बराबर उसी प्रकार करते रहना चाहिये, और यदि आवश्यकता समझी जावे तो आगे से अधिक नर्म कपड़ा काम[1] में लाना चाहिये।

स्टूल के ऊपर ३ अंगुल जल रख कर बाथ लेने से बहुतेरे रोगों में शीघ्र सफलता प्राप्त होगी। ऐसी[2] दशा में जल ६३ से ७२ दर्जे फेरन हाइट का होना चाहिये। इस में नितम्ब जल में हो जाते हैं; शेष क्रिया वैसे ही होती है जैसे बताई जा चुकी है[3]।

कुछ मनुष्यों की समझ में संभवतः यह बात न आई होगी कि शरीर का वही भाग जिसका वर्णन पहले हो चुका है, धोने के लिये क्यों पसन्द किया गया है अन्य स्थान[4] क्यों नहीं। परन्तु कोई दूसरा स्थान इस के लिये उतना उपयुक्त नहीं है जितना वह स्थान है। शरीर के किसी दूसरे भाग में इतने अधिक सूक्ष्म और आवश्यक स्नायु[5] (रगों) के सिरे स्थित नहीं हैं जितने इस स्थान में हैं; और यही (महीन-

---

१—अर्थात् फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ लेने में धोने के लिये मुलायम कपड़ा लेना चाहिये।

२ अर्थात् स्टूल के ऊपर ३ अंगुल जल रखने की दशा में।

३—इस प्रकार स्टूल के ३ अंगुल ऊपर जल रख कर स्त्री और पुरुष बाथ ले सकते हैं।

नोट—फ्रिक्शन सिट्ज़बाथ लेने में एक बात जो लुईकूहनी साहेब के पत्र से मालूम हुई थी वह यह है कि नंगे बदन हो कर सिट्ज़बाथ लेना चाहिये। जाड़ों में वह कमरा, जहां बाथ लें गर्म कर लें, और दूसरी ऋतुओं में भी सर्दी के समय ऐसा कर लें, अँगीठी बाहर दहका कर कमरे में रक्खे जिससे कोयलों का जहर हवा को खराब न करे और कमरे में भी हवा के आने जाने का प्रबन्ध कर दें। हिपबाथ व सिट्ज़ बाथ के पश्चात् रोगी को मैदान में २० या ३० मिनट टहलना चाहिये, यदि रोगी निर्बल हो तो रजाई लिहाफ़ या कम्बल ओढ़ कर गरमी प्राप्त करे।

४—अर्थात् जिस स्थान को स्नान करावें; खलड़ी को ही ठंडे जल में धोना चाहिये।

५—स्नायु—यह एक प्रकार की रगें या तार शरीर में हैं जो रीढ़ और मस्तिष्क (दिमाग) से निकल कर सारे शरीर में फैले हैं, और ऐसे फैले हैं कि उनका जाल सारे शरीर में पूरा हुआ है, इनसे शरीर का कोई स्थान बचा नहीं हैं; इनके दो कर्म होते हैं और कर्म के विचार से यह दो प्रकार के होते हैं:—एक वह स्नायु है जिनके द्वारा वस्तु का ज्ञान छूने से होता है. दूसरे स्नायु वह है जिसके द्वारा संचालन क्रिया होती हैं। यह दोनों प्रकार के स्नायु अपने-अपने स्थान से निकल कर सारे शरीर में बराबर-बराबर फैलते हैं।

महीन रगों) उन रगों की शाखाएँ हैं जो रीढ़ से निकलती हैं और वही नरवस[१] सिम्पेथाई कस की शाखाएँ हैं, और चूंकि इन शाखाओं का मेल मस्तिष्क (दिमाग़) से है; अतएव इस प्रकार की क्रिया का प्रभाव कुल शरीर पर पड़ना बहुत ही सम्भव है। केवल जननेन्द्रियों के स्थान द्वारा ही समस्त शरीर पर प्रभाव डाला जा सकता है, यही स्थान जीवन के पूरे वृक्ष का मूल है। ठण्डे जल में धोने से केवल भीतरी बढ़ी हुई गर्मी ही कम नहीं हो जाती वरन् रगों में भी अधिक ताज़गी आ जाती है; अर्थात् इसके द्वारा कुल शरीर की जीवन शक्ति को बल पहुँचाया जाता है यहां तक कि शरीर के छोटे से छोटे भाग में बल पहुँचा दिया जाता है। इससे भिन्न दशाएँ, केवल वहीं देखने में आती हैं जहां रगों का क्रम विछिन्न हो गया है जैसा (कभी-कभी) चीरा फाड़ी से हो जाती है।

प्रत्येक मनुष्य जो किसी बात की परीक्षा करने में भय नहीं करता है वह इस बात को मान लेगा कि उस रीति के फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ में जो मैं बतलाता हूँ वह सब बातें मिलती हैं जो मनुष्य के शरीर के अवयवों के कार्यों को ठीक रखने के लिये आवश्यक हैं।

यह बात बता देना भी आवश्यक है कि फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ जो सहस्रों मनुष्यों को लाभ पहुँचा चुका है; केवल उन्हीं लोगों के लिए बतलाया गया है जिनका स्वास्थ्य[२] विगड़ा हुआ है। प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जो इस बात से विज्ञ है कि कैसी कष्ट दायक, असहनीय और लज्जा रहित क्रियाएँ शल्य क्रिया वेत्ताओं के हाथों से, मनुष्य शरीर पर की जाती हैं, वह इस सीधे-सादे परन्तु, निश्चय आरोग्यकर्ता फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ को पक्षपात रहित दृष्टि से अवश्य देखेगा। इस अवसर पर, जब कष्ट निवारण का विचार हो रहा है लज्जा करनी उचित नहीं है। पूर्ण प्रकार आरोग्य पुरुषों पर फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता और न ऐसे लोगों को इसके लेने की सम्मति ही दी जाती है; ऐसे लोगों को इससे थकान प्राप्त होगी; और रोगी मनुष्य इसको बहुधा आवश्यकता से अधिक लेंगे।

१—इतना ही जानना पर्याप्त है कि यह खलड़ी मनुष्य देह में ऐसा स्थान है कि जहां से शरीर पर भला या बुरा प्रभाव डाला जा सकता है। अनेक रोग इसी स्थान द्वारा शरीर में पहुंच सकते है, जिससे यह ज्ञात होता है कि यह स्थान रक्षणीय है। यहीं से गर्मी और सर्दी दोनों समस्त शरीर में प्रभाव करती हैं, कारण यह है कि इस स्थान पर उन स्नायुओं की शाखाएँ इकट्ठी होती हैं जिनका मेल सारे शरीर से है, विशेषतः मस्तिष्क से।

२—पूर्णतया स्वस्थ मनुष्य की पहिचान के लिए देखो पृष्ठ १५—१६।

नेचर (सृष्टि) में जो प्रयत्न समानता पर पहुँचने के हो रहे हैं उनकी ओर भी आपका ध्यान दिलाना आवश्यक है। यह प्रयत्न, जैसा कि भूल से बहुधा लोग समझते हैं, निर्जीव पदार्थों में ही नहीं मिलते, प्रत्युत सजीव सृष्टि में भी पाये जाते हैं, यह उपाय सदैव उस न्यूनाधिकता में पाये जाते हैं, जो मनुष्य के शरीर की गर्मी में उसके चारों ओर की वस्तुओं के कारण हुआ करती है। गर्मी में भीतर से बाहर की ओर, और बाहर से भीतर की ओर को एक प्रकार का परिवर्तन हुआ करता है जिसको बिजली की लहर के नाम से पुकारें तो अनुचित न होगा। और जिस प्रकार प्राकृतिक लहर में शक्ति होती है, इस लहर में भी कुछ बल अवश्य होगा। यह बल ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, जैसे कि किसी ज्वर से पीड़ित शरीर की दशा में, वैसे ही उस मनुष्य की दशा भी असहनीय होती जाती है, और वैसे ही रोग के चिह्न भी बढ़ते जाते हैं। जैसे कि आंधी में दम घुटने और बेचैनी उत्पन्न करने का प्रभाव होता है; वैसा ही प्रभाव शरीर में विजातीय द्रव्य के भार का भी होता है। ऐसी दशा में इससे विशेष और क्या स्वाभाविक बुद्धिमानी की बात हो सकती है कि शरीर में समानता प्राप्त करावें। बढ़ी हुई गर्मी[1] कम दर्जे की गर्मी से मिल कर समान दशा पर आनी चाहिये और असाधरण गर्मी को साधारण दशा पर लाना चाहिये, और वह सेतु[2] (पुल) जो हमको इस अभिप्राय तक पहुंचाता है मेरी और चिकित्सा विधियों के साथ मिल कर फ्रिक्शन सिट्ज बाथ है, जो (फ्रिक्शन सिट्ज बाथ) उन कारणों से जिनका वर्णन पहले हो चुका है केवल ठंडे ही जल में लेना चाहिए। इन स्नानों का प्रभाव अनोखा और अनेक दशाओं में अत्यन्त फलदायक होता है। यदि किसी दशा में इससे समुचित फल प्राप्त न हो तो इसका कारण शरीर में जीवन-शक्ति का अभाव ही समझना चाहिए।

१—प्रत्येक आरोग्य शरीर की गर्मी का एक दर्जा माना गया है उसको नार्मल (Normal) कहते हैं, जब गर्मी बढ़ जाती है तो ज्वर की दशा हो जाती है; इस ज्वर को घटा कर नार्मल दर्जे पर लाना यही ज्वर को दूर करना है।

२—उपमा सेतु से दी गई है; जैसे सेतु मनुष्य को नदी या समुद्र पार पहुंचाने का साधन है इसी प्रकार यह सिट्ज बाथ कुहनी साहब की और चिकित्सा विधियों के संग में मिल कर मनुष्य को रोग सागर से पार उतार देता है, परन्तु यह आवश्यक है शरीर में जीवन-बल की स्थिति हो।

यदि शरीर के भीतर जिसकी उपमा मोरचा (जङ्ग) खाई हुई मशीन (कल) से दी जा सकती है, विजातीय द्रव्य भरा होता है, तो बिगड़ी हुई पाचन-शक्ति इस योग्य न होगी कि भोजन की साधारण मात्रा से। उसे इतना बल प्राप्त करा सके कि जो मनुष्य को उसकी पहली दशा के स्थिति रखने में उपयोगी हो। आहार में पहिले अधिक मात्रा की और बहुधा तेजी पैदा करने वाले आहार की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है, जिससे कि वह रोगी अपना कारोबार करने की दशा में रहे। परन्तु ऐसी अवस्था में पाचन-शक्तियों का दिनों दिन ह्रास ही होता जावेगा।

यदि हम शरीर में जीवन-शक्ति को पुनः लाना चाहें तो केवल ऐसी ही विधियों के द्वारा ला सकते हैं जो पाचन-शक्ति को बढ़ाती हैं। सर्वोत्तम विधियां जो मुझे ज्ञात हैं वह स्वाभाविक आहार के संग मिल कर यह ठण्ड पहुंचाने वाले बाथ्ज़ हैं; इनसे अत्यन्त बिगड़ी हुई पाचक-शक्ति भी (उस समय तक जब तक कि यह सुधारने के योग्य होती है) किसी दूसरी चिकित्सा के अतिरिक्त शीघ्र ही सुधार जाती है; और इनका प्रभाव भी बहुत स्वाभाविक रीति से पड़ता है। इससे भी अधिक बात यह है कि यह स्नान ज्वर की गर्मी को जो विजातीय द्रव्य की रगड़ से उत्पन्न होती है घटाते हैं, जिससे रोग का आगे बढ़ना बन्द हो जाता है।

यदि हम चाहें कि भाप को कमरे के अन्दर खौलते हुए जल से निकल रही है (यह उदाहरण नित्य होने वाली बातों से लेते हैं) फिर उसके आदि रूप अर्थात् जल में बदलें, तो ऐसा करने के लिये केवल गर्मी को ही कम करना चाहिये यही दशा विजातीय द्रव्य की अर्थात् रोग की होती है।

शरीर में गर्मी के बढ़ जाने से रोग उत्पन्न होता है और इसकी विपरीत दशा उत्पन्न करने से यह (रोग) जाता रहता है, अर्थात् भीतरी बढ़ी हुई गर्मी को घटाने और बराबर ठण्ड पहुँचाने से ही ऐसा होता है।

ठीक उसी प्रकार से जैसे मशीन (कल) एक ही स्थान से जल्दी और धीरे जैसे चाहें चलाई जा सकती है, वही दशा मनुष्य के शरीर की भी है। जीवन-बल पर केवल एक ही स्थान से प्रभाव डाला जा सकता है, यह स्थान वही है जिसको मैंने फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ[1] देने के लिये पसन्द किया है।

[1] — अर्थात् फ्रिक्शन हिप व सिट्ज़ बाथ्ज़।

इस कथन के पश्चात यह बत सर्वसाधारण को विदित हो गई होगी कि मैं सफलता के साथ चक्षु और कर्णों की चिकित्सा (प्रत्येक रोगी की दशा के अनुकूल उसको ठीक करके) केवल उसी रीति से करता हूँ, जिस रीति से कि मैं दूसरी दशाओं रक्त ज्वर, शीतला चेचक, विशूचिका (हैजा) आदि में किया करता हूँ। समस्त शरीर की जीवन-शक्ति बढ़ जाती है, और साथ ही यह भी नहीं होता कि शरीर के किसी एक भाग को दूसरे भाग के अतिरिक्त अधिक उत्तेजना प्राप्त हो जावे। जैसा वर्णन हो चुका है, तभी होता है जब रगों का तार कहीं से टूट गया हो। जीवन-शक्ति की वृद्धि होकर (अर्थात् बढ़ कर) वह किस प्रकार अपने को प्रकट करती है, बहुधा मनुष्यों को यह विदित नहीं है, और रोगी की आशा के नितान्त विपरीत भी देखने में आता है। उदाहरण के लिए बतलाते हैं कि ऐसा हो सकता है कि तम्बाकू पीने वाले, इस चिकित्सा विधि के स्नान लेने के पश्चात्, तम्बाकू के अधिक नहीं पी सकते हैं और वह यह विचार ने लगते हैं कि उनके आमाशय निर्बल हो गये हैं, यद्यपि बात इनके नितान्त विपरीत है। पहिले उनके आमाशय इतने निर्बल थे कि तम्बाकू के विषैले द्रव्य से वह युद्ध नहीं कर सकते थे, परन्तु अब फिर उनमें इतना बल हो गया है कि उसके विष से युद्ध कर सकें। जिस दशा में शरीर के पट्ठों में इस बात की योग्यता होती है कि इन स्नान विधियों के द्वारा उनको बल प्राप्त हो जावे तो शरीर में सदैव इतना बल प्राप्त हो जायगा कि (द्रव्य को शरीर से बाहर निकालने की) इन्द्रियाँ उस विजातीय द्रव्य को जो शरीर में इकट्ठा हो गया है बाहर निकाल सकें।

फ्रिक्शन सिट्ज बाथ्ज के सिवाय पेड़ू के ऊपर मिट्टी (गीली चिकनी मिट्टी या पिंडोल) की पट्टी¹ का बांधना बाहरी गर्मी के घटाने और विजातीय द्रव्य के उखाड़ने के वास्ते बहुत ही लाभप्रद है। ऐसी पट्टी से बाहरी चोट और घावों को भी बहुत लाभ प्राप्त होता है।

१—मिट्टी की पट्टी बनाने की यह रीति है कि पिंडोल या चिकनी मिट्टी को महीन पीस कर ठंडे जल में मिला कर गाढ़ी लेई के समान कर लेवें, फिर उसको गाढ़े के कपड़े अथवा टाट के बारीक कपड़े पर एक अंगुल मोटा फैला लेवें जैसे पोलटिस बनाते हैं और उसको मिट्टी की ओर से पेड़ू पर (नाभी से नीचे के हिस्से पर) रख देवें और रोगी को उढ़ा कर लेटा देवें। १५ से ३० मिनट तक ऐसा करें, फिर पट्टी अलग करके पेड़ू को गीले वस्त्र से साफ कर लेवें। ऐसी पट्टी कभी-कभी बांधनी चाहिये।

किसी को यह नहीं समझना चाहिये कि नवीन चिकित्सा की यह विधियाँ (जो प्रत्येक मनुष्य की दशा के विचार से ही बताई जाती हैं) प्रत्येक रोगी को अवश्य ही पूर्ण प्रकार से आरोग्यता प्राप्त करावेंगी। जैसा कि मैं कह चुका हूँ मैं सब रोगों को आराम कर सकता हूँ न कि सब रोगियों को। क्योंकि जिस रोगी के शरीर की जीवन-शक्ति और पाचन-शक्ति का क्रम बिलकुल टूट गया है, तो इन स्नान विधियों से आराम तो अवश्य ऐसा होगा जैसा किसी अन्य चिकित्सा से न हो सकेगा, परन्तु ऐसे रोगी पूर्ण आरोग्यता प्राप्त न कर सकेंगे।

कोई-कोई दशाएँ ऐसी कष्ट साध्य भी होती हैं कि उनमें मेरे निर्माण किये स्नान अत्यन्त मध्यम कोटि[1] के साथ लेने उचित हैं, और ऐसी दशा में उनको कुछ-कुछ दिनों के लिये बन्द भी कर देना चाहिये। ऐसी कष्ट साध्य दशाओं में बिना चिकित्सा विधि के पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये, केवल इस पुस्तक में बतलाई हुई बातों को ही जान कर रोगियों को अपनी चिकित्सा आरम्भ करना उचित नहीं है ऐसी दशाओं में यह उत्तम होगा कि वे लोग मुझसे पत्र-व्यवहार द्वारा सम्मति लेलें। जिससे उन्हें इस चिकित्सा के करने से कोई कुफल प्राप्त न हो।

१—अर्थात् न बहुत ज्यादा न बहुत कम किन्तु ठीक-ठीक जैसे कि अमुक दशा में देने उचित हों।

हम क्या खायें और पियें ?

पाचन–क्रिया

—.०:—

फ्रिक्शन सिट्ज बाथ पर और मनुष्य की जीवन-शक्ति के विषय में जो व्याख्या लिख चुके हैं, उनसे हमको यह बात विदित हो चुकी है कि रोग केवल कुपथ्य का फल है। पाचन-शक्ति के ही बिगड़ जाने से, विजातीय द्रव्य (फारेन मैटर) उत्पन्न हो सकता है और शरीर में रोग बढ़ता है। अतः ये प्रश्न हमारे लिये अति आवश्यक है कि हम क्या खायें ? और क्या पीवें ?

यह पूर्ण रूप से ज्ञात होता है कि विद्युत् (बिजली) की शक्ति, चाहे स्थिर, चाहे चलायमान रूप से (अर्थात् विद्युत् की लगातार चलती हुई धारा) उत्पन्न करने के निमित्त, किन्हीं मुख्य केवल असंयुक्त वस्तुओं Elements (एलीमेन्टस) की आवश्यकता पड़ती है। एक द्रव अम्ल पदार्थ (तेज़ाब) की सहायता से ही यह बात प्राप्त होती है कि कर्बन[1] व जस्त की पटरियों के गलने या उनके रूप बदलने से हम उनसे एक प्रकार की शक्ति निकाल लेते हैं जो पहिले उन पटरियों को बना रखने में काम आई थी। फिर यही शक्ति तार द्वारा (धन[2] व ऋण[3]) के नाम से विद्युत् की प्रवाहित

१—कार्बन, केवल एक पदार्थ है जिसके उदाहरण में केवल कोयला दिखलाया जा सकता है।

२—३—विद्युत् विद्या कि पुस्तकों से विद्युंत् उत्पन्न होने की विधि जानी जा सकती है। विद्युत् की धारा दो धातुओं को अम्ल (तेज़ाब) में डालने से उत्पन्न होती है। भिन्न-भिन्न पदार्थ पर अम्ल का प्रभाव भिन्न-भिन्न ही होता है अर्थात् न्यूनाधिक होता है; जब दो धातुओं को अम्ल में डालें तो जिस धातु से विद्युत् अधिक उत्पन्न हो उसकी विद्युत् को धनात्मक, और जिस धातु से कम बिजली उत्पन्न होगी उसकी बिजली को ऋणात्मक विद्युत् कहेंगे। यदि जस्त और तांबे की पटरियों को पानी मिले हुए गंधक के अम्ल में डालें तो जस्त से ऋणात्मक, और तांबे से धनात्मक विद्युत् उत्पन्न होगी। इसी प्रकार से जस्त व कार्बन की दशा में कार्बन से धनात्मक और जस्त से ऋणात्मक विद्युत् उत्पन्न होती है।

धारा में लाई जाती है, जिससे विद्युत् के रूप में काम लिया जाता है। परन्तु यदि इन अमिश्र पदार्थों (अर्थात् जस्त व कार्बन या केवल कोयला) के अतिरिक्त कोई भिन्न पदार्थ जो उन्हीं से मिलता हुआ हो या जिनके परिमाणु का योग उनके ही सदृश हो, वा स्वयं वही वस्तु (जस्त और कार्बन) रूपान्तर में, अर्थात् पीस कर— काम में लावें, तो तुरन्त भिन्नता प्रगट हो जायगी। ऐसी दशा में या तो विद्युत् सर्वथा उत्पन्न ही न होगी, या उसमें अतीव अन्तर व कमी होगी, चाहे और सब बातें वैसी ही भले ही रहीं हों जैसी कि जस्त और कार्बन की पटरियों से काम लेने के समय थीं। मनुष्य के शरीर में जीवन-शक्तियाँ या जीवन-बल उत्पन्न होने की भी वैसी ही बात है। यहां भी जीवन-शक्ति की न्यूनाधिक वृद्धि का होना केवल शुद्ध भोज्य-पदार्थ के जान लेने पर ही निर्भर है। वायु के विषय में जो हमारा मुख्य आहार है यह बात स्पष्ट रूप से देखी जायगी और ज्ञात हो जायगी, यदि हम थोड़े ही पलों या कुछ मिनटों के वास्ते किसी मनुष्य को साधारण वायु मंडल से अलग करें और दूसरी प्रकार के वायु (अर्थात् gas) में छोड़ देवें तो तुरन्त प्रतीत हो जावेगा कि नवीन वायु उस की जीवन-शक्ति को स्थिर रखने में सहायक न हो सकी, और किस प्रकार थोड़ी देर में ही उसके प्राण जाते रहे, और नवीन अमिश्रित वस्तु उस के जीवन की सहायता न कर सकी।

कुपथ्य के बुरे प्रभाव सहज ही में प्रत्यक्ष नहीं होते, वरन देर में प्रतीत होते हैं। स्वाभाविक भोज्य पदार्थ व प्राणघातक विष में अतीव अन्तर है। स्वाभाविक भोज्य-पदार्थ तथा अस्वाभाविक (ग़ैर कुदरती) भोज्य-पदार्थ में इतना कम अन्तर है कि प्रथम तो वह जाना ही कठिनाई से जाता है, परन्तु जब यह बात हम जानते हैं कि विजातीय द्रव्य का उत्पन्न होना केवल अस्वाभाविक भोजन का फल है अर्थात् शरीर में केवल यह पाचन-शक्ति के बिगाड़ के कारण से उत्पन्न होता है तो ऐसे कुपथ्य व अस्वाभाविक भोजन से परहेज़ करना व पाचन-शक्ति के बिगाड़ का सुधार करना हमारा कर्तव्य होना चाहिये।

कुपथ्य और बिगड़ी हुई पाचन शक्ति के विषय को समझाने के उदाहरण जो प्रति-दिन के जीवन में देखे जाते हैं; लिखे जाते हैं। कोई-कोई मोटे व हृष्ट पुष्ट मनुष्य हमसे मिलते हैं और अपने कम-खाने पीने का हमें विश्वास दिलाते हैं, और

कहते हैं कि इतना कम भोजन करने पर भी वे बराबर मोटे होते जाते हैं। ऐसे मनुष्यों में यह मुटापा मुख्य कर अधिक भोजन ही के कारण होता है, इसके विरुद्ध कुछ मनुष्य बहुत दुबले-पतले मिलते हैं जो प्रायः अत्यन्त बलवर्द्धक खाद्य और पेय पदार्थों का आवश्यकता से अधिक सेवन करने पर भी मोटे नहीं होते, भोजन के परिमाण स्वरूप ऐसे मनुष्यों को सर्वथा विरुद्ध दशा में होना चाहिये था। शरीर में होकर भोजन निकल तो जाता है पर उससे उसके शरीर को कुछ भी फल नहीं होता। भोजन का बहुत सा भाग बिना काम में आए हुए ही बाहर निकल जाता है, या कम से कम उससे पूर्ण प्रकार शरीर को सफलता प्राप्त नहीं होती। यह उदाहरण इस बात को सिद्धी करता है कि खाने-पीने के पदार्थों का केवल देह में होकर निकल जाना ही पाचन-शक्ति की शुद्धि को नहीं बतलाता है। शोचनीय दशा है कि बहुत से लोग ऐसा ही[1] विचार रखते हैं।

इस प्रकार मनुष्यों के दो विरुद्ध समूह पाए जाते हैं। एक से यह सिद्धि होता है कि कम भोजन करने से भी वह पुष्ट हो जाता है, और दूसरे से यह सिद्ध होता है कि खाने-पीने की अधिकता से भी वह दूसरा मनुष्य किस प्रकार से दुबला होता जाता है। प्रत्यक्ष में भिन्नता होने पर भी दोनों दशाओं में रोग का कारण एक ही है, अर्थात् कुपथ्य और पाचन-शक्ति को बिगाड़ना। इतनी भूमिका के पश्चात् यह बात सहज में ही समझ में आ सकती है कि क्यों एक क्षयी का रोगी, अपने विचारानुसार अति बल-कारक व लाभ दायक भोजन करता है, परन्तु अपने शरीर को उससे किंचित् भी लाभ नहीं पहुँचा सकता। इसके विरुद्ध इस बात पर अब हमको कदापि आश्चर्य न होगा कि प्रत्यक्ष में आरोग्य और बलिष्ट परन्तु विक्षिप्त (नरवस Nervous) मनुष्य को क्षुधा क्यों नहीं लगती।

इतनी व्याख्या के पश्चात् और पूर्व जीवन-शक्ति सम्बन्धी प्रकरणों में प्रतिपादित विषयों को स्मरण रखते हुए यह कठिन नहीं है कि भोजन की अधिकता से बचाव का मार्ग जान लिया जावे। बुद्धिमान पाठकों को निस्सन्देह अब विश्वास हो गया होगा कि खाने पीने के पदार्थों में अंडा, मांस, मदिरा, अंगूर की मदिरा, जौ की मदिरा, कोको (Cocoa), कहवा (Coffee), चाय इत्यादि अत्यन्त बलदायक और स्वाभाविक भोज्य पदार्थ नहीं हैं, वरन् शीघ्र व सहज में पच जाने वाले भोजन ही

१—अर्थात् भोजन का देह में होकर निकल जाना ही शुद्ध पाचन-शक्ति का परिणाम है।

अति बलदायक व पथ्य आहार हैं। जितनी शीघ्रता के साथ हमारा शरीर उस भोजन को जो उसे मिले पचा सकता हो, उतना ही अधिक लाभ उस भोजन से उसको प्राप्त होगा, अतः उतनी ही जीवन-शक्ति वह उत्पन्न कर सकेगा। अतः जीवन-शक्ति की न्यूनाधिकता खाये हुए भोजन के शीघ्र पचने पर निर्भर है।

भोजन जितनी अधिक कठिनाई से पचने वाला होता है, शरीर को उतना ही अधिक समय उसकी पाचन-क्रिया में लगता है। अतः यदि हम ऐसे भोजन करें तो हमको (यदि हम शरीर को हानि नहीं पहुँचाना चाहते) कम से कम इतना अवश्य करना होगा कि जब तक पहिले का खाया हुआ भोजन पूर्णरूप से न पच जावे; तबतक दूसरी बार खाने से रुकें। दुर्भाग्यवश ऐसा बहुत ही कम किया जाता है, विशेष कर जब हमारे नित्य के स्वभाव, इस अत्यन्त अनाहार (उपवास) के प्रतिकूल हैं। उपवास करने का मुख्य अभिप्राय वास्तव में हम लोग अभी तक नहीं जानते। मनुष्य, साधारण रूप से सृष्टि के नियत किये हुए व्रतों (उपवासों) की पर्वाह नहीं करता। वरन् इसके विरुद्ध हम देखते हैं कि वह शरद ऋतु में (जिसमें ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा साधारणतः समय अधिक मिलता है) ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा अधिक व बार-बार भोजन करता है। सामान्यतः सर्वत्र यह मिथ्या विचार प्रचलित पाया जाता है, कि शरद ऋतु में सरदी का साम्मुख्य करने के लिये, शक्ति प्राप्त करने के लिये, मनुष्य को अपना पेट अच्छी प्रकार से भरना तथा चिकनाई अधिकता से खानी उचित है। परन्तु यह बात सृष्टि के नियमों के सर्वथा विरुद्ध है। कितनी ही बार (बहुत बार) मैंने शरद ऋतु में अधिक खाने-पीने की हानियां प्रकट की हैं। सृष्टि में सर्वत्र उपवास का नियत समय पाया जाता है। यह देखा गया है कि एक बार पूर्ण भोजन कर लेने के पश्चात् सर्प कई सप्ताह तक भोजन में नागा करते हैं। यह भी देखने में आया है कि हरिण व खरगोश कई सप्ताह व मास तक स्वल्प भोजन पर रह सकते हैं, और फिर शरद ऋतु के सब कष्टों को सह लेते हैं। यदि इन जीवों को उतना भोजन मिलने का अवसर[1] प्राप्त होता जितना कि गर्मियों में मिलता है तो निस्सन्देह वे रोगी हो जाते और शरद ऋतु की सर्दी न सह सकते। इस बात को हम जानते हैं कि ठण्ड किसी वस्तु के सड़ने व उसमें उफान उठने को रोकती है, अतः भोजन के पचाने को भी रोकती है, अतः ग्रीष्म ऋतु में भोजन जितनी सरलता से पच सकता है उतना ही जाड़ों में

१—अर्थात् शरद ऋतु में उतना ही भोजन प्राप्त करने का अवसर मिलता जितना कि उनको ग्रीष्म ऋतु में मिलता है।

कठिनाई से पच सकेगा। यही कारण है कि पालतू-जीव जिनको बहुधा अश्वशाला (घुड़साल) या गोशाला या किसी घर में चारा खिलाया जाता है और जो लगभग सदा ही अधिक भोजन के कारण रोगी रहते हैं, वे खुले मैदानों में शरद ऋतु के कष्टों को नहीं सह सकते, और प्राकृतिक दशा में रहने वाले जीव कठिन से कठिन (वायु, वर्षा व बर्फ़ के) तूफ़ानों को भी झेल सकते हैं, इसका कारण यह है कि जंगल[१] के जीवों में शारीरिक सहन शीलता[२] की शक्ति पर्याप्त मात्रा में रहती है जिसकी प्राय: आज-कल उपेक्षा की जाती है।

इन व्याख्यानों से अब यह स्पष्ट हो गया कि एक प्रकार की भोजन की अधिकता से ही रोग उत्पन्न होता है। अतः अब हमारे चित्त में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक हो गया कि "हम क्या खाएँ" और "किस पदार्थ को उसकी किस दशा में खाएँ और "कैसे स्थान में खाएँ" यह विषय विचारणीय है।

इस विषय को और अधिक स्पष्ट करने के अभिप्राय से हम कई उदाहरण और भी लिखते हैं।

यदि हम उबाला हुआ जल पियें, तो वह स्वादिष्ट तथा पीने योग्य प्रतीत नहीं होता है। इसके विरुद्ध ताजे पानी के घूंट बड़े ही स्वादिष्ट ज्ञात होते हैं। सेव कितना बलदायक होता है। यही बात वायु में है। साधारण घर के भीतर की बन्द और काम में लाई हुई वायु स्वाँस घोटने वाली, रग पट्ठों को शिथिल तथा आलसी बनाने वाली, और अधिकांश को शिर दुखाने वाली होती है—विशेष कर जब घर तंग या छोटा हो—और जब बहुत से मनुष्य उसमें बैठे हों; ऐसी दशा में मनुष्य उस बाहर की आनन्द दायक व चित्त को प्रसन्न करने वाली वायु का कितना इच्छुक होता है, यह बात स्पष्ट है।

इसी प्रकार इस बात की भी आवश्यकता है कि किस स्थान में हम भोजन करें। खुली हवा या चौड़े मैदान में हम जो खाते हैं वह सदा, घर के भीतर खाये जाने वाले भोजन की अपेक्षा सहज में पच जाता है; कारण इसका यह है कि चबाने में भोजन के साथ हवा भी मिल जाती है और घर के भीतर की बुरी वायु की अपेक्षा नवीन वायु भोजन के पचने की योग्यता पर सर्वथा भिन्न प्रभाव डालती है।

२—प्राकृतिक दशा में रहने वाले जीव।

३—अर्थात् कठिनाइयां सहने की शक्ति रखते हैं।

जैसा कि पहले वर्णन हो चुका है, वे भोजन, जो अति शीघ्र पाचक हैं वे वास्तव में शरीर की पुष्टि के लिये अत्यन्त अनुकूल व ठीक हैं। ओवर न्यूट्रिशन (Over Nutrition) अर्थात् भोजन की अधिकता भी बहुत ही कम होगी जब कि भोजन सहज ही में पच जावेगा। अतः हमारा प्रथम कर्त्तव्य इस बात का विचार करना है कि कौन सा भोजन अति शीघ्र पाचक है. अर्थात् हमको सब से अधिक जीवन-शक्ति किस आहार से प्राप्त होती है। इस कारण इस अत्यन्त आवश्यकीय प्रश्न का उत्तर जितना प्राकृतिक है उतना ही सीधा सादा भी है, और निम्नलिखित शब्दों में दिया जा सकता है :—

ऐसे भोजन जो अपनी प्राकृतिक (असली) दशा में स्वादिष्ट होते हैं और जो हमको अपने खाने के लिये लालायित करते हैं; सदा वे हैं जो अत्यन्त शीघ्र पच जाते हैं और हमको अधिक से अधिक जीवन-शक्ति प्रदान करते हैं।

सब भोजन जिन को हम पकाकर, धुआं लगा कर, मसाला लगा कर, नमक लगा कर, सिरका या नमक के पानी में डाल कर बनाते हैं, पाचन-शक्ति में न्यून हो जाते हैं, और जीवन-शक्ति के प्रदान करने में प्राकृतिक भोजनों से बहुत कम लाभ दायक होते हैं—चाहे भोजनों के बनाने की यह रीतियाँ उन को देर तक ठहराने में सहायता भले ही देती हों।

पकाये हुए और बनाये हुए भोजनों में वे भोजन अत्यन्त शीघ्र पाचक हैं, जो सादी रीति से पकाये (बनाये) जाते हैं और जिनमें नमक और मसाला कम लगाया जाता है।

द्रव्य रूप में जो भोजन होते हैं—जैसे झोलदार या रसेदार (शोरवेदार) और कृत्रिम सुगंधित पीने के पदार्थ, जैसे जौ की मदिरा, अंगूरी, कोको इत्यादि, वे उन पदार्थों की अपेक्षा अधिक कठिनता से पचने वाले हैं जो अपने वास्तविक रूप में दृढ़ व चबाए जाने के योग्य हैं। इसी कारण द्रव भोजन का लगातार प्रयोग उदर (पेट) वृद्धि व पाचन-शक्ति में विगाड़ उत्पन्न करने वाला होता है।

वे भोजन जो मनुष्यों में अपने प्राकृतिक (असली) रूप में घृणा व उदर में भार उत्पन्न करते हैं, वे सदा स्वास्थ्य को हानिकारक होते हैं, चाहे वे इस पकाई व बनाई हुई दशा में कितने ही स्वादिष्ट क्यों न हों। इस प्रकार के भोजनों में सब से अधिक दोष युक्त मांस है। कोई मनुष्य कभी इसका विचार भी न करेगा कि जीवित चौपाये (बैल) के शरीर में मुँह या दांत मारे, या भेड़ का कच्चा मांस खावे। नमक

व मसाला लगा कर पकाने से हमारी स्वाभाविक पहिचान की बुद्धि भ्रमित हो जाती है; परन्तु जो भोजन हमारे प्राकृतिक ज्ञान अर्थात् घ्राण व रसनेन्द्रिय को घृणा दिलाने वाले हैं वे आरोग्यवर्द्धक कदापि नहीं हो सकते।

प्राकृतिक भोजन के विषय को अधिक स्पष्ट रीति से समझाने के अभिप्राय से निम्नलिखित बातों का लिखना आवश्यक है।

सब भोज्य पदार्थ जब तक कि वे पूर्ण पक्व दशा को न पहुँचे हों (अर्थात् जब तक कि वे पूर्णवृद्धि की दशा में नहीं हैं) अधिक पकी हुई दशा की अपेक्षा अति शीघ्र पाच्य और अधिक जीवन-शक्ति प्रद होते हैं। दुर्भाग्य से साधारण मनुष्यों का यह विचार मिथ्या है कि कच्चे भोज्य पदार्थ स्वास्थ्य के लिये हानि प्रद हैं। क्योंकि वे दस्त लाते, और पेचिश उत्पन्न करते हैं यह विचार सर्वथा मिथ्या है, निस्सन्देह उस मनुष्य को जो विशेष कर मांस भोजन का स्वभाव रखता है और फिर अकस्मात् कच्चा सेब या कोई और कच्चा फल खा लेवे तो उसे दस्त हो जायंगे। परन्तु सर्व साधारण के विचार के विरुद्ध इस उदाहरण में हम कच्चे फलों के शीघ्र पाचक होने का एक अत्युत्तम प्रमाण पाते हैं। प्रत्येक शीघ्र पाच्य भोजन को, पाचक द्वारा सड़ाने वाली या उफान उत्पन्न करने वाली क्रिया, इस प्रकार शीघ्रता से बदल देती है, जो विलम्ब से पचने वाले भोजन में सम्भव नहीं है। यदि पचाने वाले अवयवों में कठिनता से पचने वाले या उफान के द्वारा कठिनता से बदलने वाले भोजन वर्तमान हों तो उन पर कच्ची मेवाओं की शीघ्र उफान उठाने वाली क्रिया का ऐसा प्रभाव होगा कि वे स्वयं भी सड़ने व उफान उठने की दशा में हो जायेंगे, इस रीति से दस्त होने लगते हैं जिनका इतना अधिक (यद्यपि अनुचित) भय किया जाता है। ऐसे दस्तों का लगना शरीर के भीतर के विजातीय द्रव्य के अधिक परिमाण को आश्चर्यजनक थोड़े काल में ही शरीर के बाहर निकाल देता है, और मेरे विचारानुसार शरीर के सब भागों के वास्ते अत्यन्त लाभ दायक है।

पाठकों को पूर्णतः ज्ञात होगा कि जो कुत्ते अपने स्वामी के अति कृपापात्र होने के कारण बहुत मोटे हो जाते हैं वे बहुधा घास खाते हैं। अर्थात् ऐसा भोजन जोकि मांसाहारी जीव के लिये वास्तव में नहीं बनाया गया है। इसका कारण यह है कि कुत्ते का पशु-बुद्धि उसको सिखलाती है कि शीघ्र पाचक होने के कारण घास उसकी पाचन-शक्ति की सहायक है, जब कि उसकी पाचन शक्ति पर अधिक कठिनता से पचने वाले भोजन का भार हो जाता है।

अतः उन लोगों के निमित्त जिनको कोई उदर-रोग वा पाचन-शक्ति का रोग हो गया है पक्के फलों के बदले कच्चे फल ही खाने चाहिये, और कच्चे फलों का व्यवहार उस समय तक करते जाना चाहिये जब तक उनका उदर पक्के फलों को पचाने की शक्ति प्राप्त न कर लेवे।

फल और अन्य भोज्य पदार्थों के सदृश, अन्न (नाज) (जो ऐसे ही भोजन बनाने की रीति के अनुसार भिन्न श्रेणी की पाचन-शक्ति की योग्यता रखते हैं) अपनी प्राकृतिक दशा में अर्थात् सम्पूर्ण दाने के रूप में शीघ्र पाचक होते हैं। वास्तव में अन्न के चबाने में दाँतों को बहुत काम करना पड़ता है, परन्तु चबाने ही से और चबाने के द्वारा, मुँह का जो रस भोजन के साथ पूर्णता से सम्मिलित होता है उससे विशेष कर पाचन-शक्ति की वृद्धि होती है। निस्सन्देह वही लोग जो सौभाग्य से दाँतों की दृढ़ पंक्तियाँ रखते हैं अन्न को इस प्राकृतिक[1] रूप में खा सकते हैं, और जिनके दांत न्यूनाधिक जाते रहते हैं वे इस चबाने की क्रिया से वंचित रहते हैं। ऐसे रोगियों को पहिले तो दला या पिसा हुआ अन्न चबाना चाहिये। जब ऐसी आवश्यक दशा हो तो दला या पिसा हुआ अन्न अत्यन्त निर्बल रोगियों के वास्ते अति आवश्यक[2] भोजन है और इसको उस समय तक व्यवहार में लाना चाहिये जब तक कि वे लोग बिना छने आटे की रोटी को पचाने के योग्य हो जावें। ऐसी दशा में मोटा दलिया और अधपके या कच्चे फल अति लाभदायक हैं और यदि रोगी कुछ भी आरोग्यता प्राप्त करने के योग्य हो, तो उसको अति शीघ्र आराम होने लगेगा। कच्चे अन्न खाने की अपेक्षा आटे की रोटी इतनी शीघ्र पाचक नहीं होती है जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं। परन्तु सब रोटियों में गेहूँ के बिना छने आटे की रोटी (देखो रोटी बनाने की विधि इस अध्याय के अन्त में) अत्यन्त शीघ्र पाचक होती है। बहुधा रोटी बनाने के लिये अन्न के भीतर का गूदा काम में आता है, और बाहर का छिलका अर्थात् चोकर सदा अन्य कामों में बरता जाता है।

१—अर्थात् साबुत अन्न को दाँतों से चबाकर।

२—अनुवाद कर्त्ता को एक रोगी की दशा में जो कष्ट साध्य हो चुका था इस प्रकार के कच्चे भोजन खिलाने का तजुर्बा हुआ है जिससे इस कथन की सत्यता पूर्ण प्रकार प्राप्त हुई थी, और रोगी को आराम हो गया।

इस रीति से महीन आटा तो प्राप्त होता है परन्तु उसकी रोटी, बिना छने आटे की रोटी की अपेक्षा पाचन-शक्ति पर अधिक भार डालती है। अतः यह क़ब्ज़ करती है क्योंकि चोकर जो अन्न का अति आवश्यक भाग है वह उससे अलग कर दिया गया है।

जई (ओट्स Oats) जैसा कि प्रत्येक मनुष्य जानता है घोड़ों का अति उत्तम भोजन है, पर प्रत्येक अश्व का स्वामी इस बात को पुष्ट कर देगा कि जई के लाभ-दायक भोजन होने के लिये यह कितनी आवश्यक बात है कि वह किस दशा में घोड़ों को खिलाई जानी चाहिये। यदि जई को भूसी (चोकर) के संग मिला कर घोड़े को खिलावें तो बहुत सहज में वे उसको पचा लेवेंगे और उनको उससे अति लाभ होगा। इसके विरुद्ध यदि इन पशुओं को जई बिना चोकर के खिलाई जावे तो तुरन्त प्रतीत हो जावेगा कि उनको यह आहार अब सहज में नहीं पच सका। और यदि इस भोजन के स्थानापन्न और कोई अन्य नाज जैसे गेहूँ या देव—गंदुम[1] उनको विना चोकर के खिलाया जावे, तो घोड़ों की पाचन-शक्ति से और भी स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जायगा कि वे भोजन अकेले[2] बहुत ही गरिष्ट हैं। यदि घोड़ों को वह जई जिसका छिलका हटा लिया गया है खिलाई जावे तो पाचन-शक्ति की कठिनाई और परिश्रम और भी स्पष्ट हो जायगा। पशु ऐसी जई खाने से मोटे तो हो जाते हैं परन्तु उनको उसके साथ ही क़ब्ज़ भी हो जाता है और वे काम के योग्य नहीं रहते।

अन्न में शीघ्र पचने की योग्यता अधिकतर उस के छिलके या चोकर से ही होती है; चोकर जितना अधिक हो उतना ही पाचन-क्रिया के लिये लाभ दायक है। सब अन्नों में जई ही एक ऐसा अन्न है जिसमें चोकर सब से अधिक होता है अतः गेहूँ और देव—गंदुम की अपेक्षा जई घोड़ों के भोजन के लिये अति अनुकूल भोजन है।

यद्यपि जई का छिलका और चोकर, स्पष्ट रूप से बिना रूपान्तर के, घोड़ों की लीद में पाया जाता है तथापि यह नहीं मान लेना चाहिये कि घोड़ों की पाचन-शक्ति के लिये यह छिलके व्यर्थ का बोझ मात्र है; ऐसा विचार करना भारी भूल है। घोड़े

१—एक प्रकार का अन्न जो गेहूँ से घटिया होता है पर उसी प्रकार का होता है।

२—अर्थात् बिना चोकर के, अकेले देने से।

की शुद्ध पाचन-शक्ति के लिये यह बोझ[1] उतना ही आवश्यक है जितना अन्न के भीतर का गूदा। भोजन की कोई वस्तु ठीक-ठीक उसी रूप में जिसमें ईश्वर ने वह हमें दी है (या प्राकृति में पाई जाती है) सर्वदा पाचन-शक्ति के लिये बहुत ही उपयुक्त होती है।

मनुष्य के लिये भी यही सिद्धान्त लागू होता है। हमें सोचना चाहिये कि भोज्य-पदार्थ को हम किस स्वरूप में ग्रहण करते हैं। लोगों को प्रायः यह कहते सुना है "दालों को मैं नहीं पचा सकता हूँ, उनसे मेरे पेट में अधोवायु का संचार गड़बड़ होने लग जाता है।" परन्तु यह बात अधिकतर इस पर निर्भर है कि वे किस रीति से पकाई गई हैं। झोल (दाल का रसा) या घुटी हुई और पतली दशा में जैसा कि साधारणतः मनुष्य दालों को खाते हैं वे अवश्य कठिनता से पचने वाली हैं, फिर क्या आश्चर्य कि वे उदर में गड़बड़ करें। झोल के रूप में वे विशेष कर निषेध के योग्य हैं—क्योंकि झोल बिना चबाए ही आमाशय में जाता है, अतः पचने के वास्ते वह अनुकूल दशा में नहीं होता। इसके विरुद्ध यदि थोड़े ही जल में उदाहरणार्थ हम मटर को उबालें जिससे पक जाने के समय सब जल उसमें ही शुष्क हो जाय, और उसके दाने अपने प्राचीन और गोल रूप में दिखलाई देते रहें इन्हें, तो हम कठिनाई से उस परिमाण की एक तिहाई मात्रा खा सकेंगे जोकि हम उसी के झोलदार रूप में उसकी खा सकते। हम यह भी देखेंगे कि यद्यपि छिलके सहित यह बहुत थोड़ा खाया जाता है, परन्तु उदर में कुछ बेचैनी नहीं करता, और झोलदार (रसदार) की अपेक्षा यह अधिक बलदायक भी होता है।

इस समय मुझे एक उस मजदूर की दशा का स्मरण आता है जिसको आवश्यकता वश तीन सप्ताह तक प्रति दिन केवल मुट्ठी भर कच्ची[2] मटर के सिवाय और कुछ भोजन न मिला था। वह मनुष्य मुझसे प्रसन्नता पूर्वक अपने उस आपत्ति काल का वर्णन किया करता था, जब उसे अपने मुख में शुष्क मटर के दानों को घंटों तक गीला होने के लिये रखना पड़ता था; जिससे चबाने के वास्ते वे दाने काफ़ी तौर पर नरम हो जावें। इतना कम भोजन पाने पर भी वह कहा करता था कि उसका स्वास्थ्य उसको बहुत ठीक जान पड़ता था, और सच तो यों है कि वह अपने जीवन भर कभी ऐसा आरोग्य नहीं रहा। यह उदाहरण भोज्य-पदार्थ को उसके प्राकृतिक (असली) रूप

१—अर्थात् चोकर या भूसी।

२—हरी मटर नहीं वरन् सूखी बिना उबाली हुई।

में खाने से उसके सर्वोत्तम व बलकारी भोजन को सिद्धि करता है। इस उदाहरण से यह भी सिद्धि होता है कि भोजन के शक्तिदायक होने के विचार से भी सृष्टि का वह नियम जिसको हम सरलता से जान लेते हैं और जो सर्वत्र विद्यमान् है, प्रस्तुत पाया जाता है, वह यह है "छोटे से छोटे और साधारण से साधारण उपादान से अधिक से अधिक काम लिया जावे।"

मेरे इन व्याख्यानों के द्वारा प्रिय पाठकों को स्पष्ट हो गया होगा कि भोजन की अधिकता से हमें क्योंकर बचना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि मैं यह ठीक नहीं बतला सकता हूँ कि क्या पदार्थ और कितने परिमाण में प्रति मनुष्य या प्रति रोगी को भोजन की अधिकता से बचने के लिये खाना चाहिये। क्योंकि कठिनता से दो-चार रोगी ऐसे होंगे जिनकी पाचन-शक्ति सर्वथा समान हो। अतः भोजन का ठीक परिमाण या प्रकार सब के वास्ते नियत करना सहज काम नहीं। प्रत्येक मनुष्य को यह स्वयम् जान लेना चाहिये कि कौनसा पदार्थ उसके लिये अति अनुकूल है। अतः इतना ही पर्याप्त होगा कि भोजन के भिन्न पदार्थों के विषय में उनके पाचन की योग्यता का ही वर्णन किया जावे।

पाचन-क्रिया के विषय में प्राचीन वैद्य हमारा यथेष्ट पथप्रदर्शन नहीं कराते। अग्नि में न टूटने वाले शीशे व हलकी वस्तु को तौलने वाले कांटे (तराजू) व अन्य प्रकार के यन्त्रों की सहायता से जो बड़ी-बड़ी बातें रासायनिक विद्या में प्राप्त हुई हैं, वे सब इस नवीन स्वास्थ्यप्रद विद्या (न्यूसाइन्स आफ हीलिङ्ग) के वास्ते कुछ भी लाभदायक नहीं है।

पाचन-क्रिया शरीर के भीतर स्वयम् एक प्रकार से पकने अर्थात् सड़न (जोश) की क्रिया है। इसके द्वारा मनुष्य के शरीर के भीतर भोजन का स्वरूप, अपने जैसे भागों में जो एक दूसरे से भिन्न होते हैं परिवर्तित हो जाता है। उनमें से मनुष्य का शरीर उनको, जो उसके अनुकूल होते हैं अर्थात् शरीर को बनाने की योग्यता रखते हैं, स्वीकार कर लेता है। सब भोजन जिनके पाचन या सड़न की योग्यता को हम बनावटी रीति से बदल देते हैं, या पकाने के द्वारा, अथवा नमक वा मीठा मिला कर, इस योग्यता को दबा देते हैं, वे कठिनता से पचने योग्य हो जाते हैं, अर्थात् मनुष्य का शरीर बहुत कठिनाई से उनको शरीर का भाग बना सकता है। इसके पूर्व कि वे पदार्थ पचने के लिये फिर अनुकूल दशा[1] में आवें, इस रीति से उनके सड़ने की

१—अर्थात् उस दशा में जिसमें कि उनको शरीर अपना भाग बना लेवें।

योग्यता पर भिन्न प्रभाव पड़ जाने के कारण जितना चाहिये उससे अधिक समय की आवश्यकता पड़ती है। अभिप्राय यह है कि जैसी चाहिये वैसी दशा में पहुँचने के लिये उदर में अर्थात् पाचन स्थान में जितने समय तक ठहरना चाहिये उससे अधिक समय तक उसको ठहरना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि सड़ने की दशा साधारण से अधिक श्रेणी की उत्पन्न हो जाती है; इस दशा में भीतरी गर्मी अधिक उत्पन्न हो जाती है और अन्त में उससे अंतड़ियों के भीतर, मल में अधिक कड़ापन हो जाता है और उसका रंग भी अधिक काला हो जाता है।

सब लोग भली भाँति जानते हैं कि भोजन का पचना मनुष्य के मुख से ही आरम्भ हो जाता है। इसके पीछे भोजन उदर में जाता है जहाँ उसमें पचाने वाला उदर का रस मिल जाता है. और अपना पूर्ण प्रभाव उस पर डालता है। इस रीति से भोजन अपने प्राकृतिक भागों में अलग होने या सड़ने की दशा में पहुँचता है, और ऐसा होने से उसमें अत्यन्त परिवर्तन हो जाता है। अंतड़ियों में सड़ने की क्रिया और भी अधिक हो जाती है और इस सड़ते हुए भोजन में लबलबे[1] का रस और पाचन-क्रिया में सहायता देने वाले अनेक रस मिल जाते हैं।

मनुष्य के शरीर के वास्ते भोजन का जो भाग निष्फल होता है वह फिर अंतड़ियों, मूत्राशय (गुर्दों) व त्वचा के द्वारा निकल जाता है। कभी-कभी देखा जाता है कि जीव व पशु थोड़े समय में ऐसे अयोग्य पदार्थ को जैसे अस्थि (हड्डी), पत्थर के टुकड़ों, और खड़िया मिट्टी के टुकड़ों को पूर्ण रीति से पचा लेते हैं (ये पदार्थ मुर्गी के पेट में बराबर पाले जाते हैं); ऐसे जीवों की बीट अर्थात् मल की यदि परीक्षा की जाय तो पत्थर या हड्डियों के टुकड़े कदापि नहीं मिलेंगे। इसके विरुद्ध मनुष्यों में यह पाया जाता है कि पाचन-स्थान (नाली) में बहुधा भोजन सप्ताह भर तक रहता है, इससे एक असाधारण दशा सड़ने की उत्पन्न होती है; इस सड़न के कारण जो वायु (अर्थात् हवाएँ Gases) उत्पन्न होती हैं और जिनका शरीर के बनाने से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है—वह त्वचा तक पहुँचती हैं और पसीने या वाष्प[2]

१—उदर की तली में एक गिल्टी होती है उसका नाम है, इस गिल्टी से रस निकल कर भोजन में सम्मिलित होकर पचाने में सहायता देता है।

२—जैसे पसीना तो प्रतीत होता है और वाष्प शरीर से निकलते हुये दिखलाई नहीं देती, परन्तु त्वचा से छिद्रों के द्वारा वायु रूप में वे निकलते रहते हैं, इसी कारण यह अति आवश्यक है कि फ्रिक्शन सिट्ज़बाथ लेने के समय मनुष्य सर्वथा नंगा होकर बैठे, यदि सर्द ऋतु है तो कमरे को गर्म रक्खे। इसका अधिक विवरण स्नानों के अध्याय में आ चुका है।

के रूप में, और दूसरी ओर गुदा द्वारा दुर्गन्धित वायु के रूप में बाहर निकलती हैं। इस अधोवायु को कदापि न रोकना चाहिये, क्योंकि शरीर के लिये यह अत्यन्त हानिकारक हैं।

मल, जब थोड़े भूरे रंग का, नर्म और बंधा हुआ हो, और उस पर लसदार एक तह पाई जावे जिससे कि शरीर के भीतर के भिन्न रसों का लेसदार होना प्रतीत होता है, तो जानना चाहिये कि पाचन की दशा ठीक है। मल लंगोचे के रूप का होना चाहिये, और ऐसा होना चाहिये कि निकलते समय शरीर को कुछ भी न लगे। यह बात सब आरोग्य जीवों और स्वस्थ मनुष्यों में भी पाई जाती है। मनुष्य के शरीर में मल निकलने के मार्ग का किनारा ऐसे रूप का बना हुआ है कि यदि पाचन-क्रिया में कोई विकार न हो तो मल, शरीर के किसी भी भाग को बिना मैला किये या बिना लगे ही निकल सकता है। शौच-कर्म में जो काग़ज़ बर्ता जाता है वह रोगी मनुष्यों का आवश्यक सामान है. जैसा पहले बताया जा चुका है; गांव के नीरोग मनुष्य इस काग़ज़ को काम में नहीं लाते हैं। इसके अतिरिक्त मल में कोई गंध जो बुरी, असह्यव हानिकारक हो न निकलनी चाहिये। यदि ऐसी गन्ध निकले तो जानना चाहिये कि पाचन के ख़मीर में कोई असाधारण दशा उत्पन्न हो गई है। इससे अंतड़ियों में शुष्कपना व मलरोध (क़ब्ज़) उत्पन्न होता है। शुष्क आँतों में मल के टुकड़े जम जाते हैं जो अपने स्थान से फिर हटाये नहीं जा सकते; फिर भी शरीर की भीतरी सड़न की क्रिया यथावत् प्रचलित रहती है और उससे मल के कड़े टुकड़ों के रूप बदल जाते हैं, अधोवायु की उत्पत्ति अधिकता से होती है—यहां तक कि वायु समस्त शरीर में फैल जाती है। पाचन की इस दशा से जो भीतर का तनाव व दबाव उत्पन्न होता है वह शरीर के आख़िरी सिरे व त्वचा की ओर को होता है। अब यदि पूर्वोक्त त्वचा अपना काम नहीं कर सकती तो वायु रूप विजातीय द्रव्य को बाहर निकलने का मार्ग नहीं मिलता और वह त्वचा के नीचे बारम्बार इकट्ठा होता रहता है। तब त्वचा अपने काम में और भी सुस्त हो जाती है और उसकी गर्मी सामान्य गर्मी से कम हो जाती है। उसके सहायक (लोहू पहुँचाने वाली महीन रगें) विजातीय द्रव्य से ऐसी भर जाती हैं कि स्वच्छ लोहू, जिस के बिना त्वचा में गर्मी आही नहीं सकती, अब शरीर के बाहरी भाग तक संचालन नहीं कर सकता, अतः शरीर की बाहरी गर्मी कम हो जाती है और त्वचा का रंग आबी, पीत, कालासा, या हरा सा, अर्थात् ऐसा रङ्ग जैसा क्लोरोसिस के रोग में एक न एक प्रकार का हुआ करता

है, हो जाता है। त्वचा का रङ्ग सामान्यतः पीत (पीला) अर्थात् मृतक का सा हो जाता है (देखो व्याख्या क्लोरोसिस के रोग की—इस पुस्तक के द्वितीय भाग में), परन्तु रुधिर विजातीय द्रव्य के गुणों के कारण त्वचा का वास्तविक रङ्ग भिन्न हुआ करता है। यदि लोहू में मूत्र अधिक सम्मिलित हो तो त्वचा का रंग रक्त (लाल) होता है, और दशाओं में उसका रंग पीत, मटियाला तथा हरियाला होता है। भीतर की गर्मी की अपेक्षा बाहर की सर्दी (कम गर्मी) वायु रूप विजातीय द्रव्य को और भी दृढ़ कर देती है; बाहर की कम गर्मी और भीतर के दबाव की मिश्रित क्रिया से दब कर वह विजातीय द्रव्य शरीर के स्थल में भर जाता है। इस प्रकार शरीर के रूप में शनैः-शनैः परिवर्तन होता जाता है उसको हम विजातीय द्रव्य का भार कहते हैं; इस बोझ की न्यूनाधिकता मेरे "नवीन निदान कीं रीति" अर्थात् मुखाकृति विज्ञान से जानी जा सकती है। इसी रीति से शिर से सम्बन्ध रखने वाले सब रोग जैसे कान, आँख, व मस्तिष्क के रोग और मस्तिष्क की दुर्बलता (दिमाग़ी कमज़ोरी) व शिर-दर्द इत्यादि उत्पन्न होते हैं। इस अटल नियम को पहिचान लेने पर चिकित्सा सम्बन्धी हमारा भ्रम तुरन्त मिट जाता है और साथ ही हमें यह ज्ञान भी हो जाता है कि उन लोगों के कथन सर्वथा मिथ्या हैं जो रोग को केवल उसकी स्थानिक चिकित्सा करके आराम करना चाहते हैं।

आजकल सर्व साधारण में शुद्ध पाचन-शक्ति के विषय में कैसी-कैसी भ्रम पूर्ण बातें फैली हैं यथा, कुछ मनुष्यों को हम यह कहते हुए सुनते हैं कि "मेरी पाचन-शक्ति बहुत अच्छी है। मैं इतने मांस का भोजन कर सकता हूँ, इतने गिलास मदिरा के पान कर सकता हूँ; फिर भी मेरी पाचन-शक्ति में कोई अन्तर नहीं जान पड़ता। मेरे उदर में प्रत्येक वस्तु अनुकूल है और मेरी भूख निहायत अच्छी है।" यह सच भी मानले तो भी ऐसे स्वभाव उतने ही हानिकारक हैं जैसे १० चुरट का प्रति दिन पीना। तम्बाकू मनुष्य के शरीर के वास्ते एक प्रकार का विष है, और सदा विष ही रहेगा; और जिस शरीर को इस तम्बाकू के विष (निकोटीन) के निकालने के उद्योग में लगा रहना पड़ता है वह शरीर अवश्य—जैसा कि सृष्टि का नियम है—इस कारण से कष्ट या हानि उठाएगा। यही दशा खाने-पीने की भी है। जो उदर सर्वथा स्वस्थ है वह अपने भीतर प्रतिकूल भोजन रखना कभी स्वीकार न करेगा। खट्टी डकार, छाती की जलन, और बेचैनी के हो जाने से उदर तुरन्त इस बात को प्रकट करता है कि उससे आवश्यकता से अधिक काम लिया गया है। यदि उदर शक्ति-हीन हो तो प्रगट रूप से सब भोजनों को स्वीकार कर लेता है, मानो उसमें प्रतिकूल और आवश्यकता

से अधिक भोजन के रोकने की शक्ति ही नहीं है। या यूँ कहिये कि उदर की स्वाभाविक क्रिया अथवा गुण जाता रहा है, बिना पूर्ण रीति से पचा भोजन शरीर से बाहर निकल जाता है और इससे उसको कुछ भी लाभ प्राप्त नहीं होता।

यह कहना अनुचित न होगा कि भिन्न-भिन्न भोज्य पदार्थों में शरीर का बल पहुँचाने की योग्यता का परिमाण केवल उदर की पाचन-शक्ति पर ही निर्भर है, मुख्यत: शरीर की उस योग्यता पर जो उसमें भोजन को अपना (शरीर का) भाग बनाने की होती है। भोजनों में बल प्रदायक भाग[1] प्रत्येक सैकड़े पीछे होने की अपेक्षा यह एक दूसरी ही बात है। बिना छने हुए आटे की रोटी (ग्रेहमब्रेड)[2], ताजा फल, हरे साग, और अन्न से बनाए हुए पानी में पके हुए-बिना चिकनाई, मीठा, व नमक मिलाये हुए भोजन (जैसा कि सब जानते हैं) यह सब उत्तम से उत्तम अंग्रेजी मदिरा व बहुमूल्य मांस और अण्डे व पनीर की अपेक्षा, अपने में अधिक योग्यता शरीर में मिल जाने की रखते हैं। इसमें संदेह नहीं कि पिछले कथन किये हुए खान-पान के पदार्थों में भी रासायनिक परीक्षा के अनुसार मनुष्य के शरीर में मिलने के भाग पाये जाते हैं, परन्तु यह कोई प्रमाण इस बात का नहीं है कि यह पदार्थ हमारे लिये सब से उत्तम बलकारी भोजन प्राप्त करेंगे।

मनुष्य का शरीर प्राय: साधारण भोजनों से ही जैसे अन्न से वह सब भाग जो रासायनिक विद्या के अनुसार शरीर के बनाने के लिये अत्यन्त आवश्यक है निकाल सकता है। अन्न इस दशा में, जैसे बिना छने आटे की रोटी में होता है, यदि अच्छे प्रकार से चबाया जावे और मुख का रस अच्छे प्रकार से उसमें मिलाया जावे तो पेट में जाते ही खट्टा हो जाता है। पाचन-क्रिया से अन्न में से वह भाग जो शरीर के वास्ते आवश्यक और पोषण करने वाले हैं—जैसे मदिरा व मिठाई इत्यादि उत्पन्न हो जाते हैं। इन पदार्थों को शरीर शीघ्र ही अपने में मिला लेता है, क्योंकि शरीर ने इनको बनाया है। अन्न के वह भाग जो शरीर में नहीं मिल सकते, शरीर से फिर एक विशेष नियत रूप व नियत रङ्ग के होकर बाहर निकल जाते हैं।

१—भोजन में विद्वानों ने बल प्रदायक भाग का होना भिन्न-भिन्न रीति से कल्पित किया है, अर्थात् एक अन्न में बल प्रदायक भाग पूर्ण है अर्थात् सौ (१००) में सौ (१००) है, तो उसकी गणना से भिन्न-भिन्न अन्नों में कम है। इसी प्रकार प्रत्येक अन्न में बल प्रदायक भाग का अनुमान सैकड़े पीछे कर लिया जाता है, अर्थात् सौ (१००) को पूरा मान कर शेष की उसी से तुलना करके भोजन का परिमाण नियत करना चाहिये।

२—Graham bread एक प्रकार की रोटी है।

यद्यपि कुछ लोग मेरी कथन की हुई युक्तियों और प्रमाणों को सुनकर सन्देह करेंगे। परन्तु नित्य बढ़ने वाले रोगों का समूह (लश्कर) औषधि-विद्या की उन्नति का कोई अच्छा परिचय नहीं देता है। प्राचीन औषधि-विद्या-द्वारा चिकित्सा विधि के फल वा परिणामों के जांचने व नापने का यंत्र विवेक है। औषधि द्वारा चिकित्सा करने वालों की अशुद्ध शिक्षाओं से न जाने कितने लोगों ने अपने आप को भूल में पड़ने दिया है। न जाने कितने मनुष्यों ने सृष्टि के नियमों की अवहेलना करने में अपनी बुद्धिमानी का भान किया है। परन्तु प्रत्येक भूल बीमारी या रोगीपन के रूप में अपना दण्ड अपने साथ ही लाती है।

इस स्थान पर मैं अपने उस पत्र का कुछ भाग छापने के लोभ को संवरण नहीं कर सकता, जो मेरे पास एक दूर देश अर्थात् होनोलूलू के एक बड़े उत्साही पादरी साहिब ने भेजा था। उक्त महाशय ने लिखा है कि उस स्थान के प्राचीन निवासी, यूरोपियनों के वहाँ आने से पहिले पोई पर (होनो लूलू का जातीय भोजन जिसमें तारू की जड़ पानी के साथ फेट कर लेई सी बनाई जाती है और जो अति ही बलप्रदायक भोजन है) केले व अन्य मेवे खाकर जीवन व्यतीत करते थे। स्वच्छ जल ही उनके पान करने की वस्तु थी। इस प्रकार केवल स्वाभाविक भोजन पर ही वे अपना जीवन व्यतीत करते थे, उनकी देह देव के समान पुष्ट होती थी, और उनमें अत्युत्तम बल व आरोग्यता पाई जाती थी। जब से गोरे वर्ण के लोग वहां पधारे, और उन्होंने वहां वालों को यह सिखलाया कि केवल मांस से ही शक्ति प्राप्त हो सकती है, और केवल मदिरा से ही, विशेष कर 'जिन'[1] से, बल उत्पन्न होता है। यह दशा बहुत काल तक नहीं रही। वहाँ बाहर से पशु लाये गये, और मदिरा का प्रभाव सब देश में फैला दिया गया। हवाई स्थान के इतिहास में उस हाकिम का नाम भी लिखा है जिसने १ मई सन् १८१६ ई० को प्रगट रूप से अपने रहने का ढंग बदला। शूकर का शुष्क मांस अब जातीय भोजन हो गया है और 'जिन मदिरा' जातीय पान करने की वस्तु हो गई है? परन्तु उसके फल क्या हुए। यहां के रहने वाले (अर्थात् कनक) बहुधा फोड़े फुंसी आदि त्वचा के रोगों में अथवा दमे (स्वाँस) में फंसे रहते हैं, और सर्व साधारण में जननेन्द्रिय सम्बन्धी

१—एक प्रकार की मदिरा है।

अनेक रोग पाये जाते हैं; और कुष्ट की वृद्धि है जो वहां के रहने वालों में से बहुतों को अपना शिकार बनाता है। इससे हमको यह सिद्ध होता है कि इस स्थान के निवासी खान-पान की नवीन-रीति के कारण (जिसको कि उन लोगों में हमारी सभ्यता ने जिसकी बड़ी प्रशंसा की जाती है फैलाया) शीघ्र ही रोगों में फंस गये। इस घटना से यह भी सिद्धि होता है कि भोजन के विषय में भी औषधि द्वारा चिकित्सा करने वालों के बताए हुए नियम सर्वथा अशुद्ध हैं। इस दशा में सृष्टि के नियमानुसार इस देश का गर्म जल-वायु (या ग्रीष्म ऋतु) ने इस रोग के फैलाने में बड़ी[1] सहायता दी थी, और जिस रोग का प्रगट होना ऐसे शीत देश के जलवायु में जैसे कि हमारे (यूरोप) देश की है अधिक विलम्ब से होता।

अब उन सिद्धान्तों पर विचार करना चाहिये जिन पर कुदरती गिज़ा अर्थात् सृष्टि के अनुकूल भोजन की नीव रक्खी गई है। यह सिद्धान्त मिस्टर इ० हेरिंग Mr. E. Hering साहिब ने अपने व्याख्यान में अति उत्तम रीति से वर्णन किये हैं उनका हम यहां उल्लेख करते हैं।

हम लोग अपने शरीर के भीतर दो अवयवों (इन्द्रियों) के द्वारा आहार को जाने देते हैं, अर्थात् फेफड़े और उदर[2]। इन दोनों में से प्रत्येक अवयव के वास्ते एक-एक द्वारपाल शरीर में स्थित है अर्थात् फेफड़ों के वास्ते नाक (नासिका) और उदर के वास्ते रसना (जिह्वा)। अनुभव से प्रतीत होता है कि हमारे दुर्भाग्यवश इन दोनों द्वारपालों में से कोई इतना समर्थ नहीं है कि जिसको बिगाड़ा न जा सके। इसमें कुछ संदेह नहीं कि पर्वत की शुद्ध (ताज़ा) वायु हमारे फेफड़ों का सब से उत्तम आहार है, और ऐसी वायु में सांस लेने से हमारी घ्रणेन्द्रिय पूर्ण रीति से संतुष्ट हो जाती है। जो मनुष्य सदा इस स्वच्छ वायु में रहा हो वह धूम्र भरे कमरे में घण्टों तक रहना अपने वश से बाहर पाता है, क्योंकि उसकी घ्राणशक्ति प्रति स्वांस में उसको ऐसा करने से रोकती है। परन्तु यदि वह बार-बार ऐसे स्थानों में जाता रहे तो रोकने वाली यह शक्ति शनैः-शनैः निर्बल हो जाती है, यहां तक कि इसकी आवाज़ मौन हो जाती है। सत्य तो यह है कि घ्राण-शक्ति को अन्त में बुरी वायु में

१—अभिप्राय है कुष्ट से।

२—वस्तुओं का द्रवरूप में टीका लग कर शरीर में पहुँचना सृष्टि विरुद्ध है और इसका फल सदा बुरा होता है।

ऐसी बान पड़ जाती है कि वही उसको उत्तम प्रतीव होने लगती है। निदान प्राण शक्ति बिगड़ गई और अब उसके शुद्ध करने के लिये बहुत समय की आवश्यकता होगी।

परन्तु चूंकि प्रति मिनट[1] में १६ से २० वार तक स्वांस लिया जाता है इस कारण शरीर में विजातीय द्रव्य के सीधे मार्ग से मिलने के बुरे फल शीघ्र ही प्रगट हो जाते हैं। यही कारण है कि हमारी बुद्धि तुरन्त मार्ग दर्शक (नियता) बन जाती है। जब हमारी प्राण-शक्ति हमारा साथ छोड़ देती है।

जिह्वा की दशा इससे भी बुरी है क्योंकि जिह्वा दुर्भाग्य वश बचपन से ही बिगड़ जाती है, अतः वह पूर्ण विश्वास के योग्य नहीं समझी जा सकती। वास्तव में यह बात प्रसिद्ध है कि हमारे आचरणों के अनुसार किस प्रकार से हमारी रसनेन्द्रिय में परिवर्तन हो सकता है, तो भी यह आवश्यक बात है कि हमारा शरीर शुद्ध व अनुकूल भोजन प्राप्त करे, क्योंकि सभी प्रतिकूल भोजनों में शरीर के हानिकारक भाग मिले रहते हैं और इसी कारण—जैसा कि हम पहिले दिखा चुके हैं। वे रोग उत्पन्न करते हैं।

अब हमको इस प्रश्न पर विचार करना चाहिये—"कौन सा भोजन प्राकृतिक व स्वाभाविक भोजन है?" चूंकि स्वाद व जिह्वा पर अब पूर्ण भरोसा नहीं कर सकते, अतः इस प्रश्न का उत्तर बड़ी सावधानी से देख भाल कर और उनके परिणाम निकाल कर दूसरे मार्ग से प्राप्त करने का उद्योग करना चाहिये।

इस सब विवाद पर विचार करने से ज्ञात होता है कि यह प्रश्न केवल साइन्स (प्राकृतिक विज्ञान शास्त्र) से ही सम्बन्ध रखता है। इस सब कठिनाई को सुलझाने के वास्ते वही एक मार्ग जो साइन्स में माना गया है अर्थात् जांच व परीक्षा का मार्ग, अर्थात् व्याप्य या व्यक्त से सर्वव्यापी या सार्वलौकिक अनुमान करने की रीति (इन्डक्टिव या आगमन) स्वीकार करनी चाहिए और भिन्न-भिन्न विशेष घटनाओं से सार्वलौकिक परिणाम निकालने चाहिये।

इस परीक्षा के हम तीन भाग करते हैं अर्थात् हमको उचित है कि—

(१) प्रत्यक्ष अनुभवों को इकट्ठा करें।

१—२॥ ढाई पलका एक मिनट होता है, इस गणना से १ पल में ६ से ८ बार तक स्वाँस लिया जाता है।

(२) उनसे परिणाम निकालें।

(३) उनकी जांच व परीक्षा करें।

अनुभवी परीक्षा का क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण है; अतः यह सम्भव नहीं कि कोई मनुष्य इसके प्रत्येक भाग से पूर्ण विज्ञ हो सके। अतः कई एक यात्रा (भ्रमण करके देखने) पर ही हमको उसी प्रकार सन्तोष करना पड़ा है, जैसे कोई मनुष्य किसी देश के फूलों के गुण जानने के लिये यात्रा किया करता है।

भोजन के विषय में साइन्स के अनुकूल अन्वेषण करने का मैदान (क्षेत्र) जिस पर हमको जाना है इतना बड़ा है कि आरम्भ से ही हमें चाहिए कि अपने विचारों को निकटवर्ती सीमा के भीतर ही रक्खें। क्योंकि यदि इस विवाद को पूर्ण विस्तार दिया जावे तो यह आवश्यक होगा कि प्रत्येक प्रकार के देहधारी जीवों के खान-पान या भोजन का अन्वेषण करें। परन्तु हमारे लिए इतना ही पर्याप्त होगा कि हम लगातार क्रमानुसार परीक्षाओं की नीव स्थित करने और परिणाम निकालने के अभिप्राय से जीवों (पशुओं) में से श्रेष्ठ उच्च श्रेणी पर ही ध्यान दें, अर्थात् उन जीवों पर जो मनुष्य से अधिक समानता रखते हैं। परन्तु निष्प्रयोजन लेख या उसके विस्तार को रोक लेने के लिये मैं यह मान लेता हूँ कि आप लोग उन सब बातों से परिचित हैं जिनसे कि सर्वसाधारण सहमत हैं; और जो स्पष्ट होने के कारण प्रत्यक्ष प्रमाण की आवश्यकता नहीं रखते, वरन् प्रकट हैं और जिनके सिद्ध होने में किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है।

सृष्टि (नेचर) में जीवन पर एक दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि जीवों को खान-पान की आवश्यकता इस कारण से है कि देह के भागों की परिवर्तन क्रिया को वे संचालित रख सकें, निस्सन्देह वे भोजन के चुनाव में परिमित व बद्ध अवश्य हैं। समुद्र के किनारे के क्षार क्षेत्र में जो वृक्ष खूब फलता-फूलता है, वह शुष्क पृथ्वी पर (भूमि के भीतर के क्षेत्र में) जाकर मुर्झा कर मर जाता है; और दूसरा वृक्ष जो शुष्क रेतीले स्थल में हरा रहता है वह बग़ीचे में जाकर सूख जाता है। इसी प्रकार कमाई हुई ज़मीन में लगाए हुए वृक्ष जिनको अधिक खाद व तरी वाली पृथ्वी में रहने की टेव पड़ गयी है, रेतीले स्थल में स्थिर नहीं रह सकते।

सर्वथा यही बात सब जीवों में पाई जाती है, और ये बातें इतनी स्पष्टता से उनमें व्याप्त हैं कि उनके खान पान के अनुसार हम उनका विभाजन सरलता से

भिन्न-भिन्न श्रेणियों से कर सकते हैं। जीवधारियों के भोजन के विचार से दो भेद किये जाते हैं (१) मांस भोजी (२) शाक भोजी, यह तो सब को ज्ञात ही है। परन्तु ये विभाग साधारण हैं। इस विषय पर अधिक ध्यान देने व विचार करने से ज्ञात होता है कि कीड़े खानेवाले जीवों को, विशेष कर मांस खाने वाले जीवों से, पृथक रखना चाहिये, और बनस्पति खाने वालों के विभाग साग व घास इत्यादि खाने वालों, और फल व मेवा खाने वालों के विचार से हो सकते हैं। इस के अतिरिक्त कुछ थोड़े से ऐसे भी हैं जो दोनों प्रकार के भोजन करते हैं (सर्वभक्षी)। हमारा दार्शनिक अन्वेषण प्रत्येक प्रकार के जीवों के उन अवयवों में होना चाहिये जो भोजन का रस लेने में शरीर की सहायता करते हैं। ये अवयव हमको भोजन का ऐसा शुद्ध पता बताते हैं कि किसी जीव की हड्डियों (अस्थियों) के ढांचे (कङ्काल) से भी हम यह अनुमान कर सकते हैं कि वह जीव किस प्रकार[1] का है? हम अपना ध्यान विशेष कर दांतों की ओर, आमाशय की ओर, उन इन्द्रियों की ओर जो जीव को उसके भोजन तक पहुँचाती हैं (या भोजन का पता बताती हैं) और उस रीति की ओर जिस में जीवधारी अपने बच्चों का पोषण करते हैं ले जावेंगे। अतः इस मैदान में, जो हमने अपने अन्वेषण के लिये नियत किया है, चार वार यात्रा करना हम निर्धारित करते हैं।

आपको विदित है कि दांत तीन प्रकार के होते हैं, अर्थात् कुतरने या काटने के दांत (Incdisors इनसाइज़र्स) कुत्ते के दांत अर्थात् कीले (केनाइन Canine), डाढ़ अर्थात् पीसने वाले दांत (मोलर्ज़ Molars) मांसाहारी जीवों में कुतरने व काटने के दांत कम बढ़ते हैं, और बहुत ही कम काम आते हैं, और उनके कीले (नेस) इतने लम्बे होते हैं कि आश्चर्य होता है। यह दांत शेष दांतों से बहुत आगे तक निकले हुए होते हैं, और उनके सामने की श्रेणी में उनके ठीक बैठने के वास्ते स्थान रहता है। यह दांत नोकदार, चिकने और कुछ-कुछ टेढ़े होते हैं। वे किसी प्रकार से चबाने के अर्थ के नहीं होते हैं परन्तु शिकार को पकड़ने व थामने के वास्ते अनुकूल हैं। भयानक मांसाहारी जीवों में इन दांतों को फेंग्स (Fangs) बड़े दांत कहते हैं, और उनसे यह स्पष्ट होता है कि यह दांत बड़े होने के कारण प्रयोग में

१—अर्थात् मांसाहारी है या बनस्पति खाने वाला है; कीड़े खानेवाला या फल खाने वाला है।

कैसे आते हैं। मांस को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटने के लिये पीछे के दांत काम में आते हैं जिनका धरातल (ऊपरी भाग) नोकीला कांटेदार होता है। इन कांटों की नोक से नोक नहीं मिलती, पर एक कांटा दूसरे के पास बराबर बैठ जाता है। फल यह है कि चबाने की क्रिया में वह मांस के पट्ठों के रेशों को सर्वथा अलग-अलग कर देते हैं। जबड़े लीजिये इधर-उधर हिलाने से ऐसी दशा में अवरोध होता है, और चबाने या पीसने की क्रिया मांसाहारी जीवों में सम्भव भी नहीं है। अतः स्पष्ट है कि इस प्रकार के जीव (पशु) अपने आहार को दांतों से पीस नहीं सकते, जैसे यह देखने में आया है कि कुत्तों को रोटी के टुकड़ों का भली भांति चबाना कितना कठिन है, परिणाम यह है कि वह अन्त में सामान्यतः बिना चबाए आहर को निगल जाते हैं।

शाकाहारी जीवों में कुतरने या काटने वाले दांत अधिक बड़े होते हैं और घास और शाक के कुतरने का काम देते हैं। इनमें कीले (नेस) प्रायः छोटे होते हैं यद्यपि उनको हम कभी-कभी इतना बढ़ा हुआ पाते हैं कि वह अपनी रक्षा करने के अस्त्र के समान काम देते हैं जैसे हाथी के दांतों का हाल है। डाढ़ अर्थात् पीसने वाले दांत, ऊपर (बाहर) के सिरे पर चौड़े होते हैं और केवल उनके दोनों ओर चमकीला रोग़न सा लिपटा हुआ होता है। वे शाक-पात के आहार को चबाने अर्थात् कुचलने और पीसने के लिये अति अनुकूल हैं।

पशुओं में फलाहारी अधिक नहीं हैं। हमारे जांच व खोज के वास्ते वे बन्दर जो मनुष्य के सदृश होते हैं अति आवश्यक हैं। फलाहारी जीवों में हीं दांतों को हम अति सामान्य रूप में बढ़ा हुआ पाते हैं। उनके सब दांत समान लंबाई के होते हैं, केवल केनाइन दांत अर्थात् कीले और दांतों से किञ्चित् अधिक निकले हुए होते हैं। यद्यापि ये इतने निकले हुए नहीं होते कि वे मांसाहारी जीवों के दांतों के समान कार्य्य कर सकें। यह दांत गावदुम (शंकु के रूप के) परन्तु सिरे पर गुट्ठल होते हैं, और चिकने (हमवार) नहीं होते। अतः वे शिकार पकड़ने का काम नहीं दे सकते। प्रत्येक मनुष्य देख सकता है कि वे अति पुष्ट (दृढ़) होते हैं। हम जानते हैं कि वे बन्दर जो मनुष्य के सदृश होते हैं। अपने दांतों से आश्चर्य्यजनक क्रियाएँ कर सकते हैं। इनके मोलर[1] दांतों के सिरों पर चमकदार

१—जिनका बहुवचन अंग्रेज़ी में मोलज़् है, वे दांत हैं जोकि कुचलने व पीसने का काम देते हैं अर्थात् डाढ़।

चिकनाई के कई पर्त होते हैं। उनका नीचे का जबड़ा इधर-उधर बहुत चल सकता है, उनके दांतों का काम चक्की के पाटों के काम से मिलता है। यह बात कि कोई भी मोलर दांत नोकीला नहीं होता है एक विशेष अभिप्राय को जतलाती है क्योंकि हम इस से जानते हैं कि मांस को चबाने के लिये कोई भी दांत इन पशुओं में नहीं है। यह बात और भी विचार के योग्य है क्योंकि वे पशु जो सब पदार्थ (वस्तुएं) खाते हैं (जिस श्रेणी में केवल रीछ ही ठीक है) दोनों प्रकार के अर्थात् नोकीले और चपटे सिर वाले मोलर दांत रखते हैं। निस्सन्देह रीछों के भी मांसाहारी पशुओं के सदृश (कोनाइन) दांत या कीले (नेस) होते हैं जिनके बिना वे शिकार को पकड़ नहीं सकते, परन्तु इस के विरुद्ध रीछों में इनसाइजर्व्र (कुतरने वा काटने वाले दाँत भी फलाहारी जीवों के) सदृश होते हैं।

अब प्रश्न यह है कि मनुष्य के दांत इन सब प्रकारों में से किस प्रकार के जीवों के दांतों के साथ समानता रखते हैं? इस में सन्देह नहीं कि मनुष्य के दांत प्रायः फलाहारी जीवों के सदृश बने हैं। मनुष्य के नाइन के दांत अर्थात् कीले (नेस) इतने लम्बे नहीं हो जाते जितने कि फलाहारी जीवों के, और अन्य दांतों से आगे कम बढ़ते हैं या किञ्चित् नहीं बढ़ते, परन्तु यह अन्तर अनावश्यक है। केवल केनाइन दांतों की स्थिति से यह परिणाम निकाला गया है कि मनुष्य का शरीर भी मांस का[1] भोजन खाने के वास्ते बनाया गया है। मनुष्य के केनाइन दांत यदि वही काम दे सकें जो मांसाहारी के केनाइन दांत दे सकते हैं—और यदि रीछों के सदृश हमारे मुख में कम से कम थोड़े से पीछे के दांत मांस काटने के वास्ते होते तब तो ऐसा परिणाम निकलना ठीक भी होता।

उपरोक्त परीक्षाओं से जो परिणाम हम निकालते हैं वे निम्न-लिखित हैं।

(१) मनुष्य के दांत मांसाहारी जीवों से नहीं मिलते, अतः मनुष्य मांसाहारी नहीं है।

(२) मनुष्य के दांत शाक या घास खाने वाले पशुओं से नहीं मिलते, अतः वह घास या शाक खाने वाला जीव नहीं है।

(३) मनुष्य के दांत उन जीवों के दांतों के समान नहीं हैं जो सर्व प्रकार के (मांस, मेवा, फल, व शाक-पात) भोजन खा कर रहते हैं अतः मनुष्य सर्व प्रकार का भोजन खाने वाला (सर्व भक्षी) जीव नहीं है।

१—यह न्याय या हेतु मांस के पक्षपाती बहुधा दिया करते हैं।

(४) मनुष्य के दांत फल खाने वाले उन बन्दरों के दांतों से लगभग ठीक मिलते हैं, जो बन्दर मनुष्य के सदृश हैं अतः यह अधिक सम्भव है कि मनुष्य फल भक्षी जीव है।

उपरोक्त सिद्धान्त को दूसरे रूप में लोग इस प्रकार मिथ्या सिद्ध करते हैं कि 'दांतों की जांच से मनुष्य न मांसाहारी और न शाकाहारी जीव है, पर इन दोनों के बीच की दशा में है, अतः यह दोनों प्रकार का पशु है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह निर्णय तर्क शास्त्र से सर्वथा अशुद्ध है। मध्य दशा का विचार ऐसा साधारण और स्थिर है कि इसका उपयोग वहाँ नहीं हो सकता जहां साइन्स के अनुकूल प्रमाण की आवश्कता है। केवल गणित विद्या में ही मध्य दशा ठीक समझ में आती है।

अब हम को अपनी दूसरी यात्रा, अन्वेपण (खोज-तलाश) के प्रफुल्लित क्षेत्र में करने दीजिये, और पशुओं के आमाशय की ओर हम को अपना ध्यान फेरने दीजिये। मांसाहारी (शिकारी व भयानक) पशुओं में पेट छोटा और प्रायः गोल होता है और आंतें शरीर (देह) की लम्बाई से तिगुनी से पंचगुनी तक अधिक लम्बी होती हैं। इस में देह की लम्बाई शिर से पूंछ की जड़ तक नापनी चाहिये। शाक-पात खाने वाले पशुओं विशेष कर जुगाली करने वालों का पेट बड़ा और विधि पूर्वक बना हुआ है—और देह की लम्बाई से २० गुनी से २८ गुनी अधिक तक उनकी आंतें लम्बी होती हैं। फल खाने वाले पशुओं का पेट मांसाहारी जीवों के पेट से कुछ अधिक चौड़ा होती है और उनके पेट का सम्बन्ध छोटी आंत से होता है जिसको दूसरा पेट कहते हैं। फल खाने वाले पशुओं की आंतें देह की लम्बाई से १० गुनी से १२ गुनी तक अधिक लम्बी होती हैं। एनाटोमी (Anatomy)[१] की पुस्तकों में यह बहुधा कथन किया गया है कि आँतों वाली[२] नाली मनुष्य की देह की लम्बाई से तिगुनी से पंचगुनी तक अधिक लम्बी होती हैं, अतएव मांस-भोजन मनुष्य के लिये सानुकूल है। ऐसा कहना मानो सृष्टि अर्थात् नेचर को स्वयं विरोधी (अर्थात् अपने नियमों या सिद्धान्तों को स्वयं उल्लंघन करने वाली) ठहराना

१—देह की चीर-फाड़ की विद्या को कहते हैं।

२—क्योंकि आंतों में होकर भोजन आता है इस कारण से उसको एक नाली से उपमा दी गई है।

है, क्योंकि दाँतों के विचार से सृष्टि ने, मनुष्य को साधारण लोगों के कथनानुसार, सर्व पदार्थ (मांस, फल व शाक इत्यादि) भक्षी जीव बनाया और आंतों के विचार से मांसाहारी जीव बनाया। परन्तु यह विपरीतता अति स्पष्ट है। इस उपरोक्त परीक्षा[1] में मनुष्य की देह की लम्बाई शिर की चोटी से पाँव के तलुवे तक नापी गई है; यद्यपि अन्य दशा में परीक्षा करने के लिये केवल मुख से रीढ़ की हड्डी की अन्तिम सीमा तक ही नाप लेना चहिये। अतः जो परिणाम निकाला गया है वह अशुद्ध है। मनुष्य की आँतों की लम्बाई १६ फीट से २८ फीट तक उसकी देह की लम्बाई के अनुसार हुआ करती है, और देह की लम्बाई शिर से रीढ़ की अन्तिम सीमा तक १॥ फीट से २। फ़ीट तक है, इसका भाग[2] देने से १० दश या ११ ग्यारह के लगभग (भजन फल) मिलता है। अतः दूसरी बार फिर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि मनुष्य फलाहारी जीव है।

अपनी तीसरी यात्रा के आरम्भ में भोजन के साइन[3] पोस्ट (Sign post) अर्थात् इन्द्रियों से हमको परामर्श करना चाहिये। विशेष कर जिह्वा व घ्राणेन्द्रियां ही पशुओं को (उनके) भोजन की ओर ले जाती हैं और साथ ही साथ उनको खाने के लिये लालायित करती हैं। जब कोई शिकारी जीव अपने

१—अभिप्राय है उस परीक्षा से जो कई सतर (रेखा) पहिले तिगुने से पांचगुने तक का अन्तर देह और दांतों की नाली में चीर-फाड़ की विद्या की पुस्तकों में मिला है।

२—अर्थात् आँतों की लम्बाई १६ से २८ फीट को १॥ से २॥ फीट देह की लम्बाई से भाग देने पर १० या ११ उत्तर आता है। इससे ज्ञात होता है कि आँतें देह से १० या ११ गुनी लम्बी हैं और इस पृष्ठ के पहिले वाक्य में कहा गया है कि फलहारी जीवों में आंतें देह से १० या १२ गुनी लम्बी हैं। क्योंकि मनुष्य की आँतों और देह में भी उनकी लम्बाई के विचार से भी वही सम्बन्ध या अन्तर है जोकि फलाहारी जीवों की आंतों में, अतः मनुष्य भी फलाहारी है।

३—यह शब्द अंग्रेज़ी है, साइन का अर्थ चिन्ह पोस्ट का अर्थ स्नान अर्थात् वह वस्तु जो किसी बात का पता बतावे। जैसे ऐसे स्थानों पर जहाँ से सड़कें कई जगहों को फटती हैं, बहुधा खम्भों पर तख्तियाँ (पटरियाँ) लगीहुई देखी जाती हैं जिन पर उन जगहों को जहाँ को वे सड़कें जाती हैं पता लिखा रहता है इनको साइन पोष्ट कहते हैं।

२०

शिकार की गंध पाता है तो उसकी आँखें चमकने लगती हैं, वह बड़ी लालसा से अपने शिकार का पीछा करता, उस पर झपटता, गर्म लोहू और उसके (रुधिर) को निबखारे (नीद-दे) पन से चप-चप करके चाटता है और प्रकट में उसको ऐसा करने में अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। शाक खाने वाला पशु इसके विरुद्ध अपने साथी जीवों के निकट होकर चुपचाप चला जाता है, और विना किसी विशेष कारण के उन पर झपटने को उद्यत नहीं होता। उसकी घ्राणेन्द्रियाँ उसको मांस-भोजन के वास्ते कदापि इच्छुक नहीं बनातीं; तो वह अपने स्वाभाविक-भोजन को भी छोड़ देता है और यदि उस पर रक्त छिड़क दिया जावे तो उसकी दृष्टि और घ्राणेन्द्रियाँ उसको घास व शाक की ओर ले जाती हैं और घास और शाक उसके स्वाद अर्थात् जिह्वा को भी आनन्दित और संतुष्ट करते हैं। फल खाने वाले जीवों में भी हम यही बात देखते हैं। उनकी इन्द्रियाँ उनको खेत व वृक्षों के फफलों की ओर ले जाती हैं।

परन्तु मनुष्य की ज्ञानेंद्रियाँ किस प्रकार काम करती हैं ? क्या उसकी दृष्टि और घ्राण-शक्ति उसे कभी बैल के मारने को प्रेरित करती हैं ? मनुष्य के एक ऐसें बच्चे के चित में, जिस ने पशुओं के बध किये जाने का वृत्तान्त कभी न सुना हो, चाहें मांस उसने पहिले खाया भी हो, एक पुष्ट बैल को देख कर क्या यह विचार उत्पन्न होगा कि, "यह पशु मेरे वास्ते एक स्वादिष्ट भोजन होगा ?" केवल उस समय ही ऐसे विचार हमारे चित्त में उत्पन्न हो सकते हैं जब हम अपने ध्यान में उस जीवित पशु और पाक शाला में बनाये हुए उस मांस के, सम्बन्ध को विचार में लावें हमारे यह विचार प्रकृति प्रदत्त प्राकृतिक व स्वाभाविक नहीं होते।

बध करने का विचार मात्र ही हमारे मन को घृणित मालूम होता है, और कच्चा मांस न तो चक्षु को और न नासिका को ही सुहाता है। बध-स्थान हमारे नगरों से दूर-दूर क्यों बनाये जाते हैं ? बहुत स्थानों में मांस को बिना ढके हुए ले जाने के विषय में मनाही के नियम क्यों बने हुए हैं ? क्या वास्तव में इसको स्वाभाविक भोजन कह सकते हैं, जब कि आँख और नाक दोनों को इससे इतनी घृणा होती है ! खाये जाने से पूर्व माँस को मसालों द्वारा स्वाद व घ्राणेन्द्रिय के प्रति अनुकूल बनाने की आवश्यकता होती है (यदि यह इन्द्रियाँ पहिले से ही अत्यन्त आलसी (शिथिल) बनाई जा चुकी हों) इसके विरुद्ध मेवा (फल) की सुगंध को हम

कितना आनन्द दायक पाते हैं। निस्सन्देह यह कोई आकस्मिक (इत्तफ़ाक़ की) बात नहीं है कि फलों व मेवों की प्रदर्शनियों के समय निरीक्षक सदा अपने भावों को इस नियत वाक्य द्वारा प्रगट किया करते हैं कि "फलों को देखने से ही मुख में पानी भर-भर आता है।" यह भी कहा जा सकता है कि कच्चे अन्नों में भी कुछ न कुछ सुगन्ध पाई जाती है। अन्न को काट कर इकट्ठा करने और पकाने में कोई घृणा हमको नहीं मालूम होती, और ग्रामीण इसी कारण सुखी और सन्तुष्ट कहे गये हैं।" अतः हम को तीसरी बार भी अवश्य यही परिणाम निकालना चाहिये कि मनुष्य प्रकृति से ही फल खाने वाला जीव है।

चतुर्थ यात्रा में जब हम सृष्टि की वृद्धि और संतानोत्पति के नियमों की ओर ध्यान से देखते हैं और उनकी परीक्षा करते हैं तो निरूपण और भी कठिन होता है। उत्पत्ति[1] के समय सब जीवों को ऐसा भोजन प्राप्त होता है, जो उनकी शीघ्र पुष्टि में सहायक होता है। नवजात बालक के लिये निस्सन्देह माता का दुग्ध ही स्वाभाविक भोजन है। और इस अवसर पर हम यह देखते हैं कि बहुत सी माताओं को दुग्ध पिलाने की योग्यता इस कारण नहीं होती कि बच्चे के वास्ते भोजन उत्पन्न करने के अनुकूल उन के शरीर की दशा नहीं है। यह बात विशेष शोचनीय है, क्योंकि ऐसे बच्चों की इंद्रियाँ आरम्भ से इतनी पुष्ट नहीं हो सकती, कि वे स्वाभाविक विषयों को उचित रीति से ग्रहण कर सकें, क्योंकि प्राकृतिक-भोजन की बराबरी कोई भी कृत्रिम भोजन (मनुष्य का रचा हुआ) नहीं कर सकता। अनुभव बताता है कि "उच्च श्रेणी के मनुष्यों में" जिनका मुख्य भोजन मांस है उनमें स्त्रियों को यह रोग अधिक होता है। वे ग्राम से, जहाँ मांस का भोजन कम होता है, दाइयों को बुला कर नौकर रखते हैं। दाई नौकर हो जाने के पीछे सामान्यतः वही भोजन खाकर रहती है जो नगर वाले उस घर के और लोग खाते हैं इनका फल बहुधा यह होता है कि उनकी बचों को दूध पिलाने की योग्यता जाती रहती है। सामुद्रिक यात्रा में दूध पिलाने वाली स्त्रियों को जई के आटे की पकी हुई लपसी दी जाती है; क्योंकि उस भोजन से जो साधारणतः जहाज़ में मिलता है, उसमें मांस का भाग अधिक होने के कारण उनके स्तनों का दूध शीघ्र सूख जाता है।

१—अर्थात् संसार में प्रवेश होने के समय।

इन अनुभवों से यह सिद्धान्त निकलता है कि मांस माता[1] के दूध के उत्पन्न करने में कम सहायक होता है, या कुछ भी सहायता नहीं देता।

अतः चौथीबार भी हम यह परिमाण निकालने पर बाध्य हैं कि मनुष्य स्वाभाविक रीति से फलहारी जीव है।

यदि हमारा निकाला हुआ यह परिणाम सत्य हो तो यह बात निकलती है कि मनुष्य-जाति का अधिक भाग स्वाभाविक-भोजन से न्यूनाधिक अलग और कुपथ-गामी हो गया है। प्रकृति की सन्तान अपने प्राकृतिक भोजन से विमुख हो गई है। यह बात सुनने में आश्चर्यजनक प्रतीत होती है और अधिक प्रमाण चाहती है। क्या यह सम्भव है कि अन्य जीव भी उसी प्रकार से अपने स्वाभाविक-भोजन को छोड़ दें, ऐसा करने से उनको क्या फल मिलेगा ? आगे चलने से पहिले इस प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक है।

हम सब लोग भली भांति जानते हैं कि कुत्ते और बिल्लियाँ शाक-पात के भोजन का स्वभाव डाल सकते हैं; परन्तु क्या हम वनस्पति (शाक-पात) खाने वाले, पशुओं के मांसाहारी बन जाने का उदाहरण दे सकते हैं ? एक बार एक अति मनोहर घटना के देखने का मुझे अवसर मिला। किसी कुटुम्ब में एक हिरन का बच्चा पाला गया था। हिरन के बच्चे ने कुत्ते को मांस का शोरवा जिह्वा से पीते हुए प्रायः देखा, और भोजन के समय (उसने उसमें से) अपना भाग लेने की शीघ्र ही चेष्टा की। प्रथम तो वह शोरवे के स्वाद से ही घृणा प्रकट करते हुए मुंह मोड़ लिया करता था, परन्तु उसने बार-बार उसको पीने की चेष्टा की और थोड़े ही दिनों (सप्ताहों) में वह अपना भाग स्वाद के साथ खाने लगा। कुछ अधिक सप्ताहों में वह मांस का भी भक्षण कर सका, और अन्त में वह मांस को अपने स्वाभाविक भोजन से भी अधिक चाहने लगा। परन्तु इस आहार के फल शीघ्र ही प्रकट होने लगे; वह पशु रोगी हो गया, और एक वर्ष की अवस्था होने से पहिले ही मर गया। मैं यह भी कहे देता हूँ कि यह हिरन का बच्चा बन्द करके नहीं रक्खा गया था, वरन् बाग़ और जंगल में स्वतंत्रता से दौड़ता फिरता था।

१—यह नोट ग्रन्थकर्ता का है, वह कहता है कि हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि वनस्पति का भोजन खाने से माँ अपने बच्चे को दूध पिला कर पाल सकेगी, इस कार्य के लिये कुछ आरोग्यता या स्वास्थ्य की भी आवश्यकता है जो कि एकाएक प्राप्त नहीं हो सकती।

हम यह भी जानते है कि फल खाने वाले बन्दरों को सरलता पूर्वक बन्दी गृह में रहने की दशा में मांस भोजन करने का स्वभाव डाला जा सकता है, परन्तु ऐसा करने से वे साधारणतः एक या दो वर्ष में क्षयी रोग से मर जाते हैं। ऐसी मृत्यु का होना सामान्यतः जल-वायु के कारण माना जाता है, परन्तु उष्ण-कटिबन्ध के रहने वाले अन्य जीव भी हमारे देश में पूर्ण रूप से पलते हैं, अतएव, यह मानना उचित है कि प्रकृति विरुद्ध अथवा स्वभाव विरुद्ध भोजन ही इस मृत्यु में विशेष कर अपराधी हैं। वर्तमान में जो परिक्षाएँ की गई हैं वे भी इस सम्मति की सहायिका हैं। इन बातों से यह निश्चय है कि पशु अपने स्वाभाविक अर्थात् असली आहार को त्याग सकते हैं; इस कारण से यह विचार और भी दृढ़ हो जाता है कि मनुष्य-जाति के एक बड़े भाग ने स्वाभाविक भोजन से मुख मोड़ लिया है, यदि ऐसा हुआ है तो उसके फल भी हम को प्रतीत होने चाहिये अर्थात् रोग अवश्य प्रकट होने चाहिये या आज से पहिले ही प्रकट हो चुके होंगे।

यदि हम वास्तव में जानना चाहें कि कितने मनुष्य ऐसे हुए हैं कि जिनको वैद्य कि कभी आवश्यकता नहीं हुई, तो मुझे विश्वास है कि बहुत ही कम मनुष्य ऐसे मिलेंगे। पुनः कितने मनुष्य ऐसे हैं जो वृद्धावस्था के कारण ही मृत्यु को प्राप्त करते हैं ? ऐसे मनुष्य इतने कम हैं कि प्रायः समाचार-पत्र वाले उनका वृत्तान्त लिखा करते हैं। बहुत ही कम मनुष्य ऐसे पाये जाते हैं जिनमें विजातीय द्रव्य का भार न हो। साधारण-रीति से बहुधा फल खाने वाले ग्रामीण मनुष्यों को, यद्यपि सृष्टि के नियमानुसार पूर्ण रीति से वे जीवन व्यतीत नहीं करते, तो भी इस विषय में अधिक सौभाग्य प्राप्त है, और नवीन (ताजा) वायु का भी प्रभाव चाहे भले ही हो परन्तु भोजन ही यहां मुख्य कारण है। यद्यपि यह सत्य है कि हमारे स्वास्थ्य का बिगाड़ कुछ अन्य कारणों से भी होता है, परन्तु पशुओं के साथ तुलना करने से हम जान सकते हैं कि भोजन इसका (स्वास्थ्य के बिगाड़ का) सब से बड़ा कारण है। जैसे पशुशाला में जो जीव बन्द रक्खे जाते हैं वे सफाई के विचार से अति ही अयोग्य दशा में (जोकि हमारे विचार में आ सकती है) रहते हैं। अपने मल से निकली हुई वायु को लगातार श्वांस के द्वारा उनको भी ले जाना ही पड़ता है और उनका शरीर अपने आप कोई व्यायाम करने नहीं पाता। इस कारण प्राकृतिक रीति से वे अवश्य रोगी हो जाते हैं और यह बात मान लेनी चाहिये कि ऐसे पशु कभी पूर्ण प्रकार से तन्दुरुस्त नहीं होते। परन्तु उपरोक्त स्वच्छता की अयोग्य दशा के होने पर भी पशुओं में रोग इतनी

अधिकता से नहीं फैलते जितने कि मनुष्य में, यद्यपि मनुष्य इन सब बातों में अपनी रणा पशुओं से अधिक उत्तम रीति से कर सकते हैं और करते हैं, अतः आरोग्यता के बिगाड़ का दोष मुख्यतः भोजन पर ही लगाना चाहिये।

अब हम इतनी दूर तक पहुँच गये कि आखिरी कदम उठावें, और क्रम पूर्वक अपने निकाले हुए परिणामों के सत्यासत्य को परीक्षा (तजुर्बा) करके सिद्ध करें। दोनों विवादों की जो बहुधा उठाये जाते हैं हम एक साथ ही जाँच कर सकते हैं। प्रथम यह कि अपने शरीर की उच्च व उत्तम बनावट के कारण मनुष्य उन नियमों के आधीन नहीं है जो उसके नीचे की श्रेणी वाले पशुओं के लिये हैं। और द्वितीय विवाद या शंका यह है कि दीर्घकाल से मांस भोजन करने के कारण मनुष्य के शरीर ने (डार्विन साहिब के अनुकूलता या सामान्यता के सिद्धान्त के अनुसार) इस नवीन आहार[1] से शायद अनुकूलता प्राप्त करली है। इस दूसरी शंका के फिर दो भाग किये जाते हैं :- प्रथम यह कि सब मनुष्य जाति इस अनुकूलता के प्रभाव के नीचे आ गई है; और द्वितीय यह कि कम से कम युवक (बालिग) मनुष्य उस भोजन को जिसका उन्होंने स्वभाव डाल लिया है, अपने आप को खतरे में डाले बिना त्याग नहीं सकते।

बच्चों और बड़ों के साथ जो परीक्षण किये जावें, उनसे इन सब प्रश्नों के उत्तर पूर्ण रूप से दिये जा सकते हैं। और ऐसे बहुत से परीक्षण अब तक किये जा चुके हैं, जिनके परिणाम, मैं संक्षेप से इस अवसर पर वर्णन करूँगा। कई घरों में बच्चे जन्म से ही बिना मांस के, आहार पर पाले गये हैं और उनके बढ़ने को ध्यान से देखने का काम मुख्यतः मैंने अपने पास रक्खा है। मैं विश्वास पूर्वक कह सकता हूँ कि परीक्षार्थ क्रियाओं का फल पूर्णतः प्राकृतिक भोजन के—अर्थात् उस भोजन के जिसमें से मांस निकाल दिया गया है सहायक रहा है। ये बच्चे शरीर तथा मस्तिष्क दोनों में, बुद्धि, साहस या स्वभाव के विचार से आश्चर्य्यजनक रीति से बढ़े।

इससे मेरी इच्छा होती है कि सामाजिक सुधार की शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ कहूँ। यह शिक्षा का प्रश्न प्रतिदिन के विवाद में सम्मिलित हो गया है, नवयुवकों के दुराचार की चिन्ता पर प्रति-दिन विचार रहता है। अब प्रश्न यह है कि सदाचार का सब से बुरा शत्रु कौन है ? सब धर्मों के शिक्षकों से पूछिये, दार्शनिकों तथा सामाजिक उपदेशकों एवम् शिक्षा देने वाले आचार्य्यों से पूछिये तो आपको सदा यही

१—अर्थात् मांस आहार।

उत्तर मिलेगा कि[1] वही काम-चेष्टाएँ। इन चेष्टाओं के दमन करने के निमित्त असाधारण कष्ट उठाए जाते हैं, परन्तु बहुधा सृष्टि की विपरीत क्रियाओं[2] से जैसे अपरिमित उपवास और कोड़े मारने का दंड देकर और धर्मोपदेशकों (पादरियों) की आज्ञानुसार एकान्त स्थान में रखने इत्यादि-इत्यादि रीतियों से ऐसा किया जाता है। वास्तव में इसका कुछ भी परिणाम नहीं[3] होता। परन्तु जिस प्रकार कोई सेनापति शत्रु को शीघ्र और बिना चूके हुए इस उपाय से जीत सकता है कि शत्रु की सेना को सन्मुख होने या लड़ने के ढंग पर न बनने देवे, उसी प्रकार से शिक्षक भी कर सकता है (या यही दशा शिक्षक की भी है) यदि वह कामेन्द्रिय के भोग की इच्छा को रोक देवे तो सदाचार का महान्-शत्रु वश में हो जाता है। इस इष्ट को प्राप्त करने की उत्तम रीति यह है कि बच्चों का पालन सात्विक व स्वाभाविक भोजन पर करें। इन बातों की सत्यता परीक्षाओं से सिद्ध हो चुकी है, और यह विषय ऐसा लाभकारी व आवश्यक है कि जितना अधिक उस पर कथन किया जाय उतना ही कम है।

काम-चेष्टाओं से मुक्त होना और ऐसे मुक्त होने से जो शान्ति चित्त को प्राप्त होती है ये दोनों, समान प्रकार से, अति उत्कृष्ट मानसिक विचारों के वास्ते पक्की नीव बनाते हैं। प्रत्येक आत्मज्ञानी (आत्म वेत्ता) जानता है कि मानसिक क्रियाओं व स्पष्ट विचारों व सत्यविवेक के लिये सन्तोष व शान्ति सब से अधिक लाभकारी है; और ये चित्त की शान्ति और किसी प्रकार से ऐसे पूर्ण-रूप से प्राप्त नहीं हो सकती जैसे कि शाक-पात के भोजन से होती है।

यद्यपि मैं प्रसन्नता पूर्वक इस विषय को और भी आगे चलाता परन्तु इस भय से कि आप का समय बहुत अधिक ख़राब न हो मैं इस बात को खेद के साथ यहीं पर छोड़ता हूँ। फिर भी यह आवश्यक है कि हम उन बहुत सी परीक्षाओं पर विचार करें जो दीर्घायु वाले मनुष्यों के साथ हुई हैं, और हम लोग—प्राकृतिक रीति पर जीवन व्यतीत करने वाले उदाहरण के रूप से आपके सन्मुख हैं। जो लाभ हम ने

१—अर्थात् कामेंद्रिय का भोग ही सदाचार का सब से बड़ा शत्रु है।

२—अर्थात् विशेषतः सृष्टि विरुद्ध क्रियाओं से इन्द्रियों के दमन करने का उद्योग किया जाता है।

३—अर्थात् सृष्टि की प्रतिकूल रीति से काम में लाई जाती है, अतः फल (प्रभाव) भी अधिक नहीं होता।

इससे प्राप्त किये हैं वे शीघ्र ही ज्ञात हो सकते हैं और समझ में आ सकते हैं कि हम इस प्रकार जीवन व्यतीत करने की विधि के सच्चे मन से अनुगामी हो गये और अब तक अनुगामी हैं। मैं यहां पर यह कहूँगा कि आपको यह भूल न न जाना चाहिये कि वनस्पति का भोजन न करने वाले बहुत से लोग अनेक रोगों के कारण पुनः वनस्पति भोजन (शाकाहार) को ग्रहण करने के लिये बाध्य हुए हैं। यद्यपि वे स्वयं इसमें प्रसन्न हैं कि इसके द्वारा उनको फिर आरोग्यता प्राप्त हो सकी, और इसमें सन्देह नहीं कि यह आशा नहीं की जा सकती कि वे सब बलवान व लाल रंग के हो जावें। बहुत से तो इस प्रकार भी आरोग्यता की दशा में पहुँच जाते हैं और कोई कोई नहीं भी पहुँचते हैं। जैसे थियोडोरहान साहिब[1] की दशा को लीजिये, २६ वर्ष की अवस्था में वे मरघट के किनारे पहुँच चुके थे, और डाक्टरों ने यह कह दिया था कि उनका आरोग्य होना असम्भव है। प्राकृतिक भोजन की सहायता से "उनका स्वास्थ्य मध्यम-अवस्था का हो गया, और वे ३० वर्ष और भी जीवित रह सके। इस परीक्षण का फल निस्सन्देह निरामिषता के पक्ष का समर्थन करता है। तब हमें आश्चर्य होता है कि जब हमारे विरोधी उच्च स्वर से सहर्ष यह कहते हैं कि देखो वह केवल ५६ वर्ष की अवस्था तक ही जियां"।

इस नवीन विधि चिकित्सा विद्या ने जिसमें बिना औषधि और बिना चीरफाड़ की क्रिया के ही चिकित्सा होती है अमादक (सात्विक) भोजन का प्राकृतिक भोजन होना और पूर्ण आरोग्यता के वास्ते उसका अति आवश्यक होना सिद्धि कर दिया है। अनुभव से भी यह सिद्ध हो गया है कि यदि पूर्ण रीति से अमादक (सात्विक) भोजन का व्यवहार किया जावे, तो रोग शीघ्रता से दूर होता जाता है। जो लोग मांस व मदिरा से अपने मन को विरक्त नहीं कर सकते वे आरोग्यता प्राप्त करने में विलम्ब करते हैं। कारण यह है कि उनके शरीर में नवीन विजातीय द्रव्य बराबर प्रवेश करते जाते हैं जिनको फिर अवश्य ही निकालना पड़ेगा। अतः रोग उत्पन्न करने की चेष्टा शरीर से कभी नहीं जाती।

जो लोग भले-चंगे हैं वे अपने शरीर पर इस डबल (दुगने) काम का भार अच्छी तरह उठा सकते हैं, परन्तु ऐसा करना सदा उनके ही लिये हानिकारक है। जो मनुष्य अपनी आरोग्यता पुनः प्राप्त करना चाहता है उसको विजातीय द्रव्य शरीर

१—यह थियोडोरहान साहिब की ओर सूचना करता है।

से निकालने के लिये अपने शारीरिक-बल से सहायता लेने की आवश्यकता होती है; और अनुभव से यह प्रकट है कि हमें शारीरिक-बल केवल साम्य (अमादक, सात्विक) भोजन से ही प्राप्त हो सकता है । प्रचलित मिश्रित भोजन ही इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये पर्याप्त है कि हमको अपनी सब ओर रोग तथा रोगी ही क्यों दिखाई देते हैं ?

सम्भवतः आप विस्तार पूर्वक जानना चाहेंगे कि हम को क्या वस्तु खानी और क्या पीनी चाहिये ? पीने की वस्तु के विषय में हमको एक बार फिर अपने खोज के मैदान में जाना चाहिये । मनुष्य के अतिरिक्त अन्य कोई जीव हमको ऐसा नहीं दिखाई देता, जो जल के अतिरिक्त किसी और वस्तु को अपनी प्यास बुझाने के लिये उपयोग में लाता हो । मनुष्य पीने के लिये सदैव प्रवाहित जल को ढूंढा करते हैं, और नदी व नालों के जल को पहाड़ों से निकलते हुए झरनों के जल की अपेक्षा अधिक स्वीकार करते हैं; और यह बात इस सिद्धान्त के अनुकूल सी है कि जिस जल पर सूर्य की किरणें पड़ी हैं और जो पत्थर[1] के टुकड़ों पर बहता हुआ आया है, वह जल झरने के नवीन (ताजा) पानी से श्रेष्ठ होता है । इसके अतिरिक्त जो पशु रसदार वस्तुओं का आहार करते हैं वे जल भी कम पीते हैं; और स्वयं मनुष्य को भी, यदि वह अपने भोजन से रसदार फलों को न त्याग दे, मनुष्य के लिये केवल जल ही स्वाभाविक पीने की वस्तु है । यदि पानी के साथ फलों के रस भी मिलाये जायें तो उनसे प्यास और भी अधिक बढ़ती है, विशेष कर जब उनमें मीठा खूब मिला हो । यदि हम रोग से निवृत्ति चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि उसी वस्तु पर जो सृष्टि अर्थात् नेचर ने हमारे लिये पीने को बनाई है संतोष करें, और केवल पानी से ही अपनी प्यास बुझाया करें ।

परन्तु हमको क्या-क्या खाना चाहिये ? इसके लिये नेचर अर्थात् प्रकृति फलों की ओर ही संकेत करती है, अतः फलों का भोजन ही सर्वोत्तम है । सब प्रकार के फल और मेवे, अन्न तथा सब प्रकार के छोटे फल[2] और कन्द-मूल जो देखने, सूंघने तथा स्वाद में अच्छे लगें हमारे भोजन में काम आ सकते हैं । अत्यन्त शीत-देशों के अतिरिक्त पृथ्वी

१—विदित हो कि पहाड़ों से निकली हुई नदियों का रेत भी पत्थर के बारीक रेणु हैं ।

२—मुख्य शब्द अंग्रेज़ी में जो आया है उससे अभिप्राय यह है कि ऐसे फल जिसमें शब्द बेरी अन्त में आता है जैसे स्ट्राबेरी रसभरी इत्यादि ।

के सभी भागों में ये खाद्यपदार्थ अधिकता से मिलते हैं। अतः पृथ्वी के अत्यन्त ठण्डे भाग मनुष्य के निवास के अनुकूल नहीं हैं, वहां के निवासी शरीर के आकार-प्रकार तथा मस्तिष्क-शक्ति में गिरे हुए पाए जाते हैं।

जहां तक हो सके, नेचर (सृष्टि) की प्रदान की हुई वस्तुओं को उनकी वास्तविक दशा में ही ग्रहण करना उचित है। परन्तु ऐसा करना हमारी आरोग्यता की बिगड़ी हुई, दशा मुख्यतः दांतों की दशा बिगड़ जाने के कारण कठिन है। साधारण तथा सभी मसालों तथा वस्तुओं के सतों व सारों से हमें बचना चाहिये क्योंकि भोजन का सत के रूप में होना सृष्टि के नियमों के विरुद्ध है। प्रकृति हमको भोज्य पदार्थ इस दशा में नहीं देती हैं। तीक्ष्ण मसालों और यदि सम्भव हो तो शर्करा (मीठा) व नमक को भी भोजन में न डालना चाहिये।

आज-कल बहुधा भोजन ठीक प्रकार से पकाया भी नहीं जाता है। यथा, उबालने के काम आने वाला जल जो, भोजन में से शक्तिदायक अंश को अधिकतर खींच लेता है, बहुधा फेंक दिया जाता है, फिर वही शाक हमारे भोजन के लिये रक्खे जाते हैं, यह सर्वथा अनुचित रीति है। उचित रीति यह है कि तरकारियां (शाक) स्वल्प जल में उबाली अथवा भाप में सिजाई जावें, और जो उनके भीतर जल गया है। न निकाला जावे। भिन्न-भिन्न पदार्थों के बनाने की रीति के विषय में तरकारी व शाक बनाने की बहुत सी पुस्तकों में से कई एक के अवलोकन करने की मैं आपसे नम्रता पूर्वक प्रार्थना करता हूँ। एडबालटर्ज साहिब की पुस्तक[1] (मूल्य १ शिलिङ्ग ६ पेंस) कृपया पढ़िये (इस पुस्तक के अन्त में दिये विज्ञापन को पढ़िये)।

परन्तु यह मान लेना उचित नहीं है कि जो भोजन उपरोक्त पुस्तक में वर्णन किये गये हैं उनमें प्रत्येक भोजन रोगियों को देने योग्य होंगे। टूटी बाँह (भुजा) से कोई भी मनुष्य अपना काम पूर्णतया नहीं कर सकता, इसी प्रकार निर्बल आमाशय किसी भोजन को भले प्रकार नहीं पचा सकता। यह स्वयं आमाशय बतला सकता है कि किन पदार्थों को वह पचा सकता है। उदर-शूल, वायु, डकार, मुख का स्वाद खट्टा होना, या पेट में और किसी प्रकार की गड़बड़ होना इस बात को सिद्ध करता है कि हमने या तो अधिक या कोई अनुचित भोजन किया है। यदि रोगी ध्यान से देखे तो उसको स्वयं प्रतीत हो जावेगा कि कौन सा पदार्थ उसको हितकर है। रोगियों के लिये

१—इस पुस्तक का अनुवाद अभी तक अंग्रेज़ी में भी नहीं हुआ है।

बिना छने[1] मोटे आटे की रोटी, यदि उसको पूर्ण प्रकार से चबा-चबा कर खाया जाय, तो अति उत्तम भोजन होगी। यदि यह[2] न पच सके तो बिना छने गेहूँ के आटे को खाकर लाभ उठा सकते हैं, क्योंकि भूसी मिला आटा तभी निगला जा सकता है जब मुख का रस उसमें पूर्ण प्रकार से मिला लिया जावे, अतः रोगी को अधिक भोजन कर जाने का भी भय नहीं है। रोगी को आवश्यकता से न्यूनाधिक भोजन न करना चाहिये, भोजन उचित होना चाहिये। उसको स्वतंत्रता[3] पूर्वक अनाप-शनाप किये हुए अति लाभकारी और पथ्य भोजन से भी हानि पहुँचती है।

रोगी के लिये जई के आटे की लपसी अति उत्तम भोजन है; उसको कड़ा कर लेना चाहिये, थोड़े से नमक और बिना उबाले दूध के अतिरिक्त उसमें और कुछ नहीं मिलाना चाहिये। दूग्ध ठण्डा और बिना उबला हुआ पीना चाहिये, अन्य किसी प्रकार का दूध न पीना चाहिये। पीने से पहले यह देख लेना चाहिये कि वह दुर्गन्धित अथवा स्वाद में बुरा तो नहीं हो गया है। यदि ऐसा हो तो वह वर्जित है। यह समझना भूल है कि उबालने से दूध श्रेष्ठ हो जाता है। उबला हुआ दूध कठिनता से पचता है, क्योंकि वह देर में सड़ता है। और उबालने से हानिकारक पदार्थ उसमें से निकल नहीं जाते वरन् उबालने के पश्चात् भी उसी में रहते हैं, अतः वह कम शक्ति प्रदान करने वाला होता है, यदि वह लाभ भी पहुँचावेगा तो शरीर को बिना बल बढ़ाए ही मोटा बना देगा। भोजन करते समय ताजे फल सेवन करना भी उचित है। यद्यपि यह वस्तुएँ अति आवश्यक नहीं है तथापि यदि भोजन बदलने की इच्छा हो तो भोजन के लिये चावल, यव (जौ) इत्यादि और बतला सकते हैं; हरी तरकारियां जैसे गोभी, एस्पेरेगस[4] और उबले हुए फलों को उनमें मिला कर उनको स्वादिष्ट बना सकते हैं। पूर्ण आरोग्य अथवा आरोग्य मनुष्यों के भोजन के लिये बहुत से पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं। भोजन बनाने की उपरोक्त पुस्तकों में से किसी एक पर भी दृष्टि डालने से प्रत्येक मनुष्य को प्रतीत हो जावेगा कि भोजनों की कमी से उसको कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा।

१—अभिप्राय उस आटे से है जो चोकर सहित होता है।

२—अर्थात् बिना छने मोटे आटे की रोटी।

३—जैसे किसी रोगी को एक सेब अति लाभकारी है तो यह सम्भव है कि दो सेब उसको अत्यन्त हानिकर हो जावें।

४—यह एक अंग्रेज़ी हरी तरकारी है, इसे मारचोबा भी कहते हैं।

इस अभिप्राय के समझने में कुछ सन्देह न रहे अतः मैं फिर इस बात की ओर ध्यान दिलाता हूँ कि जो मनुष्य रोगी हो, विशेषतः जिसको कुपच (बदहजमी) की अधिक शिकायत हो, उसको अत्यन्त साधारण भोजन करना चाहिये, और वह ऐसा हो जो भली भाँति चबाना पड़े। ऐसे रोगी के लिये गेहूँ के बिना छने अर्थात् चोकर सहित आटे की रोटी और फल सब से श्रेष्ठ भोजन हैं। स्वाद की ओर उस समय तक ध्यान न देना चाहिये जब तक स्वास्थ्य में वृद्धि न हो जावे।

कुछ मनुष्यों को मैं यह प्रश्न करते सुनता हूँ, "परन्तु क्या यह स्वाद में अच्छा लगता है" ? खाने[1] में स्वाद कहाँ से आता है, भोजन से तीक्ष्णता का प्रभाव जो जिह्वा की नसों पर (गस्टोरी नर्व्ज़) (Gustatory nerves) उत्पन्न होता है, उससे स्वाद का ज्ञान होता है। इसी शक्ति या तीक्ष्णता के प्रभाव की तुलना अन्य स्वाभाविक प्रभावों से की जाती है और इन प्रभावों से जितनी वह समानता व अनुकूलता रखती है उससे उतना ही आनन्द व स्वाद हमको प्राप्त होता है। कभी-कभी इस स्वाद में किंचित् अधिकता हो जाती है तो इससे अधिक आनन्द प्राप्त होता है। परन्तु यदि यह बहुधा व बारम्बार प्राप्त होवे तो वह हमारे स्वभाव में मिल जाती है, और फिर हम उससे उतने आनन्दित नहीं हो सकते। अतः जब हम उच्च श्रेणी के दुष्पाच्य स्वादिष्ट पदार्थों का स्वभाव डाल लेते हैं तो वे हमको उससे अधिक आनन्द नहीं देते जितना कि निकृष्ट श्रेणी के कहे जाने वाले पदार्थ उसके पूर्व दिया करते थे। यद्यपि उतने मँहगे और श्रेष्ठ न थे; इनसे यह लाभ भी है कि स्वाद प्राप्त करने के अभिप्राय से, (जिह्वा की) साधारण नसों में असाधारण तीव्रता पैदा करने की आवश्यकता नहीं होती।

क्या मैं उन परिणामों को जो मैंने आरम्भ में वर्णन किये हैं आपको पुनः स्मरण कराऊँ ? वह सृष्टि के प्रतिकूल ही भोजन था जिसने मनुष्य में विजातीय द्रव्य का भार उत्पन्न किया, स्वाभाविक-भोजन उस द्रव्य को शरीर में प्रविष्ट नहीं करता और यदि उत्पन्न भी करता है तो केवल उन्हीं लोगों में जो उसको पूर्ण रूप से पचा नहीं सकते, अथवा भोजनों में समता नहीं रहने देते। यदि विजातीय द्रव्य को हम निकाल सकें तो सृष्टि के अनुकूल भोजन का प्रयोग इस बात का भार अपने ऊपर ले लेता है कि यदि स्वास्थ्य की अन्य बातों पर असावधानता न की जावे तो वह हमको भविष्य में आरोग्य रख सके।

१—इस स्थान से इसके पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर आरम्भ होता है।

सृष्टि या प्रकृति के अनुकूल जीवन व्यतीत करने से मनुष्य को व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से, जो लाभ होता है। उसका प्रचार समस्त देश व प्रत्येक स्थान में शीघ्रता से ही ग्रन्थकार की यही अभिलाषा है।

बिना[1] छने हुए आटे की श्रेष्ठ रोटी बनाने की प्रक्रिया जिसके विषय में लूई कूहनी ने सन् १८६८ ई० में आदेश दिया है।

बिना-छने गेहूँ या और किसी नाज का आटा (गर्म देशों में बाजरे[2] का-आटा गेहूँ या चावल के आटे के साथ) तीन पौंड[3] एक थाली में रख दो और लगभग डेढ़ पाइन्ट के (केवल पन्द्रह छटांक) ठंडा पानी उसमें डालो और पूर्ण प्रकार से मिलादो। गर्म जल से ठंडा जल श्रेष्ठ है, क्योंकि परीक्षा से सिद्ध होता है कि ठंडे पानी की अपेक्षा गर्म जल रोटी में खमीर (सड़न) शीघ्र उत्पन्न करता है; चाहे गर्म जल रोटी को अधिक हलकी भले ही कर दे तो भी वह रोटी कम स्वादिष्ट और कम बलकारी होती है। फिर उस आटे के दो बराबर भाग करलो और प्रत्येक भाग को लम्बी रोटी के स्वरूप में बनालो, सूखे खपडों पर (ईंटों पर नहीं) बिना छना आटा छिड़क कर उसके ऊपर रोटियों को रख दो, रोटी के ऊपर के भाग को जल से गीला कर दो, और प्रत्येक रोटी को खपड़े समेत गर्म तन्दूर के भीतर खाली गमले पर रखदो।

उस समय कोई वस्तु या बर्तन तन्दूर में न रखना चाहिये, तन्दूर के भीतर अग्नि द्वारा एक सी गर्मी बनाये रखनी चहिये।

आध-घण्टे पश्चात् (इसके बीच में तन्दूर न खोलना चहिये) रोटियों के सन्मुख का भाग पीछे की ओर फेर देना चाहिये।

फिर पाव घण्टे पश्चात् पुनः देख लो कि रोटी के ऊपर का भाग पूर्ण रूप से सिक गया और कड़ा हो गया कि नहीं क्योंकि उसके नीचे का भाग साधारण रुप से नर्म होता है। रोटी ऊपर तले लौट दो।

१—अभिप्राय है उस आटे से जो नाज को छिलके सहित पीस कर प्राप्त होता है अर्थात् वह आटा जिसका चोकर का भाग अलग न किया हो।

२—अंग्रेज़ी में जो शब्द आया है उसका अर्थ बाजरा-जुआर, तथा मक्का है, तीनों नाजों का आटा इस काम में आ सकता है।

३—एक पौंड ४० तोले का, अर्थात् ४० रुपये भर तोल में होता है।

अब रोटी को उस समय तक सिकने दो कि बीच में उंगली मारने से वह खाली या खोखली होने का शब्द देने लगे; इसमें लगभग आधा घंटा और लगता है। यह विश्वास कर लेना चहिये कि रोटी खूब सिक गई और ऊपर का छिलका भी बहुत कड़ा नहीं हुआ है।

बिना छने हुये (चोकर सहित) आटे की लपसी बनाने की प्रक्रिया

एक तश्तरी लपसी बनाने को ऊपर तक भरा हुआ एक बड़ा चम्मच बिना छने आटे का लेलो, और उसमें थोड़ा सा पानी मिला कर उसे चला कर पतली लेई सी बनालो, तत्पश्चात् इसी लेई को खौलते हुए पानी में डाल दो और कई मिनट तक इसको बराबर चलाते हुए पकने दो। उसमें घी व नमक बहुत थोड़ा डालना चाहिये, या बिलकुल न डालना चाहिए। उस पर मुनक्का अथवा किशमिश छिड़कने से यह लपसी अत्यन्त स्वादिष्ट हो जाती है।

प्राकृतिक भोजन के श्रेष्ठ चुनाव के विषय में संक्षिप्त शिक्षाएँ व सूचनाएँ

ब्रेकफास्ट Breakfast छोटी हाज़री अर्थात् नाश्ता या कलेवा—बिना छने हुए आटे की रोटी या फल ; या बिना छने आटे की लपसी व रोटी अथवा जई के आटे का हलुवा, फल और रोटी या केवल बिना उबाला हुआ दूध।

डिनर Dinner अर्थात् बड़ी हाज़री अर्थात् मध्याह्न भोजन (जो दिन में दोपहर से पूर्व खाते हैं) यदि किसी वस्तु का झोर (रसा-शोरवा) हो तो वह गाढ़ा हो, चाहे अन्न गाढ़े हलुवे के रूप में जैसे चावल, जौ, गेहूँ या जई[१] का मोटा दलिया या आटा केवल पानी में और किंचित् घी में बनाया हुआ, या उसमें थोड़ा सा भाग फल व मेवा का मिला करा चाहे दाल के रूप का अन्न जैसे सब प्रकार की मटरें, सेम, लोभिया, मोठ, मसूर केवल जल में पकी हुई सूखी दशा में, घुटी (पिसी) हुई या कुचली हुई न हों यदि सानुकूल हो व इच्छा चाहे तो मरुवे की पत्ती की भाँति तेज पत्तियों से उसे स्वादिष्ट बना लेवें। चाहे कोई तरकारी (शाक) जो जिसके देश में मिलती हो और जिसकी फ़सल हो, चाहे उबाले हुए या ताज़ा फल बिना छने हुए आटे की रोटी के साथ।

१—अँग्रेज़ी शब्द ग्रोट्स (Groats) है अर्थात् छदी हुई जई और गेहूँ के मोटे दलिये से अभिप्राय है।

सपर Supper (सन्ध्या या रात्रि का भोजन अर्थात् व्यालू) बिना छने हुए आटे की रोटी और फल (ताजे चाहे उबाले हुए)। या आटे की या बिना छने हुए आटे की गाढ़ी पकी हुई लपसी, रोटी चाहे फल के साथ।

कई साधारण नुसखे अर्थात् भोजन बनाने की विधि।

लाल करमकल्ला और सेब, एक बड़े से लाल करमकल्ले को (बन्दगोभी) लम्बे-लम्बे टुकड़ों में कतरो और आधे प्याले जल के अनुमान में उसको तब तक उबालो जब तक वह आधा नर्म न हो जावे फिर ४ से लेकर छः तक खट्टे सेब बारीक-बारीक टुकड़ों में काट कर उनमें थोड़ा सा नमक और घी मिला दो, और उस समय तक उबालो जब तक कि कुल जल सूख न जाय (बिना नमक और घी के भी बहुत स्वादिष्ट लगता है) यह जो भोजन तीन मनुष्यों के लिये है।

श्वेत (सफेद) करमकल्ला और टिमाटर अर्थात् विलायती बैंगन, एक श्वेत करमकल्ले (बन्द गोभी) को उपरोक्त विधि से बना कर उबाल लो, फिर आधे प्याले के लगभग टमाटो का रस उस में मिला दो, या चार से लेकर दस तक (छोटे बड़े के विचार से) ताजे टमाटो को लोहे की छलनी में निकाल कर उसमें थोड़ा सा घी व नमक मिला दो फिर छः से लेकर आठ तक छिले हुए दो; आलू एक-एक के दो-दो टुकड़े करके ऊपर रख दो और बिना चलाए हुए ही सबको उबालो (बिना नमक व घी के भी अति स्वादिष्ट होता है); टमाटो के बदले तेज को भी काम में ला सकते हैं। यह तीन मनुष्यों के लिये है।

सोया, पालक, बथुआ और आलू, सोया, पालक या बथुवे को तोड़ने के पश्चात् दो-तीन बार धो कर कच्ची ही दशा में कतर लेना चाहिये, और बहुत थोड़े जल में थोड़े से नमक व घी सहित उबाल कर गला लेना चाहिये, यदि कुछ पानी शेष रह जाय तो उसमें एक बड़े चमचे भर बिना छना हुआ, आटा मिला देना चाहिये।

करमकल्ला (बन्द गोभी) और ओट्स[1] बन्द गोभी को बारीक कतर और धोकर अनुमान से दो प्याले पानी में उबालो; जब अच्छी प्रकार से गल जावे तब थोड़ा सा नमक व घी और आधा प्याला ओट्स उसमें मिलादो फिर कई बार चलाओ। जब तक ओट्स अच्छी तरह गल न जावे उबालते रहो।

१—ओट्स अँग्रेजी में मोटे दले हुए गेहूँ और जई को कहते हैं। जई कूटी, छरी, या दली हुई हो।

गाजर और आलू :—पांच से लेकर आठ गाजर तक (बड़ी छोटी का विचार करके) लम्बी-लम्बी फाँकें कर लेवें, और क़रीब एक प्याले पानी में उबालें, फिर उसके ऊपर ६ से ८ तक दो-दो टुकड़े किये हुए कच्चे आलू रख देवें, और थोड़े से नमक व घी के साथ उन्हें पकावें (बिना नमक व घी के भी स्वादिष्ट होते हैं) ये तीन मनुष्यों के लिये है।

शलजम और आलू —थोड़े से बड़े-बड़े शलजम की फांके करके एक से डेढ़ (१॥) प्याले तक जल में उबाल लेवें कि आधी गल जावें। थोड़ा सा नमक व घी और छः से आठ तक कच्चे छिले हुए आलू मिलाकर पूर्ण प्रकार से उबालें, (बिना घी व नमक के भी स्वादिष्ट होते हैं) ये तीन मनुष्यों के लिये हैं। ये सब और पूर्वोक्त[1] शाक एक साथ मिलाकर भी बनाए जा सकते हैं, वे अत्यन्त स्वादिष्ट होते हैं।

चावल और सेब:—४ छटांक (२० तोले) चावल और ४ से ८ तक टुकड़े किये हुए सेब, चार प्याले पानी में सहज-सहज उबाल कर गाढ़ी खिचड़ी के समान पकाये जावें। अति स्वादिष्ट होते हैं। उनमें थोड़ा सा नमक व घी भी मिलाया जा सकता है, परन्तु उसकी विशेष आवश्यकता नहीं है। तीन मनुष्यों के लिये है।

चावल के सादे गुलगुले-पूर्वोक्त चावल के हलुवे में चौथाई पौंड (१० तोले के लगभग) किशमिश मिलाकर एक तश्तरी में घी लगाकर और रोटी के टुकड़ों का चूरा डाल कर पकावें।

लोभिया और टमाटो :—आधा पौंड (बीस तोला) लोभिया संध्या के समय ठण्डे जल में भिगो दिया जावे, तदोपरान्त प्रातःकाल इतना जल और डाल कर उबाला जावे कि जिससे वह ढक जावे। जब वह गल जावे तो उसमें आधा प्याला टमाटो का रस या ५ से १० तक ताजा टमाटो चलनी में निकाले हुए और मिला देवें। यदि रुचि हो तो कुछ घी व नमक भी मिला देवें। टमाटो का रस मिला देने के पश्चात् यह अच्छा होगा कि इस भोजन को १ से २ घन्टे तक गर्म रहने दें। यदि जल शेष रह जावे तो एक चम्मच बिना चोकर निकाला हुआ आटा उसको गाढ़ा करने के लिये और मिला देवें। टमाटो के बदले में हालम या तरह तेज़ भी काम में ला सकते हैं। यह परिमाण दो मनुष्यों के लिये पर्याप्त है।

हरा (हरित) लोभिया, सेम, बाकला की फली व सेब :—लोभिया सेम या बाकला की फ़ली के सूत स्वच्छ करके इनके टुकड़े किये जावें, और खौलते हुए

१—अर्थात् आलू और गाजर का शाक।

पानी में उन्हें डाल दिया जावे, और खट्टे या कच्चे सेब की फांकें करके उसमें मिला दी जावें। तत्पश्चात् पियाज़ या कतरी हुई आज़मोद और थोड़ा सा नमक व घी उसमें मिला दिया जावे। जब फलियाँ गल जावें तो थोड़ा सा बिना छना आटा उसे गाढ़ा करने के लिये और मिला दिया जावे।

मोठ, मसूर और आलू बुखारा :—आधा पौंड (बीस तोला) मोठ, चाहे काली मसूर पहले भिगो दी जावे और धीमी-धीमी अग्नि पर उबाल कर ३० आलू बुखारों के साथ इतने पानी में जो उनको ढक देवे गला दी जावे। यदि रुचि हो तो उसमें थोड़ा सा नमक और घी मिला लेवें। यह तीन मनुष्यों के लिये है।

धरती का फूल और आलू :—धरती का फूल खूब धो लिया जावे और कतरी हुई पार्सली[1] या प्याज़ के साथ उबाल कर गला लिया जावे। फिर उसमें थोड़ा सा नमक व घी मिला दिया जावे, इस शोरवे को दो बड़े चम्मच बिना छना आटा डाल कर चाशनी के समान गाढ़ा कर लेवें। तब छिलके सहित उबाले हुए आलू छील कर टुकड़े करके उस धरती के फूलों की चाशनी में मिला दिये जावें। इन सब को फिर पकावें और अन्त में कुछ देर तक गर्म रक्खा रहने देवें।

चुक़न्दर की चटनी :—चुक़न्दर को धोकर चूल्हे पर खपड़े में रखकर नर्म कर लेवें। फिर उन को छील कर टुकड़ों में काट लेवें और पानी मिले हुए नींबू के रस में मिला कर खायें।

काहू—इस को धोकर और थोड़ा सा तेल, नींबू का अर्क़ (रसा) (न कि जौहर नींबू अर्थात् नींबू का सत) और थोड़ी सी शक्कर के साथ बना लेवें।

आलू व सेब की चटनी :—आलू छिलके सहित अच्छी प्रकार से उबाल व छील कर कतर लिये जावें। इसी प्रकार से कई एक खट्टे सेब भी छील कर कतर लिये जावें, और दोनों को थोड़ा सा तैल और नींबू के रस सहित चला लिया जावे।

१—अंग्रेज़ी शब्द है अजमोद या अजमादे के वृक्ष को कहते हैं हिन्दी में राँडनी कहते हैं।

मटर, मोठ और मसूर :--विना छिलके निकाली हुई शुष्क मटर चाहे मोठ या मसूर एक दिन पहिले संध्या समय ठंडे जल में भिगो दिये जावें और यदि संभव होतो निर्मल हलके वर्षा के जल में प्रातः काल देगची में इतने जल के साथ जो उन को ढक लेवें रख देवें। थोड़ा नमक (बहुत ही कम नमक) तरातेज, और मरवे की पत्ती इसमें चाहें तो मिला लेवें। दाल के इस अन्न को अच्छी प्रकार पकाएँ परन्तु ऐसा पके कि जब वह पक जावे तो सब या लगभग सब जल उस में शुष्क हो जावे; मटर या मोठ-मसूर इस रीति से अपने स्वरूप में रहती हैं, और उस दशा की अपेक्षा कि वे कुचली जावें या उनमें घी मिला दिया जावे अधिक बलदायक व शीघ्र पाचक होती हैं।

आलू के लड्डू:—(दो मनुष्यों के लिये) लगभग १० छटाँक आलू अच्छी प्रकार से उबालो, फिर छिलका उतार कर ठण्डे कद्दूकस पर उनको कस लो, कुछ रोटी को काट कर उस के टुकड़े करलो और उनको घी में भूनलो और एक मुर्गी का अंडा[1] और वे कसे हुए आलू और थोड़ा सा साधारण बिना छना हुआ आटा अच्छी प्रकार से उनमें मिलाओ, और हाथ से सेब के बराबर उनके लड्डू बना लो, और उबलते हुए पानी में १० मिनट तक रख दो। इस बात को देखते रहो कि वे घुल न जावें। वे किसी फल, प्याज़, व मक्खन के साथ खाए जा सकते हैं।

२—यह पुस्तक एक यूरोपियन की रची हुई है जिनमें अंडे को निरामिष आहार नहीं मानते हैं और मांस त्यागी भी वहाँ उसको खाते हैं। भारतवर्ष में लोग अंडे को मांस भोजन मानते हैं। आशा है कि यूरोप देश के निवासी भी हमारे ही तरह इसको भी मांस भोजन मानेंगे।

नोट

यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है और बहुधा लोगों ने मुझ से यह पूछा भी है कि उन भारतीयों को जो इस चिकित्सा को करें क्या-क्या भोजन करने चाहिये। इस विषय में निम्नलिखित बातें मेरी सम्मति और अनुभव में आवश्यक प्रतीत होती हैं (१) रोगी की पाचन-शक्ति के विचार से उसको वह भोजन करना चाहिये जो उसका अमाशय पचा सके। (२) भोजन वानस्पतिक हो, फल हों, चाहे दूध हो। (३) रोगी को जितना ही शीघ्र पाचक भोजन दिया जावे उतना ही लाभकारी होगा (४) प्रत्येक भोजन अत्यन्त साधारण रीति से बनाना चाहिये, केवल नमक व जल के साथ और मसाले काम में न लाए जावें, यदि घी डाला जाय तो रोगी की पाचन-शक्ति का विचार करके बहुत थोड़ा पकते हुए भोजन में मिला दिया जावे। चिकित्सा के आरम्भ में घी से सर्वथा बचाव रखना चाहिये। (५) अति बलहीन रोगियों को किञ्चित मोटे और बिना छने गेहूँ के आटे की लपसी, दाल का पानी, गेहूँ का दलिया, या गाय का दूध या पतला पदार्थ जैसे यव का जल जो अति सानुकूल हो दिया जावे। कुछ मुनक्का (दाख) भी लाभदायक होंगे चाहे अकेला चाहे किसी अन्य पदार्थ के साथ। (६) रोटी बिना छने हुए अर्थात् चोकर सहित मोटे आटे की ही खानी उचित है, गेहूँ के आटे की श्रेष्ठ रोटी अच्छी प्रकार से सेंकी हुई हो। जिस प्रकार से हिन्दुस्तानी रीति पर रोटी बनाई जाती है, जिसको चपाती या फुलका कहते हैं—अति श्रेष्ठ बनती है। जिस रोगी को लपसी, दलिया, रोटी, दाल-भात, भी न पचे उसको गेहूँ का कचा दलिया या मोटा आटा चोकर सहित और उबली हुई हरी तरकारी और फल खाना चाहिये। यदि इच्छा हो तो नमक भी खावें।

(७) शाक (तरकारी) बनाने की विधि सब मनुष्य जानते हैं, नम्बर चार की शिक्षा पर विचार करके उनको बनाना चाहिये और पकाने में उनको पूर्ण प्रकार से गलाना चाहिये, जहाँ तक हो सके झोलदार (पतली) तरकारियाँ न खाई जावें; वे झोलदार होने से सरलता से निगली जाती हैं। और इस प्रकार उनको वह रस जो भोजन को चबा-चबा कर मुख के रस को प्राप्त करता है नहीं मिलता। जो तरकारियाँ गरिष्ट हैं और शीघ्र पाचक नहीं हैं उनसे बचे रहना उचित है—(८) मसालों में जीरा सौंफ, धनियां—अजवाइन बघारते (छौंक देते) समय या उसके पश्चात्

पीस कर तरकारियों में मिलाया जा सकता है—गर्म मसाला जैसे लौंग, मिर्च, हींग, इत्यादि काम में न लाये जावें—बिना किसी मसाले के केवल थोड़ा सा नमक मिला कर पकाना और भी श्रेष्ठ और अधिक लाभकारी है—(६) भोजन जहाँ तक हो अकेला खाना उचित है, जैसे यदि एक समय में रोटी और एक प्रकार की तरकारी खा सकते हैं तो साथ में दाल या दूसरी तरकारी न खाएँ—(१०) रोगी को भोजन थोड़ा ही देना चाहिये। वह उसे अच्छी प्रकार चबा-चबा कर खाय—जिससे मुख का रस भोजन में पूर्ण प्रकार से मिल जावे। मिस्टर ग्लेड स्टोन, इंग्लिस्तान के मन्त्री प्रत्येक ग्रास को ३२ बार चबाते थे, उनकी उत्तम आरोग्यता और दीर्घायु होने का कारण उनके कथनानुसार एक यह भी था—(११) सदा क्षुधा शेष रख कर खाओ—और बारम्बार के खाने से बचे रहो—जब तक एक बार का खाया हुआ पच न जावे तब तक कोई दूसरी वस्तु या दूसरी बार न खाओ। बारम्बार खाने से पाचन-शक्ति को हानि पहुँचती है।

सूचना—पूर्वोक्त शिक्षाओं के अतिरिक्त जो बातें इसी भोजन के प्रकरण में आई हैं उन पर भी ध्यान रहे—विदित हो कि यह कहावत है कि 'बद परहेज़ शख्स अपनी क़ब्र खुद अपने मुँह से खोदता है।" (अर्थात् कुपथ्य से रहने वाला मनुष्य अपनी मृत्यु अपने मुँह से स्वयं बुलाता है) वास्तव में बहुत सत्य है, कुपथ्य के साथ कोई भी चिकित्सा भला नहीं कर सकती। पूर्ण आरोग्यता प्राप्त होने की तो सम्भावना ही कहाँ है ? कुपथ्य में रहने वाले रोगी को स्वास्थ्य प्राप्त कराने का भार कोई वैद्य या चिकित्सक अपने ऊपर नहीं ले सकता, यदि पूर्ण स्वास्थ्य की इच्छा रखते हो तो प्रथम शिक्षाओं पर कटिबद्ध रहो और इस जल चिकित्सा का उपरोक्त रीति से व्यवहार करो।

इस जल-चिकित्सा के सम्बन्ध में

भाषानुवाद कर्त्ता की ओर से कई आवश्यक सूचनाएँ

—:०:—

पाठक गण ! मुझको विश्वास है कि प्रथम भाग को अन्त तक पढ़ कर आपको विदित हो गया होगा कि सामान्यतः चिकित्सा किस प्रकार आरम्भ की जावे। यदि इस समय तक भी स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं हुआ है तो पुस्तक को अन्त तक कई बार ध्यान पूर्वक पढ़ने पर यह बात आपको अवश्य ही स्पष्ट हो जावेगी।

बहुत से मनुष्य ऐसे हैं कि जिनको पुस्तक पढ़ लेने पर भी इस बात की आवश्यकता रहती है कि वे यह जानें कि प्रत्येक रोगी की चिकित्सा किस प्रकार आरम्भ की जावे। बहुधा लोग यह प्रश्न करते हैं कि पुस्तक में भिन्न-भिन्न रोगों या व्याधियों के नाम लिख कर प्रत्येक के लिये स्नान क्यों नहीं लिखे गये ?

पाठक गण ! जब रोग केवल एक है तो यह प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता—प्रत्येक रोग की दशा में चिकित्सा करने की एक ही विधि है—रोगी के बल, आयु और दशा के विचार से केवल स्नान में न्यूनाधिकता हो जाती है—वह भी अधिक नहीं। अतः प्रत्येक मनुष्य की सुविधा के लिये इस स्थान पर उन आवश्यक शिक्षाओं का लिख देना लाभ से शून्य न होगा। जिनके पढ़ने से प्रत्येक मनुष्य अपनी चिकित्सा आरम्भ कर सकता है :—

सामान्य

जब किसी रोगी की चिकित्सा प्रारम्भ करनी हो तो यह उत्तम होगा कि प्रथम उसको ८ या १० दिन तक प्रातःकाल व तीसरे पहर को एक-एक फ्रिक्शन हिपबाथ ८ से १० मिनट का देवें—इस स्नान के लिये जल ६८ से ८४ अंश तक का लिया

जा सकता है, साधारण दशा में ८० से ८२ अंश का ठीक होगा। यदि रोगी बूढ़ा या बालक है, या अति निर्बल है तो उचित है कि ८२ से ८६ अंश तक का जल लेवें। किन्हीं-किन्हीं दशाओं में ८६ से ऊपर ६६ अंश तक का भी जल ले सकते हैं। यदि रोगी तरुण और बलवान है तो ८० अंश से कम भी ले सकते हैं, परन्तु ६८ अंश से कम किसी दशा में भी नहीं लेना चाहिये। साधारण प्रकार से कूप का ताज़ा जल ले सकते हैं। -

इस स्नान के पश्चात् यदि रोगी में बल है तो उसको शुद्ध वायु में कुछ टहलना चाहिये जिससे थोड़ा सा पसीना प्रकट होने लगे। रोगी को इतना टहलना उचित नहीं कि जिसमें वह थक जावे। यदि टहला न जावे तो घर में ही वस्त्र ओढ़ कर लेटे रहना चाहिये। मुँह न ढके और इस प्रकार अपने शरीर में गर्मी लावे। जाड़े में तो धूप में शिर की रक्षा करके बैठने से गर्मी शीघ्र आ जाती है।

यदि रोगी बहुत छोटा बच्चा ही है तो उसको तीन या चार मिनट का हिप बाथ ही पर्याप्त होगा।

(२) उपरोक्त रीति से आठ या दस दिवस हिपबाथ देने के पश्चात् प्रातःकाल के हिपबाथ के बदले फ्रिक्शन सिट्ज़बाथ और तीसरे पहर या उसके पीछे सायंकाल तक साधारण हिपबाथ देना उचित है।

इस सिट्ज़बाथ को पहिले दो-तीन दिन करें, केवल दस-बारह मिनट तक करें। फिर बढ़ा कर पचीस-तीस मिनट का कर देवें। यदि रोगी निर्बल या बूढ़ा है तो अत्यन्त शीतल जल न लेना चाहिये। गर्मी की (ऋतु) में तो जल जितना ही शीतल लिया जावे उतना ही उत्तम है, परन्तु शरद ऋतु में या उन स्थानों में जहां जाड़ा अत्यन्त अधिक होता है, और जल भी अति शीतल प्राप्त होता है, ऐसे स्थानों के लिये भी ताज़ा जल या उससे कुछ अधिक शीतल जल ले सकते हैं। इस स्नान के लिये ताज़े जल में गर्म (उष्ण) जल न मिलाया जावे। यदि ताज़ा जल बहुत शीतल हो, (५० या ६० अंश से भी कम का हो) तो उसमें कुछ गर्म जल मिला सकते हैं।

(३) रोगी के समस्त शरीर को कुछ सप्ताहों तक प्रति सातवें दिन एक स्टीम बाथ देवें, तरुण और बलवान मनुष्य को आधे घण्टे का और वृद्ध तथा बच्चों और निर्बल मनुष्यों को कुछ कम समय का अर्थात् १५ या २० मिनट का देवें—यदि रोग

बढ़ाव पर हो तो इनको भी आधे घण्टे का ही दे सकते हैं। स्टीम बाथ के पीछे तुरन्त ही फ्रिक्शन सिट्ज़बाथ या हिपबाथ अवश्य दें। यदि हिपबाथ लिया जावे तो उसके आदि या अन्त में समस्त शरीर को उसी जल से जिसमें हिपबाथ लिया गया है, या उसी के समान दूसरे अच्छे जल से शीघ्रता से धो डालें, और फिर शरीर को वस्त्र से पोंछ कर गर्म वस्त्र धारण करके किसी प्रकार गर्मी लावें जिससे शरीर में कुछ पसीना आ जावे। जिन रोगियों को पसीना नहीं आता है उनको कुछ दिनों तक प्रत्येक सप्ताह में दो बार स्टीमबाथ देना चाहिये और जब पसीना अपने आप शारीरिक पुरुषार्थ से आने लगे तो ऐसे स्टीमबाथ को कम कर दें अथवा बन्द कर दें।

(४) यदि आवश्यकता प्रतीत हो तो पृथक-पृथक अंग के स्टीमबाथ हर समय लिये जा सकते हैं और बीच-बीच में तीसरे चौथे दिन सनबाथ भी दे सकते हैं। यदि स्टीम बाथ न लिये जावें तो केवल सनबाथ भी एक दिन बीच में छोड़ कर दे सकते हैं और बड़ी आवश्यकता हो तो कुछ दिनों तक प्रति-दिन भी दे सकते हैं।

(५) यह अच्छा होगा कि दो या तीन सप्ताह चिकित्सा करने पर चार, पाँच या सात दिन के लिये चिकित्सा को बन्द कर दिया करें। विशेष कर निर्बल रोगियों के लिये यह लाभकारी होता है। परन्तु चिकित्सा बन्द करने पर आहार का पथ्य अवश्य रहना चाहिये। स्त्रियों के मासिक धर्म के दिनों में तो यह चिकित्सा अवश्य ही बन्द कर देनी होगी।

(६) यह आवश्यक है कि चिकित्सा के संग परहेज अर्थात् भोजन में पथ्य कुपथ्य का ध्यान अवश्य ही रक्खा जावे। यदि कोई मनुष्य चाहे कि वह बद परहेजी करता हुवा किसी चिकित्सा से पूरा-पूरा लाभ उठावे तो यह असम्भव है।

(७) आहार के विषय में जो बातें इस हिन्दी भाषानुवाद में पहले बताई गई हैं उन पर चलना उचित है।

(८) चिकित्सा के प्रारम्भ में कुछ दिनों तक दूध, घी और देर में पचने वाली वस्तुएँ न खाना चाहिये, कुछ दिनों पश्चात् जब पाचन-शक्ति का सुधार हो जावे तो ये वस्तुएँ थोड़ी-थोड़ी मात्रा में खाई जावें।

विदित हो कि रोग मुक्त होने पर भी यदि रोगी उस आहार का व्यवहार रक्खेगा जो नेचर ने मनुष्य के निमित्त रचा है, और स्वास्थ्य रक्षा की बातों पर ध्यान देकर चलेगा, तो फिर उसको रोग न होगा। यदि वही कारण जिनसे कि रोग उत्पन्न हुआ था, स्वास्थ्य प्राप्त होने के पश्चात् फिर इकट्ठा हो जावेगा तो रोग भी फिर हो जावेगा। अतः यह आवश्यक है कि इस बात पर ध्यान रहे कि कहीं पहिले के समान ही कारण फिर न लौट आवें।

एक एलोपेथिक डाक्टर साहब ने जिन्होंने अपनी पुरानी गठिया को इस जल चिकित्सा से अच्छा कर लिया था, मुझसे पूछा कि बड़े-बड़े दर्द आदि रोगों में जैसा कि गुर्दे आदि के दर्द में और हैजा आदि रोगों में यह चिकित्सा शायद अधिक लाभप्रद नहीं, अतः मैं उचित समझता हूँ कि यह भी बतला दिया जावे कि हैजे (विशूचिका) की चिकित्सा जैसा कि इस पुस्तक में हैजे के प्रकरण में लिखी गई है करना उचित है—और दर्द की दशा में तुरन्त ही पूरे शरीर को एक स्टीमबाथ देकर तुरन्त ही एक फ्रिक्शन हिपबाथ दिया जावे तो विश्वास है कि दर्द तुरन्त ही जाता रहेगा। फिर चार या पाँच घण्टे पीछे (सिट्ज़बाथ) दिया जावे। और दिन रात में मिलाकर कुल दो या तीन फ्रिक्शन हिपबाथ और स्टीमबाथ से अधिक न दिये जावें। यह बात भी ध्यान में रखने की है कि ठण्डे स्नानों के बीच में साधारण दशा में, पाँच या छः घंटे से कम अन्तर न हो। तीव्र दर्द और तीक्ष्ण ज्वर की दशा में तथा उन दशाओं में जब कि ठण्ड लग जाने से खांसी या दर्द अथवा अन्य प्रकार के कष्ट उत्पन्न हुए हों तो उचित है कि सारे शरीर का स्टीम बाथ या पेड़ू का स्टीम बाथ अवश्य देवें, बड़ा ही लाभ होगा और कष्ट से तुरन्त निवृत्ति होगी। यदि कहीं फोड़ा, फुंसी और सूजन हो या कोई घाव हो और उनमें दर्द भी हो तो उचित है कि उस स्थान को कई बार स्टीमबाथ देवें, दर्द शीघ्र ही दूर हो जावेंगे, इसके अतिरिक्त और समय में, जैसे आगे घावों की चिकित्सा के विषय में लिखा गया है, ठण्डे जल की गद्दी रक्खें, परन्तु ध्यान में रहे कि भींगी हुई गद्दी के ऊपर ऊनी कपड़े की गद्दी अवश्य रखनी उचित है, जैसे सफ़ेद फलालैन के एक टुकड़े को भींगी हुई कपड़े की गद्दी पर रख कर ऊपर से कपड़े की पट्टी हलके से बांध देवें। ऐसा करते रहने से फोड़ा बिना कष्ट के पक कर फूट जावेगा और साफ़ होकर उसका घाव भर जावेगा और साफ होकर त्वचा बराबर हो जावेगी। अनुवाद कर्ता को इन सब बातों का अनुभव हो चुका है।

दो बातों पर कुछ और भी कहना आवश्यक प्रतीत होता है—प्रथम यह है कि भोजन के पश्चात् ही इस नवीन चिकित्साविधि का स्नान (बाथ) नहीं लेना चाहिये, कम से कम दो या तीन घण्टे बीत जाने पर यह स्नान लेना चाहिये। और इन स्नानों के पीछे भी जब तक कि शरीर में गर्मी न आ जावे कुछ भोजन न करना चाहिये।

दूसरे यह कि वह रोगी जो अपना नित्य का साधारण स्नान शरीर की बाहरी शुद्धता के अर्थ लेना चाहें तो उनको उचित है कि या तो चिकित्सा विधि के कुछ समय पहिले या दो घण्टे पीछे, शरद ऋतु में थोड़े गर्म जल से और गर्मी की ऋतु में साधारण ताज़े जल से स्नान कर सकते हैं।

आपका शुभचिन्तक—

श्रोत्रिय—कृष्ण स्वरूप

अनुवादकर्ता

द्वितीय भाग

स्नायु (नरवस Nervous) वा मानसिक विकार

निद्रा न आने की व्याधि।

—:०:—

रोगों की एकता का सिद्धान्त, स्नायु वा मानसिक विकारों से भी सम्बन्ध रखता है। उन्नीसवीं शताब्दी को वास्तव में स्नायु विकारों की शताब्दी कहा गया है क्योंकि यह रोग प्रत्येक स्थान में अनेक रूपों में पाये जाते हैं। नवीन प्रकार के सब रोगों के ठीक-ठीक नाम रखने और उनके लक्षण तथा कारण जानने में इस अभिप्राय से अत्यन्त प्रयत्न किया जाता है कि उनकी चिकित्सा का कोई उपाय ऐसा निकालें जो पूर्ण रूप से नहीं—तो लगभग तो ठीक होवे ही।

नरवसनेस (Nervousness) अर्थात् घबराहट, वा कम्पशीलता, न्यूरसथेनिया[1] (Neurasthenia), न्यूरेलजिया (Neuralgia) अर्थात् बातशूल, हाईपो-

---

१—एक प्रकार की ज्ञान तन्तु की दुर्बलता है जो पृष्ठ वंशिक मज्जा की क्रिया में विकार उत्पन्न होने से होती मानी जाती है जो अकस्मात् हो जाती है—यह डाक्टरों की सम्मति है—कारण इसका कुछ ही हो परन्तु स्पष्टतः इसके चिह्न यह हैं कि भोजन शरीर के भागों में परिणित नहीं होता, रोगी को एक ऐसा भ्रम सदा बना रहता है कि मैं अच्छा हूँगा या नहीं, आत्मघात के विचार सदा बने रहते हैं। चित्त पर भय सर्वदा आरूढ़ रहता है, एक प्रकार का आन्तरिक दुःख भी ऐसा होता है जिसको रोगी स्वयम् ही जान सकता है। स्नायु विकार से शरीर के प्रत्येक स्थान में एक प्रकार का ऐसा कष्ट होता है जो वर्णन नहीं हो सकता। यह कष्ट सदा नहीं बना रहता—परन्तु इसके आक्रमण होते हैं, चित्त पर व्याकुलता और अविश्वास तो सर्वदा बने ही रहते हैं, रोग कि अधिकता से निद्रा भी अवश्य जाती रहती है—साहस जाता रहता है—तुच्छ बातों से भय लगता है, पाचन-शक्ति में तो बहुत ही परिवर्तन हो जाता है। बहुत से लोग इसको एक प्रकार का वहम कहेंगे।

कोंड्रिया[2] (Hypochondria) अर्थात् वहम मिराक़, पित्तोन्माद, हिस्टीरिया[3] (Hysteria) अर्थात् बायगोला, मूर्च्छा, इन्सेनिटी (Insanity) अर्थात् उन्माद, विक्षिप्तता, इमबेसिलिटी अर्थात् न्यून बुद्धि, वा विकल बुद्धि, पेरेलीसिस (Paralysis) अर्थात् पक्षाघात, फ़ालिज ये रोग अब सर्वत्र प्रसिद्ध हैं और अन्यत्र इसी प्रकार के रोगों का (जिनका कारण केवल एक ही है) तो कहना ही क्या है।

इन कठोर नरवस (स्नायु) विकारों की अधिकता के साथ ही साथ नये-नये रोग वाह्य रूप से सदैव ही ज्ञात होते जाते हैं यद्यपि ये वाह्य रूपी चिह्न इन रोगों के मूल कारण के यथार्थ बोध के सम्बन्ध में कोई मुख्य पता नहीं देते। परन्तु नरवस (स्नायु विकार के रोगियों की दशा की परीक्षा करने से हमको एक प्रकार की आन्तरिक व्याकुलता और उद्वेग के चिह्न सदैव प्रतीत होते हैं। ऐसे रोगियों को सदैव ही एक प्रकार की अज्ञात और अकथनीय व्यथा का बोध हुआ करता है, उन्हें अपनी व्यथा के कारण का भी ज्ञान नहीं होता और न रोग को रोगी स्वीकार ही करता है।

कोई मनुष्य (रोगी), अतिवक्ता और कोई (रोगी) मौनी और मितीभाषी होता है। बहुधा मनुष्यों को निद्रा न आने का कष्ट भी रहता है। किन्हीं मनुष्यों में निचलापन और उत्साह प्रतीत होता है और कोई ऐसे भी हैं जिनमें असाध्य श्रेणी का आलस्य प्रगट होता है। कोई आत्महत्या के विचार में भटकता फिरता है क्योंकि वह अपने आपको निरर्थक समझता है--और सब संसार से वह अप्रसन्न होता है। कहीं-कहीं किसी धनाढ्य (लखपति) को देखिये कि आगामी निरर्थक भय के विचारों से वह नित्य ही दुःखी रहता है और ऐसे विचारों में वह सदैव

२—एक मानसिक रोग है जिसमें रोगी मुख्यतः अपने स्वास्थ्य के निमित्त अति व्याकुल व भयानक विचारों में लगा रहता है—रोग मुख्यतः स्नायु विकारों से होता है।

३—एक स्नायु विकार है जो बहुधा स्त्रियों ही को होता है इसमें रोगिणी अचेत हो जाती है—हाथ पांव खिंचने लगते हैं कंठ में अवरोध होता है। मानों पेट से गोला उठकर कंठ में जाता हो ऐसा प्रतीत होता है—वह कभी हँसने कभी रोने लगती है, मूर्ख समझ लेते हैं कि यह भूत का काम है। स्त्रियाँ विशेषकर किसी देवता का कोप समझ लेती हैं। इस मूर्खता के कारण बहुत सी स्त्रियाँ नष्ट हो जाती हैं, क्योंकि उनकी चिकित्सा मन्त्रादि से की जाती है। यह रोग वंश परम्परा से भी होता है।

निमग्न रहता है। किन्हीं मनुष्यों का समस्त शरीर ही सदा काँपता रहता है। किसी का एक अवयव, किसी का एक अङ्ग या शरीर निष्काम हो जाता या मारा जाता है। पुनः उन्माद से भिन्न और बहुधा एक दूसरे के विरोधी उल्टे चिह्न वाले रोग (जिनमें एक अत्यन्त निकृष्ट रोग पक्षाघात है) विचारणीय हैं।

इसके अतिरिक्त यह भी देखा जाता है कि ये रोग बहुधा लोगों को अपनी शक्तियों को काम में लाने देने से न्यूनाधिक रोकते हैं। कोई अपने अवयवों को काम में लाने का अधिकार खो देता है—किसी को अपने विचारों पर, अपनी स्वतन्त्रता पर, अपनी वाणी पर अधिकार ही नहीं रहता। इन रोगों के स्वरूप इतने भिन्न हैं कि हम यदि नरवस (स्नायु) विकार के सहस्रों रोगियों को देखें तो कठिनता से ऐसे दो रोगी मिलेंगे जिनमें वाह्य चिह्न ठीक-ठीक समान व एक से हों। अतः क्या यह आश्चर्य का स्थान नहीं है कि औषधि द्वारा चिकित्सा करने वाले लोगों ने अब तक इन रोगों के कारण, निदान, नामावली और औषधियाँ नहीं मालूम कीं। वे लोग इन रोगों को अपनी औषधियों से विनिष्ट करने में सफल नहीं हुए हैं। स्नायु व तन्तु को कुछ समय के लिये असमर्थ कर देना जुदी बात है।

यह नितान्त भ्रम है कि औषधियां स्वयं अपना कुछ प्रभाव डालती हैं। वास्तव में स्वयं समस्त शरीर ही विजातीय द्रव्य के निकालने की चेष्टा करता है चाहे इस कार्य में उसका प्रयत्न न्यून हो या अधिक।

एक दशा में विष को बलात् निकालने के अभिप्राय से शरीर का बढ़ा हुआ प्रयत्न स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह दशा उस समय होती है जबकि इतनी कम मात्रा में औषधि दी जाती है कि उसका प्रभाव शरीर को अशक्त व निर्जीवी करने वाला नहीं हो सकता। विष वाली औषधियों के बड़ी (एलोपेथिक) मात्रा में देने की दशा में शरीर के निर्जीव होने के चिह्न स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। और साथ ही साथ स्वास्थ्य प्राप्त करने के शरीर के प्रयत्न (तीव्र या एक्यूट Acute रोग) और दीर्घकालीन (अर्थात् क्रानिक Chronic) रोग के वाह्य लक्षण सामान्यतः दब से जाते हैं। एलोपेथिक औषधि द्वारा चिकित्सा में रोग के लक्षणों का आकस्मिक लोप हो जाने और फिर बारम्बार प्रकट होने का भी यही करण है।

प्रथम तो स्नायु के निर्जीव हो जाने से वे लक्षण मिट से जाते हैं। परन्तु जब शरीर में फिर बल आ जाता है, तो वही लक्षण पुनः प्रकट हो जाते हैं। अति तीव्र

विष की औषधियां बड़ी-बड़ी मात्राओं में दिये जाने से शरीर को यहां तक निर्जीव कर देती हैं कि मृत्यु हो जाती है। छोटी-छोटी मात्राओं में औषधि दिये जाने की दशा में चाहे वह मृत्यु का कारण भले ही न होवे फिर भी समस्त शरीर को हानि तो पहुँचाता ही है।

यह पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि बहुधा नरवस रोग (अर्थात् स्नायुविकार) वास्तव में उन औषधियों के व्यवहार के कारण ही उत्पन्न होते हैं जो पूर्व में साधारण रोग के मिटाने के लिये खिलाई गईं थीं। अल्प मात्रा में औषधि खिलाने की दशा में प्रकट रूप से शरीर पर सर्वथा उल्टा प्रभाव पड़ता है, शरीर निर्जीव नहीं होता है कारण यह है कि शरीर निर्जीव होने के बदले विष को दूर करने के लिये दूना प्रयत्न करता है और यह बढ़ा हुआ प्रयत्न केवल फ़ालिज या पक्षाघात की प्रारम्भिक दशा है। इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता।

नरवस (स्नायु) रोगों की चिकित्सा में (यह बात सर्वसाधारण अस्वीकार नहीं कर सकते) औषधि द्वारा चिकित्सा करने वाले वे महाशय भी जो प्रख्यात हैं सर्वथा असमर्थ हैं। यहां तक कि प्रसिद्धि डाक्टरों ने इस बात को बहुधा स्वयम् स्वीकार भी कर लिया है कि ऐसे रोगों में वे किंचित् भी सहायता नहीं कर सकते। वायु परिवर्तन, विदेश यात्रा से चित्त बहलाना, और इसी प्रकार के अन्य सहायक उपाय जिन से कुछ हानि नहीं पहुँचती है बता दिये जाते हैं, यदि कुछ समय के लिये आराम हो भी जावे तो भी हमको ऐसे उपायों से स्पष्ट प्रतीत हो जाता है—कि नरवस रोगों के गुणों (लक्षणों) और कारणों से ये महाशय कितने अनभिज्ञ हैं। प्राचीन वैद्यों और डाक्टरों की समझ में जो बात आनी सम्भव न थी और जिस बात ने उन प्रसिद्धि लोगों के शिर चक्कर में डाल दिये थे, वह बात इस नवीन चिकित्सा विद्या (न्यू साइंस आफ हीलिंग) के द्वारा समझ में आने लगी और अब स्पष्ट हो गई है। स्वास्थ्य के विषय में मेरी रिपोर्ट मेरे रोगियों में से कुछ के ही प्रेरित किये हुये सार्टिफिकेट, अभिनन्दन पत्र, सम्पूर्ण वैज्ञानिक युक्ति पूर्ण कथन व लेख मेरे अभिप्राय को अधिक स्पष्ट और अधिक विश्वस्त रीति से सिद्ध करेंगे। अतः मैं पाठकों से आज्ञा चाहता हूँ कि अब इन रोगों के विषय में आवश्यक बातों पर अपने इस लेख में प्रकाश डालूँ।

हमारे शरीर में नर्वज् (स्नायु) दो प्रकार के होते हैं—प्रथम वे जो हमारी इच्छा के आधीन हैं, द्वितीय वे जो ऐसे नहीं हैं और जो साँस लेने, भोजन पचाने

तथा रक्त संचार में सहायक होते हैं। परन्तु यदि मैं यह कहूँ कि विजातीय द्रव्य के भार से शरीर में जो रोग उत्पन्न होते हैं वही सब स्नायु-विकार भी हैं, तो बहुत से मनुष्य आश्चर्य करेंगे। यह बात सहज ही स्पष्ट रूप से समझाई जा सकती है। हमको रोग का ज्ञान प्रथम ही उस समय होता है जबकि उसके द्वारा शरीर के साधारण कामों में अवरोध होता या दर्द उत्पन्न होता है। इससे स्वाभाविक रीति से यह प्रकट होता है कि रोग न्यूनाधिक वृद्धि की दशा में आ गया है। जिसका सच्चा अन्वेषण मेरी पुस्तक 'मुखाकृति विज्ञान'[1] की सहायता से हो सकता है। हमको यह भी ज्ञात है कि शरीर में बिना विजातीय द्रव्य की स्थिति के रोग का होना असम्भव है। शरीर में विजातीय द्रव्य का भार किसी विशेष भाग पर ही विगाड़ करने वाला प्रभाव उत्पन्न नहीं करता है; वरन् देह के उन अंगों या विभागों से जो रगें [तन्तु, स्नायु] सम्बन्ध रखती हैं या जो उनके कामों को उचित प्रकार से जारी रखती हैं उन रगों पर भी बुरा प्रभाव डालता है। जब तक रगों के सम्बन्ध या संयोग पर भी (विजातीय द्रव्य का) प्रभाव नहीं होता है। तब तक हमको रोग का ज्ञान भी नहीं होता है। साधारण रूप से देखने वाला मनुष्य केवल उन रगों को जो उसकी इच्छा के आधीन हैं, और उन व्याधियों को जो उसकी इच्छा के आधीन रगों के आश्रित अंगों पर अपना प्रभाव डालती हैं विचार में लाता है।

जो रोग साँस लेने, रक्त-संचार, और पाचन-शक्ति (जठराग्नि) में विघ्न उत्पन्न करते हैं वे क्रमानुसार शनैः-शनैः प्रकट होते हैं। इस दशा में भी रगों पर उसी प्रकार से प्रभाव पड़ता है और वही रगें हमको रोग का भी ज्ञान कराती हैं। यह रगें इच्छा के आश्रित नहीं हैं किन्तु उनकी साधारण नित्य की क्रिया पर उन अंगों का संचालन निर्भर है जो इच्छा के आधीन नहीं हैं जैसे फेफड़े, हृदय—उदर, गुर्दे—मूत्राशय और आंतें। हमको (जठराग्नि) की व्यथा या गुर्दे—मूत्राशय—हृदय, फेफड़ों या उदर के किसी रोग का ज्ञान उस समय तक नहीं होता जब तक उनके आश्रित रगों की साधारण क्रिया में भी विजातीय द्रव्य के भार के कारण बाधा न पड़ जावे। अतः इन उपरोक्त रोगों में से प्रत्येक, सदा साथ ही साथ रगों (स्नायु) का अवरोध भी बतलाता है—जैसे जठराग्नि की व्यथा हो ही नहीं सकती जब तक

१—यह पुस्तक लुई कुहनी कृत अँग्रेज़ी "साइन्स आफ़ फ़ेशियल एक्सप्रेशन" का हिन्दी अनुवाद है जो इस जल चिकित्सा का युक्ति पूर्ण निदान है। छप कर तैयार है। मू० ४)

कि उसके साथ ही उन स्नायु अर्थात् रगों की दशा में भी बाधा न हो जिनके आश्रित पाचन की क्रिया हुआ करती है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, आरोग्य-शरीर प्राप्त करने के लिये सर्व-प्रथम पाचन शक्ति ठीक प्रकार की होनी आवश्यक है। कारण यह है कि सम्पूर्ण विजातीय द्रव्य जो पैतृक सम्पत्ति रूप से प्राप्त नहीं हुए हैं। प्रथम मन्दाग्नि व दुष्ट जठराग्नि के द्वारा ही शरीर में पहुँचते हैं। इसलिए प्रत्येक रोग और इसी कारण से सब नरवस (स्नायु के) रोग या तो जठराग्नि के बिगाड़ से उत्पन्न होते हैं अथवा पैतृक सम्बन्ध से प्राप्त होते हैं। सब रोगों का चाहे वे कुछ भी क्यों न हों यही साधारण कारण है। जबकि शरीर में अभी तक यथेष्ट जीवन-शक्ति शेष है तो वह विजातीय द्रव्य के निकालने का प्रयत्न किसी तीव्र (एक्यूट Acute) रोग के द्वारा करता है, परन्तु जब आवश्यक जीवन-शक्ति शेष नहीं रहती है तो गुप्त दशा में दीर्घकालीन (क्रानिक Chronic) रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे रोग सर्वथा कदापि नहीं मिटते हैं अधिक से अधिकतर वे अपने स्वरूप को बदल लेते हैं—और अन्ततः भयानक नरवस (स्नायु के) और मेण्टल (मानसिक) रोगों के रूप में उन्नत होते हैं। नरवस रोग केवल दीर्घकालीन (गुप्त, छिपे हुए) शारीरिक रोग हैं—लक्षण उनके चाहे कुछ भी हों।

स्नायु सम्बन्धी रोग में और सब रोगों के समान हमको (एक विशेष लक्षण के सदृश) शीत या बढ़ी हुई उष्णता की दशा का होना प्रतीत होता है—जो शरीर में एक प्रकार के आन्तरिक ज्वर के कारण से होता है।

इस रीति से हम एक अत्यावश्यक सिद्धान्त निकालते हैं वह यह है कि "स्नायु-विकार केवल दीर्घ कालिक छिपे हुये ज्वर को ही बतलाते हैं।" अतएव यदि मैं यह कहूँ कि नरवस (स्नायु सम्बन्धी) रोगों का वही कारण है जो चेचक (शीतला) व खसरा, स्कारलेट फ़ीवर, (रक्त ज्वर), डिफथेरिया (मांस सन्तानिका), सिफलिस (उपदंश) इत्यादि का होता है—तो यह परिणाम निकलता है कि जिस रीति से इन रोगों की चिकित्सा सफलता के साथ होती है वही अवश्य नरवस रोगों की दशा में भी कल्याणकारी होगी। और यह ऐसी बात है कि हमने अपनी चिकित्सा की परीक्षा में सहस्रों रोगियों पर सिद्ध करके दिखला दी है। जैसा इस पुस्तक की समाप्ति पर दिये हुये प्रशंसा पत्रों द्वारा प्रकट होता है।

इन बातों से सब नरवस रोगों का वृत्तान्त, लक्षण, व चिकित्सा एक नियमित रीति से हमारी समझ में आती है। आगे को हम अन्य चिकित्सकों के सदृश असहाय दशा में बैठे हुये न देखेंगे। वरन् रोग का कारण जानकर हम पूर्ण सहायता देने का या आरोग्यता प्राप्त करने का सत्य मार्ग भी जानते होंगे।

प्रत्येक मनुष्य जो मेरे सदृश रोगों की बड़ी सेना को विचार से देखता है, उसको सहज ही में दिखलाई दे जावेगा कि वही मनुष्य लाभकारी उपदेश (चिकित्सा या आरोग्यता के विषय में) दे सकता है जोकि रोगों के लक्षणों के तत्त्वों से पूर्ण विज्ञ है। रोगों की ठीक वही दशा है जो एक सेना की होती है। किसी सेना का ठीक संचालन वही सेनापति कर सकता है जो उस सेना के सैनिकों का पूर्ण अनुभव रखता हो। वह सेनापति जो उन सिपाहियों से ही अनभिज्ञ है जिनसे उसकी सेना की रचना हुई है—अवश्य ही परास्त हो जावेगा। यही दशा आज कल के[1] स्पेशेलिज्म की है। चिकित्सा की विद्या में स्पेशेलिज्म अवश्य ही इस विद्या की नष्टकर्ता होगी—और मनुष्यों के हृदय में इसकी ओर से बराबर घृणा होती जायगी। कोई स्पेशेलिष्ट भला किस प्रकार से विद्या को लाभ पहुँचा सकता है यदि वह उन नियमों को ही; जिनसे मनुष्य का शरीर सम्बन्ध रखता है, व्यवहार में नहीं लाता—और सब शरीर पर ध्यान रखे बिना शरीर के एक भाग की चिकित्सा करता है।

चिकित्सा विद्या में सब स्पेशेलिज्म हमको एक पांव पीछे को हटा सा विदित होता है वह मार्ग निर्थक है—सम्पूर्ण से पृथक किया हुआ केवल एक भाग या अंग है; वह इससे अधिक और कुछ भी फलदायक नहीं है कि हमारी बुद्धि की दृष्टि को अन्धकार में डाल दे। केवल वही मनुष्य जो सम्पूर्ण को पूर्णतया और ठीक रीति से समझता है और जो सृष्टि को एक महान् अभेद्य विश्व जानता है—वही इस योग्य है जो उन सब आश्चर्यजनक घटनाओं को जो दृष्टिगोचर होती है ठीक रीति से समझ कर उनके तत्त्व को बता सके, और जिन नियमों के आधीन ये प्राकृतिक घटनाएँ हों उनसे लाभान्वित हो सके। अनेक बार यह अनुभव हुआ है कि एक

१—स्पेशेलिज्म (Specialism) अँग्रेज़ी शब्द है जिसका अर्थ यह है—कि किसी विद्या, कला, और साइंस के एक विशेष भाग को ही लेकर उसमें ही उन्नति करना जैसे डाक्टरों में कोई ऐसे हैं कि आँख सम्बन्धी रोगों और उनकी चिकित्सा में ही केवल उन्होंने अन्वेषण वा खोज की है—किसी ने कर्ण के सम्बन्ध में—और किसी ने स्नायु के सम्बन्ध में इत्यादि—

वस्तु या द्रव्य केवल ऊष्णता की न्यूनाधिकता की श्रेणी के कारण ही एक दूसरे से न मिलने वाले भिन्न रूपों में दिखाई देता है। मुझे फिर आप सज्जनों को जल के विषय में स्मरण कराना है जिसको हम भिन्न-भिन्न स्वरूपों में देखते हैं—अर्थात्—द्रव वस्तु (जल के सदृश) कुहरा के समान, भाप के रूप में—मेघाकार; केवल गर्मी की न्यूनाधिकता से ही जल के ये रूप होते हैं और सब रूपों में द्रव्य वही एक है (अर्थात् जल)।

नरवस रोगों के निदान में डाक्टरी औषधि विद्या-उतनी ही अपूर्ण है जितनी उनके आरोग्य करने में। बहुत सी दशाओं में तो डाक्टर महाशय नवरस रोगों को सर्वथा पहचान ही नहीं सकते। कितने ही नरवस रोगियों ने अनेक जगह परीक्षा में हताश होकर अन्त में मुझी से चिकित्सा कराई है। ये सब रोगी प्रचलित डाक्टरी की आरोग्यता के विषय में जीवित; प्रमाण हैं। डाक्टरों ने उनमें से बहुतों को पूर्ण रूप से आरोग्य माना था; और उनके रोगों को केवल मानसिक भ्रम (या कल्पना) बतलाया था; और मैं मुख की आकृति व दशा की विद्या (मुखाकृति विज्ञान) की सहायता से रोगी में विजातीय द्रव्य का होना तुरन्त ही मालूम कर सका। मेरी चिकित्सा की रीति से सब नरवस रोगियों ने अपनी दशा में आश्चर्य जनक परिवर्तन और शीघ्र स्वास्थ्य लाभ होना अनुभव किया है और उन्होंने यह भी अनुभव किया है कि विजातीय द्रव्य का जितना अधिक अधिक निकास होता गया उसी के अनुसार सदा लाभ और आरोग्यता प्राप्त होती गई है। जिस किसी ने एक बार विजातीय द्रव्य के इस निकास की ओर ध्यान दिया है और अपनी दशा में स्थिरता से उन्नति प्राप्त करने का अनुभव किया है, वह मनुष्य मेरे निदान की सत्यता, और मेरी चिकित्सा की सफलता में किंचित मात्र भी सन्देह नहीं कर सकता।

जो सज्जन मेरे अनुयायी हैं उनको आरोग्यता प्राप्त करने की चिकित्सा-विधि में पूर्ण कार्य-कौशलत्व प्रदान करने में मेरा निदान, एक बार ही, सदा के लिये अति उत्तम सहायता देगा। उसकी सहायता से प्रत्येक नरवस रोग का सत्य निदान किया जाना सम्भव होगा। उसी की सहायता से यह भी सम्भव है कि स्वयं रोगी को भी अपनी रोग की स्थिति होने के समाचार मिलने से, वर्षों पूर्व के अपने रोग की सूक्ष्म-उत्पत्ति और वृद्धि जान ले जैसा कि मुखाकृति विज्ञान की पुस्तक में

स्पष्ट लिखा गया है—पीठ (पृष्ठ) में विजातीय द्रव्य का इकट्ठा होना विशेषकर एक चिन्ह नरवस [स्नायु सम्बन्धी] रोग का है।

मानसिक-विकार– सब मानसिक रोगों की भी यही दशा है। इसी प्रकार से औषधि द्वारा चिकित्सा करने वाले उनके सच्चे लक्षणों को सज्जनों ने भली-भाँति से नहीं जाना है। वे कारण जो सामान्यतः कहे जाते हैं, मानसिक व्यथा के कारण नहीं होते—वरन इसका कारण देह के भीतर का उस विजातीय द्रव्य का भार होता है जो उसमें वर्षों से इकट्ठा होता आया है। मानसिक व्यथा में और उसमें पक्षाघात जिसको प्रोग्रेसिव Progressive (क्रमशः बढ़ने वाला) कहते हैं—अन्तिम और बहुधा असाध्य (चिकित्सा के अयोग्य) दशाएँ प्राप्त हो जाती हैं। जैसा मैं पहिले लिख चुका हूँ ये क्रमशः इकट्ठा होने वाले गुप्त विजातीय द्रव्य के भार, प्रकृति के प्रतिकूल जीवन वृत्तियों के कारण पाचन शक्ति (जठराग्नि) के क्रमशः न्यून हो जाने से—उत्पन्न होते हैं। स्वाभाविक रीति से प्रायः सभी मनुष्य एक ही प्रकार से प्रकृति के विरुद्ध जीवन व्यतीत नहीं करते हैं—अतः प्रत्येक मनुष्य मानसिक व्यथा में ग्रसित नहीं पाया जाता है। ऐसे रोगों का होना विजातीय द्रव्य की उत्पत्ति, वृद्धि, व उसकी उत्तेजना पर निर्भर है। मानसिक रोग तभी उत्पन्न होता है—जबकि बहुत से विजातीय-द्रव्य देह के भीतर एकत्रित हो—और यह भी उसी समय जबकि पीठ में विजातीय द्रव्य होने के साथ उसका (अर्थात् विजातीय द्रव्य का) चढ़ाव शिर की ओर होवे। मानसिक रोगों की अधिकता व बाहुल्य का दोष एक प्रकार से आजकल की सभ्यता पर है। यह सभ्यता मनुष्यों को प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध काम करने और सृष्टि के सर्वकाल में एक रस रहने वाले नियमों को तोड़ने की आवश्यकता प्राप्त कराती है। इसमें विशेष अपराध आज कल के औषधि-सेवन सिखलाने वालों का है जिनकी सम्मति व नियम स्वास्थ्य के विषय में सर्वथा उन बातों के विरुद्ध हैं जो नेचर अर्थात् प्रकृति सिखलाती है--जल को स्वास्थ्य के लिये हानिकारक मान कर उससे घृणा की जाती है--और उसके बदले बियर (Beer यवसुरा), वाइन (Wine द्राक्षारस) और-और मद्य जिनमें एलकोहल (Alchohol मद्यसार) मिश्रित है—चाहे मिनरल वाटर Mineral Water [वह जल जिसमें धातुए जैसे गंधक इत्यादि मिली हुई हों काम में लाये जाते हैं। मनुष्य हुक्का इस अधिकता से पीते हैं कि चिमनी [धुआँ निकलने की मीनार] बन जाते हैं और मद्यपान इतना करते हैं कि मानो मद्य के पीपे ही हैं—शारीरिक निर्बलता और आलस्य

उसका स्वाभाविक परिणाम है। कुछ आश्चर्य नहीं जो इस प्रकार से अशक्त हुई रगों (नर्वज़) को उत्तेजित औषधियों से सदा उत्तेजन दिये जाने की आवश्यकता हो। वे कमरे अथवा घर और कार्यालय जिनमें आवश्यकता से अधिक मनुष्य भरे हों स्वास्थ्य के लिये बहुत ही हानिकर होते हैं।

गावों में, जहां के रहने वाले अब तक न्यूनाधिक प्रकृति के अनुकूल जीवन व्यतीत करते हैं; और खुले हुए मैदानों में नित्य ही काम किया करते हैं, और जहां आज कल की डाक्टरी के बनाये हुए स्वास्थ्य के नियमों ने भी अब तक सर्व साधारण में प्रचार प्राप्त नहीं किया है— मानसिक रोगों को प्रायः जानते ही नहीं। यदि वहां यह रोग पाया भी जाता है तो मद्यपान करने की बान रखने वालों की सन्तान ही में यह रोग पाया जाता है। ऐसा बच्चा उस विजातीय द्रव्य के भार में ग्रसित रहता है जो उसने पुरुषाओं से पाया है और यह द्रव्य मानसिक अथवा किसी अन्य भयानक रोग का कारण हो जाता है —क्योंकि सन्तान सदा अपने माता पिता के शारीरिक बनावट व स्वभाव की सच्ची प्रतिमा होती है।

मद्यपान, जीव के शरीर पर पाचन का इतना बड़ा काम डालती है कि शरीर में किसी और काम के निमित्त शक्ति ही शेष नहीं रह जाती। मद्यपान करने वालों को जो अत्यन्त थकावट सन्ताप और बहुधा अप्राकृतिक निद्रा आती प्रतीत होती है उसका यही कारण है, क्योंकि उनके आमाशय को असाधारण पाचन का काम करना पड़ता है। पाचन के समय भोजन के सड़ने के संचार में जो वायु उत्पन्न होती है—उसका जो दबाव व प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है वह बहुधा मद्यपान करने वालों में मानसिक व्यथा का कारण होता है। पिता के मद्य से उन्मत्त होने के समय जो गर्भ रहता है, चाहे पूर्ण उन्माद हो या न्यून, तो बच्चा लगभग सदा विक्षिप्तता की ओर स्वभाव रखने वाला पाया जावेगा, यदि वास्तव में इस दशा को पहुँचने के पूर्व ही वह मृत्यु को प्राप्त न हो जावे।

प्रत्येक मानसिक रोग, चाहे वह परम्परा प्राप्त हो चाहे जीवन वृत्ति के कारण विजातीय द्रव्य के एकत्रित होने से उत्पन्न हुआ हो, पाचन का अव्यवस्थित दशा या पाचन के बिगाड़ से उत्पन्न होता है—और उसकी उत्पत्ति भी सर्व प्रकार के अन्य रोगों के समान पेड़ू से ही होती है। मनुष्य जितना ही अधिक सादेपन से सृष्टि के अनुकूल अपना जीवन व्यतीत करता है उतना ही वह अधिक आरोग्य व प्रसन्न

रहता है। यही कारण है कि हब्शी लोग उस समय तक मानसिक व्यथा से बचे हुए थे जब तक कि दास वृत्ति का प्रचार था। जब उन्हें इसके कारण बलात् परिश्रम करके स्वल्प व्यय में ही निर्वाह करना पड़ता था। इसके विरुद्ध अब वे स्वतन्त्रता की दशा में अपने उच्च श्रेणी के जीवन से लाभ उठाने में उन सब (भले बुरे) फलों के आधीन हैं जो सभ्यता का विष पान करने से प्राप्त होते हैं।

यह भली भाँति ज्ञात है की साधारणतया मानसिक व्यथा पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में कम होती है। इसका कारण निस्सन्देह यही है कि स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक साधारण रूप से अपना जीवन व्यतीत करती हैं—और मुख्यत: तम्बाकू व सुरापान के विषय में जिनमें स्त्रियाँ प्राय: उन्माद में ग्रसित पाई जाती हैं—रोग का पता प्राय: सदा पुरुषाओं से प्राप्त हुए विजातीय द्रव्य तक ही चलाया जा सकता है।

मानसिक व्यथा कि बहुत सी दशाओं में यह देखा गया है कि रोग से पूर्व या रोग के साथ ही शारीरिक व मानसिक उत्तेजन, व उत्साह अधिक उत्पन्न होता है—जिसका विशेष कारण इन रोगों के डाक्टर वर्णन नहीं कर सकते। शरीर में विशेषत: मस्तिष्क में विजातीय द्रव्य का क्रमश: एकत्रित होना मस्तिष्क पर बराबर अधिक बढ़ने वाला प्रभाव डालता है। अत: स्नायु के केन्द्रों पर भी प्रभाव पड़ता है और वर्षों में यह फल होता है कि इन अंगों में असाधारण वेग का उत्साह व उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है। इसका प्रकाश भिन्न प्रकार से होता है—जैसे कि स्नायु सम्बन्धी रोगों के विषय में पूर्व वर्णन कर चुके हैं—शरीर और मन बिना विश्राम के एक क्रिया से दूसरे की ओर दौड़ते हैं। लड़कपन में यह असाधारण दशा बहुधा विशेष योग्यता के रूप में प्रतीत होती है और युवा अवस्था प्राप्त होने तक इसका दूसरी सीमा तक परिवर्तन नहीं होता। आश्चर्य्य में डालने वाले बच्चे, बड़े होने पर बहुत कम विशेष योग्यता दिखलाते हैं।

मानसिक रोगों का कारण पीठ में विजातीय द्रव्य का एकत्रित होना है, जिसका भयंकर प्रभाव पेड़ू की मुख्य नसों पर स्पेइनल कार्ड (विशेष मोटी रग) पर—और नरवस सिम्पेथाइकरन पर होता है—यदि शरीर किसी तीक्ष्ण रोग के द्वारा विजातीय उस द्रव्य को निकालने में असमर्थ हो। गुप्त ज्वर से किसी प्रकार का ऐसा दीर्घ स्थायी रोग उत्पन्न हो सकता है जो बढ़कर अन्त में मस्तिष्क को हानि पहुँचाता है। तीव्र [तीक्ष्ण] रोगों में मस्तिष्क का बिगाड़ बहुधा शीघ्र उत्पन्न होता है और शीघ्र ही

मिट भी जाता है, यह उस दबाव व प्रभाव के अनुकूल होता है जो विजातीय द्रव्य भीतरी ओर उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त विक्षिप्तता की बहुत सी दशाओं में मस्तिष्क के कुछ काल तक सर्वथा ठीक हो जाने के उदाहरण भी कभी-कभी देखने में आए हैं—क्योंकि विजातीय द्रव्य का दबाव बीच में कुछ समय तक हो गया था, परन्तु जिस समय विजातीय द्रव्य का प्रभाव फिर तीव्र हो जाता है उस समय मस्तिष्क के कुछ समय के लिये ठीक होने की दशा जाती रहती है।

प्रोग्रेसिव पेरेलिसिस (Progressive Paralysis) क्रमशः वृद्धि करने वाला पक्षाघात मानसिक विकार की अधिकता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है—डाक्टरों को जब हम गौरव के साथ यह कहते हुये सुनते हैं कि जो मनुष्य इस प्रकार के पक्षाघात में ग्रसित होते हैं वे प्रायः अति आरोग्य और बलिष्ठ होते हैं—तो इससे हमको केवल यह सिद्ध होता है कि डाक्टर महाशयों को वास्तविक स्वास्थ्य का बहुत ही स्वल्प ज्ञान है—इस विषय में इनसे अधिक ज्ञान हमको है—हम यह जानते हैं कि कोई भी भयानक रोग जैसे प्रोग्रेसिव पेरेलिसिस इस प्रकार अकस्मात् नहीं हो सकता वरन् मुखाकृति विज्ञान के तत्त्व से रोग के पूर्व लक्षण और उनका आरम्भ बहुधा पहिले ही से जान लिये जाते हैं। अतः हम जनते हैं कि यह कथन सर्वथा व्यर्थ और निरर्थक है कि अति उत्तम स्वास्थ्य के मनुष्य एकाएकी मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों में ग्रसित हो सकते हैं।

मानसिक व्यथा उसी विजातीय द्रव्य को जो उसका कारण है निकालने से ही अच्छी हो सकती है। मेरी चिकित्सा के अभ्यास में बहुत से विक्षिप्त रोगी इस रीति से आरोग्यता प्राप्त कर चुके हैं—जिनसे मेरे कथन की सचाई पूर्णतः सिद्ध होती है। यहां मैं एक ऐसे रोगी का वर्णन करता हूँ।

२२ वर्ष की एक कन्या कई वर्ष से विक्षिप्तता के रोग से ग्रसित थी, उसके माता पिता (जिनको उसकी दशा सदा चिन्तनीय थी) उसको मेरे पास लाये। विजातीय द्रव्य का स्थान अनुकूल था अतः मैं हित बुद्धि से उसके माता पिता को यह सान्त्वना दे सका कि वे कम से कम मेरी चिकित्सा की परीक्षा करें। रोगिणी की दशा ऐसी थी कि वह स्वयं स्नान भी नहीं कर सकती थी—उसकी माता उसको स्नान कराती थी। परन्तु ४ सप्ताह में उसकी दशा इतनी बदली कि वह स्वयं स्नान कर सकी। भविष्य में उसके आचरणों में किसी प्रकार की अपवित्रता न रही और छः मास के भीतर ही वह अपने कुटुम्ब के आरोग्य मनुष्यों में गिनी जाने लगी।

यह शीघ्रता की आरोग्यता इस कारण से सम्भव हुई कि विजातीय द्रव्य का स्थान और उसका एकत्रित होना उसमें, अनुकूल था जिसके कारण पाचन-शक्ति का सुधार शीघ्रता से हो सका। आरोग्यता इस कारण से भी अधिक सरल थी कि रोगिणी चिल्लाती न थी वरन वेखटके और शान्ति पूर्वक चिन्तन में रहती थी।

परन्तु ऐसी दशाओं में जहाँ विजातीय द्रव्य का स्थान सानुकूल नहीं होता है—या जहां रोग की दशा ऐसी होती है कि मेरी रीत्यानुसार चिकित्सा होना सम्भव नहीं तो रोग साध्य नहीं समझा जा सकता—जैसे मैंने प्राय: ऐसी दशायें देखी हैं कि जिनमें रोगी स्नान करने को किसी प्रकार से भी राजी नहीं किया जा सकता। साधारणत: मानसिक विकार चई रोग के समान रोग की अन्तिम श्रेणी है—अत: आरोग्यता प्राप्त होने की आशा विशेषत: इसी में है कि रोग की चिकित्सा उसी समय से आरम्भ की जावे जब तक कि उसके लिये अनुकूल समय शेष है। पूर्व काल में यह बात असम्भव थी क्योंकि चिकित्सा का सत्य मार्ग ज्ञात ही न था और रोग (मानसिक) का प्रथम बार उस समय ज्ञात होता था जब सफलता के साथ चिकित्सा करने का समय निकल जाता था। आज कल मेरी पुस्तक मुखाकृति विज्ञान में कभी न चूकने वाला मार्ग (द्वार) मानसिक व्यथा के आगमन को वर्षों पहिले जान लेने का हमको प्राप्त है, फल यह है कि हम इस रोग का सामना विश्वास पूर्वक सफलता के साथ कर सकते हैं।

अधिकांश मानसिक रोग आजकल असाध्य समझे जाते हैं--परन्तु यह बात ठीक नहीं है। इसके प्रमाण में मैं एक रोगी की चिकित्सा का वृतान्त लिखता हूँ।

यह रोग तीव्र प्रोग्रेसिव पेरेलिसिस (पक्षाघात) का था जो उपदंश रोग के पीछे हुआ था। रोगी बहुत वर्षों से मन्दाग्नि से दु:खित था जो मानसिक चिन्ता के कारण (गृहस्थ के सन्तोष जिसके हेतु थे) सदा बिगड़ता गया था--यद्यपि चिकित्सा सब प्रकार की गई। जुलाई सन् १८६७ में रोगी कई चिकित्सकों के उपदेश से उस स्थान पर गया जहाँ मिनरल वाटर (धातुओं से मिला हुआ जल) का झरना गिरता था। इनका इतना बुरा प्रभाव हुआ कि उसकी दशा और भी अधिक बिगड़ गई। उसकी बोली बहकी-बहकी होने लगी और उसको यह सुध भी न रही कि वह क्या बकता है---अति प्रसिद्ध चिकित्सकों में से चार चिकित्सक बुलाये गये, और बहुत विचार कर उन्होंने मरकरी (पारे) का मर्दन (मालिश) बताया, और इसका प्रयोग

केवल दो ही बार हुआ। रोगी की दशा अन्त में इतनी बिगड़ गई कि जब चिकित्सक कुछ प्रश्न करता तो रोगी केवल उस प्रश्न को दोहरा भर सकता था, वह कुछ उत्तर नहीं दे सकता था। इसी प्रकार से जब आरोग्य होने की आशा सर्वथा जाती सी रही तो रोगी को वायना (Vienna) स्थान में ले गये और वहाँ एक प्रसिद्ध डाक्टर से जिसको ऐसे रोगों में विशेष अभ्यास (वा अनुभव) था सम्मति ली। परीक्षा से विदित हुआ कि रोगी को भयंकर एटोफ़ियासैरीब्री [मस्तिष्क क्षयः] का और पक्षाघात का रोग था, और साथ ही यह भी विदित हुआ कि रोगी को शीघ्र ही पागल खाने में बन्द कराना पड़ेगा। इस डाक्टर के मतानुसार रोग के नष्ट होने की कोई आशा नहीं रही थी--तो भी उसने आयोडीन Iodine पीने को बताया, परन्तु यह औषधि नहीं दी गई। एक मित्र के कहने पर उसके कुटुम्बी रोगी को लेकर सीधे लिपज़िग Leipzig स्थान में इसलिये आये कि मेरी चिकित्सा की परीक्षा अन्तिम उपाय समझ कर करें। चिकित्सा के आरम्भ में रोगी एक शब्द भी नहीं बोलता था, वह सर्वथा बेसुध था और उससे जो प्रश्न किये जाते थे उन पर ध्यान भी नहीं देता था। इसके अतिरिक्त वह और मनुष्यों के सदृश शौच क्रिया के करने में भी असमर्थ था, क्योंकि शरीर में उत्साह-शक्ति किंचित भी शेष नहीं रही थी। ठण्डक पहुँचाने वाले वाष्प [स्नान] और सादा प्राकृतिक (स्वाभाविक) भोजन का यह फल हुआ कि शीघ्र रोग का मिटना जान पड़ने लगा और तीन दिन में पाचन शक्ति का सुधार होने लगा। गई हुई चैतन्य-शक्ति एक सप्ताह में फिर लौट आई--और वह पुनः बात करने को समर्थ हुआ। उसकी दशा में उत्तरोत्तर सुधार होता गया। आठ सप्ताह में वह पूर्ण रूप से आरोग्य हो गया और पक्षाघात के सब लक्षण जाते रहे।

रोगों की एकता के सिद्धान्त का आश्चर्य जनक प्रमाण---इन दो रोगियों की चिकित्सा [व उनके स्वास्थ्य प्राप्त करने] से प्राप्त होता है। यदि मानसिक व्यथा की वास्तविक जड़ वही न होती जो अन्य रोगों की है तो उनको उन्हीं रीतियों से जो अन्य रोगों की चिकित्सा में इतने लाभकारी सिद्ध हुए हैं मिटाना [जैसा इन रोगियों की चिकित्सा में सम्भव हुआ] सम्भव न होता।

फेफड़ों का रोग; फेफड़ों की सूजन

जलन सहित क्षयी रोग; प्ल्यूरिसी (Pleurisy) ल्यूपस (Lupus)

—:०:—

एक ऐसा रोग जो चिकित्सकों को भ्रम में डालता है और सब विद्यमान चिकित्साओं को तुच्छ समझ कर उनका सामना करता है वह क्षयी रोग है--वर्तमान काल में यह विकराल रोग मृत्यु रूप है---जो सब मनुष्यों को भयभीत करने वाला और आयु या वृत्ति का कुछ विचार न करके अपने रोगियां का सफलता पूर्वक आखेट (शिकार) करने वाला है।

संसार में प्रायः कोई भी दूसरा रोग इतना अधिक फैला हुआ नहीं है---जैसा कि फेफड़े को नष्ट करने वाला यह भयङ्कर रोग, अपने भिन्न-भिन्न रूपों और दशाओं में है। इस घातक रोग के स्पष्ट-लक्षण इतने भिन्न होते हैं कि दो रोगियों में कभी समान नहीं होते--कोई रोगी कहता है कि साँस लेने में कष्ट होता है--यह दमा (स्वास रोग) है, कोई सिर में दर्द की व्यथा बतलाते हैं, कोई पाचन-शक्ति में बिगाड़ बताता है, किसी रोगी को उस समय तक कुछ भी नहीं विदित होता जब तक कि इसकी मृत्यु के दो सप्ताह पूर्व उसके फेफड़ों में पूर्णतया जलंन उत्पन्न न हो जावे। किसी को कुछ ज्ञान ही नहीं होता जब तक कि अकस्मात् घातक क्षयी[1] उस पर आक्रमण न कर ले, और वह थोड़े ही दिनों में इस लोक से चल बसता है। कोई समझता है कि उसकी हड्डियां सड़ने लगी—वास्तव में उसको क्षयी रोग है बहुत से मनुष्य जिनके फेफड़ों में बिगाड़ है उनके कन्धों में पीड़ा होने लगती है और बहुत से ऐसे हैं जिनको नेत्र तथा कर्ण रोग हो जाते हैं जिनके कारण रोग के वास्तविक कारण छिपे रहते हैं। बहुधा कण्ठ के रोग, कण्ठ की जलन, स्वांस की नालियों में जलन,

---

१—गैलेपिंग कंजम्पशन (Galloping Cansumption) कहलाती है, गैलेपिंग का अर्थ दौड़ता हुवा---कंज़म्पशन का अर्थ क्षयी अर्थात् ऐसी क्षयी जो बहुत शीघ्र रोगी का काम तमाम कर देती है।

नासिका की झिल्ली की पुरानी जलन इत्यादि क्षयी रोग के मूल कारण होते हैं। इसी प्रकार कोई कोई मनुष्य पाँव की पुरानी व्यथा में ग्रसित हो जाते हैं, टाँगों और पैरों पर खुले घाव हो जाते हैं। ल्यूपस[1] Lupus और हरपीस[2] Herpes के रोग भी इसी प्रकार के हैं। वे प्रत्येक ऐसे मनुष्य को जो मेरी उस विद्या से जिसके द्वारा मुख को देखकर रोग जाने जाते हैं—पूर्ण ज्ञान न रखता हो, रोग के वास्तविक स्थान के जानने में भ्रम में डाल देते हैं।

लगभग उन सब मनुष्यों का जिनकी प्राकृतिक चेष्टा क्षयी रोग की ओर होती है या जिनको क्षयी होती है यह स्वभाव होता है कि वे न्यूनाधिक अपने मुख खुले रखते हैं (दिन में ही नहीं वरन् रात्रि को सोने के समय में भी) जिस से हवा भीतर शीघ्रता से जावे। इसका अर्थ यह है कि शरीर में भीतरी गर्मी अधिक होती है, जिसके लिये बाहर से ठण्डी हवा को शीघ्रता से प्राप्त करने की आवश्यकता होती है।

फेफड़ों का यह काम है कि उस रुधिर को, जो शरीर में गति करता है नूतन वायु के द्वारा सदा स्वच्छ करते रहें। जब वे यह काम इस कारण से कि विजातीय द्रव्य उनमें स्थित हैं, नहीं कर सकते तो सब निष्फल द्रव्य[3] जो दूसरे रूप में बाहर निकाल दिया गया होता, शरीर ही में रहता जाता है और सदा ही परिमाण में बढ़ता जाता है और उस विजातीय द्रव्य को भी जो पहिले से शरीर में वर्तमान है, परिमाण में बढ़ाता जाता है, इस काम से विशेष कर फेफड़ों का सम्बन्ध है और वे ही इसी कारण सब से अधिक हानि भी उठाते हैं। परिणाम यह होता है कि रक्त की दशा नितान्त असाधारण हो जाती है, जिसके कारण शरीर में एक प्रकार की शुष्कता उत्पन्न करने वाली एक भयंकर गर्मी उत्पन्न हो जाती है। इस भीतरी बढ़ी हुई उष्णता का यह परिणामः होता है कि फेफड़ों में पुरानी जलन हो जाती है और वे गलने लगते हैं—ऐसे गले हुए भाग वह पदार्थ हो जाते हैं जो 'डेडटिश्यू' (मृत भाग) कहलाते हैं और प्रायः खांसने में कफ के रूप में बाहर निकल जाते हैं।

वर्तमान समय में नष्ट करने वाले सम्पूर्ण रोग (क्षय रोग) ठीक रीति पर अत्यन्त भयभीत दृष्टि से देखे जाते हैं। औषधि द्वारा चिकित्सा करने वाला डाक्टर

१—विषैला रोग है—जिससे नथने की हड्डियां गल जाती हैं।
२—इसका नाम मकड़ी है एक प्रकार की व्यथा है।
३—रक्त के स्वच्छ करने से जो बुरा द्रव्य निकलता है।

२५

[इसमें कुछ भी विवाद नहीं हो सकता] ऐसे रोगों का निश्चय पूर्वक निदान, फेफड़ों की क्रिया का शब्द सुनकर अथवा उनको ठोंक कर देखने से, उस समय तक नहीं कर सकता जब तक कि वे उस दशा को न प्राप्त हो जायँ कि फिर प्रायः उनको नीरोग करना असम्भव हो जावे। ऐसे प्राणघातक रोगों की प्रारम्भिक दशा वर्षों पूर्व विदित होने पर भी इस बात पर शोक होता है कि डाक्टर लोग अपने अपूर्ण निदान विधि द्वारा उनका निश्चय करने में अयोग्य है। रोगी फेफड़ों का ट्यू बर[1] क्यूलिन द्वारा अच्छा करना ऐसा ही असम्भव है जैसा कि उस पर शस्त्र क्रिया (चीरा-फाड़ी) करना, जैसा कि फेफड़ों के[2] गड्ढों को काट कर अलग करने के लिये वर्तमान समय में प्रयत्न किये गये हैं।

वस्तुतः ऐसी कोई चिकित्सा नहीं है जो फेफड़ों को नष्ट करने वाली क्रिया के लिये रामबाण औषधि का गुण रखती हो—किन्तु एक ऐसा साधन है जिससे हम नष्ट होने की क्रिया को उसी मार्ग से लौटा सकते हैं जिस मार्ग से वह शनैः-शनै प्रायः वर्षों तक वृद्धि करती रही है। मैं अपनी उस विष्कृत विधि से रोग की वृत्ति करने को पुनः उलटा लौटाने में समर्थ होता हूँ। फेफड़े सम्बन्धी सब प्रकार के रोगों की चिकित्सा में यह अत्यावश्यक है कि उनकी प्रारम्भिक दशाओं की उचित समय में पहिचान हो जाय जोकि मेरे 'मुखाकृति विज्ञान' के द्वारा ही वर्षों पूर्व और कभी-कभी बाल्यावस्था में ही जानी जा सकती है। इस कारण मेरी निदान विधि अत्यन्त उपयोगी है—डाक्टरों के लिये इस रोग का उचित समय पर निदान करना या न करना एकसा ही है क्योंकि वे लोग 'सिल' (क्षयी) को नीरोग नहीं कर सकते—चाहे उसकी प्रारम्भिक दशा हो या कुछ समय पीछे की। इस रोग की प्रारम्भिक दशाएँ ऐसी होती हैं जो रोगी को प्रायः स्वयं रोग का किञ्चित मात्र भी विचार नहीं होने देती। इस कारण प्रायः यह अत्यन्त कठिन होता है कि रोगी को इस बात का विश्वास दिलाया जाय कि उसकी तबियत इस सिल (क्षयी) रोग की तरफ झुकी हुई है। मैंने अत्यन्त शुभ विचारों से उमंग में आकर अपनी एक टहलनी को (जोकि देखने में हृष्ट-पुष्ट और नीरोग लड़की थी) सूचित किया कि वह 'सिल' क्षयी रोग में ग्रसित

१—एक औषधि है जिसका टीका क्षयी रोग से अच्छा करने के लिये लगाया जाता है।

२—अर्थात् वह भाग जो क्षयी रोग के नाश के कारण खाली हो गया है।

है—और उसके लिये यह उत्तम होगा कि वह मेरी निकाली हुई चिकित्सा करे—नहीं तो एक साल के भीतर उसका रोग प्राण घातक हो जायगा। लड़की ने क्रोधित होकर कहा कि वह पूर्णतया नीरोग है और उसे किसी प्रकार की चिकित्सा कराने की आवश्यकता नहीं है।

मैं यह सुनकर चुप हो गया, किन्तु उसकी मृत्यु के चार मास पूर्व मैंने उसे दुबारा उपदेश किया किन्तु शोक कि उसका वही परिणाम हुआ जो पहिले हुआ था। तीन मास पश्चात् वह रोग शय्या पर पड़ गई और चार सप्ताह के भीतर तीव्र क्षयी रोग में फँस कर काल के मुख में चली गई।

अब फेफड़ों के रोगों के कारण वर्णन करता हूँ। फेफड़ों के सब रोग, किसी पूर्व की अनुचित क्रिया से उत्पन्न हुए रोग के, जोकि पूर्ण प्रकार से मिट नहीं सका और जोकि औषधियों के द्वारा दबा दिया गया था, अन्तिम परिणाम होते हैं। बहुधा फेफड़ों के रोगों का आरम्भ (मूल) जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों से हुआ करता है—और यही दशा उन बच्चों की भी होती है जोकि जन्म से ही इस रोग की ओर चेष्टा रखते हैं। विजातीय द्रव्य शरीर में इकट्ठा होकर पुराना हो जाता है और जन्म के समय फिर बच्चों में प्रकट होता है और कंठमाला या क्षई रोग में परिणित हो जाता है। 'वीर्य्य' निस्सन्देह एक ऐसा रस है जिसमें माता पिता के सब गुण विद्यमान रहते हैं—और उसी से सन्तान में भी आ जाते हैं। मैंने देखा है कि वे सब लोग जिनको कंठमाला का रोग होता है अवश्यमेव क्षयी रोग में ग्रसित हो जाते हैं, मानो पहिला रोग पिछले रोग की केवल आरम्भिक अवस्था है, अतः यह देखने में आता है कि पूर्व दशा में अर्थात् कंठमाला के रोग की दशा शरीर में यथेष्ट शक्ति विजातीय द्रव्य के निकालने और अवयवों को सुरक्षित रखने की रहती है। पर शरीर धीरे-धीरे अपनी शक्ति क्षीण करता जाता है और अन्त में (अर्थात् जब कि) क्षयी की दशा हो जाती है इस योग्य नहीं रहता कि भीतर के अवयवों का विजातीय-द्रव्य से नष्ट होना रोक सके। यह सर्वथा सम्भव है कि उन मनुष्यों को जो पूर्णतः आरोग्य हों किसी प्रकार का क्षयी का रोग थोड़े समय के विजातीय द्रव्य के उपस्थित होने से दुःख दे सके। चाहे कितने ही क्षयी रोग के कीड़े स्वाँस द्वारा उनके शरीर के भीतर चले जावें। क्षयी रोग को वृद्धि होने को भीतर की गर्मी बहुत अधिक और नष्ट करने वाली होनी चाहिये—क्योंकि इस रोग के कीड़े ऐसी ही असाधारण गर्मी में वृद्धि को प्राप्त होते

हैं। शरीर में इतनी अधिक और असाधारण गर्मी का होना विजातीय द्रव्य के किसी विशेष दशा में उपस्थित होने से ही सम्भव है—चाहे तो यह[1] कई पीढ़ियों से चली आई हो अथवा रोगी ने सृष्टिक्रम के विरुद्ध अपना जीवन व्यतीत करने के कारण से अपना स्वास्थ्य सर्वथा बिगाड़ लिया हो।

विशेषकर यह बात स्पष्ट रूप से जानने की है कि फेफड़े के सब रोगों की जड़ भी अन्य और रोगों के सदृश उदर ही में है (अर्थात् पाचन-शक्ति के बहुत ही बिगड़ जाने में)। अधिकतर दशाओं में चाहे रोग माता पिता से ही प्राप्त क्यों न हुआ हो। ऐसी दशा में यह नहीं समझना चाहियें कि फेफड़ों में विजातीय द्रव्य सीधा संचार कर गया है। ठीक बात तो यह है कि और अवयवों के अपेक्षित फेफड़े पूर्ण रूप से वृद्धि को प्राप्त नहीं हुए। प्रत्युत निर्बल एवम् अपूर्ण रह गये। क्योंकि ऐसी दशा में उनमें विजातीय द्रव्य के रोकने की शक्ति कम हो जाती है—अतः फेफड़े स्वाभाविकतया अधिक विजातीय द्रव्य के एकत्रित होने के स्थान बन जाते हैं। विजातीय द्रव्य जो शरीर में इकट्ठा होता है वह पाचन शक्ति के बिगाड़ व भीतर के दवाव के कारण मुख्यतः उस स्थान में एकत्रित होता जाता है जहां उसको कम से कम रुकावट मिलती है। इस कारण यह अति आवश्यक हुआ कि वे मनुष्य जिनकी चेष्टा जन्म से ही फेफड़े के रोगों की ओर चली आती है अपने शरीर में विजातीय द्रव्य के एकत्रित होने को रोकें।

वही कारण जिनके हेतु हमारे कौतुकागारों (अजायब घरों) में गर्म देशों के बन्दर क्षयी के रोग से शीघ्र ही मर जाते हैं (अर्थात् भोजन के परिवर्तन से मन्दाग्नि वा बलहीन पाचन शक्ति होने के कारण)। इसका भी कारण है। उन पर इस क्षयी रोग के आक्रमण क्यों होते हैं। इस समय तक यह दोष शीतल जलवायु पर ही लगाया गया है। इसमें केवल इतनी ही सत्यता है कि अधिक शीतल जलवायु भोजन के पचने और उसमें उत्साह आने की क्रिया को मन्द कर देती है और यह दशा विशेष कर उस समय अधिक होती है जबकि जीवधारियों को वह भोजन भी न मिले जो प्रकृति ने उनके लिये अनुकूल बनाया है—और ऐसी दशा में दो बातें[2] उनके विरुद्ध प्रभाव उत्पन्न करती हैं। मुझको प्रायः ऐसे अवसर मिले हैं जिनमें मैंने उन बन्दरों की शारीरिक स्वास्थ्य की भिन्न-भिन्न दशाओं का निरीक्षण किया है जो कि उनके

१—अभिप्राय है असाधारण गर्मी से।

२—अर्थात् शीतल जलवायु अप्राकृतिक भोजन।

ऊष्ण प्रदेश (निवास स्थान) से पृथक करने के कारण उत्पन्न हुई। मैं अपने निदान द्वारा इस बात का ठीक-ठीक निश्चय कर सका हूँ कि प्रारम्भ में उनकी पाचन-शक्ति (जठराग्नि) असाधारण हो गई थी। फिर उनमें दूसरी बुराइयाँ पैदा हो गईं। मनुष्य के साथ भी ठीक-ठीक ऐसा ही होता है, केवल इतना अन्तर है कि उसकी दशाएँ साधारणतः अधिक उत्तम होती हैं—क्योंकि हम लोगों[1] को शीतल जलवायु का अभ्यास हो गया है। वस्तुतः हम लोगों को केवल भोजन और जीविका प्राप्त करने का ही विचार चाहिये। क्षयी रोग से पीड़ित रोगियों में मैंने प्रायः इस बात का विचार किया है कि भीतरी अत्यन्त ऊष्णता के कारण शरीर कृश हो जाने से ऐसी दशा नहीं रहती कि वह स्वयं अपने पालन-पोषण के लिये उत्तम से उत्तम भोजन चुन सके।

शरीर को भोजन पहुँचाने की निर्भरता न तो भोजन को मिश्रित करने पर ही है और न उसके सत निकालने पर, उसकी निर्भता केवल शरीर की पाचन-शक्ति की योग्यता पर ही है। परन्तु प्रत्येक मनुष्य (जिसको रोगियों से काम पड़ा है) इस बात को भली-भांति जानता है कि पाचन-शक्ति भिन्न-भिन्न शरीरों में कितनी भिन्नता से देखी गई है। यदि शरीर में विकृत पदार्थ अधिक परिमाण में उपस्थित है तो फेफड़ों को विशेषकर उनके अधिक स्थान घेरने के कारण अधिक भय है—क्योंकि विजातीय द्रव्य जिसका दबाव शिर की ओर होता है, प्रायः फेफड़ों में होकर जाने के लिये बाध्य होता है। अब जबकि फेफड़े एक बार अधिक विजातीय द्रव्य से घिर गये तो प्रायः यह विजातीय द्रव्य के एकत्रित होने के लिये एक मुख्य स्थान बन जाते हैं। तब यह विजातीय द्रव्य पहिले के सदृश शिर की ओर दबाव नहीं डालता।

जब फेफड़ों में सड़न प्रारम्भ होती है तो उनके ऊपर के सिरे ही प्रायः पहिले नष्ट होते हैं। ऐसा होने का कारण यह है कि शरीर में विजातीय द्रव्य उस समय जब कि यह उफान खाता है या उसकी दशा में परिवर्तन होता है तो सदैव ऊपर की ओर को दबाव डालता है। फेफड़ों के ऊपर के सिरे कंधो में समाप्त होते हैं, जब कि विजातीय द्रव्य में उफान आने की दशा उत्पन्न हो जाती है तो उफान खाते हुये द्रव्य का ऊपर को दबाव अन्तिम सिरों तक होता है और क्योंकि इसके और आगे बढ़ने को कंधे रोकते हैं अतः यह आगे नहीं बढ़ सकता और यह फेफड़ों के अन्तिम सिरे निस्सन्देह सबसे अधिक हानि उठाते हैं। यही कारण कंधों में

१—क्योंकि मनुष्य अपने देश में चिरकाल से रहता चला आता है।

सुइयों के से चुभने के दर्द होने का है, जिस दर्द में क्षयी के रोगी फेफड़ों के नष्ट हो जाने से पूर्व कष्ट उठाते हैं।

क्षयी रोग की गुमड़ियों की असलियत (मूल कारण) को अब मैं बताता हूँ। ये गुमड़ियां ठीक उसी प्रकार से उत्पन्न हो जाती हैं जैसे बवासीर के मस्से या सरतान फोड़ों की गुमड़ियाँ, और वास्तव में सब प्रकार की गुमड़ियाँ और उभार यहां तक कि छोटे से छोटा मस्सा। स्पष्ट रूप से समझाने के लिये यह आवश्यक है कि इस स्थान पर कुछ विस्तार से वर्णन किया जावे। मैं इसका वर्णन पहिले कर चुका हूँ कि आरोग्य शरीर की त्वचा सदैव कोमल होती है और दीर्घ कालीन रोग की त्वचा इसके विरुद्ध शुष्क और शिथिल[1] होती है।

पहिली दशा में शरीर में यथेष्ट शक्ति होती है जिसके कारण वह विजातीय द्रव्य को निकालने में समर्थ होता है। पिछली दशा में वह ऐसा नहीं रहता। इस कारण अधिक विजातीय द्रव्य जो उचित रीति से निकलना चाहिये था शरीर में ही रह जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि रोग की ओर उसकी चेष्टा हो जाती है। आपने प्रायः ध्यान दिया होगा कि बहुत से लोगों को प्रायः नियत समय पर फोड़े हो जाया करते हैं—विशेष कर चूतड़, गर्दन, तथा भुजाओं पर, ऐसे रोगी के शरीर में एक प्रकार का भारीपन का सा कष्ट प्रतीत होता रहता है। जो कि केवल फोड़ों के फूटने पर ही मिट जाता है और जब यह समय व्यतीत हो जाता है तो उस समय मनुष्य का मानो नया जीवन होता है और सब प्रकार से शरीर अत्यन्त हलका व नवीन प्रतीत होने लगता है। हमको इसकी और अधिक परीक्षा करने दिजिए। विशेष कर फोड़ों के जड़ मूल की, हम देखते हैं कि जिस स्थान पर फोड़ा होने वाला है वह स्थान कई दिवस व कई सप्ताह पूर्व कड़ा, (कठोर व दृढ़) और लाल सा ज्ञात होने लगता है और यह स्थान बढ़ने लगता है और उस पर सूजन हो जाती है, यहां तक कि त्वचा के नीचे एक मोटी और कड़ी सी गिल्टी पीड़ा और सूजन लिये हुए बन जाती है। खाल तन जाती है और चलने फिरने में बहुधा तेज दर्द होता है। जब फोड़ा अपनी सीमा तक पहुँच जाता है तो वह शनैः-शनैः मुलायम होने लगता है। अन्त को उसके भीतर का मवाद त्वचा के रास्ते बाहर जाने को

१—अर्थात् अपना कर्तव्य नहीं करती इसका कर्तव्य यह है कि पसीना इत्यादि के द्वारा विजातीय द्रव्य को यह भी बाहर निकाल देती है।

एक मार्ग बना लेता है और उसके द्वारा बाहर निकल जाता है। इस प्रकार से विजातीय द्रव्य जिससे कि फोड़ा बना था स्पष्ट रूप से शरीर के बाहर निकल जाता है। यह क्रिया मानो स्वयं शरीर का ठीक समय पर विजातीय द्रव्य को बाहर निकाल देना ही है। तब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ऐसी क्रिया हम प्रत्येक मनुष्य की दशा में क्यों नहीं देखते। मैं पहिले ही कह चुका हूँ कि पसीने की भी यही दशा है। किसी मनुष्य को पसीना आता है और किसी को नहीं—इसका आधार शरीर की प्राकृतिक शक्ति पर है। जब शरीर में यथेष्ट शक्ति रहती है और प्राकृतिक रीति पर बाहर निकालने वाले अवयवों के द्वारा विजातीय द्रव्य बाहर नहीं निकाल सकता तो शरीर उसको फोड़ों के रूप में बाहर निकालता है। यदि शरीर में ऐसा करने की यथेष्ट आवश्यक शक्ति नहीं है—जैसे यदि औषधियों के सेवन से वह निर्बल हो गया है, या ऐसा करने में[1] निर्बल हो गया है, या सृष्टि के विरुद्ध जीवन व्यतीत करने से निर्बल हो गया है—तो विजातीय द्रव्य एकत्रित होकर सिमटने[2] लगता है। (ठीक उसी प्रकार जैसे कि फोड़े की दशा में) परन्तु शरीर उसको त्वचा तक नहीं ले जा सकता कि फोड़े के रूप में प्रकट हो। स्थान-स्थान पर शरीर में सख्ती हो जाती है। जिनमें कोई कष्ट नहीं होता, परन्तु बात वही है, फोड़े के स्थानापन्न एक गिल्टी हो जाती है। यह गिल्टी एक अधूरे[3] (अपक्व) फोड़े के अतिरिक्त और कोई अन्य वस्तु नहीं है—या वह एक ऐसे विजातीय द्रव्य की मात्रा है जो एकत्रित हो गया है और अनेक दशाओं में शरीर के भीतर बन्द रहता है। यदि शरीर में भी यथेष्ट शक्ति है तो ये गिल्टियां त्वचा तक आ जावेंगी। हम बहुधा ऐसी गिल्टियों को गर्दन और शरीर के दूसरे भागों में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं और हाथ से मालूम कर सकते हैं। जब शरीर में आगे को यथेष्ट स्वभाविक शक्ति नहीं रहती तो ये गिल्टियां शरीर के भीतर की ओर बनने लगती हैं और बवासीर (अर्श) के मस्सों, मांसार्बुद, बिस्फोट इत्यादि की गिल्टियों के नाम से जानी जाती हैं। यदि

१—मवाद के बाहर निकालने में भी शरीर की शक्ति नष्ट होती है और कभी-कभी वह अति दुर्बल हो जाता है।

२—अर्थात् विजातीय द्रव्य एक स्थान में या कई स्थानों में खिंचकर एकत्रित हो जाता है।

३—जो कि अभी तक पूर्ण (पक्व) फोड़े की दशा को नहीं पहुँचा है।

हम किसी प्रकार से शरीर की स्वाभाविक शक्ति के बढ़ाने में सफलता प्राप्त कर लें, तो हमको इन गिल्टियों में तुरन्त ही एक प्रकार का परिवर्तन ज्ञात होगा। बहुधा ऐसा देखा गया है कि जल से चिकित्सा करने में ऐसे बहुत से फोड़े बन जाते हैं। इस चिकित्सा से (जोकि आजकल भी प्राकृतिक चिकित्सा के अनुयाइयों के प्रयोग में है) शरीर में ऐसी शक्ति आ जाती है कि वह फिर उसी क्रिया के करते रहने के योग्य हो जाता है जोकि बन्द हो गई थी, और फोड़े निकलने लगते हैं। जब कि हम शारीरिक जीवन शक्ति को उसकी अपेक्षा और भी अधिक बढ़ा सकते हैं जोकि अब तक जल चिकित्सा करने वालों की रीति से सम्भव हुई है तो हम इस प्रकार की गिल्टियों को स्वयं घुलाकर शरीर ही में मिला सकते हैं। अतः यदि हम मवाद को उखाड़ने वाली कोई क्रिया शीघ्र ही उत्पन्न कर सकते हैं (जैसा कि मेरी स्नान क्रियाओं के द्वारा जिससे इस रीति से उखड़ा हुआ विजातीय द्रव्य प्राकृतिक निकालने वाले अवयवों की ओर चला जावे और उस समय इस बात का भी ध्यान रक्खें कि नवीन विजातीय द्रव्य भोजन के द्वारा शरीर में न जाने पावे) तो कष्ट देने वाले फोड़े त्वचा पर कदापि नहीं बनेंगे। क्योंकि गिल्टियां शरीर के भीतर ही भीतर उसी रीतिसे जिस रीति से कि वे बन गई थीं घुल जाती हैं। प्राचीन जल चिकित्सा ने भी इन गिल्टियों को घुलाने में सफलता प्राप्त की, परन्तु विजातीय द्रव्य के खेंचने के योग्य न हुई—अतः उस दशा में जबकि शरीर में यथेष्ट स्वाभाविक शक्ति उपस्थित थी फोड़े व मस्से उत्पन्न हुए—जो मेरी चिकित्सा की रीति में कभी-कभी अर्थात् बहुत कम होता है। मैं विजातीय द्रव्य को प्रायः शीघ्र और प्राकृतिक मार्ग से निकालने में सफल होता हूँ। अतः हम देखते हैं कि क्षयी की गिल्टियां अधूरे फोड़ों से तनिक भी अधिक नहीं है जोकि उसी कारण से उत्पन्न होती हैं जिस कारण से शरीर में सब अन्य प्रकार की गिल्टियां। इस बात का आधार है कि भिन्न-भिन्न मनुष्यों में गिल्टियां शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में होती हैं। केवल विजातीय द्रव्य की न्यूनाधिकता पर निर्भर है।

सब प्रकार की गिल्टियों या गुमड़ियों और क्षई की गिल्टियों में भी वास्तविक मूल कारण जान लेने के पश्चात् उनकी चिकित्सा करने का मार्ग भी सरल हो जाता है। गिल्टियों का काट डालना जैसा कि डाक्टरी प्रथा में सिखाया जाता है और जिसके द्वारा रोग से मुक्त करने का उद्योग किया जाता है। सबसे निकृ

परिणाम लाने वाला मार्ग है, इस रीति से हम रोग का चिह्न भर मिटा देते हैं उसके मूल कारण को कदापि नहीं। शरीर की वास्तविक शक्ति को बढ़ाने से ही जिससे कि शरीर की दशा विजातीय द्रव्य को निकलने के योग्य हो जाती है गिल्टियों को आराम हो सकता है। जीवन-शक्ति के गुणों व जीवन व्यतीत करने की दशा के कारण इस प्रकार की गिल्टियां चूनामय होने की दशा में भी अपने पूर्व मार्ग पर हटाई जाकर मिटाई जा सकती है। इस रीति से वे शरीर से सर्वथा निकाल दी जा सकती हैं—और यह एक ऐसी क्रिया है जिसमें मेरी चिकित्सा को बहुत से अवसरों पर वर्षों तक करते रहने की अवश्यकता पड़ती है।

वे दशायें जिनमें विजातीय द्रव्य उफान खाकर उठने के पश्चात् चलता है सदैव एक ही नहीं होता, अतः ऐसा होता है कि एक दशा में तो फेफड़ों के ऊपर के सिरों पर प्रभाव पड़ता है और दूसरी दशा में उफान खाता हुआ द्रव्य बीच में या सामने की ओर अधिक उठता है। दमा (श्वास), जुकाम, सर्दी या श्वाँस की नली (सांस लेने की नली) में सूजन व जलन उत्पन्न करता है—वास्तव में क्षयी रोग के रोगियों में बहुधा सांस की नली को सूजन व जलन का कष्ट हुआ करता है, चाहे सूजन व जलन छिपी हुई दशा में हो क्यों न हो।

विजातीय द्रव्य की स्थिति की भिन्न-भिन्न प्रकार कि दीर्घ कालीय गुप्त एकत्रित होने की अवस्थायें भी फेफड़ों में सूजन व जलन के तीव्र रोगों को उत्पन्न करती हैं—जैसे फेफड़ों की सूजन व जलन और जातउज्जम्ब (अर्थात् उस झिल्ली में सूजन व जलन होना जो फेफड़ों को ढके रहती है) यह ज्वर की दशा के वे ठीक समय हैं जो शरीर के उस प्रयत्न से जो कि विजातीय द्रव्य के निकालने में होता है उत्पन्न होते हैं। ज्वर की यह दशाएँ यदि उनकी चिकित्सा समझ में न आवे तो मृत्यु का कारण हो सकती हैं। ये तीव्र रोग जिनमें ज्वर भी होता है सब प्रकार से साधारणतः अघातक होते हैं। यदि उनकी चिकित्सा तुरन्त ही मेरी रीति से की जावे और रोग पर पूर्ण अधिकार जमाने वाले हमारे ये ठण्डक पहुँचाने वाले स्नान कराये जायँ तो यह रोग शरीर को बहुत कम घात पहुँचाने वाला कहा जा सकता है और आश्चर्यजनक शीघ्रता के साथ इन सब रोगों से आरोग्यता प्राप्त होती है।

उपरोक्त रोगों की विस्तृत विवेचना करने के अभिप्राय से मैं कुछ उन रोगियों का वर्णन करता हूँ जिनसे मुझे अपने चिकित्सालय में काम पड़ा है। एक बार

मुझको एक कुटुम्बी ने बुलाया जहाँ एक ६ वर्ष की कन्या फेफड़ों की तीक्ष्ण सूजन व जलन के रोग में व्याकुल पड़ी हुई थी। उस कुटुम्ब का नियत एलोपैथिक डाक्टर दो मास से उसकी असफलता चिकित्सा क्रियोजोट (Creosote)[1] के द्वारा कर रहा था और उसने इस विष से पाचन शक्ति को इतना विगाड़ दिया था कि माता पिता को अपनी पुत्री के बचने की कोई आशा न रही थी; जब अन्त समय में मुझे बुलाया तब उसकी दशा इस प्रकार थी— मैंने उसके माता पिता से कह दिया कि यदि वह अपने कुटुम्ब के नियत डाक्टर की शिक्षाओं को न मान कर मेरी शिक्षाओं पर तन मन से चलें तो थोड़े ही समय में आरोग्यता प्राप्त हो जायगी, और ऐसा ही हुआ भी। दूसरे ही दिन आरोग्यता की ओर परिवर्तन होने लगा और एक सप्ताह के भीतर सब भय दूर हो गया। थोड़े ही सप्ताहों में वह कन्या मकान के बाहर दौड़ने लगी। यदि मेरी चिकित्सा आरम्भ ही से ऐसे तीक्ष्ण रोग की दशा में (दो मास तक अप्राकृतिक चिकित्सा क्रियोजोट के द्वारा न की गई होती) तो थोड़े ही दिनों में इतनी आरोग्यता प्राप्त हो गई होती जितनी कई सप्ताह में हुई थी।

फेफड़ों के सब प्रकार के रोगों में हमको एक उच्च श्रेणी की गर्मी भीतर मिलती है। स्वांस को भीतर लेने व निकालने की दशाओं में सदैव फेफड़ों के भीतर एक अति तीव्र क्रिया इस प्रकार की होती है जिससे वायु के भाग अलग-अलग हो जाते हैं। जिस समय हम साँस लेते हैं हमारे फेफड़े इस वायु को उसके भागों (आक्सीजन[1] Oxygen और नाइट्रोजन[2] Nitrogen) में जिनसे कि वह मिलकर बनती है अलग-अलग कर देते हैं। आक्सीजन कुछ शरीर में रह जाती है, और नाइट्रोजन शरीर की वायु रूप की गंदगियों सहित सांस द्वारा बाहर निकाल दी जाती है। इस प्रकार से फेफड़ों के भीतर एक प्रकार की किसी पदार्थ के भाग अलग-अलग करने वाली क्रिया (जलन, अग्निदाह) बराबर होती रहती है। इस बात के जानने से पहिले जिस विषय की ओर रसायन वेत्ताओं[3] का ध्यान बहुत समय तक इस ओर रहा था। यह उपरोक्त

१—एक अंग्रेज़ी औषधि का नाम है।

२—ये दोनों अलग-अलग एक प्रकार की वायु हैं।

३—उन मनुष्यों से अभिप्राय है जो भिन्न-भिन्न पदार्थों के गुण और उनके विभागों (तत्त्वों) के जानने की विद्या को जानते हैं—उन मनुष्यों से अभिप्राय नहीं है जिनके विषय में सबमनुष्यों का ध्यान है कि वे तांबे से सोना वा रंग से चाँदी बना सकते हैं।

क्रिया स्वयं एक उच्च श्रेणी की गर्मी उत्पन्न करती है। यह गर्मी जहां कहीं फेफड़ों में विजातीय द्रव्य एकत्रित है या उफान खाता है वहीं बढ़ कर और अधिक असाधारण हो जाती है। जैसा कि मैं पूर्व में कथन कर चुका हूँ कि रोगों के अज्ञात कृमियों की उत्पत्ति—शरीर के अन्दर उपस्थित विजातीय द्रव्य के उफान में आने से या सड़ने से होती है और उनकी वृद्धि का होना उनकी जाति के अनुसार सदा विशेष प्रकार की गर्मी[1] या उफान पर निर्भर होता है। क्षयी-रोग में एक प्रकार की उच्च श्रेणी की गर्मी रहती है तो हमको ऐसी दशा में वही बात मिलती है जिसमें क्षयी रोग के कृमि वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

डाक्टरी विद्या में इस बात को जानते हैं परन्तु यह शोचनीय बात है कि अपने इस ज्ञान को वह काम में लाना ही नहीं जानते। वह केवल उन कृमियों को नाश करने के निमित्त सृष्टि के विरुद्ध (वा अप्राकृतिक) औषधियों की खोज में रहते हैं और उनके मुख्य कारण पर विचार नहीं करते। डाक्टरी में, प्रत्येक रोग में एक प्रकार के कृमि की उपस्थिति मान कर उस रोग के बतलाने की चेष्टा करते हैं—इसका विचार नहीं करते कि जिस प्रकार से एक ही प्रकार के वृक्ष और एक ही जाति के पक्षी भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के पर [पंख] रखते हैं इसी प्रकार से सब रोगों के कोड़ों के रूप व परिमाण (विस्तार) का होना किसी स्थान की गर्मी पर ही निर्भर होना चाहिये।

प्रत्येक मनुष्य को जिसने मेरे उपरोक्त कथन को पूर्णतया ठीक ठीक समझा है उसको क्षयी जाति के रोगों के अच्छा करने का मार्ग (रीति) सहज रूप से समझ में आ गया होगा—अर्थात् असाधारण आन्तरिक गर्मी को ठीक करना चाहिये, और साथ ही साथ जीवन-शक्ति को भी सहायता पहुँचानी चाहिये। जब तक कि शरीर के भीतर की असाधारण दशायें पूर्ण रूप से पीछे[2] को न हटने लगे, इस इष्ट को प्राप्त करने

१—अर्थात् एक विशेष श्रेणी की गर्मी में एक विशेष रोग के कीड़े उत्पन्न होते हैं। और दूसरी श्रेणी की गर्मी में किसी दूसरे रोग के कीड़े उत्पन्न होते हैं। यह बात मान ली गई है कि प्रत्येक रोग की दशा में शरीर में एक प्रकार के अदृष्ट कीड़े होते हैं जो बहुत तीक्ष्ण सूक्ष्म दर्शक यंत्र (खुर्दबीन) की सहायता से देखे जा सकते हैं।

२—अर्थात् जिस प्रकार से असाधारण दशा क्रमानुसार उत्पन्न हुई है उसी प्रकार से दशा फिर क्रमानुसार कम होकर दूर हो जाय—अर्थात् रोग (विजातीय द्रव्य) उलटे पैरों फिर उसी मार्ग पर वापिस होने लगे जिस से वह आया था।

के लिये मेरे स्नान की क्रियाएँ, पथ्य भोजन के साथ व अन्य कही हुई शिक्षाओं पर ध्यान देते हुये करना आवश्यक है। सबसे कठिन काम स्नानों को ठीक विधि[1] से लेना है। शरीर के भीतर की असाधारण श्रेणी की गर्मी अधिक समय तक घटने में नहीं आती है। अतः स्नानों का समय[2] ही नहीं वरन् उनका क्रम भी रोगी की दशा के विचार से ठीक-ठीक होना उचित है। यह बात ऐसे मनुष्य की अध्यक्षता में जो मेरी चिकित्सा विधि को भली-भांति जानता हो जानी जा सकती है और इसकी आवश्यकता अधिकतर इस कारण से है, कि इस विषय में सामान्यतः अधिक भूल हो रही है। रोगी को ताज़ी तथा धूपदार खुली वायु अवश्य मिलनी चाहिये, पूर्ण आरोग्यता प्राप्त करने के लिये यह बात बहुत आवश्यक है और इसमें कदापि भूल नहीं करनी चाहिये। क्षयी के रोगियों को धूप के स्नान (सन बाथ) विशेष कर अत्यन्त लाभदायक होते हैं।

ट्यूबर क्यूलिन (Tuberculin) से टीका लगाने को तो मैं सर्वथा ही बुरा बतलाता हूँ—इसका "उत्तम प्रभाव" सहज ही में वर्णन हो सकता है। वह विषैला द्रव्य जिस से टीका लगाया जाता है विजातीय द्रव्य पर अपना प्रभाव किसी किसी अवस्था में इस प्रकार से डालता है जैसे गूंदे हुए आटे में खमीर, और उफान (अर्थात् ज्वर) उत्पन्न करता है। इस कारण से विजातीय द्रव्य की वास्तविक उफान की दशा में एक प्रकार का परिवर्त्तन हो जाना सम्भव है—और उसी के अनुकूल गर्मी (ज्वर) में भी परिवर्तन हो जाता है। परिणाम यह होता है कि क्षयी के कीड़े ट्यूबरकिल बेसिलस (Tubercle bacillus) जो कि केवल पूर्वोक्त श्रेणी की गर्मी में ही वृद्धि पाने में समर्थ थे वे एक दूसरी अवस्था में चले जाते हैं—जिस दशा को सामान्यतः "नाश दशा" के नाम से पुकारते हैं। परन्तु विजातीय द्रव्य वास्तविक रीति में कभी बाहर नहीं होता है और न रोग का कारण पूर्ण रूप से मिटता है। टीका एक अति अधूरी चिकित्सा है और सदैव ऐसा ही रहेगा—और स्वास्थ्य के अर्थ उसके हानिकारक प्रभाव शीघ्रता या देरी में अवश्य प्रकट हो जाएँगे। केवल थोड़े मास के पश्चात् उस बड़े हर्ष के स्थानापन्न जो ट्यूबर क्यूलिन के टीके से चिकित्सा

१—अर्थात् कौन-कौन स्नान किस-किस समय पर होना चाहिये या पहिले कौन स्नान, और दूसरे बार कौन स्नान होना उचित है इत्यादि।

२—अर्थात् स्नान करने के काल का परिमाण जैसे २० मिनट या ३० मिनट इत्यादि।

होने के कारण हुआ था— अत्यन्त निराशा उत्पन्न हो गई। अब हम सब ओर से स्वतन्त्र विचार के डाक्टरों से भी इस टीके की बुराई के अतिरिक्त और कुछ नहीं सुनते। आजकल टीका लगाने का विषय कुछ ऐतिहासिक मनोरञ्जन भी नहीं रखता। हमको यहां इस घटना का फिर एक परिणाम मिलता है कि चेचक का टीका या और किसी प्रकार का टीका अत्यन्त कच्ची चिकित्सा है जो कि आज कल हो रही है।

मेरी चिकित्सा के मार्ग पर वर्षों तक चलने से वास्तव में बढ़े हुए क्षयी रोग को आरोग्यता प्राप्त हो सकती है—चाहे बहुत ही बढ़ी हुई दशा में यह कठिन भले ही हो जावे। प्रत्येक दशा में रोगी की दशा अन्त समय तक सहन करने के योग्य बना दी जा सकती है। क्षयी के रोगी का अच्छा होना उसकी वास्तविक शक्ति पर ही निर्भर है, और इस बात पर भी कि उसकी पाचन शक्ति सुधारने के योग्य है या नहीं। यदि हम उसको स्थायी रूप से सुधारने में सफलता प्राप्त कर लेवें और उसको साधारण अवस्था पर ले आवें—तो रोगी थोड़े और आश्चर्य जनक समय में ही अच्छा होने लगेगा। यदि इस में हमने सफलता प्राप्त नहीं की तो अच्छा होना असम्भव है। मेरे चिकित्सालय में आये हुए बहुत से रोगी क्षयी रोग के थे, जो कि इस कारण से कि उनकी पाचन शक्ति शीघ्र ही सुधरने के योग्य थी, (विश्वास में न आने वाले) थोड़े ही समय में अच्छे हो गये। इसके विरुद्ध उन रोगियों की दशाएं जिनके फेफड़ों में सख्त और पीप से भरे हुए दाने मौजूद थे, मैंने देखा है कि इन दानो के द्रव्य की वापसी में वर्षों लगे हैं और जब कि एक दाना घुला तो एक बहुत ही तीव्र घटना उपस्थित हुई, जो यद्यपि घातक न थी परन्तु अति कष्टदायक अवश्य ही थी। मेरी चिकित्सा विधि भीतर की गर्मी को ठीक करना बतलाती है— जिसके द्वारा यदि चिकित्सा उचित प्रकार की जावे तो विजातीय द्रव्य अपने स्थान से लौटाया जा सकता है, और शनैः शनैः रोग से निवृत्ति प्राप्त हो सकती है।

यदि शरीर यथेष्ट बलवान है तो विजातीय द्रव्य को फेफड़ों और पेट से निकालने के लिए फ्रिक्सन सिटजबाथ ही सर्वोत्तम उपाय है। स्टीमबाथ्ज लेने की भी जिनके स्थानापन्न[1] गर्मी के मौसम में सन बाथ्ज श्रेष्ठ होते हैं, बहुधा सिफारिस की जानी उचित है। सावधानी से भोजन, और यथेष्ठ ताजा वायु भी अति आवश्यक है।

१—यह हाल जर्मन देश का है, हिन्दुस्तान के उन स्थानों में जहां गर्मियों में लू चलती हो सन बाथ लेने के लिये उन बातों का विचार करना चाहिये जिनका कथन पृष्ठ १३१ के नोट में किया गया है।

उन दशाओं में जिनमें कि रोग अति ही वृद्धि को पहुँच गया है ये स्नान अति ही तीव्र होंगे और ऐसे समय में साधारण हलके हलके फ्रिक्शन हिप बाथज लेने उचित हैं, इनके लिये जल की गर्मी ८१ से ८६ दर्जे फेरनहाइट तक होनी चाहिये और जल रोगी के कन्धों तक पहुँचना चाहिये। रोगी प्रथम तो पांच मिनट और फिर उस से अधिक जितनी देर तक उसको अच्छा लगे स्नान कर सकता है स्नान दिन भर में कई बार लेने चाहिये और यदि शरीर पहिले से कुछ बलवान हो जावे तो फ्रिक्शन सिटजबाथ भी लिये जा सकते हैं; बहुत सी दशाओं में जीवन शक्ति और शरीर में पलटा लेने[1] की शक्ति रोग से निवृत्ति प्राप्त करने के लिये पर्याप्त न होगी, परन्तु ये स्नान प्रत्येक दशा में सदा उसका सुधार[2] करेंगे। यदि पाचन-शक्ति सुधरने के योग्य है तो आराम होने की भी आशा है।

मैं थोड़े से रोगियों की चिकित्सा का वर्णन करके इस विषय को समाप्त करूँगा। स्वाँस (दमा Asthma) एक स्त्री ६५ वर्ष की अवस्था की श्वास रोग से इतनी पीड़ित थी कि उस के चिकित्सक (डाक्टर) ने, जिसकी क्रियोजोट Cicooto की गोलियों और पुड़ियों ने उसकी सब दशा और विशेषकर पाचन-शक्ति को बहुत ही बिगाड़ दिया था, उसको अन्तिम बचाव[3] दक्षिण देश में बास करने का बताया- क्योंकि और कोई औषधि ऐसी नहीं थी जो इतने बढ़े हुए श्वास रोग में सहायता कर सके। सांस लेने में उसको इतनी कठिनता होती थी कि रोगिणी दस कदम भी नहीं चल सकती थी। कोई मनुष्य जो इस प्राचीन डाक्टरी की चिकित्सा से भिज्ञ है, वह भली प्रकार जानता है कि रोगी को अधिक गर्म देश में भेजना केवल इसी कहने के समान है कि तुम्हारे लिये अब कुछ किया ही नहीं जा सकता--जहां तक हमारा बस है हम तुमसे अपना हाथ खींचते हैं। अब परीक्षा कीजिये कि सृष्टि माता अर्थात् नेचर तुम्हारी सहायता कर सकती है या नहीं। इस रोगिणी ने भी इस शिक्षा को इसी अर्थ में समझा। एक मित्र के कथन पर उसने अपने आप को मेरी चिकित्सा के लिए उपस्थित किया। और अपने डाक्टर से कह दिया कि वह विदेश की अपेक्षा यहीं मरना श्रेष्ठ समझेगी। दिसम्बर मास के आरम्भ में जबकि शरद ऋतु बड़े ही कोहरे की होती

१—अर्थात् आराम की ओर पलटा लेने की।

२—अर्थात् कष्ट को कम करेंगे।

३—जर्मन देश के दक्षिण से अभिप्राय है, देश के और भागों के अपेक्षित वहाँ का जल वायु गर्म है।

है, उसने अपने आप को मेरे हाथ में सौंप दिया। उसके शरीर में विजातीय द्रव्य का ऊपर की ओर बहुत ही दबाव था। उसने मेरे उपदेशों पर पूर्ण रूप से ध्यान दिया और बहुत दिन नहीं होने पाये थे कि विजातीय द्रव्य का ऊपर को दबाव शनैः शनैः कम होने लगा और उसकी पाचन शक्ति भी भली भांति सुधरने लगी; विजातीय द्रव्य का निकास पसीने और मल-मूत्र के रूप में बहुत हुआ। रोगिणी ने मेरे उपदेशों के अनुकूल ठण्ड पहुँचाने वाले स्नान प्रतिदिन लिये। और बहुधा भाप का स्नान भी लिया, इस प्रकार कुछ महीनों में ही रोग का वापिस लौटना समाप्त हुआ, वे सब चिन्ह जो समयानुसार रोग की वृद्धि करने की दशा में प्रकट हुए थे, वे पुनः प्रकट हुए, यद्यपि रोग उस समय की अपेक्षा जो कि रोग के उत्पन्न होने में लगा था, बारह गुणा शीघ्र उलटा वापिस हुआ। प्रति मास की चिकित्सा में उतना ही विजातीय द्रव्य निकला जितना बारह मास में एकत्रित हुआ था। अतः तीन मास में उसको श्वास रोग से पूर्ण प्रकार आरोग्यता प्राप्त हो गई।

अब यहाँ एक दूसरे श्वास रोगी की मनोरंजक दशा का वर्णन करते हैं। ६० वर्ष की अवस्था वाले एक सभ्य पुरुष का यह वृत्तांत है, जो कई वर्ष से श्वास रोग में ग्रसित था, और जिसके डाक्टरों ने उसको सर्वथा निराश कर दिया था। उन औषधियों के कारण जो वह वर्षों से खा रहा था, अत्यन्त निर्बल हो गया था। प्रथम बार के स्नानों ने ही रोगी को लाभ पहुँचाया, परन्तु यह लाभ उसे स्नान लेने या स्नान के थोड़ी देर पश्चात् तक ही ज्ञात होता था। रोगी ने मेरे कहने[1] से अधिक बार स्नान लिया। कई बार रात्रि को भी उसने स्नान लिया, क्योंकि खांसी उसको सोने ही न देती थी। प्रत्येक बार आध घंटे तक स्नान करने के पीछे वह एक घंटे तक शान्ति-पूर्वक सो सकता था. उस समय तक जबकि ज्वर के बढ़ने के साथ खांसी भी इतनी उठती थी कि वह और अधिक सोने न देती थी। प्रति स्नान लेने में उसके शरीर में इतनी जीवन शक्ति आ जाती थी कि वह पीप रूपी विजातीय द्रव्य की अधिक मात्रा को थूक डालता था, और इससे उसको बड़ा ही चैन पड़ता था। वही रोगी जो जीवित दशा में मृतक शरीर से कुछ थोड़ा ही अच्छा था, अब प्रतिमास पहिले से अधिक बलवान व अधिक प्रसन्न चित्त होने लगा; और एक वर्ष से कुछ अधिक चिकित्सा

१—तात्पर्य है कि जितनी बार प्रति-दिन स्नान करना मैंने उसको बता रक्खा था उस से अधिक बार प्रति-दिन उसने स्नान किया। स्नान का अभिप्राय इस चिकित्सा विधि के स्नानों से है।

करने पर उसने और बातों में भी ऐसी आरोग्यता प्राप्त करली कि उसके सब मित्रों को बड़े आश्चर्य में डालने के अर्थ उसका सिर जो कि उस समय तक लगभग बिना बाल के था, दुबारा निकले हुए सफेद बालों से भर गया।

बढ़ा हुआ क्षयी रोग (Tuber culosis)—एक स्त्री ने जो ३० वर्ष की अवस्था की थी और इस रोग से पीड़ित थी अपने आपको मेरी चिकित्सा में लाई, वह प्रायः सदाही मुंह से सांस लेती थी-विशेष कर सोने की दशा में। उसकी माता ४५ वर्ष की अवस्था में क्षयी रोग की भेंट हो चुकी थी—इसकी सन्तान ने अपने में इस रोग की ओर चेष्टा का होना उसी से प्राप्त किया था। बचपन में रोगिणी और उसके भाई बहन प्रायः कंठमाला के रोग में फँसे रहे थे। २० वर्ष की कन्या होने के समय उसका मुख गाल और भरा हुआ था, और कपोल अस्वस्था के कारण रक्तवर्ण थे—शीत काल में नीले हो जाते थे। ३० वर्ष की अवस्था से पूर्व ही उसका मोटापन शनैः शनैः कम हो गया। और उसके कपोलों का वर्ण और सब शरीर की दशा साधारण मध्यम श्रेणी की होगई थी। परन्तु २६ वर्ष की समाप्ति के निकट पहुँचने पर क्षयी-रोग की ओर उसकी चेष्टा अधिकाधिक प्रतीत होने लगी। पाचन-शक्ति में भी परिवर्तन हो गया। कभी मल का अवरोध और कभी अतीसार होने लगा, और मल-मूत्र के रंग तथा दुर्गन्धि से यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता था कि पाचन-शक्ति कितनी असाधारण हो गई थी। शिर और दांतों के दर्द के अतिरिक्त उसको सुई की भांति चुभने वाले दर्द विशेष कर छाती व कंधों में ज्ञात होते थे। इसी प्रकार के दर्द केवल फेफड़ों के नष्ट होने की क्रिया में भी हुआ करते हैं। जैसे ही फेफड़ों के भाग वास्तव में नष्ट हो चुकते हैं वैसे ही दर्द भी बन्द हो जाते हैं। रोगिणी को मासिक स्त्री-धर्म भी बिना नियम और क्रम के साथ होता था। बहुधा कई कई महीनों बन्द हो जाता था—और फिर शीघ्र शीघ्र होने लगता था। इन सबके साथ ही साथ प्रायः आलस्य, बड़ी चिन्ता, और अप्रसन्नता रहती थी। प्रत्येक मनुष्य (जो कि मेरे मुखाकृति विज्ञान से अनभिज्ञ है) उस स्त्री को उस समय जब कि उसने मेरी चिकित्सा आरम्भ की थी, स्वास्थ्य की मूर्ति (तन्दुरुस्ती की तसवीर) समझता। एक उत्तम रक्त वर्ण की भरी हुई मूर्त्ति ने मेरी विद्या के न जानने वालों को उस रोगिणी की वास्तविक घातक दशा जानने में भ्रम में डाल दिया। उस स्त्री ने अपनी विलक्षण-दशा देख कर मेरी चिकित्सा आरम्भ की। मैंने उसके लिये ठंड पहुँचाने वाले स्नान, भाप के स्नान, और सर्वथा सादा (अनमादक, सात्विक) भोजन, और खुले हुए स्थान में वास करना बतलाया। इस रीति से उसका सामान्य स्वास्थ्य ६ मास में ही ऐसा ठीक हो

गया कि उसको कोठे पर आने और दूर तक टहलने में; जिससे कि इसके पहिले उसको कमजोरी (थकावट) हो जाया करती थी, कुछ भी परिश्रम नहीं पड़ता था। उसकी पाचन-शक्ति संतोष दायक हो गई, स्वभाव भी पूर्व की अपेक्षा बहुत शान्तिमय हो गया, और शिर का दर्द भी जाता रहा। यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था, कि विजातीय द्रव्य का भार पेड़ू की ओर लौटने लगा। प्रथम वर्ष की चिकित्सा में जब-जब फेफड़ों के दाने घुलते थे दो-बार संकट के समय आये। इन समयों में जोकि दो या तीन सप्ताह के होते थे--रोगिणी की दशा प्रायः कुछ निर्बल सी प्रतीत होती थी, यह वह समय था, जब शरीर आरोग्य होने की ओर अग्रसर हो रहा था। यद्यपि वह उसके रोग की प्राचीनता के विचार से कुछ ध्यान देने योग्य न था। चिकित्सा के दूसरे वर्ष में ही रोगिणी की दशा में निस्सन्देह सुधार प्रतीत हुआ। केवल दो बार ही संदिग्ध-समय आने का अवसर आया, इस प्रकार लग भग दो वर्ष के पश्चात् उस लेडी को फेफड़ों के दुःखदाई रोग से आरोग्यता प्राप्त हुई।

क्षयी [ट्यूबर क्यूलोसिस Tuberculosis]—एक दूसरी घटना वर्णन करने योग्य नीचे और लिखी जाती है। रोगी एक सभ्य महाशय थे जिनकी अवस्था लगभग ४० वर्ष की थी, जो कि कई प्रसिद्ध चिकित्सकों की सम्मति के अनुसार क्षयी रोग में ग्रसित थे, और इसी कारण उनका उन्हें सर्वदा इटली (Italy) देश के दक्षिण में रहने की सम्मति दी गई थी। मैंने उनकी परीक्षा अपने "मुखाकृति-विज्ञान" के द्वारा की, और जान लिया कि उनका रोग अत्यन्त पुराना था, जिस के कारण गर्म देश में उनका वास करना सम्भव नहीं था जो उनके जीवनको एक वर्ष से अधिक बढ़ा सके। मैंने अपनी चिकित्सा तुरन्त आरम्भ की। केवल चार सप्ताह के चिकित्सा के पश्चात् ही उनकी अरोग्यता बराबर ठीक होने लगी। मूत्राशय व अंतड़ियों की जलन जिसमें कि ६ वर्ष पूर्व वह कुछ काल तक पीड़ित रह चुके थे, पुनः प्रकट हुई। यह रोग इस बार प्रायः बहुत ही कम कष्ट के साथ हुआ और दो सप्ताह के भीतर ही अच्छा भी होगया। मेरी चिकित्सा की रीति से शरीर में जीवन-शक्ति बढ़ जाने के कारण पहिले के दबे हुए दीर्घ स्थायी रोग (क्रानिक Chronic) फिर तीव्र (एकयूट Acute) रूप में प्रकट हुए। रोगी को शुक्र दोष (सोजाक) का भी रोग हुआ था जिससे वह अपनी युवा[1] अवस्था में कई बार पीड़ित रह चुका था, और जो

[1]—अभिप्राय है २० व तीस वर्ष के बीच से।

पिचकारी द्वारा औषधि भीतर डाल कर दवा दिया गया था उसको थी दो सप्ताह में पूर्णतः आराम हो गया। फेफड़े के रोग ने सर्वथा एक नवीन रूप धारण किया--अतः रोगी ने अपने आपको सर्वथा पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जाना समझ लिया। मेरी सम्मति से उसने चिकित्सा को कुछ काल तक और भी किया, और डेढ़ वर्ष में उसको पूर्ण आरोग्यता प्राप्त हो गई।

हड्डी पर गुमड़ियों का हो जाना और हड्डी का गल जाना या घुन जाना--उन रोगियों की अधिक संख्या ने जो उपरोक्त रोगों से पीड़ित थे, मेरी चिकित्सा में रह कर आशातीत लाभ उठाया। लगभग सभी रोगियों को बचपन में रिक्टेस' Rickt:e का रोग हो चुका था; एक अर्थ में यह पश्चात् के रोग की आरम्भिक दशा थी। बचपस से ही जबकि उनकी हड्डियां पकी नहीं थीं, घुनी हुई और सहज में ही टूटने के योग्य थीं। रोगियों में यह बात बहुधा शुद्ध रूप से प्रतीत हो सकती थी। युवावस्था के समय या उससे भी पूर्व हड्डियों के गलने व घुनने का यह रोग प्रकट हुआ था--टाँग और भुजा की हड्डियों में पीप पड़ने लगी, और स्पञ्ज (मुए बादल) के सदृश वे फूल गई थीं। जोड़ों के स्थान भी बहुत बढ़ गये थे। उनमें से कई मनुष्यों की टांगें व भुजाएँ काट डाली गइ थीं, और बहुत से रोगियों को मेरे पास आने से पूर्व ही असाध्य बता दिया गया था। मेरी चिकित्सा-विधि से रोग का फिर पीछे को लौटना आरम्भ हो गया, परन्तु कटे हुए भाग फिर अपनी पूर्ति कर ही कैसे सकते हैं! वे ज्यों के त्यों रहे। मेरे मतानुसार चीरा फाड़ी (शल्य) की क्रिया चाहे किसी रोग में भी क्यों न हो जो कि रोग के मिटाने के लिये की जाती है, सबसे अधिक अनुचित रीति है। मैं इस बात को सिद्ध कर सकता हूँ कि इस प्रकार की अप्राकृतिक क्रिया ने अब तक ऐसे रोग को वास्तव में कदापि अच्छा नहीं किया—न उसके कारण (मूल) को ही मिटाया। जब कि हम इस बात को समझें कि रोग उसी मार्ग से कैसे लौटाया जा सकता है जिस मार्ग से कि वह आया था, तभी हम उसे आराम कर सकते हैं।

मुझे एक लड़के की दशा जो मेरे पास अपनी चिकित्सा कराने आया था, याद आती है—उसके दोनों पैरों के सामने की हड्डियाँ घुटने से टखने तक खुली हुई थीं

१—यह एक शारीरिक रोग है जो बच्चों में जबकि चलने में समर्थ होते हैं इस रूप में प्रतीत होता है कि बच्चा चल नहीं सकता और यदि चले भी तो हड्डियों के कोमल होने के कारण पांव टेढ़े हो जाते हैं अवयवों की शक्ति भी कम हो जाती है और बच्चा खड़ा होने से कुबड़ा प्रतीत होता है।

और उनमें पीप पड़ रही थी। डाक्टरों ने दोनों पैरों को काट डालने का विचार स्थिर कर लिया था, इस कारण उसके माता पिता लड़के को मेरे पास लाये। ठंड पहुँचाने वाले स्नान और सादा भोजन आरम्भ किये गये और केवल चार ही सप्ताह के पश्चात् वे खुली हुई हड्डियाँ भीतर की ओर से बाहर को ढकनी आरम्भ हो गई, घावों पर जो ८ इञ्च लम्बे थे, उसी प्रकार से त्वचा आने लगी जैसे किसी वृक्ष के व्रण पर छाल उत्पन्न हो जाती है। छः मास में ही दोनों पैर केवल दो सूखे-सूखे छोटें खुजलाने वाले स्थानों के अतिरिक्त सर्वथा अच्छे हो गये जो स्वयं ही फिर दो मास के पश्चात् जाते रहे। इसके अतिरिक्त उस लड़के के सामान्य स्वास्थ्य में भी प्रायः परिवर्तन हो गया, और पहिले के समान उदास रहने के स्थान में अब उसमें सच्ची बच्चों जैसी स्फूर्ति पुनः आ गई।

यह एक दूसरा वर्णन है—दस वर्ष के एक बच्चे के घुटने की हड्डी में एक गूमड़ी पड़ गई थी—घुटने का भी काटा जाना विचारा गया था। इस बार नव मास तक यह गूमड़ा रहा अर्थात् उस समय तक जब तक कि वह विजातीय द्रव्य घुटने के जोड़ से सब खिंच कर रोग के स्थान अर्थात् पेड़ू में आ गया। जहां कि वह जंघा की एक हड्डी के व्रण (जख्म) के द्वारा बाहर निकाला गया और यहां से लगातार तीन मास तक पीप निकलती रही। तीन मास से अधिक और भी लग गये, तब वह और बच्चों के समान चल या दौड़ सका।

ल्यूपस Lupus :—इस रोग (ल्यूपस) में भी असंख्य रोगियों की चिकित्सा में मेरी चिकित्सा की विधि से सफलता का होना इस बात को सिद्ध करता है कि इस रोग में अन्य सब रोगों के सदृश ही मेरा सिद्धान्त सब रोगों के एक होने की सत्यता को सिद्ध करता है। इस स्थान पर, मैं ल्यूपस के एक रोगी की चिकित्सा का हाल सुनाता हूँ जो सर्व साधारण के लिये मनोरंजक होगा।

रोगिणी ४१ वर्ष की अवस्था की एक स्त्री थी और जब तक कि उसकी आयु के दूसरे वर्ष में टीका न लगाया गया था सर्वथा आरोग्य थी; उसी समय से उसकी विपत्ति का आरम्भ हुआ था। टीका लगाने के पश्चात् ही त्वचा में बड़ी बुरी फुंसियां व खुजली उत्पन्न होने लगी थी। जो उसके दसवें वर्ष में बढ़ कर मुख का ल्यूपस हो गई। तीस वर्ष से अधिक तक यह स्त्री इस कष्टदायक, कुरूप करने वाले रोग में ग्रसित रही। यद्यपि वह कई प्रसिद्ध चिकित्सकों से सम्मति ले चुकी थी, पर उसको

कुछ भी लाभ न हुआ था। उसका मुख देख कर भय लगता था। वास्तव में वह ऐसी दशा में कहीं नहीं जा सकती थी कि कहीं उसको देख कर लोग घृणा के कारण अपना मुख न फेर लेवें। चूँकि सब डाक्टरों ने उसका रोग असाध्य बतलाया तब वह ऐसी लाचारी की दशा में मेरे पास आई। मेरे जाँचने में उसके विजातीय द्रव्य की स्थिति होने का स्थान अति अनुकूल प्रतीत हुवा। अतः मैं उसको शीघ्र अच्छा होने की आशा दिला सका और मेरी यह सम्मति ठीक भी सिद्धि हुई—केवल दो सप्ताह के पश्चात् मुख पर वह कुरूप करने वाले ल्यूपस के चिह्न बहुत कुछ बदल गये थे और वे स्थान अब उतने अधिक घृणित मालूम नहीं होते थे। विशेषकर उसकी शक्ति, जिसकी ओर अब तक किसी का ध्यान नहीं गया था, आश्चर्य के साथ सुधर गई। परिणाम यह हुवा कि मल-मूत्र का त्याग साधारण से अधिक और कई-कई बार हुआ जिससे विजातीय द्रव्य निकल गया। सात सप्ताह में रोगिणी की त्वचा का रंग साधारण वास्तविक रंग का हो गया।

इस अवसर पर इतनी शीघ्र सफलता प्राप्त होने का कारण यह था कि विजातीय द्रव्य का भार सामने की ओर था। मेरे निदान के नये मार्ग की पुस्तक "मुखाकृति-विज्ञान"[1] के पढ़ने वाले इस बात[2] को जान लेंगे कि यह कैसे समझ में आता है।

मेरे पास ल्यूपस के ऐसे रोगी भी थे जिनमें यद्यपि (रोग की) जड़ इतनी गहरी नहीं थी परन्तु अति अधिक समय उनके आराम करने में लगा। जैसा कि अनुभव से सिद्ध हुआ है, सबसे अधिक समय लगाने वाली वह दशाएँ होती हैं जिनमें विजातीय द्रव्य का एकत्रित होना पीठ की ओर या बांई ओर को होता है।

बहुत से ऐसे रोगियों ने थोड़े—सप्ताह के पीछे ही अपनी चिकित्सा बन्द कर दी। क्योंकि उनको अपनी दशा में कोई बड़ा परिवर्तन या कम से कम पाचन-शक्ति

१—यह पुस्तक लुईकुहनी रचित की है जिससे रोग की दशा का एक नये प्रकार से निदान किया जाता है। इसमें बहुत से चित्रों के द्वारा मन्तव्य को समझाया गया है। इसका अनुवाद उर्दू भाषा में श्रोत्रिय कृष्ण स्वरूप का किया हुवा, अनुवाद कर्ता से या शर्म्मा प्रेस मुरादाबाद से ४।-) में वी० पी० द्वारा मिल सकता है। हिन्दी में भी इसका अनुवाद श्रोत्रिय जी ने ही करके छपवाया है जो उन्हीं के पास से मिलता है। पुस्तक अभी छपी है शीघ्र मँगाइये।

२—अर्थात्—सामने की ओर विजातीय द्रव्य के होने में शीघ्र आरोग्यता कैसे प्राप्त होती है उसकी अपेक्षित कि यदि विजातीय द्रव्य दाहिनी या बाईं ओर या पृष्ठ की ओर हो।

में सुधार ज्ञात न हो सका। दुर्भाग्यवश उनमें इतना धैर्य्य नहीं था कि वह (चिकित्सा को) उस समय तक करते रहते जो कि उनके आराम करने के लिये आवश्यकता था। मेरी चिकित्सा-विधि एक लेडी स्टेटटिन नगर वासिनी, के रोग में बहुत ही प्रभावशालिनी सिद्ध हुई। रोगिणी मुख के ल्यूपस के रोग में १६ वर्ष से पीड़ित थी—और दूसरे को अपना मुख दिखाने में लजाती थी—अपने कुरूप मुख को छिपाने के लिये वह एक मोटे कपड़े का आवरण सदा ही अपने मुख पर डाले रहती थी। मेरी चिकित्सा में आने से पूर्व उसने १६ वर्ष में सब प्रकार की चिकित्साएँ जो डाक्टरी विद्या के वर्तमान समय में प्राप्त हैं निष्फलता के साथ तैकर डाली थीं। (मेरी चिकित्सा से) उसको तुरन्त आराम होने लगा और शीघ्र आरोग्यता प्राप्त हो गई। उस लेडी ने निम्नलिखित कृतज्ञता पत्र मुझे स्वयं लिख कर भेजा है।

प्रिय महोदय कुहनी—

आपकी चिकित्सा की विधि ने मेरे अत्यन्त भयंकर रोग में जो उत्तम परिणाम दिखलाये उनके कारण मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ आपको धन्यवाद देना अपना कर्तव्य समझती हूँ—मैं इस चिकित्सा को अत्यन्त ही सफलता के साथ करती हूँ और विना किसी कष्ट के अपने कर्तव्य-कार्य्यों के करने में प्रवृत्त होने के योग्य हूँ। विशेषतया इसलिये और भी अधिक प्रसन्नता प्राप्त हुई कि संपूर्ण डाक्टर महाशय जिनसे मैंने पिछले १६ वर्ष में अपनी चिकित्सा करायी, मुझको किसी प्रकार की सहायता देने या मेरे कष्ट को कम करने में समर्थ हो सके। इस कारण मैं इस चिकित्सा-विधि की प्रशंसा सब रोगियों से—चाहे कुछ भी कारण रोग का क्यों न हो—इस बात का पूर्ण विश्वास करके करती हूँ कि यह उनको अवश्य सहायता देगा—और महाशय जी! आपसे मैं प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरे इस पत्र को इस चिकित्सा और सब रोगियों के लाभार्थ अवश्य ही छाप देवें।

सच्ची कृतज्ञता के साथ मैं हूँ:—
आपकी विश्वास पात्र
ए०—एस०

स्टेटटीन }

जनेन्द्रियों के रोग

परदे को दूर करो, झूठी लज्जा को छोड़ो—जो हानिकारक परदे अंधा करने वाले हैं, जिनके पीछे दृष्टि से गुप्त बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं और जो अपने सभी भयानक व घृणित रूपों में बढ़ती हैं—वह बुराई जोकि विद्या व साधारण बुद्धि की ज्योति में उड़कर और नष्ट भ्रष्ट हो जायगी। यदि हमको मनुष्य की गुप्त बुराइयों और छिपे हुए रोगों का वर्णन ही करना है तो यह स्पष्ट व बिना किसी प्रकार के अवरोध के होना उचित है। वे हानियाँ जो जनेन्द्रियों के रोग मनुष्य जाति को पहुँचाते हैं, इतनी अधिक और विस्तृत हैं कि यदि मैं ऐसी दशा में जबकि मेरी चिकित्सा की रीति ने मुझे इन व्याधियों पर ऐसा पूर्ण अधिकार दे दिया है, मौन धारण करूँ तो यह[1] भयंकर पाप होगा। सामान्य अज्ञान जो इन रोगों के गुणों के सम्बन्ध में, विशेषकर औषधियों के द्वारा उनकी चिकित्सा करने के विषय में फैला हुआ है उसके कारण एक बड़ा भारी कष्ट मनुष्य को पहुँचाया जाता है। इसी लिये इस विषय में स्पष्ट रूप से कहना बहुत ही आवश्यक जान पड़ता है। इसमें किसी प्रकार का विवाद नहीं है कि आज कल जनेन्द्रियों के रोग किसी पूर्व काल की अपेक्षा अत्याधिक पाये जाते हैं। मुख्यतः उपदंश (सिफ़िलिस Syphilis आतिशक) जोकि लाखों मनुष्यों का भक्षण प्रति वर्ष करती है अपने साथ में इतनी बुराइयां लाती है जिनका वर्णन हो ही नहीं सकता।

नेचर स्कूल की चिकित्सा विधियों के अतिरिक्त जो रीतियां काम में आती हैं वे सिफिलिस का सामना करने में प्रायः असमर्थ हैं—शरीर को पारे या उसके सदृश अन्य औषधियों से रोग को मालिस करके अधिक से अधिक थोड़े दिनों गुप्त दशा में रखने में वे समर्थ होती हैं—और कुछ समय के लिये रोग एक स्थान में चुप चाप रुक जाता हैं; खेद है दुर्भाग्य वश इसे रोग मुक्त होना कहा जाता है, और रोगी भी

१—मेरा मौन धारण करना।

इसे ऐसा ही समझता है। वास्तव में उन्हे यही नहीं ज्ञात है कि इसी कारण से अकथनीय हानियां पहुँचा दी गई हैं, क्योंकि बहुत से रोगियों ने डाक्टर के यह विश्वास दिलाने पर कि उनको आराम हो गया है अपना विवाह तक कर लिया और बहुत ही शीघ्र विवाह के बुरे फलों से उन्होंने यह जान लिया कि उनको कितना बड़ा भ्रम हुवा। एक ऐसे पति के साथ संयोग करने के कारण जिनके शरीर में छिपी हुई सिफिलिस (उपदंश) उपस्थित है, पत्नी की आरोग्यता व उसका जीवन भी बहुत ही बड़े कष्ट और असमञ्जस में आ जाता है। स्त्री व पुरुष के संयोग की दशा ऐसी है कि दोनों शरीरो में एक एक प्रकार का परिवर्तन होता रहता है अतः यदि स्त्री अति आरोग्य नहीं है तो उसमें गुप्त सिफिलिस (गर्मी) अति शीघ्र पहुँच जाती है; परिणाम यह होता है कि वह एक न एक रोग से पीड़ित हो जाती है। ऐसे विवाह के बच्चे अति निर्बल होते हैं और यथोचित रीति से वे कदापि नहीं बढ़ते। इस कारण से मैं यह सिद्ध करता हूँ कि तीव्र सिफिलिस की अपेक्षा गुप्त दशा की सिफिलिस अत्यन्त भयानक व घातक है, क्योंकि पूर्वोक्त अर्थात् तीव्र दशा में रोगी मनुष्य में एक ऐसा चिह्न (पहिचान) होता है जो उसकी वास्तविक दशा को स्पष्ट रीति से प्रकट कर देता है। औषधि द्वारा चिकित्सा करने वाले सिफिलिस की एक गुप्त दशा को मानते हैं, परन्तु इसकी स्थिति को जानने के योग्य ये तभी होते हैं जब कुछ समय तक बराबर गुप्त दशा में रहने के पश्चात् तीव्र सिफिलिस फिर फूट निकलती है। जब उसकी स्थिति से किसी प्रकार से इन्कार नहीं कर सकते। तब वे लोग इस बात को मान लेते हैं कि शरीर में रोग गुप्त-दशा में था। परन्तु यदि ये घटनायें उन्हें ऐसी स्पष्ट रूप से न बतलातीं तो इस समय भी वर्तमान समय की सान्इस विद्या इस (उपदंश) रोग की गुप्त-दशा की स्थिति को कदापि स्वीकार न करती।

"मुखाकृति विज्ञान" के द्वारा सिफिलिस की गुप्त दशा छिपी नहीं रह सकती और न उसकी वे अन्य दशाएँ ही जिनमें रोग अभी तक फूट नहीं निकला है छिपी रह सकती है। बल्कि उसके द्वारा हम इसी प्रकार से बहुत समय पूर्व ही शरीर की उन चेष्टाओं को जो जनेन्द्रियों के रोगों की ओर होती है जान सकते हैं—जिनके द्वारा बुराइयों से सुरक्षित रह सकते हैं। यहाँ जनेन्द्रियों के भिन्न-भिन्न रोगों को विस्तार पूर्वक वर्णन करने की मुझे आवश्यकता नहीं जान पड़ती यथा सफेदी का आना, प्रमेह, सुजाक (शुक्र दोष), सिफिलिस का फोड़ा (प्रायः जनेन्द्रियों पर)—बद, सिफिलिस अर्थात् उपदंश, वीर्य्य का स्वयं निकलना, इत्यादि जनेन्द्रियों के प्रत्येक

रोग के नाम से भी हमें कुछ प्रयोजन नहीं—क्योंकि हम जानते हैं कि सब रोगों का एक ही सम्मिलित कारण है। हम यह भी जानते हैं कि उनके रूप में अन्तर होगा केवल शरीर की चेष्टा रोग की ओर अग्रसर होने अथवा मनुष्य में विजातीय द्रव्य की उपस्थिति होने पर निर्भर है।

सृष्टि ने जनेन्द्रियों व मूत्रोत्सर्ज इन्द्रियों को मिलाकर बनाया है। यह केवल अकस्मात् ही नहीं हुआ है। शरीर इस बात का प्रयत्न करता है कि सब बाहर निकलने वाले मल को इन मार्गों की ओर ले जावे। यही कारण है कि विजातीय द्रव्य अधिकता के साथ इन्हीं स्थानों ही में एकत्रित हुआ मिलता है। स्त्रियों में यह बात अधिक स्पष्ट देखी जाती है, इसी कारण स्त्री-पुरुष के संयोग में इस बात का विशेष विचार रखना आवश्यक है। ऐसा नहीं हो सकता कि ऐसे बाहर निकलने वाले विलेपन (मरहम) की सदृश तीव्र-रस शरीर की त्वचा में उसकी शोषण-शक्ति के कारण भीतर प्रवेष न करें। इसका फल यह होता है कि निकृष्ट से निकृष्ट विजातीय द्रव्य जो स्त्री में रहता है वह पुरुष में चला जाता है, और पुरुष का स्त्री में। यदि पुरुष में स्त्री की अपेक्षा अधिक विजातीत द्रव्य है, तो वह उस वीर्य द्वारा जो शरीर के रसों से मिलकर बनता है, स्त्री के शरीर में मिल जावेगा, और वह पहिले से भी अधिक रोगिणी बन जावेगी।

एक बात जिसको कुछ विस्तार पूर्वक वर्णन करना चाहिये और भी है। भोग की इच्छा (काम चेष्टा) एक ऐसी इच्छा है जिसे सामान्यतः सभी जानते हैं और वह सभी में होती है, परन्तु फिर भी उसका वर्णन कहीं सन्तोषप्रद रीति से किया हुआ नहीं मिलता है, अतः अभी तक यह विषय न्यूनाधिक अन्धकार में पड़ा है। प्रचलित चिकित्सा विद्या उस के गुणों पर बहुत ही कम प्रकाश डालती है, यहाँ यह बतलाने की चेष्टा नहीं की गई है कि यह (काम चेष्टा) ठीक दशा में कब होती है और कब और क्यों वह अशुद्ध हो जाती है। तथापि पुस्तकों में यह बताया गया है कि (जीवधारी) शरीर आत्मरक्षा के पश्चात् सबसे मुख्य इच्छा सन्तान उत्पन्न करने ही की होती है। अतः यह बात समझ में नहीं आती कि वह विषय जो केवल जीवन को ही छोड़कर सब से अधिक महत्व रखता है। आज कल इतनी अवहेलना और घृणा की दृष्टि से क्यों देखा जाता है। उसको सृष्टि के विरुद्ध सर्वथा आरोचक व

निकृष्ट क्यों समझा जावे ? कामेच्छा की[1] भी अन्यान्य इच्छाओं के सदृश ही एक तो शुद्ध साधारण दशा होती है, और दूसरी विजातीय द्रव्य की स्थिति शरीर में होने के कारण असाधारण तथा अशुद्ध दशा होती है। प्रत्येक मनुष्य की काम-चेष्टा की दशा उसकी आरोग्यता की दशा जानने के लिये एक बहुत ही शुद्ध थरमामेटर[2] है, (विशेषकर यह रोग की गुप्त दीर्घ-कालीन दशा तथा शरीर पर वृत्ति का प्रभाव जानने का आधार है)। उन अवयवों पर जो स्वयं रस निकालते हैं विजातीय द्रव्य का बढ़ता हुआ दबाव पड़ने से और स्नायुओं में अधिक तेजी आने से, पूर्वोक्त असाधारण दशा उत्पन्न होती है। यह दबाव जनेन्द्रियों पर भी अपना प्रभाव डालता और काम चेष्टा को भी उत्तेजित करता है, साथ ही साथ उससे वीर्य्य भी शनैः-शनैः घटता जाता है। काम-चेष्टा की शुद्ध दशा मनुष्य को सब प्रकार की अपवित्र और निकृष्ट काम वासनाओं एवम् बुरे विचारों से सुरक्षित रखती है। यह चेष्टा केवल नीरोग मनुष्यों में ही समुचित रीति से रहती है। यह दशा केवल अनमादक व सात्विक भोजन तथा प्रकृति के अनुकूल जीवन व्यतीत करने से ही शुद्ध रह सकती है। जब कभी विजातीय द्रव्य का भार शरीर में हो जाता हैं, या जब रोग की दीर्घकालीन व गुप्त दशा आरम्भ होती है तभी यह काम चेष्टा अशुद्ध हो जाती है।

केवल वही मनुष्य जिसमें विजातीय-द्रव्य का भार उपस्थित है जनेन्द्रियों के किसी रोग में फँस सकता है। इस प्रकार से यह समझाया जा सकता है कि किसी मनुष्य पर तो शुक्रदोष (सोजाक़), उपदंश तथा उपदंश के फोड़ों के विष का प्रभाव पड़ता है और किसी पर नहीं पड़ता। इसका क्या कारण है ? मुझे ऐसी दशाओं का अनुभव है जिनमें दो मनुष्यों को रोग के लगने का एक सा ही अवसर प्राप्त था परन्तु एक अच्छा रहा और दूसरे को रोग लग गया।

मुझे एक ऐसी ही दूसरी दशा का भी बोध है जिसमें एक स्त्री दीर्घ काल-तक

१—तात्पर्य्य यह है कि शरीर में विजातीय द्रव्य ही की स्थिति का कारण है कि काम चेष्टा की दशा भी शुद्ध नहीं रहती। जिस शरीर में विजातीय द्रव्य का भार नहीं होता उसकी काम चेष्टा की दशा भी शुद्ध अर्थात् साधारण होगी।

२—आरोग्यता की परीक्षा के लिए यह एक यंत्र है—थरमामेटर अँग्रेज़ी में गर्मी-मापक यंत्र को कहते हैं।

एक ही पुरुष के साथ सम्भोग करती रही और वह पुरुष भी उसी स्त्री के साथ सम्भोग करता था। पुनः उस पुरुष के उस स्थान से चले जाने के पश्चात् दूसरे पुरुष ने उस स्त्री पर अपना अधिकार जमा लिया। अब यद्यपि उन पुरुषों में कोई भी रोगी नहीं था और न उन्होंने किसी दूसरी स्त्री के साथ सम्भोग ही किया था—परन्तु दूसरे पुरुष को थोड़े ही दिनों में उपदंश रोग ने पकड़ लिया, परन्तु इस स्त्री पर इस रोग का किञ्चित् भी प्रभाव न हुआ।

जैसा पहिले वर्णन कर चुके हैं—विजातीय द्रव्य किसी मनुष्य की जनेन्द्रियों में एकत्रित हो गया है तो वह सम्भोग करने से शरीर में सीधे मार्ग से प्रवेश करता है, और दूसरे मनुष्य के विजातीय द्रव्य पर ऐसा प्रभाव डालता है जैसा कि खमीर गूंधे हुए आटे पर। और विशेषकर जब कि परस्पर की समानता के कारण शरीर पर एक प्रकार की शक्ति व सन्तोषदायक प्रभाव उत्पन्न हुआ हो तब उसमें सड़न व जोश उत्पन्न करता है। उस प्रभाव के कारण शरीर में इतनी शक्ति बढ़ जाती है कि उसमें उपस्थित विजातीय द्रव्य को क्यूरेटिव क्राइसिस (जैसे उपदंश और उसके फोड़े व शुक्र दोष) के द्वारा निकालने का प्रयत्न उत्पन्न हो जाता है। ये घटनायें उन दशाओं पर भी एक प्रकार का प्रकाश डालती हैं—जो प्रायः देखने में आती हैं जैसे कोई पति अपनी ही स्त्री से वर्षों तक सम्भोग करता हुआ बाद को अकस्मात् किसी दूसरी स्वस्थ स्त्री के साथ सम्भोग करके उपदंश रोग में ग्रसित हो जाता है। स्त्री-पुरुष के परस्पर सम्भोग से कोई ऐसा प्रभाव नहीं पड़ा था, दोनों के शरीरों ने आपस की न्यूनाधिकता पूर्ण कर ली थी; इसके विरुद्ध नवीन-सम्भोग को भिन्न प्रकार की तुलना की आवश्यकता पड़ी जिससे यह रोग उत्पन्न हुआ।

मैं इन वृत्तान्तों को केवल यह प्रकट करने के लिये वर्णन करता हूँ कि जननेन्द्रियों के रोग किस रीति से उत्पन्न होते हैं, और स्पर्श (छूने) से रोग उत्पन्न करने वाले[1] द्रव्य का सीधे मार्ग से प्रवेश करने का इस दशा पर क्या प्रभाव पड़ता है—यह ज्ञात हो जाय। मैं अनुचित सम्बन्ध का तनिक भी पक्ष लेने का पूर्णतया विरोधी हूँ परन्तु यहाँ मुझको रोग, उसके लक्षण, उसके कारण और चिकित्सा से काम है, अतः आवश्यक है कि ऐसे उदाहरण जैसे ऊपर आये हैं उपस्थित करूँ और यह बड़े शोक का स्थान है कि ऐसे अनेक उदाहरण प्रायः पाये जाते हैं।

१—अर्थात् उपदंशादि रोगों का विष।

अतः हमको प्रत्यक्ष ज्ञात होता है कि जननेन्द्रियों के रोग शरीर के क्यूरेटिव[1] क्राइसिस (Curative Crises) ही हैं जिनके द्वारा शरीर विजातीय द्रव्य को जो उसमें उपस्थित है निकालने का उद्योग करता है। अतः आरोग्यता प्राप्त करने के लिये हमको रोग के कारण को दूर करना ही उचित है। फलतः विजातीय द्रव्य को जो हमारे शरीर में उपस्थित है दूर करने से सब रोग जो उसके द्वारा उत्पन्न हुये हैं शनैः-शनैः स्वयं ही मिट जावेंगे। औषधियों के द्वारा चिकित्सा करने वालों की यह भयंकर भूल है कि वे पिचकारी द्वारा विषाक्त औषधियों को जैसे पारे को उसके भिन्न-भिन्न रूपों में, आयोडीन (Iodine) आयोडाइट आफ़ पोटेसियम् (Iodide of Potassium) आयडोफ़ार्म (1oloform) इत्यादि को शरीर के भीतर पहुँचाते हैं और इसे वह (डाक्टर महाशय) रोगों को मिटाना समझते हैं; क्योंकि वास्तव में वे शरीर को नीरोग करने के लिये ही ये औषधियाँ देते हैं। जो जीवन-शक्ति अपनी वास्तविक दशा में ही आरोग्यता प्राप्त होने का अवसर उत्पन्न करती है उसे व्यय करके ही इन क्रियाओं द्वारा आरोग्यता प्राप्त किये जाने का प्रयत्न किया जाता है। शरीर में विष प्रवेश होने पर शरीर की पूर्ण वास्तविक शक्ति उसको (विष को) हानि-रहित बनाने की चेष्टा करती है—जिससे शरीर स्थित बना रहे। इस प्रकार वह रोग दूर करने की क्रिया से सर्वथा वंचित कर दी जाती है।

इसी को औषधि प्रयोग करने वाले चिकित्सक स्वस्थ होना कहते हैं—जो उस रोग की दशा से भी अधिक भयंकर व हानिकारक है। इसकी वास्तविक दशा गुप्त है, क्योंकि यह एक ऐसी दशा है जो कष्ट रहित है, और एक ऐसा दीर्घकालीन गुप्त आभूषण पहने हुए है जो प्रायः मनोरंजक और धोखा देने वाला है। इसी दशा को भ्रम वश क्योंकि वह जननेन्द्रियों के रोगों के तीव्र चिह्नों को प्रकट नहीं करती, बहुत से मनुष्य नीरोगता मान लेते हैं। मैं अनेक अकाट्य परिणामों द्वारा इस औषधि द्वारा चिकित्सा-विधि की (जो बहुत श्रेष्ठ मानी गई है) ऐसी विलक्षण भूलों (अशुद्धियों) का खण्डन करना उचित समझता हूँ, और उनमें से कुछ परिणाम मैं यहाँ लिखता हूँ।

जैसा कि हम बता चुके हैं, जननेन्द्रियों के रोगों को औषधियों द्वारा कोई कहे

१—वह अवसर जिनमें शरीर आरोग्यता प्राप्त करता है, अर्थात् विषैली औषधियों द्वारा जीवन को हानि पहुँचाने की दशाएँ।

जाने वाला लाभ नहीं होता। वह केवल एक दिखावटी[१] आरोग्यता होती है। दूसरी प्रकार से इसे रोग की दशा को बढ़ाकर हानिकारक कर देना भी कह सकते हैं। यदि हम शीघ्र या विलम्ब में—चाहे इस में ही वर्षों क्यों न लग जावें—उस मनुष्य की, जिसका शरीर औषधियों द्वारा निर्बल हो गया हो वास्तविक शक्ति फिर ठीक करने में सफलता प्राप्त करें, तो कदाचित् यह होगा कि वे सब चिह्न (व रोग) जो कि दवा दिये जाने से दब गये थे फिर थोड़े दिनों के लिये हलकी दशा में प्रकट हो जावेंगे। मुझे अपने चिकित्सालय में इस के अनेक पुष्ट प्रमाण मिल चुके हैं। स्नानों द्वारा द्रव्य को बाहर निकाल देने का प्रभाव हमको पूर्णतः इन रोगों को अपने अधिकार में रखने की पूर्ण योग्यता प्रदान करता है और उससे वे रोग अपने भयानक स्वरूप को सर्वथा[२] छोड़ देते हैं। किसी मनुष्य को इन हानि रहित क्यूरेटिव क्राइसिस (Curatie Crises) का भय नहीं होना चाहिये। यह चिह्न विजातीय द्रव्य के शरीर में फैलने के[३] आवश्यक परिणाम हैं, विशेषकर उन औषधियों के जो बाहर[४] से काम में लाई गई हैं।

मेरी चिकित्सा विधि में जननेन्द्रियों के सर्व प्रकार के रोग, वरन अति भयानक उपदंश तक भी अपनी भयानकता को छोड़ देते हैं। मैं अत्युक्ति नहीं करता। जब मैं इस बात की प्रतिज्ञा करता हूँ कि यह रोग जो औषधियों द्वारा असाध्य कर दिया गया है मेरी चिकित्सा विधि से—अन्य रोगों के सदृश जड़ मूल से जाता रहता है। इससे रोगी की आगामी सन्तान पर भी बुरे प्रभाव पड़ने का कोई भय नहीं रह जाता है। इसके साथ ही मैं यह स्वीकार करने में भी असमर्थ हूँ[५] कि प्रत्येक उपदंश का रोगी नीरोग होने के योग्य ही है—केवल वे लोग ही जिनकी पाचन-शक्ति सुधारने के योग्य है; स्वस्थ होने के योग्य हैं। यदि यह चिकित्सा बहुत समय तक की जावे तो जीवन-शक्ति और विजातीय द्रव्य के लक्षणों के विचार से जो रोगी में विद्यमान हैं आरोग्यता प्राप्त होना सदैव सम्भव है।

१—अच्छे होने का केवल नाम मात्र ही है।

२—अर्थात् ऐसी हो जाती हैं कि उनसे किसी प्रकार का भय नहीं रहता।

३—क्योंकि स्नानों के द्वारा विजातीय द्रव्य अपने स्थान से हटता है और शरीर में फैलता है फिर मल-मूत्रादि द्वारों की ओर जाता है।

४—अर्थात् लेपन इत्यादि के सदृश जिनका वर्ताव उत्पादक इन्द्रियों के घावों पर किया जाता है।

५—अर्थात् यह नहीं कहता हूँ।

जैसा कि वर्णन हो चुका है जननेन्द्रियों के किसी रोग का प्रकट होना हमें इस बात का विश्वास दिलाता है कि शरीर में विजातीय द्रव्य का बड़ा भार या एक गुप्त रोग का चिह्न उपस्थित है। यदि इस गुप्त रोग से पिंड न छुड़ाया जाय तो वही अन्य दीर्घ कालीन और निकृष्ट रोगों की जैसे दमा (श्वांस), फेफड़ों के रोग, क्षयी, सरतान फोड़ा, हृदय रोग, जलोदर, वात रोग इत्यादि की आरम्भिक दशा बन जाता है और यदि ये सदा स्वयं रोगी ही में प्रकट नहीं होते तो दुर्भाग्यवश औषधि द्वारा अशुद्ध चिकित्सा के परिणाम स्वरूप अधिक अवसरों पर उनकी सन्तानों में दिखलाई देते हैं। बहुत सी भोली-भाली शुद्ध हृदया माताएँ अपने बच्चों में किसी ऐसे रोग जैसे कि फेफड़ों का रोग, क्षयी, कंठमाला, रिकेट्स के प्रगट होने के कारणों को समझने में विवश रहती हैं क्योंकि वे इन रोगों के ठीक कारणों को नहीं जानती हैं और अपने[1] पर वे दोष लगा नहीं सकतीं और अपने पति के उन उपस्थेन्द्रियों सम्बन्धी गुप्त रोग से जिनका कि सन्तान पर पूर्ण प्रभाव पड़ता है। सर्वथा अनभिज्ञ हैं। यहाँ पर पुनः हम सन्तान के साथ माता पिता के पापों को ज्ञात करते हैं। रोगी और दुर्बल बच्चे एक दर्पण के सदृश हैं जिनके द्वारा (मेरी नई शिक्षाओं से ज्ञात होकर) गर्भाधान के समय उनके माता पिताओं[2] की शारीरिक स्वास्थ्य की दशा—ठीक ठीक जानी जा सकती है।

जननेन्द्रियों के अति सामान्य रोग—जैसे श्वेतप्रदर, व शुक्रदोष के मार्ग और गति की परीक्षा करने पर विजातीय द्रव्य के सम्बन्ध में हमारे नियमित सिद्धान्तों की पुष्टि होती है। प्रकृति स्थानिक सूजन व जलन को लेकर, दोषयुक्त और विजातीय द्रव्य (पीप) को शरीर से बाहर निकालती है। ज्वर सहित इस उफान खाने वाले क्रिया के कारण भीतर के अवयव में भी साथ ही साथ कष्ट और सूजन हो सकती है। जब कि किसी को यह बात ज्ञात ही नहीं है कि इस क्रिया को शरीर के लिये किस प्रकार से हानि रहित बनाया जा सकता है। वह ऐसी दशा में यह क्रिया एक क्यूरेटिव क्राइसिस[3] इन शब्दों के ठीक अर्थ में होगी। जितना अधिक विजातीय द्रव्य बाहर निकलेगा उतना ही अधिक शुद्ध करने वाला प्रभाव शरीर पर पड़ेगा।

१—क्योंकि वे बराबर शुद्ध रहती हैं और उनका वास्तव में कोई अपराध भी नहीं है।

२—अर्थात् माता की तो गर्भावस्था की शारीरिक दशा और पिता के गर्भाधन के समय की शारीरिक दशा का विचार बच्चे के स्वास्थ्य की दशा से किया जा सकता है।

३—अर्थात् शरीर को स्वस्थ करने का ठीक मार्ग होगा।

मुख्य बात यह है कि इस बाहर निकालने वाली क्रिया को शरीर के प्रति जितनी कम कष्टदायक और कम हानिकारक बन सके बनानी चाहिये—उसी के साथ ऐसा भी न हो कि शरीर के पूर्ण काम करने में कोई विघ्न पड़े। मेरे स्नानों द्वारा जो प्रत्येक रोगी की दशा के अनुकूल लिये जा सकते हैं हम बहुत ही सन्तोष दायक रीति से अपने इस अभिप्राय को सिद्ध कर सकते हैं। चिकित्सा का समय विजातीय द्रव्य के परिमाण एवम् विस्तार पर निर्भर है।

उन चिकित्साओं पर जिनको जननेन्द्रियों के रोगों में, औषधि-विद्या-वेत्ता महाशय काम में लाते हैं किंचित् विचारिये—पिचकारी द्वारा काट करने वाली औषधियां—सीसा, पारा, जस्ता और आयोडोफार्म जल के साथ मूत्राशयों या स्त्री की योनि के भीतर इस अभिप्राय से पहुँचाये जाते हैं कि दयालु प्रकृति के, द्रव्य को बाहर निकालने के प्रयत्नों को बलात् रोक दिया जावे। औषधियों का केवल गुण ही इस बात के लिये यथेष्ट है कि ऐसा करने की (द्रव्य के बाहर निकालने की) बुराइयों को दिखलावे। यह आश्चर्य की बात है कि किसी ने अब तक अपने आपसे यह प्रश्न नहीं किया—कि जब औषधियों द्वारा पीप का निकलना रोक दिया जाता है तो वह पीप कहाँ चला जाता है। नेचर अर्थात् प्रकृति कोई काम बिना किसी विशेष कारण के नहीं करती। प्राकृतिक कामों को प्राकृतिक साधनों से ही सहायता पहुँचाई जा सकती है—न कि प्रकृति के विरुद्ध उपायों द्वारा जो जीवन की सम्पूर्ण दशाओं के विरुद्ध कार्यान्वित किये जाते हैं।

औषधियों द्वारा चिकित्सा पर दृढ़ विश्वास रखने वालों की भयंकर भूलों का ही यह परिणाम है कि देश-देश में पागलखाने, शफ़ाखाने, अति[1] दुर्बल रोगियों के चिकित्सा के स्थान—और ऐसे स्थान जोकि आरोग्यता[2] प्राप्त करने के लिये नियुक्त किये गये हैं—वे इस भांति बढ़ते चले जाते हैं जैसे साँप की छतरी या कुकुर मुत्ता (कठ फूला)। यदि औषधियों द्वारा चिकित्सा वास्तव में लाभदायक ही होती तो प्रत्येक मनुष्य—पूर्वोक्त कथन के प्रतिकूल ऐसे स्थानों की संख्या में कमी होने की आशा रखता।

१—ऐसे रोगियों के अर्थ जो कि खाट से उठ नहीं सकते।

२—पहाड़ों में—जैसे मसूरी, नैनीताल इत्यादि स्थान।

इस अध्याय को समाप्त करने के पूर्व मैं दो उदाहरण अपने चिकित्सालय में से और भी उपस्थित करूँगा। कई वर्ष हुए एक मनुष्य ने जिसकी अवस्था लगभग पचास वर्ष की थी, मुझसे अपने एक कठिन हृदय-रोग के विषय में सम्मति ली। मैंने उसको आवश्यक सम्मति दी। मेरी चिकित्सा आरंभ होने के दो सप्ताह पश्चात् ही उसे गुर्दे का एक पूर्व-रोग पुनः प्रकट हुआ और जब यह रोग अच्छा हो गया तो फिर ठीक दो सप्ताह पश्चात् मूत्रकृच्छ (सोज़ाक) प्रकट हुआ, जिसमें वह अठारह वर्ष पहिले फँस चुका था। दोनों रोग उस समय की अपेक्षा जबकि वे पूर्व काल में उसको हुए थे बहुत ही हलकी दशा में प्रकट हुए। एक सप्ताह में शुक्रदोष (सोज़ाक) भी जाता रहा—और रोगी का स्वास्थ्य आश्चर्य जनक रीति से सुधरने लगा और उसके हृदय का रोग पूर्ण रूप से मिट गया। चिकित्सा के समय में रोगी ने मुझसे कहा था कि पहिले जब उसको शुक्रदोष हुआ था तो उसने दो बहुत प्रसिद्ध प्रोफेसरों से सम्मति ली थी—जिनकी चिकित्सा का वही प्रभाव हुवा जिसकी इच्छा की गई थी अर्थात् सोज़ाक के चिह्नों का दूर हो जाना। कुछ वर्ष पश्चात् मूत्रकृच्छ फिर लौट आया था और दूसरी बार औषधियों के प्रयोग से उसका कष्ट शीघ्र ही मिट भी गया था। इसके दो वर्ष पीछे उस पर गुर्दे के रोग का आक्रमण हुआ जिसने उसको अधिक कष्ट दिया। आठ बड़े प्रसिद्ध चिकित्सकों की सम्मति लेने के पश्चात् यह रोग भी औषधियों द्वारा इतना दवा दिया गया था कि उसके भयानक चिन्ह लुप्त हो गये। बहुत दिन नहीं होने पाये थे कि हृदय का रोग उत्पन्न हो गया जिसने सब चिकित्साओं की[1] आधीनता को स्वीकार नहीं किया -और अन्ततः जलोदर रोग की दशा में पहुँचने का भय दिलाता रहा। मैंने उसको समझाया कि शुक्रदोष को आराम नहीं हुआ था--वरन् वह शरीर के भीतर दबा दिया गया था और इसी प्रकार उसके पीछे पैदा हुये गुर्दे के रोग की भी वही दशा हुई थी[2] जोकि दबाये जाने पर अपनी बारी में हृदय रोग के होने का आधार बना,[3] जो बिना मेरी चिकित्सा के जलोदर हो गया होता।

अब मैं उपदंश (सिफिलिस) के एक रोगी का वर्णन करता हूँ। ४७ वर्ष की आयु वाले वेरन वानंई ने थोड़े वर्ष हुये सिफिलिस के विषय में जिसमें कि वे १० वर्ष

१—अर्थात् चिकित्सा से भी कम नहीं हुई थी।

२—अर्थात् गुर्दे का रोग।

३—अर्थात् हृदय का रोग।

पीड़ित रहे थे मुझसे सम्मति ली। उन्होंने कहा कि प्रसिद्ध डाक्टरों ने मिल कर किस प्रकार से एलोपेथिक की विधि से चार बार उनके शरीर पर पारे मिश्रित औषधियों का मर्दन किया था। ऐसे ही पोटेशियम आयोडाइड Potassium Iodide का प्रयोग भी उन पर किया गया था परन्तु इतने पर भी सिफिलिस के चिह्न सदैव लौट लौट आये थे, और मुँह व पैरों पर घाव प्रकट होने लग गये थे। परिणाम यह हुआ कि उनका विश्वास एलोपेथी से सर्वथा उठ गया। विशेषतः इस कारण से कि उनका सामान्य स्वास्थ्य भी पारे मिश्रित औषधियों द्वारा चिकित्सा करने के पश्चात् ऐसा अच्छा न रहा जैसा कि पूर्व में था। एक प्रकार का कष्ट उनके शिर में हाल ही में प्रतीत हुआ था और उनकी शुद्ध स्मरणशक्ति जाती रही थी। मैंने अपने "मुखाकृति विज्ञान" के द्वारा जान लिया था कि मेरा रोगी एक बुरे प्रकार का विजातीय द्रव्य का भार अपने शरीर में रखता है, और इसके अतिरिक्त विषैली औषधियां सेवन कराये जाने के चिह्न भी प्रस्तुत थे। यह बहुत स्पष्ट ज्ञात होता था कि पारे के प्रयोग द्वारा सिफिलिस शान्त कर दी गई थी। मैंने उन्हें नित्य दो या तीन स्नान और सादा प्राकृतिक भोजन बतला दिया, जिसका परिणाम भी उत्तम हुआ क्योंकि आधे वर्ष में ही रोगी की दशा में समुचित सुधार हो गया। उसकी पाचन-शक्ति में आशातीत सुधार हुआ और उसका स्वरूप उत्तरोत्तर नवीन व आरोग्यता-प्रधान होता गया। रोग के कारण के दूर होते ही सिफिलिस भी पूर्णतया नष्ट हो गई; और अब उसके फिर लौटने की आशंका न रही। चिकित्साओं की अधिक रिपोर्टें चतुर्थ भाग में मिलेंगी।

नपुंसकता, नामर्दी—आजकल की सन्तान की निकृष्ट दशा का दृढ़ प्रमाण इस नपुंसकता के रोग के सामान्यतया उपस्थित होने के अतिरिक्त और कोई नहीं है। मेडिकल साइंस ने अद्यावधि इस रोग की कोई औषधि या चिकित्सा प्रकाशित नहीं की है। क्योंकि रोग की उत्पत्ति से यह सर्वथा[1] अनभिज्ञ है—अतः इसकी चिकित्सा करने में सर्वथा असमर्थ हैं। औषधियों में पूर्ण विश्वास व श्रद्धा रखने वाला मनुष्य इस बात को नहीं जानता कि रोगी के प्रत्येक रोग का कारण शरीर में केवल विजातीय द्रव्य का एकत्रित हो जाना मात्र ही है। यदि उसके शरीर से विजातीय द्रव्य को निकाला जा सके तो नपुंसकता का प्रत्येक रोगी आरोग्यता प्राप्त कर सकता है।

१—अभिप्राय है मेडिकल साइन्स से।

आज हम अपनी चिकित्सा-विधि के अनुभव और उसके श्रेष्ठ परिणामों को जानकर अत्यन्त प्रसन्न हैं क्योंकि यह हमारा अभीष्ट सिद्ध करने में समर्थ है। मैं निस्सन्देहात्मक रूप से यह कह सकता हूँ कि इस समय तक इससे अनेक रोगियों ने आरोग्यता प्राप्त की है। और यदि मेरी चिकित्सा की विधि समझ कर वह दृढ़[1] विश्वास के साथ बराबर की जावे तो इस रोग को आरोग्यता होती चली जायगी। और इस चिकित्सा से जननेन्द्रियों में उनको काम करने की शक्ति की सब अयोग्यता, उनके कारणों को दूर कर देने से, दूर हो सकती है। उसी प्रकार काम-चेष्टा भी, उचित श्रेणी की बनाई जा सकती है, जिसके कारण इस प्रकार रोग मुक्त हुआ मनुष्य विषय वासना के विचार से भी प्राकृतिक रीति में जीवन व्यतीत कर सकता है। कितनी अधिकता से यह बात देखने में आती है कि अत्यन्त दृढ़ सदाचार सम्बन्धी नियम (सिद्धान्त) भी जननेन्द्रियों की अपाकृतिक अधिकताओं की हानियों तथा हस्त-क्रिया आदि से बचाने में असमर्थ हैं। मुझे उन बहुत से हार्दिक धन्यवादों के शब्दों से सन्तोष दायक विश्वास प्राप्त हुआ है जो उन महाशयों और सदाचारी युवकों ने जिन्होंने कि मेरी चिकित्सा की विधि से इन घातक स्वभावों से छुटकारा पाया है, मुझे लिखकर भेजा है।

स्त्रियों की नपुंसकता को बांझपन कहते हैं। जननेन्द्रियों की भीतरी बुरी बनावट या मध्यम श्रेणी से न्यूनाधिक होने के कारण ही यह बात नहीं होती है; इन इन्द्रियों में सर्वथा काम विकार[2] शून्य भी हो सकता है। मैंने इस विषय की विस्तृत विवेचना तीसरे भाग के उस अध्याय में जिसमें स्त्रियों के रोगों का वर्णन है की है।

पुरुषों की काम-चेष्टा स्त्रियों की इस दशा से सर्वथा भिन्न है। अतः पुरुषों में नपुंसकता भी दूसरे रूप में ही प्रकट होती है। इस दशा के प्रकट होने के वर्षों पूर्व ही हम इसके नियमित लक्षण देख सकते हैं, अर्थात् सामान्यावस्था से बहुत

१—अंग्रेजी में जो शब्द इस स्थानमें काम में आये हैं उनका अभिप्राय ऐसे दृढ़ चित्त से है जैसे कि वज्र (फौलाद) होता है।

२—अर्थात् सम्पूर्ण शक्ति जाती रही है।

अधिक बढ़ी हुई और स्नायु-सम्बन्धी सम्भोग की इच्छा, जो कि दीर्घ-कालीन रोग के कारण होती है, बच्चों और युवकों में एक प्रकार की अधिक खुजलाहट होती है जो उपस्थेन्द्रिय की पुरानी सूजन व जलन से उत्पन्न होती है। और इसी ही से वह हानि जो आजकल इतनी अधिक फैली हुई है अर्थात् हस्तक्रिया उत्पन्न होती है। युवा मनुष्यों में यह खुजलाहट अप्राकृतिक मैथुन की अधिक इच्छा के स्वरुप में मिलती है, और इसी के साथ मन भी न्यूनाधिक केवल प्रेम के विचारों में फँसा रहता है। स्त्री के सम्मुख एक प्रकार की लज्जा पुरुषो में उत्पन्न हो जाती है जो बहुत सी दशाओं में पूर्ण भय की अवधि तक पहुँच जाती है, और प्रायः सदैव नपुंसकता व नामर्दी उस के साथ ही मिलेगी। यदि आज के दिन हम अच्छे कुल के अधिक पुरुषों को बिना विवाह किये पाते हैं तो इस घटना का मुख्य कारण स्त्रियों के सन्मुख बैठने में एक प्रकार की लज्जा ही है, जो नपुंसकता अर्थात् नामर्दी के कारण उत्पन्न होती है। अधिकतर युवा पुरुष अपनी युवावस्था में ही स्त्री के साथ उचित सम्भोग करने के अयोग्य होते हैं—क्योंकि वे बहुधा हस्तक्रिया के कारण नामर्द हो गये हैं। कितने ही आत्मघात होने या उसकी चेष्टाओं पर क्या यही कारण आरोपित[२] नहीं किया जा सकता ?

निम्नलिखित एक रोचक वृत्तांत उदाहरणार्थ लिखा जाता है[१]—

अब से कई वर्ष पूर्व एक २३ वर्ष की अवस्था वाले नवयुवक ने जो कि एक बड़ी रियासत का स्वामी था मुझसे सम्मति ली। बारह वर्ष की अवस्था से वह हस्तमैथुन क्रिया करता था। अब उसने मेरी चिकित्सा की विधि को जिसकी उससे बड़ी प्रशंसा की गई थी अपनी निकृष्ट क्रिया पर अधिकार प्राप्त करने के लिये व्यवहार में लाना चाहा। रात दिन वह इसी दुःख में निमग्न रहता था—उस समय वह किसी भी विद्या के प्राप्त करने के अयोग्य हो गया था। यद्यपि वह यथाशक्ति उससे बचने का प्रयत्न भी करता था, फिर भी वह इस स्वाभाविक बुराई में पड़ने को विवश हो जाता था (स्वयं कथनानुकूल विवश था)। अब तक निष्प्रयोजन किसी चिकित्सा की खोज में रहा था--उसकी आन्तरिक चेष्टा भी इतनी बलवान सिद्ध न हुई कि उस के अकस्मात् आन्तरिक वृत्ति के धक्के को रोक सकती। यह भी सत्य है कि कभी-कभी

१—वृत्तांत युरोप देश का है।

२—यह प्रश्न है—अभिप्राय यह है कि यही कारण आरोपण किया जावेगा।

उसने प्रयास पूर्वक दृढ़ चेष्टा करके उस बुराई से महीनों तक पृथक रहने में सफलता भी प्राप्त की, परन्तु फिर अकस्मात् ऐसे आन्तरिक धक्के से—जो रोका नहीं जा सका—आधीन होकर, अपनी कामेन्द्रियों को पूर्ण सन्तुष्ट करने में और भी अधिक अपने आपको लगा दिया। आन्तरिक अप्रसन्नता के विचार ने उस पर बहुत ही अधिकार जमा लिया था और वह संसार में अपने आपको निकम्मा समझता था। फलतः आत्मघात के विचार में इतस्ततः भ्रमण था। अब उसके माता पिता ने उसका विवाह करना चाहा। परन्तु सर्वथा नामर्द होने के कारण उसको इससे घृणा हुई। मेरी चिकित्सा की विधि में उसने अपनी अन्तिम आशा को लगाया; और यह निश्चित किया कि यदि इसमें उसको सफलता न हुई तो वह विवाह करने से विमुख हो जायगा।

"मुखाकृति विज्ञान" के द्वारा उसकी दशा की जांच करने से यह प्रकट हुआ कि उसकी नामर्दी का कारण प्राचीन अशुद्ध पाचन-शक्ति थी। युवावस्था के आरम्भ होने के कारण उसका शरीर आरोग्यता प्राप्त करने में फिर अति श्रेष्ठ रीति से काम[1] करेगा। अतः मैं उसको बहुत अच्छी आशाओं का विश्वास दिला सका। शुद्ध चित्त होकर अत्यन्त दृढ़ता के साथ उसने मेरी चिकित्सा-विधि के अनुसार व्यवहार किया, और कुछ ही महीनों के पश्चात् उसकी दशा बहुत कुछ सुधर गई। मेरे विचारों की सत्यता का एक और स्पष्ट प्रमाण यहां मिलता है। मेरे बताए स्नान जो कि रोग की जड़ तक सीधे पहुँच गये प्राकृतिक और सादा भोजन के साथ अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुये। तेरह महीनों की चिकित्सा के पश्चात् नामर्दी और उसकी हस्तक्रिया की बान उसी प्रकार मिट गई जिस प्रकार अन्य दूसरे रोगों की चिकित्सा सफलता के साथ हुई है।

१—लुई कुहनी साहब का यह विचार उसकी युवावस्था होने के कारण हुआ अर्थात शरीर युवावस्था के कारण आरोग्यता प्राप्त करने में सहायता देगा।

मूत्राशय—वा गुर्दों के रोग

बहुमूत्रता अर्थात् मधु प्रमेह; यूरेमिया (Uraemia); बेडवेटिङ्ग (Bebwetting) यकृत रोग; यकृत की पथरियाँ, पाण्डुरोग, अन्तड़ियों के रोग— तलवों का पसीजना; हरपिस (Herpes) अर्थात् मकड़ी।

—:०:—

बहुत से ऐसे रोगों की दशाओं को जिनमें साधारण मनुष्य परस्पर सम्बन्ध समझाने में असमर्थ हैं, इस प्रकार से एक ही समूह में रखना अति विरुद्ध और अत्यन्त क्रम रहित प्रतीत होगा। औषधि द्वारा चिकित्सा करने वालों की दृष्टि में यह सत्य है कि सम्पूर्ण रोग भिन्न-भिन्न हैं। अतः प्रत्येक की चिकित्सा (इलाज) भी उसी बिचार से भिन्न है। तथापि हम इस नवीन आरोग्यप्रद विद्या के अनुपम दर्पण द्वारा[1] उनके मिश्रित-मूल और पारस्परिक निकट-सम्बन्ध का बोध करने में समर्थ हैं। सम्पूर्ण रोगों का आरम्भ विकृत पदार्थ के एकत्रित होने से ही होना भली भांति समझ में आ सकता है और इस अवसर पर हमें विशेषकर उस विजातीय द्रव्य के संग्रह से कार्य है जो उन अङ्गों की साधारण क्रिया पर अपना प्रभाव डालता है, जो कि विजातीय द्रव्य को शरीर से बाहर करने के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं—जैसे गुर्दे, और शरीर की त्वचा। इस स्थान पर उन हवाओं का वर्णन करना भी आवश्यक है जो आमाशय में पाचन-क्रिया के समय उत्पन्न होती हैं—अर्थात् वह हवाएँ जिनसे भोजन करने के पीछे पेट फूलता है। ये हवाएँ पाचन क्रिया की नाली में फैलने के

१—जैसे खुर्दबीन के नीचे किसी पदार्थ को रख कर भली प्रकार देख सकते हैं और उसकी सूक्ष्मता जान सकते हैं इसी प्रकार इस नवीन विद्या को उस दूरवीक्षण यंत्र (खुर्दबीन) से उपमा दी गई है।

कारण और अंतड़ियों की उस चाल के कारण जोकि कीड़े की चाल के समान होती है एक ओर भोजन को आगे को ले जाने में सहायता देती हैं और दूसरी ओर भाप की दशा में इसी प्रकार अपनी फैलाव शक्ति के द्वारा, पाचन क्रिया की नाली की भीतों में से पार निकल कर सारे शरीर और रुधिर में प्रवेश करती हैं।

मैं इस बात को स्पष्ट समझाने के लिये एक दृष्टान्त देता हूँ। जल पृथ्वी, सागरों झीलों और नदियों में ही परिमित रक्खा गया है, मानो यह पृथ्वी की एक प्रकार की जल की नाड़ियाँ हैं जो मनुष्य देह की रुधिर की नालियों के समान ही हैं। तथापि इसके अतिरिक्त भी जल, भाप के आकार में, सम्पूर्ण वायु में और पृथ्वी के सम्पूर्ण मार्गों में पूरित रहता है। आहार और जल की भी, जो शरीर में पहुँचाया जाता है वही दशा है। इसी प्रकार वह (अर्थात् भोजन और जल जो खाए पिए जाते हैं) प्रकट में नियत मार्गों और अंगों में घिरे रहते हैं। इसी कारण फूल मदिरा (बीअर Beer, वाइन Wine, बरांडो Brandy) पान करते ही अति शीघ्र समग्र देह में अपना प्रभाव दिखाती है; विशेषकर शिर में। यदि त्वचा अपनी क्रिया पूर्ण रूप से करती हो—तो उसका बहुत सा भाग वायु, पसीना या और अज्ञात रूप से शरीर के बाहर निकल जाता है। वे दोनों प्रकार से अर्थात् स्वेद से भिन्न और स्वेद के आकार में शरीर के बाहर निकलते हैं। यह स्वेद प्रत्येक मनुष्य में भिन्न-भिन्न गन्ध का होता है। जब इसके संग बहुत दिनों का निकृष्ट द्रव्य मात्रा से अधिक मिश्रित होता है तो इसकी गन्ध घृणित होती है। इसके विरुद्ध स्वस्थ दशा का स्वेद हमारी घ्राण-शक्ति पर बुरा प्रभाव उत्पन्न नहीं करता। शरीर के भीतर के उन वाष्पों के निकालने का यत्न गुर्दों के द्वारा भी होता है। शीत (तरी जलरूप वस्तु) से मिलाकर गुर्दे में उन वाष्पों को नालियों द्वारा मूत्राशय में पहुँचाते हैं। इस कारण स्वेद वा मूत्रजल देह से पृथक होते हैं, तो देखने में वे प्रायः दो वस्तु हैं; परन्तु शरीर से निकली हुई लगभग समान वस्तुएँ ही हैं। जिस समय मूत्राशय पूर्ण रीति से पूरित हो जाता है, त्यों ही मूत्रत्याग की इच्छा प्रतीत होती है; यदि शरीर को वास्तविक बड़ी हानि पहुँचानी अभीष्ट न हो तो उसको उसी समय निवृत्त करना चाहिये। यह बात ऐसी अधिक आवश्यक है कि इसका वर्णन छोड़ा नहीं जा सकता। दुर्भाग्यवश वर्तमान समय की रीतियाँ विशेषकर पर्दा हमको इस विषय में उस तरह स्नान करने में जैसे कि करने उचित हैं वंचित रखते हैं। अतः उसमें कुछ आश्चर्य नहीं कि हमें गुर्दों और मूत्राशय में वह द्रव्य मौजूद मिलें जोकि बाहर

निकल जाने चाहिये थे। माता पिता तथा अध्यापक अपनी सन्तान को मल-मूत्र त्याग के रोकने की हानियों को भली भाँति समझाने में जितने सतर्क रह सकें थोड़ा है। इस विषय में किसी दशा में भी बालकों को (जिनके विकृत द्रव्य की दशा में युवा मनुष्यों की अपेक्षा, शीघ्र परिवर्तन होता है, वा जिनकी जीवन-शक्ति भी अत्यधिक होती है) इस प्रकार मल-त्याग आदि क्रिया को रोकना कदापि उचित नहीं है, यदि हम चाहते हैं कि उनको ऐसी हानिकारक एवम् भयानक दशा से बचावें। यदि मूत्राशय से मूत्र उचित समय पर परित्याग न किया जाय तो मनुष्य के शरीर के भीतर की हर वस्तु के समान इसमें फिर लगातार परिवर्तन होता रहता है—और उबाल होता रहता है। फलतः मूत्राशय में गर्मी अधिक हो जाती है और मूत्र का पतला (प्रवाही) अंश भाप का रूप धारण कर उड़ जाता है और उसमें के नमक शेष रह जाते हैं। इस क्रिया के कारण गुर्दों की पृथक की हुई वस्तुएँ मूत्राशय में जाने से रुक जाती हैं और उनमें भी इसी प्रकार अनेक परिवर्तन होने लगते हैं। यदि मूत्राशय अथवा अन्तड़ियों के खाली करने की इच्छा उचित समय पर पूर्ण न की जाय तो बहुधा यह इच्छा भंग हो जाती है और फिर यदि हम चाहें भी तो यह इच्छा कठिनाई से प्रकट होती है। परन्तु उस समय मूत्र कहाँ चला जाता है? यह मूत्राशय में कम हो जाता है और अवश्य ही पुनः शरीर में ही किसी प्रकार चला गया होगा। हम जानते हैं कि कुछ अंश मूत्र का लगातार उस जोश की क्रिया के कारण जिससे प्रत्येक वस्तु अपने भागों को पृथक-पृथक करती है, भाप के रूप में हो गया है और सम्पूर्ण शरीर और रुधिर में उसी प्रकार मिश्रित हो गया है जैसे कि पाचन की क्रिया में। मूत्र के इस प्रकार भाप होकर उड़ जाने की दशा में नमक वा और न घुलने वाले पदार्थ गुर्दों तथा मूत्राशय में पीले बिल्लौरी शीशे के छोटे-छोटे खंडों के रूप में रह जाते हैं और फिर—यदि सबका सब के सब नहीं—बाहर निकाल दिये जाते हैं। मूत्र के पात्र की गाद को यदि सूक्ष्म दर्शी यन्त्र के द्वारा असली परिमाण से दो सौ गुणा अधिक बढ़ा हुआ देख कर परीक्षा करें तो ज्ञात होगा कि उसमें पीत वर्ण के छोटे-छोटे बिल्लौरी टुकड़े होते हैं जो, यदि भिन्न-भिन्न देखे जावें तो--पीत, परंच एकत्रित देखने से रक्त वर्ण के दिखाई पड़ते हैं।

इस प्रकार से, जिस काल विशेषकर मूत्राशय (विकारी वस्तु) से अतिपूरित होता है, तो वह साधारण रोग उत्पन्न होता है जिसको पथरी कहते हैं। इसकी चिकित्सा इस पुस्तक में अधिक विस्तार से वर्णन की है।

पथरी केवल शरीर के रोगीपन की दशाओं में उत्पन्न होती है, अथवा प्रकृति के विरुद्ध भोजन का यह फल है। यह उसी प्रकार उत्पन्न होती है जैसे एञ्जिन में जल के खौलने के स्थान में पपड़ी जम जाती है। यह पथरी बहुत ही ऊँचे दर्जे की गर्मी में जमा करती है जबकि भारी जल काम में लाया जाता है। वर्षा के हलके जल में वह अति न्यून होती है। मूत्र गुर्दों में रुक कर भाप होकर उड़ता है और छोटे-छोटे चमकदार टुकड़े आपस मे मिल जाते हैं। जब तक ये अत्यन्त छोटे होते हैं मूत्र के सङ्ग गुर्दों की नालियों में होकर बिना पीड़ा के मूत्राशय में चले जाते हैं; परन्तु जब वह पहिले से बड़े हो जाते हैं—तो मूत्र की नालियों में गमन करते समय पीड़ा उत्पन्न करते हैं जिसको पथरी सम्बन्धी कुलँच के दर्द के नाम से हम जानते हैं—ऐसी पथरियों का तीक्ष्ण और नुकीला धरातल मूत्र की नाली की झिल्ली को रगड़ता और उसको हानि पहुँचाता है। मूत्राशय में भी यही क्रिया होती है। यदि मूत्र के निकलने के द्वारा पेड़ू में निकृष्ट तत्व के सञ्चित होने से सङ्कीर्ण (तङ्ग) हो गये हों तो यह सुगमता से हो सकता है कि पथरियाँ मूत्र के सङ्ग बाहर नहीं निकल सकेंगी और मूत्राशय में और भी बड़ी बिल्लौरी पथरी के बनने के लिये एक बुनियाद (नीव) कायम कर देंगी। मूत्राशय में पथरी के सदैव भ्रमण करने के कारण पथरीं गोल आकार की सी हो जाती है, किन्तु टूटने में सदैव बिल्लौर का सा स्वभाव रखती हैं।

इससे क्या यह परिणाम नहीं निकलता कि यदि मूत्र रोका जावे तो पथरियाँ अवश्य बन जायेंगी? मूत्र इस प्रकार का हो सकता है कि सब का सब बदल जावे और शरीर में विजातीय द्रव्य की नाईं एकत्रित हो जावे। ऐसी दशा में कई प्रकार के रोग हो सकते हैं, जैसे कि गुमड़ियों का वृद्धि पा जाना जैसा कि इस पुस्तक में पहले वर्णन किया है।

कुछ वर्ष हुए—एक बालक का का मैं इलाज करता था। उसका सम्पूर्ण शरीर मटर के समान गुमड़ियों से पूरित था। यह उसके शरीर में उस समय उत्पन्न हुई थीं जबकि एक समय शीत लग जाने के कारण कई दिवस तक वह मूत्र त्याग न कर सका था। मैंने कहा कि यदि यह गुमड़ियाँ केवल मूत्र के रुकने से ही उत्पन्न हुई हैं तो वे तत्काल ही नष्ट हो जायगीं। हमारा काम यह होना चाहिये कि उनको पुनः मूत्र के रूप में बदल देवें। उस बालक ने मेरी चिकित्सा आरम्भ की और कुछ दिनों में ही उसको अधिकाधिक मूत्र आने लगा और इसी प्रकार कई दिन तक

आता रहा। सभी गुमड़ियां एक साथ ही तत्काल नष्ट हो गईं। यह देखकर उसकी माता को आश्चर्य हुआ। इस दशा में विजातीय द्रव्य ने (जो मूत्र की दशा में परिवर्तन होने से) उन गुमड़ियों को उत्पन्न किया था जिनको कि शरीर अधिक जीवन शक्ति रखने के कारण, निकालने के योग्य हुआ था।

—:०:—

अतीसार वा मलबद्ध (क़ब्ज़)

अतीसार वा मलबद्ध जैसा कि ऊपर सिद्ध किया गया है एक ही कारण अर्थात् शरीर में विजातीय द्रव्य का भार होने से उत्पन्न होते हैं। मूत्र की भी वही दशा है। अन्तर यह है कि कि इसमें (मूत्र का) रुकना स्पष्ट प्रतीत नहीं होता, परन्तु केवल फेर से जाना जाता है ---अर्थात् त्वचा के असाधारण वर्ण (असाधारण लाल रङ्ग से) गुमड़ी रोग--शिर पीड़ा---रसौली, पथरी----इत्यादि से एक प्रकार से दूसरे रोगों की प्रारम्भिक अवस्था हमको ज्ञात होती है।

बहुमूत्र अथवा मधुप्रमेह (डायाबिटीज़ Diabetes)—यह रोग जो पेचिश से मिलता[1] है इससे स्पष्ट विरुद्ध ज्ञात होता है। जलन जो अन्तरीय ज्वर के कारण होती है जिसके कारण बहुमूत्रता या मधुप्रमेह के रोगी को व्याकुल करने वाली प्यास भी लगती है---इस दशा में न तो मलबद्ध उत्पन्न करती है न पथरी वा रसौलियाँ बनाती हैं; किन्तु वह द्रव्य को अति शीघ्र निकालती है और उसके सञ्ज[2] रसों को भी सड़ाती है। अतः जोश खाया हुआ मूत्र शरीर से बुरी और मीठी दशा में बाहर निकलता है। पथरी और मधु प्रमेह या मूत्रातिसार वास्तव में एक ही प्रकार के रोग हैं—केवल वाह्य चिह्नों में भिन्न हैं। उन रोगियों को जो इनसे ग्रसित हैं मेरे नियत किये हुये स्नान अति लाभदायक हैं। वे अंतरीय ज्वर को घटाते हैं और इसी कारण तृषा की अधिकता को भी दूर करते हैं। मेरी चिकित्सा से पथरी तथा मधुप्रमेह या मूत्रातिसार दोनों को एक ही रीति अर्थात् उनका कारण नष्ट कर देने से आराम हो

१—मूत्र के रुकने के रोग से अभिप्राय है जिसका कथन ज़रा ही ऊपर किया गया है।

२—भोजनादिक से जो आमाशय में जाकर अनेक प्रकार के रस निकलते हैं उनसे अभिप्राय है।

चुका है। पथरी छोटे-छोटे टुकड़ों में भिन्न-भिन्न हो जाती है। वह इस आकृति में बहुधा मूत्र के संग निकल जाती है। पथरी के रोगियों की चिकित्सा करने में यह आश्चर्य की बात प्रतीत होती है कि स्नान लेने की दशा में उनको बहुत अधिक मात्रा में मूत्रत्याग करना पड़ता है। रोगी लोग आश्चर्य करते हैं कि यह समग्र जल कहाँ से आया। यद्यपि इसका कारण बतलाना अति सुगम है। मूत्र जो प्रथम भाप बनकर उड़ गया था और समग्र देह में निकृष्ट तत्त्व की आकृति में एकत्रित हो गया था, पुनः पुरातन मार्ग से ही वापिस लाया गया है और अंत में वही शरीर से मूत्र की दशा में निकलता है। मेरी चिकित्सा में ऐसे रोगी रहे हैं जो कि स्नान लेने की दशा में ही आराम से मूत्र त्याग कर सकते थे। शनैः-शनैः रोग के कारणों के निवृत्त होने पर मूत्राशय अपनी स्वाभाविक दशा पर आ गया। हमको महाराजाधिराज[1] विलियम (Emperor William) की प्रथम दशा से यह बात ज्ञात हुई है कि पथरी रोग होते हुये भी कोई-कोई मनुष्य कितनी दीर्घायु को पहुँच सकते हैं। यद्यपि इस सम्राट के मूत्राशय में एक बड़ी पथरी थी—तो भी उसकी आयु नब्बे वर्ष की हुई। इसका करण केवल यह था कि उपरोक्त स्वर्गवासी महाराज के शरीर में निकृष्ट तत्त्व का भार एक उचित स्थान पर था। यही रोग उसके पुत्र स्वर्गवासी शाहनशाह फ्रेड्रिक (Emperor Frederick) को अधिकतर और अधिक बुरे रूप में प्रकट हुआ।

यूरेमिया (Uræmia)—एक दशा है जिसमें कि यूरिया (Urea) समग्र शरीर में और रुधिर में पाया जाता है, जो कि प्रायः साधारण रूप से पथरी तथा मूत्राशय के रोग के संग-संग चलती है। यह रोग अपनी प्रथम दशा में भी जिस समय कि स्वयं रोगियों को इसका ध्यान तक भी नहीं होता मेरे मुखाकृति विज्ञान—के जानने वालों से गुप्त नहीं रह सकता। कोई चिकित्सा ऐसी नहीं जो रुधिर और समग्र शरीर को इस विकृत पदार्थ से इतना शीघ्र स्वच्छ करे जैसे कि मेरे बताए हुए स्नान।

वेड-वेटिंग (Bed-wetting) मूत्र प्रवाह—अर्थात् यह असह्य दशा भी जिसमें कि रोगी मूत्र को रोक नहीं सकते, केवल उदर में विकृत पदार्थ के भार के कारण से ही होती है। मूत्राशय में एक व्रण हो जाता है जिनके द्वारा मूत्र निकल

[1]—जर्मनी देश के प्रसिद्ध सम्राट का नाम है।

जाता है। लगभग यह दशा भी सदैव उन्हीं प्रथम रोगों के कारण जो कि जाते नहीं रहे हैं और केवल औषधियों के द्वारा वा नियम विरुद्ध चिकित्साओं से शरीर में ही दवा दिये गये हैं हुआ करती है।

इस प्रकार का रोग व आँत का व्रण (गुदा के भीतर का फोड़ा) बहुधा मेरी चिकित्सा से अति अल्पकाल में ही अर्थात् किंचित् दिवसों या सप्ताहों में ही सम्पूर्ण नष्ट हो गये हैं। अधिक काल तक चिकित्सा की केवल उसी समय आवश्यकता होती है जब रोग दीर्घकालीय हो गया हो और रोगी को औषधियों की चिकित्सा द्वारा हानि पहुँच चुकी हो।

कैटार आफ़ दी ब्लैडर (Catarrh of the bladder) अर्थात् मूत्राशय की जलन—यह कुछ सीमा तक केवल मूत्राशय तथा पथरी के रोग की शीघ्र होने वाली प्रथम दशा है। अन्यथा यह एक ऐसी तीक्ष्ण और सूजन ली हुई दशा मूत्राशय व मूत्र की नाली की है जिसमें मूत्र त्याग के समय पीड़ा हुआ करती है। यह रोग भी सम्पूर्ण तीक्ष्ण ज्वरों के समान मेरी चिकित्सा के ढंग से अति शीघ्र नष्ट हो सकता है।

इस रोग का कारण भी सम्पूर्ण अन्य रोगों की भांति एक ही है। एक समय एक रोगी ने जो दो सप्ताह से मूत्राशय की जलन से ग्रसित था मुझे बुलाया। उसकी प्रास्टेट गिल्टी (Prostate) अत्यन्त सूजी हुई थी और उसको पेशाब करते में बहुत कष्ट होता था। प्रति दस मिनट के अनन्तर मूत्राशय में बहुत ही ऐंठन होती थी। इस कारण मूत्र त्याग के समय प्रदि दिन पीड़ा अत्यन्त बढ़ती जाती थी। उसके वैद्य ने चौदहवें दिवस सायंकाल में सलाई डालनी चाही। परन्तु प्रास्टेट गिल्टी (Prostate) की सूजन के कारण ऐसा करना असम्भव था। वैद्य ने कहा कि इस रोगी को क्लोरोफ़ार्म (मूर्छा लाने वाली औषधि) देनी पड़ेगी। रोगी ने ऐसा करने की आज्ञा न दी और उसी रात्रि को मुझे बुलाया। प्रथम फ्रिक्शन बाथ[1] ने ऐंठन को जो प्रति दस मिनट के पश्चात् होती थी बन्द कर दिया और जब रोगी को आध घण्टा स्नान करते व्यतीत हो चुके तो वह पीड़ा रहित मूत्र त्याग कर सका।

१—अभिप्राय है सिट्ज़ बाथ से।

पौन घण्टे पर्यन्त स्नान करने पर रोगी शयन के निमित्त पलंग पर गया। रात्रि के समय भली प्रकार पसीना आया और बिना कष्ट के उसने बहुत सा पेशाब किया। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में मूत्राशय की जलन पूर्णतया अच्छी हो गई।

यकृत रोग--जिगर की पथरियाँ--पांडु रोग--विशेषकर उन अवस्थाओं में ये रोग उत्पन्न होते हैं; जबकि विकृत पदार्थ का भार शरीर के दक्षिण की ओर होता है। यकृत से निकलने वाली तरल वस्तु अर्थात् पित्त—जिसको हम जानते हैं कि गाल-ब्लैडर अर्थात् पित्त की थैली से निकल कर प्रथम छोटी अंतड़ियों में प्रवेश करता है—पाचन-शक्ति की क्रिया में एक प्रकार का प्रभाव डालता है--अर्थात् सड़न को घटाता है। जिस समय दाहिनी ओर विकृत पदार्थ के स्थित होने से यकृत में हानि होती है और इस कारण उसकी पित्त के निकालने की यथार्थ क्रिया बिगड़ी हुई होती है, तो मैंने देखा है कि उस अवस्था की अपेक्षा जिसमें विजातीय द्रव्य का बोझ बाईं ओर होता है पसीना अत्यन्त भिन्न मात्रा का निकलता है। इस रीति से विकृत पदार्थ के भार के विचार से जिगर की पथरियाँ और जिगर का कड़ापन उत्पन्न होता है। इस रोग के सम्पूर्ण रोगियों को प्रायः निकृष्ट तथा दुर्गन्धियुक्त थोड़ा-थोड़ा स्वेद (पसीना) भी आता है और विशेषकर उनके तलवे पसीजते रहते हैं।

पित्त का उड़ना--तथा जोश खाना भली प्रकार से त्वचा के श्यामवर्ण हो जाने से अर्थात् लीवर स्पाट्स (अर्थात् यकृत से धब्बों) की दशा में प्रतीत होता है और बहुत सी अवस्थाओं में पांडु रोग उत्पन्न करता है। इन रोगों की चिकित्सा करने में मैंने यह देखा है कि मेरी चिकित्सा की रीति से अति शीघ्र आरोग्यता प्राप्त हुई है।

तलुवों का पसीजना--यह रोग जैसा कि ऊपर बतलाया गया है जिगर की खराबी से बहुत ही सम्बन्ध रखता है जैसा कि विशेषकर देखने में आया है, यह रोग जिगर की खराबी के साथ-साथ होता है। अतः तलवों में अधिक पसीना आने से यह बात कई वर्ष पहिले प्रगट हो जाती है कि विजातीय द्रव्य का भार शरीर के दक्षिण की ओर वृद्धि पा रहा है। दीर्घकालीन जिगर और पित्त सम्बन्धी रोगों में विशेषकर पसीना आना बन्द हो जाता है, तब रोगी की दशा क्रमशः गिरती चली जाती है। कारण यह है कि तलवों से निकलने वाला विजातीय वा दुर्गन्धित द्रव्य शरीर में

ही रह जाता है और इससे निकृष्टतम दशा वाले अन्य रोग जैसे मकड़ी—सरताव आदि जिनका दूर करना अति कठिन व कष्ट साध्य है उत्पन्न हो जाते हैं। यदि तलुवों से अधिक पसीने का आना औषधियों द्वारा यथा क्रोमिक एसिड से बलात् बन्द किया जावे तो रोगी को बहुत हानि पहुँचती है। औषधियों द्वारा चिकित्सा की हानियां प्रायः दीर्घ काल तक बल्कि वर्षों तक जब तक कि कोई अन्य हानिकारक रोग प्रगट न हो जावे ज्ञात नहीं होतीं। खराब स्वेद का औषधि द्वारा कृत्रिम रीति से विरोध करना ठीक ऐसा ही है जैसा कि किसी बड़े नगर के बड़े गन्दे नाले को बन्द करना (जिसमें सम्पूर्ण छोटी-छोटी नालियां आकर गिरती हैं), जिसको इस कारण से रोक दिया जाय कि उसके निकास पर असह्य दुर्गन्ध आती है। यह सत्य है कि बड़े गन्दे नाले के मुख पर दुर्गन्ध का निरोध हो जायगा, परंतु नगर के भीतर अत्यन्त निकृष्टतम दशा व्याप्त हो जायगी—अथवा प्रत्येक स्थान मरी उत्पन्न करने वाली दुर्गन्ध से पूरित हो जावेगा। यह अति शोक का विषय है कि हमारे (जर्मनी) देश की सेवा के कार्य-कर्ता नवीन डाक्टरी विद्या के शिक्षानुसार जो उन रोगों के मूल कारण के ज्ञान से अन्धकार[1] में है, सिपाहियों को तलवे पसीजने के रोग निवारणार्थ क्रोमिक (Chromic) तथा सेलीसिलिक (Salicylic) एसिड (Acid) आदि के सेवन की सिफारिश करते हैं। मैं इस हानिकाकारक चिकित्सा से सर्व साधारण को सूचित करता हूँ। मेरी चिकित्सा की विधि से यह व्याकुल करने वाला स्वेद स्वतः ही लुप्त हो जाता है क्योंकि उससे उसका कारण दूर हो जाता है।

मकड़ी वा त्वचा के रोग—इन रोगों का जो बहुधा देखने में आते हैं कारण भी एक ही है, इससे कुछ प्रयोजन नहीं कि रोग किस रूप में फूट निकले। मैंने बहुत से रोगियों की जो इन रोगों में ग्रसित थे चिकित्सा बड़ी सफलता के साथ की है और करीब-करीब हमेशा ही मुझे इस बात की पुष्टता हुई है कि ये रोग तलवे वा त्वचा के स्वेद को दबा कर निरोध कर देने की एक वृद्धि पाई हुई दशा है। ये रोग उस बहुकालीन दशा को प्रगट करते हैं जो किसी अन्य रोग के दबने से हुई है। इस कारण उनकी चिकित्सा भी तनिक अधिक समय तक और यथार्थ रीति से करनी उचित है।

मकड़ी का रोग या तो शुष्क होता है अथवा उसमें एक प्रकार का जल सा

१—मूल कारण का ज़रा भी ज्ञान नहीं है।

बहता रहता है। शुष्क मकड़ी का रोग विशेषकर अधिक काल में अच्छा होता है यह सदैव माता पिता आदि पुरुषाओं के विजातीय द्रव्य अथवा बालकों के उन रोगों से जो दवा दिये गये हैं--प्रायः टीका लगने से, हुआ करता है।

अधिक स्पष्ट दर्शाने के लिये मैं इस स्थान पर इस रोग के बहुत से रोगियों में से दो रोगियों का हाल बताता हूँ। इनमें जो पहिला रोगी था उसके दूसरी बार टीका लगाने की तिथि से ही त्वचा में फुन्सियाँ निकलने लगी थीं और ये रोग समग्र शरीर में व्याप्त हो गया था। रात्रि के समय वह अपने दस्ताने पहन लिया करता था और अपने हाथों को केवल इसलिये बँधवा लिया करता था कि कहीं वह अपने आपको खरोंच न डाले। थोड़े समय में ही उसने अपने पाजामे वा कोट की जेबों में से खरोंच डाला। वह अपने मित्रों के साथ भी मिल नहीं सकता था और बहुधा अपने समग्र समय को पठन-पाठन में ही व्यतीत किया करता था--जिससे उसकी मानसिक व्यथा और भी अधिक बढ़ गई थी। ज्यों-ज्यों उसकी आयु बढ़ती गई त्यों-त्यों उसका रोग वृद्धि पाता गया। उसका उत्साह सर्वथा भंग हो गया और वह केवल इसी विचार में निमग्न रहता था कि मृत्यु उसकी बाट जोहती हुई निकट चली आ रही है।

दैवयोग से उसने पुरातन स्वाभाविक चिकित्सा का वृतान्त सुना और उसके पश्चात् मेरी पुस्तक[1] न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग—के द्वारा मेरी चिकित्सा-विधि का वृत्तान्त पढ़ा। मेरी सम्मति के अनुसार उसने प्रति दिन दो स्नान किये और स्वल्प एवम् अनुत्तेजक अर्थात् सात्विक भोजन करना आरम्भ कर दिया। अतः उसने आनन्द पूर्वक शीघ्र ही अपनी सामान्य आरोग्यता की दशा में उन्नति प्राप्त की। तत्पश्चात् शनैः-शनैः उसकी फुन्सियाँ अच्छी होने लगीं। कुछ काल में मकड़ी जो चेचक के टीके के कारण फटी भी पूर्ण रूप से जाती रही।

छाजन रोग--एक युवा पुरुष इस रोग में भी ग्रस्त था। जिसकी आयु केवल चौबीस वर्ष की थी। उसे बड़ा भयानक रोग था। विशेषकर उस के शिर और गर्दन पर इसका आक्रमण हुआ था। मरहम तथा अन्य औषधियों से उसे तनिक भी लाभ न हुआ। इस कारण उसका विश्वास औषधियों की चिकित्सा से बिलकुल हो जाता रहा। तब वह मेरे पास आया और उसने मेरी सम्मति

१—"नई आरोग्यताप्रद विद्या"। अर्थात् यह पुस्तक आप जो पढ़ रहे हैं।

से चिकित्सा आरम्भ की। मैंने उस रोगी को विश्वास दिलाया कि उसका रोग अवश्य जाता रहेगा क्योंकि परीक्षा से प्रतीत हो गया है कि विजातीय द्रव्य का भार सामने की ओर है। कुछ दिन में ही उसकी पाचन-शक्ति सुधर गई और छाजन रोग भी उसके साथ ही अच्छा होने लगा। तीसरे दिन जल का निकलना बन्द हो गया और सोलह दिन में उस रोग का चिह्न तक भी नहीं रहा। रोगी की ग्रीवा (गर्दन) जो अति स्थूल थी इन दिनों में डेढ़ इंच कम हो गई। वह निकृष्ट तत्त्व जो स्थूल ग्रीवा और छाजन का कारण था, गुर्दों वा अन्तड़ियों द्वारा पर्याप्त मात्रा में बाहर निकल गया। चिकित्सा की अधिक रिपोर्ट जिनमें एक रिपोर्ट साईकोसिस Sycosis (अर्थात् ठोड़ी-पर की फुन्सियों) की भी है चतुर्थ भाग में मिलेगी।

हृदय रोग और जलोदर--उन हृदय रोगों की नामावली बड़ी लम्बी है जिनसे मनुष्य बहुधा पीड़ित रहते हैं और औषधि द्वारा चिकित्सा करने वाले डाक्टर प्रत्येक रोग के पृथक्-पृथक् चिह्नों के विचार से भिन्न-भिन्न रीति से उनकी चिकित्सा करते हैं इन रोगों का विभाजन इस प्रकार से किया जा सकता है :—(प्रथम) हृदय के आरगैनिक (Organic) रोग अर्थात् वे रोग जो हृदय की बनावट से सम्बन्ध रखते हैं—(द्वितीय) कारडियक वाल्वज़ Cardiac valves अर्थात् हृदय की किवाड़ियों के रोगों में, (तृतीय) हृदय के (बाह्य) चिह्नों में जिन सबकी उत्पत्ति साधारण कारणों से हुआ करती है। यदि हम पक्षपात को त्याग कर हृदय के रोगों के कारणों की परीक्षा करें और उनकी व्यवस्था को प्राकृतिक कार्य्यवाही में खोजें तो हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि विजातीय द्रव्य का हृदय में भार हो जाना ही हृदय के समस्त रोगों का मूल है। इसीलिये इन रोगों के भिन्न-भिन्न भाग करना सर्वथा निरर्थक है। किसी-किसी दशा का वास्तव में भयानक होना हृदय के स्वभाव वा हानिकारक प्रभावों के रोकने की थोड़ी बहुत उनकी योग्यता पर निर्भर है। यदि विजातीय द्रव्य का भार बाँई ओर हो तो रोग की वृद्धि का भय उस दशा की अपेक्षा अधिक होता है, जबकि वह भार शरीर में दक्षिण की ओर हो। वह हृदय जो जन्म से ही रोग की ओर चेष्टा रखता हो और इसी कारण निर्बल उत्पन्न हुआ हो वह स्वाभाविक रीति पर विकृत पदार्थ का सामना (मुक़ाबला) नहीं कर सकता। उस दशा में जिसमें कि विकृत पदार्थ का भार हृदय में होता है, हमको विशेषकर शरीर में भी निरर्थक तत्त्व के भार होने के साधारण चिह्न मिलते हैं। विजातीय

द्रव्य केवल[1] निकट के भागों में ही अधिकतर (चर्बी) मेद की शक्ल में वृद्धि पाता हुआ नहीं प्रतीत होता है, बल्कि हृदय के पट्टे भी विजातीय द्रव्य से प्रायः ऐसे पूरित हो जाते तथा फूल जाते हैं कि वह अपनी शुद्ध-शुद्ध क्रिया करने में भी पूर्णतया समर्थ नहीं रहते। प्रत्येक दशा में यह आवश्यक नहीं है कि हृदय के पट्ठे बढ़ जायँ। हृदय के पट्ठों के रेशों में विकृत पदार्थ की उपस्थिति प्रायः उनके अधिक कठोर—अधिक घने अथवा अधिक तने हुए होने में प्रतीत होती है। ऐसी दशा में पट्ठों में अपनी स्वाभाविक क्रिया करने की सामर्थ्य न्यून हो जाती है। प्रत्येक मनुष्य इसको जानता है कि जिस समय त्वचा में किसी प्रकार की सूजन होती है तो उसका तनाव सम्पूर्ण शरीर की क्रिया में रुकावट डालता है। इसी प्रकार पट्ठों में भी विजातीय द्रव्य का भार हृदय की चाल को नियम विरुद्ध (बेक़ायदा) बना देता है। जिस समय हृदय से कोई अधिक कार्य लिया जाता है—जैसा कि हम पर कोई विपत्ति आ पड़े अथवा कोई अकस्मात् भड़काने वाली वार्त्ता हो जाय। या अति कठिन शारीरिक परिश्रम करना पड़े, या वह दशा जिसमें कि हृदय की ओर साधारण से अधिक रुधिर का प्रवाह होने लगे तो हमको स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह अंग अपनी क्रिया पूर्ण रीति से करने के योग्य नहीं रहा। इससे हृदय कम्पन, चिन्ता, रुधिर का रुक जाना, फ़ालिज, श्वाँस लेने में कठिनाई इत्यादि रोग उत्पन्न हो सकते हैं। इसमें बहुधा पीड़ा अधिक नहीं हुआ करती वरन् आलस्य या चित्त पर एक प्रकार का बोझ लगातार वा थोड़े काल पर्यन्त प्रतीत होता है और ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कोई विजातीय वस्तु हृदय पर दबाव डाल रही है।

हृदय के छिद्रों की स्वाभाविक क्रिया में उसी प्रकार दोष उत्पन्न हो जाते हैं। जब उनमें किसी सीमा तक विकृत पदार्थ रहता है तो वह अपने आप बन्द करने की क्रिया को भली प्रकार से नहीं कर सकतीं। उनकी समस्त सतहें विजातीय द्रव्य के एकत्रित हो जाने के कारण ऐसी बेडौल हो जाती हैं कि अब रुधिर के खानों के मुख पर ठीक-ठीक नहीं आतीं। हृदय के छिद्रों में इस प्रकार से भी एक प्रकार का व्यतिक्रम हो जाता है और रुधिर के कोषों के मुख की सतह जो प्रायः छिद्रों से मिल जाया करती है बेडौल हो जाती है। दोनों दशाओं में कारण एक ही है।

१—अभिप्राय है शरीर के भीतरी स्थानों से जो हृदय के निकट उसके चारों ओर उपस्थित हैं।

हृदय के पट्ठों के रेशों (स्नायु) की खराबियां वास्तव में एक बड़ा अद्भुत आविष्कार हैं। जैसा कि मैं स्नायु सम्बन्धी रोगों के अध्याय में कथन कर चुका हूँ। किसी एक अंग में रोग नहीं हो सकता जब तक कि उसके पट्ठों में भी खराबी न हो। ऐसा विचार करने से कोई अंग रोगी हो जावे और उसके सम्बन्धी स्नायु निरोगी रहें; यह विदित होता है कि नेचर अर्थात् प्रकृति और उसके नियमों का सर्वथा अशुद्ध ज्ञान प्राप्त हुआ है। अथवा यह बात भी वैसी ही है कि सम्पूर्ण शरीर तो स्वस्थ हो और उनके स्नायु रोगी हों। मेरी समझ में यह एक पुराना विचार है सम्प्रति हमें यह निश्चय हो गया है कि हृदय के सपूर्ण भिन्न-भिन्न रोग, उनके सैकड़ों नाम, उनकी भिन्न-भिन्न वाह्य दशाएँ तथा उनके भिन्न-भिन्न चिह्नों सहित जो रोग हैं उन सबका मूल कारण एक ही है अर्थात् शरीर में विकृत पदार्थ का भार।

परन्तु यदि हृदय के रोग का कारण दूर न किया गया अथवा विरुद्ध औषधियों द्वारा शरीर में यदि और अधिक विजातीय द्रव्य अथवा विषैला द्रव्य प्रवेश कर दिया गया तो पहिले से भी अधिक निकृष्ट दशा उत्पन्न हो जावेगी अर्थात् जलोदर रोग उत्पन्न हो जावेगा। यह रोग सदैव अन्य रोगों की (जो इससे प्रथम हो चुके हैं और निवृत्त नहीं हुए हैं) अन्तिम दशा है। इस रोग की दशा में जो जल शरीर में मिलता है वह सम्पूर्ण रूप से विजातीय द्रव्य ही है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि शरीर अब ऐसी दशा में नहीं है कि शुद्ध रक्त उत्पादन करे अथवा जो रक्त उसमें है उसको सम्पूर्ण प्रकार से शुद्ध करे। परिणाम यह होता है कि वे रस जो रक्त उत्पादन करते हैं विकृत पदार्थ के कारण जोश में आकर अपने रूप तथा आकृति को बदल देते हैं। किसी अन्य रोग में हम ऐसी स्पष्ट रीति से तत्त्व के उत्पन्न होने या उसके शरीर में सड़ने—और इस कारण से शरीर की आकृति में परिवर्तन के होने की क्रिया का पता नहीं लगा सकते हैं। थोड़े समय की बात है कि एक जलोदर रोग के रोगी ने जिसका शरीर जल से ऐसा पूरित था कि मानों रबड़ के फूले हुए नल के समान प्रतीत होता था, मुझसे उसकी चिकित्सा के विषय में सम्मति मांगी। जल का अन्तरीय दबाव ऐसा अधिक था कि टाँगों की त्वचा द्वारा बराबर जल टपकता था। अतः जिस स्थान पर वह रोगी बैठता वहीं तरी के चिह्न रह जाते। इस रोगी में सबसे बड़ी देखने की बात यह थी कि वह मक्खन बेचने वाला मनुष्य था, जिसको प्रति दिन बहुत सा मक्खन पृथक-पृथक करने के लिये चखना पड़ता था।

जल जो टाँगों द्वारा निकलता था उसमें मक्खन की गन्ध इतनी अधिक थी कि उसके रोग के मूल कारण जानने में तनिक भी संशय नहीं हो सकता था। कालान्तर में उसका आमाशय मक्खन की इतनी बड़ी मात्रा पूर्ण रीति से पाचन करने के योग्य न रहा था, जितनी कि उसको प्रति-दिन मक्खनों की तुलना करने में रोटी आदि के वस्तु के विना वह खानी पड़ती थी। शनैः-शनैः मक्खन का पाचन कम होने लगा और अन्त को वह शरीर में विकृत पदार्थ बन गयी। वह मनुष्य वाम पार्श्व से सोने का अभ्यासी था। अतः उसी ओर मक्खन सञ्चित हो गया। हृदय के अन्दर और उसके निकट और सम्पूर्ण शरीर पर थोड़ी बहुत मेद की मात्रा संग्रह होती गई। इसका प्रथम फल हृदय का एक रोग हुआ जो कई वर्ष तक रहा। अन्त को विजातीय द्रव्य ने सड़ने की एक दूसरी दशा पलटी, तब वह जल के रूप में प्रगट हुआ। हृदय का रोग सब मञ्जिलों से गुजर चुका था। प्रथम हृदय धड़कन हुआ। पुनः हृदय के स्नायु का रोग, फिर हृदय में मेद की वृद्धि हुई जिसके सङ्ग ही शीघ्र हृदय की किवाड़ियों में एक दोष उत्पन्न हो गया। फिर हृदय के पर्दे में जल आ जाने का रोग उत्पन्न होकर सम्पूर्ण शरीर में जल फैल गया। रोगी सब प्रकार की अन्य चिकित्साएँ कर चुका था और दुर्भाग्यवश जब चिकित्सा का अवसर व्यतीत हो चुका तब वह मेरे निकट आया। उस समय उसकी दशा ऐसी भयङ्कर हो गई थी कि वह मेरी चिकित्सा करके भी पूर्ण फल प्राप्त न कर पाता। सम्पूर्ण प्रकार की औषधियों अथवा विषों द्वारा उसकी चिकित्सा की जा चुकी थी और उसके रोग की प्रत्येक दशा का एक नवीन नाम रक्खा गया था और कोई नवीन औषधि भी दी गई थी।

शरीर में जल एकत्रित होने का कारण पेड़ू में एक प्रकार की सड़ी हुई दशा का हो जाना है जोकि बहुधा दशाओं में शनैः-शनैः होने के कारण ज्ञात नहीं होती। जिस समय जल के कारण केवल श्वास लेने में कठिनता और हृदय में--व्याकुलता प्रतीत होती है उस समय इस खराबी कि ओर दृष्टि जाती है। जिस समय शरीर रोग का मुक़ाबिला करने लगता है और रोगी अपने मुख्य बल को सम्पूर्ण रीति से प्राप्त कर लेने के योग्य होता है तो वह दीर्घकालीन रोग एक तत्कालीन घृणित दशा में ज्ञात होता है। यदि रोग अति वृद्ध पा गया हो तो ऊष्णता लिये हुये घृणित दशा, रोगी को इतना दुर्बल कर देती है कि आरोग्यता का पूर्णतः

प्राप्त होना असम्भव सा हो जाता है। रोगी अन्दर ही अन्दर घुलता जाता है। इसके विरुद्ध यदि रोगी में अब भी पूर्ण वास्तविक जीवन-शक्ति है कि जिसके कारण शरीर विजय पा सकता है। तो जीवन-शक्ति इस योग्य होगी कि सूजन वा जलन को शरीर से बाहर निकाल दे। मैं इस बात को दो रोगियों के वृत्तान्त से जिनकी चिकित्सा मेरे चिकित्सालय में हुई थी दर्शाऊँगा। एक समय एक विदेशी भद्र पुरुष जो वर्षों से जलोदर के रोग में ग्रसित था जिसको एलोपैथिक चिकित्सा से कुछ लाभ न हुआ था मेरे पास आया। इसके पांव जल से फूल कर परिमाण से दुगने हो रहे थे और शरीर भी प्रायः फूला हुआ था। इस दशा पर भी रोगी को केवल श्वास लेने में कष्ट और पांवों में भारीपने का ही दुःख था। वह भली प्रकार चल फिर सकता था। मैंने उससे कहा कि उसका रोग असाध्य हो गया है—अब मेरी चिकित्सा का आरम्भ करना मेरी सम्मति में निरर्थक है। परन्तु रोगी ने हठ की और मेरे रोकने पर भी उसने आरोग्यता प्राप्त हो जाने की आशा से चिकित्सा आरम्भ की।

आरम्भ के सप्ताहों में सब चिह्न आशा से अधिक भले रहे। अधिक स्वेद तथा अधिक मल त्याग ने शीघ्र ही जल की मात्रा को न्यून कर दिया। इस पर रोगी अत्यन्त प्रसन्न जान पड़ने लगा। उस समय पर्य्यन्त उसके शरीर ने केवल रोग के तत्त्व अथवा जल को निकाला था। अब इसने जल के एकत्र होने के कारण को निवृत्त करना आरम्भ किया। यह आन्तरिक सड़न थी जो कुछ ज्ञात भी न हुई थी। शरीर एक ही प्रकार से आरोग्यता को प्राप्त कर सकता था अर्थात् पुरानी सड़न को तप्त और तीक्ष्ण दशा में बदल देने से यदि शरीर में अब भी आवश्यकीय जीवन-शक्ति शेष है तो वह निरर्थक तत्त्व को जिसके कारण यह निकृष्ट दशा प्राप्त हुई थी निकाल देगा और पूर्ण आरोग्यता प्राप्त हो जावेगी।

इसकी विपरीत दशा में[१] शरीर आन्तरिक ऊष्णता के कारण घुलता जावेगा। मेरे रोगी की दशा ने यही मार्ग ग्रहण किया जैसा कि मैं पहिले ही मालूम कर चुका था। तृतीय सप्ताह में पुरानी सड़न का परिवर्तन दक्षिण पग में आरम्भ हुआ। यह पैर प्रतिक्षण अधिकाधिक सूजने लगा। यहां तक कि पांव की अंगुलियों से

१—अर्थात् उस दशा में जब कि शरीर में जीवन-शक्ति अर्थात् जीवन बल-काफी नहीं रहा है।

पिंडली तक एक बहता हुआ घाव हो गया जो दूसरे ही दिन बिल्कुल काले रंग का हो गया। वह सड़न जोकि पहिले भीतर ही गुम थी अब बाहर निकाल गई जिसने उस रोगी को स्वाभाविक पीड़ा पहुँचा दी। चौथे सप्ताह में वह काला पदार्थ एक मोटी त्वचा के समान घाव से पृथक हो गया और घाव अच्छा होने लगा। अब उस रोगी (जो उस समय तक भारी शरीर का था) की आन्तरिक गर्मी, प्रति दिन बढ़ने लगी—यह चिह्न इस बात का निश्चय कराता है कि आन्तरिक सड़न में उस समय भी परिवर्तन हो रहा था। प्रथम फल अति तृषा का लगना हुआ। इस चिकित्सा से निकृष्ट तत्त्व के निकलने की क्रिया होने पर भी यह चिकित्सा सड़न पर स्वाधीनता प्राप्त करने और बढ़ी हुई गर्मी को कम करने में सफल न हुई, जैसा कि रोगी में निर्बलता के बढ़ने से स्पष्ट प्रगट था शीघ्र ही स्नान करने की भी आवश्यक शक्ति उसमें न रही। वह उन्तीसवें दिन मूर्छित हो गया और तीसवें दिन मृत्यु को प्राप्त हुआ। यह केवल अत्यन्त दाह के कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ जैसा कि मैंने प्रथम ही बता दिया था कि यह दशा प्रगट होगी।

अब मैं एक और रोगी का हाल बताता हूँ जिसका परिणाम अतीव संतोषजनक है। इस रोगी को दीर्घकाल से जलोदर का रोग था—और उसकी दशा चिन्तनीय थी, परन्तु सौभाग्य से इस कारण कि उसकी चिकित्सा होम्योपैथिक रीति से हुई थी उसने औषधि थोड़ी ही सेवन की थी। मेरी चिकित्सा से तीन सप्ताह के अन्दर ही उसका जल निवृत्त हो गया। उसके पश्चात् चौथे सप्ताह में प्रायः आन्तरिक गर्मी प्रतीत होने लगी। उसके संग अद्भुत चिह्न प्रगट थे जैसा कि चौथे सप्ताह में द्वितीय दिवस बारम्बार दस्तों का आना जो दुर्गन्धि युक्त—कृष्ण वर्ण मल[1] के विशूचिका वा अजीर्णता की तरह थे। ये दस्त तीन दिन तक आते रहे। रोगी के स्वल्पाहारी होने के कारण कुटुम्ब में कोई भी इस बात को न समझ सका। उसकी स्त्री इससे अत्यन्त ही चिन्ता ग्रसित होकर मेरे पास आई। मैंने उसको समझाया कि उसका पति केवल इस क्राइसिस के आने से ही बच गया। इस दशा से शरीर केवल अन्तरीय सड़न को दूर कर देने के योग्य ही नहीं हुआ था बल्कि उसके कारण को भी अर्थात् उस निरर्थक तत्त्व को भी जो वर्षों पर्यन्त उसके शरीर में एकत्रित होता गया था दूर कर सका था। रोगी इस क्राइसिस से अत्यन्त कृश और निर्बल हो गया था, तो भी वह प्रति दिन

१—दस्तों के द्वारा जो मल त्याग हुआ था उससे अभिप्राय है।

उन्नति करता हुआ शीघ्र ही आरोग्यता प्राप्त करने लगा। अब वह ऐसा स्वस्थ था मानो कि बीस वर्ष का हो—और जल का फिर चिह्न मात्र भी कभी प्रगट नहीं हुआ। सौभाग्य से रोगी का शरीर इस योग्य था कि पुरानी सड़न की दशा के तीव्र दशा में परिवर्तित होने को सह सका।

जलोदर केवल उस दशा में ही आरोग्यता को प्राप्त होने के योग्य होता है जब कि रोगी मेरी चिकित्सा ठीक-ठीक नियमानुसार करे और उसके वे अंग जिनमें कि जलोदर का प्रभाव है बिना सहायता के भली प्रकार पसीना (स्वेद) निकालने लगें।

उस समय यह सम्भव है कि जल तथा अन्य प्रकार का विजातीय द्रव्य निकाल दिया जा सके और पाचन-शक्ति अधिक ठीक की जाय। जिस समय शरीर की जीवन-शक्ति इतनी घट जाय कि वह विजातीय द्रव्य को न निकाल सके तो इस रोग को असाध्य समझना चाहिये। ऐसी दशा में और सब बातों से अधिक पाचन-शक्ति में सदैव काल के लिये उन्नति करना असम्भव है।

इस अवसर पर मैं एक बार अपने निदान की नवीन रीति अर्थात् मुखाकृति विज्ञान की ओर ध्यान दिलाऊँगा जो हमको एक ठीक मार्ग (विधि) जलोदर रोग के आगमन को वर्षों पूर्व जान लेने को बतलाता है। इस नवीन विद्या को जान कर हमको उस रोग के निदान करने के लिये, उस समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती जब तक कि रोग वृद्धि पाकर असाध्य न हो जाय। हम ऐसे समय चिकित्सा आरंभ कर सकते हैं जब कि उसकी दशा ऐसी हो कि सम्पूर्ण रीति से और शीघ्र ही वह दूर हो जावे।

उपरोक्त सत्यता की परीक्षा केवल क्रिया सम्बन्धी विधि से ही की जा सकती है। इसी कारण मैं एक मनोरंजक वृत्तान्त हृदय के रोग का जिसके संग जलोदर और कुष्ट भी मिला हुआ था आपके सम्मुख उपस्थित करता हूँ।

एक महाशय जावा देश के वेटेविया नगर का निवासी उस स्थान में चौबीस वर्ष से बाहर माल भेजने का व्यापार करता था और उसके कथनानुसार उस काल में उसका स्वास्थ्य उत्तम रहा। यद्यपि कभी-कभी नेत्रों पर सूजन—टांगों पर घाव और ज्वर हो जाया करते थे। हमको इन चिह्नों से इस बात का पूर्ण पता लगता है कि उसका शरीर स्वस्थ न था, बल्कि विकृत पदार्थ से पूर्णतया पूरित था। यह विजातीय द्रव्य प्रथम तो शरीर के एक अंग में एकत्रित हुआ। फिर

द्वितीय अंग में और ऊष्ण देश के जलवायु के कारण (हमारे मध्य कटिबन्ध[१] देश की अपेक्षा) उसमें शीघ्र उत्तेजना आई। इस प्रकार रोगी की एक तीक्ष्ण दशा प्रगट हो गई। इन बातों की सत्यता इस अति मनोहर विषय की आगामी दशा का इसको उत्तम प्रमाण देती है। नवम्बर सन् १८७६ में रोगी के शिर के पीछे वाम कर्ण के निकट एक बड़ी सूजन हो गई। विषैली औषधियों ने उसको दबा दिया और पुनः शरीर के भीतर बलात्कार घुसा दिया। थोड़े काल में यह दूसरे रूप में प्रगट हुई अर्थात् उसके हाथ की एक अँगुली सूज कर पक गई और उसमें से मवाद निकलना आरंभ हुआ। यहाँ तक कि हड्डी का एक टुकड़ा भी सड़ कर निकल गया।

हाथ की अंगुली अभी स्वस्थ नहीं हुई थी कि अन्तड़ियों में से रुधिर की असाधारण मात्रा निकल गई। यह निश्चित चिह्न इस बात का है कि[२] अर्श रोग के मस्सों का एक गुच्छा फट गया। इसके कुछ ही पश्चात् पांव पर एक खुला व्रण हो गया जो बहुत काल तक खुला रहा और बहता रहा।

इसके अतिरिक्त रोगी के हाथ पाँव शीतल रहते थे, ठण्डे पसीने आते थे और बारम्बार ज्वर के भी आक्रमण होते थे। इन सम्पूर्ण चिह्नों से किसी गहरे रोग की उपस्थिति प्रगट होती थी। फरवरी सन् १८८२ में साधारण से अधिक ऊँचे दर्जे का ज्वर उसको चढ़ा और कई दिन तक चढ़ा रहा। यहाँ तक कि उसके कुल वैद्यों ने इसको कुष्ट का रोग समझ कर यूरोप देश की यात्रा करने की बड़ी दृढ़ता के साथ सम्मति दी। १३ अप्रेल सन् १८८२ को उस रोगी ने बेटाविया नगर से प्रस्थान किया। यूरोप में पहुँच कर उसने बेसिल नगर के प्रोफेसर जे० से सम्मति ली। उन्होंने रुधिर में गर्मी का विकार समझ कर उसको डाक्टर एच० के पास बादक्रान कैनहील—स्थान को (जोकि रोज के समीप ऊपरी बेवेरिया में है) उनके गुणों की प्रशंसा करके भेज दिया। उस डाक्टर की चिकित्सा करने के समय में एक लाल धब्बा रोगी के दक्षिण हाथ पर प्रगट हुआ। वह कारोसिव सबलीमेट (Corrosive Cublimate) औषधि के रगड़े जाने पर भी नष्ट न हुआ। इस

१—अर्थात् मध्य की मध्यम दशा की जलवायु, अर्थात् जो न बहुत गर्म हो न बहुत सर्द।

२—इसको बवासीर भी कहते हैं।

चिकित्सा के अन्त में रोगी को कुछ बल प्रतीत हुआ, किन्तु वसन्त ऋतु में उसके शरीर पर रक्तवर्ण के अनेक धब्बे और भी प्रगट हो गये। इस प्रकार उसके जीर्ण ज्वर की दशा वृद्धि को प्राप्त हुई। अप्रैल सन् १८८३ में वह जावा (Java) को लौट आया जहाँ की ऊष्ण जलवायु में रहने से रक्तवर्ण के धब्बे स्वेद की अधिकता से शीघ्र ही लोप हो गये। मई मास में जब वह बेटेविया पहुँचा तो हृदय का विकार ऐसी उच्च श्रेणी का ज्वर लिये हुए उत्पन्न हुआ कि उसे फिर औषधि द्वारा चिकित्सा करने वालों की सम्मति प्राप्त करनी पड़ी और उसको एक बार फिर चिकित्सा के लिये मई सन् १८८५ के अन्त में अधिक समय के लिये यूरोप आना पड़ा।

ऊपर कथन किये हुए वृत्तान्त से यह स्पष्ट प्रकट है कि रोग का कारण वादक्रान कैनहील नगर में चिकित्सा होने से निवृत्त नहीं हुआ था। रोगी का जावा (Java) देश में आकर फिर रोग आंकित हो जाना इसको पूर्ण रीति से बता रहा है। यूरोप के शीतल जलवायु के कारण रोग अधिक गुप्त तथा बहुकालीन दशा में परिवर्तित हो गया था। रोगी को रोग के वर्तमान होने की थोड़ी खबर थी क्योंकि रोग का तीक्ष्ण दशा में आक्रमण कभी-कभी होता था। ऊष्ण देश को लौट आने से रोग अचानक फिर तीक्ष्ण दशा में परिवर्तित हो गये। उसके चिकित्सक ने उस झूठी आरोग्यता को ही जो जलवायु के परिवर्तन से उत्पन्न हुई थी पूर्ण आरोग्यता समझ लिया।

रोगी यूरोप में लौट कर फाईवर्ग नगर में जो बेडेन प्रान्त में है अपने कुल वैद्य एवं राजवैद्य डाक्टर एन० से चिकित्सा कराने के लिये पूरा प्रबन्ध कर के वहाँ ठहर गया। बसंत ऋतु में रक्त वर्ण के धब्बे सम्पूर्ण शरीर पर सन् १८८२ के धब्बों की अपेक्षा अधिक भयानक दशा में प्रगट हुए। यह एक निश्चित चिह्न था कि शरीर में विजातीय द्रव्य का और भी अधिक भार हो गया है। डाक्टरों ने रक्त वर्ण के धब्बों तथा अन्य चिह्नों के मूल कारण को किंचित् भी न समझ कर रोगी से कहा कि रोग को प्रकृति के नियम पर छोड़ देना ही उचित है। उस रोगी का सन् १८८६ में उनकी सम्मति के अनुसार सूलवाद रैनफेल्डन— को गमन करना अति हानिकारक सिद्ध हुआ था। शनैः-शनैः बहुकालीनता (मजमन दशा) को प्राप्त होता गया और शारीरिक हानि के संग आत्मिक[1] हानि भी होती

१—जैसे आत्मा का मन ही मन असन्तुष्ट रहना और हर समय रंजीदा रहना।

गई। उसकी दशा उस जीर्ण अवस्था को प्राप्त हो चुकी थी जिसमें कि वह मनुष्य जो हर जगह स्वास्थ्य की खोज में अपना समय निरर्थक खोता है ग्रसित हुआ करता है। यह वह आत्मिक हानि है जो अप्रसन्नता, निराशा, सन्देह-कारिता तथा प्राणों से खिन्नता का मूल है। यह आश्चर्य नहीं कि वह रोगी जिसकी सन् १८८८ ई० के अन्त में प्रतिष्ठित चिकित्सकों ने असफलता के साथ चिकित्सा की थी अत्यन्त निराशा को प्राप्त हो जावे। उसने युवावस्था की आनन्द भरी दशा से निकल कर—थकित अप्रसन्नता, भग्नचित्तता और समय से पूर्व आने वाले बुढ़ापे की दशा में प्रवेश किया। उसे १६ जनवरी सन् १८८६ को किसी आवश्यकीय कार्य के निमित्त जावा को फिर आना पड़ा। उसका रोग इस समय तक ऐसा दारुण हो गया था कि उसकी त्वचा को तीन वर्ष में, जबकि वह अति ऊष्ण देश में रहा था स्वेद न आया था और त्वचा अपनी क्रिया सम्पूर्ण रूप से न कर सकती थी। बेटेविया में पहुँच कर रोग ने फिर बड़े वेग से आक्रमण किया। हृदय की पिछली खराबी पुनः अधिक वेग से प्रगट हुई। साथ ही इसके ज्वर ने रोगी को अत्यन्त दुर्बल कर दिया। पैरों में अब जल भी दिखलाई देने लगा। इससे अधिक यह कि बेटेविया के डाक्टरों ने उसके रोग को कुष्ट निश्चय किया और उनके इस निश्चय का कारण यह था कि रोगी के अंतिम बार यूरोप में निवास करने के समय यूरोप के प्रसिद्ध कुष्ट चिकित्सकों ने उसके रुधिर में अधिक संख्या में कुष्ट कीटाणुओं की स्थिति मालूम कर ली थी। बेटेविया के डाक्टरों ने अपने रोगी को छूत के भय से कि कुष्ट रोग वहां औरों को लग न जाय, यह सम्मति दी कि तुरन्त वहां से चला जाय और लोगों से मेल-जोल त्याग दे। इस लिये १८८६ को वह रोगी एक बार फिर यूरोप के जहाज में रवाना हुआ। उसके सहयात्रियों ने समझा कि वह जेनोवा (Genoa) नगर तक जीवित नहीं पहुँचेगा, किन्तु सामुद्रिक शीतल पवन ने उसकी जीवन-शक्ति को उद्दीप्त किया और वह कुशल पूर्वक यूरोप में पहुँच गया। वहां उसकी दशा एक्यूट (Acute) से अधिक क्रानिक (Chronic) हो गई। फ्राईवर्ग में उसके चिकित्सकों ने उसको पूर्ण निराशा की दशा में जानकर उसकी चिकित्सा ही छोड़ दी।

ऐसी भयानक दशा में स्थित होने के समय उस रोगी के एक पुराने मित्र लिपजिक निवासी ने जो जावा में बहुत वर्षों से उससे परिचित था, मेरी चिकित्सा की ओर उसका ध्यान दिलाया। २० मार्च सन् १८६० को वह रोगी लिपजिक पहुँचा और चार दिन के पश्चात् अति निराशा की दशा में उसने मेरी चिकित्सा आरम्भ की। इस रोगी का वृत्तान्त मेरी चिकित्सा की रीति की सत्यता

का अति विचित्र प्रमाण है और मेरे 'मुखाकृति विज्ञान' की सत्यता की निश्चित पुष्टि है। भाग्यवश मैंने चिकित्सा के आरम्भ और अन्त में उस रोगी का फोटो भी ले लिया था। चित्र नं० १ तथा २ असली चित्रों से फिर तैयार किये गये हैं। उसका शरीर विजातीय द्रव्य के कारण पूर्णतया बदल गया था। ग्रीवा बहुत छोटी रह गई थी और उस पर घेंघा निकल आया था। देखने में यह (गर्दन) शरीर में डूबी हुई जान पड़ती थी और दोनों के मध्य में कोई ठीक सीमा न थी। मस्तिष्क पर एक बड़ा गूमड़ा अनुमान से एक इंच ऊँचा था। आँखों के चारों ओर के स्थान सूज रहे थे और समस्त शिर भी—जोकि विकृत पदार्थ का अधिक मात्रा में एकत्र होना प्रकट करता था, सूज रहा था। दक्षिण पाँव की पिंडली सड़ रही थी।

चित्र नं० १

चित्र नं० २

पाँव और गुल्फ (टखनी) दोनों स्थानों में जल था और सड़े हुए स्थान के ऊपर भी जल था जिसके कारण रोगी अपनी टांग को कठिनता से चला सकता था उसके धड़ में विकृत पदार्थ उसी अनुमान से एकत्रित था जितना कि शिर और ग्रीवा में। पाचन-शक्ति अति मन्द थी। गुर्दे तथा अन्तड़ियाँ अपनी क्रिया यथार्थ रीति से न कर सकती थीं। हृदय के व्यतिक्रम से रात-दिन कल नहीं पड़ती थी और उससे आन्तरीक व्याकुलता और दुःख होता था। रोगी के हाथ-पाँव बर्फ के समान शीतल थे और कृष्ण-नाल-युक्त वर्ण के हो गये थे। मेरी चिकित्सा के आरम्भ करते ही आधी आशा दिलाने वाले फल प्राप्त हुए। पाचन-शक्ति ने शीघ्र उन्नति की। मल त्याग प्रथम पिचकारी द्वारा कराया जाता था। अब अंतड़ियाँ और गुर्दे तीसरे ही दिन से अपनी क्रिया नियमानुसार करने लगे। मूत्र जोकि प्रथम हलका और स्वच्छ

था अब गदला और मलीन वर्ण का हो गया। इससे प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि एक मात्रा विजातीय द्रव्य की उसमें मिश्रित थी। दूसरे दिन ही रोगी को आराम और प्रफुल्लता प्रतीत होने लगी। उसे किंचित् थकान भी ज्ञात के हुई जो उस बल के कारण जो विकृत पदार्थ को शरीर से निकालने में काम आता है उत्पन्न हुई थी। शरीर से अधिक स्वेद के निकलने से भी आरोग्य होने में प्रायः बहुत सहायता की। शरीर की बाह्य आकृति में भी बहुत शीघ्र एक प्रकार का प्रत्यक्ष परिवर्तन हुआ। यह अधिकतर इस कारण हुआ कि उस मनुष्य के शरीर से विकृत पदार्थ शीघ्रता से निकालता रहा।

इस बात पर विचार करना एक मनोरञ्जन है कि पिंडली के चारों ओर वह सड़ा हुआ स्थान किस प्रकार लोप हो गया। प्रथम यह स्थान कृष्ण वर्ण श्वेत वर्ण युक्त था, फिर रक्त वर्ण नील वर्ण मिश्रित और पूरा सवा चार इञ्च चौड़ा था। अब यह जल की आकृति में घुल गया था और टांग भी मोटी होने लगी थी। अन्त में उसकी दक्षिण टांग अति स्थूल हो गई। विजातीय द्रव्य के जोश में आने व बदलने की योग्यता के प्रगट करने के हेतु यह क्रिया विचारणीय थी।

एक दशा से दूसरी दशा में प्रवेश करने का नाजुक समय अर्थात् क्राइसिस रोगी के लिये अति कठिन था। किन्तु उसी अधिक जीवन-शक्ति ने भली प्रकार उसकी सहायता की। यद्यपि अधिक चलने-फिरने के योग्य वह न था, परन्तु मेरे स्नानों ने उस स्थानों से जहां कि जलोदर का प्रभाव था भली प्रकार स्वेद निकाला जोकि इस बात का एक चिह्न है कि उसके शरीर में अभी इतना बल था कि उसको आरोग्य कर सके। चार सप्ताहों में ही उसके शरीर से सम्पूर्ण जल निकल गया। तत्पश्चात् अति शीघ्रता से आरोग्यता प्राप्त होने लगी। प्रति दिन रोगी को प्रसन्नता और तारुण्य अनुभव होने लगा और चार मास की चिकित्सा के उपरान्त जिसमें कि कुछ क्राइसिस भी आये वह स्वरूप में ऐसा बदल गया (देखो चित्र सं० २) कि उसका पहिचानना कठिन हो गया। हृदय का रोग और जलोदर नाम मात्र को भी शेष न रहे और नैराश्य के बदले एक दूसरे ही प्रकार की प्रफुल्लित दशा उसे प्राप्त हो गई और रोग का चित्त प्रसन्न रहने लगा। बेटेविया देश के मनुष्यों को इस श्रेष्ठ परिणाम का विश्वास न हुआ और उन्होंने पत्र लिखा कि रोगी को "जावा" देश में उस समय तक पांव रखने की आज्ञा न होगी जब तक यह निश्चित न हो जावे कि कुष्ट के कृमियों से वह पूर्णतया रहित है। इस कारण उसने अपनी उन

प्रतिष्ठित कुष्ठ-रोग के वेत्ताओं से परीक्षा कराई जो उस समय हैमवर्ग में निवास करते थे और जिन्होंने उसकी पहिले भी परीक्षा और चिकित्सा की थी। चार सप्ताह की परीक्षा के अन्त में रोगी को यह विश्वास दिलाया गया कि वह कुष्ठ के कृमियों से शुद्ध है। यह भद्र पुरुष सन् १८६२ ई० में 'जावा' में लौट आया और इस समय तक जीवित है। उसकी आरोग्यता की दशा अत्युत्तमा है उसकी पूर्व कालीन दुर्घटनायें फिर प्रकट नहीं हुई।

इस रोगी की चिकित्सा से प्रचलित मेडिकल साइन्स, उसकी परीक्षा और चिकित्सा की असारता का एक और भी दृढ़ प्रमाण मिलता है। यह एक ऐसा रोगी था कि जिसका चिकित्सा से अति प्रसिद्ध चिकित्सकों ने भी हाथ खींच लिया था, परन्तु मेरी चिकित्सा द्वारा वह मृत्यु से बचा कर उसके सम्बन्धियों और मित्रों को सौंप दिया गया।

रीढ़ के बाँस का रोग

रीढ़ के बाँस का नष्ट होने लगना, अर्श अर्थात् बवासीर के मस्सों के रोग

रीढ़ की अस्थि के भयानक रोग होने के पूर्व कोई बहुकालीन रोग चिरकाल तक अवश्य रहा होगा। मुखाकृति विज्ञान के द्वारा वर्षों पूर्व परिणाम विदित कर सकते हैं। रोग की ओर चित्त का झुकाव प्रतीत कर सकते हैं और वह कारण जिनसे स्नायु में विजातीय द्रव्य का भार हो गया है बतलाये जा सकते हैं। पीछे बताई हुई दशा में रोगी क्वारा हो या ग्रहस्थ, विशेष कर उसका वीर्यपात हो जाया करता है। परन्तु यह स्वप्न-दोष सदैव स्नायु की बहुकालीन सूजन व जलन को प्रकट करता है, विशेषः मेरु दंड के गूदे की वा नर्वस सिम्पेथाइकस की जोकि पीठ में विजातीय द्रव्य के अधिक भार होने से उत्पन्न हुई है। सूजन व जलन की अधिकता के संग-संग स्नायु में रोग से लड़ने की शक्ति कम हो जाती है, यहां तक कि रोगी आगे को अपने अङ्गों पर स्वाधीन भी नहीं रहता। सबसे प्रथम उसके पांव उसके आधीन नही रहते। दुःस्वप्नों के संग और भी बुरे-बुरे चिह्न प्रगट होते हैं। बहुत से मनुष्य कटि के समीप एक असाधारण प्रकार के जकड़ेपन का अनुभव करते हैं जो विजातीव द्रव्य की एकत्रिता के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। रोगी को, विशेष कर कर इस अन्तरीय वन्द वा पेटी * पर एक सूक्ष्म प्रकार का शीत भी ज्ञात होता है। रोग की अत्यन्त अधिकता की दशा में प्रायः कभी-कभी चुभने की सी अथवा लगातार पट्ठों की तीक्ष्ण पीड़ाएँ वा कटिवेदनाएँ (कमर के दर्द) भी हुआ करती हैं जो अति दुःखदाई और कठिनाई में डालने वाली होती हैं।

मेरु दण्ड के रोग भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। विजातीय द्रव्य के भार की एक सी दशा होने से, जैसा इन रोगों में बहुधा हुआ करता है बहुत से अन्य रोग उत्पन्न हो जाते।

---

* कटि स्थान से अभिप्राय है जहां जकड़ापन होने का वर्णन तनिक ऊपर किया गया है।

बहुत बढ़ी हुई दशा में जिसको अन्तिम दशा भी कहते हैं, मेरु दण्ड के गूढ़े के रोगों की चिकित्सा असम्भव हो जाती है। ऐसी दशाओं में प्रत्येक सम्भव प्रयत्न द्वारा रोगी की पीड़ा दूर करनी चाहिये, जब कि पाचन शक्ति उन्नति के योग्य होती है। ऐसा अल्पकाल में ही हो सकता है। इस प्रकार आन्तरिक सुख, निद्रा और क्षुधा ज्ञात होने लगती है।

सौभाग्य वश मेरे 'मुखाकृति विज्ञान' द्वारा जैसा कि प्रथम कथन हो चुका है—आगे को यह आवश्यकता ही नहीं रहती कि अंतिम दशा का अवसर देखा जाय। यदि हम इस दशा के आने के पूर्व ही उसे रोकना चाहें तो बहुत काल पहिले ही उसकी चिकित्सा आरम्भ कर सकते हैं इससे हमको यह एक अमूल्य लाभ है। मेरुदण्ड के दोषों का प्रथम दशा में निवृत्त करना ऐसा ही है जैसा कि बहुत से अन्य क्षुद्र रोगों का निवृत्त करना। इसके विरुद्ध यदि रोग की दशा वृद्धि पागई है और विशेष कर उस दशा में जब कि रोग की चिकित्सा औषधियों द्वारा हुई है, तो आरोग्यता लाभ करना कुछ अधिक कठिन होता है। एक गृह जिस में कि अग्नि भली भांति प्रज्वलित हो चुकी हो और वह दूर तक फैल गई हो बचाया नहीं जा सकता।

मैंने मेरुदण्ड के बहुत से रोगियों की चिकित्सा की है; परन्तु मैं उनमें सभी का रोग निवृत्त करने में सफल नहीं हो सका हूँ। बहुत से रोगियों को केवल इसी पर सन्तोष करना पड़ा कि उनकी भयानक दशा में न्यूनता हुई अथवा पीड़ा कम हुई। यह दशा उन्हीं मनुष्यों की हुई जिन्होंने अपने शरीर को औषधियों के सेवन से ऐसा निश्चेष्ट कर दिया था कि बड़ी चतुराई से चिकित्सा करने पर भी उनका शरीर पूर्णतया आरोग्यता प्राप्त करने के योग्य न था। मैं उपरोक्त वर्णन को स्पष्ट रूप से समझाने के अभिप्राय से इस स्थान पर उन मनुष्यों का वृत्तान्त उद्धृत करूँगा जिनकी चिकित्सा मेरे चिकित्सालय में हुई।

पहिली घटना एक ऐसे रोगी युवा पुरुष की थी जो मेरुदंड के रोग में भली भांति ग्रस्त था और उसकी दोनों टाँगों में झोला (फालिज) हो गया था। एक वर्ष से अधिक वह इस रोग के विशेषज्ञों से अपनी चिकित्सा कराता रहा, परन्तु उससे कुछ भी लाभ न हुआ। वह न तो अपने पैरों से कुछ काम ही ले सकता था और न खड़ा ही हो सकता था। उसकी आयु अभी केवल चौबीस वर्ष की ही थी। वह बेबसी की दशा में शय्या पर पड़ा रहता था, अथवा उस को रोगियों की चौकी पर बिठा कर

बाहर ले जाते थे। उसकी पाचन-शक्ति अत्यन्त हीनावस्था को पहुँच चुकी थी। बिना बाहरी सहायता पहुँचाए उसकी अँतड़ियां मल त्याग नहीं कर सकतीं थी मूत्र प्रायः अपने आप ही निकल जाया करता था। जब उसको चौकी पर बिठाते थे तो उसकी टाँगें कोई दूसरा मनुष्य उठा कर ठीक प्रकार से रख देता था।

मेरी चिकित्सा आरम्भ करने के पश्चात उसको प्रारम्भ में प्रति दिन चार ठण्डे-स्नान करने पड़े। उसे सामान्य तथा शुष्क और स्वाभाविक भोजन दिया जाता था। पाचन-शक्ति की मन्दता के कारण, प्रथम मास में उसके स्वास्थ्य में कुछ थोड़ी सी उन्नति दिखाई पड़ती थी - परन्तु द्वितीय मास में तों प्रत्येक मनुष्य निस्सन्देह उसकी दशा में उन्नति होने का पूर्णतया अनुव कर सकता था। दो महीने के उपरान्त रोगी अपने मूत्र को रोक सकने में समर्थ हो सका और उसको अपनी टांगों के रोग में भी इतनी सफलता प्राप्त हुई कि वह अब उनको थोड़ा-थोड़ा सरका था। और बिना अपने सेवक की सहायता ही लिये कुछ समय तक खड़ा भी रहा था। वह मेरी नौ मास की चिकित्सा से ही इस योग्य हो गया कि कमरे में बिना सहायता के ही थोड़ा-थोड़ा टहलने लगा। इसके दो मास उपरान्त तो उसने अपनी टांगों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया। उसको यह मेरुदंड का रोग—जिसका आक्रमण, अति अन्तरीय उष्णता के द्वारा जो विकृत पदार्थ के एकत्रित होने से उत्पन्न हुई थी उस पर हुआ था ठीक उसी प्रकार निवृत्त हो गया जैसे अन्य बहुत से रोग मेरी चिकित्सा द्वारा नष्ट किये जा चुके थे।

इस वृत्तान्त से स्पष्ट विदित होता है कि पीठ की और विकृत पदार्थ के संचित होने से जो रोग उत्पन्न होते हैं, उनसे निवृत्त होना कितना कठिन है ? इस रोग कि चिकित्सा के प्रारम्भ में आरोग्यता का तो कथन ही क्या मेरे लिये वह समझना भी अत्यन्त कठिन था कि इस रोगी की दशा में उन्नति होगी ? इसका कारण वह था कि उसकी पाचन-शक्ति अत्यन्त मन्द हो चुकी थी और चिकित्सा के आरम्भ में उसकी उन्नति के कोई चिह्न उसमें प्रकट नहीं हुए थे। केवल उसकी अद्‌भुत दृढ़ता से ही उसे अन्त में नीरोगता प्राप्त हुई। यदि उस रोगी ने मेरी चिकित्सा इससे पूर्व ही आरम्भ की होती तो उसकी टांगों पर से उसका पूर्ण अधिकार नष्ट न होता और आरोग्यता लाभ करना और भी अधिक सुगम हो जाता।

एक दूसरी घटना भी जिसका मैं अब कथन करूँगा, उसी के समान मनोरंजक एवम् शिक्षाप्रद है। सैंतालीस वर्ष की आयु के एक सज्जन कई वर्ष से मेरुदंड के

क्षीण होने की व्याधि में ग्रसित थे और उनको आराम न होता था। विकृत-पदार्थ का भार उनमें अधिक था और वे बड़ी कठिनाई से चल फिर सकते थे। प्रायः उनको कटिवेदना (लम्बेगो) व सूई की सी चुभनेवाली एक अन्य पीड़ा कष्ट दिया करती था। उनको पूर्ण-निद्रा भी न आती थी। कई-कई दिन तक वे व्याकुल रहते थे। पाचन शक्ति भी ठीक न थी, सभी प्रकार से उनकी दशा हीन थी। प्रारम्भिक महीनों में ही चिकित्सा का प्रभाव भली भाँति पड़ा। उनकी अनिद्रा जाती रही और अन्य प्रकार की पीड़ाओं ने भी शनै-शनै गमन करना आरम्भ कर दिया। उनकी पाचन शक्ति में भी किंचित् उन्नति हुई, यद्यपि टाँगें अब भी अत्यन्त निर्बल थी। इसी कारण रोगी को आरोग्यता की आशा भी कम थी। वह अनिद्रा और इन अन्य पीड़ाओं को ही एक प्रकार के पृथक् पृथक् रोग समझता था और सदैव उसका यही विचार रहा कि उसके मेरुदंड के रोग से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि उसने मेरे आहार-विषयक नियमों को अत्यन्त कठिन समझा और दस मास के उपरान्त ही चिकित्सा छोड़ दी। फलतः उसकी दशा शीघ्र ही और भी अधिक विगड़ कर नैराश्य तक जा पहुँची।

रोगी को यही एक बड़ा भारी लाभ समझना चाहिये था कि उसकी व्याधि चिकित्सा के समय अधम दशा को प्राप्त होने से रुक ही नहीं गई थी वरन उसके सङ्ग के पीड़ा देने वाले चिह्न भी अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक दूर हो गये थे। यदि वह दृढ़ता रखता तो और पीड़ाएं भी शनैः-शनैः दूर हो जाती।

मस्सों की पीड़ा—अर्थात बवासीर के मस्सों की पीड़ा अर्थात् अर्शरोग—अर्श के मस्सों की पीड़ाएँ विशेष कर मेरुदंड के रोग तथा इसके संग में पृष्ठ-भाग में विजातीय द्रव्य के अधिक भार के कारण हुआ करती हैं। वह रोग की एक जीर्ण दशा की ओर संकेत करती हैं, जिसका कारण सम्पूर्ण अन्य रोगों के समान पेडू में अधिक जलन का होना है। इस प्रकार के रोगियों की पाँचन-शक्ति अवश्य ही नियम विरुद्ध हुआ करती है।

पेडू के अन्दर रसौलियों का बन जाना विकृत पदार्थ का एक आवश्यकीय चिह्न है और यह इस बात का प्रमाण है कि जीवन-शक्ति वा शरीर में रोग से निवृत्ति प्राप्त करने का बल बहुत ही घट चुका है। इस विषय को भी मैं एक ऐसे उदाहरण द्वारा प्रमाणित करूँगा जो मैंने अपने चिकित्सा-क्रम से चुना है।

१७ वर्ष की आयु का एक पुरुष जो प्रायः बाल्यावस्था से ही पाचन शक्ति की बीमारियों में ग्रसित था, मुझसे सम्मति लेने आया। उसने मुझसे कहा कि ग्यारह वर्ष की आयु से ही उसको अर्श के मस्सों तथा आंतों से रुधिर प्रवाह की पीड़ा हो गई थी; जिनसे वह अत्यन्त दुःखित हो गया था। पन्द्रहवें वर्ष में उसके मस्से शनैः-शनैः जाते रहे। उसने यह और भी बताया कि उसके बाद उसके महान् दुःखदाई शिर-पीड़ा का सामान करना पड़ा जिसको किसी भी चिकित्सा से कुछ लाभ न हुआ। अन्त में उसके शिर के पीछे की ओर अखरोट के समान बड़ी-बड़ी रसौलियां दिखाई दी जो स्पर्श करने से भली प्रकार ज्ञात होती थी। इसके साथ ही उसके समस्त शिर की आकृति में परिवर्तन होने लगा और उसके परिमाण में वृद्धि होने लगी। शिर और शरीर के परिमाण के सम्बन्ध में स्पष्ट परिवर्तन होना दृष्टि-गत होने लगा। प्रत्येक मनुष्य को जिसने उस युवा पुरुष को पहले देखा था यह स्पष्ट ज्ञात होता था कि उसके शिर में कोई वस्तु जिसका उस स्थान में होना उचित नहीं और जो प्रथम वहां न थी, अवश्य उग गई है। परन्तु यह कोई भी न जानता था कि शरीर के भीतर अर्श रोग के मस्सों का गुच्छा अब अत्यन्त कठोर एवम् अत्यन्त दबे हुए रूप में, शिर में जाकर यक्ष्मा की रसौलियों के रूप में प्रगट हुआ है। वह प्रत्येक मनुष्य जो मेरे 'मुखाकृति विज्ञान' से भिज्ञ है इस स्वाभाविक चिह्न को शीघ्रता से ही समझ सकता है। शिर की बढ़ी हुई पीड़ा ही किसी गहरे कारण के होने का पूर्ण प्रमाण थी। दुर्भाग्य से किसी ने इसको न पहिचाना। केवल उसकी माता ने अपने युवा पुत्र में वही भयानक राग देखा जिसने उसके पिता को उनतालीस वर्ष की आयु में ही मृत्यु का ग्रास बना दिया था। किसी प्रकार की चिकित्सा से भी जोकि की गई थी, उसके रोग को लाभ न हुआ था। उसे शनैः-शनैः रोग ने पूर्णतया दबा लिया और वह युवा पुरुष शिर पीड़ा के कारण किसी कार्य को करने के योग्य न रहा। वह प्रायः बारम्बार मूर्छित हो जाया करता था। ऐसे संकट की दशा में उसकी माता उसे मेरे पास लाई। विकृत पदार्थ का भार पृष्ठ (पीठ) की ओर था और मस्तिष्क में सूजन का प्रति दिन भय था। मेरे नुसखे ये थे—नियत पथ्याहार—ठण्ड पहुँचाने वाले फ्रिक्शन बाथ्ज और शारीरिक परिश्रम। उस रोगी ने इन पर अमल किया और परिणाम भी अच्छे रहे। प्रथम सप्ताह में ही शिर पीड़ायें निवृत्त हुई यक्ष्मा की गुमड़ियां जो शिर में थी उनके लोप होने के समय कभी-कभी शिर में पीड़ा होने लगती थी। पाचन-शक्ति और क्षुधा दोनों ही उत्तम रीति से उन्नति करने लगीं।

चिकित्सा के द्वितीय मास के अन्त में वे रसौलियें जो सिर पर स्पष्ट प्रतीत होती थी न्यूनता को प्राप्त होने लगीं। शिर के मध्य की रसौलियां भी न्यून हुई और परिमाण पूर्व की अपेक्षा अब छोटा प्रतीत होने लगा। अगले दो मास में रसौलियां और भी न्यूनता को प्राप्त हुई और छः मास में उनका कोई भी चिह्न शेष न रहा।

दैवात् एक प्रत्यक्ष परिवर्तन हानि की ओर अग्रसर होता हुआ जान पड़ा। उसकी माता का कथन है कि उसके पुत्र का चित्र एक दिन आगे ही से बिगड़ा मस्सों की पीड़ा जो वर्षों से जाती रही थी अब पुनः वैसी ही दुःखदाई दशा में प्रकट हुई। मैंने उसकी चिन्ता ग्रसित माता को समझाया कि ऐसा होना आवश्यक है। चिकित्सा के उस प्रभाव के कारण जो रोग को जड़ से निकालने का है शिर के भीतर की यक्ष्मा की गुमड़ियां वहां से (शिर से) शरीर में आ गई हैं, और पुनः उन्होंने अर्श के मस्सों के एक गुच्छे का रूप धारण कर लिया है। यही गुच्छे वास्तव में शिर में गुमड़ियों के रूप में प्रकट होने का कारण थे। इस आरोग्यदाता क्राइसिस (नाजुक समय) के आने से उसके लड़के के शिर को क्षई रोग से निवृत्ति प्राप्त हुई और इसी प्रकार अब यह आवश्यक हो गया कि उसको मस्सों के उस रोग से निवृत्ति प्राप्त कराई जावे जो कि मस्तिष्क में क्षयी के होने की प्रथम दशा में विद्यमान थे। इस कथन से उस स्त्री के सशय निवृत्त हुए और मेरी चिकित्सा अत्यन्त सफलता के साथ होती रही। एक वर्ष के उपरान्त अर्श के मस्से पूर्ण प्रकार से अच्छे हो गये और वह युवा पुरुष भी पूर्णतया नीरोग हो गया।

मृगी के दौरे

एगोरेफ़ोबिया (Agoraphopia) वह बेख़बरी से आने वाली सख्त शिकायत जो मनुष्य शरीर पर आक्रमण करती है, रोग के वे आक्रमण (हमले) जो विशेषकर मृगी के नाम से प्रसिद्ध हैं और जो शरीर पर अपना अधिकार कर लेते हैं—ये या तो केवल उन रोगों के परिणाम हैं जो क्रमशः पहिले होते रहे और जो औषधियों के द्वारा दबा दिये गये हैं अथवा माता-पिता से प्राप्त हुए उन विकारों (मौरूसी खराबियों) के फल हैं जिनका अधिकतर पिता के युवावस्था के विषय-भोगों से सम्बन्ध मिलाया जा सकता है। पिछली दशा में औषधि द्वारा जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोग में चिकित्सा ने विकारजनक वस्तु (अर्थात् विजातीय-द्रव्य) को शरीर में लौटा दिया है। इसका परिणाम यह हुआ कि ऐसी बीमारी का द्रव्य माता पिता के शरीर में एकत्रित हो गया। इस विकृत-द्रव्य का बालक के शरीर में (माता पिता से) पहुँच जाना उस रोग का मूल है जिसको हम मृगी के दौरे कहते हैं।

मैंने अपने चिकित्सा के उपक्रम में मृगी के अनेक रोगियों की आश्चर्यजनक सफलता से चिकित्सा की है। मैंने कितनी ही बार यह देखा है कि मृगी के मुर्च्छा लाने वाले दौरे उस उबाल खाई हुई विकृत वस्तु के जो प्रायः आमाशय में बढ़ गई है—आकस्मिक उफान (उबाल) ही हैं। कुछ दशाओं में ये प्रबल उबाल प्रथम टाँगों में आते हैं, उसके पश्चात् ऊपर को बढ़ते हैं। बहुत से लोग अचानक जोश आने से गिरने के प्रथम प्रायः बार-बार चक्कर खाते हैं और बहुत से मनुष्य शिर की ओर जोश के उठते ही मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ते हैं। शरीर के अन्दर की इन क्रियाओं को हम ज्वालामुखी पहाड़ के फटने से उपमा दे सकते हैं जब कि फैलती हुई हवाएँ और वस्तुएँ जो पृथ्वी के भीतर इकट्ठा हो गई हैं अचानक निकलने लगती हैं। पहाड़ फटने के उपरान्त कुछ समय तक जब तक कमबशचन[१] (जलने की क्रिया) डिकम्पोजीशन[२] (गलाने की क्रिया) रीफारमेशन[३] (शोधन कर्म) की कार्यवाही के कारण

१—Combustion. २—Decomposition. ३—Reformation

भूमि के भीतर नवीन तनाव उत्पन्न नहीं हो जाता, शान्ति रहती है। मृगी के दौरों की कार्य्यवाही प्रायः ऐसी ही होती है। उदर में विकार-जन्य वस्तुएँ एकत्रित हो जाती हैं और क्रमशः किन्तु शनैः-शनैः उबाल खाती हैं और साथ ही वायु और तनाव भी बढ़ता जाता है, क्योंकि विकार-जन्य वस्तु के एकत्रित होने का स्थान घिरा होता है। इसी कारण जोश के साथ तनाव भी बराबर बढ़ता जाता है। अंत में एक प्रकार का उभार होता है जिससे दौरे पड़ने लगते हैं और मस्तिष्क पर दबाव जाते रहते हैं, चैतन्यता आ जाती है। यद्यपि सम्पूर्ण शरीर ऐसे तीव्र आक्रमण के पश्चात न्यूनाधिक विषम हो जाता है। यह अत्यन्त ही खेद का विषय है कि औषधि-विद्या मृगी के रोग को नष्ट करने में नितान्त ही अयोग्य है और इससे भी अधिक दुःख का विषय यह है कि इस विद्या ने अब तक उस रोग के मूल कारण तक को नहीं समझा है। वह इस रोग को प्रायः एक प्रकार का स्नायु विकार समझती है। उसे यह नहीं ज्ञात है कि यह उसी के मतानुसार समझ में न आने वाला असाध्य दोष उसी का दिया हुआ प्रसाद अर्थात् गलत मार्ग का अवलम्बन लेने वाली इस विज्ञान विद्या का ही फल है यह स्वास्थ्य-रक्षा के विषय में अशुद्ध मार्ग दर्शन कराने वाली पुटैशियम ब्रोमाइड (Potassium Bromide) इत्यादि हानिकारक औषधियों के सेवन कराने वाली विद्या का ही विषाक्त परिणाम है।

मृगी रोग में विकार जन्य वस्तु के अस्तित्व के विचार से आरोग्यता प्राप्त करने के मार्ग प्रायः भिन्न-भिन्न होते हैं। कुछ रोगियों की चिकित्सा आरम्भ करते ही दौरे, बहुत कम आने लगते हैं और कुछ को और अधिकता से आने लगते हैं। ये थोड़े ही समय तक रहने वाले लक्षण उन परिवर्तनों का फल हैं जो प्रायः शरीर में समय-समय पर होते रहते हैं, किन्तु जब विकार जन्य वस्तु निकल जाती है—ये चिह्न भी शनैः-शनैः एकाएक लोप हो जाते हैं। वे लक्षण प्रतिदिवस निर्बल होते जाते हैं यहाँ तक कि फिर केवल मूर्च्छा अथवा घुमेर ही होने लगती है जो चिकित्सा के प्रचलित रहने पर पूर्णतया लोप हो जाती हैं। अतः रोगियों को सम्मति प्रदान करने में यह उचित है कि उनका ध्यान उस मार्ग की ओर—जो चिकित्सा करने के समय में आरोग्यता प्राप्त करने के हेतु स्वीकार करेगा—दिलाया जावे। इस अवसर पर मेरा—'मुखाकृति-विज्ञान' आरोग्यता देने वाले कष्ट के समयों क्यूरेटिव क्राइसिस (Curative crisis) को पहिले से जान लेने का बहुत ही अच्छा

साधन है। वह कष्ट के समय विशेषतः विकारी द्रव्य के अधिकता से मौजूद होने की दशा में अवश्य ही प्राप्त होता है।

अब हमको यह ज्ञात हो गया कि मृगी रोग का नष्ट किया जाना केवल रोग के भीतर की विकार जन्य वस्तु की दशा पर ही निर्भर है। मेरी चिकित्सा-विधि का अनुसरण करने पर प्रायः सभी दशाओं में आरोग्यता प्राप्त हुई है। कुछ रोगियों की चिकित्सा उस समय तक कष्ट साध्य अथवा दुस्साध्य रही थी जिस समय तक उनका रोग पुराना था और उनके शरीर की पाचन-शक्ति को प्रचलित औषधियों जैसे कि ब्रोमाइन (Bromine) द्वारा अत्यन्त हानि पहुँचाने वाला कुप्रभाव अवस्थित था। ऐसे रोगियों में प्रायः स्नायु की शृङ्खलाओं और मस्तिष्क में इतनी विषमता आ जाती है कि वे विकार-जनक वस्तु को लौटाने में सर्वथा असमर्थ रहते हैं। मेरे चिकित्सालय में कोई-कोई ऐसे कष्ट-साध्य रोगी थे जिनको चिरकाल तक मेरी चिकित्सा की विधि पर बड़ी सावधानी से चलना पड़ा, तब कहीं इन दौरों से उनका पिण्ड छूटा। दौरों के बन्द होने से ही यह निश्चित कर लेना उचित नहीं है कि इनके प्रतिकार से ही विजातीय द्रव्य सर्वथा दूर हो गया है। इसके लिये प्रायः और भी अधिक समय की आवश्यकता होती है।

सन् १८८६ ई० के नेशनल मेडिकल कमीशन की रिपोर्ट से यह विदित होता है कि उस वर्ष के अन्त में सैकसनी (Saxony) देश में पाठशालाओं में पढ़ने वाले मृगी रोग से पीड़ित बालकों की संख्या ७६५ अथवा प्रति दस हजार बालकों में १३.९६ थी। अतः पीड़ितों की आरोग्यता की दृष्टि से, यह नितान्त ही आवश्यक है कि इस नवीन चिकित्सा-प्रणाली के प्रचार की ओर धनी-मानी और प्रतिष्ठित सज्जनों का ध्यान शीघ्र आकर्षित किया जाय।

मैं इस विषय को अधिक स्पष्ट करने के विचार से एक रोगी की चिकित्सा का उदाहरण दिये बिना नहीं रह सकता।

एक १६ वर्ष की कन्या को ६ वर्ष से मृगी का रोग था। प्रति सप्ताह इस रोग के कम से कम दो आक्रमण हुआ करते थे। उसकी पाचन-शक्ति बहुत ही क्षीण हो गई थी और उसका मासिक धर्म भी बिल्कुल अनियमितता से होता था। युवावस्था को पहुँचने के पश्चात उसको एक बार भी यथार्थ रीति से मासिक धर्म नहीं हुआ था। वह कभी तो बिल्कुल बन्द ही हो जाता था और कभी जल्दी-जल्दी होने लगता था।

'मुखाकृति-विज्ञान' के द्वारा मुझे विदित हुआ कि वह अत्यन्त ही क्लोरोटिक थी अर्थात् उसे क्लोरोसिस रोग होने वाला था और इसी रोग की ओर उसकी चेष्टा थी। शिर प्रमाण से अधिक बड़ा था। विकृत-पदार्थ की उपस्थिति की दशा अच्छी अवस्था में थी, अतः मैंने उसको सफलता प्राप्त होने की आशा का निश्चय दिलाया। मैंने उसका ध्यान विशेषतया इसलिये और भी आकर्षित किया कि उसे इस विषय में भ्रम न रहे कि आरोग्यता कैसे प्राप्त होगी? मैंने उसे समझाया कि यह सम्भव है कि रोग के दौरे पहिले की अपेक्षा प्रथम दो सप्ताहों में अधिक हों, परन्तु शनैः-शनैः वे घट जायेंगे।

मेरी स्वाभाविक चिकित्सा की विधियों ने इस रोग में भी मेरी सहायता की; परन्तु 'स्टीमबाथ्स' से जिनसे कि प्रायः मृगी के रोगियों को बचना पड़ता है इसको भी बचना पड़ा। तीन सप्ताहों में ही रोगी को दौरों से पूर्णतया निवृत्ति प्राप्त हो गई।

चिकित्सा ने ठीक वही मार्ग स्वीकार किया जिसे मैंने पूर्व ही जान लिया था। प्रारम्भिक दिनों में दो-तीन, अथवा इनसे भी अधिक दौरे हुए। सोलह दिन के पश्चात वे दौरे शिर में घूमनी व मूर्च्छा के रूप में परिवर्तित हो गये और अन्त में वे पूर्णतया बंद हो गये। इतनी शीघ्र सफलता प्राप्त हो जाना इसी कारण सम्भव हुआ कि सौभाग्यवश रोगिणी की पाचन-शक्ति ने आश्चर्य जनक शीघ्रता से उन्नति प्राप्त की और उसे मासिक धर्म भी ठीक प्रकार से होने लगा। बहुत सी दशाओं में इतनी शीघ्र आरोग्यता प्राप्त होनी कठिन है। इस रोगिणी को शीघ्र ही आरोग्यता लाभ होने का कारण उसके विकृत-पदार्थ का अच्छे स्थान पर स्थित होना था। मृगी के अन्य रोगियों की चिकित्सा में दुगना, तिगुना अथवा इससे भी अधिक समय लगा।

एगोरेफ़ोबिया Agoraphobia वह दशा है जिसमें ग्रसित होकर मनुष्य किसी चौड़े और खुले स्थान में होकर नहीं चल सकते। यह रोग भी शरीर में विकारी वस्तु के होने से ही उत्पन्न होता है। जब शरीर का भीतरी तनाव इस योग्य नहीं रहता कि बाहर की वायु के दबाव को पूर्णतया सहन कर सके। अथवा यह कारण हो कि भीतरी अंगों पर इसका बहुत ही अधिक दबाव पड़ता है। तब यह दशा हुआ करती है। वायु जितनी अधिक हलकी और शुद्ध होगी ऐसे रोगियों को उतनी ही अधिक पीड़ा भी होगी। मैं ऐसे कई रोगियों की चिकित्सा कर चुका हूँ जो घर

के निकट ही बिना गिरे-पड़े चल-फिर सकते थे—क्योंकि वहाँ की हवा गलियों की हवा से अधिक भारी होती है। यद्यपि अन्तर बहुत थोड़ा होता है, परन्तु वह रोगी के लिये पर्याप्त होता है। जहाँ वायु अधिक हलकी और निर्मल होती है वहाँ रोगियों की व्याकुलता और पीड़ा भी बढ़ जाती है। आन्तरिक दबाव उनको अपनी सहायता आप करने के योग्य नहीं छोड़ता।

यह विषमता दाई रोग और सरतान फोड़े (केन्सर Cancer) के सदृश पहिले हो चुके रोगों की अन्तिम अवस्था हुआ करती है, चाहे वह सीधे मार्ग से प्रकट हो चाहे टेढ़े मार्ग से माता-पिता आदि पुरुषाओं द्वारा। इस बात का जानना कि रोगी स्वस्थ होगा या नहीं, रोगी की दशा और विकृत-पदार्थ की दशा दोनों पर ही निर्भर है। चाहे कुछ ही हो, रोग का मूलोच्छेद केवल मेरी ही चिकित्सा से हो सकता है, क्योंकि वह कारण को नष्ट कर देती है। हाँ, यह तो अवश्य है कि आरोग्यता प्राप्त करने में कभी-कभी समय अधिक लगता है।

—:०:—

अनेमियाँ (AENEMIA) अर्थात्

रुधिर की न्यूनता--क्लोरोसिस (Chlorosis)

आजकल हम प्रायः प्रत्येक श्रेणी के जन-समुदाय द्वारा शरीर में रक्त की न्यूनता (कमी) और क्लोरोसिस की शिकायत सुना करते हैं। इन शिकायतों से धनी, निर्धनी, युवा अथवा वृद्ध—कोई भी अछूता नहीं है, यद्यपि (व्याधियों की) रणभूमि में औषधियों की सेनाएँ उनसे लड़ने को उपस्थित रहती हैं। विशेषकर उच्च श्रेणी के मनुष्य ही उन औषधियों को जो पुष्टकारक भोजनों तथा अंडे, मांस, मांस का रस (शोरवा) अंगूरी शराब (Wine) तथा यव की मदिरा (Beer) आदि के रूप में अधिकता से ग्रहण करते हैं। ऐसा विशेषतया औषधियों द्वारा चिकित्सा करने वालों की सम्मति से होता है।

आधुनिक प्रचलित चिकित्सा-विद्या उस उन्नति का जो उसने प्राप्त की है बड़ा गर्व करती है। यद्यपि रसायन-विद्या (Chemistry) तथा अस्ति विद्या (इल्म मौजूदात) भोज्य-पदार्थ की पोषण-शक्ति को पूर्ण-रीति से जान लेने और मनुष्य शरीर पर उनके (भोज्य-पदार्थ का) प्रभाव के ज्ञान प्राप्त कर लेने का दावा करती हैं, तथापि इस विज्ञान-विद्या को जानते हुए भी रोग किंचित् भी कम नहीं होते। वे और भी अधिकाधिक फैलते जाते हैं। उनमें निर्बलता, क्षीणता और व्याकुलता उत्पन्न होती है और विषय-भोग की साधारण इच्छा (काम-चेष्टा) प्रकट करती है। ये ऐसे दोष हैं जो माताओं में दूध की वृद्धि को रोकते हैं। अतः यह कहना अनुचित नहीं है कि वे मनुष्यों की शारीरिक तथा मानसिक दशा को व्यर्थ कर देती हैं और बुद्धि-बल को क्षीण बनाती हैं। वह इन्द्रियों में उत्तेजना व थकान, पैरों में भारीपन और रग-पट्ठों में पीड़ा उत्पन्न करती है। क्षुधा जाती रहती है और अँतड़ियाँ नियमानुसार मल त्याग नहीं करतीं।

औषधि द्वारा चिकित्सा करने की विद्या इन रोगों के विषय में कौन सा स्थान ग्रहण करती है ? डाक्टर लोग रसायन-विद्या के द्वारा वस्तुओं के अंशों को पृथक्

करने की शक्ति रखते हुए मांस के सारांशों का सेवन करना बताते हैं जिनमें कहा जाता है कि वह सब अंश उपस्थित हैं जो शरीर को पुष्ट बनाने और स्थिर रखने के लिये आवश्यक हैं। वे कहते हैं कि भोजन खूब खाओ, वे बटियाँ, पुड़ियाँ, कुनैन और फौलाद भिन्न-भिन्न रूपों में खाने का आदेश देते हैं। इस चिकित्सा का फल क्या होता है ? साधारणतः जिस फल की इच्छा की गई थी ठीक उसके विरुद्ध ही होता है। रुधिर और भी कम हो जाता है—रोगी और भी क्लोरेटिक[1] (Chlorotic) होता जाता है और उसके साथ अनेक कष्ट उत्पन्न हो जाते हैं। इनका कारण विशेषकर अप्राकृतिक औषधियों द्वारा चिकित्सा करना ही है। यद्यपि यह आश्चर्य जनक जान पड़ता है तथापि आजकल नवजात शिशु रुधिर की न्यूनता के रोग में ग्रसित पाये जाते हैं। इन बातों से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वर्तमान समय की चिकित्सा और भोजन इन रोगों के लिये उचित नहीं है। यह भी मान लेना पड़ेगा कि रसायन-विद्या में यह सामर्थ्य नहीं है कि जीवित शरीर की भीतरी क्रियाओं के ठीक करने में भूल होने को रोक सके। हमारे अनुभव में मनुष्य के निकाले हुए सब प्रकार के सत और दूसरी बनावटी तैयार की हुई वस्तुएं जो रोगी को शक्ति वर्द्धक बनाकर खिलाई जाती हैं बड़ी कठिनता से पचती हैं और वास्तव में उनमें से अधिकांश पचती भी नहीं हैं। भोजन की वस्तुओं को उनकी वास्तविक दशा में बिना पकाये और बिना मसाले लगाये ही खाने से वे सदैव ही सबसे अधिक और शीघ्र पचती हैं। मेरी न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग—अर्थात् मेरी यह नवीन आरोग्यप्रद विद्या इन रोगों की सर्वथा भिन्न-भिन्न चिकित्सा बतलाती है। अनेमिया (Aenemia) और क्लोरोसिस (Chlorosis) के वाह्य चिह्न हमको उनकी उत्पत्ति का स्पष्ट विवरण नहीं बतलाते। हम जानते हैं कि नीरोग मनुष्य की त्वचा कभी भी रुधिर की कमी वाले रोगी की त्वचा की रंगत की भाँति पीली नहीं होती। वह कभी बहुत अधिक लाल, पीली, अथवा जर्द तथा भूरी नहीं होती है बल्कि सदैव नम और गर्म रहती है। नीरोग मनुष्य का रक्त अच्छा, लाल और पतला होता है। रक्त संचालन की नाड़ियों में भी ऐसा ही ज्ञात होता है कि वह रुधिर जिसमें कि विकार जनक वस्तु भरी हुई है अधिक मलिन, कुछ-कुछ काला, गाढ़ा और आधा जमा हुआ सा होता

१—अर्थात् उसके रुधिर में ऐसी विषमता आ जाती है जिससे उसकी त्वचा का रंग कुछ पीला और हरा सा हो जाता है।

है। जब विकार जनक वस्तु का भार अधिक होता है तो रुधिर की नाड़ियां फैल जाती हैं और रुधिर की अधिक से अधिक मात्रा भरने के लिये थैलियां सी बन जाती हैं। स्नायुओं का प्रसार लगातार तनाव और अन्दर के दबाव के कारण जो विकृत पदार्थ के भार होने की दशा में साथ ही साथ शनैः-शनैः हुआ करता है। समस्त ऐसे रोगियों में जो क्लोरोसिस और अनेमियां में ग्रसित रहते हैं—पीतवर्ण की त्वचा के अतिरिक्त हम नीली-नीली नाड़ियां भी देखते हैं। स्वस्थ-नाड़ियां जो स्वच्छ और सुगमता से भ्रमण करने वाले रुधिर से परिपूरित होती हैं त्वचा में से बहुत ही कम चमकती हुई दिखाई देती हैं। उनसे कभी भी नीला वर्ण और तनाव प्रकट नहीं होता जो क्लोरोसिस के रोगियों की दशा में बहुधा उनसे प्रकट हुआ करता है। हम ऐसे पुरुषों की त्वचा को पीली मुरझाई हुई और आलसी[1] पाते हैं जो प्रायः मोम के रंग की और कुछ-कुछ हरियाली लिये हुए जर्द (पीली) होती हैं। रुधिर की न्यूनता (कमी) वाले किन्हीं रोगियों का मुख यद्यपि लाल और रंग ताजा होता है तथापि वह पूर्ण रूप से रोगी और निर्बल होते हैं और उनमें पूर्ण प्रकार से 'कैलूस'[2] नहीं बनता है। दिखावटी आरोग्यता के कारण डाक्टर लोग इस दशा को 'कल्पित रोग' अर्थात् खयाली बीमारी कहते हैं।

अनेमिया और क्लोरोसिस—में अधिकतर भीतरी गर्मी होती है और बाहरी ठण्ड प्रतीत होती है। इन रोगों की इस स्थान पर हमको पूर्ण व्यवस्था मिलती है जो समस्त पुराने रोगों के सदृश गुप्त आन्तरिक दबे हुए ज्वर को बतलाती है।

मन्द पाचन-शक्ति एवम् त्वचा और फेफड़ों की सम्मिलित अपूर्ण क्रिया ही इन रोगों का विशेष कारण है अर्थात् स्वच्छ भोजन और स्वच्छ वायु की कमी ही उनका मूल है। मन्द पाचन-शक्ति के कारण विकृत पदार्थ के टुकड़े इकट्ठे हो जाते हैं और वे वायु के रूप में समग्र शरीर में प्रवेश करते हैं और विशेषकर शरीर के सिरों में अर्थात् त्वचा के अन्दर एकत्रित हो जाते हैं। त्वचा में सूक्ष्म रुधिर की नालियां शनैः-शनैः इस प्रकार रुक जाती हैं कि उन तक रुधिर पहुँचता ही नहीं है।

१—अर्थात् अपना काम विधिवत् न करने वाली।

२—एक प्रकार के श्वेत वर्ण का रस है जो भोजन से आमाशय में निकलता है और तब रुधिर में मिल जाता है।

अतएव वह गर्मी ज्ञात नहीं होती जैसी नीरोग त्वचा में हुआ करती है। इसके विरुद्ध त्वचा जर्द और मुरझाई हुई ज्ञात होती है।

इस प्रकार वह पाचन का ही विकार है जो विशेषकर अनेमियां और क्लोरोसिस उत्पन्न करता है।

फेफड़ों की सुस्ती उसके परिणामों सहित इन रोगों के होने का एक दूसरा कारण भी है जो ताज़ी और स्वच्छ वायु की कमी के कारण होता है। दुर्भाग्यवश वह आशंका जो हकीम, वैद्य अथवा डाक्टर लोग शीत लग जाने का भय दिखला कर उत्पन्न कराया करते हैं-- बहुत से मनुष्यों को अपने घरों को यथार्थ रूप में हवादार बनाये रखने से रोकती है। अतः होता यह है कि मलिन वायु का हानिकारक प्रभाव और भी अधिक हानि पहुँचाने वाला हो जाता है। औषधि द्वारा चिकित्सा करने वाला डाक्टर यह भली भाँति जानता है कि फेफड़े स्वच्छ वायु से साँस लेकर रुधिर को शुद्ध करते हैं। फिर भी रोग की अवस्था में रोगी को उसके कमरे ही में बन्द रखकर उसे शुद्ध वायु से वञ्चित रहने की वे सम्मति देते हैं। यह ऐसी भूल है जो औषधियों द्वारा चिकित्सा करने की अपूर्णता का ऐसी स्पष्ट रीति से भण्डाफोड़ करती है जो अवर्णनीय है।

एलोपेथी—यह रोग के वास्तविक कारण को समझने में सदैव ही असमर्थ है। यह विकृत पदार्थ को शरीर से बाहर निकालने का कोई यत्न नहीं करती—प्रत्युत रोग के चिह्नों को केवल दबाने मात्र का प्रयत्न करती है। यह प्रत्येक रोग को एक पुरानी दशा में परवर्तित कर देती है जिसको (कि मेरी विद्या को न जानने वाले नहीं जान सकते) स्वस्थ होना बतलाया जाता है। परन्तु जैसा कि हमें ज्ञात हो जायगा इस प्रकार का स्वस्थ होना केवल स्वाँग है। उसमें वास्तविकता को कोई स्थान नहीं है। दुर्भाग्यवश अभी तक किसी को इस संदिग्ध आरोग्यता की यथार्थता का निश्चय करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ है; परन्तु अब हमारा 'मुखाकृति-विज्ञान' है जो इस चिकित्सा-विधि से चिकित्सा करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को वास्तव में इस बात के पहिचानने के योग्य बनाता है और वे तुरन्त ही समझ लेते हैं कि आरोग्यता जो प्राप्त हुई है वह दिखावटी है अथवा वास्तविक।

जिस समय अस्वाभाविक औषधियों का रुधिर की न्यूनता और क्लोरोसिस के दूर करने में सेवन किया जाता है उस समय आमाशय और भी अधिक न पचने वाले मल से पूरित ही जाता है और रोगी की दशा और भी अधिक विषम हो जाती है। विजातीय द्रव्य को शरीर से निकाल देने पर ही ये रोग दूर हो सकते हैं,

औषधियों से कदापि नहीं। उन औषधियों (जिनमें रक्त-न्यूनता की प्यारी औषधि लोहा अर्थात् फौलाद भी है) से आमशय शीघ्र ऐसा निर्बल हो जाता है कि रोगी को तीक्ष्ण-अम्ल (तुर्श और खूब मसालेदार) भोजनों के खाने के अतिरिक्त और किसी भोजन के खाने से बिल्कुल क्षुधा नहीं लगती। किन्तु यह निश्चय है कि इस प्रकार के भोजन वैसे ही हैं जैसे कि न पचने वाले अन्य समस्त भोजन। ये शरीर में केवल उत्तेजना उत्पन्न करने का ही काम करते हैं, यहाँ तक कि शुद्ध भूख फिर लगती ही नहीं है। उस समय डाक्टर लोग एक अति पुष्टिकारक भोजन—मद्य, मांस, अंडे आदि खाने की सम्मति देते हैं और सहायता के लिए पहिले से और भी अधिक तीक्ष्ण औषधियाँ खिलाते हैं। रोगी यह देखकर कि उसके चिकित्सक उसको कुछ लाभ नहीं पहुँचाते, निराश होने लगता है और दुर्भाग्यवश जब उसकी ऐसी विषम दशा हो जाती है, तो प्रायः मेरी सम्मति लेने आता है। पहिले सप्ताह में ही उसको मेरी चिकित्सा से इस प्रचलित डाक्टरी विद्या की भूल ज्ञात हो जाती है और चिकित्सा से सफलता प्राप्त होने पर वह तो मेरी इस 'न्यू साइन्स आफ हीलिंग' का पक्का अनुयायी हो जाता है।

ज्योंही वह विकृत पदार्थ जो रोगों को वंद और रुधिर के संचालन को अवरुद्ध किये हुये है दूर कर दिया जाता है—त्यों ही रुधिर शरीर की त्वचा तक भ्रमण करने लगता है और उसको यथार्थ रंग और नमी की दशा में फिर पहुँचा देता है। वह सहज पचने वाला और अनुत्तेजक भोजन जिसके सेवन की मैं अनुमति देता हूँ अनेमिया (रक्त की कमी) और क्लोरोसिस के रोगियों के लिए विशेष उपयुक्त है।

मैं फिर भी कहता हूँ कि वह ताजी और प्राकृतिक वायु जो हमें मैदानों अथवा अपनी कोठरियों की खुली खिड़कियों द्वारा प्राप्त होती है, नल के समान स्वाभाविक रीति से क्यूरेटिव क्राइसिस को जो प्रकृति हमारे शरीर में उत्पन्न करती है—सहायता पहुँचाने की शक्ति रखती है। दुर्भाग्य से हमारे औषधि द्वारा चिकित्सा करने वाले वैद्य शीत से बचने के भय से इनको आवश्यक तत्वों अर्थात स्वच्छ वायु और शीतल जल के व्यवहार से वंचित करते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि ये अधिक 'जुकाम' की वास्तविकता को समझने में कितने असमर्थ हैं। वे शरीर को अधिक हानि पहुँचाये बिना ही जुकाम को पूर्ण रीति से नष्ट करने के अयोग्य होकर सब से प्रथम यह यत्न करते हैं कि उन रोगों के प्रकट होने को रोक दिया जावे। और इस प्रयोजन को प्राप्त करने में उन साधनों को भी काम में ले ला

है जो शरीर में स्वभाव के परिवर्तन होने की शक्ति को दबा देने में अत्यन्त समर्थ हैं।

परन्तु प्रत्येक ऐसे मनुष्य की दृष्टि में जिसने रोगों के सम्बंध में मेरी सम्मति पढ़ी है—जुकाम—पूर्णतया एक निर्दोष चिह्न है। सत्य तो यह है कि ऐसी वस्तु का आगमन शुभ है। किसी पूर्ण नीरोग पुरुष को जुकाम कभी हो ही नहीं सकता, क्योंकि उसके शरीर में विजातीय द्रव्य है ही नहीं। फिर ऐसे एक मनुष्य को लो जिसमें ऐसा द्रव्य प्रस्तुत है, परन्तु वह स्वाभाविक रीति से अपना जीवन व्यतीत करता है—वह इस बात को जानता है कि शीतल जल, स्वच्छ वायु, और अनुत्तेजक भोजन से वह अपनी आरोग्यता प्राप्त करने में समर्थ हो जावेगा। वह इस रीति से एक प्रकार की दृढ़ता (मजबूती) और ऐसी आंतरिक शारीरिक स्वच्छता प्राप्त कर लेगा जो उसको प्रथम कभी प्राप्त न थी। वह इस बात को भी जानता है कि 'जुकाम' जो खास कर गर्मी और सर्दी के अचानक परिवर्तनों का परिणाम है, केवल ताजी वायु से ही उत्पन्न होता है। वह ताजी वायु शरीर की जीवन-शक्ति को इतनी शक्ति प्रदान करती है कि उसको एक–"क्यूरेटिव क्राइसिस" के योग्य बना दे—जो जुकाम के रूप में प्रकट होता है। इस क्राइसिस के द्वारा विजातीय द्रव्य का एक अंश शरीर से बाहर निकलने के योग्य हो जावेगा। इस कारण ऐसा क्राइसिस हानिकारक होने के बदले उत्तम आरोग्यता प्राप्त करने में सहायता देता है।

अनेमियाँ और क्लोरोसिस—के रोगियों की चिकित्सा प्रत्येक मनुष्य की दशा के अनुसार सुगम या तीव्र जैसा भी अवसर हो होनी चाहिये। ऐसी सम्मति जो प्रत्येक रोगी के सम्बन्ध में ठीक ही उतरे नहीं दी जा सकती–किन्तु निम्न-लिखित रिपोर्ट से मुख्य-मुख्य साधारण नियम जाने जा सकते हैं।

उन्नीस वर्ष की आयुवाली एक कन्या क्लोरोसिस रोग की ऐलोपैथिक—(डाक्टरी) चिकित्सा पन्द्रह वर्ष की आयु से कर रही थी। प्रथम उसके डाक्टर ने उसे फौलाद को गोलियों के रूप में सेवन करने की आज्ञा दी। फिर पेपसीन व अन्य औषधिओं के संग अर्क की दशा में। इसके अतिरिक्त उसने रोगियों को केवल अत्यन्त पुष्टकारक भोजन, मांस, मांस-जूष, जंघा का मांस और अण्डे, प्रतिदिन हंगरी देश की बनी हुई एक या दो गिलास शराब के साथ खाने की सम्मति दी। चाय और कहवे के बदले खूब कढ़े हुए दुग्ध के पीने की सलाह दी। पानी पीने के सम्बन्ध में उसने। उस रोगिणी स्त्री को यह सम्मति दी कि कदाचित् उसमें अत्यन्त भयानक महामारी के प्रभाव उपस्थित हों, अतः वह पुष्टकारक जौ की बनी मदिरा पीवे।

उसकी आज्ञा का पालन महीनों क्या वर्षों तक बड़ी सावधानी से किया गया, किन्तु सफलता प्राप्त न हुई। उस कन्या की दशा तो पहिले ही से शोचनीय थी। इस चिकित्सा से वह और भी अधिक बिगड़ गई। उसकी पाचनशक्ति अति मंद हो गई—बलदायक भोजन करते हुए भी उसे वास्तविक* क्षुधा और भी अधिक सताती थी। शनैः शनैः वह अधिक दुर्बल, पीतवर्ण एवम् व्याकुलचित्त होती गई। उसको स्पष्ट विदित हो गया कि डाक्टर के नुसखों से उसको किंचित् भी लाभ न हुआ तो भी उसने उन पर दोषारोपण नहीं किया। अपने ही भाग्य को कोसा और यह निश्चय कर लिया कि वह आरोग्यता प्राप्त करने के अयोग्य थी। पुष्ट भोजन जो यह खाती थी—निस्सन्देह उसके शरीर से मल बद्ध (कब्ज) के होते हुए भी निकल जाता था, परन्तु उससे उसके शरीर को किंचित भी पुष्टि न होती थी—क्योंकि उसका आमाशय अत्यन्त बलहीन होगया था। युवावस्था से उसे कभी भी समयानुकूल मासिक धर्म नहीं हुआ—सदैव प्रतिकूल हुआ। इस प्रकार चार साल तक ऐलोपैथिक चिकित्सा करने पर भी उसकी हालत न सुधरी। बेचारी यह कन्या जिसकी चिकित्सा बराबर विपरीत रीति से होती रही थी उदासीन, जीवन से विरक्त, निर्बल, भ्रमचित्त, आत्मघात में तत्पर, अत्यन्त व्याकुल तथा अपने एवम् दूसरों के लिये भार स्वरूप होकर मेरे आई। मैंने तत्काल उस का भोजन बदल दिया, अनुत्तेजक तथा सुगमता से पचने वाले शाक आदि आहार उसको दिलाए। पीने के लिये केवल निर्मल जल बताया और इसके साथ ही खुले मैदान में अधिक व्यायाम करने की उसे सम्मति दी। दूसरी आज्ञाएँ ये थीं कि वह सदैव खिड़कियाँ खोल कर सोवे और तीन फ्रिक्शन बाथ्ज प्रति दिन और दो स्टीमबाथ्ज—प्रति सप्ताह लेवे। केवल एक सप्ताह के भीतर ही उस कन्या के चित्त की दशा में आशातीत परिवर्तन दिखाई दिया। जहाँ उसके जीवन में नैराश्य के लक्षण दिखाई देने लगे थे वहाँ अब उसे आशा से परिपूर्ण प्रफुल्लता की झाँकी दिखाई देने लगी। चार मास के भीतर ही पाचन-शक्ति और मासिक धर्म में पूर्णतया सुधार होने लगा। संभवतः यह कहना अनुचित न होगा कि उस कन्या का पुनर्जन्म हुआ। उसकी त्वचा जिसमें पहिले पसीना नहीं आता था अब सरस और उष्ण जैसी चाहिये थी वैसी ही हो गई। ६ मास में कन्या ने अभूतपूर्व उन्नति प्राप्त की और एक वर्ष में उसे पूर्णतया आरोग्यता प्राप्त हो गई।

*—यद्यपि वह भोजन करती थी परन्तु वह शरीर को न लगता था अर्थात् शरीर भोजन का भूखा ही रहता था।

कर्ण और नेत्र रोग

नेत्र और कर्ण—इन दोनों ज्ञानेन्द्रियों को कठिन रोग हुआ करते हैं। प्रायः और लगभग सदैव ही इन रोगों का कारण भी वही शक्तियाँ बतलाई जाती हैं जो सीधे मार्ग से इन इन्द्रियों पर अपना प्रभाव डालती हैं—यह पता लगाने का कई यत्न नहीं किया जाता कि इससे अधिक कोई विशेष कारण तो नहीं है। मेरी चिकित्सा की रीति और अनुभव से जो कि मैंने उसके क्रियात्मक प्रयोगों द्वारा प्राप्त किया है, किसी प्रकार का संदेह शेष नहीं रहता कि नेत्र तथा कर्ण के सम्पूर्ण रोग इस बात का ध्यान न करके कि चाहे किसी भी नाम से क्यों न वे पुकारे जाते हों आन्तरिक विषमताओं का ही परिणाम हैं। उनका पता या तो उन अवस्थाओं तक चलता है जहाँ कि डिफ्थीरिया[१], खसरा, स्कारलेट बुखार[२] के सदृश दबे हुए रोगों ने रोग का कोई नया तथा उकसाने वाला तत्व छोड़ा हो—या ये रोग टीका लगाने से उत्पन्न होते हैं। मेरी मुखाकृति-विज्ञान के द्वारा इस बात की पूर्ण सत्यता प्रकट होती है। उसकी सहायता से यह बात सिद्ध होती है कि नेत्र या कर्ण के प्रत्येक रोग के साथ-साथ उसी के अनुसार शरीर में साधारण रीति से विजातीय द्रव्य प्रस्तुत रहता है। तात्पर्य यह है कि यह बात स्पष्ट की जा सकती है कि शरीर में विजातीय द्रव्य का ऐसा संयोग होता है जो सीधा उन रोगों से सम्बद्ध है जो नेत्र अथवा कर्ण में प्रकट होते हैं।

यह अत्यन्त असम्भव है कि जो पुरुष नेत्र या कर्ण के रोग से पीड़ित हो वह अन्य बातों में स्वस्थ हो। यह आवश्यक है कि विजातीय द्रव्य पहिले से ही प्रस्तुत था जो पीड़ित अंगों तक इस रोग के उत्पन्न होने से पूर्व ही पहुँचा होगा—

१—इसका शब्दार्थ झिल्ली है और डाक्टरों की सम्मति में यह एक छूतदार कठिन महामारी है जिसका वे एक विशेष प्रकार के विष से उत्पन्न होना मानते हैं। इसमें रोगी अत्यन्त निर्बल हो जाता है। उसका कण्ठ दुखने लगता है और उसमें एक प्रकार की झिल्ली सी उत्पन्न हो जाती है।

२—इसका वर्णन इस पुस्तक में बुखारों के अन्तर्गत किया गया है।

मुखाकृति विज्ञान के द्वारा कई वर्ष पहिले ऐसी कार्यवाही का पता लग सकता है।

प्रथम हम कर्ण-रोगों का सावधानी से वर्णन करते हैं। जिस समय बिजातीय द्रव्य कर्णों में पहुँच जाता है तो प्रथम परिणाम यह होता है कि कान की बारीक नालियाँ रुक जाती हैं, कान का पर्दा बहुधा फट जाता है या ढीला हो जाता है और थर्राने के योग्य नहीं रहता है; अर्थात् शब्द की लहरों को उचित रीति से पहुँचाने की उसकी सामर्थ्य नष्ट हो जाती है। इस रीति से कर्ण के[1] मध्य भाग में जलन उत्पन्न हो जाती है—यह बिजातीय द्रव्य के एकत्रित होने का एक चिह्न है। इस प्रकार की एकता में प्रायः ऐसा होता रहता है कि यदि विजातीय द्रव्य का दवाव नीचे से ऊपर की ओर अधिक है तो एक तो तीक्ष्ण दशा उत्पन्न हो जाती है। तब अनेक दशाओं में कर्ण के भीतर के भाग से मवाद निकल जाता है। क्योंकि उबाल खाने वाला विजातीय द्रव्य बराबर निकलता रहा। इस प्रकार ओटारिया, अथवा कान के बहने का रोग उत्पन्न हो जाता है। यदि यह तीक्ष्ण दशा स्वाभाविक रूप से उचित समय के भीतर आरोग्यता को प्राप्त न हो तो विजातीय द्रव्य के बोझ का और भी बढ़ जाना और प्रायः श्रवणशक्ति का जाता रहता उसका परिणाम होता है। जितना ही अधिक औषधियों द्वारा रोग की चिकित्सा करके उसे भीतर घुसा दिया जाता है उतनी ही उसकी दशा अधिक विषम हो जाती है।

प्रत्येक मनुष्य जिसने कि मेरी प्रथम कही की हुई व्याख्याओं को स्मरण रक्खा है उसको यह स्पष्ट प्रतीत हो गया होगा कि—एक तो कान का बहना और सिर की ठंड (जुकाम) और दूसरे सुजाक और सफेदी इन सब का एक ही कारण अवश्य है। मैं दृढ़ता से कहता हूँ कि सम्पूर्ण नाना प्रकार के रोग केवल विकृत पदार्थ से ही उत्पन्न होते हैं—जो शरीर में एक गुप्त दशा में एकत्रित होकर उबाल की तीक्ष्ण दशा में परिवर्तित हो जाता है। अतः वह पीप या कफ[2] आदि का रूप धारण कर लेता है। उबाल की दशा म्यूकस मैम्बरेन[3] (लुआबदार झिल्ली) वा शरीर से सम्बन्धित अंगों में एक प्रकार की जलन उत्पन्न कर देती है और सम्भव है कि यह जलन किसी भयानक दशा में खुले बहते हुए घाव तथा छोटे-छोटे फोड़े उत्पन्न कर देवे।

१—कर्ण के तीन भाग किये गये हैं (१) बाहर का (२) भीतर का (३) बीच का।

२—वह वस्तु है जो जुकाम की दशा में भिन्न-भिन्न आकृतियों में नाक और मुँह से बहा करती है।

३—चिपकती हुई झिल्ली।

यह जलन की दशा विशेषकर शरीर के उन भीतरी अंगों में देखी जा सकती है जिनका बाहर की वायु से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। हमारे लिये इस बात का समझ लेना बहुत आवश्यक है—क्योंकि यह शरीर में अत्यन्त ही विकार-जनक द्रव्य के आन्तरिक भार होने का निश्चित चिह्न है, और इस बात का एक सब से उत्तम प्रमाण है कि अब भी इतनी जीवन-शक्ति प्रस्तुत है कि विकृत पदार्थ को क्युरेटिव क्राइसिस के द्वारा निकाल दे।

नेत्र के रोगों की भी ठीक ऐसी ही दशा होती है—विकारी द्रव्य नेत्र के भीतर के (क्रिस्टेलाइन लेन्ज) अर्थात् आन्तरिक तरी को भर देता है। उसमें विपर्य्यय उत्पन्न कर देता है—और देखने की शक्ति को क्षीण कर देता है। यही मायोपिया[२] अर्थात् दृष्टि-हीनता का कारण है। अन्य रोगों में विकृत-पदार्थ आँख के भीतरी पर्दों में चला जाता है जिससे नेत्र के भीतर का पीला धब्बा और उससे सम्बन्ध रखने वाले स्नायु हट जाते हैं अथवा ढक जाते हैं और—एमारोसिस अथवा काला मोतियाबिन्दु उत्पन्न हो जाता है।

ग्रे कैटेरेक्ट —अर्थात् भूरा मोतियाबिन्दु भी इसी प्रकार से उत्पन्न होता है। नेत्र के स्वच्छ शीशे[३] पर एक प्रकार का धुँधला पर्दा बन जाता है जोकि उस विकार जनक द्रव्य के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु नहीं है, जो नेत्र के भीतर और नेत्र के निर्मल दर्पण के भीतर प्रवेश कर गया है। यह वह दशा है जो विशेषकर विकृत-पदार्थ के दीर्घकाल की एकत्रिता के कारण होती है। अतएव यह वृद्ध मनुष्यों में ही देखी जाती है।

हरित मोतिया विन्दु—(ग्लाकोमा) नेत्र के डेले का अत्यन्त तनाव नेत्र के भीतर विकृत द्रव्य के उबाल में आने से ही उत्पन्न होता है। चिकित्सा-विद्यालय के विश्वस्त प्रतिनिधि इस रोग की चिकित्सा करने के लिये नेत्र का एक खंड (टुकड़ा)

१—अर्थात् शरीर के भीतर विकारी-द्रव्य का बोझ होने का।

२—वह रोग है जिसमें नेत्र से समीप का दिखलाई देता है।

३—अभिप्राय आँख के उस मार्ग से है जोकि इस प्रकार से बना हुआ है कि जिसके द्वारा बाहर के पदार्थों का प्रतिबिम्ब पड़ता है जिससे प्रत्येक वस्तु का स्वरूप दिखाई देता है। आँख की उस प्रकार की बनावट से जैसा कि फोटोग्राफी का शीशा (लेन्स) होता है अभिप्राय है अंग्रेजी में उस शीशे को लेन्स कहते हैं।

काट कर चिकित्सा करते हैं। शारीरिक-जीवन-शक्ति को उसके, आरोग्यता प्रदायक आवश्यक कार्य से वंचित कर के दूसरी ओर फेर देते हैं। वे नेत्र को दोष युक्त कर देते हैं, फिर भी वास्तविक रोग प्रायः उसी दशा में पड़ा रह जाता है। नेत्र की दशा में इस शस्त्र क्रिया द्वारा एक प्रकार का परिवर्तन उत्पन्न कर दिया जाता है।

जिस समय हम इस कार्यवाही पर ध्यान देते हैं तो यह स्पष्टतया समझ में आ जाता है कि नेत्रों पर की गई समग्र शस्त्र-क्रियायें निष्फल हैं। वे केवल बाह्य चिह्नों के दूर करने ही को की जाती हैं। जिस समय विकृत-द्रव्य की नवीन एकत्रिता नहीं होती है तो शस्त्र-क्रिया में सफलता होती है। परन्तु जब कभी विकृत-पदार्थ की दशा या स्थान में परिवर्तन होते हैं, जिनके होने में किञ्चित् मात्र भी संदेह नहीं, तो रोग के पूर्व के अथवा अन्य नवीन चिह्न तत्काल प्रकट होते हैं और सफलता प्राप्त शस्त्र क्रिया के निष्फल होने को सिद्ध करते हैं।

इजिपशन[१] आई डिज़ीज—यह रोग बाल्यावस्था में ही अधिक हुआ करता है। यह विशेषतः सन्तान में (पैतृक) माता पिता से पहुँचे हुए विकृत-द्रव्य के उबाल के सिवाय और कुछ भी नहीं है, जो विकारी द्रव्य किसी अकस्मात् कारण से तीक्ष्ण उबाल की दशा में आकर सूजन-युक्त जलन उत्पन्न कर देता है। इसका परिणाम यह है कि आरोग्यता बहुत ही धीरे-धीरे प्राप्त होती है और अति अधिक धैर्य की आवश्यकता होती है। ऐसी बहुत सी दशाओं में मेरी चिकित्सा की रीति को बहुत ही सफलता प्राप्त होती है। निम्न-लिखित आरोग्यता की विचित्र रिपोर्टें उदाहरण का कार्य सम्पादन करेंगी :—

एक आठ वर्ष की आयु का बालक इजिपशन आईडिजीज में ग्रसित हुआ और उसके नेत्र में चार वर्ष तक भिन्न-भिन्न चिकित्सा-शालाओं में जो अति निर्बल रोगियों के लिये नियत थी और जिनके औषधालयों में एटरोपिया[२] के बिन्दु डाल-डाल कर उसकी चिकित्सा की गई थी, परन्तु सफलता प्राप्त न हुई थी। अन्त में औषधि द्वारा चिकित्सा करने वाले वैद्यों ने यह निर्णय किया कि बालक को हाई ड्रॉफिलस—

१—इसको ट्रकोमा भी कहते हैं—एक प्रकार के रोग आंख में होजाते हैं जिनकी रगड़ से आंख में जलन और सूजन हो जाती है। यदि उपाय न किया जावे तो आंखों का प्रकाश भी जाता रहता है।

२—आंख की एक विषैली औषधि है जो डाक्टर लोग विन्दु-विन्दु कर के डालते हैं

(मस्तक के ऊपर पानी) का रोग है—और अब उसके लिये कोई भी उपाय नहीं हो सकता। उसकी माता उसे लेकर मेरे पास आई। मैंने अपने मुखाकृति विज्ञान द्वारा निश्चित रूप से जान लिया कि उसकी असाधारण बढ़ी हुई शिर और नेत्र के ढेले की जलन निश्चय ही किसी पूर्व के आरोग्यता को न प्राप्त हुए रोग का प्रतिफल थी। मैंने उसकी माता को यह और बतला दिया कि इस बालक को आरोग्यता अत्यन्त धैर्य से उपलब्ध हो सकेगी क्योंकि विकार जनक द्रव्य का बोझ उसकी कमर में था। उसे प्रति दिन तीन से चार तक शीत पहुँचाने वाले स्नान लेने पड़े और अनुत्तेजनीय भोजन का सेवन करना पड़ा। एक सप्ताह के समाप्त होते-होते उसकी जलन बहुत कम रह गई और अब बालक अपने नेत्र कुछ-कुछ खोलने भी लगा जो उसके लिये पहिले सर्वथा असम्भव होगया था।

अब पाचन शक्ति भी समता पर आगई थी और उसका मलत्याग भी भली प्रकार से होता था। सप्ताह के पश्चात् नेत्र प्रकाश से चुंधियाते[1] नहीं थे। चतुर्थ सप्ताह के भीतर उस बालक को स्कार्लेट फीवर[2] अर्थात् सुर्खबुखार—चढ़ आया। शरीर ने अब इतनी अधिक शक्ति प्राप्त करली थी कि वह स्कार्लेट फीवर के द्वारा आरोग्यता प्राप्त करने की कार्यवाही को जारी रख सके जो बालक को चौथे वर्ष के आरम्भ में हुई थी, किन्तु दबा दी गई थी। जब ज्वर जाता रहा तो ज्ञात हुआ कि नेत्रों की जलन और मस्तक के ऊपर के जल को भी आरोग्यता प्राप्त हो गई।

डबल विजन—अर्थात् एक वस्तु का दो दिखाई देना—यह रोग विकृत पदार्थ नेत्र के शीशे और पीले धब्बे के मध्य में इकट्ठा होने से या विकृत द्रव्य के सीधे नेत्र के दर्पण वा पुतली के भीतर वा ऊपर एकत्रित हो जाने से उत्पन्न होता है।

मेरी चिकित्सा विधि द्वारा उसकी चिकित्सा करने में प्रायः ऐसा प्रकट हुआ है कि विकृत द्रव्य के लौट आने और उन परिवर्तनों के द्वारा जो इस प्रकार शरीर में हुआ करते हैं। केवल—डबल विजन—ही नहीं किन्तु आँख का अचिरस्थायी निर्मल-

---

१—चकाचौंध न लगती थी।

२—एक प्रकार का ज्वर है जिसे सुर्ख बुखार कहते हैं।

प्रकाश भी दृष्टि के थोड़े दिन रहने वाले आंशिक अथवा सम्पूर्ण धुंधलेपन से क्रमश: परिवर्तित१ होता रहता है।

स्क्विटिंग Squinting अर्थात् भैंगापन—यह नेत्र के डेले को घुमानेवाले स्नायुओं में विकृत द्रव्य की एकत्रिता के कारण उत्पन्न होता है। विकारी द्रव्य इन स्नायुओं में से किसी एक स्नायु में सञ्चित हो जाता है अथवा मार्ग में ही रुक जाता है। बस इस प्रकार उस स्नायु को बहुत कड़ा—अधिक तना हुआ—बहुत मोटा—और प्राय: सर्वथा क्रिया रहित बना देता है। उसका लचकपन जाता रहता है और यह स्नायु तनावों के कारण अन्य स्नायुओं से जो नेत्र के डेले के चारों ओर हैं और जो नेत्र को फिराती हैं छोटी हो जाती हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण नेत्र शनै:-शनै: इस विकारी द्रव्य को भरे हुए स्नायु से एक ओर को खिंच जाती है और अपना असली स्थान छोड़ देती है। ऐसी दशा में औषधियों द्वारा चिकित्सा करने वाले डाक्टर लोग इस छोटे स्नायु को काट कर अलग कर देते हैं। इस प्रकार फिर इस बात को सिद्ध कर देते हैं कि औषधि द्वारा चिकित्सा करने वाले चिकित्सक लोग इन रोगों की सच्ची वास्तविकता को कितना कम समझते हैं।

नेत्र के इस स्नायु से विकारी द्रव्य के निकाल देने से भैंगापन स्वाभाविक और यथार्थ रीति से आरोग्यता को प्राप्त हो सकता है। जैसा भली भांति ज्ञात है नेत्र के स्नायु एक गुच्छे की आकृति में शिर के भीतर दौड़े हुए हैं और एक दूसरे के ऊपर होकर जाते हैं। अत: वाम नेत्रका स्नायु सिर के दाहिनी ओर को जाता है और दाहिने नेत्र का वाम ओर को। अत: ऐसा सम्भव है कि वाम ओर विकारजनक वस्तु के होने से दक्षिण नेत्र में रोग हो जावे—इस कारण आँख की नस वाम ओर के विकारी द्रव्य से दूषित हो गई है और ऐसा ही इसकी विरुद्ध दशा में समझो।

मैं आँख से सम्बन्ध रखने वाले सम्पूर्ण विभिन्न रोगों का विवरण, जैसा कि वतमान समय के औषधि द्वारा चिकित्सा करने वाले आँखों की चिकित्सा के उद्भट विद्वान् चतुराई से वर्णन करते हैं, वर्णन नहीं करूंगा। इन सब रोगों का एक ही कारण है—अर्थात् आँख के प्रमुख स्थान का विकारी द्रव्य से न्यूनाधिक भार,

१—इसका अर्थ यह है—चिकित्सा काल में ऐसा होता है कि आँख का प्रकाश थोड़े दिनों को बहुत शुद्ध हो जाता है और थोड़े दिनों पश्चात् थोड़ा या पूरा धुँधला हो जावे अर्थात् कुछ दिनों तो स्पष्ट दिखाई देने लगे और फिर धुन्धला होकर थोड़े दिन ऐसा ही कम रहे।

जाना। परन्तु एक बात वर्णनीय है। प्रायः प्रत्येक दशा में विकारी द्रव्य की उपस्थिति की दशाएँ पृथक्-पृथक् होने के कारण यह परिणाम निकलता है कि उसके चिह्न भी भिन्न-भिन्न होंगे और इस कारण मनुष्यों में प्रतिक्षण विकारजनक द्रव्य अधिक होता जायगा और नवीन रोग भी सदैव उत्पन्न होते जायेंगे। यही कारण है कि डाक्टर लोग कभी भी उनके अलग-अलग[1] नाम रखने से सन्तुष्ट नहीं होते क्योंकि नवीन-नवीन रोग नित्य ही प्रकट होते जाते हैं और वस्तुतः प्रत्येक के लिये एक नवीन नाम तथा साधारण रूप से एक नवीन औषधि की आवश्यकता होती है।

हम को नेत्र वा कर्ण के भाँति-भाँति के रोगों के चिह्नों में अन्तर होने से कुछ प्रयोजन नहीं। हम जानते हैं कि इन रोगों में से प्रत्येक के नष्ट करने के लिये केवल एक ही चिकित्सा है जो कि कारण को दूर कर देवेगी—अर्थात् विकारजनक द्रव्य को निकाल बाहर करना। यह वही चिकित्सा है जिसको बार-बार सफलता प्राप्त हो चुकी है अर्थात् सम्पूर्ण विकारजनक द्रव्य को अपने मार्ग पर लौटा देना ही श्रेयस्कर है उसे स्वाभाविक अंगों के द्वारा शरीर से निकाल फेंकने के लिये मेरे शीत पहुँचाने वाले स्नान, तथा प्राकृतिक—सादा भोजन का सेवन करना उचित है। प्रायः मेरे भाप के स्थानीय स्नान भी उस रीति के अनुसार (जिसका इस पुस्तक में पीछे वर्णन हो चुका है) उपयोग में लाये जा सकते हैं।

मेरी चिकित्सा विधि द्वारा नेत्र वा कर्ण-रोगों से मुक्त होने के सम्बन्ध में यह विशेषता है कि यदि यह अङ्ग[2] नष्ट नहीं होगये थे तो तीक्ष्ण दशाएँ जिन में जलन थी अत्यन्त शीघ्रता से आरोग्यता को प्राप्त हो गई। उस समय पीड़ा और उसके साथ ही सदैव की विषमता की आशंका भी अवश्य जाती रहेगी अर्थात् कुछ ही दिनों वा सप्ताहों में पूर्ण आरोग्यता प्राप्त हो जावेगी। उन दशाओं में भी जहाँ कि नेत्र अथवा श्रवणेन्द्रिय (कान) के कोई भाग नष्ट हो गये हैं एक प्रकार का सुधार (यद्यपि आरोग्यता नहीं) जो सब प्रकार से किंचित कार्ययोग्य अवस्था में आयु भर स्थायी रह सकता है।

इस के विपरीत नेत्र वा कर्ण के उन पुराने रोगों की आरोग्यता के लिये कि जिन के संग विशेष कर अनेक प्रकार के प्रबल दूषण संयुक्त रहते हैं अधिक समय और अधिक धैर्य की वांछा है। इस प्रकार की दशाओं का पता उन रोगों में लगता है

१—अर्थात् आँख की सारी बीमारियों का।
२—यानी सुनने और देखने के यन्त्र।

जो रोगियों की बाल्यावस्था में दबा दिये गये हैं। इन पुराने रोगों की आरोग्यता में विकारी द्रव्य की उपस्थिति के अनुक्रम से महीनों या वर्षों की आवश्यकता हो सकती है। यह उसी भाँति समझाया जा सकता है कि किस प्रकार सर्वथा एक ही प्रकार के दो रोगियों की चिकित्सा में एक ही चिकित्सा से एक रोगी की आरोग्यता प्राप्त करने में दूसरे की अपेक्षा दुगुना अथवा तिगुना समय लग जाता है। इसका कारण केवल दोनों रोगियों की विकारी द्रव्य की न्यूनाधिकता पर ही निर्भर है।

मैं इस विषय में अपने चिकित्सालय के कुछ रोगियों के दृष्टांत उपस्थित करता हूँ (आरोग्यता की और रिपोर्टें चतुर्थ भाग में मिलेंगी)।

नेत्र के रोग—प्रथम घटना का रोगी लिपजिग नगर के एक व्यापारी का बालक, जो नव वर्ष की आयु से ही उपदंश (आतशक) के रोग में ग्रसित था—विशेष कर उसके वाम नेत्र पर विजातीय द्रव्य का प्रभाव पड़ा था और अति जलन के कारण उस नेत्र के नष्ट हो जाने की आशंका थी। वह बालक विकारी द्रव्य से परिपूर्ण था जैसा कि उसके साधारण से अधिक बढ़े हुए शिर से सिद्ध होता था। यह विकारी द्रव्य की अधिकता ही थी जो उपदंश और चक्षु का तीक्ष्ण रोग अपने संग लाई। औषधि द्वारा चिकित्सा करने वाले डाक्टरी के शिष्यों ने अपने चिकित्सालय (शफाखानों) में उसके नेत्र की चिकित्सा अधिकतर एटरोपिया Atropia (जो बहुत विषैली औषधि है) जो विषयुक्त स्ट्रमोनियम Stromonium और उसी के समान विषयुक्त—बेलाडोना Belladona के अर्क से प्राप्त होती है, डाल कर की थी। मैं अपने सच्चे मन से इस औषधि के सेवन का अपना विरोध प्रत्येक मनुष्य के समक्ष प्रकाशित करता हूँ। इस औषधि द्वारा चिकित्सा करने से (नवीन विजातीय द्रव्य नेत्र में बाहर से पहुँचाये जाने के कारण जो कि स्वय ही नेत्र को निबल करने के लिये पर्याप्त था) नेत्र और भी अधिक दूषित होगया। इस चिकित्सा का फल क्या हुआ ?

छः सप्ताह-एटरोपिया डालने के पश्चात् नेत्र पूर्णतया प्रकाश रहित हो गया। इसी कारण उसका पिता बालक को मेरे पास लाया। मैंने नेत्र की कोई स्थानीय चिकित्सा नहीं की, परञ्च उदर के भीतर के उन अङ्गों को जो शारीरिक विकार को पृथक करते हैं अपने शीतल स्नानों द्वारा संचालित किया। अनुत्तेजक आहार का देना

१—आशय है दूषित अङ्गों से अर्थात् रोग ग्रसित आँख और कान।

भी आवश्यक हुआ। एक सप्ताह के भीतर ही निस्सन्देह उन्नति का आभास होने लगी और छः मास के अन्त तक केवल उपदंश रोग ही नहीं प्रत्युत उसके समस्त दोष पूर्ण तया नष्ट हो गये। इस समय कोई मनुष्य यह नहीं बता सकता था कि बालक पहिले किस नेत्र से अंधा था। उसकी दृष्टि पूर्णतया सँभल गई और उसका साधारण स्वास्थ्य पहिले की अपेक्षा उत्तम हो गया।

भूरा मोतियाबिन्द—Gray Cataract एक साठ वर्ष की आयु की लेडी (महिला) ने अपने वाम नेत्र पर भूरे मोतियाबिन्दु के लिये शल्य क्रिया (अमल जर्राही) का आश्रय लिया। इस शस्त्रक्रिया के पश्चात् (जो कि बहुत सफलता युक्त हुई थी) वह उस नेत्र से पूर्णतया अंधी हो गई थी। डाक्टरों ने दाहिने नेत्र के लिये भी उसी शस्त्र क्रिया की शरण में जाने की उसे सम्मति दी, उस समय जब कि उस नेत्र का फूला पककर शस्त्र क्रिया के योग्य हो जावे। उपर्युक्त कथन डाक्टरी विद्या—(मेडिकल-साइन्स) की अस्थिर दशा, उसकी अपूर्ण शिक्षा और उसके निराधार निदान का एक आश्चर्यजनक प्रमाण है। द्वितीय नेत्र पर शस्त्र क्रिया के करने को तब तक के लिये टालना जब तक कि उसका फूला पक न जाय, ध्यान देने योग्य है। मानो उस समय तक बाट जोहना है जब तब कि सम्पूर्ण घर जल न जावे। अग्नि को पहिले ही बुझाना चाहिये जबकि वह थोड़ी है; क्योंकि प्रायः सहज ही में बुझाई जा सकती है। यह एक ऐसी बात है कि जिसको अभी तक डाक्टरी विद्या (मेडीकल साइन्स) ने सीखा ही नहीं है। प्रत्येक दशा में, प्रथम शस्त्र क्रिया के पश्चात् ही उस लेडी (महिला) का विश्वास उस चिकित्सा-विधि से पूर्णतया उठ गया। अतः वह मेरे पास चिकित्सा के लिये आई। उसकी देखने की शक्ति अब इतनी मन्द होगई थी कि उसको परछांई के अतिरिक्त और कुछ भी दीख नहीं पड़ता था—और अपने सन्मुख-समीप ही स्थित पुरुष व स्त्री में वह भेद न कर सकती थी। उसमें विजातीय द्रव्य की उपस्थिति बहुत पुरानी थी—और बाल्यावस्था में केवल खुनाक रोग से उसका सम्बन्ध मिलता था जो अच्छा नहीं हुआ था, किन्तु दबा दिया गया था। उस समय से वह सदैव निकट से दृष्टि पड़ने के रोग में वह ग्रसित थी जिसके अन्त में उसे मोतियाबिंदु हुआ था—मेरी चिकित्सा रीति पर एक मास तक कार्य्य करने के पश्चात् वह इतनी स्वस्थ होगई कि वह छापे के मोटे अक्षर पढ़ सकती थी और इसके अतिरिक्त उसके साधारण स्वास्थ्य में भी आश्चर्यजनक उन्नति हुई। उसका शोक सम्पन्न-उदास हृदय आनन्द और आशाओं की तरङ्गों में तरंगित होने लगा।

से भर गया—मानो वह फिर तरुण अवस्था को प्राप्त होगई। चिकित्सा के आरम्भ के कुछ ही दिनों में उसकी पाचन शक्ति अत्यन्त तीव्र हो गई थी, चिकित्सा जारी रखने के कारण प्रति सप्ताह उसका नेत्र बहुत चमकीला एवम् शक्तिशाली होने लगा और छः मास में ही उसे पूर्ण आरोग्यता प्राप्त होगई।

इस आश्चर्यजनक आरोग्यता का कारण केवल यह था कि रोगिणी स्त्री में विकारी-द्रव्य की उपस्थिति सामने की ओर थी। यदि विजातीय द्रव्य की एकत्रिता पीठ की ओर होती तो सम्भव था कि आरोग्यता उपलब्ध करने में उतने ही वर्ष लगते जितने कि इस समय महीने लगे थे। शोक कि वह नेत्र जो शस्त्र-क्रिया द्वारा नष्ट हो गया था—सदैव के लिये अंधा ही रहगया।

वाईं ओर का बहिरापन—कर्ण का बहना—कर्णों में झनझनाहट—मेरा रोगी एक भद्र पुरुष सैंतीस वर्ष की आयु का था जो कई वर्ष से कान बहने की पीड़ा में ग्रसित था और गत छः मासों से नितान्त बहरा हो रहा था। उसने अब तक औषधियाँ सेवन की थीं जिनसे किंचिन्मात्र भी लाभ न हुआ। इस कारण उसने मेरी चिकित्सा आरम्भ की। मैंने अपने मुखाकृति विज्ञान द्वारा यह जान लिया कि उसका रोग केवल पाचन शक्ति की मन्दता से था। मैंने रोगी को प्रति दिन दो या तीन—फ्रिक्शन हिप और सिट्ज बाथ्ज लेने और प्राकृतिक भोजन करने की आज्ञा दी। इसके साथ ही परिश्रम द्वारा अथवा बिस्तर में भली भांति शरीर को ढक कर स्वेद (पसीना) लाने और खिड़की खोल कर शयन करने की आज्ञा दी जिसका फल निम्न-लिखित हुआ। सत्रह दिन में कान का बहना और वाम कर्ण का बहिरापन नष्ट हो गया। चिकित्सा के प्रथम दिन ही से पाचनशक्ति में अधिक उन्नति ही हुई। दूसरे दो सप्ताहों में कानों की झनझनाहट लेश मात्र भी शेष न रही। इकतीस दिन में ही रोग पूर्ण आरोग्यता को प्राप्त हुआ।

पूर्ण बधिरत्व या बहिरापन—एक चौबीस वर्ष की आयु वाले भद्र पुरुष को बाल्यावस्था में खसरा निकला—जिसको औषधियों द्वारा चिकित्सा करने से कुछ भी लाभ न हुआ था और विकारी द्रव्य ने फिर भीतर प्रवेश कर लिया था। और वह इस बात का कारण हुआ कि एक पुरानी दशा रोग की शनैः शनैः उत्पन्न होगई जिस में गठिया तथा साधारण निर्बलता आदि भी सम्मिलित हैं। अन्त में विकारी द्रव्य को शिर की ओर दवा देने से, रोगी कुछ २ बहरा भी हो गया था। वह सब

प्रकार की चिकित्साएँ कर चुका था, परन्तु उनसे कुछ भी लाभ न हुआ था। अन्त में बहुत से मित्रों से मेरी चिकित्सा के गुणों की प्रशंसा सुन कर उसने मेरी चिकित्सा की विधि की परीक्षा करने का निश्चय किया।

अनुत्तेजक आहार फ्रिकशन हिप और सिटज़ बाथ्ज़ तथा मेरी चिकित्सा की अन्यान्य रीतियाँ जिन में लोकल स्टोम बाथ्ज़ का लेना प्रायः सम्मिलित था, इस रोगी की दशा में भी हुई, जिनके द्वारा आशा के विरुद्ध थोड़े समय में ही वांछित फल प्राप्त हुआ। यह सब इस कारण और भी अधिक अनोखा था कि बहुत सी विरुद्ध चिकित्साओं ने जो औषधि द्वारा की गईं थीं, उसके शरीर में आरोग्यता प्राप्त करने का शक्ति को बहुत ही क्षीण कर दिया था। इसके विरुद्ध रोगी की युवावस्था और अच्छी ऋतु ने भी चिकित्सा के समय आरोग्यता प्राप्त करने में सहायता दी जैसा कि रोगी ने मुझे लिखा है कि केवल उसकी श्रवणशक्ति में ही सुधार नहीं हुआ है, किन्तु उसके बाल भी जोकि बहुत बेगरे होने लगे थे पुनः विशेषतः घने हो गये। शीत वा प्रतिश्याय (जुकाम) जिन में कि वह ऋत परिवर्तन के समय सदा पीड़ित हो जाया करता था अब उसको पाड़ा न देते थे। यद्यपि वह मेरे बतलाये हुये भोजन को सदैव नहीं खा सकता है और कुछ दुर्बल भी हो गया है-तथापि वह पूर्णतया प्रसन्न दिखाई देता है और शारीरिक और मास्तष्क सम्बन्धी क्रियाओं के सर्वथा योग्य है। उसको निन्द्रा भी भली भाँति आती थी और ये सब बातें (क्योंकि सम्पूर्ण रोगों का कारण एक ही) औषधियों, शस्त्र क्रिया अथवा किसी प्रकार की डाक्टरी चिकित्सा के बिना ही साधारण दशा में पुनः प्रकट हुईं।

दंत रोग, जुकाम, इन्फ्ल्यूएंज़ा, कंठरोग घेंगा

दाँत के रोग—मैं उन कारणों का अनेक बार कथन कर चुका हूँ जिनसे सम्पूर्ण रोग उत्पन होते हैं। खोखले दाँत और दाँतों की हर प्रकार की पीड़ायें विकृत द्रव्य की उपस्थिति के निश्चित चिह्न हैं। ये सम्पूर्ण रोग विकृत द्रव्य के शिर में प्रवेश कर जाने से उत्पन्न होते हैं, और विशेषत: किसी विशेष प्रकार की विजातीय द्रव्य की एकत्रिता से अर्थात् उस दशा में जिस में कि विकार-जनक वस्तु सामने की ओर से, और दाहिने और बांई ओर से उठती है। न तो दाँत की अस्थि और न वह कठोर और चिकनी वस्तु ही जो दाँतों के ऊपर हुआ करती है, इतनी कठोर होती है कि जो सदैव के लिये क्रमागत दवाब का सामना कर सके। वह शनैः शनैः कोमल हो कर एक गली हुई शाखा के समान बन जाती है। उस समय जो पीड़ा प्रतीत हुआ करती है। वह सड़न की क्रिया में अत्यन्त ऊष्णता (गर्मी) और रगड़ होने के कारण हुआ करती है। कभी-कभी मेरी चिकित्सा से भी दंत-पीड़ा उत्पन्न होजाया करता है। वे मनुष्य भी जिनको प्रथम कभी को पीड़ा नहीं हुई इस जल-चिकित्सा के करने में कुछ काल के लिये उस में (दांत के दर्द में) ग्रस्त होजाते हैं, क्योंकि विकारजनक द्रव्य के लौटने में दांतों पर भी प्रभाव पड़ता है। गठिया के रोग में भी हम को वही बात दृष्टिगत होती है। दाँत का उखड़वाना नितान्त मूर्खता है। यह दाँत की पीड़ा को निवारण करना नहीं किन्तु एक अङ्ग का काट डालना है। मेरी चिकित्सा रीति से दन्त-पीड़ा को उसी प्रकार आरोग्यता उपलब्ध हो सकती है जैसे अन्य रोगों को जैसा कि अगणित दशाओं में जिन में सफलता प्राप्त हुई है, सिद्ध हो चुका है। फ्रिक्शन बाथ के अतिरिक्त बहुधा शिर के स्थानीय स्टीम बाथ भी जिनके पश्चात् सदैव फ्रिक्शन हिप बाथ लिये जावें—अत्यन्त उपयोगी पाये जावेंगे। शरीर को फिर भलीं भाँति गर्म करने के निमित्त यदि सम्भव हो तो धूप

में टहलाया जावे। अनेक दशाओं में एक स्थानिक स्टीप बाथ, जिसके बाद फ्रिक्शन बाथ लिये गये हों, पीड़ा के निवारण करने के लिये पर्याप्त है। यदि पीड़ा न जाये तो फिर स्नान लेना उचित है। प्रत्येक मनुष्य जो कुछ काल तक मेरी चिकित्सा करता रहेगा उसकी दंत-पीड़ा उसी समय तक होगी जब तक कि विकृत द्रव्य दाँतों से खींचकर निकाल न लिया जावे।

दांतों को साफ़ रखना भी अति आवश्यक है। एक जर्द रंग की चिपचिपी वस्तु सर्वदा दांतों पर जमा होती है—जोकि कड़ी भी हो जाया करती है जिसे टार्टार कहते हैं। मैं दृढ़ता पूर्वक कहता हूँ कि केवल रोगियों या विजातीय द्रव्य से पूरित मनुष्यों को ही दांत साफ़ करने की आवश्यकता होती है। आरोग्य पुरुषों को इस बात को उतनी आवश्यकता है जितनी हो कि आरोग्य पशुओं को। हम देखते हैं कि पशुओं के दांत अति उज्ज्वल श्वेत और नीरोग होते हैं। उन पर कोई चिपकती हुई वा नमकीन चिपकने वाली वस्तु का चिह्न भी नहीं होता। किन्तु चिपकती हुई और नमकीन चिपकने वाली वस्तु उस शरीर में जोकि विकार जनक वस्तु से पूरित हो अर्थात् दूसरे शब्दों में यों कहो कि जिस शरीर की पाचन शक्ति ठीक नहीं उस में ही चिपचिपी और नमकीन वस्तु दांतों पर अवश्य देखी जाती है। कारण यह है कि यह वस्तु अशुद्ध पाचन शक्ति से उत्पन्न होती है। चिपकती हुई वस्तु अथवा दांतों पर नमकीन जमने वाली वस्तु केवल विकृत द्रव्य है जोकि पेडू से ऊपर को उठ कर दांतों पर जम गया है।

अतः इसको और दांतों के अन्य सम्पूर्ण रोगों को उसी समय आरोग्यता प्राप्त हो सकती है जिस समय विकृत द्रव्य शरीर में बनना बन्द हो जावे। जिस समय कि दांत खोखले हो गये हैं अथवा गल गये हैं तो यह निश्चित है कि वह नये नहीं किये जा सकते, परन्तु यह सदैव ही उत्तम है कि उन खूंटियों को जबड़े में ही छोड़ देवें। प्रकृति ऐसे दांतों को शरीर के लिये उपयोगी बनाने में मानवीय बुद्धि की अपेक्षा अधिक समर्थ है। जो दांत गिरने से सुरक्षित रक्खे जा सकते हैं उन्हें रखा जाये, जिससे वे भोजन को जिस समय तक सम्भव हो भली

१—उन स्थानों में जहां कि धूप सही न जा सकती हो अथवा अधिक गर्म ऋतु में यह उचित होगा कि ऐसी धूप में न टहलें, । ठंडे देशों और शरद ऋतु में तो यह अवश्य ही उपयोगी होगा।

भाँति चबाने के लिये काम देने योग्य रह सकें। अधिक से अधिक उन हिलते हुये दाँतों को जो चबाने में बाधा डालते हों उखड़वा देना ही उचित है और यदि सम्भव हो तो उनकी जगह कृत्रिम दांत लगा देने चाहिये। मेरे नियम के सम्बन्ध में सड़न[1] और उबाल की सत्यता का यह अत्युत्तम प्रमाण है कि सब से प्रथम दांत ही गलने वा पीड़ा करने लगते हैं, क्योंकि केवल दांत की ही ऐसी हड्डियाँ हैं जो शरीर से निकली हुई हैं—और त्वचा से ढकी हुई नहीं हैं। जब कि हम सड़न वा उफान की उस मुख्य क्रिया को जो कि विजातीय द्रव्य में प्रायः हुआ करती है ध्यान में लाते हैं तो यह प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि इन निकली हुई हड्डियों पर विशेषतः उफान व सड़न की कार्यवाही का प्रभाव पड़ेगा। ऐसा सदैव अन्तिम भागों में ही होता है। वास्तव में दांत ही ऐसे अन्तिम भाग हैं जिनमें उफान वा सड़न की कार्यवाही बहुत ही तेजी के साथ आरम्भ होती है। यदि वह त्वचा से ढके हुए होते—तो विकारी द्रव्य प्रथम त्वचा पर ही अपना प्रभाव डालता।

प्रतिश्याय (जुकाम)—यह वायु-नालियों की एक सामान्य जलन है और प्रायः उसका कारण 'शीत का लग जाना' कहा जाता है। मैंने इसी पुस्तक के पहिले भाग में इसका वर्णन किया है। शीत के लग जाने से केवल उन्हीं मनुष्यों में रोग उत्पन्न हो सकते हैं जो विकारी द्रव्य से पूरित हैं। निरोगी मनुष्यों में वह कदापि नहीं होते। जुकाम भी दांत पीड़ा के समान इस बात का प्रमाण है कि शरीर के जुकाम से सम्बन्धित अंगों में पहिले से ही विकारी द्रव्य उपस्थित है जो प्रायः फेफड़ों में[2] उपस्थित होने के पश्चात् उनमें आता है। अतः यह एक प्रकार की फेफड़ों को शुद्ध करने की कार्यवाही है।

मेरी चिकित्सा की रीति के कार्यान्वित करने से और सदा ताज़ा वायु में चिरकाल तक रहने तथा खिड़कियाँ खोल कर सोने से, जुकाम शीघ्र ही असहनीय

१—यह नियम केवल इसी पुस्तक में बतलाया गया है; कि विकारी द्रव्य के ठहरने और उफान में आने से विकार जनक द्रव्य सारे शरीर में फैल जाता है जिससे बहुत प्रकार के रोग पैदा होते हैं।

२—अर्थात् विजातीय द्रव्य प्रथम फेफड़ों में मौजूद रहता है और वहां से उफान खाकर वायु को नालियां अथवा दाँतों में पहुँचता है जिससे जुकाम और दांतों की पीड़ायें उत्पन्न होती हैं।

स्वाभाविक दशा का त्याग कर देता है। वह बिना कष्ट दिये ही बहने लगता है और शीघ्र ही बिलकुल दूर हो जाता है।

इन्फ़्लूएनज़ा* की भी यही दशा है। सम्पूर्ण पाठकों को सन् १८६० ई० की इन्फ्लूएनजा की महामारी भली प्रकार स्मरण होगी। मैं धर्म्म से कह सकता हूँ कि उस समय मेरी चिकित्सा से अति उत्तम फल प्राप्त हुए, चाहे उन पर रोग के कठोर आक्रमण हुए हों वा सामान्य। फ्रिक्शन हिप और सिटज बाथ्ज और समस्त शरीर के स्थानीय स्टीम बाथ्ज का प्रभाव भली भाँति सिद्ध हो गया था। एक उचित और अनुत्तेजक प्राकृतिक भोजन भी सेवन किया गया था। इस रोग में मन्द पाचन-शक्ति भी संग-संग थी। अन्य रोगों के समान इस का भी वही वास्तविक कारण था और पेड़ू में विजातीय द्रव्य के एकत्रित हो जाने से उत्पन्न हुवा था। इस प्रकार हमको उस ज्वर का भी कारण मिलता है, जो इन्फ्लूएनजा में होता है। शीत पहुँचाने वाले स्नानों के पश्चात आश्चर्यजनक शीघ्रता से चित्त में उन्नति हुई थी। विकारी द्रव्य जो ऋतु (मौसम) के बदलने के कारण उफान पर आया था शरीर से शीघ्र ही निकल गया था। अति शीघ्र स्वस्थता प्राप्त हुई। वे प्रायः एक ही दिन में स्वस्थ हुए। उन भयानक रोगों के आये बिना, जो औषधियों के सेवन के पश्चात् हुआ करते हैं।

कंठ रोग—मुझे गत कई वर्षों में इस बात के देखने का अवसर मिला कि कंठ रोग कैसी शीघ्रता से बढ़ते हैं, रोगियों की उस बड़ी संख्या से प्राप्त हुवा, जो इस प्रकार के रोगों की चिकित्सा कराने मेरे पास आए। औषधि द्वारा चिकित्सा करने वाले लोग सर्वदा इन रोगों की स्थानिक (जुक़ामी) चिकित्सा कर के आरोग्य करने का यत्न करते हैं। ऐसा करने से दोष पुराना हो जाता है। कारण यह है कि विकार-जनक वस्तु को भीतर प्रवेश करा देने से लाभ नहीं होता।

कण्ठ-रोग विकारी द्रव्य के आन्तरिक भार को प्रकट करते हैं। विशेषतः फेफड़े के दोषों से कण्ठ-रोग हुआ करते हैं। कण्ठ-रोग प्रायः माता पिता से प्राप्त हुए (पैतृक) विकारी द्रव्य के कारण हुआ करते हैं।

---

*यह एक प्रकार की जुकाम की महामारी है जिसमें अत्यन्त निबलता और कष्ट होता है। शरीर के अङ्गों में पीड़ा और ज्वर भी होता है—और साधारण जुकाम के सारे ही लक्षण उसमें दिखाई पड़ते हैं।

इन रोगों में विजातीय द्रव्य उफान खाता हुआ नीचे से उठता है। और क्योंकि एक प्रकार से ग्रीवा (गर्दन) धड़ और शिर के मध्य में एक सङ्कीर्ण (तङ्ग) मार्ग के समान स्थित है इस कारण यह बहुत अवरोध करता है। इसलिये शिर के रोगों में सब से प्रथम गर्दन को ही हानि का पहुँचना आवश्यक है। इस कारण—मुखाकृत विज्ञान के अभिप्राय से ग्रीवा की दशा मुख्यतः दृष्टव्य है।

कण्ठ-दोषों का निवारण करना (चाहे वाणी का बैठना – कण्ठ अथवा लरिन्क्स Larynx व फेरिक्स Pharynx की जलन हो वा उनका कुछ और नाम हो, सब की सब विकारी द्रव्य को लक्षणों पर ही निर्भर है। माता-पिता से प्राप्त (पैतृक) जीर्ण दशाओं की चिकित्सा में महीनों वह वर्षों लग सकते हैं परन्तु प्रत्येक दशा में मेरी चिकित्सा को प्रशंसनीय सफलता प्राप्त हुई है।

घेंगा—यह सत्य है कि घेंगे का रोग पहाड़ी स्थानों में और प्रायः मुख्य-मुख्य जिलों में ही होता है। यह प्रसिद्ध रोग विशेषतः उन भारी-भारी बोझों के कारण होना बतलाया जाता है जो पहाड़ों के निवासी बहुधा उठा कर चलने के अभ्यासी होते हैं। सत्य है कि बाहरी दबाव शरीर के ऊपर—अर्थात् बारम्बार भारी बोझ का उठाना– घेंगे के प्रकार के रोग उत्पन्न कर सकता है। परन्तु इस रोग के कारण तो नितान्त ही भिन्न हैं। पहाड़ों का देखने में स्वच्छ और निर्मल जल प्रायः हानिकर प्रभाव पैदा करता है। मिट्टी वा पाषाणों के खड्डों में होकर बहने के कारण यह प्रायः धातु के तत्व को (सीसा, ताँबा आदि) उठाता हुआ चलता है। वह धातु का तत्व यद्यपि कठिनाई से दिखाई देता है परन्तु उसमें मनुष्य के शरीर में बाधा डालने की योग्यता होती है। विशेषतया उस समय जिस समय कि ऐसे जल का सेवन लगातार पीने में किया जावे। यह बात बड़ी सीधी रीति से समझ में आसकती है। यदि इस जल को जो देखने में निर्मल है धूप में किंचित समय को रख दिया जावे तो शनैः शनै तह में कोई वस्तु बैठ जाती है। यह अनावश्यक द्रव्य (फ़ारन मैटर) यदि शरीर में बैठे तो एक विशेष अंग में बैठता है और घेंगे के बनने में सुगमता उत्पन्न करता है।

स्वाभाविक रीति से वे मनुष्य इस रोग से सुरक्षित रहते हैं जिनमें कि उनके अपने शारीरिक स्वभाव के कारण ही विकार जनक द्रव्य (फ़ारन मैटर) बहुधा पसीने के रूप में बराबर निकलता रहता है। परन्तु जहाँ यह दशा नहीं है और नियम के विरुद्ध जीवन व्यतीत किया जाता है अथवा पाचन शक्ति मन्द है तो विकारी द्रव्य का निकलना साधारण रीति से बन्द हो जाता है। जल से भीतर के न पचने वाले परमाणु उफान व सड़न के दोष उत्पन्न करते हैं। विकारी द्रव्य ऊपर की ओर

उठता है, ग्रीवा में समाकर वह कुरूपता जिसको घेंगा कहते हैं उत्पन्न करता है। जब कि घेंगा बाहर की ओर होता है—और ग्रीवा को स्थूल कर देता है तो कुछ पीड़ा नहीं होती, और सन्मुख और इधर उधर की सूजन से किंचित ही व्याकुलता होती है। ऐसी दशा में बहुत कम भय होता है—परन्तु यदि इस सूजन के कारण श्वास लेने वाले अंगों की क्रिया में बाधा हो तो प्रायः भयानक दशा हो जाती है।

उस जल के प्रभाव से जिसमें कि अधिकतर हानिकारक पदार्थ मिश्रित रहते हैं उन मनुष्यों की दशा में जिनके जीवन व्यतीत करने की रीति सरल और शांति मय है इस प्रकार की सूजनों के बनने में सहायता पहुँचती है। और मनुष्यों में जिनके मस्तिष्क में उफान हुआ करता है यही मिराक़ (उन्माद रोग) उत्पन्न कर देता है।

यह विचार करना भ्रम है कि ताज़ा (और बर्फ) के समान शीतल जल स्वास्थ्यप्रद है। जल में अन्य पदार्थों का मिश्रित रहना ही उसके न पचने के लक्षण को भली भाँति प्रकट करता है। विचार पूर्वक देखने से यह बात ज्ञात हुई है कि प्रवाहित जल जो धूप से गर्म हुआ है, और वर्षा का जल—दोनों ही मनुष्यों के पान करने के लिये अत्युत्तम और लाभप्रद हैं। कोई कोमल पेड़ और पुष्पों के वृक्ष ऐसे टट्के जल में जिसमें अन्य खनिज-पदार्थ मिश्रित हों भली भाँति बढ़ते और फूलते फलते नहीं। इस प्रकार का जल केवल सूर्य की धूप की रासायनिक क्रिया से ही उस हानिकारक और न पचने वाले विकारी द्रव्य से जो उसमें उपस्थित है शुद्ध करके मनुष्यों के पान करने के योग्य बनाया जा सकता है।

मनुष्य को उसकी नेचर (प्रकृति) जल पान करने के लिए विवश नहीं करती है। सादे और स्वाभाविक भोजन से कभी तृषा उत्पन्न नहीं होती, परन्तु जिस समय तृषा लगे तो ताज़ा और रस वाले फलों को ही जल पर विशेषता देनी उचित है।

इस विषय को समाप्त करने के लिये अन्त में निम्नलिखित चिकित्सा का जो मैंने एक बार की थी, वर्णन करता हूँ—

एक स्त्री कई वर्ष से आमाशय के दोष से पीड़ित थी। अन्त में एक घेंगा बनना आरम्भ हुआ जिससे शनैः शनैः श्वाँस लेने की क्रिया में अत्यन्त कष्ट होने लगा। मेरी चिकित्सा रीति के ग्रहण करने पर विशेषतया—फ्रक्शन सिट्ज़बाथ्ज़ की क्रिया करने पर श्वाँस लेने की पीड़ा कम हो गई और एक सप्ताह में ही विकारी द्रव्य का लौटना आरम्भ हो गया। त्वचा की सूजन भी बहुत मुलायम तथा आकृति में कम हो गई। द्वितीय सप्ताह में घेंगे का कोई चिह्न तक शेष न रहा।

शिर पीड़ा माईग्रेन

आधे शिर की पीड़ा से ग्रस्त होना (आधा सीसी)

मस्तिष्क का क्षीण हो जाना और

मस्तिष्क की जलन

साधारण दशा में इस अवसर पर कुछ उन दोषों का जिनको औषधि द्वारा चिकित्सा करने वालों ने बड़ी विद्वत्ता से विभाजन किया है एक ही स्थान पर रखना अनुचित प्रतीत होगा। मैं बता चुका हूँ कि मनुष्यों का यह स्वभाव है कि वे सर्वदा रोग के कारण को उसी स्थान में ढूंढा करते हैं जहां पीड़ा हुआ करती है। परन्तु विशेषतः शिर के रोगों की दशा में यह बड़ा भारी भ्रम है, क्योंकि सदैव इनका कारण उदर (पेट) के निम्न भाग (पेड़ू) में होता है। यह रोग पेड़ू में उत्पन्न होने के वर्षों पीछे शिर में प्रतीत होते हैं। वह मनुष्य जो मेरे मुखाकृति विज्ञान के विद्वान हैं ऐसे रोगों के वास्तविक प्रगट होने के बहुत काल पहिले ही उनके आगमन और उत्पन्न और होने को जान लेते हैं। आधे शिर में बांई अथवा दाहिनी ओर पीड़ा होने का झुकाव, मस्तिष्क की सूजन, और मस्तिष्क का क्षीण होना भी इसी प्रकार वर्षों पहिले जाना जा सकता है। अनुभव से भली भांति ज्ञात हुआ है कि जिस समय विकार-जनक द्रव्य शरीर में दक्षिण अथवा वाम पार्श्व में उपस्थित हो और शिर की ओर उठकर मस्तिष्क में पहुँचता हो तो आधासीसी उत्पन्न होती है। शिर के बड़े-बड़े रोग जो स्वाभावतः मस्तिष्क की जलन या मस्तिष्क के क्षीण होने के रूप में प्रगट होते हैं, विजातीय द्रव्य के पीठ की ओर एकत्र होने के कारण हुआ करते हैं। सदैव यह देखा गया है कि उन मनुष्यों को जिनको शिर के रोग होते हैं प्रायः वर्षों पहिले से पाचन-शक्ति क्षीण हो जाती है जो कब्ज या मल के सूखेपन के रूप में विशेषतया प्रागट होती है। हमको प्रायः इसके पश्चात् मस्सों की पीड़ा (अर्श, बवासीर) और पेड़ू के भीतर की

प्रत्येक प्रकार की गुमड़ियाँ दिखाई देती हैं। आजकल हम बालकों को भी इसी दशा में पाते हैं। किसी-किसी समय पेड़ू के भीतर की रसौलियां अचानक लोप हो जाती हैं और उस मनुष्य को तत्काल शिर के रोग हो जाते हैं। ऐसी दशा में ध्यान से देखने वाला मनुष्य समस्त नियत परिवर्तनों को शिर में होता हुआ पायेगा वह रसौलियां जो प्रथम पेड़ू के भीतर मिलती थीं अब शिर में प्रगट होती हैं और प्रथम की अपेक्षा बहुत ही छोटी और इसी कारण विशेष कड़ी होती हैं। बहुत से रोगियों में यह गुमड़ियां शिर के पिछले भाग पर या शिर के दक्षिण या वाम ओर बाहर से देखी जा सकती हैं, और छूने से ज्ञात हो सकती हैं।

शरीर सदैव ही इस योग्य नहीं होता कि उन गुमड़ियों के भीतर के विजातीय द्रव्य (फ़ारैन मैटर) ग्रींवा (गर्दन) के समीप, बग़लों में या छाती पर एकत्रित होकर इन अङ्गों में रसौलियाँ उत्पन्न कर देगा। परन्तु यह विचार कर लेना उचित नहीं है कि मवाद शरीर के भीतर ही भीतर कड़ी और गोल गुमड़ियों के आकार में चलता है। इसके विरूद्ध शरीर उस विजातीय द्रव्य को असाधारण वायु की आकृति में बना देता है और कपूर की तरह उड़ जाने वाला और एक स्थान से दूसरे स्थान जाने की योग्यता रखने वाला बना देता है। शरीर के भीतर[१] उबाल के नियमानुसार, रसौलियों का विकार जनक द्रव्य, शरीर के भीतर किसी अङ्ग से बिना रुके हुये, शरीर के अन्तिम भागों की ओर को जाता है, अतः वह शिर की ओर जाता है। यदि अब फिर मवाद इकट्ठा हो जाय और शिर के भीतर गिलटियाँ और गाठें उत्पन्न कर देवे तो वह दशा हो जाती है जिसको डाक्टर लोग—कन्जम्पशन आफ़ दी ब्रेन अर्थात् मास्तिष्क क्षय रोग कहते हैं। प्रथम तो हम को केवल मस्से और रसौलियाँ पेड़ू के स्थान में और विशेष कर जंघाओं में मिलती थीं। अब हम को गिलटियाँ या दाने मस्तिष्क में मिलते हैं—वह तरीका जिससे आरोग्यता प्राप्त होती है संग ही सङ्ग मेरे कथन की सत्यता को भी प्रमाणित करता है। मेरे स्नानों द्वारा विकारजनक वस्तु को जड़ से निकालने के प्रभाव से यदि मास्तिष्क के भीतर की गिलटियाँ हटादी जाँय और लौटने की दशा में पुनः लेई जावें तो प्रथम हमको उन गिलटियों का शिर से लोप होना ज्ञात होगा। इसके पश्चात् वे मस्सों की नांई या पेड़ू की अन्य गिलटियों की नांई—अर्थात् पुनः अपने

[१] अर्थात् विकारजनक द्रव्य में शरीर के भीतर उफ़ान (जोश) लाने की जो क्रियायें हैं।

वास्तविक रूप में मिलेंगी। जब यह गिल्टियाँ पूर्णतया हटा तथा निकाल दी जाती हैं तो शिर की पीड़ा नष्ट हो जाती है। उपरोक्त कथन से यह समझ लेना उचित नहीं है क प्रत्येक बवासीर के रोगी की तबियत अवश्य ही शिर पीड़ाओं की ओर झुकेगी—अथवा प्रत्येक प्रकार के मस्सों के रोग अवश्य शिर पीड़ा को उत्पन्न करेंगे। कभी-कभी मैंने बवासीर के ऐसे रोगियों की चिकित्सा की है कि जिनको आयु भर में कभी भी शिर पीड़ा न हुई थी। यह एक ऐसी बात है जो केवल विकृत द्रव्य के भार में अन्तर होने के कारण होती है।

जब कि विकृत द्रव्य सामने अथवा दाहिनी ओर बांई ओर वर्तमान होता है तो रसौलियाँ प्रायः शीघ्र ही शिर की ओर प्रत्यागमन नहीं करतीं हैं। प्रत्येक दशा में यदि ऐसा हो भी तो भी वह गुमड़ियों और सिल के दानों के समान ग्रीवा और फेफड़ों में प्रकट होंगा। ऐसे रोगी उन रोगियों की अपेक्षा जिनमें विकार जनक द्रव्य के पीठ की ओर उपस्थित होने से ऐसी एकत्रिता होता है शीघ्रता से आरोग्यता प्राप्त कर सकते हैं। मुखाकृत विज्ञान द्वारा हम वर्षों पहिले ही उस मार्ग को ज्ञात करलें जिससे रसौलियाँ या विकार जनक द्रव्य शिर तक पहुँचेगा। अब यदि कोई रुकावट न हो और मस्तिष्क में एक बार दाने पड़ जावें तो मन की रुचि मस्तिष्क की जलन की ओर झुकेगा। इसके पश्चात् यदि किसी अकस्मात् कारण से एकदम ही बिगाड़ (सड़न वा जोश) हो, अथवा विकार जनक द्रव्य फैल जाये तो स्वभावतः बड़ा तीव्र ज्वर चढ़ आवेगा। ऐसी दशा में बड़े-बड़े डाक्टर वा वैद्य केवल मस्तिष्क की जलन बतावेंगे। परन्तु आरोग्यता के सम्बन्ध नितान्त विवश हो जावेंगे। पाठक गण उस सम्बन्ध को जो शिर के रोगों और उदर के निम्न भाग (पेड़ू) के रोगों के बीच में है स्पष्ट रीति से समझ लेंगे। मैं दृढ़ता से कहता हूँ कि केवल मस्तिष्क की जलन और मस्तिष्क के क्षीण होने की जड़ पेड़ू में नहीं है, वरन उसके समस्त छोटे छोटे रोगों एवम् हल्की से हल्की शिर-पीड़ा की भी। अन्तर केवल यह है कि पिछली दशा में पेट की व्याधा कुछ कम होती है—यह प्रायः पाचन शक्ति के केवल छोटे-छोटे दोष होते हैं। अतः शिर की पीड़ा का शीघ्र ही निवारण हो जाती है।

यह बात विशेष कर शिर के रोग, शिर की पीड़ा ग्रसित होने, आधा सीसी, शिर की पीड़ा, मस्तिष्क के क्षीण होने और मस्तिष्क की जलन की बाधाओं में ही है कि, मेरी चिकित्सा प्रणाली की सफलता स्पष्ट रीति से देखी जा सकती है।

अतः यह प्रगट है कि इन सम्पूर्ण रोगों का कारण एक ही है जिसका सम्बन्ध पेड़ू से मिलता है—नहीं तो यह सम्भव न था कि जब उनकी चिकित्सा, किसी स्थानिक चिकित्सा के बिना मेरे फ्रिक्शन बाथ और भोजन के द्वारा की जावे तो शीघ्र ही लोप होने आरम्भ हो जावें। विशेष कर शिर के रोगों की दशा में ऐसी सफलता के सङ्ग आरोग्यता होने का कारण, पूर्णतया यही है कि मेरी चिकित्सा-रीति रोग की जड़ तक पहुँचती है।

मैंने प्रायः देखा है कि शिर के दर्द और आधा सीसी एक ही फ्रिक्शन बाथ के कुछ अधिक समय तक लेने से प्रायः जाते रहे हैं। बहुत सी स्त्रियों ने तो जिन में कि विकारजनक द्रव्य योग्य स्थान में देखा गया है यह सुन कर कि उनको शीघ्र आरोग्यता प्राप्त हो सकती है मेरी हँसी उड़ाई। जिस बात का उनको पहिले विचार भी नहीं था—स्नान[1] के पश्चात् वे उसको समझने लगीं।

इसमें सन्देह नहीं कि वर्षों के पुराने शिर के रोग जो विकार-जनक द्रव्य के अधिक भार से उत्पन्न हुए हैं—शीघ्र आरोग्यता को प्राप्त नहीं हो सकते। विकार जनक द्रव्य को पीछे को लौटाना होता है। इस कार्य में सम्भव है कि रोगी को पुराने दर्द पुनः अपने शिर में सहने पड़ें। वास्तव में प्रायः स्नानों के कारण ही शिर में पीड़ा होने लगती है, क्योंकि विकार जनक द्रव्य लौटते समय शिर की रगों पर दबाव डालता है।

इस कथन को समाप्त करते समय मैं अपनी उपरोक्त बात की पुष्टि में एक दृष्टान्त का यहाँ वर्णन करूँगा।

एक मनुष्य—जैसा कि उसके चिकित्सक ने वर्णन किया, मस्तिष्क के क्षीण होने के रोग में ग्रसित था। वह कई प्रकार की चिकित्सा कर चुका था, परन्तु उसकी दशा निकृष्ट ही होती गई थी। पहिले उसको तीव्र शिर पीड़ा हुआ करती थी जो औषधियों के द्वारा दबा दी गई थी और उसकी दशा अब असहनीय थी। उसको मस्तिष्क की क्षीणता का रोग हो गया था। इस विवशता की दशा में उसने मेरी चिकित्सा आरम्भ की। उसकी पाचन-शक्ति अवश्य ही अत्यन्त मन्द हो गई थी, किन्तु शीघ्र ही चिकित्सा-काल में ही वह समुचित उन्नति करने लगी। मैंने बतलाया कि वह नित्य कई स्नान करे, स्वाभाविक साधारण भोजन करे और अधिक स्वेद (पसीना) लावे। मैं उसकी

१—अभिप्राय है फ्रिक्शन सिट्ज़ या हिप बाथ्ज़ से।

उस दशा को भी थोड़े दिनों को आरोग्य प्रदायक भयानक अवसरों से सुरक्षित रखने में असमर्थ रहा जो प्रायः प्राप्त हुए—और विशेषतः उस समय जब कि रसौलियाँ लोप हुईं। आरोग्यता के इन भयानक अवसरों के पश्चात् रोगी को सदैव बहुत ही अधिक सुधार दिखाई देता था और दो मास की चिकित्सा के पश्चात् ही उसका रोग पूर्णतया जाता रहा।

टाईफ़स-पेचिश

विशूचिका अर्थात हैज़ा, अतिसार

टाईफ़स[1] या स्नायु का ज्वर विशेष कर मनुष्यों को ठीक युवावस्था में सताता है। प्रायः हृष्ट-पुष्ट और मोटे-ताजे शरीर धारी मनुष्यों पर इसका आक्रमण होता है। सम्पूर्ण ज्वरों में यह अति ही तीव्र ज्वर है और इसीलिये अति प्रबल क्यूरेटिव क्राईसिस अर्थात् शरीर को स्वस्थ करने का अवसर लाता है। इस रोग से सम्पूर्ण मनुष्य भयभीत होते हैं और प्रचलित चिकित्सा से इस रोग में बहुत से मनुष्य मृत्यु को भी प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु मेरा न्यूसाईंस आफ़ हीलिंग अर्थात् (मेरी नवीन चिकित्सा रीति) इस रोग की भयानक वास्तविकता (गुण) को नष्ट कर देती है। जिस समय कि विकारी द्रव्य की एकत्रिता अधिक हो तो केवल उसी दशा में यह निश्चय नहीं हो सकता कि शरीर आरोग्यता उपलब्ध करने के इस अवसर को सहन कर सकेगा, परन्तु यदि हम अपनी रीति से ठंडक पहुँचाने वाले स्नानों के लेने के पश्चात् स्वाभाविक रीति से रोगी को स्वेद (पसीना) लाने में सफलता प्राप्त करें तो फिर कोई भय नहीं रहता। टाईफ़स के उन कठिन रोगियों में जिन की मैंने चिकित्सा की है यह प्रायः देखा गया है कि जहाँ डाक्टरी चिकित्सा में कई सप्ताह या मास व्यतीत हुए होते—मेरी रीति के अनुसार चिकित्सा करने पर प्रारम्भिक दिनों में ही वह मैदान में बराबर प्रतिदिन टहल सके थे।

अनुभव द्वारा सिद्ध हुआ है कि सम्पूर्ण तीव्र रोगों में। जैसे कि टाईफ़स-इनफ्लूएन्जा आदि में मेरे स्टीमबाथ बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुए हैं, परन्तु रोगी की दशा के अनुसार ही इन बाथों का लेना उचित है। यह न तो बहुत देर तक और

१—वैद्य और डाक्टरों के विचार में यह एक छूतदार ज्वर है जोकि १४ से लेकर २१ दिन पश्चात् उतरता है। यह प्रायः अकाल के दिनों में हुआ करता है, इसमें रोगी कुछ बेहोशी की दशा में पड़ा रहता है। उसके शरीर पर काले रंग के बिंदु प्रकट हो जाते हैं। इस ज्वर में प्राय १०० में २० रोगी मर जाते हैं। रोगी अंत में बेहोश होकर मर भी जाता है।

न बार-बार लेने चाहिये।[१] फ़िक्शन हिप और सिट्ज़ बाथ बारी-बारी से देना चाहिये। अतः हम देखते हैं कि टाईफस भी अनेक आवश्यक बातों में उसी नियम पर अग्रसर होकर उसी चिकित्सा की वांछा रखता है जिसकी कि सम्पूर्ण अन्य रोग। प्रत्येक रोगी की चिकित्सा में उसकी दशा का विचार रखना अत्यन्त ही वांछनीय है।

मेरी चिकित्सा के रीत्यानुसार बहुत काल से चिकित्सा करने वाले एक मनुष्य ने मुझे लिखा कि उसने टाईफस और शीतला के दो कठिन रोगियों की चिकित्सा में एक स्टीमबाथ और तीन फ्रिक्शन हिपबाथ—और सिट्ज़बाथ के द्वारा जो अधिक समय तक लिये गये थे ऐसी सफलता प्राप्त की कि रोगी अपने-अपने बिस्तर से उठ कर बाहर जा सके। छः दिन में ही रोग के समस्त चिह्न जाते रहे और एक दाग़ भी शेष न रहा। टाईफस के बहुत से रोगियों की दशा में जिनकी कि मैंने चिकित्सा की, 'रोग ने जो मार्ग ग्रहण किया बार-बार लाभदायक सिद्ध हुआ। जहाँ कहीं शरीर, औषधियों के सेवन से पूर्व ही अति निर्बल हो गया था। और उसको प्रायः हानि पहुँच चुकी थी तो आरोग्यता स्वभावतया अति कठिन हो गई थी।

हैज़ा-पेचिस—इन रोगों में भी ऐसी ही सफलता के परिणाम प्राप्त हुए हैं। यह दोनों रोग 'पाचन-शक्ति में अधिक बाधा डालते हैं और इनके संग आन्तरिक तीव्र ज्वर भी हुआ करता है। मैंने बहुधा देखा है कि हैजे में यह ज्वर ऐसा तीव्र होता है कि शरीर भीतर से जलकर बिल्कुल काला हो जाता है। जैसा कि उन रोगियों के होंठ—नासिका—और नेत्रों के वर्ण के बदल जाने से ज्ञात होता है जो इस रोग से मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

हैजा और पेचिस केवल उन्हीं मनुष्यों पर आक्रमण करते हैं—जिनका शरीर विकारजनक द्रव्य से अत्यन्त पूरित होता है। अतः यह बात केवल आकस्मिक ही नहीं है कि किसी मनुष्य को यह रोग हो जाता है और किसी को नहीं होता। मैंने हैजे और उसके सम्बन्धी रोगों का विस्तार पूर्वक वर्णन अपनी एक छोटी-सी पुस्तक में अलग किया है। मैं यहाँ उसी की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करता हूँ।

जैसा कि अनुभव द्वारा पूर्णतः सिद्ध होता है कि समस्त मनुष्य जिनको हैजा

१—अभिप्राय है कि टाईफस ज्वर वाले रोगी को हिप बाथ और सिट्ज़ बाथ बारी-बारी से नित्य देने चाहिये अर्थात् एक बार सिट्ज़बाथ तो दूसरी बार हिपबाथ दोनों के बीच में कुछ घंटों का अन्तर होना चाहिये।

होता है चिरकाल से पाचन-शक्ति की असाधारण बाधा में ग्रसित होते हैं; विशेषकर अजीर्ण (कब्ज) में। अतः पेचिश और हैजे के रोगियों को रोग के प्रकट होने से पूर्व अन्य किसी योग्य लक्षण के दीख पड़ने से भी पूर्व शरीर में एक प्रकार की व्याकुलता और बोझ-सा प्रतीत होता है। यह[1] तीक्ष्ण उत्तेजना आरम्भ होने का चिह्न है।

मेरी सम्मति में हैजा एक बहुत ही उत्तम समय, शरीर के शुद्ध और पवित्र करने के लिये हमें उपलब्ध है। विकारजनक द्रव्य किसी वाह्य कारण जैसे ऋतु परिवर्तन, सर्दी के लग जाने, भय, मन की उत्तेजना, इत्यादि से उत्तेजित होकर अर्थात् भड़कर अपने पहले—मार्ग की ओर अर्थात् पेड़ू की ओर बलपूर्वक लौटने लगता है। विशेषतया उस समय जब कि त्वचा अपनी क्रिया न करती हो यदि जीवन-शक्ति उस समय भी पूरी शक्ति रखती है तो इस कठिन समय पर भी विजय प्राप्त कर सकते हैं और वह रोगी एक अति उत्तम आरोग्यता को उपलब्ध कर लेगा। यदि इसके विरुद्ध किसी समय औषधियों द्वारा चिकित्सा करने से शरीर में आरोग्यता उपलब्ध करने की शक्ति निर्बल हो गई है तो शरीर इस आरोग्यता के उपलब्ध करने के समय को सहन नहीं कर सकेगा।

इस ज्वरयुक्त उफान की क्रिया में चाहे हैजे की दशा में, चाहे उससे कम भयानक पेचिश की दशा में, एक ऐसी अद्भुत क्रिया होती रहती है जैसी कि उसी दशा में अन्यत नहीं देखी जाती। इस समय भीतर के ज्वर की गर्मी सामान्यता पाचक अंगों में एकत्रित हो जाती है। अतः भीतर की ओर तो अत्यन्त गर्मी होती है और बाहर की ओर ठण्ड जान पड़ती है।

इन रोगों की चिकित्सा में प्रथम कार्य्य यह है कि भीतर की अत्यन्त गर्मी को कम किया जावे—और इससे बढ़ कर यह कि रोगी को स्वाभाविक रीतियों से स्वेद (पसीना) लाया जावे। जब कि शरीर में उस अत्यन्त भयानक आन्तरिक गर्मी के दबाने के लिये आवश्यक जीवन-शक्ति उपस्थित हो तो आरोग्यता शीघ्र ही होगी। बहुत से रोगी अत्यन्त आन्तरिक ज्वर के कारण बाहर की सर्दी को कठिनता से ज्ञात कर सकते हैं। ऐसे रोगी बहुत ही भय में होते हैं।

मैंने १८४९ तथा १८६६ में लिपजिग देश में हैजै की महामारी के समय बहुत से रोगियों को ध्यान से देखा है। मुझे ठीक-ठीक वह मार्ग स्मरण है जो रोग ने

१—अर्थात् विकारजनक द्रव्य में जोश आवेगा।

ग्रहण किया—और मैं अब उसको भली भाँति समझा भी सकता हूँ। वे रोगी जिनके शरीर ने ज्वर को शरीर के ऊपर प्रगट कर दिया बच गये, परन्तु वह सम्पूर्ण रोगी जिनके शरीर के ऊपर ज्वर बहुत ही कम प्रगट हुआ—मृत्युलोक को सिधारे। मैंने एक स्त्री को दिन के ग्यारह बजे अपने बालक सहित चुपचाप आंगन में टहलते हुए देखा, परन्तु दो बजे उसका जनाजा घर से निकला—उसकी दशा में उस के शरीर ने हैजे की उत्तेजना का[1] मुकाबला (सामना) करने में किंचित् भी यत्न नहीं किया। वह स्त्री अवश्य विकारजनक द्रव्य से अत्यन्त पूरित थी। नाक की नाक का—होठों और आँखों का काला रंग हो जाने से यह ज्ञात होता था कि उसके पेड़ू में अत्यन्त भयानक सड़न अवश्य रही होगी।

सब से उत्तम साधन ऐसे कठिन रोगियों को शीघ्र आराम करने के लिये मेरे फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ्ज़ हैं। साथ ही साथ वह जीवन-शक्ति को भी उन्नति देते हैं। पेड़ू के स्टीमबाथ्ज़ भी बहुत लाभदायक सिद्ध हुए हैं। उनके पश्चात् तत्काल ही एक फ्रिक्शन सिट्ज़ वा हिप बाथ—अवश्य ही लेना उचित है। यदि सम्भव हो तो एक सनबाथ (अर्थात् धूप में एक मुख्य प्रकार से लेटना) शरीर को गर्म करने के लिये उस समय तक लिया जावे जब तक कि फिर स्वेद न आ जावे। जब कि सनबाथ्ज़ न लिये जा सकें तो रोगी को बिस्तर पर भली भाँति उढ़ाकर लिटा देना उचित है ताकि स्वेद आ जावे। बहुत से समयों पर कुछ शीत पहुँचाने वाले स्नान—इस बात के लिये पर्याप्त होते हैं कि रोगी भय से निकल जावे। भोजन स्वाभाविक अनुत्तेजक सेवन करना ही योग्य है। पेचिश में भी मेरे स्नान चिकित्सा-की अन्य विधियों के साथ बड़े ही लाभदायक हैं।

थोड़े से फ्रिक्शन सिट्ज़—और—हिपबाथ और—एक स्टीमबाथ पेचिश के आराम करने के लिये पर्याप्त होते हैं। परन्तु यदि यह पर्याप्त न हों तो निम्नलिखित मार्ग ग्रहण करना चाहिये—कठिन दशाओं में इसको तुरन्त ग्रहण करना उत्तम होगा। एक ईंट गर्म करके ऊनी कपड़े में लपेट कर गुदा के नीचे रख दो। यह आश्चर्य की बात है कि ऐसा करने से शीघ्र दस्त बन्द हो जाते हैं। कुछ घण्टों के पश्चात् एक फ्रिक्शन सिट्ज़बाथ—लेना उचित है और उसके पश्चात् गर्म ईंट फिर रखनी चाहिये।

१—अर्थात् उस उफान का जोकि हैज़े के रोग की दशा में विकार द्रव्य में उत्पन्न होता है।

इस प्रकार उन रोगियो की जान बचाना सम्भव है जो दूसरी दशा में मर गये होते। वह मनुष्य जो ऐसे कठिन भयानक समयों को सफलता पूर्वक पार कर जाते हैं सदैव बहुत अच्छे रहते हैं।

वस्तुतः संसार में यह अनुभव सम्पूर्ण मनुष्यों का है जो हैजे के रोग में ग्रसित होकर बच गये हैं। उनको ऐसा ज्ञात होता है कि वे एक दुःखदाई बोझ से बच गये हैं, क्योंकि पहिले के सम्पूर्ण विकार जनक द्रव्य का बोझ जाता रहा। मुखाकृति विज्ञान से हमको विकारजनक द्रव्य में विचित्र-न्यूनता प्रतीत होती है। वास्तव में यह विचारने योग्य है कि इतने थोड़े दिनों में ही शरीर की सम्पूर्ण दशा किस प्रकार परिवर्तित हो सकती है।

परन्तु चूंकि हैज़ा सदैव ही आरोग्यता प्राप्त करने का एक भयानक समय है—इसलिये प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि इस रोग से बचने के लिये सदाही यत्न शील रहे। दुर्भाग्यवश अद्यावधि यह ज्ञात नहीं हुआ—कि इस विषय में क्या करना उचित है।।केवल मेरी ही विद्या द्वारा अब यह सम्भव है कि विकारजनक वस्तु की सब प्रकार की एकत्रिता को समझ लिया जाय। यहां तक कि उसकी अति भयानक और अनुचित दशा भी जो किन्हीं दशाओं में आरोग्यता के समय, हैजे के सदृश उत्पन्न करे—उससे जान लेना संभव है।

हिन्दुस्तान और उसके आगे के भागों से गत वर्षों में मेरी चिकित्सा-विधि के अनुसार हैजे की चिकित्सा की सफलता की सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं—मेरे (नये आविष्कृत) स्नानों से बहुत ही गर्म देशों में इन रोगों से बचने के लिये अनुत्तेजक और गर्मी न करने वाले भोजन अत्यन्त ही लाभदायक हैं। पुराने बुखारों यथा हैज़ा पेचिश इत्यादि में यह भोजन अद्भुत प्रभाव रखता है, अतः उन मनुष्यों को जो गर्म देशों में निवास करते हैं ऐसे भोजन के सेवन करने में यदि इस समय वहाँ उसका सेवन न हो रहा हो कोई भय नहीं करना चाहिये। केवल इस की परीक्षा कीजिये।

अतिसार-वमनयुक्त (अर्थात् दस्त और कै भी जोकि बाल्यावस्था में बहुत हुआ करता है और हैजे कि समान ही है)—यह रोग प्रायः उन बच्चों को हुआ करता है जिनका पालन दूध की बोतल[१] के द्वारा किया गया है—और जिनमें विकारजनक द्रव्य का बोझ

१—अर्थात् बोतल के द्वारा दूध पिलाकर —अभिप्राय यह है कि जिनका पालन माता या धाय के दूध से नही हुआ।

है। इसकी चिकित्सा वही है जो हैजे की दशा में। बच्चे को स्वेद माता या पिता के पास बिस्तरों में अत्यन्त सुगमता से आवेगा।

साधारण डायरिया—साधारण डायरिया भी वास्तव में निम्न श्रेणी की पेचिश और हैजा ही है। मैंने वर्षों तक देखा है कि पुष्ट मनुष्यों को भी ऋतु परिवर्तन के समय पर अतिसार (दस्त) के दौरे हुआ करते हैं।

डायरिया—चाहे कितना ही कम क्यों न हो—शरीर की आरोग्यता उपलब्ध करने के तीव्र परिश्रम से कुछ न्यूनाधिक नहीं है और सदैव ही एक उत्तम चिह्न है। इसलिये इसको एक उत्तम समय समझना चाहिये, जब कि वह दीर्घकाल तक जारी न रहे। ऐसे समय में वायु की उस बिजली की आकर्षण शक्ति से जो अभी ज्ञात हुई है अधिक सहायता मिलती है। प्रत्येक मनुष्य को जो ऐसे अवसरों का अनुभव कर लेता है पीछे से नये सिरे से जवानी ज्ञात होती है। अतः हम देखते हैं कि शरीर किस प्रकार से विकारजनक द्रव्य को ऋतुपरिवर्तन के समय निकालने का यत्न करता है।

यद्यपि अतिसार और कब्ज़ एक ही वस्तु के दोनों अन्तिम सिरे प्रतीत होते हैं, परन्तु पाठकों को आश्चर्य करना उचित नहीं, यदि मैं इन दोनों को केवल पाचन शक्ति को ही दोष बतलाऊँ।

यह बाधा असाधारण आन्तरिक गर्मी के कारण जो कि भोजन की अधिकता से होती है, हुआ करती है। ठीक एक ही कारण से एक मनुष्य तो स्थूल तथा दूसरा दुर्बल हो जाता है। अतः यही एक मनुष्य को तो अतिसार पैदा करे और दूसरे को कब्ज़।

यदि कठिन कब्ज फ्रिक्शन बाथ्ज—से न खुले तो उचित है कि मैदान में, विशेषतया जंगल या बन में शौच जावें. इस से यह जानकर आश्चर्य होगा कि सदवायु शरीर पर किस प्रकार से प्रभाव करती है। जो काम अंधेरे पाखाने में असम्भव था वही तट की वायु में सुगम हो गया।

मौसमी और गर्म देशों के

बुखार, मलेरिया[1] पित्त ज्वर, पीला ज्वर, जाड़ा व बुखार

इन ज्वरों का चाहे कोई भी नाम क्यों न हो—और हमको यह किसी रूप में भी क्यों न मिलें—इनके प्रकट होने और वृद्धि पाने का कारण विजातीय द्रव्य का सड़ना वा उफान खाना ही है। जब हम उष्ण देशों की असीम-ऋतु की दशा और दिन रात की गर्मी के अन्तर पर ध्यान देते हैं—तो इन गर्म देशों के ज्वरों की प्रबलता के कारण को शीघ्र समझ लेते हैं। इन ज्वरों की तीव्रता उसी हिसाब से बढ़ती है जितनी कि सड़न की कार्यवाही प्रखर और बलवती होती है। यह बात गर्म देशों में ही पाई जाती है—कि तीव्र ज्वर के फूटने के सर्वतः और सब से अधिक अनुकूल विवरण मिलते हैं, उन मनुष्यों में जिनके शरीर में विजातीय द्रव्य स्वल्प होता है। देश के साधारण भागों में जहाँ कि गर्मी अधिक नहीं पड़ती यह ऐसा तीव्र ज्वर कभी नहीं देखा जाता। प्राकृतिक रीति पर गर्म मुल्कों का ज्वर भिन्न-भिन्न रूपों में प्रगट होता है। पीला ज्वर सब से अधिक और अत्यन्त भयानक होता है। इसको पीला ज्वर त्वचा के उस पीले वर्ण के कारण जो रोग के समय हो जाया करता है कहते हैं। और बहुधा वह उन औषधियों का फल होता है जो सेवन की गई हैं। उसके आरम्भ के ये चिह्न हैं—थकावट, शिर-पीड़ा, ऐंठन, तृषा और त्वचा का रूखापन। इसके पश्चात् काले रंग का मल (पाखाना) आने लगता है और रोगी स्याह रंग की वमन (कै) करने लगता है। नेत्रों की सुफैदी जर्द हो जाती है और त्वचा का वर्ण भी पीला (जर्द) हो जाता है। प्रायः यह मृत्यु के पश्चात् हुआ करता है।

मुख्य बात यह है कि रोग को उत्पन्न होने से रोका जावे। इसके साधन सदैव ही हमारे पास उपस्थित हैं।

१—एक प्रकार का ज्वर है जो कि प्रायः तराई में अधिक होता है, इसका विष गर्मी और तरावट के कारण स्थावर के सड़ने से बुखारात (वाष्प) बन कर निकलता है और मनुष्य के शरीर में प्रवेश होकर ज्वर उत्पन्न करता है।

१—प्रथम सीमाबद्ध सम्पूर्ण अनुत्तेजनीय भोजन जो मांस न हो और जो उसी देश की उपज से लिया गया हो जहाँ कि रोगी रहता है।

२—द्वितीय पूर्णतया प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने की रीति और फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ का सेवन। यद्यपि गर्म देशों में इन स्थानों के लिये इतना शीतल जल नहीं मिल सकता जितना कि साधारण देशों में, परन्तु जल और वायु की ऊष्णता का सम्बन्ध दोनों स्थानों में प्रायः एकसा होता है। इसके अतिरिक्त वही ऊष्णता जिसने रोग के उफान को उत्पन्न किया था आरोग्यता की कार्यवाही में भी उसी प्रकार सहायता पहुँचाती है, क्योंकि गर्म देशों में स्नान के पश्चात गर्मी लाना और स्वेद आना साधारण देशों की अपेक्षा शीघ्र होता है।

चिकित्सा विद्या के लिये कुनैन एन्टीपाइरिन या पट्ठों को निश्चल करने वाले अन्य साधनों से किसी ज्वर को भी यथार्थ आरोग्यता देना कभी सम्भव नहीं।

जिस समय औषधि की एक साधारण मात्रा अपना काम कर लेती है तो फिर कुछ अधिक मात्रा के देने की आवश्यकता होती है और अन्त में पट्ठों को बारम्बार निश्चल करने से पट्ठों के बहुत ही कठिन रोग हो जाते हैं जिनका अच्छा करना और भी दुस्साध्य है। संपूर्ण गर्म देशों में ऐसे ज्वर के रोगियों पर चिकित्सा इस पुस्तक के नियमानुसार बड़ी ही सफलता से परिचार्थ की गई। मिस्टर आर० वटेविया निवासी जैनोवा नगर से इस प्रकार लिखते हैं—"मुझे ज्ञात हुआ कि मेरी स्त्री और मेरे वेटेविया के मुनीम ने जिनको मैंने आपकी पुस्तक भेजी थी आपकी चिकित्सा का व्यवहार मौसिमी बुख़ार में जो वहाँ फैला हुआ था बड़ी असाधारण सफलता से किया।"

पादरी मिस्टर एस० पी० एल (ब्राज़ील निवासी) १६ दिसम्बर १८६० को इस प्रकार लिखते है—"मैं बड़े धन्यवाद से निवेदन करता हूँ कि आप के नियत स्नानों से मेरे मौसिमी बुखार और पाचनशक्ति को अल्पकाल में ही अधिक लाभ हुआ। इस क़हबे के देश में हमको भोजन में कुछ कठिनाई होती है। गेहूँ की रोटी के बदले—मकी की रोटी खानी पड़ती है और जर्मनी की तरकारियों के बदले सेम, लोबिया, चावल आदि। सेव, नासपाती, आलूचे के बजाय केला, शकरकन्द, खर्बूज़, तरबूज़, नारंगियाँ, अँजीर, खजूर, शाहबलूत और इसी प्रकार के मेवे खाने पड़ते हैं।"

निम्नलिखित विवरण एक पत्र से लिया गया है जो सन् १८६१ ई० में मेरे बहुत से शिष्यों (गोल्ड कोस्ट कैमरून निवासियों) में से एक ने लिखा था—

"जहाँ तक सम्भव था हमने उन पुस्तकों को जो आपने हमको भेजी थीं कार्यान्वित किया। आपकी चिकित्सा को ज्वरों में, विशेष कर पित्त ज्वर में प्रयोग करने का यत्न किया है। हम बड़ी प्रसन्नता से कहते हैं कि आप की चिकित्सा प्रणाली ज्वर के आक्रमणों को जो यहाँ बारम्बार होते हैं बहुत ही कम कर देती है।"

मैं मिस्टर एम० ऐच० की चिट्ठी से नीचे लिखा विवरण लेता हूँ।

स्टैन क्रीक वैल्ज के निकट ब्रिटिश-हांडुराज सैन्ट्रल अमेरिका*—३ जौलाई, सन् १८६०। आपकी पुस्तक—दी न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग मेरे पास पहुँची। मैं आपकी उस सम्मति का जो आपने पत्र द्वारा मुझे दी है धन्यवाद देता हूँ। जहाँ तक मुझ से हो सका मैंने आपकी शिक्षा पर ध्यान दिया है। प्रति वर्ष मुझे अपने गर्म देशों के ज्वर, ताप वा जाड़ा बुखार वा अन्य विषमताओं से पीड़ित होना पड़ता था; पर इस वर्ष आपकी चिकित्सा-रीति पर चलने के कारण मैं उन सम्पूर्ण पीड़ाओं से बचा रहा।

एक बड़ी चिट्ठी में जो उट्रजिम्बिग (पश्चिमी दक्षिणी अफ़रीका) से आया है—मिस्टर एफ़० एम० ने अपनी स्त्री के कठिन रोग के सम्बन्ध में जो असाध्य समझा गया था, इस प्रकार लिखा है—"कोई भी चिकित्सा जो मैंने तीस वर्ष तक अजमाई रोग की वृद्धि को न रोक सकी—पाचनशक्ति अति मन्द होगई थी, उस समय आपका पत्र पहुँचा तो मेरे नेत्र खुल गये। अब मेरी स्त्री फ्रिक्शन बाथ्ज लेती है। मलेरिया ज्वर (तराई का बुखार) जो उसको अन्य पीड़ाओं में से एक था अब जाता रहा है। पैरों की सूजन कम होती जाती है और हाथ की उँगलियाँ मुलायम और हल्की होती जाती हैं।"

दारुस्सलाम (पूर्वी अफ़रीका) के एक पादरी मिस्टर जी० जिन्होंने कि चिकित्सा रीति को मेरी पुस्तक के अनुसार अपने ऊपर परीक्षण किया था, एक मिश्नरी समाचार पत्र में जोकि शहर बर्लिन सितम्बर सन् १८६७ ई० को प्रकाशित हुआ था, इस चिकित्सा विधि के उत्तम प्रभाव के विषय में जोकि उनको अपने भतीजे की चिकित्सा करने में प्रगट हुआ, इस प्रकार लिखते हैं—

*यह पूरा पता उस स्थान का है जहाँ से पत्र भेजा गया है।

रविवार, २२ जून—सन् १८६० । मेरा भतीजा डैनियल ई० पिछले सप्ताह पाँच दिन से तीव्र मलेरिया ज्वर में ग्रसित था । उसको न तो कुनाइन, न ऐन्टो पाइरिन, न टीफेब्रोन न पिपरमिन्ट (पौदीने) की चाय और न स्वाभाविक रीति की सम्पूर्ण चिकित्सा की गद्दियों से ही कुछ लाभ हुआ । ज्वर उसी उच्च श्रेणी का रहा, वरन् कुछ अंश और भी बढ़ गया । कल दोपहर को हम अपने सम्पूर्ण यत्न करके थकित हो गये थे । केवल रोगी के लिये एक ही संरक्षण था, अर्थात् जलवायु का परिवर्तन—परन्तु यह कैसे सम्भव हो सकता था ? इस अन्तिम दशा में हम को लुई कोहनी की नवीन स्वाभाविक रीति की चिकित्सा का ध्यान आया । उसकी पुस्तक दी न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग मैंने अभी मँगवाई थी । हमने ज्वर से भुनते हुए रोगी को, जिसको कि प्रायः स्वेद नहीं आता था, जल में बिठाया अर्थात् फ्रिक्शन हिप बाथ तीन मिनट के लिये उसको दिया । ज्योंही कि थर्मामेटर १०२ दर्जे फेरनहाइट से अधिक हुआ तो फिर स्नान दिलाया गया और हमने यह बात देखी कि ज्वर न्यून होने लगा—रात्रि में वृद्धि प्रतीत होने लगी और प्रातःकाल पूर्ण स्वाभाविक रीति से पसीना आया । इस प्रकार से रोगी कुछ घण्टों में ही साधारण चिकित्सा प्रणाली से बचाया गया ।

यदि फ्रिक्शन बाथ तीन मिनट के बजाय २० मिनट पर्य्यन्त जारी रक्खे जाते तो आरोग्यता निश्चित ही अति शीघ्र हुई होती ।

ऐसी दशाओं में जितने अधिक समय तक और बारम्बार स्नान कराये जावें रोगी के लिये उतने ही लाभदायक होते हैं ।

दारूस्सलाम के मिस्टर जी० ने अपने विषय में गत २२ दिसम्बर को इस प्रकार लिखा है—"जो कुछ मैं आप को कई प्रकार के ऋतुज-ज्वरों से अपनी आरोग्यता प्राप्त करने के विषय में लिख चुका हूँ, उसका वर्णन इस अवसर पर दुबारा न करके मैं केवल संक्षेप से लिखता हूँ कि मुझ पर आपकी जल द्वारा चिकित्सा रीति का प्रभाव आश्चर्य जनक हुआ । अब मैं इन चिकित्सा का परीक्षण इस देश-अधिवासियों पर कर रहा हूँ (मुझे कुछ कष्ट तो अवश्य होता है और उसमें समय भी लगता है) परन्तु परिणाम (नतीजे) सदैव ही सन्तोषप्रद ही प्राप्त हुए हैं ।

पिछली जून से मैंने अपने तथा अपने घर वालों के लिये जल के अतिरिक्त आप के शिक्षानुसार कोई औषधि नहीं की । इन अत्यन्त उष्ण प्रदेशों में जो बीमारी

के लिये प्रख्यात हैं, हम जहाँ संभव है उत्तम दशा में हैं। क्या यह आपकी जल की चिकित्सा—पश्चिमी अफ़रीका के पीले ज्वर के लिये भी उत्तम चिकित्सा न होगी ?"

मिस्टर जी० ने प्रत्यक्ष रूप में रोग की वास्तव्यता अर्थात् सम्पूर्ण रोगी का एक दूसरे से आन्तरिक समान सम्बन्ध रखने को भली भाँति नहीं समझा है, नहीं तो वे ऐसा प्रश्न ही न करते।

एक पादरी मिस्टर ए० नामी ने क्वालाएंगन से जो बोरनिओ में है, २० जनवरी सन् १८९२ को इस प्रकार लिखा है :—

प्यारे मिस्टर कोहनी,

मेरे पास आपकी पुस्तक—"दी न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग" की दो प्रतियाँ प्रस्तुत हैं—और मैं आपको नवीन आरोग्यता प्राप्त करने की विद्या के उन उत्तम फलों के सम्बन्ध में धन्यवाद देने के लोभ को संवरण न कर सका जिनका मैंने अपने तथा बोरनिओ के अन्य मनुष्यों पर परीक्षण किया है। मैंने लगभग एक वर्ष हुआ इस न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग के विषय में पहली बार सुना था। बोरन्यू में उसके थोड़े समय बाद एक दिन जब कि मैं अपने एक मित्र के घर था, मुझे इंडियन फीवर, बड़े जोर से चढ़ आया और उसने मुझे नितान्त ही निर्बल कर दिया। इस दशा में मैंने आपकी नवीन आरोग्यता की विद्या की परीक्षा की। प्रथम मैंने बेंत की बुनी हुई कुर्सी पर बैठ कर एक स्टीम बाथ लिया और उसके पश्चात् एक फ्रिक्शन हिप बाथ उन नियमों के अनुसार जो आप की एक छोटी सी पुस्तक में लिखे हैं लिया। इनका प्रभाव बहुत ही आश्चर्यजनक हुआ—स्नान के उपरान्त ही मैं बिस्तर से उठ कर चलने फिरने लगा जो मेरे लिये पहिले असंभव था। मेरे मित्र और उनकी पत्नी को इस अत्यन्त शीघ्रता पूर्ण सफलता पर अत्यन्त ही आश्चर्य हुआ। बस उसी दिन से मैं आपकी चिकित्सा-प्रणाली का अटल विश्वासी बन गया हूँ। मैंने इस नवीन आरोग्यता विद्या के अति उत्तम फल यहाँ डायक लोगों में भी देखे हैं। डायक लोगों में कोई वैद्य नहीं होता। ये प्राचीन काल से स्टीम बाथ्ज़ लेते चले आये हैं, परन्तु वे प्रायः फ्रिक्शन बाथ से नितान्त अभिज्ञ हैं।

यदि मैं उन सम्पूर्ण रोगियों का जिनको इस नवीन आरोग्यताप्रद विद्या द्वारा आरोग्यता प्राप्त हुई है वर्णन करूँ तो बड़ा विस्तार हो जायगा। प्यारे मिस्टर कोहनी—आपकी पुस्तक पादरियों के लिये बनों में भी परमावश्यक है, और यह एक

ऐसी पुस्तक है कि किसी भी मनुष्य को निराश करना जानती ही नहीं है। डाक्टरी की और सम्पूर्ण पुस्तकें जो मेरे पास हैं सदैव ही किसी वैद्य के बुलाने की सम्मति देती हैं, परन्तु वनों में यह कैसे संभव हो सकता है? मुझे अत्यन्त हर्ष है कि आपकी पुस्तक दी न्यू साइन्स आफ़हीलिंग—मेरे पास है। तीन सप्ताह हुए कि मुझे कुछ लोग एक स्त्री के पास बुला ले गये जिसका झोंपड़ा एक धान के खेत में भस्म होकर राख हो गया था, परन्तु ऐसी परिस्थिति में भी वह स्त्री उस समय तक न जागी थी जब तक अग्नि का प्रभाव उसके शरीर पर न हुआ। वह स्त्री बड़ी ही कुरूपा हो गई थी, विशेष कर उसका चेहरा और बाहें। मैंने प्रातःकाल से सायंकाल तक भीगी गद्दियों के सेवन की आज्ञा दी और सायंकाल को आपकी पुस्तक के आदेशानुसार गद्दियाँ लगवाईं। मैंने दूसरे दिन पुनः गद्दियाँ लगाईं और एक सप्ताह में ही इस स्त्री ने पूर्ण आरोग्यता प्राप्त करली। मेरा निश्चय है कि प्रचलित मरहमों आदि के द्वारा चिकित्सा करने से सप्ताहों और संभवतः महीनों तक यही दशा रहती।

कुछ सप्ताह हुए कि मेरे दाहिने हाथ पर एक प्रकार की खुजली हो गई। यहां के मनुष्य उसको कीहिस -कहते हैं। यह चिरकाल में जाने वाले एक प्रकार के ददोड़े होते हैं—और शरीर के ऊपर आँवलों की आकृति में हो जाते हैं। मैं अब से पूर्व प्रथम सदैव मरहम द्वारा इसकी चिकित्सा किया करता था -परन्तु यह फिर हो जाया करती थी। एक बार तो यह मेरे पैरों पर हुई—फिर चेहरे पर और फिर पीठ परऔर तत्पश्चात् हाथों पर हुई। इस बार जिसको कुछ सप्ताह हुए—मेरे बायें हाथ पर ददोड़े प्रतीत होने लगे तो मैंने दिल में सोचा कि अबकी बार न्यू मैथड आफ हीलिंग (आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन रीति) से इनकी चिकित्सा करूंगा।

निदान मैंने पहले एक स्टीम बाथ (भापका स्नान) और उसके उपरान्त एक फ्रिक्शन हिप बाथ लिया। दूसरे दिन केवल दो फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ लिये। तीसरे दिन वह ददोड़े मुरझा गए, जिससे जान पड़ता था कि वे अब लोप होने वाले हैं मैंने अकेले हाथ को भी भाप दी और फिर प्रत्येक बार फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ लिया। अब बायें हाथ पर अर्थात् रुग्ण भाग पर छोटी २ फुन्सियाँ निकल आई हैं। बस, निश्चय है कि इस स्थान पर विजातीय द्रव्य स्वयं इकट्ठा हो रहा है। जब यह जाता रहेगा तो यह भयानक खुजली दूर हो जावेगी।

इस भयानक कीहिस से छुटकारा पाने की यही उत्तम रीति है। मैं भविष्य में

सदैव ही--न्यू मैथड आफ़ हीलिंग (नवीन चिकित्सा रीति) का व्यवहार किया करूंगा क्योंकि आज तक मैंने इसके सदृश कोई अन्य चिकित्सा नहीं पायी है। मैं अपने मित्रों का ध्यान इस नवीन विद्या की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करूंगा।

मेरे पास पूर्वी अफ़्रीका, आस्ट्रेलिया--हिंदर इण्डिया-दि-केप वैस्टइन्डीज आदि से बहुत से पत्र आये हैं--जिन में कि मेरी चिकित्सा प्रणाली से आरोग्यता प्राप्त होने की सफलता का कथन है--और बहुत से पत्रों में बड़े उत्साह से मुझे धन्यवाद दिया गया है।

मलेरिया ज्वर की चिकित्सा

अनुवादक का नोट

यह ज्वर विशेष कर ऋतु के परिवर्तन के समय तथा अन्य समयों पर भी होता है जिसमें जाड़ा लग कर या हाथ पाँव ठण्डे होकर ज्वर हो जाया करता है, और कुछ समय पश्चात् पसीना आने पर उतर जाया करता है, और कभी-कभी नित्य आता है और कभी-कभी एक दिन छोड़ कर आता है। इसके विष अर्थात् वेसिलाई को मच्छर मनुष्य के शरीर में अपनी सूंड द्वारा प्रवेश करते हैं।

इस ज्वर की वेसिलाई रुधिर में पहुँच कर बहुत ही शीघ्र बढ़ती हैं और बुखार का जाड़ा छूटने पर भी रक्त में रह जाती हैं—इसके लिये बहुत सी दशाओं में तो हिपबाथ व सिट्ज़ बाथ व स्टीम बाथ से आराम हो जाता है—परन्तु कोई-कोई दशा ऐसी भी होती हैं कि जिसमें स्टीम बाथ आदि स्नानों से रोगी बहुत निर्बल हो जाता है और ज्वर जाड़ा बड़े दिनों में छूटता है—या रोगी घबराकर जल-चिकित्सा को छोड़ देता है। इस मलेरिया ज्वर में -नया हो या पुराना, सन बाथ और कुल पेट पर मिट्टी की पट्टी बड़ी ही लाभकारी होती है—जिसका मुझे अपनी और अन्य रोगियों की दशा में बहुत बार अनुभव करने का अवसर प्राप्त हुआ है।

ज्वर की दशा मिट्टी की पट्टी कुल पेट पर अर्थात् नाभि से नीचे सम्पूर्ण पेड़ू पर और नाभि से ऊपर कोई ५-६ अँगुली तक मिट्टी की पट्टी ३, ४ या ५ घण्टे तक लगानी चाहिये। यह इस प्रकार बनाई जाती है कि पिंडोल या चिकनी मिट्टी को पानी में गाढ़ी लेई के सदृश बना लेते हैं, और टाट के टुकड़े पर जो इतना बड़ा हो कि रोगी के कुल पेटपर आ जावे, उस पर इस मिट्टी को आध अँगुल या आधा इञ्च मोटा इस प्रकार फैला देते हैं जिसमें आधा अँगुल टाट चारों ओर से खाली रहे—फिर मिट्टी की ओर से इसे पेट पर रख देते हैं, और ऊपर एक गर्म ऊनी कपड़ा या फलालैन का टुकड़ा रखकर कपड़े से बाँध देते हैं जिसमें पट्टी पेड़ू पर स्थिर रहे। इस मिट्टी को कसकर

न बाँधना चाहिये। पट्टी के लगाने से पाखाना पेशाव आता है और पेट हलका हो जाता है। इसमें बड़े गुण हैं—यह भीतरी दाह को खींचती है, घबराहट को भी कम करती है। ज्वर की दशा में हिप बाथ अथवा सिट्ज़ बाथ या बारी-बारी से दोनों देवें।

यह अच्छा है कि ज्वर को एक दिन प्रकृति पर छोड़ देवें। केवल मिट्टी की पट्टी ही लगावें। ज्वर उतरने पर या कम होने पर हिप अथवा सिट्ज़ बाथ देवें—और प्रथम ही जब कि समय मिले (ज्वर कम होने पर या उतरने पर) रोगी को एक सन बाथ देवें। जाड़ों में ठंडे देश में १ या १॥ घंटे का और गर्मियों में कम समय तक देवें जितना कि रोगी सहन कर सके—और पांव पर भी पत्ते रख देवें तो उत्तम है। इसके पश्चात् एक हिप बाथ १५-२० मिनट का देवें; और ४-५ घंटे पीछे एक सिट्ज़ बाथ २०—२५ मिनट का। भूख लगने पर दूध, फल, मुनक्का तथा उबला हुआ शाक पात देवें। रोटी व अन्न न देवें। इस प्रकार करने से आशा है कि ज्वर-जाड़ा दूसरी पारी पर न आवेगा, परन्तु कई दिन तक खाली दिन पर सन बाथ दिया करें और बुखार की पारी के दिन सिट्ज़ व हिप बाथ—अथवा केवल सिट्ज़ बाथ देवें और उस दिन कुछ आहार न करावें। यदि भूख बहुत लगे तो फलादि देवें, अन्न नहीं। दो तीन पारी टलने पर अन्न दे सकते हैं। यदि एक पारी पर ज्वर-जाड़ा न छूटे तो उपरोक्त चिकित्सा करते हैं। परमात्मा की कृपा से अवश्य ही आराम होगा।

जिन रोगियों में मलेरिया का विष पुराना रहता है, और तिल्ली व यकृत बढ़ जाते हैं उनमें चिकित्सा अधिक समय तक करने की आवश्यकता होती है—और पुराना ज्वर कई बार उखड़-उखड़ कर बाहर आता है और तब कहीं रोगी को छोड़ता है। ऐसे रोगियों को निराश नहीं होगा चाहिये। प्रत्युत चिकित्सा करते रहना चाहिये तभी रोग मुक्त हो सकेंगे। ज्वर-जाड़ा छूटने के पश्चात् ८-१० दिन तक चिकित्सा और भी करनी चाहिये।

मिट्टी की पट्टी उदर के रोगों में, विशेष कर कब्ज़ की दशा में या पेट के दर्द व अफारे की दशा में बड़ी ही लाभदायक है।

उपरोक्त चिकित्सा मलेरिया ज्वर के अतिरिक्त और भी बड़े-बड़े ज्वरों में जैसा कि टाईफाइड व एन्टिक ज्वरों में, बहुत फलदायक सिद्ध होगी। जाड़ों में मिट्टी की पट्टी गर्म करके भी लगा सकते हैं। जिन दशाओं में रोगी ज्वर से अचेत हो गया हो तो उस दशा में भी यह पट्टी बराबर लगाने से और ३—४ घंटे में बदलते रहने से और चार-चार पाँच-पाँच घंटे पर हिप बाथ देने से रोगी चैतन्य हो जाता है।

यदि आँतों में मल सूख कर रुकावट पैदा हो गई तो भी इस मिट्टी की पट्टी और हिप बाथ आदि से वह अच्छी हो सकती है। प्लेग में भी यह मिट्टी की पट्टी वा हिप बाथ व सन बाथ आदि लाभदायक सिद्ध होंगे।

जिन सज्जनों को यह शंका हो कि बिना औषधि के अनेक रोगों की 'वेसिलाई' कैसे नष्ट हो सकेंगी—वह इस पर विचार करें कि सूर्य्य की गर्मी से संसार में क्या विषैले कीड़े नहीं मर सकते ?

यदि सूर्य्य के प्रभाव से प्लेग के रोगी के वस्त्र धूप में फैला कर शुद्ध हो सकते हैं, तो क्या रोगी के शरीर पर सूर्य के ही प्रभाव, सन बाथ द्वारा डालकर-उसके रुधिर की अनेक अशुद्धियाँ शुद्ध नहीं हो सकती ? जब सूर्य के ही प्रभाव से अनेक औषधियों में पृथक-पृथक गुण उत्पन्न होते हैं और सृष्टि के अनेक जीवों में जीवन का संचार होता है और जीवन शक्ति प्रबल होती है तो क्या स्वतः उसमें यह शक्ति नहीं है कि जिससे वह रोग के कीड़ों को नष्ट कर सके। जब सूर्य्य (अग्नि--तेज), जल, वायु, पृथ्वी और आकाश से ही अनेक वस्तुएँ संसार में रची जाती हैं तो क्या यही पंचभूत मनुष्य के शरीर को आरोग्यता प्रदान नहीं कर सकते ? इस विषय पर पाठक गण जिन्होंने इस पुस्तक के प्रथम भाग को समझ कर पढ़ा है स्वयं ही विचार करें तो उत्तर आप ही मिल जायेगा।

ताऊन की चिकित्सा

अनुवादक का नोट

प्लेग अर्थात् ताऊन—जहाँ तक इस समय तक समाचार पत्र आदि के देखने और सुनने से ज्ञात हुआ है, हिन्दुस्तान में यह रोग चार प्रकार का है—

१—ब्यूबोनिक Bubonic अर्थात् जिसमें गिलटियाँ पड़ जाती हैं।

२—न्यूमोनिक Pneumonic अर्थात् जिसमें विशेष कर फेफड़ों में जलन सी हो जाती है, और ये (फेफड़े) अपना कार्य पूर्ण रीति से सम्पन्न नहीं कर सकते।

३—सेप्टीसीमिक Septisenic जिसमें शरीर का सारा रुधिर विकृत हो जाता है।

४—इन्टेस्टाइनल Intestinal जिसमें कि अँतड़ियाँ दूषित हो जाती हैं। और एक ही रोगी को, एक से अधिक प्रकार का ताऊन, एक समय में हो जाना भी समझ में आ सकता है।

पहिले प्रकार के ताऊन में गिल्टी या तो ज्वर के पूर्व निकलती है अथवा ज्वर चढ़ने के पश्चात्। यदि गिल्टी शरीर के निचले भाग में निकलती है, तो प्रायः जांघ में और यदि ऊपर के भाग में निकलती है तो कानों के पास या उनसे नीचे गले में।

कहा जाता कि यह रोग मनुष्यों की अपेक्षा चूहों पर बहुत ही शीघ्र अपना प्रभाव डालता है, और पहिले-पहिल चूहे ही मरते हुए देखने में आते हैं। और फिर इसका प्रभाव मनुष्यों पर पड़ता है। ऐसा तो कोई घर नहीं जहाँ पर चूहे न हों, इसलिये चूहों द्वारा रोग एक घर से दूसरे घर में भली भाँति जा सकता है। कुछ नगरों में जहाँ पर म्यूनिसिपेलिटी अर्थात् चुंगी ने इन जन्तुओं की संख्या में सर्दी की ऋतु आरम्भ होने से पूर्व ही एक अच्छी कमी पैदा करदी हैं, उन नगरों में पुनः शरद ऋतु में यह रोग बहुत ही कम हुआ है।

रोग को रोकने के लिये घरों को स्वच्छ रखना आवश्यक है, विशेष कर नालियों, चौवचों और पैखानों को। इन स्थानों की जहाँ तक हो सके दुर्गन्ध मिटाकर

स्वच्छ रखना चाहिये। फ़िनायल मिले जल से उनको धुलवाना और इसे उनमें छिड़क देना चाहिये, गृहों की वायु शुद्ध रखने के लिये, उनमें दिन में एक या दो बार सुगन्धित द्रव्य अवश्य जला देने चाहिये। जिनका नैतिक धर्म हवन करना है वे हवन किया करें और दूसरे लोग गूगल आदि किसी सुगन्धित वस्तु को घर में एक या दो बार नित्य प्रति जलाकर उसका धुआँ निकाल दिया करें। यह कार्य शारीरिक शुद्धि से कम आवश्यकीय नहीं है। मनुष्य का शरीर ऊपर से शुद्ध रखना तो उसको भले प्रकार धोने अर्थात् विधि पूर्वक स्नान द्वारा हो सकता है। साफ़-सुथरे कपड़े पहिनना भी शुद्धि का कारण है। परन्तु शरीर की केवल वाह्य शुद्धि से ही काम नहीं चलता किन्तु आन्तरिक शुद्धि भी आवश्यकीय है। इस "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" के पहिले १०० पृष्ठों को पढ़ कर आप पर भले प्रकार विदित हो जावेगा कि बिना भीतरी दोष (मलीनता) के कोई रोग नहीं होता, और भीतरी मलीनता से बचने और उसके दूर करने का उपाय भी प्रथम भाग के शेष पृष्ठों के पढ़ने से भले प्रकार समझ में आ जावेगा। शरीर की भीतरी और बाहरी शुद्धि से भी अधिक उपयोगी आत्मिक-शुद्धि है। आत्मिक मलीनता के कारण मनुष्य ऐसे-ऐसे कुकर्म कर बैठता है कि जिससे शरीर भीतर बाहर दोनों ओर से अपवित्र हो जाता है। आत्मिक पवित्रता को प्राप्त करने के लिये मनुष्य को उचित है कि अपने मतानुसार कर्त्तव्य परायण हो। मनुष्य के कुकर्मों का ही बुरा फल रोग है। मनुष्यों के आचरण जितने ही अधिक भ्रष्ट होते जायँगे उतने ही अधिक उस देश के मनुष्य रोगी होते चले जायेंगे। क्या यह कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तान में पूर्व की अपेक्षा अब अच्छे आचरण हैं? प्रत्येक मनुष्य अपने आपको और अपने चारों ओर ध्यानपूर्वक देखेगा तो यही कहेगा कि नहीं! और उसका कारण यही ज्ञात होगा कि प्रत्येक मत का मनुष्य अपने-अपने मत के अनुसार कर्त्तव्य-परायण नहीं है। ऊपरी कर्म ही नहीं प्रत्युत बुरे विचारों का भी प्रभाव मनुष्य के स्वास्थ्य पर पड़ता है जो जीवन को कम करता है।

जब कभी किसी घर में यह ताऊन का रोग चूहों में दिखाई दे तो उस घर को तत्काल ही छोड़ देना चाहिए, और उसकी सफाई भले प्रकार करनी चाहिये। मरे हुए चूहों को फेंकने के बदले जला देना चाहिये। इन उपायों के अतिरिक्त, जोकि फ़िनायल या रस कपूर को पानी में मिला कर प्रत्येक दिवाल भूमि और नाली आदि को धो डालने के हैं, सबसे सरल रीति यह है कि मकान में प्याल अथवा सूखी घास

और नीम के सूखे पत्ते बिछा कर और उसके ऊपर उपले या लकड़ी फैला कर जला दें जिससे मकान में भले प्रकार धुआँ घुट जावे और वह भली भाँति गर्म हो जावे। परन्तु समस्त गृह-भूमि को आग जला कर एक बार उत्तम प्रकार अग्नि के तुल्य कर दिया जावे। जहाँ तक मनुष्य ने अनुभव किया है वहाँ तक कोई ऐसा प्राणी नहीं जिसको अग्नि भस्म न करदे।

यदि किसी मनुष्य के विषय में सन्देह भी हो कि उस पर इस रोग का प्रभाव है तो उसको घर के अन्य मनुष्यों से पृथक रक्खें और आवश्यकता के समय ही उसके पास जावें। उससे अधिक बातचीत करना भी उसके चित्त को हानि पहुँचाता है। मन को एकाग्र करने के लिए रोगी को उचित है कि अपने इष्ट देव का स्मरण करने और भजन करने में अपने मन को लगावे। रोगी को ऐसे घर में रक्खें कि जिसमें स्वच्छ वायु भले प्रकार आती जाती रहे।

चिकित्सा—जिस समय किसी मनुष्य को रोग में ग्रस्त होने का भी सन्देह हो, चाहे गिल्टी निकल आई हो अथवा केवल ज्वर ही हो, तो सब से पूर्व रोगी को पूरे शरीर का स्टीम बाथ लगभग आधे घण्टे का देवें। यदि कोई बेंच या कुर्सी प्राप्त न हो सके तो छोटी खाट पर भी, जिसकी बुनावट घनी न हो यह वाष्प-स्नान लिया जा सकता है। यदि रोगी को पानी में बैठना बुरा न लगता हो तो स्टीम बाथ के उपरान्त तत्काल ही फ्रिक्शन हिप बाथ आधे घण्टे तक वा उससे भी अधिक देर तक देवें। स्टीम बाथ होते समय यदि थोड़ी-थोड़ी देर तक मुँह कम्बल के भीतर ढक कर, मुँह खोलकर साँस लिया जावे तो अच्छा है। ऐसा करने से भाप का प्रभाव भीतर तक पहुँचता है। इस स्नान के उपरान्त प्रत्येक तीन-तीन चार-चार घण्टे के पश्चात् फ्रिक्शन सिट्ज बाथ आधे-आधे घण्टे तक और हिप बाथ कोई बीस-तीस मिनट तक, बारी बारी से लेवें, जब तक कि ज्वर दूर न हो जावे। यदि तीन स्नान देने से लाभ हो गया है तो फिर अगले दिन चिकित्सा का स्नान देवें और ज्वर दूर हो जाने के पश्चात् भी एक सप्ताह तक दो तीन हिप बाथ और फ्रिक्शन सिट्ज बाथ लेते रहें। यदि आवश्यकता प्रतीत होती हो, अथवा यदि पहिले स्टीम बाथ में पसीना न आया हो, तो दूसरे दिन फिर स्टीम बाथ लिया जा सकता है, परन्तु सावधानी के साथ।

यदि रोगी को इन स्नानों से पाख़ाना न आया हो तो पेड़ू पर पिंडोल मिट्टी की पट्टी एक घण्टे या अधिक देर तक बाँधे (पट्टी बनाने और बाँधने की रीति

बतायी जा चुकी है । कभी-कभी रात भर भी पट्टी बाँध सकते हैं। यदि उसके द्वारा वास्ति-यंत्र का प्रयोग भी कभी-कभी किया जाय तो कुछ हानि नहीं, परन्तु उसके द्वारा केवल सील गर्म जल छान कर व्यवहार में लाना चाहिये। कोई अन्य औषधि या साबुन आदि मिलाने की आवश्यकता नहीं है।

यदि गिल्टी निकल आई है तो पूरे शरीर के लिये स्टीम देते समय गिल्टी को विशेष कर अधिक ढक दें । और यदि गिलटी कान के पास या गले में है तो उपरोक्त चिकित्सा के अतिरिक्त दुबारा चेहरे और गर्दन को भापका एक स्नान देकर तब फ्रिक्शन हिप बाथ या सिटज बाथ लें । यदि गिलटी जाँघ में है तो पेडू के स्टीम बाथ के अतिरिक्त पूरे शरीर के स्टीम बाथ देने लाभ दायक होंगे। पूरे स्टीम बाथ देने के दिन पेडू का स्टीम अलग न दिया जावे। यदि गिल्टी में जलन जान पड़े तो समय-समय पर ऊनी कपड़े को गर्म पानी में डुबो और निचोड़ कर सेंकते रहें, और शेष समय में उस पर ठण्डे पानी की भीगी, कई तह किये हुए कपड़े की गद्दी को रख कर ऊपर से किसी ऊनी कपड़े का टुकड़ा रख कर कपड़े की पट्टी ऊपर लपेट देवें। पट्टी कस कर न बँधी हो, जिससे कि उस जगह के रुधिर के संचार में अवरोध न होवे। गद्दी को भिगोने के लिये यदि वर्षा का पानी हो तो अत्युत्तम है।

इस पानी के अभाव में भपके द्वारा खींचे गये पानी, गंगा जल, कुए के अच्छे मीठे और ठण्डे जल से गद्दी को समय-समय पर तर करते रहें। यदि गिल्टी फूट जावे तो सब गद्दियाँ दिन में कई बार बदल देनी होंगी। (उन कपड़ों और गद्दियों को जिनमें गिल्टी का मवाद लगा हो, तत्काल जला देना उचित है) थोड़े ही दिनों में इस पानी की गद्दी, फुलालैन के टुकड़े और कपड़े की पट्टी और अन्य स्नानों से गिलटी का व्रण अच्छा हो जावेगा।

———

भोजन—बिना भूख लगे रोगी को भोजन कदापि न दिया जावे। और जब देवें तो शीघ्र पचने वाला और थोड़ा भोजन देवें। पहिले फल दें फिर थोड़ा-थोड़ा दूध भी देवें और ज्वर न रहने पर भी कई दिन तक केवल फल ही देवें। फिर अन्न को बहुत ही संभाल कर देवें।

जुज़ाम—अर्थात् कुष्ट

उष्ण कटिबन्ध (अत्यन्त उष्ण प्रदेश) की आपत्ति कुष्ट रोग को हम अपने (जर्मनी) साधारण जलवायु* वाले देश में निवास करते हुए भला कब विचार में ला सकते हैं। दुर्भाग्य से जो मनुष्य इस रोग में ग्रसित हुए वे सदैव ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। कारण यह कि इस रोग की कोई औषधि किसी को ज्ञात न थी। बेचारे रोगी अन्य सम्पूर्ण मनुष्यों से पृथक् किये जाकर—किसी द्वीप या किसी मुख्य अस्पताल में बंधुए (क़ैदी) रक्खे जाकर अपने भयानक फल को पाने के लिये छोड़ दिये जाते हैं। सम्पूर्ण कुष्टी छूत के भय से अपने कुटुम्ब से पृथक् (अलग) किये जाते हैं—अपनी मातृ-भूमि से निर्वासित किये जाते हैं—और किसी दूर के स्थान में केवल अपनी प्रारब्ध के भरोसे छोड़ दिये जाते हैं। यही बड़ी बात है कि उनको समय-कु-समय भोजन पहुँचा दिया जाता है—किन्तु और किसी भी प्रकार का सम्बन्ध उनसे छोड़ दिया जाता है।

साधारण जलवायु के देशों में कुष्ट बहुत ही कम पाया जाता है। जिन कारणों से गर्म मुल्कों में कुष्ट उत्पन्न होता है वही कारण साधारण मुल्कों में गठिया और जलोदर उत्पन्न करते हैं—जैसा कि खजूर का पेड़ गर्म देशों में ही और बलूत का पेड़ मध्य कटिबन्ध वाले प्रदेशों में ही फलता फूलता है, यद्यपि वही सूर्य—वही जल—और वही पृथ्वी है। इसी प्रकार कुष्ट उष्ण जल-वायु में उत्पन्न होता है।

हम तर अर्थात् बहते हुए कुष्ट और शुष्क कुष्ट में जो भेद है वह बताते हैं। प्रथम दशा में शरीर वर्षों पर्य्यंत शनैः शनैः सड़ा करता है, जिसके साथ अत्यन्त पीड़ा भी होती है। रोग बिना रुके ही वृद्धि पाता रहता है। अन्त में यहाँ तक वृद्धि पा जाता है कि केवल मृत्यु ही उसे छुटकारा देती है।

शुष्क कुष्ट में प्रथम कुष्ट की नांई पाचन-शक्ति प्रतिक्षण नष्ट होती जाती है—और उसके सङ्ग ही काले-काले सड़े हुए धब्बे शरीर के अन्तिम सिरों पर, विशेष कर

*तात्पर्य है जरमन देश से जहाँ के रहने वाले मिस्टर कुहनी हैं।

हाथों और पाओं पर हो जाते हैं। यह तीव्र भीतरी ज्वर का एक निश्चित चिह्न है। इसमें प्रथम उँगलियों के पोरुओं और पीछे से शरीर के और भागों का मांस उड़ने लगता है। यहाँ तक कि नग्न हड्डियाँ और नंगे पोरुए ही शेष रह जाते हैं। शरीर एक पेड़ के समान शुष्क हो कर मोमयाई१ के सदृश हो जाता है --मांस बराबर उड़ता-चला जाता है। यहाँ तक कि विपत्ति के मारे अभागे कुष्ठी मनुष्य अस्थि पंजर मात्र रह जाते हैं और अत्यन्त दुर्बलता के कारण उनकी मृत्यु हो जाती है।

वास्तव में कुष्ठ का भी वही एक कारण है जो अन्य सम्पूर्ण रोगों का है। अर्थात् शरीर में विजातीय द्रव्य का बोझ। यह रोग या तो पैतृक होता है—या प्रकृति के विरुद्ध आहार-विहार करने से होता है।

इस रोग का मुख्य स्थान पेड़ अथवा पचाने वाले अंगों में है—जो असाधारण दशा में हो जाते हैं। अति उष्ण प्रदेशों की सड़ी हुई उष्णता सड़न की समस्त-क्रिया की वृद्धि करती है और शरीर के भीतरी विकारी द्रव्य में स्वाभाविक तीव्रता या सड़न उत्पन्न करती है। यह विजातीय द्रव्य बड़ी प्रबलता से शरीर के अन्तिम सिरों की ओर जाता है—जहाँ वह आन्तरिक दबाव के कारण कड़ी दशा में एकत्रित हो जाता है। इस प्रकार की वस्तु की अत्यन्त एकत्रिता से जीवनशक्ति देने वाले पट्ठे जो इन अन्तिम सिरों तक पहुँचे हुए हैं नितान्त अवरुद्ध हो जाते हैं—और भविष्य में अपना वास्तविक कार्य्य नहीं कर सकते। इस प्रकार कुष्ठियों के हाथ पाँवों का सुन्न हो जाना समझ में आता है।

ऐसे रोगी प्रायः अति प्रबल ज्वर में ग्रसित रहते हैं—यद्यपि बाहर की ओर उन्हें एक प्रकार की ठण्ढक-सी ज्ञात होती रहती है। शुष्क-कुष्ठ में यह सिरे वास्तव में उस आन्तरिक अत्यन्त उष्णता के कारण शुष्क हो जाते हैं, क्योंकि निर्बल पाचन शक्ति के कारण रोगी को वास्तविक शक्ति का पहुँचना दुस्तर हो जाता है (यद्यपि वह उन पदार्थों का जो अधिक शक्ति-प्रद और पुष्टिकारक हैं भले ही सेवन करता हो)। इसमें सन्देह नहीं कि भोजन शरीर में होकर निकल जाता है परन्तु फिर भी उन सब पदार्थों के खाने पर भी रोगी बहुधा भूखा२ ही रहता है (अर्थात्

१—तात्पर्य उस मुर्दे से है जो मसालों द्वारा सैकड़ों वर्ष अपनी वास्तविक दशा में सड़े बिना ही स्थिर रक्खा जाता है।

२—अर्थात् शरीर को भोजन नहीं लगता।

वह भोजन शरीर को नहीं लगता)। इस स्थल पर हम स्पष्ट ही देखते हैं कि वह वस्तु जो शरीर का पोषण करती और उसको स्थिर रखती है, न तो वह है जिसे कोई पी लेता है और न वह वस्तु ही है जिसमें कि नवीन विचारानुसार वह सम्पूर्ण भाग सम्मिलित रहते हैं जिनसे मिलकर कैमिकल एनेलसिस (Chemical Analysis) (वह रीति जिससे प्रत्येक वस्तु के भाग पृथक्-पृथक् कर लिये जा सकते हैं) रासायनिक विश्लेषण के ही अनुसार मनुष्य का शरीर बना है—अपितु वह केवल ऐसा❀ भोजन है जिसे शरीर वास्तव में पचा सकता है। गलित कोढ़ में (तर जुज़ाम में) सड़न उसी प्रकर की होती है जैसी कि जलोदर में, क्योंकि इस रोग में भी जैसा कि अनुभव बतलाता है, पानी (तरी) उत्पन्न होने से वर्षों पूर्व सड़न को एक आन्तरिक अवस्था रहती है—अतः सड़न को उन कार्य्यवाहियों में से अन्तिम कार्य्यवाही समझना चाहिये जो जीवित शरीरों में होती रहती है। यद्यपि वह तरी जलोदर की तरी से भिन्न प्रकार की होती है। इस कारण बैटेविया१ निवासी रोगी की दशा में रोग का ढंग अत्यन्त मनोरंजक है, (जैसा कि पहिले वर्णन हो चुका है, उसका हृदय रोग, जलोदर और कोढ़ क्रमानुसार हुए थे)। उससे अत्यन्त स्पष्ट रीति से रोग की यह सम्पूर्ण निकृष्ट कार्य्यवाहियाँ प्रकट होती हैं। यद्यपि हमारे देश में कोढ़ उस दशा में नहीं मिलता जैसा कि अत्यन्त ऊष्ण देशों में, तो भी कभी-कभी लगभग उसी दशा से समता रखती हुई दशाएँ हमको दिखाई देती हैं। क्षय रोग (मर्ज़ सिल) विशेषतया उसके गुणों से समता रखता है। इस रोग की दशा में—विशेष कर शीत प्रधान देशों में—शरीर, विजातीय द्रव्य को अन्तिम सिरों तक सदैव अधिक वेग से नहीं भेजता जैसे कि कुष्ट रोग की दशा ऊष्ण देशों में भेजता है। विकृत-पदार्थ जो शरीर के भीतर वर्तमान होता है, सड़ना प्रारम्भ करके फेफड़ों अथवा अन्य भीतरी अंगों को नष्ट करने लग जाता है। कुष्ट-रोग की चिकित्सा के विषय में डाक्टरी चिकित्सा स्पष्ट रूप से इस बात को स्वीकार करती है कि इस रोग की कोई चिकित्सा उसको ज्ञात नहीं है। यह ज्वर के गुणों से अनभिज्ञ है, और कुष्ट को ऐसा रोग नहीं समझती जिसका सम्बन्ध ज्वर से है। कुष्ट को उसी समय नीरोगता हो सकती है

❀—वह वस्तु जिससे शरीर का पालन होता है और वह जीवित रहता है वही भोजन है, जिसे शरीर पचा सकता है।

१—इस रोगी की दशा इसी पुस्तक में जहाँ कि दिल के रोग का वर्णन है देखो।

जब ज्वर की चिकित्सा की जावे और विकृत पदार्थ शरीर से बहिष्कृत कर दिया जावे। जब ऐसा करना सम्भव नहीं होता तो पूर्ण आरोग्यता की आशा भी न करनी चाहिये—किन्तु हम अधिक से अधिक एक प्रकार का किंचित् आराम प्राप्त कर सकते हैं।

औषधियों द्वारा चिकित्सा करने से, शरीर को रोग से हानि पहुँचने की अपेक्षा और भी अधिक हानि पहुँचती है। इस बात की सत्यता का उत्तम प्रमाण बैंटेविया देश के रोगी के वृत्तान्त से अधिक और क्या हो सकता है। इस अवसर पर हम यह बात देखते हैं कि उस रोगी में कोढ़ के अज्ञात कीड़े (बेसिलाई) जिनका अस्तित्व निस्सन्देह एक सुप्रसिद्ध कुष्ट चिकित्सक ने अपने अनुसन्धान द्वारा स्वीकार किया था, किसी प्रकार भी उन चिकित्साओं द्वारा जो उसने की थीं दूर न हो सके थे। अर्थात् न तो विषैली औषधिओं द्वारा ही और न किसी अन्य प्रकार से ही।

इसके साथ उस उत्तम साफल्य से, जो मेरी निर्माण की हुई चिकित्सा विधि के करने से प्राप्त हुई, तुलना कीजिये—जिसने कुष्ठ के समस्त अज्ञात कीड़ों को पूर्ण रूप से पृथक् कर दिया और जिनकी सत्यता को उसी चिकित्सक ने जिसने कीड़े बतलाये थे स्वीकार किया है।

इस रोग में केवल सादा भोजन और मेरे द्वारा आविष्कृत फ्रिक्शन बाथ्ज के द्वारा ही आरोग्यता प्राप्त हो सकती है। किन्तु प्राकृतिक रीति से केवल उसी समय नैरोग्य लाभ हो सकता है जब कि पाचन-शक्ति और त्वचा की क्रियाएँ इस योग्य हों कि उनमें कुछ वृद्धि कर सकें और जीवन शक्ति भी पर्याप्त परिमाण में वर्तमान हो।

यह भी अति स्पष्ट रीति से सिद्ध कर दिया गया है कि मेरी चिकित्सा विधि में कोढ़ियों के छूत से रोग के लग जाने की आशंका नहीं रहती। यह बात विशेष कर उनके लिये जो छूत से डरते हैं बहुत ही आवश्यक है। केवल यही आवश्यक है कि 'प्राकृतिक भोजन' ग्रहण करने का पूर्ण उद्योग करें—और शरीर को मेरे निकाले स्नानों द्वारा बल और उत्साह पहुँचावें। ये शरीर को समस्त आन्तरिक विकृत पदार्थ से स्वच्छ कर देते हैं, तब वे लोग यही नहीं कि छूत के भय से ही सुरक्षित रहेंगे, किन्तु अपनी साधारण शारीरिक नीरोगता, और मस्तिष्क सम्बन्धी योग्यता को भी प्रत्येक प्रकार से बढ़ावेंगे।

यह बात कि औषधि द्वारा चिकित्सा करने की विधि स्वाभाविक साधनों की गुण ग्राहकता से कितनी अनभिज्ञ है इस बात से प्रकट होगी कि डाक्टर लोग अपने रोगियों को उनके कमरों में किस सावधानी से खिड़कियाँ बन्द कर के रखते हैं और इस बात का बहुत ही यत्न करते हैं कि कुछ भी टटकी वायु, विशेष कर रात के समय, कमरे में न जाने पावे। अतः रोगी के कमरे की वायु विकृत पदार्थ की सड़न

चित्र संख्या १ (आयु १५ वर्ष)

और कुष्ठियों के दूषणों से युक्त रहती है--निदान यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि ऐसी दशाओं में कुष्ट चिरकाल तक रहने वाला सिद्ध हो।

इस बात से पूर्व कि मैं कोढ़ियों के स्वस्थ हो जाने का वर्णन करूँ, इस स्थल पर संक्षेप में वह विधि बतलाऊँगा; जिसमें कि प्रत्येक मनुष्य अपने आपको कुष्ट से सुरक्षित रख सकता है, और अन्य रोगों से भी, यथा प्रत्येक प्रकार के तराई के और अत्यन्त तापों से। अतः निकृष्ट से निकृष्ट रोगी में भी रोग के मार्ग में कोई भी भय उपस्थित न होगा केवल थोड़ी सा विगाड़ होगा। जैसा कि वर्णन हो चुका है कि वह

मनुष्य जिनका रुझान इन रोगों की ओर होता है अर्थात् जिनमें विकृत पदार्थ का भार अत्यन्त होता है—वही मनुष्य इस रोग में ग्रसित हो सकते हैं।

प्रत्येक उत्तेजक कारण विकृत पदार्थीय भार पर अपना प्रभाव डाल कर उसमें नवीन रूप से सड़न क्यूरेटिव क्राईसिस उत्पन्न करके प्राण संकट में डालता है। ऐसे रोग की ओर शरीर की चेष्टा होना वर्षों पूर्व मेरे मुखाकृति विज्ञान की सहायता से जाना जा सकता है।

वे लोग भी जिन्होंने इस विद्या का अध्ययन नहीं किया है इस दैहिक चेष्टा को
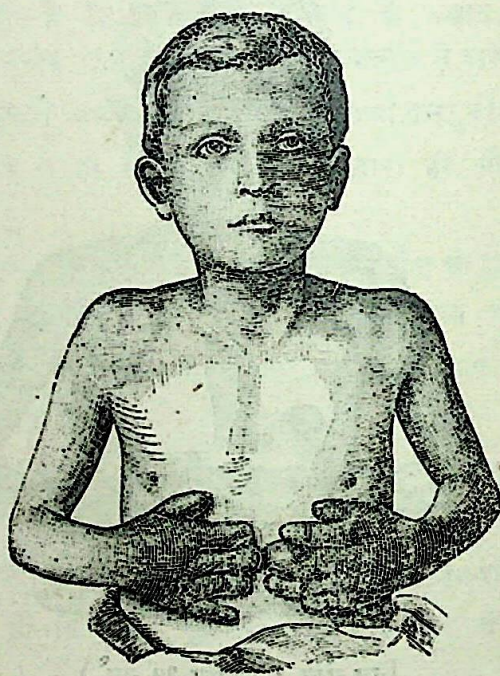
चित्र सं० २ (आयु १३ वर्ष)

कुछ अंशों तक जान सकते हैं। हमारी अत्यन्त बुद्धिमती प्रकृति माता ने इस अभिप्राय के लिये एक सच्चा यंत्र हमें दिया है (किन्तु दुर्भाग्यवश बहुत से लोग उसे प्रयोग करना नहीं जानते हैं) अर्थात् हमारी बुद्धि—प्राकृतिक बुद्धि—उन सब लोगों में जिनमें कि विकृत पदार्थ का भार वर्तमान है—एक प्रकार का वश से बाहर का भय (एक गुप्त भय) इस प्रकार के रोगों की छूत का बिठला देती है। यदि वह लोग अब भी कुछ प्रकृति से अनुकूलता रखते हों, तो ऐसे रोगों की चेष्टा को समझने में उस बुद्धि का उपयोग कर सकते हैं।

अब इन साधारण वर्णनों के पश्चात् मैं कुष्ट की उस दशा का वर्णन करूँगा। जो कि तीन लड़कों की उस समय हुई जब कि बर्लिन नगर के प्रसिद्ध डाक्टरों ने उन्हें असाध्य कह कर उत्तर दे दिया था और फिर वे मेरे चिकित्सालय में आये थे।

इन तीन लड़कों (आयु १५-१३-६ वर्ष) की चिकित्सा ने मुझे अपनी चिकित्सा प्रणाली के गौरव को बढ़ाने का एक और अवसर दिया। अधिकतर इस कारण भी कि पुराने डाक्टरों ने उनके नीरोग करने में अपनी पूरी-पूरी अयोग्यता स्वीकार करली थी। सम्भव है कि इन रोगियों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित हो जावे

चित्र सं० ३ (आयु ६ वर्ष)

इसी कारण मैंने इन लड़कों के सात फ़ोटो खिंचवाये थे। इन वेचारे बचों की दशा जब कि मैंने उनकी चिकित्सा आरम्भ की अत्यन्त शोचनीय थी। हाथों में उँगलियों के सिरे और किसी उँगली के पोरुए तक गल कर गिर गये थे। शेष पोरुए उँगलियों तक बहुत फूले हुए थे और लगभग गिरने को तैयार थे; जैसा कि चित्र संख्या ४ व ५ से प्रकट होगा—सब से छोटे बच्चे के दाहिने हाथ की तर्जनी गलने लगी थी। उससे बड़े दोनों लड़कों के पाँव इस से भी अधिक भयंकर रूप में थे (देखो चित्र सं० ६ व

७)। वे केवल रूप हीन शरीर थे, जो विकृत पदार्थ से बड़ी अधिकता से भरे हुए थे। कई स्थानों में कटाव होना प्रारम्भ हो गया था और घावों से जोकि सीधे हड्डी तक पहुँच चुके थे; पीप निकलता था। हाथ और पैर, बाँह और टाँग से कोहनी और घुटने तक पृथक् पृथक् सम्पूर्ण त्वचेन्द्रिय-शक्ति नष्ट हो चुकी थी। बर्लिन नगर के एक चिकित्सक ने इस अँग की निश्चेष्टता (छूने की शक्ति की हीनता) की मिक़दार (मात्रा) जानने के अभिप्राय से हाथ और बाँह को उस स्थान तक जहाँ कि चुभने से पीड़ा हो, एक बड़ी सुई से छेद डाला था। पीड़ा कोहनी पर ज्ञात हुई थी।
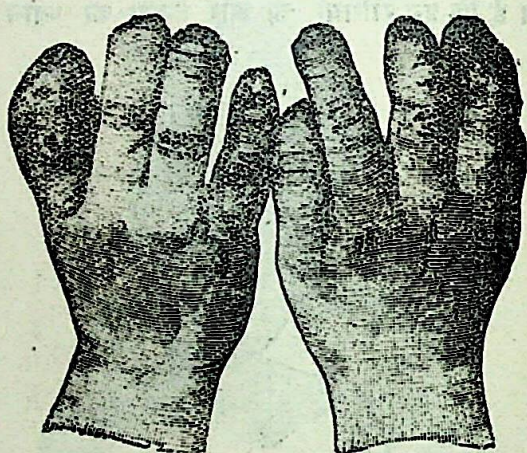
चित्र संख्या ४ (चित्र ३ के साथ)

लड़कों की दशा इतनी निकृष्ट थी कि उस समय तक उनके फ़ोटो भी न लिये जा सके थे जब तक कि मेरी चिकित्सा को तीन सप्ताह न हो गये, जिसमें उनकी दशा वास्तव में उत्तम हो गई। रोग की निकृष्टतम अवस्था का चित्र खींचना नितान्त ही असम्भव था।

नित्य प्रति दो या तीन फ्रिक्शन सिटज़ बाथ, फ्रिक्शन हिप बाथ्ज भी (कभी कभी) और स्वाभाविक भोजन, खुले मैदान में पर्याप्त व्यायाम और पसीने का निकालना—यही बातें मेरी चिकित्सा में सम्मिलित थीं। इस चिकित्सा का प्रभाव प्रशंसनीय था। यद्यपि चिकित्सा के प्रारम्भ में बच्चों के शरीर से निकले हुए दोष अत्यन्त भयंकर थे और चिकित्साकाल के मध्य में वह नितान्त असह्य हो गये थे। सड़न की दुर्गन्धि अधिक थी। शरीर के भीतर का विकृत पदार्थ गति में (हरकत में)

बाहर जाने के लिये मार्ग ढूंढ़ने का यत्न करता था। स्नान लेने के समय में यह दशा विचारणीय थी।

प्रातःकाल के भोजन में ये चीजें थीं—बगैर छने* आटे की ख़ुश्क रोटी—थोड़े सेवों के साथ। और सायंकाल का भोजन आटे से बने हुए पदार्थ, तरकारियाँ और दाल, केवल पानी में बहुत ही थोड़े घी और थोड़े नमक के साथ पकी हुई। सब प्रकार के माँस, सोरवा और इसी प्रकार के अन्य पदार्थों के सेवन का पूर्णतया निषेध किया था। भोजन* जितना गाढ़ा पक सकता था पकाया जाता था और सदैव बिना छने हुए आटे की रोटी के साथ खाया जाता था। पीने को केवल सादा पानी ही मिलता था।
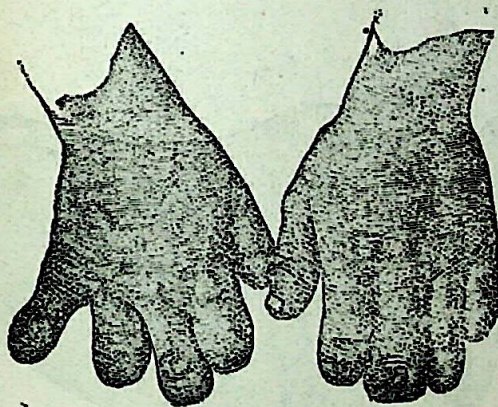
चित्र संख्या ५ (चित्र २ के हाथ)

दो सप्ताह के भीतर ही पैरों के खुले घावों का बहना बन्द हो गया और भीतर से बाहर की ओर घाव भरने लगे। दोनों बड़े लड़कों में से प्रत्येक के उस समय भी

*उस आटे से अभिप्राय है जो छिलके सहित अन्न को पीसने से प्राप्त होता है क्योंकि अन्न का छिल्का पृथक् करके भी शेष भाग का आटा बना सकते हैं जिसको सूजी कहते हैं—यदि साबित अन्न भी जो पीसा जावे तो उसके आटे की बूर पृथक् न की जावे।

*अभिप्राय है दाल—तरकारियाँ और अन्य पदार्थ यथा दलिया वा आटे की लपसी इत्यादि जितनी गाढ़ी हो सकती थीं पकाकर रोटी के साथ खाई जाती थी—गाढ़ी दशा में खाने से मुँह में अधिक चबाई जाती है और मुँह के अधिक लुआब में मिल कर पेट में जाती हैं और इस कारण वह शीघ्रतर पच जाती हैं।

एक बड़ा घाव था जो अगले महीने में भर गया। चिकित्सा-काल में हाथों में भी एक विचारणीय परिवर्तन हो गया—मुख्य कर उँगलियों में जो कि चिकित्सा के दूसरे महीने में ही नीली पड़ने लगी थीं—जैसा त्वचा में झुर्रियों के पड़ जाने से देखा जा सकता था। विकृत पदार्थ ने ठीक ठाक उसी ढंग से जिससे कि वह पहले शरीर के अन्तिम सिरों में गया था—अब पेडू की ओर लौटना प्रारम्भ कर दिया।

इस बात को रोगियों ने हाथों, बाजुओं, पाँवों और टाँगों (विशेष कर जोड़ों) में खेंचने वाली पीड़ाओं के होने से स्पष्ट रूप से ज्ञात कर लिया। मेरी चिकित्सा
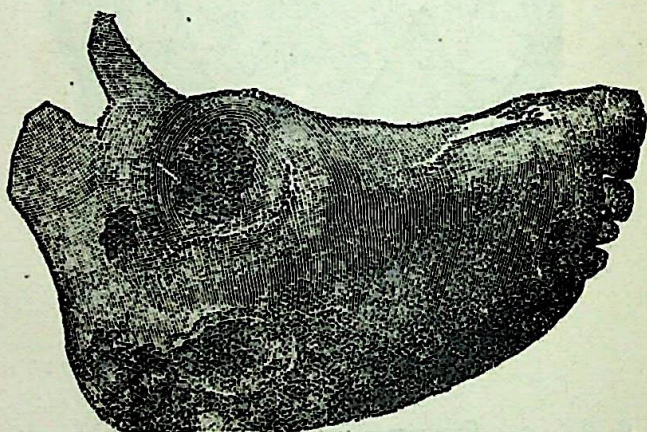
चित्र सं० ६ (चित्र १ का पाँव)

प्रारम्भ करने के समय सबसे बड़ा लड़का वह जूती जो उसके लिये ही बनवाई गई थी नहीं पहिन सकता था। चार सप्ताह चिकित्सा करने के पश्चात् वह चमड़े की साधारण जूती पहिनने के योग हुआ। अन्ततो गत्वा स्पर्श हीन अंगों में स्पर्श शक्ति का प्रादुर्भाव पुनः हो गया। यह परिणाम पाचन शक्ति के स्वाभाविक रीति में आजाने से ही सम्भव हुआ था।

इन तीनों लड़कों की उस समय ऐसी दशा थी कि उनकी पूर्वावस्था से तुलना ही नहीं की जा सकती थी। बेचारे बच्चे जो कि निश्चित् रूप से मृत्यु के पंजे में जा चुके थे अब प्रसन्न और प्रफुल्लित हैं। इन सब घटनाओं से यह सिद्ध होता है कि

कुष्ट जिसको साधारणतया असाध्य रोग समझते हैं—मेरी चिकित्सा द्वारा साध्य है जैसा कि जावा देश के रोगी (जिसका वर्णन पिछले पृष्ठों में हो चुका है) के नीरोग हो जाने से सिद्ध हो गया है।

चिकित्सा में जो सफलताएँ प्राप्त हुई हैं उनकी पुष्टि में, बिना किसी सन्देह के मैं निश्चय पूर्वक कह सकता हूँ कि कुष्ट का भी वही मिश्रित कारण है जो अन्य समस्त रोगों का है। केवल उन्हीं कुष्टियों को आराम नहीं हो सकता जिनका रोग बहुत
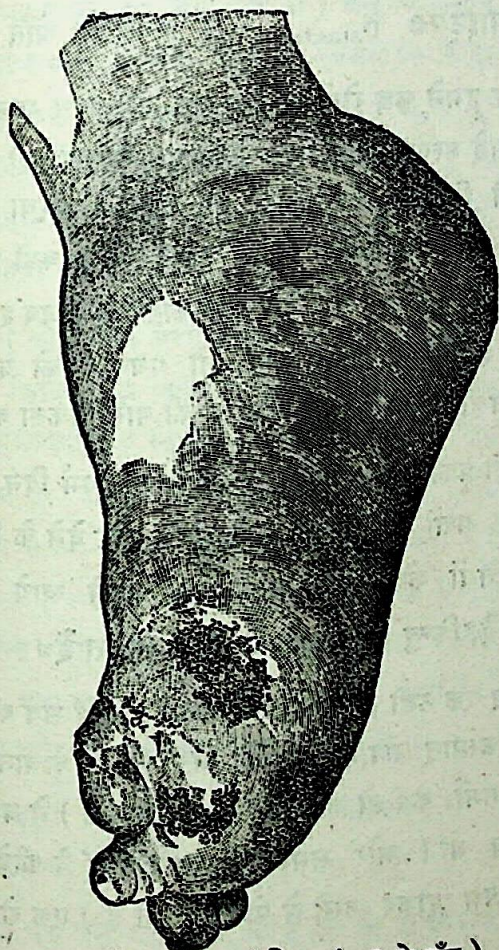
चित्र सं० ७ (चित्र सं० २ के पाँव)

ही बढ़ गया है अर्थात् जिस दशा में अङ्गों की वास्तविक शक्ति नष्ट हो चुकी है। ऐसे अभागे लोगों को भी मेरी चिकित्सा प्रत्येक दशा में आराम अवश्य पहुँचायेगी (उनका कष्ट कम करेगी) और बिना किसी कष्ट के शान्ति-पूर्वक उनकी मृत्यु हो सकेगी।

खुजली-भिन्न-भिन्न प्रकार के कीड़े

गेंडुए—पैरेसाईट्स* Parasites (जूँ इत्यादि) आँत का उतरना

इस स्थल पर हमने कुछ रोगों को फिर एक ही साथ रक्खा है जिनका मिश्रित कारण एक ही है चाहे प्रत्यक्ष चिह्नों में उनमें परस्पर कितनी ही भिन्नता क्यों न हो। ऐसी दृढ़ साक्षियों से जिनका खंडन नहीं हो सकता—(यथा वह नैरोग्य लाभ जो ऐसे रोगों में मेरे प्राचीन चिकित्सागार में प्राप्त हुए हैं) बड़ी दृढ़ता से मैं इस बात को कहता हूँ कि इन समस्त रोगों का एक ही कारण है। जब हम खुजली और उसी के सम्बन्ध के दूसरे रोगों को चिकित्सा करें तो प्रथम हमको यह स्पष्ट रीति से जान लेना चाहिये कि खुजली कैसे बढ़ती है और उसकी वास्तविकता क्या है ?

यह बात भली प्रकार से जानी हुई है कि एक गर्म दिन, वसन्त ऋतु में वृक्षों के हरे और ताजा पत्तों पर सहस्रों कीड़े उत्पन्न कर देने के लिये पर्याप्त है। और उन सुन्दर नवीन पत्तियों को अपनी आंखों के सामने खाये जाते देखकर हमको अत्यन्त शोक होता है, किन्तु हम उसको रोकने में विवश हैं।

इसके पश्चात् एक ठंडी रात्रि आती है और उसमें सब कीड़े पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं—ऐसे ही अकस्मात् लोप हो जाते हैं जैसे कि वे अचानक ही उत्पन्न हुए थे। एक हो रात्रि में गर्मी कम हो जाने से नेचर (प्रकृति) ने वह काम कर दिया जो हमसे होना असम्भव था। और समस्त पैरेसाईट्स (वे कीड़े जो एक चीज़ चाहे शरीर के भीतर उत्पन्न होकर उसी से पोषण पाते हैं) एक से ही प्राकृतिक नियम के अधीन हैं।

---

*—उन जीवधारियों से अभिप्राय है जो दूसरे जीवधारी के शरीर पर या उसके भीतर रह कर उससे अपना भोजन लेते हैं—यथा पेट के भीतर के गेंडुए इत्यादि भिन्न-भिन्न प्रकार के कीड़े और जूं इत्यादि।

इन विचारों से हमको यह परिणाम निकालना चाहिये कि खुजली के कीटाणु, उदरस्थ-कीटाणु—जूं और अन्य प्रकार के पैरेसाईट्स उसी दशा में जीवित रह सकते हैं जब कि उनको भोजन प्राप्त करने का उचित साधन मिलता है। ऐसा साधन केवल उस शरीर में मिल सकता है जो अस्वस्थ है अर्थात् जिसमें विकृत पदार्थ का भार है। इसके अतिरिक्त ऐसे जीवधारियों के जीवित रहने की योग्यता की निर्भरता एक उच्च श्रेणी की उष्णता पर है। जो (उष्णता) अनुभव प्रत्येक स्थान पर बतलाता है अर्थात् केवल उन्हीं शरीरों में पाई जाती है जिनमें कि विकृत पदार्थ का भार है। यदि हम असाधारण उष्णता को पुनः मध्यम श्रेणी पर लाते हैं और उसी के साथ निकृष्ट रसों को शरीर से बहिष्कृत करने में सफलीभूत हो जावें तो पैरेसाईट्स का भविष्य में जीवित रहने का सन्देह नितान्त ही दूर हो जाता है, और अन्त को वह बड़े वेग से लुप्त हो जाते हैं।

प्रत्येक मनुष्य को जिसने मेरी व्याख्याओं का अध्ययन ध्यानपूर्वक किया है यह बात स्पष्टतया विदित हो जायगी कि आन्तरिक-उष्णता के घटाने का उपाय केवल मेरे द्वारा आविष्कृत ठंडे स्नानों, साधारण भोजनों और मेरी अन्य प्रसिद्ध क्रियाओं से ही प्राप्त है। वास्तव में विकृत पदार्थ के भार के विचार से प्रत्येक मनुष्य की दशा के अनुसार उनका प्रयोग करना चाहिये। निदान मेरी "न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग" की दृष्टि से (क्योंकि इन मुख्य रोगों का भी वही मिश्रित कारण है जैसा कि प्रायः अन्य समस्त रोगों का) उसी एक ही प्रकार की चिकित्सा का जिसको किसी अन्य रोग में भी असफलता नहीं हुई है प्रयोग होना चाहिये। औषधियों द्वारा चिकित्सा शरीर को और भी अधिक हानि पहुँचाती है।

मुझे इस अवसर पर फिर इन रूखी घटनाओं की व्याख्या कुछ मनोरंजक उदाहरणों द्वारा करने की आज्ञा दीजिये :—

प्रथम घटना एक ऐसे भद्र पुरुष की है जो कि अन्तड़ियों के भिन्न-भिन्न प्रकार के कीटाणुओं के कष्ट में ग्रसित था। इस दोष के साथ ही साथ स्वाभाविक रीति से पाचन-शक्ति और स्नायु सम्बन्धी शिकायतें भी लगी हुई थीं जिन्होंने उसे मरघट के किनारे तक पहुँचा दिया था। यों कहना चाहिये कि भीतर की ओर से वह जल कर भस्म हुआ जाता था और उसके मल में छोटे-छोटे कीटाणु अधिकता से उपस्थित थे, तो भी मेरी चिकित्सा विधि से उसे आराम मिला—दूसरे ही महीने में उसका

कारण दूर हो गया था और इसी कारण कीड़े भी जाते रहे थे। और चूँकि रोगी ने चिकित्सा का क्रम प्रचलित रक्खा था, अतः उसकी दशा रोग से परिवर्तित होकर उत्तम निरोगता की ओर अग्रसर हो गई।

आन्तरिक उष्णता को कम करने से और निदान विकृत पदार्थ को निकलने से ही इस अवसर पर यह सम्भव हुआ कि आन्तरिक सड़न की कार्य्यवाही जिसके कारण कीड़े हुए थे, रोकी गई। फ्रिक्शन हिप और सिट्ज़ बाथ्ज़ के द्वारा, पसीने में वृद्धि देकर और साधारण (सात्विक) बिना पके हुए भोजन से यह बात बहुत शीघ्र प्राप्त हुई थी।

एक दूसरी चिकित्सा अर्थात् खुजली का वर्णन इस अवसर पर औषधियों द्वारा वास्तविक चिकित्सा की योग्यता के प्रकट करने के लिये किया जाता है:—इस रोग के रोगी की (जिसकी आयु १७ वर्ष की थी) चिकित्सा भिन्न-भिन्न अस्पतालों और उन मुख्य-मुख्य चिकित्सालयों में (जो विशेष कर निर्बल रोगियों के लिये बनाये गये थे) असफलता के साथ होती रही थी—अन्त में एक प्रोफ़ेसर ने उपालम्भ पूर्ण शब्दों में उसे मेरे पास आने को कहा, क्योंकि उसके पास अब कोई साधन ही न था।

रोगी ने यह देख कर कि औषधियों द्वारा चिकित्सा कराने से अब लाभ की कुछ आशा नहीं है अत्यावश्यक समय में यह सम्मति स्वीकार करली। उसके हाथ और पाँवों के देखने से भय लगता था—अपने मुखाकृति विज्ञान द्वारा मैंने जान लिया कि रोगी वर्षों से पेट के एक निकृष्ट रोग में ग्रसित रहा था—जोकि पाचन-शक्ति की निर्बलता से उत्पन्न हुआ था। दोष युक्त रस और रक्त जो इस प्रकार उत्पन्न हुए थे खुजली के लिये स्वाभाविक ही एक अत्युत्तम पोषण करने वाले साधन बने। खुजली के कीड़े की तुलना अत्यन्त उत्तम रीति से बैसिलस Bacillus (छूत वाले रोगों के बारीक कीड़ों) से की जा सकती है जो वहीं अधिक वृद्धि पाता है जहाँ सड़न होती है, क्योंकि बिना किसी उचित साधन के उसका अस्तित्व ही नहीं रह सकता।

इस अवसर पर फ्रिक्शन हिप और सिट्ज़ बाथ, स्वाभाविक भोजन और कभी-कभी स्टीम बाथ्ज़—अत्युत्तम चिकित्सा सिद्ध हुई हैं। पाचन-शक्ति ने शीघ्र ही उन्नति की और खुजली भी अपना पोष्य-भोजन न मिलने से उसी के साथ-साथ कम होने लगी। खुर्दबीन (सूक्ष्म-वीक्षण यंत्र) से परीक्षा करने पर प्रकट हुआ कि खुजली

के कीड़े नष्ट होते जाते हैं—तीन सप्ताह के भीतर केवल थोड़े से कठोर इतस्ततः पृथक-पृथक स्थानों में ज्ञात होते थे—और चतुर्थ सप्ताह में उनका एक भी चिह्न शेष न रहा था। रोगी का स्वरूप पूर्णतया परिवर्तित हो गया—वह इतना बदल गया था कि उसकी पहिचान भी कठिनाई से होती थी। रोगी की प्रकृति ने वह काम स्वयं कर दिया जिसे सरकार द्वारा प्रमाणित डाक्टरों की कला भी न कर सकी और वह भी उसी पूर्व विवर्णित उपाया द्वारा, बिना औषधि प्रयोग किये और बिना शस्त्र क्रिया का अवलम्बन लिये ही प्राप्त हुआ था।

आँत का उतरना—आँत के उतरने का कारण पेडू के भीतर विकृत पदार्थ का भार और उसके साथ अत्यन्त तनाव का होना होता है। आमाशय की झिल्ली उन स्थानों में जहां कि उसको तनिक-सा भी अवरोध अनुलक्षित होता है अँतड़ियां भीतरी दबाव की अधिकता के कारण शिगाफ़ (छेद) कर देती हैं और बाहर निकल आती हैं। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में झिल्ली फटने के स्थान नितान्त ही भिन्न होते हैं, किन्तु इसका कारण सदैव एक ही है। निदान यह भूल है यदि इस रोग का कारण-चोट में, या गिर पड़ने में, या इसी प्रकार की अन्य घटनाओं में खोजा जावे। यह बातें निश्चय-पूर्वक झिल्ली फटने का निकटवर्ती साधन हो सकती हैं, परन्तु उसका मुख्य कारण कदापि नहीं। मेरी चिकित्सा विधि के प्रयोग करने और इस ढँग से शरीर से विकृत पदार्थ के निकालने से इस प्रकार के शिगाफ़ों (छिद्रों) को आराम हो जाता है।

टर्स* Turse का लगाना जो वास्तव में इस रोग की अपूर्ण चिकित्सा है नितान्त ही अनावश्यक हो जाता है।

इस रोग में भी मेरी चिकित्सा को बड़ी भारी सफलता हुई है। यह फिर देखा जाता है कि रोगों के एक होने का सिद्धान्त हम को बिना सहायता पहुँचाये हुए नहीं छोड़ता।

इसकी निर्भरता कि आराम कितनी देर में होगा—वस्तुतः विकृत पदार्थ के भार पर ही है और इस पर कि शिगाफ़ (छिद्र) पुराना हो गया है या नहीं। इसके अतिरिक्त वृद्धों की दशा में जिनमें कि जीवन शक्ति कम हो गई है—पूर्ण रूप से ऐसी निरोगता न होगी जैसी कि युवक रोगियों में।

*एक प्रकार की पेटी होती है जिसे डाक्टर लोग आंत उतरने के रोग में प्रयुक्त करते है।

सर्तान CANCER बदगोश्त PROUD FLESH

सर्तान*—यह भयानक रोग और ऐसा रोग कि जिससे सभी मनुष्य भय भीत होते हैं, ठीक प्रकार से वाह्य प्रभावों और उनके दोषों के कारण उसका उत्पन्न होना नहीं कहा जा सकता। इसकी समस्त वास्तविकता दूसरी ही बातों में ढूंढ़नी चाहिये, अर्थात् उन कार्यवाहियों में जो कि मनुष्य के शरीर के भीतर होती रहती हैं—और इस भयानक रोग का निकटस्थ कारण बनती हैं।

जलोदर और यक्ष्मा के समान सर्तान भी उन रोगों का जोकि इसके पूर्व हो चुके हैं और आरोग्यता को प्राप्त नहीं हुए हैं परिणाम है। सर्तान सदैव कुछ पहिले रोगों के होने के पश्चात् ही हुआ करता है, विशेष कर लिङ्गरोग अर्थात् सिफ़लिस Syphilis (आतशक) के पश्चात्। इससे कुछ प्रयोजन नहीं कि यह रोग सीधे मार्ग से उत्पन्न हुए हैं कि नहीं। मुख्य बात विकारी द्रव्य की विद्यमानता है जो कोई न कोई मार्ग शरीर में ऐसा निकाल ही लेती है जिस मार्ग पर रोग की अन्तिम दशा के अनुसार वह सर्तान के बच्चे, रसौलियाँ और सड़े हुए स्थान उत्पन्न हो जाते हैं, जो मनुष्य मात्र के लिये अत्यन्त भयानक हैं। मेरे मुखाकृति विज्ञान द्वारा सर्तान की ओर जानेवाली चेष्टाएं वर्षों पूर्व जानी जा सकती हैं। सर्तान के वास्तव में प्रगट होने के बहुत काल पूर्व गर्दन पर गुमड़ियाँ और सूजन सदैव हुआ करती है, जिससे समस्त शरीर में कुछ वस्तुओं की उत्पत्ति की ओर संकेत होता है और

---

* यह एक शारीरिक रोग है जिसमें, एक शरीर में निकृष्ट और नवीन कृत्रिमता उत्पन्न हो जाती है। कहते हैं कि सर्तान की बनावट में रेशेदार जाली पाई जाती है और उसमें थैलियाँ होती हैं। यह थैलियाँ बड़ी-बड़ी और भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं और उनके अन्दर न्युकलियाय और नाना प्रकार के अणु पाये जाते हैं। न्युकलियाय एक बड़ा गोल अण्डाकार आकृति का दाना होता है जिसके भीतर अन्य सूक्ष्म-सूक्ष्म अणु या न्युकलियाय पाये जाते हैं रेशेदार जाली और सैलूज़ का पालन पोषण खूनी अबुर्दों से होता है जोकि उनमें पैदा होजाते हैं।

विशेष कर पेडू में बवासीर के मस्सों का अधिकता से हो जाना प्रकट होता है। यह बवासीर के मस्से इतनी वृद्धि पा सकते हैं कि पाचनशक्ति की नाली में ऐसी रुकावट उत्पन्न कर दें कि मल-मूत्र स्वाभाविक रीति से न निकल सकें। सर्तान के उन भिन्न-भिन्न रोगियों में जिनकी मैंने चिकित्सा की है सदैव यह देखा गया है कि उनकी पाचन-शक्ति अति बिगड़ी हुई थी—जुलाब और पिचकारी के बिना उनका मल-त्याग नहीं होता था। मैंने इसी प्रकार से यह भी देखा है कि दस्तावर (रेचक) औषधियाँ विशेष कर गोलियाँ चिरकाल तक सेवन करने पर सदैव एक आन्तरिक सड़न की दशा उत्पन्न कर देती हैं जो सिल और विशेष कर सर्तान उत्पन्न कर देती हैं। शरीर वर्षों पर्यन्त ऐसी जुलाब की औषधियों और उनके कारण से जो पाचनशक्ति और पेडू के स्नायु (रंगों) में उत्तेजना उत्पन्न होती है उसको सहार सकता है। किन्तु शनैः-शनैः स्नायु ऐसे भड़क जाते हैं कि वे पहिले से अधिक गति दिये जाने के बिना अपनी क्रिया करने में समर्थ नहीं होते हैं। सिल और जलोदर के सदृश प्रथम हो चुके अन्य रोगों की सम्पूर्ण भिन्न-भिन्न आन्तिम-दशाओं के समान, सर्तान का कारण भी अस्वाभाविक रीति से जीवन व्यतीत करने, छक-कर भोजन करने, आवश्यकता से अधिक भोजन करने और विशेष कर स्नायुओं को प्रकाशित करनेवाली वस्तुओं वा औषधियों से, तथा बहुत हर्कत देने से, हुआ करता है।

एलोपैथिक डाक्टरी इस स्थान पर भी उसी प्रकार विवश है जैसी कि रोग की और अन्तिम दशाओं में। यह शोक की बात है कि डाक्टर किस प्रकार सर्तान को, उसके बच्चों और नये उत्पन्न हुए माँस पर तेजाब वा नश्तर से शस्त्र क्रिया (अमल जर्राही) करके (जैसा कि शाहनशाह फ्रेडिक स्वर्गवासी की दशा में हुआ था) आराम करने का यत्न करते हैं। वे लोग यह निश्चय करना भूल जाते हैं कि यह नई उत्पत्ति कहाँ से होती है? रोग की वास्तविक प्रकृति से वे सर्वदैव अनभिज्ञ होते हैं, नहीं तो इस रोग में वे अपनी चिकित्सा के लिए केवल रोग की अन्तिम दशा को (मानो विकारी द्रव्य को सड़ी हुई दशा में) अर्थात् माँस की नवीन उत्पत्ति कदापि पसन्द न करते। और नवीन माँस की उत्पत्ति का कारण जानने के पश्चा उनको यह अवश्य ज्ञात हो गया होता कि माँस से बढ़ जाने का कोई कारण अवश्य होगा। अतएव उस कारण के नष्ट करने पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है।

सड़ी हुई दशा के साथ में, और अतः सर्तान की दशा में भी, प्रायः असहनीय

पीड़ा हुआ करती है। पुराने डाक्टर रोगी को आरोग्य करने के लिये अफ़ीम का सार पिचकारी द्वारा रुधिर में पहुँचाते हैं। इस प्रकार से कुछ काल के लिये मनमाना परिणाम प्राप्त तो हो जाता है किन्तु सम्पूर्ण शरीर और स्नायु के कर्तव्यों को हानि पहुँचती है। और यह अफ़ीम का सार इस सम्बन्ध को अपने अन्तिम प्रभाव से और भी अधिक हानि पहुँचता है। ऐसे समय मैडिकल साइन्स ठीक उस भालू की नाईं कार्य्य करता है, जिसने अपने स्वामी की नाक पर मक्खी मारने के अभिप्राय से पत्थर मार कर न केवल मक्खी ही को मारा बल्कि अपने स्वामी को भी मार डाला था।

हम विषाक्त औषधियों का सेवन क्यों करें, जब कि मेरे स्नानों की चिकित्सा में एक प्राकृतिक साधन ऐसा उपस्थित है, जो अफ़ीम के सार की अपेक्षा पीड़ा को अति शीघ्र स्पष्ट रीति से न्यून करता है और शरीर को फ़ौलाद की नाईं पुष्ट बना देता है। तब अफ़ीम के सार का प्रभाव अपने आप जाता रहता है। सर्तान के रोग में भी मादक वस्तुओं की बड़ी इच्छा रहती है जैसा कि डिपसोमेनिया Dipsomania (वह रोग जिस में कि शराब पीने की बड़ी इच्छा होती है) के रोग में जो शरीर की जलन वा सड़न की दशा के कारण ही होता है। यह केवल स्वाभाविक-चिकित्सा द्वारा ही सम्भव है कि सदैव नशा पीने की बढ़ती हुई इच्छा पर अधिकार प्राप्त कर सकते हैं।

तृतीय भाग में व्रण चिकित्सा के वर्णन में जहाँ बहते हुए घावों का वर्णन है सर्तान के स्वभाव और कारण के सम्बन्ध का पूरा विवरण पाया जावेगा। मैं इस अवसर पर केवल कुछ बातें सर्तान के रोगियों की आरोग्यता प्राप्त करने के सम्बन्ध में कहूँगा। प्रथम इस बात की कुछ चिन्ता नहीं कि यह रोग किस रूप और किस स्थान पर प्रकट होता है। यह बात दूसरे दर्जे पर आवश्यक है कि सर्तान जिह्वा का है या छाती का है, गर्भाशय का है या आमाशय का है। इस बात पर कि रोगों से स्वस्थ होने की कितनी आशा की जावे रोग की उस विशेष दशा से जिसमें कि यह प्रकट होता है कुछ प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि रोग के सम्पूर्ण भिन्न-भिन्न रूपों का एक ही कारण है। रोगी के विकारी द्रव्य के बोझ के अनुसार शरीर में विजातीय-द्रव्य का स्थान परिवर्तित होता रहता है। शरीर पर किन्हीं अंशों तक उस रीति का प्रभाव जो विकारी द्रव्य की वाष्प धारण करती है और

उसके दबाव का होता है। मेरी चिकित्सा रीति से सर्तान को आरोग्यता हो सकती है, परन्तु निश्चित आरोग्यता की आशा वही मनुष्य कर सकते हैं जिनकी पाचन-शक्ति कुछ अच्छी होती है और जिन में पर्याप्त जीवन शक्ति उन भयानक समयों पर जो कि अवश्य आते हैं, जय प्राप्त करने का साहस रखती है। केवल वही मनुष्य जो मेरी चिकित्सा रीति को भली भाँति जानते हैं सर्तान को आराम कर सकेंगे क्योंकि यह रोग सिल और जलोदर, की भाँति एक अत्यन्त भयानक रोग है।

एक पचास वर्ष की आयु का भद्र पुरुष नासिका के सर्तान में ग्रस्त था और डाक्टरी विद्या के बड़े-बड़े प्रतिष्ठित वैद्यों से अपनी चिकित्सा करा चुका था। वे लोग केवल यह बतला सके कि उसको सर्तान बीमी अर्थात् (नाक का सर्तान) था। परन्तु वे उसको स्वस्थ न कर सके क्योंकि उनको उसके कारण व स्वभाव का ज्ञान न था। उन सम्पूर्ण डाक्टरों ने तेज और विषयुक्त औषधियाँ उसकी नाक में लगाईं थीं जिससे सर्तान के स्थानिक चिह्न नष्ट हो जायें। परन्तु ठीक-ठीक उसी प्रकार जैसा कि एक पेड़, केवल उसी स्थान पर सड़ा हुआ नहीं होता जहाँ कि उसमें कोई गली हुई शाखा हो, उसी प्रकार सर्तान में वह बाहरी गला हुआ व निकलती हुई फुन्सियों का नवीन स्थान ही स्वयं रोग नहीं है, प्रत्युत यह वह स्थान है कि जहाँ पर रोग अत्यन्त वृद्धि पा गया है। जब पेड़ काट डाला जावे तो हमें यह ज्ञात हो जाता है कि शाखा का सड़ना उस पेड़ का कोई स्थानिक रोग नहीं है। डाक्टर शरीर को चीर कर पहचान सकता है (यदि उसमें इस बात के पहिचानने की क्षमता हो) कि सर्तान के रोगी की सम्पूर्ण देह रोगी थी। यदि इस बात को पहिले ही जान सकें तब निश्चय ही रोगी को कुछ लाभ हो सकता है।

मेरे रोगी की पाचनशक्ति वर्षों से मंद हो गई थी। बड़े आश्चर्य की बात है कि वर्तमान समय के डाक्टरों के ध्यान में यह बात न आई। वह केवल रोगी की नासिका की ही चिकित्सा करते रहे। यदि उन्हें मेरे मुखाकृति विज्ञान का किंचित् भी ज्ञान होता तो उन्हें नासिका की सड़न निश्चित रोगी के पेड़ू के भीतर की ऐसी ही दशाओं का पता देती। सौभाग्य वश अब रोगी ने इस सम्पूर्ण स्थानिक चिकित्सा की मूर्खता को समझ लिया, और क्योंकि वह इस विचार का मनुष्य था कि नेचर ने प्रत्येक वस्तु भलाई के लिये बनाई है, आशा से प्रेरित होकर मेरे पास आया। उसकी नासिका

और ऊपर का होठ बिलकुल खा लिये गये थे । नासिका की नोक लोप होने ही वाली थी और नासिका की त्वचा के वर्ण से सड़न ज्ञात होती थी। बढ़ा हुआ कुपच और अनियमित मूत्र के आने की पीड़ा भी उपस्थित थी, परन्तु हर्ष की बात है कि इन्होंने रोगी के मन की प्रसन्नता पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं डाला था।

उसके शरीर पर मेरी चिकित्सा का शीघ्र ही प्रभाव पड़ा। उसमें जीवन-शक्ति का अब भी अभाव न था। उसकी पाचन शक्ति आदि सभी दशाएँ शीघ्र उन्नति करने लगीं। प्रति सप्ताह सतान की जलन स्थानिक चिकित्सा के बिना ही न्यून होती गई। प्रथम यह बहुत ही सुर्ख हुई। त्वचा का वर्ण चार मास के पश्चात् साधारण हो गया। इस काल में नासिका और ऊपर का होठ भीतर से अच्छा हो गया और उसमें व्रण का कोई चिह्न शेष न रहा।

निम्न लिखित प्रकार से चिकित्सा की गई थी—

(१) सम्पूर्ण अनुत्तेजनीय और खुश्क भोजन जो रोगी की दशा और पाचन शक्ति के लिये अति हितकर थे, उसे दिये गये।

(२) मेरे फ्रिक्शन हिप और सिटिज बाथ्ज द्वारा चिकित्सा हुई।

(३) प्रत्येक सप्ताह में एक या दो बार स्टीम बाथ्ज, सम्पूर्ण शरीर अथवा केवल शिर के लिये दिये जाते थे।

जब कि पीड़ा और जलन असह्य हो जाती थी तो दो-दो घंटे के पश्चात् बाथ्ज (स्नान) की आवश्यकता होती थी। स्नान लेने की दशा में पीड़ा सदैव ही न्यून हो जाती थी-और रोगी को बहुत आराम प्रतीत होता था। दूसरे ही दिन आंतरिक सड़ी हुई जलन ने नीचे की ओर चलना आरम्भ किया, और उस स्थान पर जो फ्रिक्शन सिटिज बाथ में रगड़ा जाता है घाव के आकार में प्रगट हुई—इस से रोगी अत्यन्त चिन्तातुर हुआ, क्योंकि ऐसी दशा के संग स्वाभाविक ही वेदना अधिक हुआ करती है। परन्तु मैंने इसका कारण रोगी को समझा दिया और प्रगट कर दिया कि वह या तो रोग का उन्मूलन करनेवाली उस क्रिया को मौनता (खामोशी) के साथ सहे अथवा निश्चित मृत्यु को अङ्गीकार करे। मैंने उसका ध्यान इस ओर आकर्षित किया

कि जितनी जलन रगड़ के स्थान पर प्रकट हुई है उतनी ही नाक से कम हो गई है। इस बात को रोगी ने समझ लिया और आगे को मेरी अनुमति के अनुसार चलना निश्चय कर लिया। इस दुःखदाई दशा से छुटकारा केवल बार-बार स्नान लेने से ही हो सकता है। उसे अपने इस मन्तव्य को प्राप्त करने पर प्रसन्नता प्राप्त हुई।

चिकित्सा के समय में रोग। के पुराने रोग, जो औषधियों से दब गये थे और इस दबने की अवस्था को ही स्वस्थता समझ लिया गया था पुनः उखड़े। प्रथम वह एक गुर्दे के पुराने रोग में कुछ रोज ग्रसित रहा, इसके पश्चात लिङ्ग के रोग में। परन्तु दोनों में ही पहले की अपेक्षा बहुत कम कष्ट हुआ। नासिका के सर्तान के लिये यह पिछले रोग प्रारम्भिक दशाएँ थीं और जब उनकी चिकित्सा औषधियों से हुई तो उन्होंने उसको (सर्तान को) उत्पन्न कर दिया।

नासिका के सर्तान की चिकित्सा में जो मवाद निकला उससे इस बात में कुछ भी संशय शेष न रह गया। जो पीप निकला उसमें बहुधा ठीक उन औषधियों की दुर्गन्ध आती थी जिन का उस रोगी ने गुर्दे और लिंग के रोगों में सेवन किया था। जैसा कि हम कथन कर चुके हैं इसका कारण यह है कि शरीर विषयुक्त औषधियों को लसदार वस्तु (चिपकती हुई चीज) में लपेट लेता है। यह लिपटे हुए खण्ड शरीर में रह कर आन्तरिक उष्णता के प्रभाव से शनैः-शनैः जम कर शुष्क हो जाते हैं। जल की यथार्थ चिकित्सा से यह सुदृढ़ कठोर लसदार खंड फिर घुल जाते हैं और यदि वास्तविक शक्ति उन्नति कर जाये तो शरीर से निकल जाते हैं। मैंने अपनी चिकित्सा में इसकी सत्यता सहस्रों रोगियों में पाई है, और इसी प्रकार यह भी देखा है कि (पहले की) औषधियों का सेवन, मेरी रीति से चिकित्सा करते हुए रोग से वास्तविक मुक्त होने में कितना अधिक विलम्ब लगाता है। शरीर से औषधियों का निकलना ही रोगी को अत्यन्त कष्ट देता है। मेरे रोगी ने भी इसका अनुभव किया परन्तु उसकी दशा में प्रति क्षण उन्नति होती गई। इस कारण वह मेरी चिकित्सा-रीति से उस समय तक पर्यन्त चिकित्सा करता रहा जिस समय तक उसको इस कठिन कठिन रोग से छुटकारा न मिल गया।

यह न समझना चाहिये कि वह स्थान भी फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ में

रगड़ते हैं प्रत्येक रोगी की दशा में शीत-जल के साथ शनैः शनैः रगड़ने से जखमी हो जायेंगे।

सिट्‌ज़बाथ में रगड़ने से जो घाव उत्पन्न होते हैं (जो कि विशेष कर पुराने रोगों में जैसा कि सर्तान में दृष्टिगत होते हैं) वे मुख्य दशाओं में और नियमित रूपों में ही हो जाते हैं। यदि कोई आन्तरिक जलन गुप्त-जलन उपस्थित न हो, अथवा विकारी द्रव्य किसी अन्य रीति से सुगमता से निकलता हो तो रगड़ के स्थान पर कोई घाव नहीं होवेगा। मैंने ऐसे रोगियों की चिकित्सा की है जो प्रति दिन डेढ़ घंटे से दो घंटे पर्य्यन्त दो वर्ष स्नान करते रहे परन्तु घाव की पीड़ा उनको कदापि न हुई। कोई केवल कुछ दिन के लिये ही इस पीड़ा में ग्रस्त हुए अर्थात् पुराने वा गुप्त रोग की तीक्ष्ण दशा में परिवर्तित होने के समय अर्थात् नाज़ुक समय में* और उस समय भी, केवल इतने काल के लिये जब तक कि तीव्र अन्तर्दाह नीचे खिंच कर आता रहा था। स्नान करते-करते घाव उसी प्रकार जाता रहा जैसा कि वह उत्पन्न हुआ था। बहुत सी दशाओं में रगड़ के स्थान से कुछ दूरी पर छोटे वा बड़े खुले और बहते हुये घाव उत्पन्न हो जाते हैं, जिनसे सड़ा और उफान खाया हुआ पीप बराबर निकलता रहता है। यह पीप रगड़ से नहीं आता, जैसा कि बहुत से मूर्ख समझ लेते हैं, किन्तु केवल रोगी के शरीर की दशा के कारण आता है। यह पीप आन्तरिक गुप्त अथवा तीव्र दाह से, जो विकृत द्रव्य के सड़ने व उफान खाने से पैदा होती है, अतः यह पीप उस नाज़ुक समय का कारण है और कुछ नहीं। बस यह एक बड़ी भूल है यदि वे रोगी जो मेरी रीति के अनुसार स्वयं अपने घरा पर चिकित्सा करते हैं, इस प्रकार के घावों के प्रकट होने पर चिन्ता करें। चिकित्सा करने में इस प्रकार से शरीर का कार्य्य करना और विकारी द्रव्य का निकलना ही सम्पूर्ण रीति से इस बात को सिद्ध करता है कि स्नानों के प्रभाव से आरोग्यता होने लगी है। रगड़ के स्थान पर घाव और पीप का बहना स्वाभाविक उस समय बहुत ही निकृष्ट है जब कि अन्तर्दाह ने सर्तान की सी सड़ी हुई दशा उत्पन्न कर दी है। स्नान करने के समय रोगी को उचित है कि भीगे हुए वस्त्र की कई तह करके कई बर घाव के चारों ओर लपेटे और उसको जहाँ तक हो सके तर रक्खे।

* आशय है उस समय से जब कि रोग पलटा लेकर आरोग्यता की ओर झुकता है, उस समय रोग छिपी हुई दशा से निकल कर तीक्ष्ण दशा में प्रकट होता है।

सर्तान के एक और रोगी का वृत्तान्त कथन किया जाता है जोकि सर्व साधारण को रुचिकर होगा। एक स्त्री पचास वर्ष की आयु में सर्ताने पिस्ताँ (स्तन के सर्तान) से ग्रसित हुई। उस स्त्री से वाम स्तन पर शहर बर्लिन में उन्हीं प्रसिद्ध डाक्टरों ने जिन्होंने कि शाहनशाह फ्रेडारक स्वर्गवासी की चिकित्सा की थी शस्त्र-क्रिया (अमल जर्राही) की थी। दाहिने स्तन पर भी इस शस्त्र-क्रिया के पश्चात् शीघ्र सर्तान हो गया। वस उत्तम सफलता प्राप्त करने में शस्त्र-क्रिया पूर्ण तया अधूरी सिद्ध हुई। वास्तव में इस स्त्री की साधारण दशा पहले की अपेक्षा अधिक निकृष्ट थी, इसलिये वह स्त्री पुनः डाक्टरों की शरण में सर्तान के निकल आने के सम्बन्ध में सम्मति प्राप्त करने गई। बड़ी देर तक परीक्षा करने के पश्चात् उससे कहा गया कि दाहिने स्तन पर शस्त्र-क्रिया करने की आवश्यकता है, परन्च इसका शरीर इस शस्त्र-क्रिया के सहन करने के लिये अत्यन्त अशक्त है; अतः वह इस शस्त्र क्रिया से जीवित न रहेगी। आरोग्य करने की और कोई रीति डाक्टरी चिकित्सा में नहीं है। जर्मनी के प्रसिद्ध डाक्टरों से यह उत्तर पाकर घबराई हुई वह स्त्री मेरे पास आई। दाहिना स्तन सड़ी हुई दशा में था और कई कठोर रसौलियाँ, कोई-कोई अण्डे की नाईं स्याह रंग की और सड़ी हुई उत्पन्न हो गई थीं, जो स्तन से बग़ल तक चली गई थीं। पेड़ू भी रसौलियों से भरा हुआ, और परिमाण से अधिक बढ़ा हुआ और कठोर था। पाचन शक्ति मन्द थी। तीसरे वा चौथे दिन मल की कड़ी गोलियाँ जो अन्तर्दाह के कारण स्याह हो गई थीं निकलती थीं। पेशाव भी कम आता था, दुर्बलता से बड़ी चिन्ता उत्पन्न हो गई थी, बढ़ी हुई शिर पीड़ा ने शरीर के बल को प्रति दिन घटाया। उस स्त्री ने मेरी चिकित्सा को बड़े धैर्य से आरम्भ किया। शिर-पीड़ा बन्द हो गई। पाचन शक्ति प्रति सप्ताह शनैः शनैः उन्नति करने लगी। नित्य के स्थानों की संख्या बड़ी सावधानी से उस उस स्त्री की दशा और बल के अनुसार निश्चित करनी पड़ती थी। आरम्भ के छः सप्ताह के अनन्तर चिकित्सा स्वयं पीड़ा दायक रही। चिकित्सा काल में बर्लिन देश की ऐसी (सफल) शल्य-क्रियाओं का प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट रीति से प्रकट हुआ। बाम स्तन पर पुराने गहरे चिह्नों के बदले प्रथम सप्ताह के भीतर एक खुला और सड़ा हुआ घाव हो गया जो आरम्भ के चार सप्ताहों में कुछ और गहराई में बढ़ता रहा जब तक कि वह पन्द्रह वर्ग इञ्च का न हो गया। दाहिने स्तन की सूजन उतनी ही न्यून होती गई जितनी कि बाम में बढ़ती गई। शस्त्र-क्रिया

से बाम स्तन के सर्तान का प्रभाव किसी प्रकार नष्ट नहीं हुआ था प्रत्युत (विकारी द्रव्य के) सड़ने के स्थान का केवल सब से अन्तिम सिरा ही (नष्ट हुआ था, इस प्रकार से शरीर को विकारी द्रव्य की सर्तानी सड़न के बढ़ने को दूसरी ओर फेर देने पर विवश होना पड़ा। यहाँ तक कि अंत में इसके बाद की कठोर रसौलियाँ दाहिने स्तन से बग़ल तक होगईं यह सर्तानी सड़न दाहिने स्तन में परिवर्तित हो गई। मेरी चिकित्सा रीति से रोग को उलटे पैरों लौटना पड़ा। इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं कि बिकारी द्रव्य फिर उसी तीव्र-दशा में बाम स्तन में प्रकट हुआ, जिसमें कि शस्त्र-क्रिया के समय था। फिर इस अवसर पर एक आश्चर्यजनक प्रमाण इस बात का मिलता है कि नेचर उस दबाव को नहीं सह सकती जो डाक्टर लोग उस पर करने के लिये तैयार रहते हैं। चीर-फाड़ की प्रत्येक क्रिया वर्तमान समय की अयोग्यता और इस बात को कि यह वास्तविक आरोग्यता देने की अपेक्षा अधिक अप्राकृतिक है—प्रमाण है। अब मेरे पाठकगण इस बात को समझ लेंगे कि मैंने प्रथम पृष्ठ पर अपने साइन्स आफ़ हीलिंग को केवल बिना औषधियों के ही होना नहीं बतलाया बल्कि शस्त्र-क्रिया के बिना भी बतलाया है।

अब उस रोगिणी स्त्री का वर्णन पुनः आरम्भ करता हूँ। नियत स्नानों से वह पीड़ा जो इस स्त्री को उन परिवर्तनों के कारण जो शरीर में प्रकट होते थे सहनी पड़ती थी। अब स्नानों के पश्चात् वह अधिक सहने के योग्य हो गई। अभी बहुत काल व्यतीत न हुआ था कि खुले हुए और पीप निकलते हुए घाव फ्रिक्शन (रगड़) के स्थान पर प्रगट हो गये। यह निश्चित प्रमाण (सबूत) इस बात का था कि बढ़ा और सड़ा हुआ अन्तर्दाह बाहर को खिंचा जा रहा था। बग़ल की ओर रसौलियां भी इसी प्रकार शीघ्र ही मुरझा गई, और पेडू की ओर अधिक उतर कर शनैः-शनैः फैल गई। आरम्भ के दो मासों में उस रोगिणी स्त्री को केवल बिना छने हुए आटे की रोटी और फलों पर निर्वाह करना पड़ा। इस भोजन का सेवन करते हुए और तीन मास तक परिश्रम से फ्रिकशन बाथ लेते हुए, उसको इतना आराम हुआ था कि बाम स्तन पर के खुले हुए घाव लगभग अच्छे हो गये थे और वह अपने घर की यात्रा कर सकती थी।

मैंने सर्तान के अन्य बहुत से रोगियों की भी चिकित्सा की है। उन में से एक को जिह्वा का सर्तान था और दूसरे को कंठ का, अर्थात दोनों प्रकार के सर्तान

जो कि वर्तमान समय में बहुत ही सामान्य रोग हैं इन अवसरो पर भी मेरी चिकित्सा को सफलता प्राप्त हुई। कुछ सप्ताहों में ही कंठ के भीतर की गिल्टियाँ मुर्भा गईं और पीप निकल गया। इसके पश्चात् रोगी सरलता से निगल सकता था। जिह्वा के सर्तान की चिकित्सा में प्रत्येक फ्रिक्शन वाथ लेने के उपरान्त जिह्वा से एक मैले रंग की तह दूर हो जाती थी, इस स्थान की गुमड़ियाँ शरीर के निम्न भाग की अपेक्षा अति शीघ्र लोप हुईं। जिह्वा शीघ्र निर्दोष हो कर वास्तविक दशा में आगई।

इस रोग में सब से भयानक बात, पेड़ू में बवासीर की बहुत सी गिल्टियों का उपस्थित होना, हुआ करता है। उन अवसरों पर जहाँ रोगी गाढ़ा भोजन खाने के अयोग्य हैं प्रत्येक दशा में यह सम्भव है कि उनकी न सही जाने वाली पीड़ायें स्वल्प कर दी जायें और उनको मर्फिया के विष अर्थात् अफीम के सार के प्रभाव और भूख मरजाने से बताया जावे।

हम इस प्रकार से गिल्टियों और निद्रा न आने की शिकायत को दूर कर सकते हैं, परन्तु रोगी को पूर्ण आरोग्यता नहीं हो सकती, क्योंकि पतले भोजन के लगातार सेवन से भली भाँति मल-त्याग नहीं होता।

फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ्ज़ के प्रभाव श्वास घुटने के आक्रमण के समय (वह आक्रमण जो भयानक रोगों में बहुधा हुआ करते हैं) बहुत हो प्रसिद्ध थे। उन रोगियों में जिन पर ऐसे आक्रमण प्रतिदिन वार-बार हुआ करते थे मेरी चिकित्सा से स्नान आरम्भ करने के कुछ मिनट पश्चात् ही उनका भय जाता रहा। कंठ के भीतर जब कभी कोई रसौली फूटी और उसके भीतर से पीप ने नर्ख़रा के अन्दर प्रवेश किया अथवा रसौली न फूटने के पहिले फूल जाने के कारण श्वास घुटने का भय हुआ तो यह श्वास घुटने वाले आक्रमण हुए, जो फ्रिक्शन-बाथ से सदैव दूर कर दिये गये। ये कार्यवाहियाँ जिनके रोकने के लिये इस समय पर्यंत ट्रेक्यूटूमी* ही केवल एक ऐसा साधन है जिसकी परीक्षा की गई है अति ध्यान देने योग्य है।

ऐसे संकटापन्न समयों में फ्रिक्शन बाथ्ज़ वैसी ही अमूल्य सेवा करते हैं, जैसी

*ट्रेक्यूटूमी क्रिया, यानी नर्ख़रे पर जर्राही को कहते हैं जोकि हलक के सर्तान की दशा में डाक्टर लोग करते हैं।

कि वह डिफ़थीरिया रोग के श्वास घोटने वाले आक्रमणों में किया करते हैं। यह सोचने की बात है कि डाक्टरों को शस्त्र-क्रिया के अतिरिक्त इन आक्रमणों के दूर करने की कोई और चिकित्सा नहीं आती।

पिचकारी द्वारा सीरम (लोहू का पानी) को लोहू के अन्दर पहुँचाने से जैसा शफ़ाखानों की रिपोर्टों से ज़ाहिर है, शस्त्र-क्रिया की गिनती में किसी प्रकार से कुछ कमी नहीं हुई है। इससे ज्ञात होता है कि पिचकारी द्वारा रुधिर के भीतर सीरम पहूँचाना बहुत कम लाभदायक है।

बद्गोश्त — शरीर के चोट खाये हुए अंगों पर वह नवीन उत्पत्तियें और भिन्न-भिन्न प्रकार के उभार जिनको कि बद्गोश्त के नाम से पुकारते हैं सर्तान के मुक़ाबले में बहुत कम भयानक हैं। वे अति शीघ्र अच्छे हो सकते हैं। कारण यह है कि नियमानुसार बद्गोश्त अति शीघ्र पीप में परिवर्तित किया जा सकता है। इस प्रकार से विकारी द्रव्य के शरीर से निकलने में कम समय लगता है। इसकी सत्यता पूर्णतया रोगियों की चिकित्सा में देखी गई है जिनकी चिकित्सा मेरे द्वारा हुई है। उन में से कुछ का वृत्तान्त यहाँ उद्धृत किया जाता है।

एक स्त्री तीस वर्ष की आयु की इस रोग में ग्रसित थी। उसके दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली कुछ काल से बुरी दशा में चली आती थी। अँगुली के सिरे पर चोट लग जाने के कारण सूजन हो गई थी और अँगुली का सिरा शीघ्र ही अधिक विकृत हो गया था, यहाँ तक कि आघात के स्थान पर एक बड़ा परिमाण बद्गोश्त का उत्पन्न हो गया था। उस डाक्टर ने जो उसकी चिकित्सा कर रहा था शीघ्र उस माँस को काट डाला और उस जगह को चाँदी के तेजाब और उसी प्रकार के अन्य तेज़ाबों से जला दिया। ऐसा करने से उसे सफलता न हुई। बार-बार काटने और जला देने पर भी बद्गोश्त सदैव दुबारा हो जाता था, अन्त में अँगुलों सड़ने लगी तो डाक्टरों ने कहा कि रोग हड्डी तक पहुँच गया है और रोग को रोकने के लिये इस भाग को काट डालना चाहिये। परन्तु वह स्त्री शल्य-क्रिया (शस्त्र-क्रिया) कराने पर राजी न होकर मेरे पास आई। मैंने उसको समझाया कि अँग का काट डालना जिसकी कि डाक्टर ने सम्मति दी है अनावश्यक ही नहीं है प्रत्युत आरोग्यता को अति हानिकारक भी है। मैंने यह भी बतला दिया कि इस अँगुली की यह दशा किसी नियमित कारण से हुई है।

ज्योंही यह कारण दूर कर दिया जावेगा उँगली को भी आरोग्यता प्राप्त हो जावेगी। मैंने उसे आध-आध घण्टे के तीन-चार फ्रिक्शन बाथ्ज प्रति दिन लेने को बतलाया और तीन-चार दिन तक फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ लेने के पहिले उँगली को एक स्थानीय स्टीम बाथ देना बतलाया। वह स्त्री उस समय गर्भवती थी, इस कारण वह फ्रिक्शन सिटिज़ बाथ लेना न चाहती थी। परन्तु मैंने जब उससे कह दिया कि मेरे पास इससे अच्छा और कोई उपाय नहीं तो उसने तुरन्त मेरी सम्मति पर चलने का निर्णय कर लिया वरन उँगली कटवाने के सिवा और हो ही क्या सकता था। आरोग्यता बहुत ही शीघ्र प्राप्त हुई। प्रथम ही स्नान के उपरान्त बदगोश्त बहना बन्द हो गया। तीसरे दिन मांस का पीप बनने लगा, यह एक उत्तम चिह्न आरोग्यता का था। सड़न बन्द हो गई, हड्डियों और उँगली के लिये सम्पूर्ण भय जाता रहा, चौदह दिन में वह रुग्ण अंगुली अच्छी हो गई और इस पर रोग का चिह्न न रहा।

तीसरा भाग

औषधियों और शस्त्र-क्रिया के विना घावों की चिकित्सा और उनको स्वस्थ करना ।

उस दृढ़ और एक तरफ़ा ख़याल को जो लोगों ने शस्त्र-क्रिया (चीरा फाड़ी की) करने के विषय में स्थिर कर रक्खा है, हटाना कुछ सरल बात नहीं है। वर्तमान समय में लोगों का यह विश्वास है कि सम्पूर्ण प्रकार की चोटों को चाहे वे आन्तरिक हो अथवा बाह्य, और सम्पूर्ण प्रकार के घावों को भी केवल शस्त्र-क्रिया वा सड़न को रोकने वाली औषधियों के द्वारा ही आरोग्यता प्राप्त हो सकती है। उस बड़ी सफलता से जो मेरी चिकित्सा रीति ने उपलब्ध की है. प्रमाणित होता है कि यह विचार कितना निस्सार है। घावों की चिकित्सा द्वारा ही हाईड्रोपैथी (Hydropathy) (वह चिकित्सा रीति जिस में केवल जल से ही रोगों को आरोग्यता प्राप्त होती है) की आरोग्यप्रद अद्भुत शक्ति आश्चर्य जनक रीति से दर्शाई जा सकती है। हमारी चिकित्सा रीति के अतिरिक्त कोई अन्य अधिक प्रबल साधन ऐसा नहीं है जिसमें जल वा अन्य स्वाभाविक साधनों से घावों की चिकित्सा करने की चर्चा को फैलाया जावे।

मेरी चिकित्सा रीति में पीड़ा न होने के अतिरिक्त एक बात यह भी है कि इससे प्रत्येक आघात को उन औषधियों की चिकित्सा के समकक्षता में जिसको ऐन्टी सैपटिक Antiseptic(घावों की चिकित्सा उन औषधियों द्वारा जो सड़न को रोकने वाली बतलाई जाती है, यथा आईडो फ़ारम Idoform आदि) चिकित्सा करते हैं एक तिहाई समय से कम समय में आराम हो सकता है। इसका प्रमाण उन रोगियों से मिलता है जिनके आघातों को इस रीति से आरोग्यता प्राप्त हो चुकी है। मुझे कोई ऐसा रोगी नहीं मिला जिसकी चिकित्सा में सफलता प्राप्त न हुई हो। मेरी चिकित्सा रीति में एक और लाभ यह है कि कुरूपता करने वाले चिह्न ही, जो कि

शल्य क्रिया में अवश्य हुआ करते हैं, मिट जाते हैं—प्रत्युत आरोग्यता के पश्चात घावों के भी कोई चिह्न शेष नहीं रहते। जब कभी बाहरी आघात पहुँचने से जैसा कोई कटा हुआ घाव, भोंकने का घाव, कुचट, अग्नि से जलने का घाव हो जाय, तो यह बात शीघ्र देखी जायगी कि शरीर उसको आराम करने लगता है। चोट या घाव इत्यादि से जो स्नायु को झटका पहुँचा है उसके कारण रुधिर का और उसमें मिले हुए द्रव्य का बहाव चोट खाए हुए स्थान की ओर अधिकता के साथ होता है। द्रव्य के एकत्र होने की क्रिया से जो रगड़ लगी है उसके कारण अधिक गर्मी वा सूजन उस स्थान पर हो जाती है, विशेष कर कुचट और अग्नि से पहुँचे हुए घावों की दशा में इस कार्रवाई में अधिक पीड़ा हुआ करती है।

इस समय यदि हम इस दोष को दूर करने के लिये शरीर की यथार्थ रीति में सहायता करें तो आरोग्यता अति शीघ्र, बिना किसी पीड़ा व कष्ट के प्राप्त होगी। उपरोक्त पीड़ायें विशेष कर, उसी समय आरम्भ होती हैं जिस समय शरीर आरोग्यता प्राप्त करने की क्रिया आरम्भ करता है। वे पीड़ायें एक स्थानिक ज्वर के अतिरिक्त जो घाव के कारण हो जाया करती है कोई अन्य वस्तु नहीं हैं। यदि हम यह बात स्मरण रक्खे कि अन्य रोगों के समान घावों में भी हम को ज्वर ही के काम पड़ता है—चाहे यह ज्वर भिन्न प्रकार का भले ही हो, तो उससे निवृत्ति प्राप्त करने का मार्ग मालूम कर लेना कोई कठिन बात न होगी।

जैसा कि हमको ज्ञात हो चुका है सबसे प्रथम उस ज्वर के शान्त करने में हमको ध्यान लगाना उचित है—विशेष कर उस दशा में जहां कि आघात दूर तक पहुंच गया हो, जिसमें यह स्थानिक ज्वर सम्पूर्ण शारीरिक ज्वर न बन जाय।

यदि हम ज्वर के रोकने में सफलता प्राप्त कर लेवे तो पीड़ा तुरन्त ही जाती रहेगी। यह बात किसी अन्य स्थान पर इससे अधिक स्पष्ट नहीं देखी जा सकती कि ज्वर शरीर के उस यत्न के अतिरिक्त जो उसमें आरोग्यता देने और कमी को पूरा करने के लिये हुआ करता है और कुछ नहीं है। दुर्भाग्य से यह बात दिन रात देखने में आती है कि घाव के कारण उत्पन्न हुआ स्थानिक ज्वर सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है जिसके कारण घाव अधिक बिलम्ब से आरोग्यता प्राप्त करते हैं। इसका एक गम्भीर कारण है। आरोग्य मनुष्यों के घाव अति शीघ्र और अति सुगमता से

अच्छे हो जाते हैं। इस प्रकार से उस मनुष्य के घाव अच्छे नहीं होते जिसके शरीर में विजातीय द्रव्य का भार है और जो इस कारण आन्तरिक ज्वर में ग्रस्त है। ऐसी दशा में आघात का लगना और उसके संग स्नायु में रगड़ पहुंचना उबाल और सड़न की एक बड़ी कार्यवाही को आरम्भ करने के लिये एक प्रकार का कारण सुगमता से बन सकता है। परन्तु जहाँ ऐसा भी नहीं होता वहां आरोग्यता प्राप्त करने में विलम्ब लग जाता है। शरीर रुधिर की अधिक मात्रा आघात के स्थान की ओर भेजता है। इसलिए उस स्थान पर विजातीय द्रव्य अधिक पहुँचता है। अतः ऐसे स्थान पर विजातीय द्रव्य शीघ्र एकत्र होने लगता है; या यही स्थान एक खुले हुए घाव की आकृति में होकर द्रव्य निकालने वाली एक नाली बन जाता है।

मैंने उन पशुओं में, जिनकी किसी प्रकार की सहायता नहीं की जाती, यह देखा है कि उनके घावों को एक आश्चर्यजनक स्वस्थता अल्पकाल में ही प्राप्त हो जाती है। ऐसा स्वाभाविक दशाओं को ध्यान देकर समझने, में उस बहुत बड़े अन्तर को देख कर जो पशुओं और मनुष्यों में घावों के आराम होने में पाया जाता है, मुझे सदैव बड़ा अचम्भा हुआ है। इससे अधिक किसी और बात ने मुझे प्रकृति के भेदों पर ध्यान डालने और उनकी छान बीन करने की ओर नहीं लगाया। एक समय मेरी भी सर्व साधारण के समान यही सम्मति थी कि आघात के विषय में बेचारे पशु, उन मनुष्यों के समक्ष जिनके आधीन चिकित्सा के सम्पूर्ण उपाय हैं और जिनको भाई बन्धुओं से स्नेहमय रक्षा का अवसर प्राप्त है, अति निकृष्ट दशा में हैं। परन्तु अनुभव ने मुझे दिखा दिया कि पशुओं को उन रोगियों की अपेक्षा जो चिकित्सा घरो में रहते हैं, अति शीघ्र आरोग्यता प्राप्त होती है। मैं ध्यान देकर देखने से इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि इस विषय में यह केवल आकस्मिक ही नहीं हो सकता, बल्कि उस की तह में अवश्य कोई गम्भीर कारण होंगे। इसको स्पष्ट करने के हेतु कुछ उदाहरण देता हूँ।

एक बिल्ली लोहे के फन्दे में फँस गई थी, उसकी दाहिनी टांग घुटने से एक इञ्च अधिक ऊपर ठीक उस स्थान पर जहां से कि स्थूल मांस आरम्भ होता है टूट गई। बिल्ली फन्दे से अपनी टांग छुड़ाने के कारण उस फन्दे को इधर उधर घसीटती फिरी, जिससे उसकी टांग कई बार ऐठ गई और घाव मिट्टी और तिनकों से भर गया। जब उस बिल्ली को फन्दे से छुड़ा दिया गया तो वह अपनी टूटी हुई, टांग

ऊपर वायु में पीछे लटकाती हुई भागी। कुछ दिनों तक उसका पता न मिलने पर यह विचार हुआ कि वह मर गई।

इसके शायद एक सप्ताह पश्चात् एक रुग्ण बिल्ली पास के खलियान में देखी गई। ज्ञात हुआ कि यह वही बिल्ली है जो फन्दे में फँस गई थी। इस काल में उसकी पिछली टांग को एक आश्चर्यजनक रीति से आराम हो चुका था, किन्तु टूटने के स्थान पर एक बड़ी सूजन इस समय भी उपस्थित थी। इस बिल्ली की दुर्बलता से यह प्रतीत होता था कि उस ने सप्ताह भर कुछ नहीं खाया है। इस पर भी उसने अति स्वादिष्ट भोजन का त्याग किया, और न जल को छुआ। चोट वाली टांग को बड़ी चतुराई से वह सदैव एक ही दशा में फैलाये रखती थी और समय समय पर उस घाव को ऊपर से चाटती रहती थी। उसकी पीड़ा को इससे आराम पहुँचता था, क्योंकि वह इस स्थान को बड़ी शान्ति के साथ चाटती थी। इस बिल्ली के भूखे रहने का कारण भी ध्यान देने के योग्य है। जैसा कि हम जानते हैं, पाचन की क्रिया एक उफान और सड़न की क्रिया है और गर्मी की उत्पत्ति के बिना यह विचार में भी नहीं आ सकती। अब चूँकि इस जानवर के पास घाव के ठंडा करने के लिये जल प्रस्तुत नहीं था—उसने भोजन करना बिल्कुल छोड़ दिया जिससे कि शरीर में अधिक गर्मी उत्पन्न न हो। उसकी पशु-बुद्धि ने उसे बतला दिया कि ठीक-ठीक क्या करना चाहिये।

यह बिल्ली जो कि सूख कर हड्डियों का पिंजर ही रह गई थी कुछ दिनों के बाद फिर दिखाई पड़ी और कुछ दूध पीने के पश्चात तुरन्त ही खेलकूद करने लगी। एक मास के पश्चात् बिल्ली पूर्णतया आरोग्य हो गई और हड्डी टूटने के स्थान पर एक गांठ ही चोट का चिह्न रह गई थी, परन्तु यह उसके चलने फिरने में कुछ हानिकारक न थी।

अब सोचिये कि यदि चोट किसी मनुष्य के लगती तो उसके आरोग्य करने में सड़न को रोकने वाली चिकित्सा कौनसी रीति ग्रहण करती? चोट खाये हुये अंग का काट डालना आवश्यक हुआ होता, और कई मास व्यतीत हो जाते जिनमें कि रोगी इतनी आरोग्यता उपलब्ध करता कि शेष जीवन इसी लँगड़ेपन में व्यतीत कर सकता। मान लीजिये कि यदि टांग भी न काटी जाती तो उत्तम से उत्तम दशा में औषधियों द्वारा चिकित्सा से वह टांग सदैव के लिये अकड़ी हुई रहती।

पशुओं में से एक और उदाहरण लेकर इस स्थान पर वर्णन करता हूं जो घावों के विषय में मेरी चिकित्सा को समझने के लिये उत्तम होगा। एक कुत्ता बन्दूक के छर्रों से बुरी तरह घायल हुआ, लेकिन ऐसा नहीं कि वह मर जाये कोई कोई छर्रे उसकी अँगुली और पिछली टांगों में से पार हो गये थे और दो छर्रे गर्दन की त्वचा में घुसे हुए मौजूद थे। सौभाग्य से वायु की नाली, खाने की नाली (हलक़) और रुधिर बहने की बड़ी नसों को हानि न पहुंची थी। जब घावों में पीड़ा होने लगती तभी वह कुत्ता किसी छाया और तरी के स्थान को ढूँढ़ लेता, और अपनी देह विशेष कर घायल स्थान को, उस ताजी मिट्टी से ठण्डा कर लिया करता था, जो कि वह पहिली मिट्टी गर्म हो जाने पर नये सिरे से फिर खरौंच किया करता था। वह घावों को बराबर चाटता था, और सब प्रकार का भोजन करना उसने छोड़ दिया था। वह दिन में दो बार समीप के तालाब पर जल पीने जाया करता था और केवल यही उसका आहार था। इस दशा में भी उसे आरोग्यता शीघ्र प्राप्त हुई। पांच दिन में उसकी टांगों के वे घाव जिनको वह बराबर चाटता रहता था प्रायः अच्छे हो गये, यद्यपि अभी तक कुछ सूजन शेष थी। उसकी गर्दन जिसको वह चाट नहीं सकता था इसके विपरीत अधिक विलम्ब से अच्छी हुई, यद्यपि यह ऐसा बुरी प्रकार से घायल नहीं हुई थी जैसी कि टांगें। इस जानवर ने चोट लगने पर एक सप्ताह तक कुछ न खाया। इस समय में गर्दन के घाव भी सब प्रकार अच्छे हो गये। अब यह छर्रे त्वचा और मांस के बीच में घुसे हुए पड़े थे।

एक तीसरा दृष्टांत भी मेरे पाठकों के लिये मनोरंजक होगा, न्यू फौण्डलैण्ड देश के एक बड़े कुत्ते का दाहिना पंजा कोयलों की चलती हुई गाड़ी के नीचे आगया और बहुत ही कुचल गया। त्वचा ऊपर से अलग हो गई, और हड्डी खंड-खंड हो गई। वह कुत्ता चलने के योग्य न रहा, और मनुष्यों ने उसे उठाकर घर पहुँचा दिया। घर पर वह एक छायादार स्थान में घिसट कर जा बैठा और अपने पंजे को बराबर चाटता रहा। चार दिन पर्यन्त उस कुत्ते ने नाम मात्र को भी भोजन न चक्खा। उस समय में उसके घाव को इतना आराम हो गया कि वह तीन टांगों से इधर-उधर फिरने लगा। बीस दिन में वह फिर पूर्णतया अच्छा हो गया।

इन उदाहरणों से मानुषीय घावों की चिकित्सा सम्बन्धी बहुत सी लाभदायक बातें निकलती हैं इस दशा में भी जल से ठण्ढ पहुँचाना, भोजन से परहेज करना,

गर्मी पहुँचाने वाले प्रत्येक प्रकार के भोजनों को अंगीकार न करना—स्वाभाविक चिकित्साएँ हैं।

शस्त्र-क्रिया (जर्राही) की प्रचलित रीति जो आज अस्पतालों में वर्ती जाती है, जिसके अनुसार पुष्टिदायक भोजन यथा मांस, की चाय, अण्डे, दूध, मद्य (शराब) रोगी की वास्तविक जीवन शक्ति को बढ़ाने के लिये बतलाये जाते हैं, यह नितान्त भ्रम है। ऐसा करना बहुत ही बुरा है, और सृष्टि के नियमों के नितान्त विरुद्ध है। मेरी*सम्मति में घावों को प्रारम्भिक दशा में शरीर पर किसी कार्य का और कुछ भी बोझ न डालना अत्यन्त श्रेष्ठ है, नहीं तो शरीर को आरोग्यता प्राप्त करने के यत्नों में केवल रुकावट हो जाती है। औषधियों की चिकित्सा विद्या, सड़न को रोकने वाली रीति में कारबालिक एसिड, आयोडीन, करोसिव सबलीमेट, कोकेन आदि से घावों की चिकित्सा करके इस बात को जानती है कि प्रत्येक समय में भी उसको कितना कम ज्ञान उन कार्यवाहियों का है जो कि मनुष्य शरीर में होती रहती हैं। चीरा फाड़ी करने वाले लोग हाईड्रोपैथी की प्रसिद्ध चिकित्साओं को न जान कर सदैव सीधे मार्ग से दूर होते जाते हैं। उनको आरोग्यता उपलब्ध करने की स्वाभाविक (नेचुरल) रीति का ज्ञान ही नहीं है। इन प्रारम्भिक बातों के पश्चात् मैं भिन्न-भिन्न घावों पर ध्यान दूँगा और उदाहरण के लिये कुछ रोगियों के दृष्टान्त उद्धृत करूँगा।

कटे हुए, छिदे हुए, कुचले हुए और फटे या चिरे घाव

जब शरीर में कोई घाव काटने, भोंकने, कुचलने, फटने या चीरने से होता है तो रुधिर की बड़ी या छोटी नालियां जो घाव से इस प्रकार खुल गई हैं अपना रुधिर, आन्तरिक दबाव के कारण, उस समय तक बाहर निकालती रहती हैं जिस समय तक कि भीतर और बहार के दबाव में समानता प्राप्त न हो जावे। चूँकि यह कार्यवाही घावों की चिकित्सा में एक आवश्यक भाग लेती है। इसलिये इसके सब भागों पर विचार करना उचित होगा।

*यह सब लुई कोहनी साहब की सम्मति है। इसके स्वीकार करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है, चाहे वह अनुभव करे या न करे।

यह एक प्रसिद्ध बात है कि उस वायु का जिसमें कि हम रहते सहते हैं, हमारे शरीर के प्रत्येक वर्ग इञ्च स्थान पर लगभग पन्द्रह पौंड* का दबाव पड़ता है। हमारे शरीर इस दबाव को उठा न सकते और न सहार सकते, यदि उनके अन्दर की ओर से एक प्रकार का उलटा बड़ा भारी दबाव न पड़ता। पाठक गण ! आप लोगों में से बहुतेरों ने पर्वतों पर चढ़ते समय दबाव के अन्तर को अवश्य देखा होगा। अति ऊँचे पर्वतों पर वा गुब्बारे की यात्रा में वायु का दबाव इतना न्यून हो जाता है कि किसी-किसी समय मुख, नासिका, नेत्र और कानों से आन्तरिक दबाव की अधिकता के कारण रुधिर निकलने लगता है। ज्यों ही आन्तरिक दबाव पर उसके समान बाहरी दबाव का प्रभाव पड़ा है त्योंही रुधिर का निकना तुरन्त बन्द हो जाता है। जब शरीर पर घाव लगता है तो वह भीत जो रुधिर के आन्तरिक दबाव को स्वाभाविक सीमाओं के अन्दर रोके रखती है दूर हो जाती हैं और घाव के कारण रुधिर प्रवाहित हो जाता है। सबसे प्रथम रुधिर को बन्द करना उचित हैं। रुधिर का वेग घाव के परिमाण और गहराई के अनुसार और इस बात के ऊपर कि रक्त की बड़ी या छोटी नाड़ियाँ घायल हुई हैं, न्यूनाधिक हुआ करता है। जब सम्भव हो तो रुधिर की नाड़ियों को बांधने से परहेज़ करना उचित है, क्योंकि इनके बांधने से हम रुधिर के शुद्ध संचार में रुकावट उत्पन्न करते हैं और शरीर की ऐसे प्रकार से चिकित्सा करते हैं जो कि स्वाभाविक चिकित्सा नहीं कहला सकती, और भी अधिक प्रभावशाली ऐसी रीतियां हैं जिन से नाड़ियों के बाँधने की आवश्यकता जाती रहती है। केवल उसी दशा में जब कि रुधिर की बड़ी नाड़ियों के चोट लगने के कारण रुधिर के निकल जाने से मृत्यु का भय हो और आवश्यक गद्दियां पास न हो तो नाड़ियों या किसी अङ्ग पर बन्द लगाना भी श्रेयस्कर समझा गया है।

प्रायः पीड़ा रुधिर बन्द होने के सङ्ग ही उत्पन्न हो जाती है जिसको रुधिर बन्द होने के सङ्ग ही बन्द करना चाहिये। इस आशय को प्राप्त करने के लिये इसके अतिरिक्त और कोई यथार्थ रीति प्राप्त नहीं है कि घाव को एक गीले कपड़े से उस की कई तह करके भली प्रकार से बाँधे, जिसमें कि रुधिर के आन्तरिक दबाव का वेग रुक जावे, और सङ्ग ही रुधिर बन्द हो जावे। यदि सम्भव हो तो उसके पश्चात् घायल अङ्ग को शीतल जल में उस समय तक रक्खे जब तक कि पीड़ा जाती रहे,

*एक पौंड ४० तोले का होता है।

जिसमें स्यात कई घण्टे लग जावें। यदि यह सम्भव न हो तो उपरोक्त कपड़े की गद्दी पर बारम्बार जल टपकाकर अथवा थोड़ी-थोड़ी देर में टपका कर उस घायल अङ्ग को ठण्डा करे, ताकि कपड़े की गद्दी शीतल बनी रहे।

इस बात का विचार कि कपड़े की गद्दी कितनी मोटी होनी चाहिये अर्थात् कितनी तह की होनी चाहिये, इस बात पर है कि चोट किस प्रकार की है, अर्थात् रुधिर का आन्तरिक दबाव कितना है? छोटे-छोटे घावों के लिये कपड़े की दो चार अथवा ६ तह करली जावें; बड़े घावों के लिये दस पन्द्रह, बीस अथवा तीस तह भी की जा सकती हैं। यदि कोई गद्दी जो किसी बड़े घाव पर रक्खी जावे बहुत पतली हो तो उससे न तो रुधिर का प्रवाह बन्द होगा, न घाव को शीघ्र आराम ही होगा। इसके विरुद्ध गद्दी अधिक मोटी भी नहीं होनी चाहिये। अँगुलियों के कट जाने के घाव बीस तह की मोटी गद्दी के नीचे एक दो या चार तह की हल्की गद्दी की अपेक्षा अधिक देर में अच्छे होंगे।

कपड़े की गद्दी की ऐसी तह करनी चाहिये कि वह घाव के किनारों से न्यूनाधिक एक अँगुल बाहर निकली रहे। इस रीति से समीप के भागों में रुधिर का प्रवाह (दौरा) घाव के भरने की दशा में नहीं रुकेगा।

यह बात अति आवश्यक है कि पानी की गद्दी के ऊपर केवल एक ऊन की पट्टी, एक वा अधिक बार लपेट देनी चाहिये। इस रीति से गद्दी अपने स्थान पर स्थिर रक्खी जा सकती है, और उसका दबाव न्यूनाधिक रक्खा जा सकता है; और उसी के सङ्ग शरीर में उचित अंग की गर्मी लाई जा सकती है। गद्दियों को उपयोग में लाने से प्रथम उनको शीतल और स्वच्छ जल में, यदि सम्भव हो तो हल्के जल में गोता दे लेना चाहिये, और धीमे से निचोड़ देना चाहिये। जिस समय तक उनसे शरीर को ठण्डक पहुँचती रहेगी, उस समय तक कोई दुःखदाई पीड़ा न उठेगी। जब गद्दी गर्म हो जावे तो उसको पुनः ताजे शीतल जल में डुबो देना चाहिये। यदि पीड़ा मालूम होने लगे तो उससे यह प्रगट होता है कि अधिक शीतल गद्दी के सेवन का समय अब है। आरम्भ में तो बार-बार करना उचित है।

परन्तु कोई-कोई दशाएँ ऐसी भी होती हैं जिनमें प्रायः गद्दियों का सेवन करना उचित नहीं। ऐसी दशाओं में घाव के ऊपर चिकनी मिट्टी वा पिंडोल की गद्दी रखनी उत्तम होगी। इस गद्दी के तैयार करने की रीति यह है कि कुछ भली भांति साफ की हुई चिकनी मिट्टी वा पिंडोल को एक पात्र (बर्तन) में रक्खें और शीतल जल

मिलाकर गाढ़ी लेई सी कर लेवें। फिर एक मोटे वस्त्र के टुकड़े के ऊपर इस लेई को मोटा-मोटा फैलावें, फिर घाव के ऊपर इस गद्दी को इस प्रकार से लगावें कि मिट्टी त्वचा के ऊपर रहे। यह गद्दी कुछ घण्टों के पश्चात् बदली जा सकती है। इसी भाँति बदगोश्त वा सड़े हुए घावों की दशा में मिट्टी की गद्दी लगानी चाहिये।

इस अवसर पर यह कहा जा सकता है कि औषधि द्वारा चिकित्सा करने वाले प्रतिष्ठित चिकित्सकों ने जल चिकित्सा का यथार्थ ज्ञान न प्राप्त करके जल की गद्दियों में एक आश्चर्य जनक* उन्नति की है जिसको कि मेडिको आजकल Madico Surgicel (औषधियों से शस्त्रिक क्रिया) कहना उचित है। वे लोग रबड़ की चादर की एक तह गद्दी और ऊनी वस्त्र के मध्य में दे देते हैं। इस प्रकार की जल की गद्दियां बहुत कम काम देती हैं, क्योंकि रबड़ के कारण गद्दी से पानी का उड़ना और शरीर से स्वेद का भली भाँति निकलना रुक जाता है। इस प्रकार की हाईड्रोपैथी (Hydropathy) वृथा है। ऐसी गद्दी से मनवांछित फल प्राप्त नहीं होता। मैं सब मनुष्यों को ऐसी गद्दी के सेवन से स्पष्टतः सचेत करता हूँ।

हम ऊपर देख चुके हैं कि घावों के आराम करने पर अनुत्तेजनीय भोजन (सात्विक आहार) का प्रभाव बहुत उत्तम पड़ता है। भोजन जितना ही कम खाया जावे और जितना वह कम अनुत्तेजनीय हो उतना ही घाव के आराम होने की कार्यवाही उत्तम होगी। बिना छने हुए आटे की रोटी, फल और ऐसा जल (जिसमें कि कोई वस्तु मिश्रित न हो) अति उत्तम आहार हैं। वह भोजन जो बहुत ही शीघ्र और अति सुगमता से पच जाते हैं अत्यन्त उपयोगी हैं क्योंकि उनसे शरीर में गर्मी (ऊष्णता) बहुत ही कम बढ़ती है। घावों की चिकित्सा में यह बात अत्यावश्यक है।

मेरे हिप और फिक्शन बाथ—(जिस अवसर पर इनका सेवन हो सकता है) घावों के आराम होने की कार्यवाही को बहुत सहायता देते हैं। इनके सेवन से घाव के ऊपर का ज्वर पूर्णतया रुक जाता है। यदि स्थानिक ज्वर आरम्भ हो गया हो तो यह स्नान उसको निकाल देने का काम करेंगे। इसके सङ्ग सम्पूर्ण शरीर की शक्तियों को ऐसी उत्तेजना दी जाती है कि घाव के आराम होने की कार्यवाही शीघ्रता से होने

*ऐसा व्यंगरूप में कहा गया है—वास्तव में नहीं जैसा कि अगले शब्दों से विदित होगा।

लगती है। यह स्नान उन सम्पूर्ण मनुष्यों के लिये विशेषतया आवश्यक हैं जिनके शरीर में विजातीय द्रव्य का बोझ अधिक है। ऊपर लिखित विषय को मैं अब कुछ उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करूंगा।

एक कारखाने में चालीस वर्ष के एक मनुष्य का बांया हाथ गोल आरी से घायल हो गया। तर्जनी अँगुली और अँगूठे के मध्य की मोटी खाल चिर गई और खाल आरी पर लटक पड़ी। सौभाग्य वश हड्डी को चोट न पहुँची थी। इस चोट आने के कुछ ही मिनट पश्चात् उस मनुष्य को मुर्छा आगई और आध घन्टे तक उसे चेत न हुआ। एक कमीज (कुरता) की कई तह करके घायल हाथ पर ऐसे जोर से बांध दिया कि रूधिर का बहना करीब-करीब बन्द हो गया। हाथ को इस प्रकार बाँध कर शीतल जल के बर्तन में रक्खा गया। इस कार्यवाही से एक घण्टे के भीतर ही पीड़ा बहुत कम हो गई और दिन भर में पीड़ा पूर्णतया जाती रही। यह ठण्डक पहुँचाने की कार्यवाही प्रथम दिन-रात क्रमानुसार होती रही। परन्तु चौथे दिन गद्दी का परिमाण छोटा किया जा सका जिसमें की हाथ का कुछ स्थान खुला रहे। अब बीस तहकी गद्दी घाव रक्खी गईं, और सम्पूर्ण हाथ के चारों ओर ऊनी वस्त्र लपेट कर उस गद्दी को घाव के ऊपर मजबूती से दबा दिया गया। ऊनी वस्त्र ने बाकी हाथ को शीघ्र ही गर्म कर दिया जिससे रूधिर भ्रमण में यथार्थ उन्नति हुई।

प्रथम गद्दी को शीतल जल से आध-आध घण्टे में तर करना पड़ता था, पुन: देर-देर के पश्चात्। दो सप्ताह में घाव को इतना आराम हो गया कि ऊपर से घाव की चिकित्सा की अब कोई आवश्यकता न रही। चार सप्ताह में वह मनुष्य उस हाथ से काम करने लग गया। यह कहना भी आवश्यक है कि चिकित्सा के दूसरे ही दिन से रोगी प्रति दिन दो फ्रिक्शन बाथ—लिया करता था जिससे आरोग्यता की कार्यवाही बढ़ गई। यह भी कथन कर देना उचित है कि रोगी का स्वास्थ्य अच्छा न था। एन्टी सेप्टिक चिकित्सा से, अधिक समय और कष्ट उठा कर आराम होता है। डाक्टर घाव में अवश्य टांके लगाता जिसका परिणाम यह होता कि अँगूठा कड़ा और निश्चल (निर्जीव) हो जाता।

मेरी चिकित्सा से घाव को शीघ्र आरोग्यता प्राप्त होने के अतिरिक्त इस प्रकार आराम हुआ कि घाव का किंचित् मात्र चिह्न भी शेष न रहा। यद्यपि आरम्भ में घाव बहुत बड़ा था, शरीर ने इसको भीतर की ओर से भरा और इसके सिरे उचित

समय पर स्वयं ही दूर हो गये। कई आवश्यक स्नायु के सम्बन्ध इस चोट से नष्ट हो गये थे। आधा अँगूठा कुछ समय के लिये निर्जीव हो गया था जिसके कारण कई मास तक वह रोगी अपने अँगूठे के सहारे से छोटी-छोटी वस्तुओं को नहीं पकड़ सकता था। कुछ अधिक समय तक प्रति दिन मेरे फ्रिक्शन सिट्ज बाथ के लेते रहने से पट्ठों के सम्बन्ध फिर ऐसे ठीक हो गये कि उस अँगूठे में असली जान आ गई।

कुचट, नीली चोटें और अन्दरूनी (भीतरी) चोटें

ऊपर लिखी चिकित्सा कुचटों और नीली चोटों के लिये भी ठीक है। कुचटों और नीली चोटों और आन्तरिक दशा की चोटों में प्रायः ऐसा होता है कि भीतर की ओर रुधिर को ओर से पूरित रसौलियां और रुधिर की थैलियां बन जाती हैं, और सम्पूर्ण शरीर पर एक प्रकार का हानिकारक प्रभाव डालती हैं। जिन दशाओं में बाहर की ओर से (चिकित्सा की) पहुंच नहीं हो सकती उनमें मेरे फ्रिक्शन सिट्ज बाथ्य से आश्चर्यजनक आरोग्यताएं उपलब्ध होंगी। यह स्नान सम्पूर्ण शरीर को भीतर से ठण्डक पहुँचाते हैं और साथ ही स्नायु को अत्यन्त बलिष्ठ बनाते हैं। मुख्य-मुख्य दशाओं में जहां कि जमे हुये रुधिर की आंतरिक एकत्रिता वा सड़न से उत्पन्न हुई अन्य वस्तुएं मेरे स्नानों द्वारा अति सुगमता से दूर न हों तो स्थानिक स्टीम बाथ्ज के प्रयोग से बड़ा लाभ होगा। परन्तु इनके पश्चात फ्रिक्शन बाथ्ज* अवश्य लेने उचित हैं। स्टीव बाथ्ज के द्वारा सम्पूर्ण निकृष्ट तत्त्व बड़ी सुगमता से बाहर निकलने के योग्य कर दिये जाते हैं।

एक बार एक कन्या जिसकी दाहिने हाथ की तर्जनी अँगुली जुर्राब (मौजे) बुनने की कल से कुचल गई और छिद गई थी मेरी सम्मति लेने को आई। आरम्भ के सप्ताहों में एक बड़े प्रसिद्ध वैद्य ने उसकी चिकित्सा की तो, उसने अपने एन्टीसेप टक चिकित्सा से समस्त भण्डार को खाली कर दिया परन्तु उसके घाव को आराम न हुआ। उसने आइडोफारम (Idoform) कारबालिक एसिड Carbalic acid) और सैलिसिलिक एसिड (Salicvlic acid) का व्यवहार किया था, और उस कन्या से यह भी कह देने में संकोच नहीं किया था

*अर्थात फ्रिक्शन हिप वा फ्रिक्शन सिट्ज बाथ्ज।

कि त्यात उसकी अँगुली अथवा हाथ काटना आवश्यक हो। उस कन्या को अति भयानक पीड़ा का सामना करना पड़ा। उसकी अँगुली अधिकाधिक सूजती गई, यहाँ तक कि पूर्णतया नीली पड़ गई। तीसरे सप्ताह में उसका सम्पूर्ण हाथ सूज गया और उसका वर्ण भी वैसा ही हो गया। अन्त में डाक्टर साहिब ने उस कन्या से पूछा कि क्या उसमें हाथ कटाने का साहस है? वह कन्या यह सुन कर हाथ कटने के नाम से ही ऐसा भयभीत हुई कि मेरे पास चली आई। मैंने तुरन्त शीतल जल की गद्दियां बंधवाई और दो स्थानिक स्टीम बाथ्ज के उपरान्त फ्रिक्शन सिट्जि बाथ्ज—प्रति दिन लेने की आज्ञा दी। केवल दो घंटे की चिकित्सा के पश्चात् ही पीड़ा प्रायः जाती रही और यह पीड़ा, चिकित्सा-काल में पुनः हुई ही नहीं। हाथ और अँगुली की अत्यन्त सूजन घंटे-घंटे पर कम होने लगी, दो दिन में उन्होंने अपने असली रंग रूप को प्राप्त कर लिया। तीन-चार सप्ताह के अनन्तर वह कन्या फिर काम करने लग गई, यद्यपि हाथ को वह पूरी स्वतन्त्रा से नहीं चला सकती थी।

इस रीति से निस्सन्देह एक अति मनभावनी शल्यिक क्रिया रोका गई, जिससे वह कन्या आयु भर के लिए लुञ्ज होने से बच गई।

इसी प्रकार की एक और दशा में एक बढ़ई को मुझसे आवश्यक सम्मति लेनी पड़ी। उसके बायें हाथ की हथेली और अथेली की पीठ कुचल कर घायल हो गई थी। उस मनुष्य को एएटीसेपटिक अर्थात् सड़न को रोकने वाली चिकित्सा में पहले बुरा अनुभव होने के कारण निश्चय न था। उसका सम्पूर्ण हाथ कन्धे तक ऐसी बुरी तरह सूज रहा था कि वह उसको हिला भी न सकता था। तीन घंटे से पहिले ही मेरी चिकित्सा से पीड़ा को शान्ति हुई और अड़तालीस घंटे के पश्चात् सूजन बिल्कुल जाती रही और दो सप्ताह में वह मनुष्य अपना काम फिर करने लग गया।

निम्नलिखित आरोग्यताओं की दो रिपोर्टें इस बात को भली भांति बताती हैं कि एन्टी सेपटिक चिकित्सा से वास्तविक आरोग्यता प्राप्त नहीं होती, किन्तु एक मध्य की दशा उत्पन्न हो जाती है।

दो कन्याओं की तर्जनी अँगुलियां जो एक ही मेशीन पर काम कर रही थीं एक ही प्रकार घायल (जखमी) हो गई। अँगुली की नोक से प्रथम पोरुए के जोड़

तक हड्डी टूट गई थी और उस हड्डी के कई खंड हो गये थे, परन्तु शेष अँगुली में चोट न लगी थी। उन कन्याओं की आयु और शारीरिक-दशा भी समान थी। एक कन्या ने एक डाक्टर के पास जाकर एन्टीसेपटिक चिकित्सा कराई; और दूसरी कन्या की चिकित्सा मैंने की। डाक्टर ने हड्डी के खण्डों टुकड़ों को निकाल डाला और इस कार्रवाई में आइडफारम को वहुत ही काम में लाया। उस कन्या को अति पीड़ा उठानी पड़ी। एक सप्ताह के भीतर अँगुली इतनी अच्छी हो गई कि अति आवश्यकता के समय वह काम कर सकती थी, किन्तु शास्त्रिक क्रिया के कारण अँगुली का प्रथम पोरुआ पूर्णतया बेकार हो गया था और सम्पूर्ण अँगुली कुरूप हो गई थी। वर्षों पर्य्यन्त ऋतु के परिवर्तन के संग उस कन्या को पुराने घाव में बड़ी पीड़ा ज्ञात होती रही जो उस अशुद्ध चिकित्सा के कारण ही उत्पन्न हुई थी और इसी गलत चिकित्सा के कारण विजातीय द्रव्य (आइडोफारम सीधे) मार्ग से प्रवेश हुआ था। अँगुली सुन्न भी हो गई थी।

दूसरी कन्या ने जिसने कि मेरी चिकित्सा का व्यवहार किया था अति उत्तम फल प्राप्त किया। मेरा पहिला प्रयत्न यह था कि पीड़ा को बन्द किया जावे। मैं पहिले ही दिन उसमें सफल हुआ। इस उद्देश्य के लिये मैंने वही प्रसिद्ध उपाय बतलाये, अर्थात जल में भीगे हुए वस्त्र की गद्दियाँ और फ्रिक्शन बाथ—फ्रिक्शन बाथ इस कारण बतलाये कि वह कन्या और बातों में भी विकारी वस्तु से अधिक पूरित थी। तीसरे दिन किसी अन्य चिकित्सा के व्यवहार के बिना ही हड्डी के टुकड़े स्वतः ही मवाद के सङ्ग बह कर निकल गये और उस रोगिणी को कोई विशेष पीड़ा न हुई। छठे दिन सबसे बड़ा हड्डी का दूसरा टुकड़ा निकला। एक मास के भीतर वह कन्या अपने काम करने के योग्य हो गई। छः सप्ताह के भीतर ही उसकी अँगुली, अपने गुण स्वभाव को किसी प्रकार कम किये बिना ही अच्छी हो गई और न टेढ़ी पड़ी, और न कोई चिह्न चोट का उस पर शेष रहा। और न इस समय तक ऋतु के परिवर्तन पर उसमें कोई पीड़ा ही हुई। बताइये! इस स्थान पर नेचर प्रकृति उत्तम जाहिर हुई या एन्टीसेपटिक सड़न को रोकने वाली औषधियां।

एक और वृत्तान्त जो इस ऊपर के वृत्तान्त से कम मनोरंजक नहीं है उस मनुष्य का है जो सन् १८७६ ई० में अपने बायें टखने की नसों के बन्धन और उस स्थान के बहुत से पट्ठों के अधिक फट जाने में ग्रस्त हुआ था। रोगी दो मास तक

शय्या पर ही पड़ा रहा था और मरहमों से उसकी चिकित्सा की गई थी। पांव के आराम हो जाने पर भी उसके पांव में निर्बलता और सूजन शेष रही। यह विशेष कर चलने में ज्ञात होता था। पैर बहुधा मुड़ जाता था जिससे अत्यन्त पीड़ा होती थी। इस मनुष्य का स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ था, इस कारण मार्च सन् १८८६ ई० में उसने मेरी चिकित्सा आरम्भ की और इस चिकित्सा से लाभ जान पड़ने पर उसने इसको बहुत काल तक जारी रक्खा। १८६० ई० के आदि में पांव उन्हीं स्थानों पर सूज गया जहां कि वर्षों पहिले उसमें पीड़ा ज्ञात हुई थी। इस सूजन व दाह के सङ्ग ही तीन तक पीड़ा रही। मेरी चिकित्सा की सहायता से चौथे दिन ये सब पीड़ाएँ जाती रही और सब प्रकार की निर्बलता और टखने की निर्बलता भी जाती रही। इससे प्रकट होता है कि वह चोट जिसको लगे ग्यारह वर्ष हो चुके थे और यथार्थ रीति से अच्छी नहीं हुई थी, मेरी चिकित्सा विधि से पूर्णतया अच्छी हो गई।

जलने के घाव—जो घाव जलने से हो जाते हैं उनकी पीड़ा दूर करने के लिये भी शीतल जल एक उत्तम पदार्थ है। पीड़ा से छुटकारा पाने के लिये प्रायः घाव को कई घण्टों तक शीतल जल के नीचे रखने की आवश्यकता होती है। यदि घाव को शीतल जल में थोड़े काल के लिये रक्खा जाय तो पीड़ा बढ़ भी जाती है। जिस समय तक कि पीड़ा दूर न हो, पीड़ा को सहना चाहिये। जब दाह की पीड़ा न्यून हो जाय तो गद्दियों का सेवन करना उसी प्रकार उचित है जैसे कि घावों कि दशा में। नदी का जल अथवा वर्षा का जल चश्मे कुए के जल की अपेक्षा अधिक लाभकर है। कारण यह कि कुए चश्मे के जल में ऐसी वस्तुएं होती हैं जो आरोग्यता की कार्रवाई को रोकती हैं और पीड़ा को बढ़ाती हैं। यह देखकर बड़ा आश्चर्य होगा कि बड़ी-बड़ी कठिन पीड़ायें इस रीति से किस प्रकार अच्छी हो जाती हैं। यह निश्चित है कि बहुत से मनुष्य जो अग्नि से जलने या किसी द्रव गर्म वस्तु से जल जाने के कारण मृत्यु को प्राप्त हुए हैं, इस प्रकार चिकित्सा करने से बच गये होते।

इस चिकित्सा में जब जले हुए घाव देर से अच्छे हों तो यह निस्सन्देह मान लेना चाहिये कि रोगी के शरीर में विकारजनक वस्तु का बोझ अत्यन्त है, या यों कहेंगे कि वह मनुष्य पुराना रोगी है। ऐसे अवसरों पर समस्त शरीर की चिकित्सा

फ्रिक्शन बाथ्स और सात्विक भोजनों द्वारा करनी उचित है। यदि आरोग्यता अपना साधारण मार्ग स्वीकार करे तो भी इस दशा में रोगी इन स्नानों को ले सकता है। इन स्नानों से आरोग्यता की क्रिया को अत्यन्त सहायता मिलेगी।

एक मनुष्य को तीन बड़े-बड़े घाव जलने के कारण हुये। उन में से दो गर्दन पर थे जो कि परिमाण में पाँच शिलिंग वाले सिक्के के बराबर थे। तीसरा घाव जो सबसे बड़ा और गहरा था वह पांव पर था। वह रोगी प्रथम एण्टीसेपटिक चिकित्सा कराता रहा, किन्तु पीड़ा की अधिकता के कारण एक दिन से अधिक उस चिकित्सा को न सह सका। इसके बाद उसने अपनी चिकित्सा स्वयं पुरानी प्राकृतिक चिकित्सा विधि के अनुसार आरम्भ कर दी। परन्तु इसने भी कष्ट कम न होने पर एक सप्ताह के पश्चात् उसने मुझसे सम्मति ली। मैंने प्रथम पीड़ा को कम करने का उपाय किया पहिले तो घावों से पीप और तेल को भली भांति साफ कर दिया, और शीतल जल की गद्दियों के रखने से दो ही घंटे के अन्दर पीड़ा दूर करने में सफल हो गया। इस चिकित्सा के दो दिन करने पर घावों का रूप पूर्णतया परवर्तित हो गया। गर्दन पर जलने का सबसे छोटा घाव इस समय करीब-करीब सब भर गया था, और दूसरे घाव भी शीघ्रता से भरते चले आते थे। पाँव पर जो गहरा घाव था वह भी गहराई में आधा रह गया था। पांच दिन में ही रोगी पुनः अपने कार्यालय को जाने लगा। गर्दन से जलने के समस्त चिह्न जाते रहे और पांव का घाव इतना अच्छा हो गया कि वह मनुष्य पैदल चलने लगा।

बन्दूक की गोली का घाव—इनकी चिकित्सा ठीक वैसी ही है जैसी कि कटे हुए घावों की, परन्तु इस कारण से कि युद्ध से उनका आवश्यक सम्बन्ध है यह उचित है कि उन पर अधिक ध्यान दिया जाय। प्रत्येक सिपाही को यह बात कि घायल को सहायता पहुँचाने के लिये प्रथम क्या करना उचित है, भली प्रकार जान लेना चाहिये। जब किंचिन्मात्र भी सहायता पहुँचाने से पहिले घायल को कई घण्टों तक अवश्य ही रहना पड़ता है तो बहुत सी चोटों की दशा में (मुख्यतः एण्टीसेपटिक चिकित्सा के संग) यह आश्चर्य की बात नहीं कि सड़न दौड़ने लगे—जिससे यदि मृत्यु न हो तो भी किसी अँग को काटना पड़ जाता है। साधारण विवशता में, जीवन के गुण और उसकी दशाओं से और उस रीति से जिनमें की घावों को स्वयं शरीर द्वारा आरोग्यता होती है न जानने से, अङ्ग के काटने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकते। अङ्ग के काट डालने से घाव अच्छा नहीं हो जाता।

उससे केवल और भी गहरे घाव लग जाते हैं और रोगी को आयु भर के लिये अङ्गहीन बना देते हैं ?

सर्व साधारण का और औषधि द्वारा चिकित्सा करने वालों का यह निश्चय है कि यदि गोली अथवा गोली का कोई खंड शरीर के भीतर रह जावें तो उसको अवश्य निकलवा देना चाहिये जिससे शरीर को हानि से बचाया जा सके। यह एक बड़ी भारी भूल हैं जिनके कारण सहस्त्रों प्राण जाते रहे हैं, क्योंकि ऐसी गोली आदि के बोझ के कारण यह बहुधा अत्यन्त कठिन हो जाता है कि शरीर को और भी हानि पहुँचाये बिना उनको शरीर से पृथक कर सकें ?

यह प्रसिद्ध बात है कि शरीर के आन्तरिक भागों पर ऐसा 'म्यूकस' चढ़ा होता है कि गोली आदि उनके पास होकर सरलता से गुजर जाती है। और जब कभी कि वह उनमें (शरीर के आन्तरिक भागों में) प्रवेश भी करती है तो वह छोटा से छोटा एक ऐसा छिद्र बनाती हैं जिसमें से उनका गुजर हो जावे।

यह बात इस प्रकार इस कारण से हुआ करती है कि पट्ठें अपने लचीलेपन के कारण उस दबाव से जो गोली इन पर डालती है कुछ फैल जाते हैं ? यह ठीक वही दशा है जैसी कि रबड़ की उसमें गोली के घुसने पर होती है। हमको दिखाई पड़ता है कि रबड़ में गोली से एक ऐसा छिद्र बन जाता है जिसमें होकर बिना रबड़ के फैलाये हुए गोली फिर नहीं निकल सकती।

यह बात हमको उस समय ज्ञात होती है जिस समय चोट खाये हुए अङ्ग सूजने लगते हैं, क्या है ? प्रायः सूजना बहुत शीघ्र बन्द हो जाता है और पहिले का लचीलापन भी जाता रहता है। चोट खाये हुए अङ्ग रुधिर और आरोग्यता दायक अन्य द्रव्य से पूरित हो जाते हैं, अतः कठोर हो जाते हैं। अब यदि गोली को उस मार्ग जिससे कि उसने प्रवेश किया था—निकालने का यन्त्र करें (जैसा कि प्रायः किया जाता है जहाँ कि गोली निकालने का को अवसर होता है) तो हमको उसका निकालना असम्भव सा प्रतीत होगा, क्योकि घाव का मुह और सम्पूर्ण मार्ग सूज गया है, और इनके अतिरिक्त पट्ठों का लचीलापन भी जाता रहा है।

इस कारण गोली के निकालने में अधिक चीर फाड़ की आवश्यकता होती है, और इससे प्रायः हानि पहुँचती है। यह बात कि शरीर पर उसका कितना बुरा प्रभाव पड़ेगा, बहुत सरलता से ध्यान में लाई जा सकती है। गोली स्वयं शरीर के

लिये इतनी हानि कर नहीं है जितनी कि उसको बलात शरीर के बाहर निकाल देने की क्रिया। शरीर इस विजातीय द्रव्य के बड़े-बड़े खंडों (टुकड़ों) को शीघ्र ही अहानिकारक बना देता है। प्रथम उसको जल की नांई एक वस्तु से शरीर घेर देता है, और कुछ काल में ही इस पतली वस्तु को एक कठोर खोल की दशा में जो गोली को घेर लेवे, बदल देता है। यदि विषैली एन्टीसैपटिक (सड़न को रोकने वाली) चिकित्सा से शरीर को पूर्ण जीवन-शक्ति को हानि नहीं पहुँची है तो शीघ्र अथवा देर में वह उस विजातीय वस्तु को अपने भीतर से ऐसी रीति से निकाल देगा जो उसके लिये अति उत्तम हो। प्रायः यह हुआ है कि एक गोली जो कन्धे में रह गई थी महीनों या वर्षों पश्चात चूतड़ वा जांघ से पीप के संग बह कर निकली।

अतः गोली के निकालने की ओर उतना ध्यान देना आवश्यक नहीं जितना कि घाव की जलन के रोकने की ओर ध्यान देना चाहिये। मैं ऊपर कह चुका हूँ कि यह किस प्रकार किया जाय ? अतः यह अच्छा होगा कि प्रत्येक सिपाही को रुई और ऊन की कुछ पट्टियाँ दे दी जाँय जिससे वह आवश्यकता पड़ने पर अपनी सहायता तुरन्त ही कर सके। बहुत सी दशाओं में जल भी चिकित्सा की किसी और वस्तु की अपेक्षा शीघ्र ही प्राप्त हो सकता है। जहां जल न मिल सके, वहां सिपाही और अन्य वस्तु ठन्ड पहुँचाने वाली यथा घास, पिंडोल, गीली मिट्टी और इन्हीं के समान और वस्तु भी ले सकता है। और ज्यों ही कि घाव पर भली प्रकार पट्टी बांध दी जाय इन वस्तुओं का सेवन आवश्यकता के समय गर्मी को शान्त करने के लिये किया जा सकता है। इस प्रकार बहुत से घायल सिपाही जो अपने हाथ पांव चलाने के योग्य हैं अपनी प्रारम्भिक सहायता स्वयं ही कर सकते हैं; और उस समय तक प्रतीक्षा करके उनको अपना समय (ऐसे अवसर पर समय बड़ा अमूल्य होता है) वृथा नहीं खोना पड़ता जब तक कि कोई दूसरी सहायता न पहुँच सके।

इस कारण यह बात बड़ी आवश्यक है कि प्रत्येक सिपाही को घावों की इस स्वाभाविक चिकित्सा को जो बिना औषधियों और शास्त्रिक क्रिया के की जाती है पूरी-पूरी शिक्षा दी जाय। ऐसी शिक्षा मिलने पर वह एक ऐसी दशा में हो जावेगा कि तुरन्त ही अपने आपको भलाई के काम में लगा सकेगा और उस समय तक लाचारी से हाय-हाय करता हुआ न पड़ा रहेगा जब तक कि कोई डाक्टर उसके

पास पहुंचे और वे सिपाही जो थोड़े ही घायल हुए हैं, अपने साथ के अधिक घायल सिपाहियों को तुरन्त ही सहायता पहुंचाने योग्य भी हो जावेंगे।

फ्रान्स और जर्मनी के बीच सन १८७० ई० में जो युद्ध हुआ था, उस समय मुझको एन्टीसेपटिक चिकित्सा के हानिकारक प्रभावों के अनुभव करने का पर्याप्त अवसर मिला था। मैं एक आश्चर्य्य जनक घटना उपस्थित करता हूँ। सन १८८३ ई० में एक भद्र पुरुष मेरे पास आया जिसके पेडू में १८७० के युद्ध में गोली लगी थी। गोली पीठ की ओर रीढ़ के पास से बाहर निकल गई थी। सम्पूर्ण एन्टीसेपटिक—चिकित्साओं के किये जाने पर भी यह घाव १३ वर्ष तक भली प्रकार अच्छा नहीं हुआ था, प्रत्युत उसमें से बराबर पीप निकलता रहा था। कभी-कभी यह घाव बन्द भी हो जाता था किन्तु इसलिए (बन्द हो जाता था) कि अवसर मिलने पर तुरन्त नये सिरे से फिर फूट निकले। रोगी की दशा प्रति क्षण निकृष्ट ही होती गई। इस समय रोगी पैदल चलने के सर्वथा अयोग्य था। मैंने अपने मुखाकृति विज्ञान के द्वारा तुरन्त यह जानली कि उस रोगी ने शरीर में विजातीय द्रव्य का अधिक भार और उसके संग पुराना ज्वर ही आरोग्यता में बाधा डालने के कारण हैं। मैंने घाव की कोई स्थानिक चिकित्सा न की, प्रत्युत अपने फ्रिक्शन*और स्टीम बाथ्ज और अनुकूल [२] भोजन से उस पुराने ज्वर को दूर करने का प्रबंध किया। एक सप्ताह के भीतर ही घाव अच्छा हो गया और उस समय से फिर वह कभी नहीं फूटा। दो सप्ताह में ही उस मनुष्य ने आरोग्यता प्राप्त करली और पुनः फिर पैदल चलने के योग्य हो गया। वह मेरे आदेश के अनुसार कुछ समय तक और भी चिकित्सा करता रहा, यहाँ तक कि अंत में उसके शरीर में से विजातीय द्रव्य का भार पूर्णतया निकल गया।

एक ऐसा ही उत्तम परिणाम उस सिपाही की दशा में भी प्राप्त हुआ जिसके घुटने की पाली (परिया) के युद्ध में खंड-खंड हो गये थे। उन सम्पूर्ण चिकित्साओं को जो विचार में आ सकती है कराने पर भी घाव अच्छा न हुआ था। यद्यपि टांग पूर्णतया सीधी (अकड़ी) न रह गई थी परन्तु स्वतन्त्रता के साथ हिलने में उसमें बहुत कुछ रुकावट होती थी। उस पुरुष की चिकित्सा इस कारण और भी अधिक ध्यान देने के योग्य है कि वह रोगी बीस वर्ष तक पुराने नेचर क्योर के नियमानुसार, बिना

*—हिप और सिटज़ स्नानों से अभिप्राय है।

२—अभिप्राय है सात्विक भोजन से।

आरोग्यता प्राप्त किये हुए ही चिकित्सा करता रहा था। चोट लगने के पश्चात उस मनुष्य ने मेरी चिकित्सा विधि के अनुसार अपनी चिकित्सा आरम्भ की। अपने घुटने के कारण ही नहीं, प्रत्युत इस नवीन चिकित्सा की परीक्षा लेने के लिये ही उसने ऐसा किया। कुछ काल बीतने पर जब घुटने की पाली में जलन व सुजन हो गई तो उसको बड़ा आश्चर्य हुआ। यह इस बात का प्रमाण है कि वास्तव में उसकी चोट भली भाँति आरोग्यता लाभ न कर सकी थी। मेरी चिकित्सा को कुछ काल करते रहने पर जलन तथा सूजन तो शीघ्र ही जाती रही। उसको यह देख कर कि घुटने के जोड़ की कठोरता पूर्णतया जाती रही, अत्यन्त आश्चर्य हुआ। अब वह अपनी टाँग को ऐसी भली भाँति काम में ला सकता था—जैसा कि चोट लगने के पहिले।

फ्रेक्चर्स अर्थात् हड्डियों का टूट जाना—यह उन रोगों में सम्मिलित है जो बाहरी चोटों से होते हैं। उसको आरोग्यता शनैः शनैः प्राप्त होती है। इसमें डाक्टर लोग प्रायः पेरिस—ड्रेसिंग के प्लास्टर * का व्यहार करते हैं। इस अवसर पर आरोग्यता प्राप्त करने के दूसरे प्रकार के और अतीव निश्चित और प्रभावशाली उपाय बताता हूँ सब से उत्तम बात यह है कि मेरी चिकित्सा-रीति तुरन्त ही ठंढक पहुँचाने वाला प्रभाव रखती है, और यह उस समय तक प्रचलित रक्खी जायगी जब तक कि हड्डी टूटने के उपरान्त की सूजन और उसकी साथ की पीड़ा पूर्णतया जाती न रहे। फ्रिक्शन बाथ्ज—के सेवन को भी नही भूलना चाहिये क्योंकि ये भी आरोग्यता प्राप्त करने में पूर्ण सहायता देते हैं। जो मनुष्य जल की इस प्राकृतिक चिकित्सा को त्याग कर प्लास्टर ड्रेसिंग का सेवन करता है, वह मानों सृष्टि के नियत नियमों की सत्यता को स्वीकार नहीं करता। यदि केवल स्थानिक कारणों से ही उन दशाओं में जहाँ कि चोट खाये हुए अङ्ग को जल की गद्दियों से यथार्थ दशा में नहीं रख सकते, तो एक कठोर वस्तु की सहायता की आवश्कता होती है, इसका काम काष्ठ, कागज के पट्टों वा किसी वृक्ष की छाल, और उसके सदृश अन्य वस्तु से ले सकते हैं। प्लास्टर—ड्रसिंग का सेवन करना कभी उचित नहीं।

वह मनुष्य जो मेरी इस सम्मति पर चलेंगे उनको ज्ञात हो जायेगा कि हड्डियों

*एक सफेद सूखा मसाला होता है जो फ्रांस देश से आता है। यह पानी में गीला करके ऊपर से लगाने से लकड़ी सा सख्त हो जाता है। लकड़ी की तख्तियों के बदले इसे लगाने से यह लाभ है कि तख्तियों के समान ढीला हो जने का इसमें भय नहीं है।

का टूटना किस आश्चर्य जनक शीघ्रता से अच्छा हो जाता है और किस प्रकार से पीड़ा भी अत्यन्त घटा दी जा सकती है।

एक तीस वर्ष की आयु के भद्र पुरुष का दाहिने हाथ का ऊपरी भाग कोहनी के समीप टूट गया था। वह प्राकृतिक चिकित्सा का उपयोग किया करता था, इस कारण उसने तुरन्त ही शीतल जल की गद्दियों और बाँह को जल स्नान कराय उस वैद्य ने जिसकी सम्मति के अनुसार चिकित्सा की गई थी एक प्लास्टर पट्टी लगानी चाही और संग ही यह भी कहा कि सम्भवतः सदैव के लिये ही बाँह शीधी रहा जायगी अर्थात वह सुगमता से मोड़ी न जा सकेगी। रोगी को इसमें कोई आगे की भलाई ज्ञात न हुई, तब वह मेरी सम्मति लेने को आया। मैंने उसको बतला दिया कि बांह को बारीक लोहे के तारों के किसी वस्त्र तथा कागज के पट्ठों की तख्तियों में रक्खे और मेरी रीति के अनुसार (भीगी) गद्दियां द्वारा टूटे हुए स्थान को ठण्डक पहुँचावे। फ्रिक्शन बाथ्ज का लेना और सादा सात्विक भोजन का सावधानी से सेवन करना उसकी दशा के लिए आवश्यकीय बातें थीं। इनका फल अत्यन्त आश्चर्य-दायक हुआ। चौबीस घण्टे में ही पीड़ा और सूजन अत्यन्त न्यूनता को प्राप्त हुईं। एक सप्ताह में रोगी हाथ से कुछ-कुछ लिखने भी लगा। एक और सप्ताह व्यतीत होने पर वह कुर्सी को बिना कठिनाई के उठा सकता था। तीन सप्ताह में टूटी हुई बाँह पूर्णतया स्वस्थ हो गई।

खुले हुए घाव—गहरे कटे हुए घाव, वा नोकदार शस्त्रों के भोंकने से पहुँचे हुए घाव जा युद्ध में लग जाते हैं, अथवा वे घाव जो मान प्रतिष्ठा रखने के निमित्त लड़ाईयों में लग जाते हैं—सम्पूर्ण घाव जो आकस्मिक बाह्य चोट के प्रतिफल हैं बहुत शीघ्र और सुगमता से आराम हो जाते हैं। उन घृणित अन्य प्रकार के खुले हुए घावों को जो शरीर के सम्पूर्ण अंगों पर हो जाते हैं, की दूसरी ही दशा है। औषधियों की चिकित्सा विद्या इन पके और बहते हुए दुर्गन्धित घावों को चाहे जिस नाम से पुकारे—अर्थात उपदंशीय (आतिशकी), सर्तानी अथवा चाई रोग सम्बन्धी—परन्तु वास्तव में वे सब हैं एक ही और वे जीवित शरीर के भीतर एक सड़न की दशा का ज्ञान कराते हैं। एलोपेथी ने ऐसे खुले हुए घावों को आरोग्य कराने में अब तक कोई वास्तविक सफलता प्राप्त नहीं की, यद्यपि इसको औषधियों द्वारा इतनी सफलता तो हुई है कि सड़न की कार्यवाही प्रकट होने से रुक जाये, या निकृष्ट

तत्व को फिर शरीर के भीतर दबा कर उस कार्यवाही को दूसरी दशा में भले ही बदल दे। परन्तु एलोपेथी इस दोष को दूर करने में समर्थ नही है। न तो उसमें ऐसी शक्ति है और न उसको ऐसे साधन प्राप्त हैं कि भली प्रकार रोग का सामना कर सके। इसी कारण जो घाव हमको देखने में आरोग्य हुए जान पड़ते हैं पुनः वे ही शरीर के किसी दूसरे अङ्ग में फूट निकलते हैं अथवा यों कहें कि शरीर के भीतर के निकृष्ट द्रव्य का किसी प्रकार बाहर निकलना बना रहता है। यह सत्य है कि ऐसे खुले घाव जो किसी वाह्य चोट के बिना हो जाते हैं ऐसे कष्टदायक नही होते जैसी कि आकस्मिक पहुँची हुई चोटें। इनका आरोग्य होना (यदि वास्तव में आरोग्यता सम्भव भी हो) अति कष्ट साध्य है। इन खुले हुए घावों का निकट सम्बन्ध किसी ऐसे पुराने रोग से होता है जो बहुत ही दूर तक चल गया हो। प्रतिदिन जो आत्मघात होते हैं उनमें से कितने ही ऐसे हैं कि जिनका सम्बन्ध इस प्रकार के रोग की दशा से नहीं मिलाया जा सकता। इस अवसर पर प्रायः हम देखते हैं कि मनुष्य अपने नित्य के कार्यों और जीवन की रीति में किस प्रकार बुद्धिमति माता प्रकृति (नेचर) से सब बातों में विरोध करता है। ऐसे घावों का कारण क्या है ? मैं उत्तर देता हूँ कि शरीर में केवल विकार-जनक वस्तु के भार होने ही से वे उत्पन्न होते हैं और सर्वदा किसी रोग की पूर्व दशाओं की (जिनको कि आराम नहीं हुआ और जो दबा दिये गये थे) एक वृद्धी पाई हुई दशा होती है। बहुत सी दशाओं में यह अन्तिम दशायें शरीर के ओषधियों से अत्यन्त पूरित हो जाने से उत्पन्न हुई होती हैं अर्थात पारा आयोडीन Iodine आयोडाइड आफ पुटोसियम Iodide of Potassium ब्रोमाईन Bromine सैलिसिलिक एसिड Salycilic acid डिजिटेलिस Digitalis कुनाइन Quinine आदि जो शरीर के लिये प्रबल विष है। टीका भी शरीर में विष प्रवेश करने का एक उपाय है। यह अत्यन्त शोक की बात है कि इनके द्वारा मनुष्य जाति प्रति क्षण दूषित होती जाती है। इनका प्रभाव जीवन-शक्ति को अत्यन्त बलहीन कर देना है। इन्हीं की अनुकम्पा से निकृष्ट तत्व जो शनैः शनैः शरीर में एकत्रित हो गया है—आगे को चेचक या शीतला के रूप में प्रगट नहीं होता, प्रत्युत क्षई, सर्तान, आतिशक उपदंश, मृगी और पागलपन आदि आदि भयानक और चिरकाल तक रहने वाले असाध्य रोगों के रूप में प्रगट होता है। दुर्भाग्यता से प्रचिलित चिकित्सा-शिक्षा ने जीवन शक्ति की वास्तविकता को पूर्ण रीति से नहीं पहचाना। यदि ऐसा न होता तो उन विषों के बुरे प्रभाव (वह विष जो उन औषधियों

में उपस्थित होते हैं जो रोगियों के शरीर में टीका अथवा मालिश द्वारा प्रवेश की जाती हैं) इस विद्या के शिष्यों से गुप्त न रहते, चाहे ऐसे प्रभाव कितने ही वर्षों के पश्चात् प्रगट क्यों न होवें।

ऐसी औषधियां, जिनके मानव देह में ठहरने के स्थान और प्रभाव विषयक औषधियों की विद्या एक सन्देह की दशा में है, प्रायः वर्षों पूर्व वह बीज बो देती है। जिससे कि शरीर विजातीय द्रव्य से पूरित हो जाता है और जो अन्त में इन खुले हुए घावों का कारण बनती हैं।

यह एक प्रसिद्ध बात है कि चिकित्सा-विद्या सदैव ही नवीन औषधियों, नवीन प्रकार की वायु शुद्ध करने वाली वस्तुओं, नवीन प्रकार की उन वस्तुओं की जो घावों की सड़न को रोक सकती हैं, खोज में रहती है। औषधियाँ अधिक से अधिक बलवती बनाई जाती हैं। एक औषधि दूसरी से अधिक विषमय है; और ऐसा होना आवश्यक भी है। किसी रोग (क्यूरेटिव क्राईसिस) के पहले ही बार प्रगट होने पर, वास्तविक जीवन-शक्ति के (यथा एण्टी फीब्रीन द्वारा) न्यून करने का इस प्रकार से यत्न किया जाता है कि वह रोग (अर्थात क्राईसिस) के प्रचलित रखने के योग्य नहीं रहती। ऐसा करने से क्राईसिस (रोग) वाह्य चिह्नों के विचार से तो लोप हो जाता है, परन्तु वास्तव में रोग का कारण दूर नहीं होता। किन्तु एलोपैथी की चिकित्सा-रीति इसी को आरोग्य होना मानती है। अब यदि कुछ काल के उपरान्त शरीर की जीवन-शक्ति कीन्हीं अंशों में बढ़ जाय और वही रोग वा अन्य रोग फिर प्रगट हो, तो एन्टी फ्राब्रीन अपना पहला सा प्रभाव दिखलाने के योग्य कदापि न होगी। क्योंकि पहिला सा प्रभाव दिखलाने के लिये अधिक बल युक्त और विष-युक्त औषधियों की आवश्यकता होगी। शरीर में जितनी जीवन-शक्ति अधिक होगी औषधि क्यूरेटिव क्राईसिस अर्थात् रोग के प्रगट होने को रोकने के लिये पर्याप्त होगी। और इसके विरुद्ध शरीर की जीवन शक्ति जितनी ही कम होगी उतनी ही अधिक बलवती औषधि क्राईसिस (रोग) के दबा देने की योग्यता रखती होगी। प्रत्येक औषधि एक प्रकार का विष है अर्थात् एक प्रकार का विषमय तत्व है, जो शरीर से भिन्न है। मानव देह में कितनी ही अधिक वास्तविक जीवन-शक्ति विद्यमान होगी। उतने ही बल और शीघ्रता से ऐसे अन्य तत्वों को हानि पहुंचाने से रोकेगी। इस विष को शरीर एक प्रकार की चिपकती हुई वस्तु के खोल में बंद कर लेता है। यदि इसके विरुद्ध वास्तविक जीवन

शक्ति निर्बल हो गई है तो थोड़ी औषधि (अर्थात थोड़ा विष) इस वास्तविक जीवन शक्ति को जगाने के लिये अपर्याप्त होगी।

यह शक्ति न्यूनाधिक सुप्त हो जाती है और उसी समय फिर अपना काम करती है जब इसे बहुत विवश किया जाय। विष को हानिकारक होने से रोकने की क्रिया ऐसी दशा में बड़ी सुस्ती से होगी।

अपने चिकित्सा कर्म का एक उदाहरण देता हूँ जो ऊपर लिखित कथनों को स्पष्ट रीति से दर्शायेगा। एक डाक्टर को यह निश्चय हो गया कि उसने टांगों पर खुले हुए घावों के लिये एक अनोखी औषधि ज्ञात करली है, और उसकी बड़ी धूम भी हुई। औषधि का प्रभाव ऐसा अधिक होता था कि बहुधा घाव अति अल्प काल में ही अच्छे हो जाते थे। निकृष्टतत्व शरीर के अन्दर बल पूर्वक घुमा दिया जाता था। इस प्रकार एक मनुष्य को जिसकी टाँग नली की हड्डी पर काट करने वाले गहरे घाव उपस्थित थे इस औषधि से अति शीघ्र आरोग्यता हो गई। परन्तु जब दो वर्ष के उपरान्त पुराने घाव फिर फूटे तो वह रोगी एक बार फिर उसी डाक्टर के पास गया। शोक! इस बार वह प्रसिद्ध औषधि कुछ न कर सकी। उस डाक्टर ने घबरा कर उसे इस प्रकार समझाया कि अब यह घाव दूसरी प्रकार के हैं; मूल रोग ऐसा न था और इस नवीन रोग को उसकी औषधि आरोग्य करने के समर्थ नहीं हैं, और अंग को काट डालने के सिवा और कुछ उपाय नहीं है। ऐसी विद्या पर शोक है! नेचर क्योर की चिकित्सा रीति से चिकित्सा करने वाले चिकित्सक के समक्ष जिसको कोई सरकारी प्रमाण-पत्र नहीं मिला है, औषधियों के द्वारा चिकित्सा करने की सनद पाया हुआ मनुष्य सहायता पहुँचाने की इसके अतिरिक्त और कोई उत्तम रीति नहीं जानता कि टीका लगा कर रोग से बचाये रखने का यत्न करे (जैसा कि शीतला की दशा में), और उन अंगों को जिनके रोग की दशा को वह नहीं समझ सकता काट कर पृथक कर दे।

हमको खुले हुए घावों की दशा में जो कि भीतर ही भीतर काट करते चले जाते हैं—वही कारण मिलता है कि सम्पूर्ण रोगों के नीचे विद्यमान है अर्थात शरीर में निकृष्टतत्व का बोझ। इससे अधिक स्पष्ट और कोई बात नही है कि पीप में जो कि घाव से निकलती रहती है निकृष्ट तत्व मिला होता है। इस अवसर पर हमको एक अत्यन्त ही वृद्धि पाई हुई दशा से काम पड़ता है जो एक असाधारण प्रकार की आन्तरिक गर्मी के कारण प्राप्त होती है। यह असाधारण उच्च श्रेणी की गर्मी जिसको

मैं ज्वर समझता हूँ निकृष्ट तत्व में पहले तो एक प्रकार का उफान अथवा सड़न उत्पन्न कर देती है जिससे वेसिलाई को वृद्धि पाने में बड़ी सहायता पहुंचती है। तत्पश्चात् फ़ारेन मैटर की आकृति में, गर्मी के अनुक्रम से परिवर्तन होता है।

इस बात को यदि हम ध्यान में रक्खें—तो वह रीति जिससे कि हम इस दशा को बदल सकते हैं और भयानक वेसिलाई को मार सकते हैं—पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है। असाधारण श्रेणी की बढ़ी हुई गर्मी को ठीक कर देना ही उचित है। फ्रिक्शन बाथ्ज और स्टीम बाथ्ज सात्विक भोजन इस गर्मी की दशा को ठीक करने के लिये सर्वोत्तम साधन हैं—जोकि प्राप्त हो सकते हैं। वे वैसे ही हैं जैसे कि मेरा मुखाकृति विज्ञान—एक बहुत ही अच्छे थर्मामेटर का काम देता है। मैंने अगणित रोगियों की चिकित्सा की है जो विभिन्न प्रकार के घावों में अर्थात् सर्तानी घाव—चई रोग के घाव, आतशक उपदंश) के घावों में ग्रस्त थे। बहुत से रोगियों में जिनकी जीवन-शक्ति अत्यन्त घट नहीं गई थी और शरीर औषधियों से अति पूरित न था, ऐसे-ऐसे घाव आश्चर्यजनक अल्प काल में ही आरोग्यता को प्राप्त हो गए। जो सफलता को प्राप्त हुई, उन अनेक प्रकार की दशाओं में से मैं केवल एक ही का कथन करूँगा जिसमें रोगी की दशा अत्यन्त शोचनीय थी और जिसके आरोग्य होने में साधारण समय से तिगुने से लेकर छः गुने तक समय लगा।

पचास वर्ष की आयु के एक भद्र पुरुष के पाँव और टाँग में घुटने तक खुले और बहते हुए घाव थे। घावों का एक समूह था। वे एक दूसरे से मिले हुए गिन्ती में तीस-चालिस के लगभग थे। सब से बड़ा घाव पूरा चार इंच लम्बा-चौड़ा था। उससे अत्यन्त दुर्गन्धित और पानी सी पतली पीप बराबर निकलती रहती थी। थोड़े काल के लिये तो उनको आराम हो गया था, परन्तु उन घावों के स्थान फिर ऐसे ज़ोर से खुजलाने लगे थे कि रोगी उस खुजलाह को सह नहीं सका और खुजलाने के कारण यह घाव फिर वैसे ही खुल गये। यह खुजलाहट उस निकृष्ट तत्व के जो त्वचा के नीचे थी, तेज़ी से उबाल खाने और उस अत्यन्त गर्मी से जो (निकृष्ट तत्व के उबाल में आने के कारण) टाँग में हो गई थी उत्पन्न हुई थी। ज्योंही घाव नये सिरे से फूट निकले त्यों ही खुजलाहट बन्द हो गई। टाँग के सम्पूर्ण निम्न भाग का रंग, गेंहुवाँ स्याही लिये हुए हो गया था जो इस बात का परिचय देता था कि उसमें सड़न उत्पन्न हो गई है। कई घाव हड्डी तक पहुँच गये थे। सम्पूर्ण

चिकित्साएँ जिनको रोगी ने अब तक कराया था निष्फल हुईं। अब केवल अंग को काट डालने व सड़न के फैलने के कारण मृत्यु को प्राप्त होना ही शेष रह गया था। वह मनुष्य इस निराशा की दशा में, यद्यपि उसको मेरी चिकित्सा में निश्चय न था, मेरे पास आया।

मैंने मुखाकृति विज्ञान द्वारा तत्काल ही निश्चय कर लिया कि उसकी पाचन क्रिया बिगड़ी हुई थी। आमाशय अत्यन्त शीघ्र पचने वाले भोजनों को भी यथार्थ रीति से पचाने के योग्य न था। शरीर भी शुद्ध रक्त (रुधिर) उत्पन्न न कर सकता था। फेफड़े भी अपनी क्रिया करनी में असमर्थ थे। इस प्रकार यह बात सुगमता से समझ में आ जाती है कि शरीर में विकारी वस्तु (फ़ारेन मैटर) बहुत एकत्रित हो गई थी और वह प्रति दिन बढ़ती जाती थी। आमाशय और फेफड़ों की दशा के कारण विकार-जनक वस्तु की मात्रा प्रति दिन बढ़ती थी। रोगी को ध्यान न था कि वह उपरोक्त प्रकार के पुराने निकृष्ट तत्व के बोझ में ग्रस्त है जो उसकी टांगों में रोग होने का कारण है। इसी लिये यह बात उसकी समझ में न आई कि मैं सम्पूर्ण शरीर की चिकित्सा करने पर इतना बल क्यों देता हूँ और केवल टांगों की ही चिकित्सा क्यों नहीं करता। मैंने टांगों के घावों के लिये केवल जल से भीगे हुए हल्के वस्त्र की गद्दियां निश्चित की और उन गद्दियों को ऊनी वस्त्र से ढकना। मैंने इन बातों पर अधिक ज़ोर दिया कि रोगी सात्विक भोजन का सेवन करे, टटकी तथा स्वच्छ वायु में बहते रहे, चार फ्रिक्शन सिटिज बाथ्ज प्रति दिन लेवे और स्वाभाविक रीतियों से प्रति दिन स्वेद लावे। परन्तु रोगी ने आरम्भ से ही टाँगों पर गद्दियों के सेवन में मेरे बतलाये हुए स्नान और भोजन की अपेक्षा, जिनका अभिप्राय वह नहीं समझता था, अधिक ध्यान नहीं दिया। फल यह हुआ कि ६ मास तक किसी बात में भी अधिक उन्नति न हुई। अन्त में उसको मेरी सम्मतियों पर ही, न कि अपने विचारों पर, ठीक-ठीक चलने की सम्मति दी गई और अगले ६ मास की चिकित्सा में अत्युत्तम फल प्राप्त हुए। घाव लम्बाई-चौड़ाई में कम हो गए और छोटे घावों में से बहुतों को पूरा-पूरा आराम हो गया। दुःखदाई खुजलाहट भी जाती रही और पीप का बहना प्रायः बन्द हो गया। उसकी साधारण दशा और पाचन शक्ति अब पहिले से अत्यन्त अच्छी थी, और फेफड़ों का दोष बढ़ना भी रुक गया था। शुभ चिह्नों से आशा प्राप्त कर के रोगी ने मेरी चिकित्सा रीति पर बड़े उत्साह के साथ चलना

आरम्भ किया। दूसरे वर्ष में घावों ने अपना स्थान घुटने के नीचे से बदल कर घुटने के ऊपर कर लिया। नीचे के घाव अच्छे होकर घुटने के ऊपर नये सिरे से फूट निकले। अब रोग पेड़ू के और भी समीप आ गया था और यह एक अति उत्तम चिह्न था।

घुटने के नीचे टांग की दशा प्रतिक्षण सुधरती गई। जबकि प्रथम खुला हुआ घाव घुटने के ऊपरी स्थान पर फूटा जहां कि पहिले कभी नहीं हुआ था तो रोगी को निश्चय हुआ कि मेरी चिकित्सा रीति भी किसी काम की नहीं, क्योंकि घाव अब धड़ के बहुत निकट आ गया। मैंने उसको समझाया कि यह एक उत्तम बात है क्योंकि अब निकृष्ट तत्त्व पेड़ की ओर जहां से कि वह आया था उलटा गमन करने की दशा में है। उसने इस बात की सत्यता को देख कर चिकित्सा को नियमानुकूल जारी रक्खा, किन्तु पाचन शक्ति और फेफड़ों को इतना बलिष्ट और ठीक बनाने को कि जिनसे घाव पूरी तौर पर अच्छे हो गये उसको तीन वर्ष तक चिकित्सा करनी पड़ी। इसके संग ही त्वचा का रंग भी ठीक हो गया। इस प्रकार मेरी चिकित्सा ने एक कठिन रोग को जिसको आधा क्षयी युक्त और आधा सर्तानी कहेंगे और जिसको अन्य चिकित्सकों ने असाध्य ठहराया था आरोग्य कर दिया और अब तक घाव नहीं उभरे।

विषैले कीड़े मकौड़ों का डंक मारना, पागल कुत्ते और सर्प का काटना, रुधिर का विषैला हो जाना।

मनुष्य के रुधिर के परमाणुओं में प्रत्येक वस्तु का प्रभाव अत्यन्त शीघ्र पहुँचता है। जब रुधिर से निकृष्ट तत्व छू भी जाता है तो उसमें एक प्रकार की उत्तेजना की दशा उत्पन्न हो जाती है। उसी प्रकार की जैसी की सड़न की कार्यवाही की दशा होती है। पूर्ण आरोग्य मनुष्य के रुधिर में भी, जब उसकी शारीरिक दशा ठीक हो तो विषैले सर्प के काटने से ज्वर के चिह्न, वैसे ही जैसे कि सड़न की दशा में होते हैं, उत्पन्न हो जायेंगे।

जब शरीर में विकारजनक वस्तु का भार विद्यमान हो तो निस्संदेह विष अत्यन्त शीघ्रता से अपना प्रभाव करेगा। यह बात स्पष्ट है। यदि विष रुधिर में प्रवेश कर जावे—या तो किसी कीड़े वा सर्प के काटने से अथवा कुत्ते की लार, पीप या सड़न से उत्पन्न हुई किसी अन्य वस्तु के रूप में—तो विकारजनक वस्तु की मात्रा स्वयम् ही सड़न को शीघ्र उत्पन्न करती और अधिक बढ़ जाती है। इस प्रकार विकारजनक वस्तु अधिक परिमाण में एकत्रित होकर शरीर के भीतर अत्यन्त शीघ्रता से सड़ने लगती है और वह जीवन के भय को अत्यन्त बढ़ा देती है। ऐसी दशा में शरीर में जितनी ही अधिक विकार जनक वस्तु होती है उतनी ही रुधिर में विष पहुँच जाने से अधिक उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है। यही कारण है कि मधुमक्खियों के काटने से एक मनुष्य के तो अधिक सूजन हो जाती है और दूसरे मनुष्य पर इसका कठिनता से मच्छर ही के काटने के समान अत्यन्त साधारण प्रभाव होता है।

मैंने यह भी देखा है कि एक मनुष्य बावले कुत्ते के काटने से पगला हो गया, यद्यपि दूसरे मनुष्य पर जिसको कि उसी कुत्ते ने काटा था वैसा असर नहीं हुआ था कि जिसका कथन भी किया जाय। कोई मनुष्य सर्प के काटने से मृत्यु को प्राप्त होता है और किसी को केवल ज्वर ही हो जाता है। भय सदा काट खाने से ही नहीं होता बल्कि उस मनुष्य की दशा पर होता है जिसे काटा गया है। यही दशा रुधिर में "विष फ़ैल जाने" की भी है जो "बड़ी अच्छी चीरा-फाड़ी की शल्य-क्रिया के पश्चात् अधिकता के साथ देखने में आती है। उफ़ान अथवा सड़न के विषय में मेरे ज्ञात किये हुए नियमों से बावले कुत्तों के काटने के विचित्र प्रभावों का एक कारण समझ में आता है। बावले कुत्ते की लार का विष—प्रथम रोग की एक गुप्त और आदि दशा उत्पन्न करता है और कुछ आगे चलकर उसके प्रकट चिह्न दिखाई देते हैं। इसका विष सबसे प्रथम उदर की रगों और उदर के आन्तरिक अंगों पर अपना प्रभाव डालती है। यह प्रभाव जब तक कि काटे हुए को कई सप्ताह न बीत जायँ सिर और मस्तिष्क में नहीं पहुँचते। तब हाइड्रोफ़ोबिया❀ में रगों के ऐंठने के चिन्ह प्रगट

❀ यह यूनानी भाषा का शब्द है। इसके अर्थ यह है कि जल से भय, खाना अथवा वह रोग जो कुत्ते के काटने से हो जाता है।

होते हैं। बावले कुत्तों की पाचनशक्ति और क्षुधा प्रायः मेरे देखने में आई है। वह सदैव ही अत्यन्त अधिक वा अति न्यून होती है।

निम्न लिखित वृतान्त से सर्प के डसने के प्रभाव का विवरण मिलेगा।

एक बालक के सिर में जब कि वह एक बन में लेटा हुआ था सर्प ने काट खाया। इसके प्रभाव से पेड़ू में ऐंठन हो गई जिसके कारण पन्द्रह घंटे तक उसको मूत्र न आया। उसका जीवन बड़े संकट में था। उस समय मेरी रीति का सेवन किया गया और उस बालक को सम्पूर्ण शरीर के स्टीमबाथ और स्थानिक स्टीम बाथ से भली प्रकार स्वेद लाया गया और ठण्ड पहुंचाने वाले फ्रिक्शन बाथ* और पूरे-पूरे अनुत्तेजनीय भोजन आवश्यकीय थे। थोड़े ही काल में सम्पूर्ण भय जाता रहा, और उस बालक ने बहुत सा पेशाब किया।

यदि अब हम फिर भिन्न-भिन्न प्रकार के विषों के (वे किसी कारण से ही क्यों नहीं) रुधिर में फैल जाने पर दृष्टि डालें तो हमको सदैव यह प्रतीत होता है कि प्रथम शरीर के चोट१ खाये हुए स्थान में सूजन आ जाया करती है। तीव्र ज्वर और बड़ी गर्मी प्रतीत हुआ करती है—चाहे यह पहिले केवल स्थानिक ही क्यों न हो। हमको प्रथम तो ज्वर को वश में करना उचित है; अँग के१ चोट खाये हुए भाग को ठण्ड पहुंचाना अत्यन्त उपकारी होता है। रुधिर में विष फैल जाने की कठिन दशाओं में यह प्रायः आवश्यक है कि चोट खाय हुए स्थान को, जितना कि शरीर का घायल हिस्सा आज्ञा दे, जल में—यदि सम्भव हो तो बहते हुए जल में रख कर ठण्ड पहुँचाई जावे। यदि उस अङ्ग को शीतल जल में न रक्खा जा सके तो शीतल जल में भीगी हुई कपड़े की गाद्दियाँ उस पर बराबर रखनी उचित हैं। उसी के साथ मेरे फ्रिक्शन सिट्ज और हिपबाथ का सेवन भी बारी-बारी से करना चाहिये।

छोटी चोटों से यथा मधु मक्खी के काटने से एक प्रकार की सूजन उत्पन्न हो जाती है जो कुछ काल तक रहती है और फिर अपना कोई प्रभाव छोड़े बिना ही लोप हो जाती है। इस स्थान पर यह कथन करना उचित होगा कि कीड़े-मकोड़े बहुधा शरीर के उन्हीं अङ्गों पर आक्रमण करते हैं जिनमें विजातीय द्रव्य की अत्यन्त

*फ्रिकीशन सिटिज और हिप दोनों से अभिप्राय है।
१—अर्थात वह स्थान जहाँ से शरीर में विष प्रवेश हुआ।

एकत्रता विद्यमान होती है। कपड़े की उस प्रकार की गद्दियाँ, जिनका कथन हो चुका है ऐसी दशाओं में आराम करने के लिये अति उपयोगी हैं। ऐसी गद्दियां शरीर से उसके अन्दर के विष को दूर करके आरोग्यता उपलब्ध करने के यत्नों में अथवा विष को लुआबदार वस्तु के अन्दर लपेट कर उसको हानिकारक बनाने में सहायता पहुँचाती हैं।

जब कि सूजन फैलने लगती है और अपने समीप के अङ्गों पर पहुंचने का भय दिखलाती है तो उसे बहुत अशुभ समझना चाहिये और इस अवसर पर समय को वृथा खोना उचित नहीं। अङ्ग जिस पर कि प्रभाव उपस्थित हो उसको शीतल जल में रखना उचित है। यदि ऐसा सम्भव न हो तो उसको भीगी हुई गद्दियों में लपेट देना चाहिये। जब ऐसी दशा हो तो मेरे रचित भाप के स्नान जिनके पश्चात् तत्काल ठन्डे स्नान अर्थात् फ्रिक्शन सिट्ज व हिप बाथ्स लिये जाने उचित हैं। उसी क्षण आराम पहुँचता है। फ्रिक्शन बाथ्स* का सेवन अकेले भी करना चाहिये। यदि भय हो तो उनको दो-दो या तीन-तीन घंटे के पश्चात् लेना उचित है। इस प्रकार ज्वर को निकालने से आरोग्यता की ओर बड़ी उन्नति होती है। ऐसी दशा में उपवास करना उचित है और यदि कुछ खाया भी जावे, तो बिना छने आटे की थोड़ी सी रोटी और फल खाने उचित हैं। जल पीना हानिकारक नहीं। शीतल स्नानों के उपरान्त गर्मी प्राप्त करने के लिये यह उत्तम है कि घाम (धूप) में बैठे। यदि सम्भव हो तो गृह के बाहर खुले मैदान में कुछ परिश्रम[1] भी करें। यदि दंश किए हुए स्थान कठोर हो गये हों तो एक अङ्ग का स्टीम बाथ देवें (अर्थात् शरीर के किसी-किसी अङ्ग को भाप से स्नान देवें) जिसके पीछे ठण्ड पहुँचाने वाला एक फ्रिक्शन बाथ लिया जाना आवश्यक है। स्टीम बाथ से स्वेद आता है; जिससे विजातीय द्रव्य बड़ी मात्रा में निकल जाता है।

इस वृतान्त से हम यह फल निकालते हैं कि उन चोटों से भी ज्वर की एक दशा उत्पन्न हो जाती है; और सबसे प्रथम हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस ज्वर को अपने वश में लायें।

एक युवा पुरुष (जिसकी आयु कठिनता से बीस वर्ष की होगी) के बायें हाथ में

* अर्थात् हिप व सिट्ज़बाथ का बिना भाप के स्नान का सेवन करना।

१—यथा टहलें या किसी प्रकार का व्यायाम करें।

जब कि वह खेत में था एक विषैले कीड़े ने डंक मारा। उस समय तो उसे कुछ अधिक पीड़ा न हुई और डंक लगा अङ्ग थोड़ा ही सूजा, अतः उस पर कुछ अधिक ध्यान न दिया गया। कुछ घंटों के पश्चात् पीड़ा आरम्भ हुई और हाथ सूजने लगा। थोड़े ही समय में सम्पूर्ण हाथ सूज गया। उस समय जो चिकित्सक बुलाये गये उन्होंने बतलाया कि रुधिर में विष फैल गया है और हाथ काटने के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। दैवयोग से मेरी चिकित्सा रीति का जानने वाला एक मनुष्य वहाँ प्रस्तुत था। अतः उसके द्वारा मेरी चिकित्सा रीती बर्ती गई। विशेषतया इस कारण कि वह डसा हुआ मनुष्य हाथ काटने से कुछ प्रसन्न न था। स्थानिक स्टीम बाथ लिये गये, जिनके पश्चात् तुरन्त ही फ्रिक्शन हिप बाथ लिए गए और कभी कभी केवल हिप बाथ भी लिये गये। इस प्रकार उसे सहायता पहुँची और सूजन का बढ़ना रुक गया। स्नानों के समय को छोड़कर शीतल जल की गद्दियाँ भी रक्खी गईं। रोगी को खुले हुए मैदान में विशेष कर धूप में भले प्रकार शारीरिक व्यायाम करना पड़ा जिससे कि पसीना आवे। इस साधारण रीति में डंक का सब चिह्न शीघ्र ही जाता रहा और उसके साथ रोगी की आरोग्यता की साधारण दशा को भी अत्यन्त लाभ पहुँचा।

———

स्त्रियों के रोग

स्त्रियों को उनके शरीर की बनावट पेचीदा होने के कारण जननेन्द्रिय सम्बन्ध रोग अधिक हुआ करते हैं। ये दोष उन्हें प्रायः अति पीड़ा पहुंचाया करते हैं।

उन दोषों के अतिरिक्त जो ऋतुकाल में, गर्भकाल में' जनने के समय में प्रासूतिक पीड़ाओं के समय में और बालक को दूध पिलाने के समय में उनकी स्वाभाविक कार्यवाहियों में हुआ करते हैं अन्य पीड़ायें भी हैं जो बहुधा देखने में आती हैं। ये पीड़ायें वर्तमान समय की भूलों से जिनमें कामचेष्टा (शहवत परस्ती), बहु भोज्यता और कुमागता आदि हैं, उत्पन्न होती हैं और इन्हीं से स्त्री के शरीर के भीतर पुराने और हानिकारक दोषों की जड़ पड़ती है। इनसे वह क्रमागत दोष उद्धृत होते हैं जिनसे आरोग्यता प्राप्त करने में चिकित्सा-विद्या व्यर्थ यत्न करती है।

अब प्रश्न यह है कि यह रोगों की सेनायें (अर्थात दोष) जो प्राय: स्त्री शररीर से विशेष कर सम्बन्ध रखती हैं कहां से उत्पन्न हो जाती हैं? स्त्रियों की यथार्थ जीवन रीति, शारीरिक आरोग्यता की ओर ध्यान न देने, खुले मैदान में नियमानुकूल व्यायाम न करने, शारीरिक आवश्यकताओं को तत्काल और स्वभाविक रीति से दूर करने में ध्यान न देने, विलास प्रियता के साधनों की खोज और नेचर के मार्ग से बहुत सी आवश्यक बातों की विमुखता से यह सम्पूर्ण दोष उत्पन्न होते हैं।

यह सम्पूर्ण शक्तियां कई प्रकार से मिल कर स्त्री के अत्यन्त कोमल शरीर पर अति शीघ्र प्रभाव करती हैं। यह आश्चर्य की बात नहीं कि स्त्री के शरीर में से सहन करने की शक्ति दूर हो जाती है और अगणित दोष उसमें उत्पन्न जाते हैं।

और इसके विरुद्ध हो भी कैसे सकता है? परिश्रमी किसान की स्त्री (यद्यपि वह भी सर्वदा प्रकृति के अनुसार जीवन व्यतीत नहीं करती) और नगर निवासिनी नागरी में तुलना करने पर मेरे कथन की सत्यता भली भाँति प्रमाणित हो जायेगी।

अतः यदि स्त्री के शरीर में विशेष अगणित रोग--(कुछ पैतृक रोग और कुछ अपनी भूलों से उत्पन्न किये हुए रोग) उपस्थित रहते हैं —तो मेरी चिकित्सा रीति का सेवन जो सम्पूर्ण विभिन्न पीड़ाओं का सफलता से सामना करने का साहस रखता हैं और भी अधिक आवश्यक हो जाता है।

और यह एक धन्यवाद का अवसर है कि स्त्रियों में मेरी चिकित्सा रीति सरल और व्यय-रहित होने के कारण बहुत शीघ्र स्वीकार की गई है। और उनको पुनः आरोग्यता उपलब्ध हो जाने में मेरी चिकित्सा रीति का पूर्ण विश्वासी बना दिया।

इस बात पर कि क्यों और किस कारण ऐसा होता है बहुत सम्भाषण किये बिना ही, इस चिकित्सा रीति के अनमोल-प्रभावों का उनको निश्चय हो गया है और वे उसकी बड़ी पक्की शिष्या बन गई हैं।

मेरी नवीन निदान विधि अर्थात 'मुखाकृति विज्ञान' ने बहुत से मित्र बना लिये हैं क्योंकि इस चिकित्सा में जननेन्द्रियों के किसी प्रकार की परीक्षा करने की आवश्यकता नही रहती। इसलिये स्त्रियाँ अवश्य इसका पक्ष करेंगी, क्योंकि इस प्रकार की परीक्षायें किसी भी लज्जाशील स्त्री को नही रुचतीं और नवीन चिकित्सा रीति से ज्ञात करली जा सकती है।

स्त्रियों के लिये यह अति आवश्यक है कि उनके रोग का कारण ज्ञात किया जाय और किसी ऐसे रोग को जिसकी जड़ बहुत गहरी चली गई हो जान लिया जाय, क्योंकि स्त्रियाँ व कन्याएँ अपनी डाक्टरी परीक्षा कराने से बहुत झिझकती हैं। इस कारण बड़े-बड़े रोगों तक की वे कुछ चिन्ता नहीं करतीं।

स्त्रियों ने मुझे कितना धन्यवाद दिया है कि मेरी इस नवीन चिकित्सा विधि ने उनके गुप्त शरीर की शल्य-क्रिया द्वारा गँवारी और भौंड़ी परीक्षा को सदा के लिये रोक देने का अमूल्य अवसर प्राप्त कराया है

मेरी चिकित्सा रीति ने, जिसको कि स्त्रियों ने उसके प्रत्यक्ष प्रभावों के कारण, अत्यन्त शीघ्र स्वीकार किया है, पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। स्त्रियों और कन्याओं द्वारा मेरी चिकित्सा प्रणाली का पूर्ण रीति से स्वीकार किया जाना मेरी चिकित्सा के फलीभूत होने का एक बड़ा जीता जागता प्रमाण है। चाहे रोग, जिस में कि स्त्री-प्रसित हो कई भी हो, परन्तु मेरी चिकित्सा रीति से अवश्य आरोग्यता प्राप्त हो जाती है।

ऋतु (हैज़) के दोष—ऋतु से प्रकट होता हैं कि बालक उत्पन्न करने के लिये तैयारी की दशा सर्वदा वर्तमान हैं। जब तक की गर्भ स्थित नहीं होता उस समय तक ऋतु के रुधिर का प्रवाह, बिना अपने प्रयोजन पूरा किये हुये यथाक्रम होता रहता है; परन्तु आरोग्य स्त्री में इस कार्यवाही के संग न तो कोई पीड़ा होती है और न कोई अप्रसन्नता ही प्रतीत होती है। यदि ऐसी बात प्रतीत होती तो निश्चय ही यह परिणाम मिलता कि शरीर में किसी प्रकार के विकारी द्रव्य का भार विद्यमान है।

मुझे वर्षों के अनुसन्धान से ज्ञात हुआ है कि स्त्री के शरीर में इस स्वाभावित कार्यवाही अर्थात ऋतु का सम्बन्ध चन्द्रमा से है। मैं कहूँगा कि पूर्ण आरोग्य स्त्री में ऋतु पूर्णमासी के दिन प्रकट होना चाहिये और तीन से चार दिवस पर्य्यन्त वह प्रवाहित रहना चाहिये, और ठीक दिन व्यतीत होने के उपरान्त फिर प्रकट होना चाहिये। जिन स्त्रियों में उक्त समय पर वा उस समय के निकट ऋतु नहीं होता उनको विश्वास करना चाहिये कि उनके उदर के आन्तरिक अङ्गों में विजातीय द्रव्य का बोझ अवश्य विद्यमान है और यह भार उतना ही अधिक होगा जितना कि ऋतु का प्रवाह पूर्णिमा से अधिक दूर हो गया होगा। यदि ऋतु केवल दो या तीन सप्ताह के पश्चात लौट-लौटकर आवें या ऋतु चौदह दिवस पर्यन्त प्रवाहित रहें (दुर्भाग्यवश वर्तमान समय में यह दोनों ही चिह्न बहुधा प्राप्त हैं) तो वेकारी द्रव्य का बोझ और भी अधिक पुराना होगा।

प्रकृति में प्रत्येक वस्तु में सर्वदा परिवर्तन होता है रहता है, अतः इस ऋतु-कार्य से भी हमको शरीर की दशा में प्रायः प्रतिक्षण एक प्रकार की अधिकता वा न्यूनता अथवा घटना और बढ़ना जान पड़ता है। स्त्रियों और कन्याओं में ऋतु के दिनों में जितना ध्यान दिया जाता है उससे कहीं अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। ऋतु के दिनों में शान्ति धारण करने और सब प्रकार की उद्दीपन करने वाली बातों से बचने की प्रार्थना प्रत्येक उस स्त्री से की जाती है जो उन बुरे परिणामों से सुरक्षित रहना चाहती है जिन के देखने का मुझे प्रायः अवसर मिला है। गर्भवती स्त्री के संग यह बात विशेषतः होती रहती है। गर्भवती स्त्री के सम्पूर्ण विचारों और कार्य्यों का प्रभाव गर्भाशय में बच्चे की बढ़न पर पड़ता है। मुझे अनुभव ने यह बात दर्शाई है कि वह रोग जो इन दिनों में हो जाते हैं सब से अधिक कुप्रभाव रखते हैं।

यह स्वाभाविक कार्यवाहियाँ स्त्री के शरीर के भीतर होती रहती हैं। विचारवान मनुष्य के लिये ये अन्य विचारणीय बातें प्रकट करती हैं। इन नियमों से प्रकृति के वास्तविक नियमों के एक आश्चर्यजनक सामञ्जस्य का अद्भुत प्रमाण मिलता है मैंने इस विषय में अपनी पुस्तक मुखाकृति विज्ञान में भली भाँति विचार किया है और इसकी ओर उन मनुष्यों का जिनको इस विषय से रुचि है ध्यान दिलाता हूँ।

जैसा कि कथन हो चुका है कि यदि ऋतु की अधिकता वा अति न्यूनता, अथवा ऋतु रुक जावे, अथवा नियमानुकूल न हों, तो यह सम्पूर्ण निश्चित प्रमाण विकारी द्रव्य के भार की विद्यमानता का है। प्रश्न यह है कि रोग की यह दशा किस प्रकार दूर की जाये ? आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या इस स्थान पर भी हमें धोखा नहीं देती पेट में विकारी द्रव्य की विद्यमानता से ऋतु के दोष के प्रथम पाचक-शक्ति अवश्य दूषित हुआ करती है, और इन दोषों में यह प्रतिक्षण और स्वाभविक रहा करती है। यदि हम पाचन शक्ति को ठीक करें इस नियम सहित मल त्याग होने पर ध्यान रक्खें और पेडू के भीतर की अनियमित या ऊँची श्रेणी की गर्मी को कम कर दे तो ऐसे रोगों के बुरे परिणाम स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं।

मेरे शीत पहुँचाने वाले स्थान, जो विकारी द्रव्य के बोझ की दशा के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के लिये निर्धारित किये जाते हैं, अनुत्तेजनीय भोजन और मेरी आरोग्यता दायक अन्य प्रसिद्ध क्रियाएँ ऋतु के दोषों में अत्यन्त फलदायक प्रमाणित हुई हैं जैसा कि प्राप्त की हुई आरोग्यताओं से भली भाँति प्रमाणित हो चुका है।

मुझे निश्चय है कि ऋतु का रुधिर शरीर के भीतर दोषों की अधिकता प्रकट करता है। गर्भ स्थित होने पर यह रुधिर गर्भ के पालन का काम देता है और यह बात सत्य है कि गर्भाशय के भीतर बालक के बढ़ने के लिये पूर्णिमा के चन्द्रमा के समीपी दिन अत्यन्त सतर्कता के होते हैं अर्थात् वह दिन जिसमें की आरोग्य (न कि गर्भवती) स्त्री में ऋतु प्रकट हुआ करता है।

मुझे इस बात का भी पूर्ण विश्वास है कि वे रोग जिनका सम्बन्ध गर्भाशय से है ज्यों ज्यों चन्द्रमा बढ़ता है त्यों त्यों बढ़ने लगते हैं और ज्यों ज्यों चन्द्रमा घटता है त्यों त्यों अच्छे होने लगते हैं। इन कार्यवाहियों से भी यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य जाति और प्रकृति (नेचर) में कितना समीपी सम्बन्ध है।

मेरे पाठकों के यह कुछ विस्तार से उन वृत्तान्तों का श्रवण करना जो मेरे अनुभव में आचुके हैं और जिसके उपरोक्त उपायों की प्रशंसा प्रकट होती है कुछ कम आनन्द दायक न होंगे।

पहिला वृत्तान्त एक गर्भवती स्त्री का है जो चूहों से अत्यन्त डरा करती थी एक दिन एक चूहा उसकी नंगी बाँह पर से दौड़ा। यह ठीक वही समय था जब कि उसके गर्भवती न होने की दशा में वह ऋतुमती होती।

यह बात कि वह स्त्री कितनी भयभीत हो गई थी इससे जान पड़ती है कि वह इस घटना को अपने हृदय से दूर नहीं कर सकती थी। रात्रि को स्वप्न में भी उसको इसी का ध्यानन रहता था। छः मास के उपरान्त जब बालक जन्मा तो उस बालक की बाँह पर एक चूहा अर्थात् ठीक एक स्थान चूहे की आकृति और उतने ही आकार का, चूहे की पूंछ के, जिस पर बहुत बारीक बाल थे, दिखाई दिया। परन्तु यह सम्पूर्ण स्थान भुजा की त्वचा के बराबर ही था और उस पर एक अद्भुत प्रकार के भूरे बाल ठीक चूहे के से उपस्थित थे।

एक दूसरा वृत्तान्त एक स्त्री का है जो छठी बार गर्भवती हुई थी उस स्त्री के और उसके पति और उसके पांचां बालकों के भी बाल स्याह थे। इस गर्भ* के दिनों में कन्या से उसकी बड़ी प्रीति थी जो नित्य उसके साथ रहा करती थी। इस कन्या के बाल ऐसे चमकीले सुर्ख व लहराने वाले घुँघराले और इतने घने थे कि इस प्रकार के बालक बहुत ही कम देखने में आते हैं। वह स्त्री इस लड़की से बड़ी प्रीति रखती थी और यह उसके चित्त की अभिलाषा थी कि उसके बालक के भी बाल वैसे ही हों। यह अभिलाषा उसकी उन दिनों में बहुत बढ़ जाती थी जब कि उसको, यदि वह गर्भवती न होती तो ऋतु हुआ करते, और प्रायः वह इस बात को स्वप्न में भी देखा करती थी। पाँच मास में उसके एक कन्या पैदा हुई। रूप रंग में तो वह अपने माता पिता से मिलती थी परन्तु बाल उसके वैसे ही विचित्र सुर्ख थे जैसे कि उपरोक्त लड़की के थे।

तीसरा वृत्तान्त भी जो इन दोनों की अपेक्षा कम विचित्र नहीं है यह है कि एक स्त्री एक छोटे से कुत्ते के साथ गाड़ी में जा रही थी, वह कुत्ता किसी समीप से

* उस गर्भ से अभिप्राय है जिसका वृतान्त लिखते है।

जाने वाली वस्तु पर मोहित होकर ऐसा शीघ्र कूदा कि अभाग्य से गाड़ी का पहिया उसके शिर पर से उतर गया। इस घटना से उस स्त्री को ऐसा दुःख पहुँचा कि वह इस कुत्ते के शिर कुचल जाने के दृश्य को भूल न सकी। वह चन्द मास से गर्भवती थी और ६ मास के उपरान्त जब उसका बालक जन्मा तो मरा हुआ और था उसका शिर बिल्कुल कुचली हुई दशा में था।

मैं एक चौथा वृत्तान्त और भी लिखता हूँ। एक स्त्री के एक ऐसा बालक जन्मा जिसका मुँह एक कान से दूसरे कान तक खुला हुआ था। वह जन्मते ही तुरन्त मर गया इस कुरूपता का कारण एक भय का हो जाना था जो उसकी माता को एक बहुरुपिये के बड़े मुख वाले कृत्रिम चेहरे के अकस्मात् देखने से उत्पन्न हुआ था। वह ऐसी भयभीत हो गई थी कि रात्रि तक सो न सकी थी। यह बात उसके ऋतु के दिनों* में हुई थी नहीं तो उसका प्रभाव इस प्रकार प्रकट न हुआ होता।

पाठक गण समझ जायेंगे कि किस प्रकार बालकों के भिन्न भिन्न स्वभाव और चलन प्रायः उन दशाओं और बातों पर निर्भर हुआ करते हैं जो उसकी माताओं की गर्भ के उन दिनों में रहीं हों जिसमें कि यदि वे गर्भवती न होती तो ऋतु आये होते। यदि वे चिन्तातुर और प्रत्येक वस्तु को बुराई का कारण समझती रही होंगी तो यही बालकों में भी कभी न कभी प्रकट होगी। क्रोध, कायरता, दिलेरी (शूर वीरता) क्लेपटोमेनियाँ[१] (चोरी करने की ओर चित वृत्तियों का जन्म से ही जाना), धोका देना, लोभ और सम्पूर्ण अन्य भले और बुरे चिन्हों का क्रम एक ही कारण से मिलाया जा सकता है।

इन बातों से हमको यह परिमाण निकालना उचित हैं कि वे सम्पूर्ण बाह्य शक्तियाँ जो हमारी इन्द्रियों पर अपना प्रभाव डालती हैं अर्थात जोकि हमारे मस्तिष्क के अंगों पर प्रभाव डालती हैं, वे अपनी मुख्य शक्ति को उसी स्थान पर व्यय नहीं कर देतीं प्रत्युत स्नायु के द्वारा पहुँच कर पेड़ू और उदर के आन्तरिक अंगों पर प्रभाव डालती हैं। यदि पाठको ने मेरे ज्वर के सिद्धांत को ध्यान देकर समझ लिया है तो उनको ज्ञात हो जायगा कि मैं पेड़ू को सम्पूर्ण रोंगो के उत्पन्न होने के कारण का

*अर्थात् उन दिनों में जब कि यदि वह गर्भवती न होती तो उसको ऋतु होते।

१—अंग्रेजी शब्द हैं।

स्थान समझता हूँ। मेरे सिद्धांत की, जो पेड़ू को मानव देह के भीतर एक मुख्य अंग बनता है उपरोक्त कथनों द्वारा भली भाँति और पूर्णतया पुष्टि होती है और मेरी चिकित्सा विधि उसके सङ्ग सङ्ग ऐसे प्रमाण देती है जो किसी प्रकार अशुद्ध नहीं ठहराये जा सकते।

गर्भाशय का टल जाना;* पिसारी का सेवन—यह दोष भी उसी कारण अर्थात गर्भाशय में विकार जनक वस्तु के बोझ के हो जाने ही से होता है। इस स्थान पर भी विजातीय द्रव्य आन्तरिक गर्मी और दबाव को उत्पन्न करता है जिसके कारण गर्भाशय जिसमें दबाव को रोकने की स्वल्प शक्ति है, आगे बढ़ आता है। यह दशा ऐसी ही है जैसी कि आँत उतरने की, जिसका कथन पीछे हो चुका है।

विद्वान चिकित्सकों को इस दोष का मूल कारण विदित नहीं और इस दोष के मूल तक वे नहीं पहुँचते, प्रत्युत एक रबड़ का छल्ला या अन्य सहारे की वस्तु योनि में रख रख देते हैं और इस रीति से गर्भाशय को पीछे को रोक देते हैं। मैंने बहुत सी ऐसी स्त्रियों की चिकित्सा की है जो ऐसे रबड़ के छल्ले पहिने हुए थीं। ऐसे रबड़ के छल्लों से किंचित्काल के लिये सहायता मिलती है, परन्तु कारण कि वे कदापि दूर नहीं कर सकते।

हमारी चिकित्सा रीति के सेवन से वह आन्तरिक दबाव जिसके कारण रोग फिर लौट आता है शीघ्र कम हो जाता है निकृष्ट तत्व निकल गया तो फिर छल्ले की क्या आवश्यकता ? और सङ्ग ही रोग के फिर लौट आने का संदेह जाता रहता है और यही बात गर्भाशय के तिर्छा हो जाने के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। यह पूर्णतया उस रीति के पेड़ू में आन्तरिक तनाव की अधिकता के हो जाया करता है। पेड़ू में विकारी द्रव्य का बोझ इतना हो जाता है कि गर्भाशय अपने स्थान से हट जाता है अर्थात् उसमें टेढ़ापन आ जाता है। इस दोष को भी उस एकसी चिकित्सा रीति की आवश्यकता होती है। यह बात कि यही चिकित्सा उसकी यथार्थ

---

* यह अंग्रेजी भाषा का शब्द है। यह लकड़ी मोमजामा अथवा इसी प्रकार की किसी और वस्तु का बनाते हैं, और इसे स्त्री की योनि में रख देते हैं कि गर्भाशय के मुख और ग्रीवा को सहारा देता रहे और उसको नीचे न गिरने देवे।

चिकित्सा है उन आरोग्यताओं से प्रगट होती है जो मेरी निकाली हुई चिकित्सा विधि के द्वारा उपलब्ध हुई हैं। अनुभव इस बात को दर्शाता है कि शल्य क्रिया से व हाथ से उनको ठीक करना उस अङ्ग को सदा के लिये हानि पहुँचाता है।

बाँझपन—यह शोक का विषय है कि बहुत सी स्त्रियाँ जो मुझ से सम्मति लेने आती हैं, वे अपना हार्दिक दुःख मुझसे वर्णन करती हुई शोक प्रगट करती हैं कि उनके विवाह होने से कोई संतान उत्पन्न नहीं हुई और वे बहुधा यह भी समझती हैं कि वे पूर्णतया नीरोग हैं। निस्सन्देह यह एक बड़ी भूल है, क्योंकि बाँझपन सदैव विकारजनक वस्तु के बोझ की अधिकता बताता है। विशेष कर योनि, गर्भाशय और उसके अण्डकोषों और फैलुपियन ट्यूब्स (यह दो नलियां हैं जो गर्भाशय के ऊपरी सिरे से निकल कर कोख तक गई हैं। इन नालियों का अन्वेषण मदीना निवासी फैलुपियस नामी हकीम ने सोलहवीं सदी में किया था, उसी के नाम से पुकारी जाती हैं) आदि में किन्हीं-किन्हीं दशाओं में विकारजनक वस्तु की मात्रा के विचार से गर्भ स्थित हो सकता है। परन्तु पेड़ में विजातीय द्रव्य की एकत्रिता के कारण इतनी अधिक सूजनी हो जाती है कि उसके कारण जो खिंचाव अथवा दबा होता है उससे गर्भपात हो जाता है अथवा समय से पूर्व ही बालक का जन्म हो जाता है।

गर्भपात विशेष कर गर्भ के आरम्भ के चार मासों में हुआ करता है और इन आकस्मिक कारणों से गर्भपात हुआ करता है, यथा—किसी प्रकार की उत्तेजना, भय, धक्का, ये सारी बातें विकारी द्रव्य में अधिक उत्तेजना उत्पन्न करने की शक्ति रखती हैं। कमर से कसकर पेटी बांधना गर्भपात का एक दूसरा कारण है।

ग्रामों में जहाँ कि स्त्रियां नगरों की अपेक्षा स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का अधिक पालन करती हैं गर्भपात को बहुत कम जानती हैं। मैंने ऐसी स्त्रियां देखी हैं जो गर्भ के सप्तम मास तक नाचने में शरीक होती रहीं और फिर भी कुछ हानि नहीं हुई।

गर्भपात का होना केवल उसके कारण को अर्थात् जननेन्द्रियों से निकृष्ट तत्व को दूर कर देने से ही रोका जा सकता है। शस्त्रिक-क्रिया, पिचकारी और हस्त-द्वारा औषधि भीतर पहुँचाने से, जिनसे कि स्त्री की बड़ी बेपर्दगी होती है कदापि आसा पूर्ण नहीं हो सकती। वास्तव में सम्भव है कि उनके कारण शरीर के भीतर आराम करने की वास्तविक शक्ति ऐसी कम हो जाय कि मेरी उक्त रीति से भी आरोग्यता प्राप्त करना असम्भव हो जाये।

इस स्थान पर मैं एक बात कहूँगा—जिसका कथन करना अत्यावश्यक है। अनुभव बतलाता है कि मैथुन (स्त्री प्रसंग) किस समय करना उचित है—कम ध्यान देने के योग्य नहीं है। जैसा कि सृष्टि में प्रत्येक स्थान पर प्रातःकाल के समय जीवन शक्ति अधिक होती है, वैसे ही मनुष्यों में भी अधिक होती है। अतः प्रात काल का समय सन्तान वृद्धि के लिए अत्युत्तम है। किसी दूसरे समय मैथुन करने से, जैसे कि रात्रि के समय में, स्त्री-पुरुष के स्नायु ही को केवल चेष्टा, और चेष्टा ही के कारण निर्बलता नहीं होती बल्कि यदि गर्भ स्थित हो जाय तो बालक उस वास्तविक शक्ति से न बढ़ेगा जैसा कि वह अन्य दशा में वृद्धि पाता।

यदि विकारी द्रव्य का बोझ अधिक नहीं है और शरीर में कुछ वास्तविक शक्ति भी पर्याप्त है तो बांझपन दूर हो सकता है। मैं बहुधा अपनी चिकित्सा रीति से स्त्रियों की मानसिक इच्छा पूर्ण करने के लिये उद्यत हुआ हूं। एक स्त्री जिसके विवाह को आठ वर्ष व्यतीत हो चुके थे बड़ी अभिलाषा रखती थी कि बालक की माता बने, और उस समय पर्य्यन्त बड़े-बड़े प्रतिष्ठित चिकित्सक उसकी कुछ सहायता न कर सके थे। अन्त में वे मुझसे सम्मति लेने को आई। मैंने उसको बतलाया कि उसक बाँझपन का मूल कारण पेड़ू के भीतर विकारी द्रव्य की अधिकता है और सबसे प्रथम विकारी द्रव्य को ही दूर किया जाय। केवल इसी रीति में वह अपनी मानसिक अभिलाषा को पूर्ण कर सकेगी।

मेरा नुस्खा यह था—प्रति दिन दो से तीन तक फ्रिक्शन बाथ, अनुत्तेजनीय भोजन, और स्वाभाविक रीति में जीवन व्यतीत करना। ऐसा करने से विकारी द्रव्य का बोझ कम हो गया और कुछ मास के उपरान्त उसने मुझे गर्भवती होने का मंगल समाचार सुनाया। मेरी चिकित्सा रीति के प्रभावशाली होने का प्रमाण इस बात से मिलता है कि उसके सुगमता से नीरोग बालक उत्पन्न हुआ।

स्तनों का घायल हो जाना अर्थात् थनैला और दूध न उतरना—बालक का सब से उत्तम और पूर्ण स्वाभाविक आहार माता के पयोधर का दूध है। सब अंगों में श्रेष्ठ अग स्तन हैं, जिसकी क्रियाओं का दुर्भागय से आजकल, प्रायः बेसमझी के कारण, बहुत ही कम स्वागत किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि स्वस्थ संतान (नस्ल) के पालन करने की एक अमूल्य वस्तु की अवहेलना की जाती है। कितनी ही मातायें ऐसी देखने में आती हैं जो अपने बालकों को समान्य वा

पूर्ण रीति से दुग्ध पिलाने के अयोग्य हैं। ऐसी मातायें वास्तव में नस्ल बढ़ाने के योग्य नहीं हैं। क्या पशुओं में कभी भी ऐसी दशा देखने में आती है? क्या हम कभी ऐसा देखते हैं कि कोई पशु अपने बच्चे को दुग्ध न पिला सकता हो, वा दुग्ध पिलाने से कभी उसके स्तनों में व्रण (जख्म) हो जाते हों? ऐसी दशा कभी उपस्थित नहीं होती। अतः कोई नियत कारण ऐसे अवश्य होंगे जिनसे ये बातें मनुष्य जाति में पाई जाती हैं। गर्भवती होने और दुग्ध पिलाने के प्रथम स्तनों का परिमाण में बहुत बड़ा होना एक इसी प्रकार का कारण है। लोग यह बात भली भाँति जानते हैं कि बहुत सी स्त्रियाँ जिनके स्तन इस प्रकार बहुत बढ़े हुए होते हैं, किसी बालक को या तो दुग्ध पिलाने के विल्कुल अयोग्य होती हैं, अथवा उनके स्तनों के सिरों पर व्रण हो जाते हैं। कुमारावस्था में इस प्रकार स्तनों का बड़ा होना कदापि आरोग्यता को नही जताता। इसके विरुद्ध यह निश्चित चिह्न इस बात का है कि उसके शरीर में विकारजनक वस्तु का बोझ अधिक है।

हमने ग्रामों में प्रायः देखा है कि स्त्रियाँ किस प्रकार बिना पीड़ा के ही बालक जनती और उनको दुग्ध पिलाती हैं। यद्यपि न तो गर्भवती होने के पहिले और न दुग्ध पिलाने की अवस्था में उसकी छाती बड़ी और भारी होती हैं। दुग्ध का कम उतरना भी उस समय हो सकता है जब कोई स्त्री अत्यन्त दुर्बल हो; यह दुर्बलता इस बात को प्रकाशित करती है कि विकार जनक वस्तु के पुराने बोझ की जड़ बहुत गहरी पहुँच गई है मैंने देखा है कि ऐसी दशाओं में विशेष कर जब बालक की माता दुग्ध न उतरने के कारण वह पदार्थ खाती हो जो आजकल उत्तम पुष्टिदायक भोजन माने जाते हैं जैसे मांस, अँगूरी शराब, जौ की शराब, अन्डा, दुग्ध आदि तो वह आगे को दुग्ध पिलाने के योग्य नहीं रहती।

मैंने बहुधा इस बात का अनुभव किया है कि उचित वा अनुत्तेजनीय भोजन और मेरे फ्रिक्शन बाथ्ज़ वा स्टीम बाथ, दूध पिलाने की अयोग्यता को दूर कर देंगे और इसी प्रकार थनेले को भी दूर कर देंगे।

एक स्त्री के तीसरा बालक जन्मा। वह पहले दो बालको में से एकको भी अपना दूध न पिला सकी थी। उसको दूध पिलाने की बड़ी अभिलाषा थी। इस बार बालक के जन्म से कुछ काल पूर्व उसने मेरी चिकित्सा रीति का सेवन किया था। उसकी अभिलाषा पूर्ण हुई, बालक के लिए काफ़ी दूध उतरा।

मेरे चिकित्सा कर्म में इस प्रकार की बहुत सी दशाएँ देखने में आई हैं।

थनैले की चिकित्सा के विषय में बहुत सी घटनाओं में से चुनकर एक का इस स्थान पर कथन करूँगा।

एक तरुण स्त्री के स्तनों पर बालक जन्मने के कुछ सप्ताह पश्चात् सूजन की पीड़ा होगई। उसके कुल-वैद्य ने उसमें चीर-फाड़ कराने की सम्मति दी परन्तु उस रोगी स्त्री ने शल्य क्रिया का निषेध किया और उसी सायंकाल को बहुत अँधेरे ही मुझे बुलाया। मैंने उसको समझा दिया कि शस्त्र-क्रिया केवल निरर्थक ही नहीं है बल्कि अत्यन्त भयानक है, मुझे निश्चय है कि मैं एक और ही रीति से बहुत ही अल्पकाल में इसकी सहायता कर सकूँगा। उस स्त्री ने मेरे कथनानुसार कार्य किया और उसी रात्रि में आध-आध घंटे के पश्चात् चार फ्रिक्शन सिट्ज़बाथ हर बार आधे-आधे घण्टे के ५५ अंश फेरनाहाइट की गर्मी के पानी में लिये। अगले दिन उसकी दशा बहुत सुधर गई। चिकित्सा करने के पश्चात् सम्पूर्ण पीड़ा जाती रही। कुछ दिन और चन्द सप्ताह चिकित्सा करने पर उसकी दशा बिल्कुल ठीक हो गई, कारण यह कि विजातीय द्रव्य जो कि रोग का कारण था—पेड़ से निकाल दिया गया।

ये आरोग्यतायें इस रोग की दशाओं में मेरी चिकित्सा रीति की महिमा को मेडीकल चिकित्सकों की सम्पूर्ण शोधों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट रीति से बतला रही हैं और उसकी उत्तमता का ऐसा प्रमाण दे रही हैं कि उन पर संदेह ही नहीं हो सकता।

प्रसूता का ज्वर—सहस्रों प्रसन्न चित्त मातायें प्रति वर्ष इस भयानक रोग का जो महा निर्दयी है और किसी को छोड़ने वाला नहीं है, शिकार होती हैं। इस रोग से भय मानने का यह हेतु है कि मानुषीय सहायता इस समय तक इसका सामना करने में विवश सिद्ध हुई हैं।

इस रोग का प्रगट होना इस बात का निश्चित चिह्न है कि शरीर विकारी द्रव्य से अत्यन्त पूरित है। यह भयानक ज्वर केवल उसी समय हो सकता है जब कि निकृष्ट तत्त्व शरीर के भीतर विद्यमान हो और उफान में आना आरम्भ हो जाय। केवल वही स्त्री प्रसूता ज्वर में ग्रस्त होगी—जिसकी देह में बालक जनने के

पश्चात् रोग को उत्तेजित करने वाली विकारी द्रव्य की पूरी मात्रा शेष रह गेई हो। यह किसी प्रकार आवश्यक नहीं है कि वह रुधिर जो गर्भाशय में रुक गया है, या झिल्ली का कोई भाग पहले सड़ने लगे और सड़ने के उपरान्त स्वयं विद्यमान विकारी द्रव्य पर उफान लाने का प्रभाव डाले। अतः यदि हम चाहते हैं कि प्रसूता के ज्वर को आराम करें तो हमको उसके कारण को अर्थात् विकार द्रव्य को शरीर से निकाल देना चाहिए और यह बात फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ के द्वारा अति सुगमता से प्राप्त की जा सकती है।

सुख पूर्वक बालक जनने के एक दिन पश्चात् एक स्त्री प्रसुती ज्वर में ग्रस्त हुई। दाई ने गर्म गद्दियों का व्यवहार किया, किन्तु किंचित् लाभ न हुआ! वह उस वृद्धि पाई हुई आन्तरिक गर्मी से जो शरीर के भीतर अन्य तत्व के सड़ने से उत्पन्न हुई थी अनभिज्ञ थी। अर्थात् उस गर्मी से जो सामान्यतया ठंड पहुंचाने से दूर की जा सकती है। मैंने उस रोगिणी से कहा कि मैं तेरी सहायता अवश्य कर सकता हूँ परन्तु मुझे भय है कि तू मेरी बात पर न चलेगी। उसने उत्तर दिया कि "जो आप चाहें वह निश्चय करें मैं उसका पालन करूँगी"। मैंने उसके लिये तीन-चार फ्रिक्शन सिट्ज़बाथ १५ से ३० मिनट तक के ६५ अंश की गर्मी के पानी में रोज़ाना लेने निश्चित किये। उस रोगिणी के लिये पानी की गर्मी ६५ अंश तक पहुंचानी कष्ट दायक थी, उसने उसी अंश का पानी लिया जैसा कि नल से आता था (केवल ५० अंश फारेनहाइट, की गर्मी का), शेष बातों में उसने मेरी सम्मति का पूरा पूरा ध्यान दिया। अधिक शीतल जल में कोई दोष न था, उससे शीघ्र आरोग्यता प्राप्त हुई, यद्यपि इसकी अपेक्षा आदि में उससे ऊंचे अंशो का जल अधिक सुहावना लगता था। जिस शरीर में रोग को दूर करने की शक्ति बहुत ही कम रह गई हो, वहां शीतल जल सर्वदा अति लाभदायक होता है। १८ घण्टे में ज्वर शान्त हो गया और वह स्त्री जीवन के भय से निकल गई। एक सप्ताह में वह अपने साधरण काम करने के योग्य हो गई। इस अवसर पर इस बात का कि फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ अपने प्रभाव कैसी अद्भुत शीघ्रता से प्रगट करते हैं, एक और प्रमाण मिलता है। विजातीय द्रव्य मल त्यागने के स्वाभाविक अंग की ओर खींच लिया गया था इसलिये इसका आगे को सड़ना (जैसे कि दूसरे प्रकार के ज्वरों की दशा में) रुक गया था। स्नानों को कुछ काल तक और प्रचिलित रखने के पश्चात उस स्त्री का स्वास्थ्य पहले की अपेक्षा अधिक अच्छा हो गया। यह बात

देखने योग्य है इस दशा में भी मेरी चिकित्सा उस चिकित्सा के पूर्ण विरुद्ध थी। जो प्राचीन डाक्टर उसकी दशा में करते। मैंने बहुधा देखा है कि डाक्टर लोग यह आज्ञा देते हैं कि रोगी के सिर को बर्फ की थैलियों से ठण्डा किया जावे और पेड़ को गर्म रक्खा जावे। ऐसा करने से जिस वस्तु को वे लोग दूर करना चाहते हैं उसी को वे बढ़ा देते हैं। मेरे लिये यह सदैव एक भेद की बात ज्ञात हुई है कि बर्फ की थैली का सेवन सदैव सिर पर क्यों किया जाना उचित है क्योंकि यह वह रीति है जिससे की सम्पूर्ण रुधिर सिर में लाया जा सकता है। और प्रत्येक मनुष्य इस बात को जानता है कि सिर का काम विकारी द्रव्य को निकालने का नहीं है। यह क्रिया केवल मल त्याग करने के स्वभाविक अंगों द्वार ही हो सकती है। अतः बर्फ केवल ठण्ड ही नहीं पहुँचाती बल्कि मस्तिष्क को सुन्न भी कर देती है अर्थात ठिठुरा देती है। इस शीत पहुँचाने की क्रिया से जो न्यूनता को प्राप्त होती है उसको शरीर, रुधिर की अधिक मात्रा पहुंचा कर यथार्थ शारीरिक गर्मी उत्पादन करके पूरा करने का यत्न करता है। परन्तु रुधिर का इस प्रकार मस्तिष्क में जाना स्वभाविक गर्मी में एक प्रकार अधिकता उत्पादन करेगा; अतः बाहर की ओर एक प्रकार की सुन्न दशा अर्थात ठिठुराहट होती है। यद्यपि भीतर की ओर एक प्रकार की जला देने वाली गर्मी स्थिर है, अब यदि यह दोनों दशाएं एक दूसरे की न्यूनता तथा अधिकता को शीघ्र ही पूरा करने को योग्य न हो जायें तो मृत्यु शीघ्र हो जायेगी।

एक और वृतान्त सुनिये—एक दिन मुझे एक स्त्री ने बुलाया जो बालक जनने के अगले ही दिन प्रसूतिक ज्वर में ग्रसित हो गई थी। प्रतिष्ठित चिकित्सकों ने जो अपने व्यवसाय में उस्ताद गिने जाते थे उसकी चिकित्सा की। परन्तु वे इस ज्वर को जो विषम दशा से जीर्ण दशा में परिवर्तित हो गया था आराम न कर सके। एक सप्ताह की चिकित्सा के उपरान्त मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ा और उस स्त्री को सर्सा‍म होगया। डाक्टर और उसके निकट रहने वाले चिकित्सकों को उसकी मृत्यु के आने की आशंका हुई; जब कि मैं एक तार के जवाब पर उस रोगिणी की चिकित्सा करने के लिये वहाँ पहुंचा तो उसकी ऐसी भयानक दशा थी। मेरा प्रथम काम यह था कि पुराने आन्तरिक ज्वर को दूर किया जाये। मुझे इस कार्य में तुरन्त सफलता प्राप्त हुई। एक-एक घंटे तक के कुछ फ्रिक्शन सिटज बाथ पेड़ की आन्तरिक गर्मी दूर करने के लिये और उस रोगिणी को यथार्थ मस्तिष्क की अवस्था में लाने के लिए पर्याप्त हुए

इस अल्प काल में शरीर से कुल विकारी द्रव्य जिसने कि ज्वर को उत्पन्न किया था दूर न हो सका था, तो भी वह स्त्री अब भय से निकल गई थी। उसने मेरे स्नानों और नियत भोजन का सेवन कुछ अधिक काल तक प्रचलित रक्खा, और जैसा कि मुझे यहां उसके लिपज़िग निवासी सम्बन्धियों से प्रायः उसका वृत्त ज्ञात करने का अवसर मिलता रहा है, उसका स्वास्थ्य बहुत उत्तम रहा है।

पीड़ा रहित जनन

बिना पीड़ा और बिना किसी भय के जनने की क्रिया कैसे होती है ?

प्रकृति के राज्य में सर्वदा भ्रमण करने वाली बड़ी सृष्टि में जो कि अटल नियमों पर चल रही है, उन स्पष्ट दशाओं को जिनमें प्रत्येक जीव जीवित रह सकता है, स्पष्ट और यथार्थ रीति से प्रगट कर दिया गया है।

हमको प्रथम उन दशाओं पर ध्यान देना उचित है जिनमें कि वे जीव जो मनुष्य के मेल-मिलाप से दूषित नहीं हुए हैं अपने बच्चे जनते हैं।

यदि हम हरिणी, शशको (खरगोश) अथवा बिल्ली वा अन्य पशुओं पर उनकी स्वतन्त्रता (आज़ादी) की दशा में ध्यान डालें, तो ज्ञात होता है कि ऐसे पशु जनने के समय कदापि किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं रखते और जनने में उनको कभी पीड़ा नहीं होती है और न अधिक समय ही लगता है। हमने कभी ऐसा नहीं देखा कि जनने का समय निकट आने पर यह पशु किसी प्रकार की भय वा व्याकुलता अनुभव करते हों। वह कार्य जो प्रायः मनुष्यों के लिए भयंकर होता है, पशु उसको बिना पीड़ा के ही कर लेते हैं और उनकी आरोग्यता में भी किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुंचती।

हमने प्रायः बड़े ध्यान से ऐसे पशुओं की दशा का निरीक्षण किया है और सर्वदा यह देखने में आया है कि वह बच्चा जनते ही अपने जीवन के साधारण

कार्यों को इस प्रकार करने लगते हैं मानो कोई बात हुई ही नहीं। इसके अतिरिक्त वह अपने बच्चे की भी यथोचित रक्षा करने लगते हैं। हमने यह कभी नहीं देखा कि नेचर (प्रकृति) ने जैसी कि यह स्वस्थ पशुओं में देखने में आती है कभी उपरोक्त रीति को छोड़ा हो। हमको एक शशकी (खरगोशनी) का वृतान्त स्मरण है। उसने जिस समय दो ही बच्चे जने थे कि एक व्याधा (शिकारी) वहां पहुंचा। वह तत्काल ही ऐसी भागी मानो वह अपनी अच्छी शारीरिक दशा में थी, परन्तु गोली की शिकार हुई। उसको देखने से ज्ञात हुआ कि वह गर्भवती है, और उसका पेट चीर कर एक जीवित बच्चा भी निकाला गया। खोज करने पर दो बच्चे और भी जो उसी समय के जन्मे थे मिल गये।

इसके विरुद्ध स्त्रियों में जनने की क्रिया का बिना कष्ट के होना बहुत ही कम देखने में आता है। जब हम नित्य प्रति देखते हैं कि स्त्रियों को बालक जनने में कैसी पीड़ा होती है, गर्भपात होते हैं और गर्भावस्था में प्रति दिन अनेक प्रकार के दोष होते हैं, तो हमको इस बात पर बहुत चिन्ता से ध्यान देने की आवश्यकता है। दाई की सहायता के बिना बालक जनना तो एक ऐसी बात है जो इस समय में बड़ी कठिनाई से ध्यान में आती है, और वास्तव में जनने को एक प्राकृतिक कार्यवाही होने के बदले एक कृत्रिम कार्यवाही कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त हानिकारक परिणामों से बचने के लिये स्त्री को बालक जनने के पश्चात थोड़े व बहुत दिनों तक विवशता पूर्वक शय्या सेवन करना अनिवार्थ सा हो जाता है।

नेचर (प्रकृति)–के अटल नियम के विरुद्ध इन दशाओं के प्राप्त होने का कोई गहरा कारण अवश्य होगा। वे अवश्य उन दशाओं से उत्पन्न होते हैं जो सृष्टि के नियमों के पूर्णतया विरुद्ध हैं। नेचर स्वतः ही ऐसी कठिनता में नहीं डालती, उसकी कार्यवाही के नियम अटल हैं। मनुष्य ही सृष्टि क्रम में जो नियत नियमों के आधीन है बाधा डालता है और अपनी मूर्खता से नेचर के काम को बिगाड़ता है। बात

यह नहीं है कि नेचर और उसके नियम मनुष्य जाति के उद्धार करने के अयोग्य हो गये हों, प्रत्युत मनुष्य ही सदा दुर्गुणों के समीप पहुंचता जाता है।

यह आश्चर्य नहीं कि सृष्टि के नियमों को न मानने का दंड मनुष्यों की प्रति क्षण शारीरिक नष्टता (बरबादी) के अति समीप शीघ्र ही पहुंचा देने के रूप में दिया जाता है। मनुष्य जब से नेचर के मार्ग से हटने लगा है तभी से शनैःशनैः रोगी होने लगा है और निकृष्ट-तत्व को अपने शरीर में एकत्रित करने लगा है। मनुष्यों ने शीघ्र मालूम कर लिया कि नेचर के नियमों को न मानने से उनकी आगामी सन्तान पर कितना प्रभाव पड़ा है ? स्वर्ग अर्थात् वह सांसारिक आनन्द जो मनुष्य को यह जान कर कि वह पूर्ण आरोग्य है तभी प्राप्त हो सकता हैं जब मनुष्य नेचर को सहचरी बनाये रहे और उसके नियमों का यथार्थ पालन करे।

उपरोक्त सम्पूर्ण कथन का सार यह है,—वास्तव में आरोग्य मातायें सदैव गर्भावस्था को सुगमता से व्यतीत करेंगी विना भय के जनेंगी तथा आरोग्य बालक जनेंगी"। शब्द आरोग्य इस स्थान पर उन अर्थों में लेना चाहिए जैसा कि इस इस पुस्तक में कथन हो चुका है अर्थात् विजातीय द्रव्य से सम्पूर्ण प्रकार शरीर का रहित होना।

परन्तु बालक केवल उसी दशा में आरोग्य हो सकता है जब कि उसका पिता विजातीय द्रव्य से सब प्रकार से सुरक्षित हो। नेचर सदैव उस बालक को जो गर्भाशय के भीतर बढ़ता जाता है माता-पिता के अत्यन्त स्वच्छ परमाणुओं से बनाने का यत्न करती है बहुत से बालकों में तो सीधे मार्ग से पैतृक रोग के अंकुरों का उनके शरीर में आना इस प्रकार से होता है कि उनके माता-पिता का कोई-कोई अंग, जो गर्भाधान के समय रोगी थे व विकारी द्रव्य से पूरित थे, बालक से अपूर्ण दशा में प्रगट होते हैं। अतः बालक एक अधूरी बनावट से सृष्टि में प्रवेश करता है।

अब यदि बालक में निकृष्ट तत्व विद्यमान हो, जिसका न होना इस समय में टीके और अस्वाभाविक भोजन के कारण साधारण रीति से असम्भव है। यह निकृष्ट तत्व एकत्र होने के कारण अपना मार्ग बलात् निकालने के लिये उसी ओर को चल पड़ेगा जहां उसको थोड़ी से थोड़ी रुकावट मिलेगी। अतः ठीक उन्हीं अंगों में विकारी द्रव्य की मात्रा अधिक विद्यमान होगी जो औरों की अपेक्षा कम बढ़ें तथा बलहीन होंगे। इसी कारण बालक में भी वही रोग पाया जाता है जो उसके माता पिता में था। परन्तु स्वाभाविक चिकित्सा के द्वारा और चतुराई से सृष्टि के नियमों पर आरूढ़ होने के कारण हम ऐसे समग्र विकारी द्रव्यों को निकाल देने के योग्य होते हैं, और इसी प्रकार शनैः-शनै उन अंगों को जो निरोग अंगों की अपेक्षा बलहीन हैं अर्थात् जिनमें विकारी द्रव्य के एकत्र होने का अधिक अवसर है, शक्ति पहुंचा सकते हैं और उन्हें निरोग रख सकते हैं। इस रीति से एक निरोग और परिश्रमी मनुष्य जाति किसी समय में उत्पन्न कर देना असम्भव है।

बहुधा यह देखने में आया है कि जहां माता-पिता में बहुत सा निकृष्ट तत्व विद्यमान है तो वहां बालक भी उसी दशा में जन्म लेता है। इस स्थान पर यह सत्य-सत्य कहा जा सकता है कि "उनके फलों से तुम उन को जानोगे" *। बालकों से सृष्टि नियम के विरुद्ध जीवन व्यतीत कराने का यह फल हुआ है कि मनुष्य जाति पीढ़ी दर पीढ़ी अधिक अवनति को प्राप्त होती जाती है।

परन्तु और भी कई कारण हैं जो हमारी आरोग्यता को बहुत बड़ी हानि पहुंचाते हैं। हमने नेचर (प्रकृति) में कहीं और कभी यह नहीं देखा कि कोई जानवर बच्चा जनने के कारण कुरूप या भद्दा होगया हो।

परन्तु मनुष्य जाति में यह बात कैसी उलटी मिलती है। यह एक नियम सा

*—ईसाइयों की धर्म-पुस्तक का एक वाक्य है।

हो गया है कि स्त्री केवल प्रथम ही बालक जनने के पश्चात् अधिक आयु की प्रतीत होने लगती है, अथवा पेट के अधिक बढ़ जाने से उसका रूप बदल जाता है। इसका दोष सदैव गर्भावस्था पर, बालक जनने पर और बालक को अपना दुग्ध पिलाने पर लगाया जाता है। प्रत्येक बार बालक जनने के पश्चात् स्त्री के रूप में प्रतिक्षण न्यूनता आती जाती है, यद्यपि वे अपने समस्त व्यापार और भोजन के विषय में समस्त आरोग्यता-प्रद रीतियों से सजग रहती हैं।

मैं इस स्थान पर शीघ्र ही इसका केवल एक ही विशेष कारण प्रगट करूँगा। हम सृष्टि में कहीं नहीं देखते कि मनुष्य के अतिरिक्त गर्भवती होने के पश्चात् कोई मादा मैथुन की ओर इच्छा करती हो, बल्कि वह कभी ऐसा करने की आज्ञा नहीं देती। यह सम्पूर्ण सृष्टि नियम के अनुकूल है। मैथुन इस प्रयोजन से किया जाता है कि स्त्री गर्भ धारण करे—न कि केवल शारीरिक सुख के लिये। मैथुन में सर्वदा रुधिर का प्रवाह लिङ्गों की ओर अधिक हुआ करता है और यदि स्त्री गर्भवती होगई है तो वह प्रवाह सदैव गर्भाशय के अन्दर अर्द्ध बने बालक की बढ़ती पर एक हानिकारक प्रभाव डालता है। यह स्वयं स्त्री को भी विशेष कर हानिकारक होता है, क्योंकि नेचर सर्वदा गर्भाशय को ऐसी वस्तुओं से साफ़ रखने का यत्न करता है जो गर्भाशय के भीतर के बालक के लिये हानिकारक हों। नेचर की इस आज्ञा भग का प्रभाव स्त्रियों पर यह होता है कि उनकी शारीरिक जीवन-शक्ति शीघ्र ही घटने लगती है और सैंकड़ों प्रकार के पीड़ा दायक रोग जो स्त्रियों से सम्बन्ध रखते हैं उनके शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं।

गर्भ के दिनों के पीड़ा दायक रोग विशेष कर नेचर के नियमों के विरुद्ध इस प्रकार के कार्य करने से उत्पन्न हुआ करते हैं। बस, हमको प्रातःकाल का वमन दिल मिचलाना, दंत पीड़ा, रंग का बदल हो जाना, कभी ज्वर की गर्मी और कभी सर्दी, चिन्ता और रुदन की ओर मन का जाना, स्नायु में बड़ी व्याकुलता, साधारण भोजन की ओर से घृणा और असाधारण क्षुधा प्रतीत होती है। किन्हीं दशाओं में

सम्भव है कि यह शिकायतें पैतृक विजातीय द्रव्य के भार से हों। अनुभव द्वारा ज्ञात हुआ कि प्रत्येक स्त्री साधारण बुद्धि उसको एक बार गर्भवती हो जाने के पश्चात् फिर मैथुन करने से रोकती है। यह हमारे आजकल के चलन और मनुष्यों में बढ़ी हुई मैथुन की चेष्टायें ही हैं (जो कि शरीर के विकारी द्रव्य से पूरित होने के कारण उत्पन्न होती है) जिनके कारण इस सृष्टि के नियमों के प्रतिकूल रीति का प्रचार है।

यह बात बहुत प्राचीन है और किसान लोग इसको भली भाँति जानते हैं कि जब कभी पशुओं में सृष्टि के नियम के विरुद्ध काम चेष्टा की अधिकता प्रगट होती है तो यह अवश्य ही इस बात का चिह्न है कि उनमें कोई रोग उत्पन्न हो गया है और यही दशा मनुष्यों की भी है जैसा कि प्रत्येक मनुष्य अपने आप को देख कर जान सकता है। हमको इस स्थान पर रुई के रोगियों में मैथुनेच्छा की अधिकता का वर्णन कर देना ही आवश्यक है।

आरोग्य मनुष्यों में जो मैथुन की इच्छा होति है वह उस विह्वल और विवश करने वाली मैथुन इच्छा से निराली होती है जो इस काल में प्रायः हमारे देखने में आती है। सम्पूर्ण विषयी (इश्की) विचारों से रहित और अस्वाभाविक इच्छा से शुद्ध मैथुन की चेष्टा, मनुष्यों में भी केवल मनुष्य जाति के स्थिर रखने के लिये उपस्थित है। यह इच्छा कदापि आवश्यकता की इस सीमा तक न पहुँचनी चाहिए कि, यदि कुछ काल तक पूर्ण न हो तो, बेचैनी का कारण बन जावे। केवल वही मनुष्य इस दशा को ठीक प्रकार जाँच सकता है जो निरोग है और अपने शरीर को सात्विक और स्वाभाविक भोजन के सेवन द्वारा विजातीय द्रव्य से शुद्ध रखता है। अतः वह मनुष्य जो अपनी इच्छा को प्रकृति की इच्छा के विरुद्ध नहीं चलाना चाहता है और जो अपने शरीर पर स्वाधीनता रखना चाहता है ताकि उसकी मैथुन-इच्छा उचित सीमा के भीतर रहे—और जिससे कि वह बात जो और दशाओं में बहुत दुःखदाई प्रतीत होती हो उसके लिये सुखदायक हो, तो ऐसे मनुष्य के लिये उचित है कि वह नेचर

अर्थात् ❀ की ओर लौटे। यदि वह स्वास्थ्य प्राप्त करने के उन नियमों पर चले जो मैंने बतलाये हैं और ऐसा करने से अपने शरीर को विजातीय द्रव्य से शुद्ध कर लेवे तो वह उस पदार्थ को उपलब्ध कर लेवेगा जो उसको सुखी और सन्तुष्ट बनायेगा।

इस समय में हम नाना प्रकार से बच्चों का जनना सृष्टि के नियमों के विरुद्ध देखते हैं। कहीं गर्भपात होते हैं और कहीं समय से पूर्व बालक जन्मते हुए दृष्टि पड़ते हैं। कहीं उलटी ओर से बालक करवट के बल योनि तक पहुँचता है, तो कहीं असाधारण बडे सिर वाले बालक का जन्म लेना दृष्टिगत होता है, यद्यपि उनकी माता में बच्चा पैदा होने का मार्ग इतना छोटा (तङ्ग) होता है कि उनका जनना कृत्रिम१ सहायता के बिना असम्भव होता है। किन्हीं-किन्हीं दशाओं में प्रसूतिका पीड़ायें आवश्यकता से अधिक बलहीन होती हैं। संक्षेप में यह कहना उचित है कि बहुत सी ऐसी प्रकृति के विरुद्ध दशायें होती हैं जो इस प्रकार समझाई जा सकती है कि वे माता में किसी न किसी प्रकार की विजातीय द्रव्य की एकत्रिता के होने और बालक में पैतृक विकारी द्रव्य के आ जाने के कारण होती है।

गर्भाशय में बालक के स्थान से हट जाने का यह कारण होता है कि या तो माता में विकारी द्रव्य की एक झिल्ल होती है, अथवा उसने गर्भ के दिनों में—विशेष कर प्रथम के अर्ध२ समय में कोई अनुचित काम किया होगा।

विजातीय द्रव्य की एकत्रिता से अथवा किसी अनुचित काम से बालक अपने स्थान से केवल आगे को हटा दिया जाता है जिसके कारण उदर बढ़ और

❀ अर्थात् प्राकृति के नियमों पर अपने को चलाने लगे।

१—बाहर से दूसरे की सहायता पहुंचाना, यथा योनि मार्ग को खोल कर, वा शास्त्रिक क्रिया से।

२—अर्थात् शुरु के ४॥ मास में।

तन जाता है और जब स्त्री का बालक उत्पन्न होने का मार्ग विकारी द्रव्य की एकत्रिता से संकीरण हो जाता है तो जनने में अवश्य ही कठिनाई होगी। स्वयं बालक भी विजातीय द्रव्य से पूरित रहा हो सकता है। मानलो कि माता पिता भी ऐसी ही दशा में थे कि जन्म लेने के समय उस बालक का डील डौल साधारण अवस्था से अधिक हो। विशेष कर उसका सिर बड़ा हो। वह भी स्वभावतः जनने में पीड़ादायक होता है। जब बालक उत्पन्न होने के मार्ग में विजातीय द्रव्य का भार होता है तो मानों सम्पूर्ण पट्ठों, नसों और रगों, में इतना विजातीय द्रव्य घुसा होता है कि वह सूजे हुए से ज्ञात पड़ते हैं और उनका लचीलापन बहुत न्यून हो जाता है। इसका विरुद्ध बिना पीड़ा और सुगमता से बच्चा जनने के लिये यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण शरीर, आरोग्यता शब्द के यथार्थ में पूर्ण आरोग्यता रखता हो।

प्रत्येक स्नायु (पट्ठा) जिसमें विकारी द्रव्य विद्यमान है अपनी स्वाभाविक क्रिया की योग्यता में बहुत हानि उठाता है और जैसे कि प्रसूतिक पीड़ा की दशा में यदि यह ऐंठ कर सिकुड़े और इससे उस काम की अपेक्षा जितना कि विकारी द्रव्य से भरी हुई उसकी दशा इसको करने की आज्ञा दे, अधिक काम लिया जाय, अत्यन्त पीड़ा होगी। इस से बालक जनने के समय विकारी द्रव्य का भार (हमारे विचार में रोग) होने के कारण सदैव ही कठिन पीड़ा होती है।

लिभिड़ी* का जनने के पश्चात् अन्दर लगा रहना भी इसी कारण से हुआ करता है। अतः इसमें आश्चर्य की बात क्या है कि सम्पूर्ण अबलायें जिनमें विजातीय द्रव्य का भार विद्यमान है बालक जनने का अत्यन्त भय रखती हैं? किन्तु उनका यह भय किसी प्रकार भी स्वाभाविक भय नहीं है, बल्कि केवल

* वह वस्तु जिससे कि बालक गर्भाशय से लगा रहता है और पैदा होने के पश्चात् बाहर निकल जाती है परन्तु रोग की दशा में देर तक बाहर नहीं निकलती।

विकारी द्रव्य की विद्यमानता का फल है। वास्तव में आरोग्य स्त्री इस चिन्ता; व्याकुलता और भय को जानती ही नहीं। यह चिन्ता जीव की वास्तविक शुद्धि की आवाज़ है। यह (आवाज़) यद्यपि प्रायः दबी रहे तथापि ऐसे कठिन समयों पर जैसे कि जनने के समय, हमको स्पष्ट बता देती है कि हमने अपने शरीर और स्वास्थ्य से जो नेचर ने हमको समर्पण किये हैं समुचित कार्य नहीं लिया। परन्तु इस समय वह कौन सा मनुष्य है जो इस आवाज़ को यथार्थ रीति से समझ सकता हो। यदि कोई मनुष्य अब भी शङ्का करे और कहे कि इन सब बातों के होते हुए भी बहुत सी दशायें निस्सन्देह ऐसी हैं कि जहां बच्चा जनाने में शस्त्र किया या हाथ लगाना आवश्यकीय है तो उसके लिये निम्नलिखित वृतान्त का पठन करना उचित होगा।

एक स्त्री ३६ वर्ष की आयु की जो दूसरी बालक जनने को थी दो दिन प्रसूतिका पीड़ा में ग्रस्त रही, किन्तु बालक गर्भाशय में अपने स्थान से न हटा—दाई की सम्मति थी कि डाक्टरी सहायता की आवश्यकता है, नहीं तो बालक का जन्म लेना असम्भव है। एक बड़ा चतुर डाक्टर जो कि बच्चा जनाने में प्रसिद्ध था बुलाया गया। चार घंटे पर्यन्त उसने भिन्न-भिन्न प्रकार के शस्त्रों का प्रयोग किया और अन्त में यह निर्णय किया कि बालक के ठीक स्थान में न होने के कारण उसकी माता को भय में डाले बिना बालक का उत्पन्न होना असम्भव है। उस बेचारी स्त्री ने कहा कि इस सहायता से जनने में जो पीड़ायें होंगी उनके सहने की अपेक्षा मृत्यु भली है। वह डाक्टर बिना कुछ काम निकाले हुए ही यह कह कर चल दिया कि बालक बाहर नहीं निकल सका, इसलिये यह स्त्री मृत्यु को प्राप्त होगी। परन्तु नेचर (प्रकृति) का निश्चय इस जनाने वाले डाक्टर के विरुद्ध था! २४ घंटे की पीड़ा के पश्चात् बालक किसी शस्त्रिक क्रिया के बिना ही केवल दाई की सहायता से उत्पन्न हो गया। अब बताइये कि उस प्रसिद्ध डाक्टर ने अधिक काम किया अथवा भोली भाली नेचर ने? अस्वाभाविक शस्त्रिक क्रिया अपने बुरे फल प्राप्त कराये बिना न रही—वह स्त्री

बालक जनने के उपरान्त ६ सप्ताह पर्यन्त अस्वस्थ पड़ी रही और उसके जीवन की भी आशा न रही। शस्त्रिक क्रिया ने उसको लगभग लंगड़ा कर दिया था और उसके शरीर ही का बल था कि जिससे उसको अन्त में आराम हो गया।

मैं मानता हूँ कि मनुष्य जाति के चिरकाल से अवनति कर जाने के कारण जनने के समय ऐसी उलझनें पड़ सकती हैं कि जिनको न कोई डाक्टर और न दाई दूर कर सकें। मैंने अनुभव से यह निश्चय किया है कि ऐसे अवसरों पर सब से उत्तम यह है कि सम्पूर्ण प्रकार नेचर पर ही विश्वास रक्खा जाय। अन्य कोई इससे उत्तम सहायता नहीं कर सकता। प्रसूतिक पीड़ा की क्रिया की सुस्ती को सहायता पहुंचाने के लिये फ्रिक्शन सिटिज़ बाथ्स से बढ़ कर और कोई उत्तम साधन नहीं है। पेड़ पर मिट्टी की पट्टियों का बाँधना भी अत्यन्त शान्ति दायक और आरोग्य प्रद रीति है—तर पिंडोल अथवा चिकनी मिट्टी एक सन के वस्त्र पर फैलायी जावे, किन्तु मिट्टी की तह पतली न हो और मिट्टी की ओर से उस को उदर पर लगाया जावे। उसके ऊपर एक ऊन का वस्त्र बाँध दिया जावे। पिंडोल मिट्टी हर घंटे या दो घंटे में बदल दी जाय।

जनने के समय शस्त्रिक क्रिया की रीति को शीघ्र प्रयोग में लाये जाने के कारण सहस्रों स्त्रियाँ समय से पहले ही काल का ग्रास बनी हैं। कितना आनन्द उन अभागिन माताओं को होगा और बहुत से घराने कितनी विपत्तियों से बच जायेंगे यदि मर्द डाक्टर के स्थान पर जिसको कि शस्त्रिक क्रिया का जनून सा होता है प्रत्येक क्रिया हमारी दयालु माता नेचर (प्रकृति) के हाथ में छोड़ दिया जावे। यदि स्त्री ऐसी दशा में पहुंच जाय जहां जनेपा शस्त्रिक क्रिया के बिना असम्भव है तो उसमें सदैव स्त्री का ही दोष है। उसके पास दीर्घ काल से ऐसे प्रत्यत्न उपस्थित थे कि जिनका प्रयोग कर वह सुगमता से बालक जनने के लिये तैयार हो सकती थी, क्योंकि उसको शीघ्र पता लग गया होगा कि वह गर्भवती है जिसके लिये जनना उचित है वह इन यत्नों को किस प्रकार कार काम में लावे और उनका सब से उत्तम

सेवन यथार्थ समय पर कैसे किया जाय ? प्रत्येक मनुष्य जो मेरी चिकित्सा रीति को जानता है वह इस बात को समझता है कि सुगमता से बालक जनने के लिये क्या करना चाहिये। गत वर्षों में अन्य बहुत सी ऐसी घटनायें हुई हैं जो मेरी रीति को और भी दृढ़ करती हैं।

उन घटनाओं में एक बार भी ऐसा नहीं हुआ कि मेरे फ्रिक्शन सिट्ज़बाथ और नियत भोजन ने अपनी क्रिया में असफलता दिखलाई हो। जहाँ कहीं मेरी रीति ठीक समय पर वर्ती गई वहां जनेपे आश्चर्यजनक सुगमता से हुए।

उन धन्यवाद के पत्रों में जो मेरे पास हैं मेरे फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ का प्रत्येक स्थान पर प्रभावशाली होना पूर्ण रीति से स्वीकार किया गया है। चाहे कुछ भी हो यह बात विदित होना उचित है की पीड़ा दायक जनेपे के रोकने के उचित समय प्रवन्ध करना, उसकी अपेक्षा कि ठीक जनने के समय सहायता प्राप्त की जाय बहुत ही सुगम है। जनने के समय की कृत्रिम सहायता की आवश्यकताओं का प्रतिक्षण बढ़ता जाना इस बात को स्पष्ट और यथार्थ रीति से प्रकट कर रहा है कि पुराने रोग बड़ी दृढ़ता से फैल रहा है।

वे मनुष्य जो निर्भय जनेपों और निरोग बालकों की इच्छा रखते हैं; उनको चाहिये कि सबसे प्रथम यह बात देखें कि स्वयं उनका शरीर मैथुन के समय विजातीय द्रव्य से खाली है अर्थात् निरोगी है— और कोई मनुष्य स्वयं तभी निरोग हो सकता है जब उसके शरीर से पूर्व का सम्पूर्ण विजातीय द्रव्य निकाल दिया गया हो। और आगे के लिए उन नियमों पर चल कर, जिनका इस पुस्तक में कथन हो चुका है विजातीय द्रव्य का एकत्रित होना, रोक दिया गया है।

मैंने एक स्त्री की चिकित्सा की जो चिरकाल से गठिया के रोग में ग्रस्त थी। उसके शरीर में विशेष कर पेड़ू में विजातीय द्रव्य का अत्यन्त बोझ था—उसके पांच बालक जन्म चुके थे और प्रत्येक जनेपा अत्यन्त पीड़ा युक्त हुआ। बालक

जनने में दो तीन दिन लग जाते थे। प्रसूतिक पीड़ाओं की क्रिया बालक जनने के लिये पर्याप्त न थी। प्रत्येक बार उस स्त्री को उस समय पर्यन्त अत्यन्त-पीड़ा सहनी पड़ती थी जब तक कि डाक्टर अपने जम्बूर से बालक न जनाये। छठी बार गर्भ के दिनों से उस स्त्री ने मेरी सम्मति पर कार्य किया और दो तीन फ्रिक्शन सिटिज बाथ्ज प्रति दिन लिये। फल यह हुआ कि छठी बार का जनेपा जो कि अन्य दशाओं में बड़ी कठिनता से हुआ होता, इस दशा में अतीव सुगमता से हुआ। जनने में कठिनाई से एक घंटा लगा होगा। आरम्भ से प्रसूतिक पीड़ायें ठीक क्रमानुसार और ऐसी कि न होने के तुल्य हुई।

वह स्त्री भी इस सफलता को ध्यान में न ला सकती थी। जनने के पहले जब मैंने कहा था कि ये-ये फल होंगे तो उसने हँसी से यह कहा कि आप पीड़ा रहित जनेपे निर्माण न कर सकेंगे। पश्चात् उसने शोक प्रगट किया कि उसकी आयु ऐसी नहीं रही कि फिर एक बार गर्भवती होने की आशा कर सके और उस समय जब कि वह पीड़ा रहित बालक जनना जान गई तो उसको और अधिक बालक जनने की इच्छा हुई। उसको और भी अधिक आश्चर्य हुआ जब कि इस बार बालक को दूध भी अपनी ही छाती से पिला सकी। इस आनन्द को उसने पहले कभी प्राप्त नहीं किया था।

इन सब बातों का कारण भी वास्तव में प्राकृतिक ही थी। उस स्त्री ने जिस समय से मेरी चिकित्सा रीति का हाल सुना था; उसी समय से प्राकृतिक नियमानुसार जीवन व्यतीत किया था और मेरे नियत स्नान विधि पूर्वक लिये थे। उसका शरीर जो प्रथम विजातीय द्रव्य से अति पूरित था इन स्नानों के कारण विजातीय द्रव्य से भली भांति शुद्ध हो गया था। इससे मस्तिष्क सम्बन्धी तथा शारीरिक योग्यता में स्पष्ट उन्नति दीख पड़ने लगी थी।

एक दूसरी स्त्री ने मेरी सम्मति से गर्भ के दिनों में मेरी चिकित्सा रीति पर कार्य करके ऐसे ही शुभ और आनन्द दायक फल उपलब्ध किये थे। उसके

सात मास पर्य्यंत चिकित्सा करने के उपरान्त बालक जन्मा और जनने में पीड़ा न हुई। केवल आधा घण्टा लगा और कोई दाई भी उस समय मौजूद न थी।

एक इसी प्रकार की शाँति दायक घटना एक लेडी के साथ हुई। ऐसा होने पर मुझे निम्नलिखित धन्यवाद का पत्र उसने सितम्बर सन् १८९० में लिखा था।

"मेरी आयु इस समय २८ साल की है और १५ वर्ष की आयु से मैं मूत्राशय और गुर्दों की पीड़ा में ग्रस्त रही थी। इस नगर की टी० इन्सटीट्यूट में प्रथम आठ सप्ताह पर्य्यंत रही थी। फल केवल यह हुआ था कि मेरे मूत्राशय का दाह और भी अधिक बढ़ गया था और अत्यन्त पीड़ा के कारण खड़ा होना या चलना असम्भव था, केवल लेटी ही रह सकती थी। यह दशा चार सप्ताह तक रही। फलतः ऐल मुहल्ले में जो बलहीन रोगियों को रख चिकित्सा करने का स्थान है वहां गई। वहाँ चिरकाल तक ठहरने के पश्चात् मेरे पीड़ा दायक रोग को कुछ लाभ हुआ; क्योंकि किसी ने मेरे रोग की जड़ की चिकित्सा नहीं की थी। इसलिये मेरा रोग एक वर्ष के भीतर ही बड़े वेग से पुनः उभर आया। उस समय मैं चिमनिटिज नगर में रहती थी और वहीं के औषधालय में मुझे जाना पड़ा, जहां कि मैं तीन मास से अधिक ठहरी। मेरी चिकित्सा सैलिसिलिक एसिड (एक प्रकार का तेजाब), ल्यूनर कासटिक (चांदी का तेज़ाब), गद्दियाँ और बिजली के द्वारा हुई। परन्तु कुछ सफलता प्राप्त न हुई। फिर मैं अप्रैल सन् १८८० में लिपज़िग के शफ़ाख़ाने में गई जहां पर चार सप्ताह तक गर्भाशय के किसी रोग की चिकित्सा की गई, परन्तु इसमें भी सफलता न हुई। प्रायः मैं यह भी नहीं समझ सकती थी कि औषधालय से अपने घर तक कैसे जा सकूँगी—क्योंकि अत्यन्त पीड़ा थी। मैंने लाभ का कोई उपाय न देख कर औषधालय को छोड़ दिया और चार वर्ष तक डाक्टर एम ❀ लिपज़िक—निवासी से आरोग्यता प्राप्त करने का यत्न करती रही।

❀ डाक्टर साहिब के नाम का पहला अक्षर है, पूरा नाम नहीं।

उन्होंने मेरे मूत्राशय तथा गर्भाशय के दाह को अच्छा कर दिया और लगातार तीन वर्ष मुझे फ्रैन जैन्सवाद को भेजा जहां कि मैंने कीचड़ और चेरीवीट से स्नान किया और जल पान किया। परन्तु जब मैं फ्रैन जैन्सवाद में अन्तिम बार गई थी तो मेरे चिकित्सक ने मुझे लिपजिग भेजा।

क्योंकि इस समय शस्त्र-क्रिया की बड़ी आवश्यकता थी। डाक्टर ऐल लिपजिग निवासी ने शस्त्र क्रिया की और मेरी दशा उस सहने के योग्य हो गई, तो भी मेरा पुराना रोग सदैव प्रस्तुत ही ज्ञात होता था और यह स्पष्ट ज्ञात होता था कि शस्त्रिक क्रिया से किसी प्रकार मेरा रोग दबा दिया गया है, जड़ से नहीं निकाला गया। मुझे आरोग्यता उपलब्ध करने के लिये कभी-कभी गांदयाँ और इसी के समान अन्य क्रियाएँ सेवन करनी पड़ीं। अन्त में फिर डाक्टरी सहायता प्राप्त करने पर विवश हुई और मैं डाक्टर ❀ जैड, लिपजिग निवासी के पास गई और एक वर्ष उनकी चिकित्सा करने पर भी कुछ फल न हुआ।

अन्त में डाक्टर जैड ने कहा कि मुझे फ्लोटिंग किडनी (मुतहर्रिक गुर्दे) का रोग है और इससे बढ़ कर और कुछ नहीं हो सकता। परन्तु इसी नगर के निवासी प्रोफेसर ऐस से सम्मति लेनी चाहिए। इस भद्र पुरुष ने भी पूरे एक सप्ताह पर्य्यन्त प्रति दिन मेरी परीक्षा की और अंत में यह कह कर कि कुछ नहीं हो सकता, मुझे विदा कर दिया।

इस प्रकार से निराश होकर दो वर्ष व्यतीत होने पर जौलाई मास में मैं आपकी सेवा में आई। चिकित्सा के आरम्भ के कुछ दिन ही मुझे उन कठिन पीड़ाओं से छुटकारा देने के लिये पर्याप्त हुए और मैं चार सप्ताह में ही फिर अपना काम करने लगी। आपकी चिकित्सा रीति से मैं अपनी आरोग्यता और शक्ति इस समय तक यथावत् रखती हूँ।

❀ प्रायः एक और दाहिना गुर्दा किसी प्रत्यक्ष कारण बिना चलने व हिलने लगता है जिसके कारण कमर में धीमा दर्द होता है जो कि दबाने और हिलाने से अधिक और पट्टी लपेटने से कम हो जाता है।

चिकित्सा के प्रथम वर्ष के ही मध्य में मेरी शारीरिक दशा ऐसी आनन्द दायक और बलवती प्रतीत होने लगी कि अनेक आदेश और सम्मतियाँ विपक्ष में होते हुए, और वैद्यों की सम्मति कि मैं जनेपा भली प्रकार न कर सकूँगी. को भी समादृत न करके मैंने अपना विवाह कर लिया। आपकी सम्मति और स्वयं मेरे अनुभव ने मुझे उससे उत्तम शिक्षा दी और प्रत्येक बात उसी प्रकार हुई जैसे कि आपने पहले से कह दिया था। मैंने विवाह किया और गर्भ के दिनों में आपके आदेशों पर यथोक्त रीति से कार्य किया, और सब मनुष्यों को आश्चर्य में डालने वाला बड़ा सुगम और भय रहित, औषधियों कि सहायता बिना प्रसव हुआ। यह सम्पूर्ण बातें मुझे आप ही की सीधी सादी चिकित्सा रीति द्वारा उपलब्ध हुई।

लिपज़िग } मिसिज़ लूई बी०

जनने के पीछे का प्रबन्ध

—:०:—

वास्तव में स्वस्थ स्त्री को इस बात में कि जनने के पश्चात् उसको क्या करना किसी प्रकार की सम्मति लेने की आवश्यकता नहीं। केवल पशुओं ही में नहीं प्रत्युत विशेषकर असभ्य जातियों में भी स्त्रियाँ जनने के पश्चात् तत्काल उठकर अपने साधारण कामों में लग जाने के योग्य हो जाती हैं। परन्तु यह बहुत ही कम देखने में आता हैं कि सभ्य जाति (तहज़ीब याफ़ता कौम) की स्त्रियाँ ऐसा कर सकें। इसके विरुद्ध यह एक चलन सा हो गया है कि जनने के पश्चात् उनको देर तक शैया (बिस्तर) पर रक्खा जाता है। पहले नौ दिन निश्चित थे, अब प्राय: वैद्य लोग बारह दिन बतलाते हैं।

इस कार्यवाही का कारण—इतना माता की निर्बलता नहीं है जितनी कि वह प्रयत्न है, जिससे योनि आदि जननेन्द्रिय अपनी वास्तविक दशा पर आती हैं। परन्तु इसमें कुछ संशय नहीं कि देर तक बिस्तर में पड़े रहना कई प्रकार से हानिकारक है। क्योंकि शरीर के काम न करने से पाचन-शक्ति मन्द पड़ जाती है जिससे भोजन के सारांश बनने की कार्यवाही में निर्बलता आ जाती है। यह बात कठिन कुपच के हो जाने से जो ऐसे समय में प्राय: सदैव हुआ करता है, प्रमाणित होती है। इसके संग ही प्रथम इसके कि योनि अपनी दशा पर आ जाय बिस्तर को छोड़ना भी हानिकारक है। इससे उदर बहुत बढ़ जाता है जैसा कि प्राय: उन स्त्रियों में देखने में आता है जो कई-कई बच्चे जन चुकी हैं।

मैंने इस बात पर बहुत ध्यान दिया कि वह कौन सी उत्तम रीति है, कि जिससे यह बुराई स्त्री को चिरकाल तक पलङ्ग पर रखने के बिना ही निवृत्त हो जावे और मैंने एक साधारण रीति खोज निकाली है और वह ऐसी है कि जिसमें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

स्त्री को चाहिये कि बालक जनने के पश्चात् जितने समय तक वह आवश्यक समझे आराम करे और थोड़ी देर सो रहे तो अत्यन्त लाभदायक होगा। तत्पश्चात उचित है कि भली भाँति अपने आपको धोवे, जो फ्रिक्शन सिट्ज बाथ के लेने से भली भाँति किया जा सकता है। जल का ताप ७२ से ७७ अंश फेरनहाईट होना चाहिये और बैठने के स्थान पर एक से तीन इञ्च तक जल रक्खा जावे। स्नान
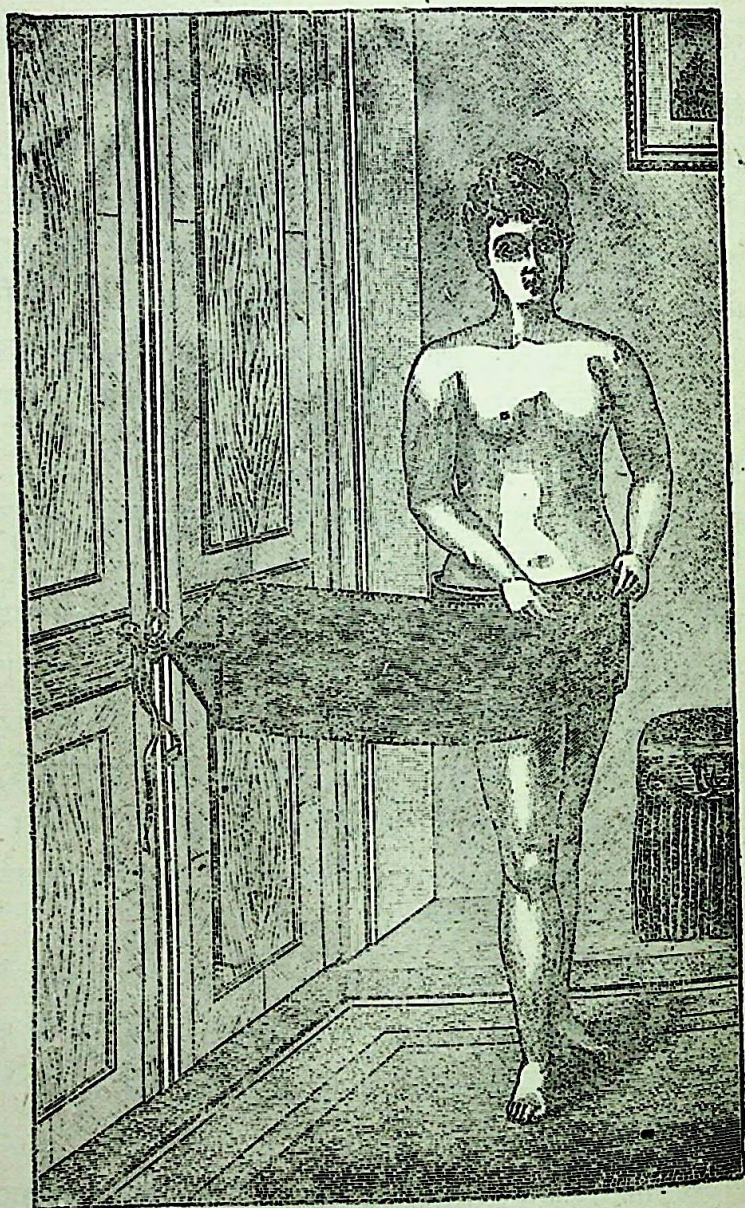
जनने के पीछे का प्रबन्ध---पट्टी बाँधने की विधि

के पश्चात् एक पट्टी पेड़ू के चारो ओर खूब मजबूत बाँधनी चाहिये। वह सन के छिद्र युक्त वस्त्र की होनी चाहिये जिसमें बाँधने के लिये डोरियाँ भी लगी हों। पट्टी बाँधने की रीति यहां मुद्रित हुए चित्र से प्रगट होगी।

डोरियाँ प्रथम किवाड़ के दस्ते वा कुंदे में बांधी जायें और पट्टी दूसरे सिरे से पेड़ू के चारों ओर मजबूत पकड़ कर इस प्रकार से लपेटनी चाहिये कि स्त्री बराबर घूमती जाय जब तक कि सम्पूर्ण पट्टी उसके चारों तरफ लिपट न जाये और तब डोरियां बांधी जायें। ऐसा करने से आंतरिक अङ्गों को पूर्ण रीति से सहायता मिलती है, और इसके पश्चात् स्त्री बिना भय के शैया से उठ सकती है। परन्तु शर्त यह है कि वह और सब प्रकार से पूर्ण शक्ति रखती हो। यदि उसे कुछ पीड़ा प्रतीत हो तो तीसरे व चौथे दिन तक पट्टी न बांधनी चाहिये। पट्टी तीन व चार सप्ताह पर्यन्त बराबर बांधी रहनी चाहिये। यदि और किसी प्रकार की पीड़ा न हो तो पट्टी के अतिरिक्त और किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं। परन्तु यदि ज्वर सा प्रतीत हो तो ऊपर लिखित स्नान का लेना और मिट्टी की पट्टी का बारी-बारी से बाँधना प्रचलित रखना चाहिये। इस रीति से शरीर को शीघ्र ही स्वेद आ जावेगा। अतः ज्वर न्यून हो जायगा और न्यूनता को पूर्ण करने वाला आवश्यक क्रम भी आरम्भ हो जायगा।

यदि सम्भव हो तो माता को चाहिये कि बालक को दूध अपने स्तन से पिलावे। अनियमित खान-पान अथवा ऐसी ही अन्य रीतियों से दूध नहीं बढ़ सकता बल्कि ऐसा करने से वह कम उतरता है। यहाँ भी और अवसरों की भांति ही सृष्टि के नियम का पालन करना ही उचित है और खान-पान उस समय करना चाहिये जब क्षुधा और तृषा लगें। निस्सन्देह माता को स्वाभाविक भोजन का सेवन करना उचित है। उन माताओं को जो किंचित मात्र भी स्वस्थ हैं इस भोजन से अत्यधिक और अत्युत्तम दूध उतरेगा।

—:०:—

आरम्भ के महीनों में दूध पीते बालक की चिकित्सा

बालक का पालन पोषण

—:०:—

यदि हम विचार पूर्वक सृष्टि-नियम पर दृष्टि डालें। माता और बालक के सम्बन्ध को सोचें तो तुरन्त मालूम होगा कि कुछ काल पर्यन्त दोनों में एक समीपी सम्बन्ध होना अति आवश्यक है। विशेषकर आरम्भ के कुछ वर्षों में दूध पीते बालक का सम्बन्ध माता से अत्यन्त समीप का है जो आरम्भ में गर्मी प्राप्त करने के लिये परमावश्यक है। दूध पिते बालक को उसकी माता से पृथक करके उस गर्मी से जो उसकी आरोग्यता के लिये अत्यन्त लाभदायक है वञ्चित करना एक बड़ी भारी भूल है। दुर्भाग्यवश बहुत सी मातायें इस अत्यन्त आवश्यक बात की कुछ चिंता नहीं करतीं।

मुझे स्मरण है कि एक बार मुझे एक कुटुम्ब में बुलाया गया जहाँ कि यह शिकायत थी कि सबसे छोटा बालक तीन सप्ताह की आयु का चैन से अपने पालने में नहीं लेटता था। उसकी माता बड़ी चिन्ता में थी। विशेषतः चिन्ता का कारण यह था कि बालक की पाचन-शक्ति नितान्त ही अनियमित थी। माता की स्वाभाविक गर्मी और प्रतिदिन तीन फ्रिक्शन हिप बाथ्ज़ से बालक को आरोग्यता मिली।

बच्चों का पालन—जैसा कि हम कथन कर चुके हैं इस समय में बहुत सी माताओं को या तो दूध उतरता ही नहीं और यदि उतरता भी है तो बहुत कम। यही कारण है कि आजकल बच्चे ऐसे निर्बल दिखाई पड़ते हैं।

माता के दूध के अभाव में दाया का दूध अत्युत्तम है। परन्तु दाया के दूध से यह आवश्यक नहीं कि बालक की शारीरिक आरोग्यता अवश्य ठीक रहेगी। क्योंकि यदि दाया ही स्वस्थ नहीं तो अवश्य ही बालक के शरीर में उस जन्म

सम्बन्धी विजातीय द्रव्य के अतिरिक्त जो उसके भीतर है। अधिक विजातीय द्रव्य एकत्रित हो जायेगा। यह सत्य है कि हम मुखाकृति-विज्ञान के द्वारा दाया की हालत जाँच सकते हैं; परन्तु स्वस्थ दाया का मिलना अत्यन्त ही कठिन है। प्रायः बालकों का पालन प्राकृतिक नियम के विरुद्ध किया जाता है और प्रायः भोजन न तो ठीक प्रकार का चुना जाता है और न यथार्थ रीति से तैयार हीं किया जाता है। यदि गाय का दूध दिया जाय तो उसे कुछ गर्म कर लेना ही पर्याप्त है, पकाना न चाहिये; क्योंकि पके हुए दूध का पचना अधिक कठिन है इस अवसर पर हानिकारक जन्तुओं का नष्ट करना[1] कोई ध्यान देने योग्य बात नहीं इसका प्रमाण सुगम है।

सबसे अधिक लाभदायक और आरोग्यताप्रद स्वभावतः वह भोजन है जो बहुत ही सुगमता से पच जाये। जिस समय तक पाचन-शक्ति शुद्ध होती है उस समय तक पचाने वाले रस में उस सम्पूर्ण द्रव्य को निकाल देने की जो शरीर के लिये हानिकारक है पूर्ण शक्ति होती है। कचा दूध शीघ्र पचता है और पकाया हुआ दूध बहुत देर तक आमाशय में रहता है। इस लिये उसमें बहुत तीव्र उफान आता है जो साधारण भोजन में नहीं होता है।

इसमें किंचित् मात्र भी संदेह नहीं कि यही कारण बच्चों के नाना प्रकार के रोगों और उनके प्रति दिन बढ़ने वाली मृत्युओं का है। बालकों के भोजन और पदार्थों के तत्त्व ही[2] आमाशय के रोगों के कारण हैं। उनसे बालक का आमाशय फैल जाता है, पाचन-शक्ति मंद हो जाती है और अत्यन्त व्याकुलता उत्पन्न हो जाती है। दूध जो प्रोफेसर साक्सलेट की सम्मति के अनुसार उबाला हुआ अथवा साफ किया हुआ और जमा हुआ जिसकी आज कल पादरी साहिबान बहुत प्रशंसा करते हैं बालकों के लिये ऐसा ही हानिकारक है जैसा कि अग्नि पर गर्म किया हुआ दूध। क्योंकि बुद्धिमान प्रोफेसर उबाल देकर जिस वस्तु को दूर करना चाहते हैं वही दूध को शीघ्र पचने वाला बनाने वाली है। ज्योंही दूध पाचन की नाली में

१—डाक्टरी मतानुसार दूध के हानिकारक जन्तुओं को नष्ट करने के लिये खूब औटाकर पीना चाहिये—जिसको कि महाशय कोहनी हानिकारक प्रमाणित करते हैं।

२—आशय है उस भोजन से जो कि डाक्टर लोग बच्चों को मोटा ताज़ा होने के लिये चीज़ों का सत निकाल कर देते हैं।

पहुँचे उसमें गर्मी आना आरम्भ हो जानी चाहिये। हम नेचर में यह कभी नहीं देखते कि दूध में प्रथम इसके कि बालक उसे पिये वायु लगती हो। दूध एक पुष्टि-कारक रस है और माता के स्तन से सीधा बालक के शरीर में वायु लगे बिना ही इसका पहुँचना उचित है। जबकि वायु दूध से स्पर्श करती है तभी उसमें एक प्रकार का परिवर्तन उत्पन्न होता है, जिसका प्रभाव बालक की पाचन-शक्ति पर बुरा पड़ता है। परन्तु जब दूध ताजा हो तो इस परिवर्तन पर ध्यान देना ठीक नहीं। प्रत्येक अवस्था में सावधानी रखना ही आवश्यक है क्योंकि गाय का दूध भी विकारी द्रव्य से अछूता होना कठिन है।

यह समझना भूल है कि एक हृष्ट-पुष्ट गाय जो सर्दी और गर्मियों में गोशाला में बँधी रहती है सबसे उत्तम दूध देती है। इसके विरुद्ध ऐसी गाय का शरीर विजातीय द्रव्य से फूला हुआ होता है और उसी के अनुसार उसका दूध हानिकारक होता है। सत्य तो यह है कि सम्पूर्ण जगत को वह वस्तु पीनी पड़ती है जो विजातीय द्रव्य से पूरित होती है क्योंकि स्वस्थ गायें सभ्य देशों में बहुत ही कम होती हैं। गाय के दूध की अपेक्षा सबसे श्रेष्ठ वस्तु जई के आटे की लपसी होती है। यह लपसी उत्तम व सुखाये हुये जई के मोटे आटे की जो कि कड़वा न हो बनानी चाहिये और इसको चलनी से छान लेना चाहिये। इसमें नमक, घी तथा चीनी न मिलाना चाहिये। प्रत्येक स्थान में जई का आटा थोड़ा बहुत सुखा लिया जाता है, ताकि बिकने से पहिले वह देर तक अच्छा रहे। परन्तु इससे आटे के पचने की योग्यता में कमी हो जाती है और वह बालकों के खाने के योग्य नहीं रहता। जई का आटा सुखाया हुआ न होना चाहिये। जहाँ ऐसा आटा न मिल सके तो सबसे उत्तम बात यह होगी कि छड़ी हुई जई लेकर उसको उबाल देकर उसका माँड़ निकाल लेना चाहिये। यदि यह भी न मिले तो छिलके समेत जई लेकर हावन दस्ते में कुचल लिया जाय, अथवा चक्की में दल लिया जाय और फिर उबाल देकर मांड निकाल लें। यह आश (मांड) सम्पूर्ण अंशों से बालकों के लिये अत्युत्तम है। परन्तु इसमें जई के दलने की कठिनाई है। किसी को इस बात से उलझना न चाहिये क्योंकि एक बार की परीक्षा के पश्चात् प्रथम से सुगमता प्रतीत होने लगेगी। मैंने इस विषय पर और प्रायः बच्चों के पालन के विषय में अपनी पुस्तक (बालकों के पालन) में जिसका कथन हो चुका है विस्तार पूर्वक व्याख्या की है।

यह अत्यन्त शोक की बात है कि बहुत सी माताओं को अपने बालकों की

शिक्षा और पालन-पोषण अत्यन्त कष्टप्रद ज्ञात होता है। बालक पढ़ते ही नहीं और सदा उनके विचार किसी और विषय पर लगे रहते हैं। वह मूर्ख और धूर्त हो जाते हैं। इन बातों के होते हुए भी उनके माता-पिता और गुरु उनको शिक्षा देने में अत्यन्त प्रयत्न शील कहाते हैं। इस बात का कारण कि "शिक्षा देना ऐसा कठिन क्यों हो जाता है" बतलाया नहीं जा सकता क्योंकि इसका कारण ज्ञात नहीं हो सकता। अन्त में इसका कारण समय का प्रभाव ही बतला देते हैं और इस बात की ओर ध्यान भी नहीं देते कि इसका कारण कोई और ही है। जब कभी छोटी आयु के शरीर में विजातीय द्रव्य हो तो मस्तिष्क और समस्त शरीर की क्रिया में अप्राकृतिक प्रभाव पड़ जाता है और उसमें परिवर्तन हो जाता है। यदि इसके विरुद्ध विजातीय द्रव्य का बोझ जाता रहे तो प्राकृतिक नियमानुसार स्वास्थ्य ठीक प्राप्त हो जावेगा।

मैंने अपनी चिकित्सा में प्रायः देखा है कि जिन बालकों का पालन पोषण बहुत ही बुरी रीति से हुआ था वह भी मेरी चिकित्सा रीति के द्वारा अत्यन्त समझदार और प्रतिभा सम्पन्न हो गये हैं।

वे बालक जो कुछ भी नहीं पढ़ सकते थे और घण्टों सुगम से सुगम पाठ लिये बैठे रहा करते थे, शरीर से विकारी द्रव्य के निकल जाने पर और से और हो गये अर्थात् पढ़ने और शीघ्र समझने के योग्य हो गये। वे सुस्त और आलसी न रहे अपने माता-पिता को आनन्द देने वाले बने। जो मनुष्य यह जानता है कि नीरोग बालकों के पालन-पोषण में कैसा आनन्द प्राप्त होता है और इसमें कितनी थोड़ी कठिनाई और कष्ट उठाना पड़ता है वह अपने लिये उन पहिली बातों के प्राप्त करने में जो ऐसे आनन्द के लिये आवश्यक हैं कभी भी ढील न करेगा। यह प्रायः समस्त माता-पिताओं का मुख्य कर्तव्य है कि वे मेरी चिकित्सा की रीति और विशेष कर मेरे मुखाकृति विज्ञान की शिक्षा रीति को सीखें। मुखाकृति-विज्ञान से वह तत्काल नाम मात्र की भी भूल के बिना अपने बालकों में विकारी द्रव्य की प्रत्येक प्रकार की विद्यमानता को जान लेंगे।

एक अति आवश्यक और बड़ी गम्भीर बात और है जो किसी प्रकार भी अपने ध्यान से न हटाना चाहिये। मेरा संकेत आजकल के नवयुवक पुरुषों में प्रति दिन मैथुन की बढ़ने वाली प्रवृत्ति और उसके अस्वाभाविक फल अर्थात् मुश्तजनी (हस्त मैथुन) से है। यह अत्यन्त शोक का विषय है कि आज तक इस युवापन के

पाप की वास्तविकता भली भाँति विदित नहीं हुई है। इसके विरुद्ध मनुष्य निरर्थक लज्जा के कारण भूल में पड़कर ऐसी दशाओं का वर्णन नहीं करते। यह बुराई इस प्रकार कदापि नष्ट न होगी। वह मनुष्य जो कि सृष्टि की उन्नति चाहता है उसको सृष्टि की भूलों को भली भाँति प्रकट कर देना उचित है। ग्रामों में जहाँ कि सृष्टि क्रम और उनकी क्रियाएँ साथ-साथ चलती हैं, यह चिरकाल से जैसा कि पीछे कथन हो चुका है। जान लिया गया है कि पशुओ में मैथुन की इच्छा की अधिकता एक रोग का चिह्न है। मनुष्य भी ठीक उन्हीं सृष्टि-नियमों के आधीन है। चाहे कोई-कोई मनुष्य अपने सृष्टि में एक मुख्य स्थान रखने और उसके अनुसार ही सृष्टि के नियमों के आधीन होने के विषय में कुछ ही कहें। ठीक-ठीक वैसे ही जैसी कि पशुओं में रोग की दशा (शरीर में विजातीय द्रव्य का होना) जैसा कि ऊपर सिद्ध हो चुका है मैथुन की असाधारण इच्छा को उत्पन्न करता है—मनुष्य की दशा भी है। हस्त मैथुन इस बात का विशेष चिह्न है कि लिंग विजातीय द्रव्य से पूरित है। यदि यह विजातीय द्रव्य शनैः-शनैः शरीर से निकाल दिया जाय तो असाधारण इच्छा भी स्वयं ही जाती रहेगी। बालकों को अपनी जननेन्द्रिय से खेलने पर बेत मारना (जैसा कि बहुत से माता-पिता करते हैं) बिल्कुल व्यर्थ है। लगातार खुजलाहट दूर करने की यही चिकित्सा है कि उसका कारण दूर करें—अर्थात् विजातीय द्रव्य को दूर करें। यदि बालकों की आत्मिक शक्ति को बल देकर हम उनसे उस बुराई को रुकवा भी दें तो भी उनके लिये जो आन्तरिक विवशता है वह उस समय तक वर्तमान हीरहेगी जब तक कि उसके कारण (विजातीय द्रव्य) को दूर न कर दिया जावे।

मेरे चिरकाल के अनुभव ने जो कि मुझको हस्त-मैथुन करने वालों की चिकित्सा में प्राप्त हुआ है पूर्ण विश्वास दिलाया है कि मेरे फ्रिक्शन बाथ्ज और अनुत्तेजक भोजन और प्राकृतिक नियमानुसार जीवन व्यतीत करने के अतिरिक्त और कोई भी उत्तम चिकित्सा इसकी नहीं है।

और यह बात इतनी अधिक आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य इस बात को अपना मुख्य कर्तव्य समझे कि वह इसकी सत्यता के विषय में पूर्ण और ध्रुव विश्वास कर ले।

चतुर्थ भाग

आरोग्यता विषयक रिपोर्टें
तथा
धन्यवाद की चिट्ठियां

उन पाठकों को जो बहुत दूर देशों में रहते हैं वास्तविक विज्ञप्तियों द्वारा यह बात दिखाने के लिये कि मेरी चिकित्सा रीति द्वारा कैसी कैसी अद्‌भुत सफलतायें उपलब्ध हुई हैं। मैं इस अवसर पर एक सौ से अधिक आरोग्यता विषयक सच्ची रिपोर्टें व धन्यवाद की चिट्ठियां जो प्रायः सभी प्रकार के रोगों से सम्बन्ध रखती हैं प्रकाशित करता हूं। इन धन्यवाद की चिट्ठियों में से बहुत सी प्रायः बिना मांगे हो भेजी गई हैं। मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि रोगियों के लाभार्थ यह धन्यवाद की चिट्ठियां और आरोग्यता विषयक रिपोर्टें इस न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग की सत्यता के प्रकट करने में काम आवें।

१-नरवस डेबिलिटी Nervous Debility **(पट्ठों की कमज़ोरी) नींद का न आना, अन्तड़ियों की अत्यन्त जलन, जिगर की पथरी—** मिसिज़ आर० को आंतों के कठिन दाह की पीड़ा थी और यह औषधियों और पिचकारी के बिना मल-त्याग नहीं कर सकती थी, इसके संग ही जिगर की पथरी की पीड़ा भी थी उसका उदर (पेट) प्रतिमास बढ़ता गया, यहां तक कि उसकी दशा असहनीय हो गई, उसको बहुत कष्ट था। न निद्रा आती थी, और न क्षुधा लगती थी इसके अतिरिक्त उसके जिगर पर जिगर की पथरी के कारण पीड़ा होती थी। उसके चिकित्सक डाक्टर ने जिगर की पथरी के लिये अन्तिम चिकित्सा शल्य-क्रिया (अमल जर्राही) बतलाई। परन्तु वह शस्त्रिक क्रिया की असफलता इतनी अधिकता से सुन चुकी थी कि उसने इस संकटापन्न अवस्था में मेरी सहायता चाही।

मेरी चिकित्सा रीति के अनुसार नित्य दो से पांच तक फ्रिक्शन बाथ्ज का लेना, प्रति सप्ताह एक-दो स्टीम बाथ, और निरामिष भोजन ही आरोग्यता प्राप्त करने के साधन थे। प्रथम सप्ताह में शनैः शनैः आरोग्यता हुई। दूसरे सप्ताह

में क्षुधा, मल त्याग और निद्रा वास्तविक दशा में आगई। तीसरे सप्ताह में पट्ठों के दोष निवारण हो गये। चौथे सप्ताह में मुख्य बात यह हुई कि अत्यन्त सड़ा हुआ काले रङ्ग का वहुत सा ऐसा मल निकला जैसे बहुधा पेचिश में आया करता है। इस अवधि में शरीर का बोझ ३० पौंड (१५ सेर) घटगया और पेडू जो पहले बहुत ही बड़ा था अब यथार्थ अवस्था में आगया पांच सप्ताह के पश्चात् जिगर की पथरियां भी घुलने लगीं जो मूत्र में स्पष्टतया खंडों में दीख पड़ती थीं। सातवें सप्ताह में रोगी को पूर्ण आरोग्यता प्राप्त हुई।

२--फेफड़े का दाह-ठंडे पैर-आमाशय की व्याधि-जिगर के रोग फेरिनजाईटिस PHARYNGITIS अर्थात् फैरिंग्स का दाह- मिस्टर एच H, ऐल L निवासी ने ६७ वर्ष की आयु में उपरोक्त रोगों में मेरी चिकित्सा का व्यवहार किया। उन्होंने फ्रिक्शन हिपबाथ पर अधिक ध्यान दिया और तत्पश्चात् फ्रिक्शन सिटिजबाथ, और अनुत्तेजक भोजन का सेवन किया। फलतः अत्यन्त शीघ्रता से उन्हें लाभ होने लगा। पाचनशक्ति और आमाशय के दोष को तो दूसरे ही दिन से लाभ होने लगा जिसके कारण अन्य रोगों को भी पिछले दिनों में बराबर लाभ होता रहा और तीन सप्ताह के पश्चात् रोगी के सम्पूर्ण रोग जाते रहे और उसको इस बात से बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसके पैरों ने बिना किसी स्थानिक चिकित्सा के ही अपनी वास्तविक गर्मी को उपलब्ध कर लिया।

३--सर्तान अर्थात् (केकड़ा) एक ब्राज़ोल निवासी २५ वर्ष की आयु में ऐसे सर्तानी फोड़ों में ग्रस्त था जो आठ साल से बराबर बढ़ते चले जाते थे और अब गर्दन तथा पेट तक फैल गये थे। उनमें से भोजन करने के पश्चात् सदैव ही रुधिर निकला करता था, और उसके कंठ से ऐसी दुर्गन्ध आती थी कि उसके समीप आने का भी साहस किसी को न था ऐसी स्थिति में रोगी का प्रति क्षण आत्मघात के विचार में लगा रहना कुछ आश्चर्य की बात नहीं है।

उस रोगी ने अपने ऐसे मित्रों के उत्साह दिलाने पर जो मेरी चिकित्सा प्रणाली से रोग मुक्त हुए थे इस चिकित्सा की परीक्षा का पूर्ण निश्चय करलिया। प्रारम्भ के तीन महीनों में जब कि सर्तानी गुमड़ियां अत्यन्त पीड़ा से फैलती गई उसकी दशा अधिक विषम होती हुई जान पड़ी। इस पर भी उसने विश्वास रक्खा और अन्त में उसकी दशा उन्नति करने लगी। एक वर्ष के अन्त में वह युवक पूर्ण आरोग्यता को प्राप्त हुआ। इस समय वह एक शक्तिशाली, स्वस्थचित्त तथा इस न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग द्वारा अनेक रोगियों का पथ प्रदर्शन करने वाला है।

४–पाण्डुरोग (कमलवाय) दुर्बलता, कई प्रकार की शिर पीड़ा– मिसिज–ऐल० लिपजिग निवासी की युवती कन्या ने १८८७ की बसन्त ऋतु में अत्यन्त आलस्य, काम करने को जी न चाहना, सर्वाङ्ग निर्बलता, शिर पीड़ा, एवम् स्वास्थ्य के पूर्णतया बिगड़ जाने की शिकायत मुझ से की। कुछ दिनों के पश्चात् ही नेत्रों की सफेदी पीली हो गई और यही रङ्ग शीघ्र ही सम्पूर्ण चेहरे, गर्दन और अन्त में समस्त शरीर पर भी फैल गया। इस के साथ ही यह बात भी ज्ञात होती थी कि वह तीव्र ज्वर से भी ग्रसित है जो पेडू से आरम्भ होकर समस्त शरीर पर फैल गया था और बाहर की ओर शिर में सड़न व उफान की कार्य्यवाही के अनुसार प्रगट हुआ। प्रतिदिन अनुत्तेजक भोजन का सेवन और तीन फ्रिक्शनबाथ्ज का सड़े हुये पदार्थ (द्रव्य) के निकालने के लिये लेना निश्चय किया गया। दो सप्ताहमें ही उसका कमलवाय जाता रहा।

५––हड्डी के ऊपर की गुमड़ियां–– मिस्टर A. H. ए-ऐच, W निवासी को, हड्डी को नष्ट करने वाले दानों के निकलने का रोग था। उसकी चिकित्सा आईडोफ़ार्म—कार्बोलिक ऐसिड—कारोसिव सबलीमेंन्ट आदि ऐलोपैथिक, चिकित्सा के अनुसार नौ मास से अधिक को गई परन्तु सफलता न हुई। दोनों टांगों पर कई बार शस्त्रिक क्रिया की गई और हड्डी काट कर कई खंड पृथक् किये गये। इस स्थानिक चिकित्सा से रोगी की दशा ऐसी बिगड़ गई कि अब वह बिल्कुल चल-फिर तक न सकता था। ऐसी दशा में मैंने उसकी चिकित्सा करना आरम्भ किया। तीन मास में ही उसकी टांगों के घाव अच्छे हो गये, और स्पञ्ज जैसी फूली हुई हड्डियां सख्त और पतली हो गई। रोगी शीघ्र चलने फिरने के योग्य हो गया और तीन मास में ही उसने पूर्णतया आरोग्यता उपलब्ध करली।

६––अर्कु लनिशा––(लंगड़ो की पीड़ा) लुञ्जापन—लंगड़ापन एक बालक एसवाल, जैड नामी ※ K निवासी १२ वर्ष की आयु का कठिन सर्दी में, जिसके संग खांसी भी थी ग्रस्त होने के पश्चात अर्कु लनिशा के रोग में फंस गया। बहुत से वैद्यों की औषधियों द्वारा अप्राकृतिक चिकित्सा और औषधियों तथा घटने बढ़ने वाले पलंग आदि की चिकित्सा से उसका रोग ऐसा बिगड़ गया कि बेचारे बालक का कूल्हा अत्यन्त कठोर और निश्चल होगया जिसने उसको बिल्कुल लङ्गड़ा कर दिया था। दाहिनी टांग बांई टांग की अपेक्षा बहुत पतली और कुछ छोटी होगई थी।

मैंने कड़ी और अपना काम न करने वाली टांग की कोई स्थानिक चिकित्सा नहीं की वरन मुख्यत: आरोग्यता दायक फ्रिक्शन बाथ्ज दिये और अनुत्तेजक भोजन

※—एक स्थान के नाम का पहला अक्षर है।

का सेवन कराया। इस चिकित्सा का फल शीघ्र प्रतीत हुआ १५ दिन में ही वह घोड़ियों तथा छड़ियों की सहायता के बिना ही चलने योग्य हो गया। एक मास में उसका कठोर कूल्हा फिर कुछ मुलायम हो गया और उसके लुंजेपन के सम्पूर्ण चिन्ह जाते रहे। यह टांग बांई टांग की भांति सरलता से हिलाई जासकती थी। छः मास में टांग और पांवों के वह भाग जो बढ़ने से रह गये थे बिल्कुल ठीक दशा में आगये।

७-सर्वाङ्ग दुर्बलता-कमर पीड़ा - शीतल हाथ पांव - सुगमता से जनना-रुधिर की न्यूनता- मिसिज ई०, W. निवासी जो स्थान पी P. के समीप है— बहुत से रोगों में ग्रस्त और गर्भवती थी। जब डाक्टर उसकी कुछ भी सहायता न कर सके तो उसने अपनी अन्तिम आशा मेरी चिकित्सा प्रणाली पर लगाई। मैंने प्रति दिन एक हिपबाथ और दो फ्रिक्शन सिटिजबाथ और पश्चात् धूप में तापना बतलाया। इसके अतिरिक्त अति सादा अनुत्तेजक भोजन दिया। छः मास के उपरान्त वह फिर मेरे पास आई और रिपोर्ट दी कि उसने मेरी सम्मतियों पर पूर्ण रीति से कार्य किया। उसे एक सप्ताह के भीतर ही अपनी आरोग्यता में उन्नति ज्ञात हुई और यह उन्नति प्रति दिन बढ़ती गई। एक मास हुआ कि उसके बालक उत्पन्न हुआ और दाई को यह जान कर आश्चर्य हुआ कि इस बार के जापे में अत्यन्त सुगमता हुई। पहिले प्रसवों में लिफ़ड़ी के निकलने में सदैव ही अति गाड़ा और सड़ा हुआ रुधिर जाया करता था इस बार किंचित् भी पीड़ा न हुई। बालक भी पूर्ण आरोग्य था। पहिले बालक के लिए पर्याप्त दूध न होता था इस बार काफ़ी दूध था। अब पहिले से उसकी क्षुधा भी अच्छी थी। उसने स्पष्ट रीति से यह जान लिया था कि यह जीवन-रीति केवल अति सादी ही न थी वरन साधारण रीति से अत्यन्त आरोग्यता देने वाली भी थी।

८-गिलटी का फोड़ा- एक ९ वर्ष की E नाम वाली कन्या की गर्दन के बांई ओर एक गिल्टी में सूजन आगई। यह कुछ काल में एक बड़े अन्डे के समान हो गई। मैंने उसको प्रति दिन हिप और सिटिज बाथ हर बार आध घण्टे तक लेने को कहा और सप्ताह में दो बार स्टीमबाथ भी, संग ही उचित आहार करना बताया। पहले फोड़े का रंग अत्यन्त रक्त था कुछ काल के पश्चात नीला सा होगया। तीन सप्ताह पर्यन्त चिकित्सा प्रचलित रखने के पश्चात उस कन्या को स्टीमबाथ अरुचिकर प्रतीत होने लगा। उसका शिर फोड़े के कारण एक ओर को झुक गया था वह उसको हिला न सकती थी। स्टीमबाथ के स्थान पर गर्म जल की गद्दियों का सेवन किया गया। जल इतना गर्म था जितना कि उसकी त्वचा सह सकती थी। निकृष्टतत्व की चाल अब स्पष्ट रीति से ज्ञात हो सकती थी क्योंकि पीप खाल में से रिस कर उस वस्त्र को जो गर्दन के

गिर्द लपेटा हुआ था, लग गई यद्यपि उस स्थान पर कोई छिद्र न था। अन्त में दो छोटे छोटे छिद्र मटर के दाने के समान प्रकट हुए और उनमें से कुछ मात्रा पीप की निकली।

फोड़ा आकार में शीघ्रातिशीघ्र घटने लगा, परन्तु एक और फोड़ा हो गया। वह फोड़ा अपने मवाद को उन छिद्रों द्वारा जो पहिले फोड़े ने बनाये थे शीघ्र ही निकालने के पश्चात लोप हो गया। एक मास में रोग इतना घटगया कि कन्या पाठशाला जाने के योग्य होगई और पांच सप्ताह में ही सम्पूर्ण रोग जाता रहा। शिर और गर्दन को बिना कठिनाई के हिला जुला सकती थी। इस समस्त समय में उस कन्या को कोई पीड़ा ज्ञात न हुई क्योंकि यह पीड़ा एक तो स्टीमबाथ और गर्म गद्दियों और दूसरे फ्रिक्शन सिटिज बाथ के द्वारा रोक दी गई थी। अब रोग का कोई चिन्ह भी शेष न रहा।

६–स्तन व नाक का सर्तान–मिसिज S. एक कसाई रोडैंटिस Reudnitz लिपजिग निवासी की स्त्री ने स्तन और नाक के कठिन रोग में अनेक औषधियों का सेवन किया, किन्तु नाम मात्र को भी उसे कुछ लाभ न हुआ। एक दिन किसी मनुष्य ने मेरी चिकित्सा की ओर उसका ध्यान आकर्षित किया और उसकी इच्छानुसार मैं उस स्त्री को देखने गया तो मैंने उसको निकृष्ट दशा में पाया। उसके स्तन के ऊपर एक गहरा घाव था जिससे सड़न निकलती थी और यह भीतर ही भीतर काटता चला जाता था और उसका आकार इतना बड़ा था कि उसको हाथ से ढकना कठिन था। आधी नाक प्रायः नष्ट हो चुकी थी, और उसके मस्तिष्क पर दो बड़ी बड़ी लाल रसौलियां हो गई थीं, जो फूटने पर ही थीं। मैंने परीक्षा करने के पश्चात चिकित्सा सम्बन्धी आवश्यकीय अनुमतियां उसे तत्काल बतलादीं जो अत्यन्त सफल सिद्धि हुई। प्रथम मस्तिष्क की रसौलियां लोप होगई तत्पश्चात स्तन को आराम हुआ और अन्तमें नाक को। थोड़े मास की चिकित्सा के पश्चात जब वह स्त्री अपनी दशा को उन्नति की रिपोर्ट देने मेरे पास आई तो उस समय भी उसकी आकृति से उसे अत्यन्त पीड़ा ज्ञात होती थी। अब वह एक सभ्य व रूपवती स्त्री होगई है और यह जादू (उन मनुष्यों को जिन्होंने उस स्त्री को रोग की निकृष्ट दशा में देखा था जादू प्रतीत हुआ होगा) केवल स्वाभाविक भोजन हिप और सिटज बाथ और भली भांति स्वेद आने के द्वारा किसी प्रकार की स्थानिक चिकित्सा अथवा स्तन, नासिका मस्तक आदि के द्वारा बिना कार्य में लाये ही सफल हुआ।

मेरी बतलाई हुई चिकित्सा का भली भांति सेवन करने से मिसिज एस को ६ मास के अल्पकाल में सब रोगों से छुटकारा प्राप्त हुआ।

१०–टांगों पर खुले हुये घाव—मिस्टर ऐफ़ ब्राज़ील निवासी एक शिक्षक ने मुझे उस आश्चर्यजनक सफलता के विषय में जो उसको मेरी चिकित्सा रीति द्वारा उपलब्ध हुई, लिखा है। सात वर्ष से उसकी टांगों पर खुले हुये घाव थे। वह कई एक

डाक्टरों की चिकित्सा भी करा चुका था। उसका पसीना बहाकर कमाया हुआ धन वैद्यों (डाक्टरों) की भेंट होता जाता था परन्तु उसके घाव सदैव ही बढ़ते और पीड़ा-दायक होते जाते थे। भयानक पीड़ाओं ने उस को काम करने के अयोग्य कर दिया था। दैवयोग से उसको मेरी पुस्तक दी न्यू साइन्स आफ हीलिंग-हाथ लगी उसको विचारने के उपरान्त उसने दृढ़ प्रण किया कि मेरी चिकित्सा रीति की परीक्षा करे। उसने केवल हिपबाथ्ज लिये और लगभग एक वर्ष के उपरान्त वह बिल्कुल आरोग्य हो गया। यदि वह फ्रिक्शन सिटिज बाथ लेता तो इससे और भी शीघ्र आरोग्यता मिलती। रोगी ने अपनी आरोग्यता के वृत्तान्त को पोर्टो एलजीर PORTOALGRE के जर्मन समाचार पत्र में प्रकाशित कराया।

११—मूत्राशय वा गुर्दों का रोग, जलोदर, जिगर का रोग— मिसिज बी B, पी P स्थान निवासी वर्षों से मूत्राशय वा गुर्दों के रोग में ग्रसित हो रही थी। प्रचलित चिकित्सा ने न केवल आराम ही होने को रोका प्रत्युत वह जलोदर के होने को भी न रोक सकी। मिसिज बी. ने उस समय मेरी चिकित्सा रीति की परीक्षा करने का प्रण किया। मैंने उनको दो हिपबाथ और एक फ्रिक्शन सिटिज बाथ संग ही स्वाभाविक भोजन (मगर उसमें शोरुवा न था) प्रतिदिन लेने नियत किये। क्राइसिस शीघ्र आरम्भ हुए और उस स्त्री को कई सप्ताह पर्य्यन्त क्षुधा न लगी। उसका बल जाता रहा। यदि उसकी कन्या उसको इस चिकित्सा के प्रचलित रखने पर तैयार न करती तो वह इस चिकित्सा को छोड़ ही देती।

हिपबाथ के स्थान में फ्रिक्शन सिटिज बाथ भी निश्चित किये गये जिससे आरोग्यता अत्यन्त शीघ्र हो।

जलोदर, गुर्द के रोग, जिगर के रोग, शनैः शनैः जाते रहे। थोड़े काल में मिसिज बी० की नीरोग होकर ऐसी दशा हो गई कि कोई मनुष्य यह नहीं सोच सकता था कि यह प्रथम इतनी रुग्ण हुई होगी।

नं० १२-हृदय के रोग, नेत्रों के आगे काले दागों का दृष्टिगत होना— एक अति भयानक वह रोग है, जिसमें नेत्रों के आगे काले धब्बे उड़ते हुए दिखाई देते हैं, यद्यपि वहां कोई भी वस्तु विद्यमान नहीं होती। यह रोग विजातीय पदार्थों के कारण हुआ करता है। खानेदार टुकड़े आंख के परदे में इकट्ठे होजाते हैं और नेत्र पर छोटे छोटे प्रतिबिम्ब डालते हैं। यह प्रकट है कि शरीर को शुद्धि करने से अन्य वस्तुयें भी जाती रहेंगी। इसकी सत्यता मिस्टर एफ०एच० मुख्तार, बी० निवासी से होती है. जिसने रिपोर्ट की थी, कि चिकित्सा के समय में जो उसने एक पुराने हृदय के रोग के आराम करने के लिये आरम्भ की थी उसको स्याह दागों के दीख पड़ने के रोग को भी आराम होगया।

१३ कठिन अतिसार (दस्त) पेचिश—मिसिज डबल्यू नामी अमरीका की एक लेडी चार वर्ष से कठिन अतिसार वा पेचिश में ग्रस्त थी उसने बहुत से वैद्यों की चिकित्सा कराई परन्तु कुछ भी लाभ न हुआ। मैंने उसकी दशा के अनुसार उसे शीघ्र पचाने वाला आहार, तीन बार शीत पहुंचाने वाले स्नान, प्रतिदिन और प्रति सप्ताह ३ स्टीम बाथ्ज लेने की सम्मति दी। ३ सप्ताह के पश्चात् ही वह बिलकुल नीरोग हो गई।

१४ जिगर के रोग, बड़ी आंत की जलन, तलवों का पसीजना, आमाशय की जलन—मिस्टर M. एम, D डी-निवासी चिरकाल से बड़ी आंत की जलन में ग्रस्त था और इसी कारण से उसको एक बड़ा रोग उत्पन्न हो गया था। वह रोगी वर्षों से एलोपैथिक (डाक्टरी) चिकित्सा करा रहा था किन्तु किसी औषधि से भी उसे कुछ लाभ न हुआ। सितम्बर मास के आरम्भ में उस रोगी ने मेरी चिकित्सा रीति का सेवन आरम्भ किया। परिणाम पूर्व आशा के विरुद्ध हुआ। आमाशय की जलन थोड़े ही दिनों में जाती रही। प्रथम सप्ताह में ही पाचन शक्ति ठीक होगई, विकारी द्रव्य; जो वर्षों से उसके शरीर में एकत्रित हो रहा था शीघ्र निकलने लगा और उसकी दशा में प्रति दिन उन्नति होती रही। दो मास में जबकि उसका बोझ १५ पौण्ड घट गया तो उसको पूर्ण आरोग्यता प्राप्त हुई और पसीजने वाले पैर ठीक हो गये।

१५ मेरु दंड अर्थात् रीढ की हड्डी का नष्ट होना—मिस्टर एम M, स्थान एन N निवासी कम्पोजीटर (छापेखाने में अक्षर जमाने वाला) हराम मग्ज के नष्ट होने के रोग में ग्रस्त था। लिपज़िग यूनिवर्सिटी क्लेनिक के वैद्योंने इसको असाध्य रोग ठहराया। उपरोक्त औषधालय में मिस्टर एम M. की चिकित्सा एक वर्ष पर्यन्त होती रही परन्तु कुछ लाभ न हुआ। उस बेचारे की दशा अति शोकमय थी। उसके पास खाने पीने को भी कुछ न था। उसके सम्बन्धी उसकी पालना करते थे। इस पर आश्चर्य यह कि वैद्यों (डाक्टरों) की यह सम्मति थी कि उसकी दशा में उन्नति होने की कोई आशा नहीं। सौभाग्यवश उसने मेरी चिकित्सा-रीति द्वारा आरोग्यताओं का वर्णन सुना और उसने न्यू साइन्स आफ़ होलिंग से चिकित्सा कराने का दृढ़ प्रण कर लिया। यद्यपि डाक्टरी चिकित्सा में पुष्टिदायक भोजन उसके लिये बताये गये और जहां तक सम्भव हुआ उसको दिये भी गये थे तथापि वह अति दुर्बलता की दशा में दो लकड़ियों के सहारे से लंगड़ाता हुआ मेरे समीप आया। परीक्षा करने से प्रतीत हुआ कि वह पीठ की ओर विजातीय द्रव्य के बोझ में ग्रस्त हो रहा है साथ ही उच्च श्रेणी का भीतरी ज्वर भी उसे है। मैंने प्रथम ६८ से ७२ दर्जे फारेनहाइट की गर्मी के जल में हिप बाथ, सिटिज़बाथ के साथ बारी बारी से लेने बतलाये अर्थात् सिटजबाथ एक घन्टे के लिये। निरामिश भोजन बतलाया। नाश्ते और चाय के समय फल और त्रित।

छने हुए आटे की रोटी, और भोजन के समय भाजियां, प्रति तीसरे वा चौथे सप्ताह में पेडू के लिये एक भाप का स्नान भी आवश्यक था। तीन मास में मिस्टर एम० भली प्रकार चलने लगा। छः मास में छड़ी के विना चलने योग्य हो गया। उसकी पीठ से विकारी द्रव्य इतनो मात्रा में निकल गया कि वह हलके हलके कामों को करने लगा। मैंने उसको अपने कार्य्यालय से जाने की आज्ञा दी।

१६ ऋतु का भारी दोष, गर्भाशय से रुधिर का प्रवाह–मिसिज डबल्यू W, लिपजिग निवासिनी ८ वर्ष से अनियम से ऋतु होने के दोष में ग्रसित थी। ऋतु कभी कभी बिलकुल बन्द हो जाती थी और कभी कभो रुधिर अधिक मात्रा में निकलता था जिससे उसकी शक्ति (ताकत) बिलकुल जाती रही थी। प्रथम उसने लिपजिग नगर के डाक्टर एस० S से चिरकाल तक चिकित्सा कराई परन्तु कुछ लाभ न हुआ। लिपजिग नगर के स्त्री-चिकित्सालय में भी उसकी स्थानिक चिकित्सा की गई परन्तु इससे भी कुछ लाभ न हुआ—मैंने उसको प्रति दिन फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ्ज़ लेने और साधारण अनुत्तेजक भोजन करने के सेवन की सम्मति दी। इसका फल आश्चर्यजनक हुआ और अल्पकाल में ही मिसिज W का रुधिर प्रवाह पूर्ण रीति से जाता ही न रहा प्रत्युत इस सादी और सस्ती चिकित्सा को कुछ मास प्रचलित रखने के पश्चात उसको यथार्थ रीति से ऋतु आने लगे, और उसकी शारीरिक शक्ति भी जो बिलकुल जाती रही थी पुनः लौट आई।

१७ एरीसिफलिस ERYSIPHLAS अर्थात् सुख वादा—एक स्त्री ने जो कि चेहरे की कठिन एरीसिफलिस के रोग में ग्रस्त थी एकबार मेरी सम्मति ली। मेरे अन्य आदेशों पर चलने के अतिरिक्त उनको फ्रिक्शन बाथ्ज भी लेने पड़े जो कि ठीक उसकी दशा के अनुकूल बतलाये गये थे। जबकि ज्वर और चेहरे की जलन बहुत अधिक बढ़ जाती थी तो फ्रिक्शन बाथ दो घन्टे तक लेना पड़ता था—जिसमें कि जल आध आध घन्टे पश्चात् इसलिये बदला जाता था कि ज्वर की गर्मी को कम करे। इसी के साथ शिर के लिये प्रति दिन एक वा दो स्टीम बाथ और उनके पश्चात् तत्काल ही फ्रिक्शन सिट्ज़बाथ लिये जाते थे और उनसे उसे सदैव ही बड़ा सुख मिलता था। एक सप्ताह के भीतर रोग बिलकुल जाता रहा और वह स्त्री प्रथम की अपेक्षा अधिक नीरोग व प्रफुल्लित प्रतीत होने लगी।

१८ थैली के समान रसौली-कानों की झनझनाहट–मिसिज एल० जी स्थान जैड-निवासी के बांए कान के नीचे एक थैली की भांति की रसौली अखरोट के बराबर थी। इसी कारण उसके कान में झनझनाहट होती थी। तीन वर्ष तक अनेक

प्रकार की चिकित्साएं कराती रही; किन्तु किंचिन्मात्र भी लाभ न हुआ। उसके कुल-वैद्य ने उसे शस्त्रिक क्रिया कराने को सम्मति दी; जिसके लिये वह अपना मन पक्का न कर सकी और वह मेरे समीप आई। उसको भी फ्रिक्शन बाथ्ज, स्वाभाविक भोजन और आरोग्यता दायक नियामानुसार, जीवन व्यतीत करने से आरोग्यता प्राप्त हुई। आरम्भ के कुछ ही स्नानों के पश्चात् कानों की झनझनाहट जाती रही और रसौलो को छः सप्ताह में आराम हो गया।

१६—साई कोसिस SYCOSIS अर्थात् ठोडी पर खुजली, रीढ़ की हड्डी के पट्ठों की पीड़ा मिस्टर एच H. वर्षों से साईकोसिस में ग्रस्त थे। दाढ़ी का संपूर्ण स्थान बहुत सुर्ख था और वह पपड़ी और दानों से भर गया था। रोगी ने सम्पूर्ण औषधियां एलौपैथी और होम्योपैथी-चिकित्सा का व्यवहार करके परीक्षा की और प्राचीन नेचर क्योर रीति का भी सेवन किया परन्तु सफलता न हुई। मैंने अपने मुखाकृति विज्ञान द्वारा ज्ञात किया कि पीठ को ओर विकारी द्रव्य के बोझ के कारण साईकोसिस हुई थो और यह निश्चित है कि वह रोगो कई साल तक कमर की पीड़ाओं में ग्रस्त रहा था। विकारी द्रव्य के स्वभाव के कारण शनैः शनैः आरोग्यता हुई।

इस मनुष्य की चिकित्सा में भी प्रतिदिन फ्रिक्शन बाथ्ज, यथार्थ भोजन, प्रति सप्ताह स्टीम बाथ लिये गये इससे रोगी का कठिन रोग पांच सप्ताह में जाता रहा।

२० नपुंसकता—मिस्टर जी G. स्थान ऐस S. निवासी बिलकुल नपुन्सक था सम्पूर्ण चिकित्सायें जो उसने कीं निष्फल सिद्ध हुईं। मेरी चिकित्सा रीति से जिसमें कि फ्रिक्शन हिपबाथ फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ बारी बारी से बतलाये गये थे अपने गृह पर सेवन करने और निरामिष भोजन करने से उसका रोग छः सप्ताह में ही जाता रहा।

२१ बालकों का कब्ज—पादरी मिस्टर क्यू का छः मास का बालक कठिन कब्ज में फंसा हुआ था जो कि बहुत सो औषधियों के सेवन करने पर भी दूर न हुआ था। बालक को तीन बार उबला हुआ दूध दिया जाता था। उसका शरीर विजातीय द्रव्य से पूरित होगया था, इस कारण उसे ज्वर भी रहता था और तशन्नुज पड़ता था जिससे वह बहुत बलहीन होगया था।

डाक्टर ने तशन्नुज के लिये शीतल जल की गद्दियां बतलाई जो कि दो दो घण्टे पश्चात बदली जाती थीं। वास्तव में यह बिलकुल पर्याप्त थीं और बालक को एक दिन में १० बार तशन्नुज का दौरा पड़ा। उस समय उसके पिता को पन्द्रह मिनट के पश्चात गद्दियों के बदलने का विचार हुआ और फल अत्यन्त आश्चर्यजनक हुआ। तशन्नुज जाता रहा लेकिन कब्ज का कारण अभी दूर नहीं हुआ था, उसके पिता ने मेरी पुस्तक

'दी न्यू साइन्स आफ हीलिंग' को पढ़ा। तत्काल उस बालक को दो हिपबाथ प्रति दिवस देने आरम्भ किये, जल बहुत गर्म लिया गया (८८ से ९३ अंश फेरन हाइट की गर्मी का) अतः इसका प्रभाव शनैः शनैः हुआ और केवल पांच सप्ताह के उपरान्त ही उस बालक की पाचन शक्ति शुद्ध होगई। परन्तु इन दिनों में भोजन भी बदल दिया गया था। बालक को बिना उबला हुआ दूध और जई के आटे की लपसी दी जाती थी जिनसे कि अब उसका पालन शीघ्र हुआ। बालक मोटा ताजा भी हो गया। प्रथम वह बलहीन व रोगी रहा करता था।

२२ गिल्टी की रसौली–सुगमता से बालक जनना–मिसिज M. एम की गर्दन पर गिल्टी की रसौलियां थीं उनको ढकने के लिये सर्वदा रूमाल बांधा जाता था। उसने मेरी चिकित्सा आरम्भ की और बड़े धैर्य के साथ उसे करती रही। कठोर रसौलियां शीघ्र ही नर्म होगई और आकार में घट गई और अब उस स्त्री की अवस्था पूर्णतया सुधर गई थी।

यह बात कि उसका स्वास्थ्य कितना अच्छा हो गया था उसको अपने दूसरी बार के जनेपे में ज्ञात हुई जबकि उसके सातवां बालक उत्पन्न हुआ। उसे अपने सुगम जनेपे पर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। यह बालक केवल तीन बार की ही प्रसूतिका पीड़ा के बाद जन्मा था। बालक अवश्य छोटा था मगर बनावट में अच्छा था क्योंकि उसको दो घंटे पर्यन्त लिझड़ी से पृथक् नहीं किया गया था उसका सुर्ख रङ्ग बना रहा यद्यपि उसके पहिले संपूर्ण बच्चे जन्मने के पश्चात् शीघ्र ज़र्द (पीले) हो जाया करते थे।

मिसिज़ एम० M. ने अपने गर्भ के दिनों में किसी प्रकार का मांस भक्षण नहीं किया था। वह इस बात से आनन्द-दायक आश्चर्य को प्राप्त हुई कि वह तीन माह पर्यन्त उस बालक को अपनी छाती से दूध पिलाती रही। यह बात वह पहिले कभी भी करने के योग्य न हुई थी।

२३ अर्कुलनिसां—कुछ वर्ष हुए मुझे एक डाक्टरने बुलाया जो अर्कुलनिसां में ग्रस्त होरहा। था औषधियों द्वारा संपूर्ण चिकित्सा करने पर भी वह हीनावस्था को ही प्राप्त होता गया। अंत में यह इतना बढ़ा कि उसकी ऐसी दशा हो गई कि न तो वह खड़ा ही हो सकता था और न लेट ही सकता था और दिन रात शय्या पर ही सहारा लगाये रहता था। मैंने उस डाक्टर को प्रतिदिन दो फ्रिक्शन हिपबाथ्ज़ और एक स्टीमबाथ एक दिन छोड़ कर बतलाया। मेरे स्नान देने वाले नौकर ने चौथे ही दिन डाक्टर बी० की दशा में एक प्रकार की उन्नति ज्ञात करके कहा कि रोगी कुछ थोड़ा थोड़ा चल सकता है। एक सप्ताह में ही उसे इतना लाभ हो गया था कि वह मेरी चिकित्सा बिना किसी की सहायता लिये ही जारी रख सका। चार सप्ताह में रोग बिल्कुल ही ज़ाता रहा।

२४ डिफ़थीरिया DIPHTHERIA स्कारलेट फ़ीवर SCARLET FEVER अर्थात् सुर्ख ज्वर- कुछ समय हुआ मुझे मिसिज एस० S. के यहां बुलाया गया। उसका एक वर्ष की आयु का छोटा बालक रक्तज्वर और डिफ़थीरिया में ग्रसित हो रहा था। प्रथम यह उचित था कि उसको एक स्टीम बाथ दिया जावे, परन्तु मेरे भाप के स्नान देने का यन्त्र (आला) उस समय उपस्थित न होने के कारण मुझे उसके स्नान के लिये तत्काल यह निश्चय करना पड़ा कि उस बालक को बेत की बनी हुई एक कुर्सी पर बिठलाकर एक गेलन पकते हुए जल का बर्तन उसके नीचे रक्खा। पांव भी एक बर्तन पर जो आधा उबलते हुए जल से भरा हुआ था और उसके मुंह पर दो लकड़ियां और पास रक्खी हुई थीं, रक्खे गये। तत्पश्चात् उसका सम्पूर्ण शरीर भली भांति एक ऊनी कम्बल से ढक दिया गया। रोगी को भली भांति स्वेद आ जाने के पश्चात् एक फ्रिक्शन हिप बाथ ५० अंश फ़ारेनहाइट के जल में दिया गया, और उसके पेड़ू को उस समय पर्यन्त मला गया जब तक कि शिर से गर्मी दूर न हो गई। इस बात का देखना कि रुक कर रुांस का आना किस प्रकार इस चिकित्सा से शनैः शनैः ठीक होगया अद्‌भुत था। उस समय सम्पूर्ण भय जाता रहा था, परन्तु उस स्थान से चलने के प्रथम मैंने उस बालक की माता से कह दिया था कि यदि कुछ घण्टों पश्चात् ज्वर हो जाय तो फ्रिक्शन हिप बाथ भली भांति उस समय पर्यन्त देने चाहियें जब तक कि गर्मी जाती न रहे। पांच दिन के अन्दर बालक बिल्कुल नीरोग होगया। भयानक डिफथीरिया को आराम करने की यही रीति है जिसके लिए मेडिकल साइन्स अभी तक चिकित्सा की खोज ही कर रहा है।

२५ बहरापन—लैरिंग्स LARYNGEAT अर्थात् शब्द के यन्त्र में रुकावट, आवाज़ को बैठ जाना- मिस्टर एस S, टी T निवासी ने मुझ से अपने दाहिने कान के बहरेपन व लैरिंग्स के विषय मेरी सम्मति ली। बहिरेपन के कारण उसको बोलने में कठिनाई होती थी। वह बहुत से औषधालयों में अपनी चिकित्सा करा चुका था परन्तु कहीं से भी उसको कुछ सहायता न मिली। मुझे मुखाकृति विज्ञान के द्वारा उसके रोग की परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि विकारी द्रव्य का बोझ सामने की ओर है। अतः अच्छे फल की आशा की जा सकती है और जैसा कि मैंने पहिले ही कह दिया था वास्तव में वैसा ही सिद्ध हुआ। मेरी चिकित्सा आरम्भ करने के दश दिन पश्चात् उस मनुष्य ने मुझे सूचना दी कि वह बहरे कान से सुन सकता है और आवाज़ का बैठना और कण्ठ के भीतर की भारी खुरखुराहट भी कम होगई है। चार सप्ताह में उसे पूर्ण आरोग्यता लाभ हुई। अन्त में रोगी ने यह प्रकट किया कि इससे पूर्व उसकी

दशा कभी भी ऐसी उत्तम न थी जैसी की अब (अर्थात् विकारी द्रव्य के बोझ से छुटकारा पाने पर) है।

२६ न्यूरस्थेनिया NEURASTHENIA फैरिंग्स अर्थात् स्वांस की नाली में कठिन दाह मिस्टर के० लिपज़िग निवासी पट्ठों की निर्बलता के रोग में ग्रस्त थे, और यह रोग बढ़कर अन्त में कठिन न्यूरसथेनिया और बलऊम (स्वांस की नाली) में जलन होगई थी। इस रोगी ने बहुत सी चिकित्सायें कराईं परन्तु सब निष्फल हुईं इस रोगी में विकारी द्रव्य की विद्यमानता का स्थान अच्छे स्थान पर था इस लिये मैंने उसको आरोग्यता की आशा दिलाई। न्यू साइन्स आफ़ हीलिङ्ग की सहायता से आश्चर्य जनक परिणाम हुआ। रोगी के कई क्राईसिस में होकर गुजरना पड़ा किन्तु परिणाम में न्यूरसथेनिया बलमऊ की सूजन का कोई चिन्ह भी शेष न रहा और रोगी ने स्वयं कहा कि मानो उसको नवीन जीवन प्राप्त हुवा है।

२७ चेहरे के पट्ठों की पीड़ा, निद्रा का न आना, आमाशय का फैल जाना- मिस्टर R आर B बी, R आर निवासी ३९ वर्ष की आयु का, चार वर्ष से स्नायु की पीड़ा में ग्रस्त हो रहा था। उसने बहुत से वैद्यों की सम्मति ली, परन्तु कुछ भी लाभ न हुआ। वैद्य ने उसको शस्त्रिक क्रिया कराने की सम्मति दी। रोगी ने यह बात स्वीकार न की और मेरी चिकित्सा रीति की परीक्षा की। मुखाकृति-विज्ञान द्वारा विजातीय द्रव्य का बोझ दाहिनी ओर प्रगट हुआ इसी कारण पीड़ा और खिचावट (तशन्नुज) सर्वदा चेहरे की दाहिनी ओर प्रगट होती थी। निःसन्देह इस दोष की जड़ आमाशय में ढूंडनी पड़ी क्योंकि वास्तव में यह रोगी आमाशय के फैल जाने के रोग में ग्रस्त हो रहा था। मेरी चिकित्सा से उसकी पाचन शक्ति एक सप्ताह के भीतर ही समान और उचित दशा में आगई। तीन सप्ताह पश्चात् मिस्टर बी० सुख से सारी रात सोने लगे जिन्हें पहिले चार सप्ताह तक निद्रा ही न आई थी। दो मास में मिस्टर बी० को पूर्ण आरोग्यता लाभ हुई और उनके रङ्ग रूप में भी बहुत सी उन्नति हुई।

२८ स्क्रोफ्युला SCROFULA (कंठमाला) क्लोरोसिस CHLOROSIS दूर की वस्तुओं का अच्छा नज़र आना, गिल्टी पर सूजन-मिस ऐच० H. जी G, स्थान जी G. की पाठशाला में अध्यापिका थी क्लोरोसिस और स्क्रोफ्युला के रोग में ग्रस्त हो रही थी। अन्त में कठोर सूजन की गिल्टियां और रसौलियां और दूर से ही भली भांति दिखाई आने आदि के रोग होगये। दूर से देखने के रोग के कारण मिस जी. एक विशेष प्रकार की ऐनक को बरतने लगी, और यह ऐनक आगे के लिये अपर्याप्त प्रमाणित हुई। ऐनक के अतिरिक्त उसको एक प्रकार का यन्त्र भी काम में लाना पड़ता था। एक मित्र ने उसका ध्यान मेरी चिकित्सा की ओर दिलाया

उसने छः मास भलीभांति इसका व्यवहार किया और दो फ्रिक्शन सिटिज बाथ प्रति दिन १५ से २० मिनट तक लिये। और बातों में प्राकृतिक नियमानुसार जीवन व्यतीत किया, परिणाम में सफलता हुई। प्रथम पाचन शक्ति ने उन्नति की; तदनन्तर गिलटियों की सूजन एक एक करके जाती रही और संग ही फेफड़ों के रोग की ओर चित्त की चेष्टा जाती रही। गिल्टियों की सम्पूर्ण सूजन लोप हो जाने के पश्चात् नेत्रों का रोग भी अच्छा होने लगा। एक वर्ष व्यतीत होने पर मिस० जी० को ऐनक (उपनेत्र) की आवश्यकता न रही। नेत्रों की चिकित्सा करने वाले बड़े २ वैद्य जो बात प्राप्त न कर सके वह मैंने अपने इस 'न्यू साइन्स आफ होलिंग' के द्वारा उपलब्ध की।

२९ बच्चों का कब्ज, निद्रा का न आना, नेत्रों का सूज जाना—स्थान मैनहम की एक मेम साहिबा एच० नाम वाली अपनी दो मास की दूध पीती कन्या को लेकर मेरे निकट आई, उस कन्या को अजीर्ण था और नींद न आती थी। इससे सिद्ध होता है कि वह कन्या अवश्य विजातीय द्रव्य का बोझ लेकर ही जन्मी होगी। मैंने अपने 'मुखाकृति विज्ञान' के द्वारा ज्ञात किया कि उसकी माता को अजीर्ण था और इसके अतिरिक्त बहुत काल से नेत्रों की जलन में ग्रस्त रहती थी। क्योंकि वह अपनी कन्या को अपना ही दूध पिलाती थी, इसलिये प्रथम यह उचित हुआ कि मात के शरीर को विजातीय द्रव्य के बोझ से शुद्ध किया जाय। माता को प्रति दिन एक फ्रिक्शन सिटिज बाथ और हिपबाथ के लेने और अनुत्तेजक भोजन के सेवन करने तथा स्वच्छ और शुद्ध वायु में देर तक ठहरने से यह बात उपलब्ध हो गई। कन्या को पसीना लाने की इच्छा से उसकी माता उसको अपने पास सुलाती थी। दो दिन चिकित्सा करने के उपरान्त उस कन्या के कब्ज और नींद न आने की पीड़ा निवृत्त हो गई। और एक सप्ताह के भीतर माता की अजीर्णता का दोष और आंखों की जलन भी जाती रही। इस स्थान पर इस बात का एक प्रमाण मिलता है कि स्वाभाविक भोजन के सेवन करने से माता पिता का प्रभाव बालक पर पड़ता है। इतने छोटे बालक की ही चिकित्सा करनी बहुत सफलता प्रद न हुई होती यदि माता के विजातीय द्रव्य का बोझ, जो बालक के रोग का कारण था दूर न कर दिया गया होता।

३० साईनोसिस Cyanosis अर्थात् सम्पूर्ण शरीर का नीला पड़जाना—मिस्टर ई० एच०, स्थान पी० निवासी की छोटी १२ वर्षीया कन्या इस रोग में ग्रस्त थी। मैंने उस कन्या के पिता से कहा कि जब रोग इतना बढ़जाये और दुर्बलता की यह दशा होजाये और जहां इतनी औषधियें की जाचुकी हों वहां आरोग्यता का होना दुःसाध्य है। आरोग्यता का होना केवल तभी सम्भव है जबकि पेडू और पाचन शक्ति इस योग्य हो कि उन पर चिकित्सा का प्रभाव पड़ सके। इस प्रकार बड़ी निराशा की दशा में उस

कन्या की चिकित्सा आरम्भ की गई। एक ही सप्ताह के भीतर उसकी दशा ऐसी हो गई कि उसको अच्छी भूख लगने लगी और पाचन शक्ति भी सुधर गई। चार सप्ताह के भीतर साईनोसिस बिल्कुल अच्छी हो गई। इसके लिये बच्चे के शरीर की वास्तविक जीवन शक्ति को धन्यवाद देना उचित है।

३१ नियत समयों पर वमन का होना, फेफड़ों की खराबी, क्लोरोसिस CHLOROSIS—मिस्टर ऐम M, स्थान ऐल L निवासी को १२ वर्ष से मुख्य समयों पर वमन (क़ै) होने का रोग था। इस रोग से उनको किसी प्रकार की चिकित्सा से लाभ न हो सका था। प्रति सप्ताह एक या दो बार सदैव ही वमन होजाती थी। प्रत्येक बार यह आक्रमण प्रातः सोकर उठते समय से रात्रि को सोने के समय तक रहा करता था। मेरे हिपबाथ और फ्रिक्शन सिटिजबाथ, और अनुत्तेजक भोजन के सेवन का तथा मेरी अन्य सम्पूर्ण शिक्षाओं पर चलने का परिणाम अत्युत्तम रहा। इसके अतिरिक्त उस पीले या मटयाले वर्ण के रोगी में प्रफुल्लता वा आरोग्यता के स्पष्ट चिन्ह दिखाई देने लगें। उसकी पाचन शक्ति जो प्रथम क्षीण हो गई थी अब पुनः पूर्णतया ठीक हो गई। वमन के आक्रमण बन्द हो गये। चार सप्ताह के उपरान्त वह रोगी मुझे आरोग्यता विषयक धन्यवाद देने के लिये फिर मेरे पास आया। उसने अपने को सर्वथा पुनर्जीवित होने का निश्चय दिलाया।

३२ हृदय का कठिन रोग, रुधिर का अवरोध, निद्रा का न आना, हृदय की नाड़ियों का उभर आना, दमा—स्थान एच H, निवासी एम M नाम वाली मेम साहिबा ५८ वर्ष की आयु में उपरोक्त समस्त रोगों में ग्रस्त थी। पिछले वर्षों में दमे का रोग उन्हें बहुत ही बढ़ गया था। अन्त में दाहनी छाती में पीड़ा होने लगी जो क्रमशः अधिक बढ़ती गई। रोगिणी को दिल की धड़कन का भी रोग हुआ, अत्यन्त बेचैनी भी हुई, दारुण पीड़ा व श्वांस लेने में कठिनता के कारण रोगिणि को तनिक भी नींद न आती और वह दस कदम भी न चल सकती थी। बातचीत करना उसे अति कठिन जान पड़ता था। इसके पश्चात् एक दिन उसकी दाहिनी छाती पर गर्दन से नीचे (बहुत दूर नहीं) एक मोटी नस अंगुली के समान अकस्मात् उभर आई। यह नस बहुत वेग से दिल से भी अधिक शीघ्रता के साथ फड़कती थी। वर्त्तमान डाक्टर जो उस समय वहां उपस्थित थे और जिनमें एक प्रसिद्ध डाक्टर भी थे इस घटना पर हतोत्साहित हो गये। अन्त में यह सम्मति दी कि यह घटना हृदय की नस के उभर आने की है और रोगी स्त्री से कह दिया कि सम्भव है कि नस अपनी अन्तिम सीमा तक रुधिर से पूरित होकर किसी समय फट जाय जिससे मृत्यु हो जावे। पांच डाक्टरों ने जिनमें कि एक बहुत प्रसिद्ध डाक्टर भी था उस रोगिणी स्त्री को उत्तर दे दिया। अतः वह निराश होकर मेरे समीप

चिकित्सा के लिये आई। मैंने अपनी रीत्यानुसार उसकी परीक्षा की और समझ लिया कि उन समस्त दोषों का कारण उसके आमाशय का एक पुराना रोग है। इससे प्रथम (मेदे के पुराने दोष से) स्वांस का रोग उत्पन्न हुआ फिर हृदय का रोग, और हेमास्टेसिस HOEMOSTASIS अर्थात् रुधिर का रुक जाना, मेरे तीन नित्य के फ्रिकरानबाथ्ज़, एवम् स्वाभाविक भोजन ने अत्युत्तम फल दिखलाये। एक सप्ताह में सम्पूर्ण पीड़ा जाती रही, दो सप्ताह में उस उभरी हुई नस का फड़कना बन्द हो गया, तीन सप्ताह में उन सम्पूर्ण दोषों का जोकि आमाशय के कठिन दोषों के कारण उत्पन्न हुए थे, चिह्न मात्र भी शेष न रहा। यह एक नवीन प्रमाण (सबूत) मेरे रोगों की एकता के नियम की सत्यता का है।

३३ डिफ्थीरिया (Diphtheria)—ऐल० एस० बी० १२ वर्ष की आयु की एक कन्या डिफ्थीरिया के कठिन रोग में ग्रस्त थी। एक ऐलोपैथिक डाक्टर ने अनेक प्रकार की औषधियों का सेवन कराया परन्तु कुछ भी लाभ न हुआ विशेष कर कण्ठ (गला) दाईं ओर से अत्यन्त सूजा हुआ था और भीतर की ओर से एक हरी सी तह से रुका हुआ था जिससे अत्यन्त दुर्गन्ध आती थी और अंगुली के समान मोटी थी। उस कन्या का दम घुटजाने का अत्यन्त भय था। डाक्टर ने तत्काल यह आज्ञा दी कि इसको चिकित्सालय में पहुंचा दिया जाय, जिससे ट्रैक्योटोमी (Tracheotomy) की शास्त्रिक क्रिया की जाय। सौभाग्यवश उस के माता-पिता ने डाक्टर की बात पर ध्यान न दिया और अन्त में मेरी चिकित्सा-रीति का सेवन किया गया। प्रथम चिरकाल तक फ्रिक्शन सिटिज़ बाथ्ज़ लेने की आज्ञा दी गई। इस स्नान से ज्वर प्रत्यक्ष ही घट गया और संग ही उसकी सूजी हुई गर्दन का तनाव भी कम होने लगा।

अब फ्रिकरान बाथ की जितनी बार अधिक आवश्यकता प्रतीत हुई उतनी बार वह दिया गया और प्रत्येक स्नान के उपरान्त स्वेद अधिक लाया गया। उस कमरे की खिड़कियां जहां वह कन्या थी दिन रात खुली रक्खी गईं। बारह घण्टे में सम्पूर्ण भय जाता रहा। चार दिन में गर्दन की रसौली और भीतर की तह लोप होगई, एक सप्ताह के भीतर पाचन शक्ति भी ठीक होगई परन्तु मैंने यह आदेश दिया कि वह कन्या बिना छने हुए आटे की रोटी बिना रसे के, और बिना उबले हुये फल ही खाये। दशवें दिन मैंने उसके माता पिता को आज्ञा दी कि उसको बाहर धूप में जाने दें। पन्द्रहवें दिन वह कन्या नीरोग होगई।

३४ होठ का सर्तान-एक वृद्ध पुरुष ७२ वर्ष की आयु का ६ वर्ष से बड़े विख्यात ऐलोपैथिक, वा होम्योपैथिक डाक्टरों से इस रोग की चिकित्सा करा रहा था। होठ के ऊपर सर्तान बढ़ता चला जाता था और एक प्रकार की पीड़ा रहती थी और

लगातार थूक बहता रहता था। मैंने उस रोगी की परीक्षा करके ज्ञात किया कि विजातीय द्रव्य का बोझ सामने की ओर, और बगलों की ओर से सिर की ओर हो गया है। मेरी चिकित्सा का फल शीघ्र ही प्रकट हो गया। प्रथम दिन ही थूक निकलने की भयानक दशा नष्ट हो गई और नवीन व्याधाएं सर्तान के बच्चे और खुले घाव, कम होने लगे और प्रथम की अपेक्षा होंठ की आकृति एक तिहाई रह गई।

ग्यारह दिन में उस रोगी को वह फल प्राप्त हुआ जो पहिले छः वर्ष की चिकित्सा से कभी भी उपलब्ध न हुआ था। यह ध्यान देने योग्य है कि यह वृतान्त सर्तान के आरोग्य करने का है जिसको ऐलोपैथिक चिकित्सा विद्या असाध्य बतलाती है।

३५ कण्ठ रोग, लाल डिफ़थीरिया—कार्ल बी०, स्टेरिया निवासी साढ़े आठ वर्ष की आयु के बालक को उसकी माता मेरे समीप चिकित्सा के लिये लाई और उसने कहा कि अढ़ाई वर्ष की आयु तक वह पूर्ण नीरोग रहा। किन्तु उस समय से टीका लगाने के कारण सर्वदा रोगी रहा। प्रथम उसको तीन वर्ष की आयु में डिफ़थीरिया हो गया था जो औषधियों द्वारा दबा दिया गया था। इस रोग के पश्चात वह बालक कदापि बलवान नहीं रहा; और इसकी आवाज भी बहुत क्षीण होगई थी। कंठ के कव्वे पर सुफ़ैद दाग सर्वदा ज्ञात होते थे। कंठ उसी के समान सूज जाया करता था जैसा कि डिफ़थीरिया के रोग में। इस रोग के होने के समय से उस बालक की पाचन-शक्ति प्रथम की अपेक्षा मन्द हो गई थी। मार्च सन् १८९१ में किसी भय के कारण इस बालक को गठिया का रोग हो गया और तीन सप्ताह पर्यन्त वह रोग-शय्या पड़ा रहा तत्पश्चात इस बालक के स्वास्थ्य की दशा ऐसी बिगड़ी कि स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिये यह निश्चय हुआ कि लुईकुहनी के कार्यालय में शहर लिपज़िग में इसकी अन्तिम चिकित्सा कराई जावे। १५ अप्रैल को चिकित्सा आरम्भ की गई।

मेरी चिकित्सा का अद्भुत प्रभाव हुआ। दूसरे ही दिन पाचन-शक्ति ने उन्नति की। तीसरे दिन डिफ़थीरिया जो पहिले दबा दिया गया था बड़ी तीव्रता से फिर प्रकट हुआ। इन भयानक समयों (क्राईसिस) में गुज़रना आवश्यक था क्योंकि शरीर के भीतर औषधि की बड़ी मात्रा गुप्त पड़ी थी। पांचवे दिन अति घृणित, दुर्गन्धयुक्त तथा काले रंग का एक दस्त आया और इसी प्रकार घृणित क़हवे के से रङ्ग का मूत्र भी आया। इस विकारी द्रव्य के निकल जाने के पश्चात् पांच सप्ताह में बालक पूर्णतया नीरोग हो गया और उसकी सम्पूर्ण शारीरिक तथा मस्तिष्क दशाएं परिवर्तित होगईं।

३६ पाली पाई— अर्थात् नकड़ा— व नासिका में रुधिर का जमजाना पाचनशक्ति की मंदता—मिस्टर बी०, स्थान जैड० निवासी अत्तार को २० वर्ष से

आमाशय की निर्बलता और अजीर्णता का रोग था। उसके अपने औषधालय में हर प्रकार की विरेचन (जुलाब) की औषधियें थीं परन्तु उनको भली भांति सेवन करने पर किंचित मात्र भी लाभ नहीं हुआ था। कोई औषधि थोड़ी देर के लिये अपना प्रभाव दिखाती थी परन्तु शीघ्र ही उसका प्रभाव जाता रहता था। उसकी पाचन शक्ति की मंदता और अन्य औषधियों के क्रम पूर्वक सेवन से सम्पूर्ण दांत निकृष्ट हो गये थे। इसके साथ ही नासिका और वायु की नालियों में पाली पाई प्रगट हो गई थी जो किसी प्रकार न जाती थी। आमाशय की विषमावस्था के कारण उनका होना आवश्यक था।

यह पीली पाई ३६ बार काटी जा चुकी थी किन्तु और अधिक निकल आती थी। इस स्थान पर मनुष्य यह समझ सकता है कि वैद्यों के ज़िये दृढ़ मैडिकल साइन्स की असत्य सम्मतियों में पड़ कर नैमित्तिक जीवन से किसी बात का सीखना कैसा कठिन है। मिस्टर बी० को मेरी चिकित्सा रीति से एक सप्ताह के भीतर ही उससे भी अधिक लाभ हुआ जो उसको बीस वर्ष की औषधियों के सेवन करने से हुआ था। पीली पाई का निकलना शनैः शनैः बन्द हो गया। चार सप्ताह में रोगी को आरोग्यता प्राप्त हुई। मिस्टर बी ने इस प्रकार मेरी चिकित्सा रीति की परीक्षा अपने शरीर पर की और इसके प्रभाव से उसको ऐसा आश्चर्य हुआ कि मुझसे बिदा होने के समय कहने लगा कि अब अत्तारी की दूकान में उसका निश्चय नहीं रहा; क्योंकि उसको यह ज्ञात हो गया कि दूकान रखने से वह केवल लोगों में धोखा और विष ही फैलायेगा। इस कारण उसने यह प्रण कर लिया कि जितना शीघ्र हो सके अपने औषधालय को बन्द करदे।

२७ सैंट वाईटस डैंस—अर्थात् कोरिया वा निद्रा का न आना– मेन साहिबा जी० G, स्थान एञ्ज निवासिनी की पांच वर्ष आयु की छोटी कन्या इन रोगों में ग्रस्त थी उसके समग्र शरीर पर तशन्नुज (खिचाव) था। वह न तो चल फिर सकती थी और न बोल या सो या किसी वस्तु को पकड़ ही सकती थी और न अपने आहार को पचा सकती थी। हर एक प्रकार की चिकित्सा की, परीक्षा के उपरान्त मेरी चिकित्सा आरम्भ की गई। हिप और फ्रिक्शन सिटिजबाथ (फ्रिक्शन सिटिजबाथ जरा दीर्घ काल तक) लेने स्वच्छ वायु में व्यायाम और यथार्थ भोजन करने से शीघ्र ही इच्छानुसार प्रभाव हुआ। अतः यह कन्या एक सप्ताह के भीतर ही चलने फिरने के योग्य होगई।

चिकित्सा प्रचलित रखने पर उसे पूर्ण नीरोगता प्राप्त हुई। पाचन-शक्ति जो अत्यन्त ही मन्द होगई थी पुनः भली भांति शुद्ध होगई। मेरी यह चिकित्सा-रीति जिसमें औषधियों वा किसी अन्य डाक्टरी सहायता के बिना ही रोगों को एक सी ही रीति पर आरोग्यता प्राप्त होती है, यह सम्पूर्ण बात उपलब्ध हुई थी।

३८ स्नायु खिंचाव (असावी तशन्नुज) के दौरे अर्थात् पट्ठों के खिंचाव के दौरे – एक मेम साहिबा जी० G नाम वाली अद्भुत प्रकार के तनाव में ग्रस्त थी; तनाव अंगुलियों के सिरों से आरम्भ होकर शिर तक पहुंचता था और रोगिणी को अत्यन्त पीड़ा हुआ करती थी। उस नगर के बड़े बड़े प्रसिद्ध डाक्टरों से उसने अपनी चिकित्सा कराई; किन्तु सफलता होने की अपेक्षा उसकी दशा और बिगड़ती गई। डाक्टरों ने भूल से रोग के चिन्ह को ही वास्तविक रोग जान लिया और रोग के मुख्य स्थान अर्थात् पेडू का कुछ ध्यान ही न किया। कुछ आश्चर्य की बात नहीं कि रोग और भी बुरी दशा को पहुंच गया। अन्त में मेम साहिब जी G. मेरी सम्मति को आई। मैंने फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ्ज़ और स्वाभाविक रीति से जीवन व्यतीत करना बतलाया। सात सप्ताह में ही उस स्त्री को उस रोग से जिसमें कि वह वर्षों से ग्रस्त थी पूर्ण आरोग्यता प्राप्त हुई।

३९ बदख्वाबी, अर्थात् स्वप्न दोष, मेरु दण्ड का नष्ट होना, नींद का न आना, पट्ठों की जलन, फालिज– मिस्टर एच H. ४२ वर्ष की आयु के, इन रोगों में ग्रस्त थे। उनको चलने फिरने में अत्यन्त पीड़ा होती थी और बैठ कर उठना उनके लिये एक कठिन बात थी। वर्षों से उनको नींद न आने के कारण पाचन शक्ति की मंदता और शारीरिक उष्णता में न्यूनता वा स्वप्न दोष की बीमारियां थीं। यद्यपि उनकी स्त्री भी मौजूद थी। यह एक निश्चय चिन्ह इस बात का है कि पीठ की ओर विकारी द्रव्य का बोझ बहुत अधिक था और पट्ठों की खराबी भी थी। मैंडीकल साइन्स ने उसको असाध्य ठहराया क्योंकि रोगी ने प्रत्येक प्रकार की औषधि का, जो मिल सकती थी सेवन कर लिया था। मैंने उसको आरम्भ के दो सप्ताहों में प्रति दिन दो फ्रिक्शन हिपबाथ्ज़ लेना बतलाया। इसके उपरान्त चार सप्ताह पर्यन्त एक फ्रिक्शन हिप बाथ और दो फ्रिक्शन सिटिज़ बाथ्ज़ प्रति दिन नियत किये। इससे उसे आश्चर्यजनक सफलता हुई। केवल कुछ ही स्नानों से पाचन शक्ति में भी उन्नति हुई और कुछ सप्ताह में टांगों में फुर्ती जान पड़ने लगी। दो मास में मेरु दण्ड (रीढ़ की हड्डी) के गूदे का निकलना पूर्णतया बन्द हो गया। इस वृत्तान्त से एक और प्रमाण मेरी नवीन चिकित्सा रीति की सत्यता का और मैंडीकल साइन्स के दिवाले का मिलता है।

४० बहरापन, गूंगापन, दिमाग में रुधिर जम जाना–मेमसाहिबा ऐस० स्थान ऐल० निवासिनी की ४ वर्ष की कन्या गूंगी और बहरी थी उसकी माता इस रोग को टीके का फल बतलाती थी। अगणित औषधियां निष्फल प्रमाणित हो चुकी थीं। बेचारी वह कन्या शस्त्रिक क्रिया वा काट छांट करने वाली औषधियों से अत्यन्त पीड़ित

हो चुकी थी। जबकि वह किसी डाक्टर को देखती तो चिल्ला उठती थी। मैं उसके चिल्लाने और भयभीत होने के कारण, उसके रोग की भली भांति परीक्षा न कर सका। परन्तु तौ भी यह जान लिया कि विकारी द्रव्य का बोझ भारी मात्रा में विद्यमान है। और उसका दिमाग़ रुधिर से भरा हुआ है। मैंने केवल फ्रिक्शनबाथ ही लेने और शुष्क स्वाभाविक अनुत्तेजक भोजन का सेवन उसे बतलाया। खिड़कियां खोल कर सोना और स्वच्छ व धूपदार वायु में व्यायाम करना बतलाया। उसे अत्यंत सफलता प्राप्त हुई। दो सप्ताह में उसकी माता ने सूचना दी कि उसकी पुत्री बहुत अच्छी है और अब कुछ सुनने लगी है। चार सप्ताह में वह कन्या पूर्णतया आरोग्य हो गई और सुनने तथा बोलने लगी। अब वह पहले के समान शरमीली भी न रही थी।

४१ कठिन अजीर्ण—डाक्टर ऐफ०, स्थान ए० निवासी की स्त्री को २० वर्ष से बड़ा सख्त क़ब्ज़ था जो किसी औषधि से अच्छा न हुआ था। जब वह मेरी सम्मति लेने को आई, तो उसने यह स्पष्ट कहा कि इतनी औषधियों के सेवन के पश्चात् उसको कोई आशा नहीं रही कि वह नीरोग होगी। एक सप्ताह तक मेरी सम्मति, विशेष कर स्वाभाविक भोजन खाने से उसकी पीड़ा निवृत्त हुई। साथ ही और भी बहुत सी छोटी छोटी पीड़ायें नष्ट हो गईं। भोजन यह था कि कुछ काल तक बिना छने आटे की रोटी और तुर्श फल खाने पड़े अर्थात् उस समय पर्यन्त जब तक कि वह इस दशा तक न पहुंच गई कि पके हुए भोजन को पचा सके।
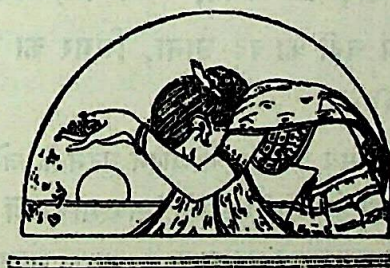
धन्यवाद की चिट्ठियां

४२--हलक़ की जलन, मूत्राशय व गुर्दे का रोग, इन्द्रिय सम्बन्धी रोग।

प्यारे मिस्टर कुहनी !

यह चिकित्सा जिसके करने की आपने अपने पत्र में मुझको सम्मति दी थी, अति फलदायक प्रमाणित हुई। मूत्राशय वा गुर्दों के दोष अब अच्छे हैं, इन्द्रिय (मूत्रेन्द्रिय) के दोष भी प्रथम की अपेक्षा अब ठीक हैं; क्योंकि अब उनमें मवाद बहुत कम निकलता है। कण्ठ के भीतर चुभने वाली पीड़ा (मैंने एक ज़र्द रंग की फुड़िया भी कण्ठ में देखी थी) जाती रही। अब मैं प्रथम की अपेक्षा अति प्रसन्न-चित्त हूं। उस सम्मति के लिये जो आपने मुझे अपने पत्र के द्वारा दी और जो अन्त में इतनी फलप्रद सिद्ध हुई, मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

मैं हूँ आपका दास—
ई० एम० E. M.

ग्राम वर्ग से }

४३—घुटने के जोड़ की जलन, अतिव्याकुलता, मस्तिष्क का रुधिर से भर जाना, दिल में चर्बी का बढ़ जाना, जिगर का रोग, गुर्दे का रोग, अन्तड़ियों की बीमारी।

प्रियवर ! थोड़ा समय हुआ कि मैं दाहिने घुटने के जोड़ की जलन के कारण (२२ इञ्च घुटने की गोलाई होगई थी) आपके चिकित्सालय में प्रविष्ट हुआ और १८ दिन की चिकित्सा के पश्चात् अब अपने घर आया हूं। पथ्य भोजन, फ्रिक्शनहिपबाथ तथा रोशनी के स्नानों (सन बाथ-अर्थात् धूप के स्नान) ने मेरे घुटने की गोलाई को १७ इञ्च कर दिया। आपकी प्रसिद्ध पुस्तक 'दी न्यू साइन्स आफ हीलिंग' से जो कई वर्ष हुए मैंने मोल ली थी मुझे फिर आरोग्यता प्राप्त हुई। तत्पश्चात् मैं कुछ काल तक आपका बतलाया हुआ भोजन और फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ का सेवन करता रहा और आपकी चिकित्सा रीति द्वारा व्याकुलता, मस्तिष्क के रुधिर से भर जाने, हृदय के पट्ठों में चर्बी के बढ़ जाने, गुर्दों और जिगर के रोगों से मुझको छुटकारा मिला। जिगर के रोग को डाक्टर असाध्य बतलाते थे। आंतों का रोग भी प्रगट होने लगा था

परन्तु वह जाता रहा। आप इस चिट्ठी को जो आपको बिना मांगे भेजी गई है किसी सर्कारी वा कानूनी अभिप्राय के लिये व्यवहार में ला सकते हैं। धन्यवाद करता हुआ।

टूटीना-वाकै वो होमिया। } आपका दास—
काल एच!

———

४४ अत्यन्त शिर पीड़ा

प्यारे मिस्टर कुहनी !

मैं चिरकाल से चाहती थी कि आपकी सेवा में धन्यवाद निवेदन करूं परन्तु किसी न किसी कारण से रुकी रही। कदाचित् आपको स्मरण होगा कि मैं अपनी पुत्री के साथ एन N मैम साहिबा, स्थान ऐल निवासिनी की सहायता से आपकी सेवा में उपस्थित हुई थी जिससे अपनी कठिन और पुरानी शिर पीड़ा की चिकित्सा कराऊं। आपकी सेवा में पहुंचने के दूसरे ही दिन मेरे शिर में कठिन पीड़ा हुई, जिसको आपने भी देखा था, क्योंकि आप कृपा करके एक घण्टे अपने बाग में हमारे पास बैठे रहे थे। उस समय से अबतक कभी भी शिर पीड़ा नहीं हुई। अतः ईश्वर के धन्यवाद करने के पश्चात् आपका धन्यवाद करना भी उचित है। मैं इस समय ऐसी हर्षित और प्रसन्न हूं जैसी कि कभी युवावस्था में थी और इसी लिये मुझे उस भोजन के सेवन को जो आपने बतलाया था प्रचलित रखने में कोई भी कठिनाई नहीं होती। स्नान भी अत्यन्त लाभदायक प्रमाणित हुए। एक स्नान के त्यागने को भी जी नहीं चाहता। केवल स्टीमबाथ के तैयार करने में कुछ कठिनता अवश्य होती है क्योंकि मेरे पास इस स्नान के लेने का आपका बनाया हुआ यंत्र [आला] नहीं है। आप कृपा करके एक यंत्र भाप से स्नान लेने का और उसके साथ उसके तीन बर्तन भी भेज दीजिये। मेरी पुत्री की ओर से प्रणाम पहुंचे।

वेलफोल्ड। } मैं चिर कृतज्ञता और अत्यन्त प्रेम के साथ
आपकी सच्ची दासी—
मिसिज़ ई०ऐच०

———

४५ रूमेटिज्म अर्थात् गठिया, तुकरस, फ़ालिज, अर्कुन्निसा अर्थात् लङ्गड़ी का दर्द, नेत्र रोग

मैं सन् १८९२ की शिशिर ऋतु में उपयुक्त रोगों में ग्रसित हो गया। साढ़े तीन वर्ष पर्यन्त अनेक प्रकार की चिकित्सायें कराईं परन्तु किंचित भी लाभ न हुआ। इस

नगर के १२ बारह से अधिक प्रतिष्ठित डाक्टरों ने मेरी चिकित्सा की परन्तु कुछ फल न हुआ। अन्त में एक प्रोफ़ेसर और महाविद्यालय के डाक्टर ने मिस्टर वी० एल० कुहनी से सम्मति लेने का आदेश दिया। साढ़े तीन वर्ष की चिकित्सा से जो लिपज़िग के विख्यात वैद्यों से कराई गई मेरी दशा अति शोचनीय हो गई। परन्तु मिस्टर लुई कुहनी ने तीन सप्ताह में ही मुझे अपनी चिकित्सा से पूर्ण निरोग और काम करनेके योग्य बना दिया।

ऐंगर, लिपज़िग } एच० के०।

---

४६ फेफड़ों में सिल के दाने, हृदय का दोष, दांतों का खराब हो जाना, अन्तड़ियों की जलन, बवासीर, हिमेचूरिया HAEMATURIA अर्थात् मूत्र के संग रुधिर आना।

डियर मिस्टर कुइनी !

इस बात को अगस्त मास में दो वर्ष हुए कि मेरे अमुक पुत्र पादरी ने आप की पुस्तक 'दी न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग' मंगवाई थी। एलोपैथिक चिकित्सा के डाक्टरों ने जौलाई मास के अन्त में मेरे रोग को असाध्य बतलाया, और मैं मृत्यु के मुख में जाने वाली ही थी कि मेरे लड़के ने मेरा ध्यान आपकी चिकित्सा रीति की ओर दिलाया और मैंने आपकी चिकित्सा को इस प्रकार आरम्भ किया जैसे कोई डूबता हुआ मनुष्य घास के तिनके को पकड़ता है। आपके स्नान और भोजन ने अद्भुत प्रभाव दिखाया। पांच मांस में ही बवासीर, फेफड़े के दोष, पेशाब में रुधिर का आना, अन्तड़ियों की जलन सम्पूर्ण दोषों से आरोग्यता को प्राप्त हुई। वह दोष जिनको डाक्टर १२ वर्ष में आराम न कर सके और वह दोष जो उनकी चिकित्सा से केवल अधिक बढ़ते ही गये आपने पांच मास में अपनी प्राकृतिक चिकित्सा रीति से सम्पूर्ण नष्ट कर दिये।

मिष्टर एफ़ F जिन्होंने मेरी सिफारिश से आपकी पुस्तक मंगवाई थी उनके हृदय का दोष भी पूर्णतया नष्ट हो गया। मैंने यहां आपकी चिकित्सा रीति को फैलाने का बहुत यत्न किया है और कई मनुष्यों को आराम भी किया है।

जैसे कि एक १६ वर्ष की कन्या ६ वर्ष से केरीज Caries में ग्रस्त हो रही थी और उसको कहीं से भी कुछ सहायता न मिल सकी थी। कमर टांगों और भुजाओं से हड्डियों के टुकड़े निकल चुके थे। उस कन्या ने अपनी समग्र देह को स्टीमबाथ दिये और प्रति दिन तीन फ्रिक्शन सिटिज़ बाथ्ज़ लिये और आपके लेखानुसार, पथ्य भोजन

सेवन किया। मुझे अति आनन्द हुआ, कि वह कन्या जो कि एक जीवित शव के समान थी अब एक सुन्दर और आरोग्य लड़की हो गई है। अय मिस्टर कुहनी! यह वृत्तान्त मैं केवल आपकी सेवा में अपने आन्तरिक धन्यवाद प्रकट करने के अर्थ भेजती हूं।

ग्रोस-हिलिग्सफ़ील्ड } आपकी दासी—
डाक्टर-यू० की स्त्री।

—-——

४७-फ़ालिज, कब्ज़, गिल्टियों का राग

स्क्रोफ्यूला अर्थात् कण्ठमाला।

प्यारे मिस्टर कुहनी!

आपने कृपा पूर्वक मेरे रोग में अमूल्य सम्मति व हार्दिक सहायता प्रदान की है। अतः मैं आपकी सेवा में अपना हार्दिक धन्यवाद भेजते हुए अपने को अत्यन्त भाग्यशाली समझता हूं।

मैं १८९२ ई० से गिल्टियों के रोग (कण्ठमाला) और कई वर्ष से अजीर्णता के रोग में ग्रस्त हो रहा था। मैंने बड़े २ माननीय डाक्टरों से हर प्रकार की चिकित्सायें कराईं, परन्तु रोग को किञ्चित् भी लाभ न हुआ, प्रत्युत मेरा तो डाक्टरों से पूर्णतया विश्वास ही जाता रहा। ऐसी दुर्दशा में मुझको आपकी चिकित्सा रीति के श्रवण करने का अवसर प्राप्त हुआ और मैं तुरन्त लिपज़िग को चल पड़ा। मेरी बाईं एड़ी की हड्डी पर कठोर शस्त्रिक-क्रिया की गई थी और मैं बैशाखी वा छड़ी के बिना चल भी न सकता था। आप की चिकित्सा अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुई। थोड़े ही दिनों में बैशाखी के बिना चलने लग गया। अब छड़ी की भी बहुत कम आवश्यकता पड़ती थी। और फिर तीन दिनों में तो इतनी भी आवश्यकता न रही। इस चिकित्साकाल में मेरा मन अत्यन्त प्रसन्न रहा। यदि मैं पहले ही लिपज़िग में आ गया होता तो मेरी गर्दन पर यह कुरूप दाग न होते जिनको अब अभाग्यवश मैं दूर नहीं कर सकता।

ऐ प्यारे कुहनी! मैं सर्वदा आपका कृतज्ञ रहूंगा और जहां जाऊंगा 'न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग' के नियमों के फैलाने का यत्न करूंगा।

वर्गविडहम। } आपका सच्चा दास—
बो० B.

४८ उपदंश, (आतशक) अर्थात् सिफ़लिस, अनिद्रा, शिर का रोग

प्यारे मिस्टर कुहनी !

मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि आपकी सेवा में उस बस बड़े लाभ को जो मैंने आतशक के रोग में (इस रोग के चिकित्सकों ने इसको असाध्य बतलाया था) आपकी चिकित्सा रीति से उपलब्ध किया है निवेदन करूं।

मैंने सात आठ वर्ष पर्य्यन्त पारे से चिकित्सा की और दो तीन बार गंधक के बहुमूल्य स्नान लिये। मुझे उनसे लाभ होता हुआ प्रतीत हुआ, परन्तु वास्तव में उन्होंने रोग शरीर से निकाले बिना ही दबा दिया। प्रति वर्ष चिकित्सा करने से बलहीन और चिन्तातुर होता गया और काम की ओर भी मेरा मन न लगता था। अन्त में मुझे शिर पीड़ायें हुई जिनसे मैं पागल सा बन गया और मुझे कई माह तक नींद न आई। मेरे चिकित्सकों ने मुझे मस्तिष्क मुलायम होजाने का भय दिखाते हुए पुनः गंधक के स्नान लेने की सम्मति दी।

मैंने जान लिया कि अब इस प्रकार काम न चलेगा और इन एलोपैथिक चिकित्साओं से मेरी देह में विष-जीर्ण दशा में फैलता है। जब मैं ऐसी निराशा को प्राप्त हो गया था तो आपकी चिकित्सा रीति की परीक्षा का विचार किया। फल अत्यन्त ही उत्तम हुए। केवल तीन स्नानों के पश्चात ही मुझे आराम मिला और नींद आई।

यदि सभी रोगी इस सुगम और नाम मात्र को भी पीड़ा न देये वाली चिकित्सा को ही आरम्भ करें तो कितनी पीड़ाओं से बच जायें। मैं आपकी चिकित्सा रीति की महिमा वर्णन करने की शक्ति नहीं रखता और बड़े आनन्द से और रोगियों के लाभ के लिये निवेदन करता हूँ कि प्रसिद्ध डाक्टरों की यह बड़ी भारी भूल है कि वे सिफलिस को असाध्य बतलाते हैं। मुझे ऐसे पुराने और दुर्दशा को पहुंचे हुए रोग से आरोग्यता लाभ करना एक अद्भुत बात हुई। मैंने चिरकाल तक चिकित्सा प्रचलित रक्खी जिससे मेरा शरीर पूर्णतया स्वच्छ हो जाय और यों कहना उचित है कि मैं प्रथम की अपेक्षा अब युवा ज्ञात होता हूँ। स्वस्थता का रंग चढ़ गया है और नये सिरे से आनन्द को प्राप्त हुआ हूं। प्रिय मिस्टर कुहनी ! इस कृपा के लिये मैं आपका सच्चे दिल से धन्यवाद करता हूं।

लिपज़िग } आपका दास—
एफ़० ई०।

४९ मूत्राशय का रोग, गुरदों की जलन, बवासीर के मस्से, जलोदर

प्रियवर !

थोड़े वर्ष हुए कि मैं अस्वस्थ हो गया था। प्रथम गुर्दों के रोग, कब्ज़ और नींद न आने के रोग में ग्रस्त हुआ। मुझे अत्यन्त कष्ट उठाना पड़ता था। इसके तीन वर्ष उपरान्त मुझको कठिन रोग और अयोग्यता की दशा में नगर के चिकित्सालय में पहुंचाया गया। परीक्षा से प्रतीत हुआ कि गुरदों की जलन, मूत्राशय के रोग, बवासीर के मस्से, और जलोदर को ओर शरीर की चेष्टा है।

मेरी चिकित्सा भिन्न भिन्न औषधियों से की गई थी, किन्तु किंचित भी लाभ न हुआ। उस समय से जब कि मैंने आपकी चिकित्सा आरम्भ की तो मेरी दशा में उन्नति होने लगी। कोई मनुष्य आज मुझे देख कर यह विश्वास नहीं कर सकता कि पहले मेरी ऐसी शोचनीय दशा हो गई होगी। मैं शीघ्र मृत्यु को प्राप्त हो गया होता। मैं इस बात को बड़ी कृतज्ञता से स्वीकार करता हूं कि मेरा यह सुन्दर स्वास्थ्य आप की ही चिकित्सा के कारण बना है।

लिपज़िग } आपका दास– जी० ऐन०

---

५० दन्तपीड़ा, कुचट, मौसमी ज्वर।

प्यारे मिस्टर कुहनी !

मुझे स्वयम् अपने ऊपर तथा अन्य मनुष्यों पर आपके लेखानुसार सम्मतियों द्वारा आपकी चिकित्सा रीति की परीक्षा का अवसर मिला है। आपके स्थानिक स्टीमबाथ और शीत पहुंचाने वाले हिपबाथ से मुझे मौसिमी ज्वर और कठिन दन्तपीड़ा में बड़ी सहायता मिली है। स्नानों से दाहिने हाथ की कठिन कुचट को सम्पूर्ण पीड़ा तुरन्त जाती रही। हाटनटाट्स लोगों में मैंने अनेक रोगियों को स्वस्थ किया है। मिशन के प्रबन्धकों की सभा में यह राय उपस्थित को गई है कि संपूर्ण पादरी अन्य देशों में भेजे जाने के प्रथम आपके विद्यालय में शिक्षा पायें। मुझे आशा है कि मैं आपको और चिकित्साओं में सफलता की सूचना भेजूंगा। इस बीच में विशेष कृतज्ञता के साथ बहुत-बहुत प्रणाम निवेदन करता हूं।

वार्मबाद–
केप कालोनी, अफ्रीका } आपका सच्चा अनुगामी—
पादरी सी० डब्ल्यू०

५१ अडीठ, नींद का न आना

मिस्टर ऐस S, हेल सेल तट निवासी, लिखते हैं कि अप्रैल के आरम्भ में एक बड़ी रसौली गर्दन के नीचे के जोड़ पर दिखाई दी और मुझे अत्यन्त थकान सी मालूम होने लगी। प्रथम तो मैंने इसका कुछ विचार न किया परन्तु यह रसौली आकृति में बढ़ने लगी। मेरा साधारण स्वास्थ्य किसी प्रकार भी उत्तम न था, भूख कम लगती थी और कमर के नीचे के भाग में खेंचने वाली पीड़ा के कारण मुझे नींद भी बहुत कम आती थी। शनैः शनैः यह रसौली बढ़कर अण्डे के समान हो गई; और पीड़ा इतनी बढ़ी कि नींद, भूख बिलकुल जाती रही। इसके अतिरिक्त एक प्रकार का तीव्र ज्वर भी हो गया। उस समय मैंने यह सङ्कल्प किया कि बड़े उद्योग से चिकित्सा करूं। मैंने स्थानिक भाप के स्नान लिये, जिनके लिये कुहनी साहिब का भाप से स्नान लेने का यन्त्र जो कि तोड़ कर रक्खा जा सकता है, अति सहायक हुआ। जब जब पीड़ा असह्य हुई तब स्टीमबाथ बार बार लिये गये और हर बार उनसे (फ्रिक्शन सिटिज़ बाथ तथा हिपबाथ) से शीघ्र आराम हुआ। स्नान के न लेने के समय मैंने शरीर के रुग्ण अङ्ग को एक स्वच्छ भीगे कपड़े से बांध कर ऊन की एक पट्टी बांध दी थी, जिससे रगड़ और मिट्टी लगने से बचा रहे। अदृष्ट अर्थात (कारबंकिल) फोड़ा जिसका रंग अत्यन्त सुर्ख हो गया था पहिले बड़ा कड़ा रहा। उसमें लगातार पीड़ा होती रही। चार पांच दिन में उस पर कई स्थान पर छोटे छोटे छिद्र सुई के समान प्रकट होने लगे। इन छिद्रों की गणना बीस तक पहुंच गई। उसमें से रुधिर, और रुधिर मिश्रित जल निकलने लगा। अब भी वह फोड़ा बहुत दुर्गन्धित और कड़ा था। चार दिन में यह छोटे छोटे छिद्र मिल मिल कर बड़े बड़े हो गये, जिनसे मवाद बहने लगा। उस फोड़े की सम्पूर्ण उभरी हुई खाल एक बार ही फट गई और एक ही छिद्र बनकर रुधिर और पीप बहने लगा। तब मुझे आराम प्रतीत होने लगा, पीड़ा जाती रही और मैंने थोड़े ही काल में आरोग्यता प्राप्त की। अब मैं अच्छा हूं और मुझे यह प्रतीत होता है कि मेरे शरीर से बहुत सा बोझ निकाला गया है और अब मेरी ऐसी शक्ति है जो प्रथम कभी न थी।

५२—स्मरण शक्ति की निर्बलता, पेट का बढ़ जाना, फेफड़े के रोग, कठोर पट्ठों की निर्बलता, बहरापन, कण्ठ के रोग, तीव्र ज्वर।

प्यारे मिस्टर कुहनी !

मेरे विचार से वह बड़ा ही मूर्ख होगा जो यह न समझे कि दो और दो चार होते हैं क्योंकि गणित विद्या के अनुसार जैसा कि वह स्पष्ट और सुगम है वैसे ही

(स्वयम् मेरे अनुभव द्वारा) आपकी नवीन और अचूक आरोग्यकारी चिकित्सा रीति प्रतीत होती है।

मैं प्रति दिन व्यायाम करने पर भी तनिक थकान नहीं सहन कर सकती थी पर अब अपना बढ़ा हुआ उदर कम होने पर घंटों बाग में अथवा और काम करके भी नहीं थकती हूं। पहले मैं टहलते समय, फेफड़ों की निर्बलता के कारण, मुंह खोलकर हांपने लगती थी अब मैं मुंह बन्द करके सांस लेती हूं। मैं वर्षों से बाएं कान से बहरी थी, परन्तु अब मैं अपनी जेबी घड़ी को यदि अपने कान के निकट लगाऊं तो उसका शब्द सुन सकती हूँ और गाड़ी के पहियों का शब्द भी मुझे सुनाई देने लगा है और बड़ी प्रसन्नता की बात है कि यदि जोर से बातें की जायें तो वह भी सुन सकती हूं।

अवश्य उफान खाता हुआ विजातीय द्रव्य जो मेरे शरीर में एकत्रित था उठकर शिर में पहुंचा; क्योंकि मुझे कई बार वहां पीड़ा ज्ञात हुई और मैं कंठ के रोग से भी पीड़ित थी जिसको न तो अन्य डाक्टर और न कंठ के रोग के चिकित्सक अच्छा कर सके। अब कुछ मास से मुझे कंठ के रोग की कुछ भी पीड़ा नहीं हुई। सत्य तो यह है कि वह मस्तिष्क के पिलपिला हो जाने का रोग मुझे हंसी में उड़ाता था। आपकी चिकित्सा से स्मरणशक्ति की निर्बलता, अति व्याकुलता, साधारण सी बातों पर बहुत क्रोध आ जाना, प्रत्येक बात जिससे मुझमें शक्ति और उत्साह आने उचित थे अर्थात् जो मेरे लिये अपनी और प्यारी थी, अरुचि होना, सभी भयानक चिन्ह जाते रहे। अब से छः मास पहिले इस सृष्टि में कोई वस्तु भी मुझको अपनी दशा किसी मनुष्य पर प्रगट करने के लिये (इसका वृत्तान्त केवल मेरे पति ही को ज्ञात था) उकसा नहीं सकती थी। यह प्रसिद्ध है कि शैतान का जिक्र किया और वह आया। मैं जानती थी कि कोई मनुष्य मेरी सहायता नहीं कर सकेगा। परन्तु अब यह विश्वास होता है कि मेरे नेत्रों के समीप से परदा हट गया और मुझे नये सिरे से जीवन प्राप्त हुआ है'

आपकी आश्चर्यजनक चिकित्सा रीति ने कुछ मास हुए मुझे अत्यन्त दुःखदाइ पीड़ा से बचाया। मैं अपने साथ एक कन्या को जो प्रकट में नीरोग प्रतीत होती थी दासी बनाकर ग्राम में लेगई। एक सप्ताह के उपरान्त ही वह रोकर कहने लगी कि मुझसे काम नहीं हो सकता। वह पांव के सूज जाने के कारण न तो जूता पहिन सकती थी, न मोजे। उसको अत्यन्त शिर पीड़ा और तीव्र ज्वर होगया जिसके कारण वह हिल जुल भी न सकती थी। उस कन्या को सेन्टपीटर्सवर्ग पहुंचाने का विचार करना ही अति कठिन था। मैंने उसे बिस्तर पर लिटा कर ढक दिया और कुछ घंटों तक स्वेद आने के पश्चात् मैंने उसको ठीक आपकी सम्मतियों के अनुसार एक हिपबाथ दिया और उसको फ्रिक्शन

सिटज बाथ लेने की रीति समझा दी। एक ही स्नान लेने पर उसका चित्त अति प्रसन्न और सुखी प्रतीत होने लगा। सम्पूर्ण क्रिया फिर की गई और दूसरे दिन दो बार की गई तीसरे दिन उस कन्या ने फिर स्वेद लेना पसंद न किया और कहने लगी कि मैं ऐसी आनन्दित हूं कि जैसे जल में मीन।

सैंट पीटर्सबर्ग मिसिज एo ईo

५३ कठिन शिर पीड़ा।

प्यारे मिस्टर कुहनी !

मैं लिपजिग नगर से प्रस्थान करने से पूर्व अपना मुख्य कर्तव्य समझती हूं कि उस चतुरता की चिकित्सा के लिये, जो आपने की, आपको धन्यवाद दूं। केवल आपके स्नानों ही से मेरी कठिन शिर पीड़ा को जो कुछ वर्षों से थी और असह्य हो गई थी, लाभ हुआ। मैं इन स्नानों का सेवन अपने जीवन भर प्रचलित रखूंगी। मेरी यह इच्छा है कि ईश्वर करे विपद्ग्रस्त मनुष्यों के लाभ के लिये आप की शुभ चिकित्सा चिरकाल तक प्रचलित रहे।

लिपजिग मिसिज एमo डब्ल्युo।

५४ चेहरे पर फुन्सियां, सांस लेने की नाली अर्थात् फैरिंग्स की जलन।

इस लेख द्वारा मैं प्रमाणित करती हूँ कि मिस्टर लुई कुहनी के स्नानों और नियत किये हुए भोजन के कई मास पर्यन्त सेवन करने से मेरी फैरिंग्स की जलन और चेहरे की फुन्सियों को बिलकुल आराम हो गया। इसका विस्तार पूर्वक वृत्तान्त किसी भी समय प्रसन्नता से भेज सकती हूं।

लिपजिग } एमिल पीo

५५ मृगी के दौरे, मूर्छा, रुधिर की न्यूनता।

प्रियवर !

मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं आपके उन सम्पूर्ण यत्नों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करूं, (आपके अविष्कार को धन्यवाद) जो कि आपने ऐसी निर्लोभता से मेरी उस कन्या के लिये जिसको आराम होने की हमको कुछ आशा न रही थी, किये।

जो बात बड़े बड़े चिकित्सकों और अमूल्य औषधियों से प्राप्त न हो सकी थी, वह प्राकृतिक वस्तु अर्थात् जल से लब्ध हुई। मैं आज्ञा मांगता हूं कि अपनी कन्या के रोग का सूक्ष्म हाल निवेदन करूं।

जब रोग के चिन्ह प्रथम ही प्रगट हुए तो वह कन्या ९ वर्ष की थी। पहले हमने इसका कुछ ध्यान न किया, मूर्छा के हलके दौरे पड़े किन्तु शीघ्र ही नष्ट हो गये थे। परन्तु जब दौरे बारम्बार पड़ने लगे तो हमने एक सुयोग्य डाक्टर से सम्मति ली उसने कहा कि यह कन्या रुधिर की न्यूनता और स्नायु की बलहीनता में ग्रस्त है।

उसने पुड़ियों और अन्य औषधियों का सेवन बतलाया, जिनसे दशा और अधिक बिगड़ गई। दौरे शीघ्र शीघ्र और जोर जोर के आने लगे। हमने कई और चिकित्सकों से भी सम्मति ली परन्तु उन्होंने भी वही औषधियां दीं।

अन्त में एक डाक्टर ने यह बतलाया कि यह रोग असाध्य है, अतः हमने ब्रोमाईड आफ़ पोटेशियम के अतिरिक्त उसको और सब कुछ देना छोड़ दिया। जिस समय तक आपने हमको नहीं समझाया हम निश्चित् यही मानते रहे कि इस रोग की केवल यही एक औषधि है। अब सम्पूर्ण पीड़ा जाती रही है मैं और मेरे सम्बन्धी आप को अपना रक्षक और सहायक जान कर सर्वदा आपका आदर सत्कार करेंगे। मुझे फिर आज्ञा दीजिये कि मैं आपको धन्यवाद दूं।

मैं हूं आपका दास—

गेबलोंज—बोहेमिया।

एफ़० एच०

———

५६

जुकाम, ज्वर।

प्यारे मिस्टर कुहनी!

मैं उस कृपा के लिये जो आपने मुझ पर और मेरी माता पर की है, पूर्णतया धन्यवाद देने के योग्य नहीं हूं। मैंने बड़े कठिन जुकाम और तीव्र ज्वर की दशा में आपकी चिकित्सा रीति की परीक्षा अपने ऊपर ही की। उन अनुकूल फलों से जो प्राप्त हुए मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। मुझे दृढ़ विश्वास है कि आपकी ही चिकित्सा रीति भविष्य में प्रचलित होगी।

आपका दास—

हेमबर्ग।

चार्ल्स डबल्यू० (तत्ववेत्ता)

(डाक्टर आफ़ फिलासफ़ी)

५७ हड्डी पर गुमड़ी

प्रियवर मिस्टर कुह्नी !

मैं अपना मुख्य कर्तव्य समझती हूँ कि अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करूं। कारण यह कि आपकी चिकित्सा रीति द्वारा, विना शस्त्रिक क्रिया के ही मुझे आराम हो गया।

जबकि औषधियों द्वारा मेरी चिकित्सा हो रही थी तो मेरी टांग पर आठ बार शस्त्रिक क्रिया की गई थी। पहिले पैर की अंगुलियां काटी गईं, फिर सारा पांव। अब मुझे वैसाखी के सहारे चलना पड़ता है।

इतनी शस्त्रिक क्रियाओं पर भी मेरी टांग स्वस्थ न हुई। मेरे शरीर में एक प्रकार का भारीपन ज्ञात होने लगा और उतनी ही बड़ी एक नई रसौली जितनी कि पहिले थी उत्पन्न हो गई उसमें बड़ी पीड़ा होती थी। मुझे भय हुआ कि अब फिर शस्त्रिक क्रिया करानी पड़ेगी।

जब मुझे आपकी नवीन चिकित्सा रीति का पता लगा तो मार्च माह के आरम्भ में मैंने आपकी सम्मति ली। चार सप्ताह पर्य्यन्त फ्रिक्शन बाथ लेने और आपकी बतलाई हुई अन्य सम्मतियों पर चलने से रसौली पूर्ण प्रकार लोप हो गई, और इस प्रकार मैं शस्त्रिक क्रिया की विपत्ति से बच गई।

यदि रोग के आरम्भ से ही मैंने आपकी चिकित्सा कराई होती तो निश्चय ही संपूर्ण शस्त्रिक क्रियाओं से बच जाती और मैं आज इस प्रकार अङ्गहीन न होती। मैं इस सहायता के लिये आपको धन्यवाद देती हूं।

आपकी दासी—

रोडंटिज्ञ। सोफी डब्ल्यू०

५८ गर्भाशय का सर्तान, गर्भाशय से रक्त का बहना

प्रियवर मिस्टर कुह्नी !

दिसम्बर के महीने में मेरी स्त्री गर्भाशय से रुधिर बहने से ऐसी पीड़ित हो गई थी कि रात्रि के ११ बजे "के" नामक डाक्टर को बुलाना पड़ा। रुई से रुधिर बन्द हो गया परन्तु दूसरे दिन वह बहुत प्रवाहित हुआ। अतः मैंने "डी" नाम के एक दूसरे डाक्टर को बुलाया। उन्होंने यह सम्मति दी कि यह शस्त्रिक क्रिया के योग्य है। चूंकि मेरी स्त्री की तबियत अच्छी न थी इस कारण मैंने एक तीसरे वैद्य प्रोफेसर 'एच' से सम्मति ली। उन्होंने कहा कि शास्त्रिक क्रिया तत्काल होना ही आवश्यक है, नहीं तो इसका बचना असम्भव हो जायगा। मैंने उस प्रोफेसर से फिर पूछा कि शस्त्रिक क्रिया के बिना भी आरोग्यता की कोई आशा है या नहीं, उसने कहा कि शस्त्रिक क्रिया के विना आरोग्यता की कोई आशा नहीं की जा सकती।

तत्पश्चात् मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ। आपने हिप और फ्रिक्शन सिटज बाथ और पथ्य भोजन बतलाये। आपकी चिकित्सा आरम्भ करने पर मेरी स्त्री को आराम होने लगा। अब वह पांच बजे प्रातःकाल से दस बजे रात्रि तक थकान के बिना काम कर सकती है। पहिले वह कभी ऐसी स्वस्थ नहीं रही जैसी कि अब है।

हमारा हार्दिक धन्यवाद स्वीकार करें। हम आपकी चिकित्सा रीति की प्रशंसा रोगियों से करना नहीं भूलेंगे। आपकी चिकित्सा के बिना मेरी स्त्री इस समय कभी जीवित न रही होती।

आपका दास—

लिपजिग। अल्बर्ट डब्ल्यू०।

---

५६ काली खांसी अर्थात् कुकुर खांसी

प्यारे मिस्टर कुह्नी!

पिछली फरवरी में मैंने अपने बालक के लिये जो काली खांसी में ग्रस्त था आप को लिखा था। उन अनमोल सम्मतियों में जो आपने कृपा पत्र द्वारा भेजी थी, हमने विशेष कर इस बात पर ध्यान रक्खा कि बालक को उसकी माता के पास शय्या पर लिटा कर खूब स्वेद दिलायें। इसके अतिरिक्त जो कुछ और आवश्यक था वह हम पहिले ही आपकी पुस्तक के अनुसार कर चुके थे। रोग इस प्रकार हुआ था—रविवार के दिन हमने जाना कि हमारे बालक को जो १५ सप्ताह की आयु का था एक प्रकार की तीव्र शब्द वाली निर्बल खांसी है। हमने यह सोचा कि इस बच्चे को एक आया से जो पाठशाला में भी पढ़ती थी, यह रोग लग गया है। हमने उस आया को घर भेज दिया। अपने बालक को जो अभी दूध पीता था प्रति दिन दो बार ८८अंश फैरनहाईट के जल में स्नान कराने के साथ २ हमने उसको मध्याह्न के समय ८१ अंश फैरन हाईट के जल में एक फ्रिक्शन हिपबाथ दिया,-किन्तु उसका समय इस कारण कम करना पड़ा कि बालक को विलम्ब तक रोने से रोकें। तो भी इसका बड़ा प्रभाव हुआ, क्योंकि उसको पाखाना आ गया। तीसरे दिन खांसी का बुरा शब्द बदल गया! इन दिनों में ही आपका पत्र पहुंचा। मेरी स्त्री ने बालक को अपने संग लिटा कर खूब स्वेद दिया। हमने मध्याह्न का स्नान बन्द कर दिया कि और १२ दिन में खांसी को बिलकुल आराम हो गया। मैं दृढ़ता पूर्वक कहता हूं कि आपने काली खांसी के विषय में अपनी पुस्तक में जो कुछ लिखा है वह ठीक है। मैं अपनी और अपनी स्त्री की ओर से आपको धन्यवाद देने की आज्ञा मांगता हूं क्योंकि ईश्वर से दूसरे दर्जे पर आप और आप की यह चिकित्सा रीति है जिससे कि

हमारे बालक को इतनी शीघ्र स्वास्थ किया।

हार्ज वर्ग। बड़े आदर से आपका सच्चा दास—
ई० के०।

६०— न्यूरस थेनिया, न्यूरे लजिया, पट्ठों की पीड़ा-मिर्गी

प्यारे मित्र!

केवल आप ही की चिकित्सा रीति से न्यू रसथेनिया, न्यू रेलजिया और मृगी से मुझे आराम मिला जब कि ड्रेसडेन नगर के दो प्रसिद्ध चिकित्सकों ने मेरे रोग को असाध्य बतलाया था। मैं तीन मास से रोगी था। मैंने कई बार अपनी परीक्षा कराई तो मुझे कठिन गर्मी का रोगी बतलाया गया, और मुझे फौज में भरती होने से रोक दिया गया।

ड्रेसडेन। आपका दास—
ऐच० बी०।

---

६१ बहरापन, कमर में पीड़ा, खांसी दम घुटने वाले दौरे

प्यारे मिटर कुहनी!

आपकी इच्छानुसार, चूंकि आप हमारी दशा के जानने के इच्छुक हैं, हम आपकी सेवा में अपनी दशा की रिपोर्ट भेजते हैं। हम प्रतिदिन आपको तथा परमात्मा को भी धन्यवाद देते हैं कि आपकी कृपा से हमारे बालक ने बहरेपन के कठिन रोग से पूर्ण आरोग्यता प्राप्त की है वह डेढ़ वर्ष से इस रोग में ग्रस्त था; अब कई सप्ताहों से बिलकुल नीरोग है इस समय तक यही मुख्य सफलता हुई है। इसके संग ही कंठ के भीतर की सूजी हुई कौड़ियां प्रत्यक्ष घटती हुई प्रतीत होती हैं और वास्तव में यह प्रतीत होता है कि मानो बालक बिल्कुल ही बदल गया है हमारा बालक जो प्रथम मरियल सा और थका मांदा रहता था, अब आनन्दित और प्रसन्न चित्त रहता है। वह अन्य बालकों से भली भांति मिलता जुलता है और खूब रौला मचाता इधर उधर दौड़ता रहता है। प्रथम उसका शब्द दबा हुआ प्रतीत होता था और वह धीरे २ बोल सकता था इस समय तक खांसी तथा स्वांस घुटने वाले ऐठन के आक्रमण नहीं हुए। प्रतिदिन हमको ज्ञात होता है कि हमारा बालक शारीरिक और मानसिक उन्नति कर रहा है। प्रतिदिन हम आपही के गुण गाया करते हैं। प्रियवर मिस्टर कुहनी! आज्ञा दीजिये कि

मैं अपने और अपने पति की ओर से आपकी सेवा में धन्यवाद निवेदन करूं।

मेरा स्वास्थ्य वर्षों पूर्व से अब अधिक अच्छा ज्ञात होता है। एक विशेष लाभ की बात यह है कि मैं कमर में शिकंजे की भांति जकड़ने वाली पीड़ाओं को सिट्ज़ बाथ से ही निवृत्त कर सकती हूं।

मैं हूं आपकी दासी—
पादरी एम० पी० निवासी की धर्मपत्नी।

———

६२ गर्भाशय से रुधिर बहना।

प्रियवर !

फ्लोरिका सलीरियस नामी आरमीनिया देश की एक स्त्री जो यहां रहती है चार सप्ताह से गर्भाशय से रुधिर प्रवाह के रोग में ग्रस्त थी। आपकी सम्मति के अनुसार उसने प्रति सप्ताह दो हिप बाथ, और स्टीम बाथ, तथा दो तीन फ्रिक्शन सिटिज़ बाथ प्रति दिन लिये, और अनुत्तेजक भोजन का सेवन किया। इस चिकित्सा के उपयोग से ६ दिन पश्चात् ही उसकी दशा में उन्नति हुई। आज १५ वें दिन वह बिलकुल आरोग्य है। उस बेचारी रोगिणी स्त्री की ओर से हार्दिक धन्यवाद ग्रहण कीजिये।

आपका दास—
(Z) ट्रैन्सलवेनियां, हंगरी। थियो डोर डॉ०,
ग्रीक केथोलिक पादरी।

———

६३ स्नायु का कठिन विकार, न्यूरस्थेनिया, स्मरण-शक्ति की निर्बलता

वर्षों से मेरी स्त्री बहुत घबरा जाया करती थी। तत्पश्चात् व्यापार में काम की अधिकता से उसकी दशा ऐसी शोचनीय हो गई कि मुझे यह ध्यान आया कि इसकी चिकित्सा शीघ्र आरम्भ करनी चाहिये। साधारण नेचर क्योर चिकित्सा की सम्पूर्ण रीतियों की परीक्षा की गई। कई से कुछ लाभ हुआ, किन्तु किसी से भी यहां तक कि विद्युत शक्ति से भी यथार्थ लाभ न हुआ। मिस्टर लूई कुहनी के कार्यालय में अप्रैल सन् १८९० में जो चिकित्सा कराई गई उससे भी आरम्भ में तो कुछ ऐसा लाभ प्रतीत नहीं हुआ, किन्तु दशा अधिक बिगड़गई। परन्तु सात सप्ताह के उपरान्त ही एक तबदीली हुई। एक क्राईसिस के बाद दूसरा क्राईसिस होता गया; यह संकटापन्न अवस्था महीनों पर्यन्त रही, यह ऐसा समय था जो हम चिरकाल तक न भूलेंगे। ११ मास पर्यन्त, प्रतिदिन स्नान करने से शरीर के भीतर की स्वास्थकर शक्ति ने कुह्नी साहब

के सिटिजनाथ की सहायता पाकर अत्युत्तम फल उत्पन्न किये। पहले मेरी स्त्री अपनी स्मरण शक्ति के नष्ट होने, और विचार शक्ति के कम हो जाने को ज्ञात करके बड़ी शोकातुर हुई थी, परन्तु अब उसकी मस्तिष्क सम्बन्धी शक्ति पुनः लौट आई है और अब वह स्वयं को प्रफुल्लित अनुभव करती है जैसी कि वर्षों पहिले कभी न थी। अब उसे मानसिक कार्यों में आनन्द आता है, इससे पहिले उसको बोझ सा लगता था। अब उसके शरीर और मस्तिष्क की अवस्था समान है। चिकित्सा के छः मास के आरम्भ में मेरी स्त्री इस योग्य न थी कि विना विश्राम लिये हुए दो मील भी टहल सके, परन्तु दशवें मास में थकने और विश्राम लेने के विना १२ मील से भी अधिक चल लेती थी। इस परिवर्तन से शरीर के संपूर्ण अङ्गों को बराबर लाभ हुआ। बात क्या, अब वह बिलकुल बदल गई है। पहिले वह बहुधा उदास रहती थी और अब वह बड़ी प्रसन्न रहती है।

दयालु परमात्मा से उतर कर मिस्टर कुहनी को, जिन्होंने कि उत्तम सम्मति दी थी हम धन्यवाद देते हैं। मेरी प्रार्थना है कि वह अपने भाइयों के लाभ के लिये चिरकाल तक काम करते रहें और प्रत्येक रोगी उन्हीं जैसा बनकर उनकी सरल, सत्य और आरोग्यकारिणी इस विद्या के फैलाने में उन्हें सहायता प्रदान करे।

बर्लिन। सी० ऐस०

---

६४ शिर का रोग, नेत्र का रोग, रुधिर की न्यूनता, बेचैनी, पावों की नसों का खिंच जाना, साधारण बलहीनता, सांस लेने में पीड़ा।

धन्यवाद !

मुझे बचपन में शिर पीड़ा के दौरे, विशेषकर जब मैं पाठशाला में पढ़ा करती थी, हुआ करते थे। तत्पश्चात् उनकी तेजी बढ़ गई और बिलकुल ऐसे होगये मानों रगों को खेंचते हैं। १५ वर्ष की आयु में एक बार गिरने के कारण मेरे पांव में नसों के खिंच जाने से अत्यन्त पीड़ा हुई। किसी से भी आराम न हो सका, और अन्त में यह पीड़ा ऐसी बढ़ी कि मेरे लिये चलना बिलकुल असम्भव हो गया। मुझे अत्यन्त पीड़ा भुगतनी पड़ी। इस काल में शिर का रोग बहुत बढ़ गया, अत्यन्त बेचैनी और रुधिर की न्यूनता के कारण मेरे रोग को लगभग असाध्य जानकर मुझे एक चिकित्सालय में ले गये।

जब मेरी दशा में कुछ उन्नति न हुई तो मैं वहां से चली आई। इसी प्रकार मेरी आंखें भी बिगड़ गईं थी, मुझे किसी बात में भी आनन्द न आता था और मैं किसी काम के करने योग्य न रहती थी, मेरा चित्त ऐसा निर्बल हो गया था कि मेरे सम्बन्धियों

को मेरी ओर से भय हो गया। मैं आन्तरिक सड़न और बड़ी कठिनाई से श्वांस लेने के रोग व लगातार ज्वर में ग्रस्त हो रही थी, और ऐसा ज्ञात होता था कि मैं अन्धी हो जाऊंगी।

मैं इस शोकातुर दशा में (जिससे कि मुझे कोई नहीं छुड़ा सका था) सितम्बर सन् हाल में मिस्टर लूई कुहनी के विना औषधि आरोग्यता प्रदान करने वाले कार्यालय में पहुंची। प्रथम ही स्नान के पश्चात् मुझे तत्काल एक प्रकार के सुख का अनुभव हुआ, और मेरी दशा में उन्नति होती हुई सी दीख पड़ी। ज्यों ज्यों मैंने स्नान जारी रक्खे और स्वाभाविक भोजन का सेवन किया, तो थोड़े सप्ताहों में ही मेरी दशा ऐसी सुधर गई कि मैं अपनी पहली दशा से भी कहीं अच्छी थी। अब पांच मास चिकित्सा करने के पश्चात् मेरी दृष्टि बहुत ही सुधर गई है। मेरी साधारण दशा ऐसी उत्तम हो गई है कि मैं बहुत आनन्द में हूँ और मैं अपने जीवनदान देने वाले का पूर्ण रीति से धन्यवाद करने के योग्य हूं। अब मैं भली प्रकार देख सकती हूं और अपने घर बार की देख भाल भी कर सकती हूँ। मैं पुष्ट हूं और काम करने में मुझे आनन्द आता है। मेरे पांव भी इतने अच्छे हो गये हैं कि मैं बिना कष्ट के चल फिर सकती हूं। बात क्या है कि मैं अपने आपको एक नई दशा में पाती हूं? मुझे यह सब बातें बड़ी प्रभावशाली, किन्तु साधारण रीती की चिकित्सा द्वारा प्राप्त हुई हैं। मेरे सारे कुटुम्बी यही चिकित्सा करते हैं और वैसी ही निश्चित सफलता प्राप्त होती है। मेरी अभिलाषा है कि सम्पूर्ण रोगी, पूर्ण विश्वास से, आपकी चिकित्सा करावें।

(मिसिज़) मेरी आर०

लिपज़िग।

---

६५ गठिया की पीड़ा।

प्यारे मिस्टर कुहनी !

मैं कर्तव्य की गहरी प्रेरणा से अपना हार्दिक धन्यवाद आपकी उस सहानुभूति के सम्बन्ध में प्रगट करना अपना सम्मान समझता हूं, जो आपने मेरे रोग में अपनी उत्तम सम्मति द्वारा दिखलाई है। मैं पिछले साल मई के महीने में बराबर गठिया की पीड़ा में ग्रस्त था और यद्यपि मुझे स्थान टेपलिटिज़ में आराम भी हो गया था, परन्तु नवम्बर के महीने में इस रोग का पुनः बड़ा कठिन आक्रमण हुआ। मुझे आरोग्यता प्राप्त होने की आशा न रही थी। ज्ञात होता था कि मेरे चिकित्सक ने सारी औषधियां वर्तलीं और वह कुछ सप्ताह तक मुझे देखने भी न आया। उसने मुझे सलाह दी कि केवल यही एक आरोग्यता का साधन है कि तुम दक्षिण देश में जाकर रहो। इस व्याकुलता की दशा में मेरी स्त्री ने आपसे सम्मति ली।

आपने कृपा करके अपनी सम्मति पत्र द्वारा दी। परन्तु भोजन के अतिरिक्त, आपकी सम्मति पर बलहीनता वा चलने फिरने की अयोग्यता के कारण पूर्ण रीति से न चल सका। फरवरी मास के आरम्भ में मैंने स्नान करने आरम्भ किये और स्वस्थ होने का सुअवसर दिखाई देने लगा। क्योंकि तीसरे ही स्नान के उपरान्त रोग के चिन्ह एक एक करके ऐसी रीति से प्रगट हुए कि यदि कोई मनुष्य आप की पुस्तक को पढ़कर पहिले से इसके लिये तैय्यार न हो तो बड़ी चिन्ता की दशा में हो जाय। पूर्ण विश्वास के होते हुये भी एक प्रकार का भय मेरे हृदय में भी उत्पन्न हो गया, परन्तु मुझे इसी कारण बड़ा आनन्द भी हुआ जबकि चौथे स्नान के पश्चात् मैंने अपने बांयें टखने के तनाव में एक प्रकार की न्यूनता देखी। मेरे मूत्र का रङ्ग गहरा गेहुंआ था, मेरी सम्पूर्ण पीड़ाओं के होते हुए भी मुझे प्रसन्नता हुई क्योंकि मुझे निश्चय होगया था कि मैं एक ऐसी चिकित्सा कर रहा हूं जो रोग की जड़ तक पहुंचेगी। निकृष्ट द्रव्य शरीर से एक बार फिर पीड़ा और जलन करता हुआ उसी प्रकार दूर होने लगा जिस प्रकार रोग के आरम्भ में जोड़ों और मांस के पट्ठों में एकत्रित होता गया था। चौदह दिन में मैं पुनः काम करने लग गया। मार्च महीने की बर्फीली वर्षा और वायु भी मुझे किंचित् हानि न पहुंचा सकी और उस समय से मैं बराबर प्रसन्न तथा स्वस्थ हूं। मोरन (एक वैद्य का नाम) के पास एक रोगी तो अवश्य घट गया परन्तु आपकी अमूल्य चिकित्सा रीति ने मुझे अपनी ओर मोहित कर लिया और अब मैं उसका प्रचारक बन गया हूं।

मैं सच्चे हृदय से आशा करता हूं और इच्छा रखता हूं कि आपकी आरोग्यता प्राप्त करने की प्राकृतिक चिकित्सा रीति अधिक विस्तृत हो और मनुष्य जाति को अत्यन्त सभ्यता (तहज़ीब) से फिर प्रकृति की ओर लौटा लाये।

आपका कृतज्ञ सेवक—जूलीयस ऐस०

राजकीय सनद रखने वाला अध्यापक।

---

६६ उदर पीड़ा, क्षुधा न लगना, चक्कर आना, हृदय को दोष, फेफड़ों का दोष, सर्वाङ्ग निर्बलता

सर्वजनों के समक्ष धन्यवाद

मेरी स्त्री जो अब ६१ वर्ष की आयु की है कई वर्ष से और विशेषतः सन् १८९० से चक्कर आ जाने के दौरों, उदर में कठिन पीड़ा, भूख न लगने और सर्वांग निर्बलता में ग्रस्त थी।

मैं यहां के राजकीय महाविद्यालय के औषधालय में अपनी स्त्री को १८९० ई० की शिशिर ऋतु में लाया था, डाक्टरों ने आमाशय और गुर्दों का दूषित होना बतलाया और विभिन्न औषधियें दीं, परन्तु मेरी स्त्री की दशा बराबर बिगड़ती ही गई।

जब इन औषधियों द्वारा निकम्मी चिकित्सा से डाक्टरों ने काक्स लिम्फ का टीका लगाना भी आरम्भ किया तो मैं अपनी स्त्री को चिकित्सालय से ले आया। चिकित्सा सन् १८९० के दिसम्बर तक होती रही थी।

फ़रवरी सन् १८९१ में मेरी स्त्री बहुत ही बलहीन हो गई। बार बार चक्कर आने लगे इसके कारण बड़ी चिन्ता हो गयी। निर्बलता ऐसी बढ़ी और पाचन-शक्ति ऐसी मंद हो गई कि कई सप्ताह तक शय्या से न उठ सकी।

डाक्टर एच H ने जुलाब देने की सम्मति दी और यह भी कहा कि यह पीड़ा हृदय की ख़राबी के कारण हुई है और यह असाध्य है। अतः उसने शीघ्र ही अपना आना-जाना छोड़ दिया।

अप्रैल सन् १८९१ में उदर में पीड़ा इतनी बढ़ी कि वह कुछ भी पचा न सकती थी बल्कि जो कुछ खाती थी उलट जाता था। उसके संग ही श्वांस लेने में बड़ी कठिनाई प्रतीत होती थी और छाती में पीड़ा थी, सम्पूर्ण शरीर में एक प्रकार की ख़राबी होगई थी। उस समय मैंने होम्योपैथी चिकित्सा की, परन्तु इस चिकित्सा के वैद्य ने भी कहा कि मेरी स्त्री का रोग असाध्य है। उसकी दशा में कोई भी उन्नति न हुई।

इस सम्पूर्ण चक्र के पश्चात् अपनी रुग्णा स्त्री के सौभाग्य से हम मिस्टर लुईकुहनी साहब के उस कार्य्यालय में जहां कि औषधियों व शस्त्रिक क्रिया के बिना चिकित्सा की जाती है, आये। मेरी स्त्री को यहां की सम्मतियों के अनुसार दो बार फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ तथा उसकी दशा के अनुसार भोजन दिया जाता था।

एक सप्ताह में ही उसके साधारण स्वास्थ्य में उन्नति हुई, उसकी पाचन-शक्ति ठीक हो गई और कुछ सप्ताहों में पीड़ा घट गई। चक्कर के दौरे और श्वांस लेने की कठिनाई वा अन्य दोष पूर्णतः जाते रहे। थोड़ा भोजन खाने पर भी उसका बल दिन प्रति दिन बढ़ता गया। बस मेरी स्त्री बिलकुल नीरोग हो गई। उसके पूर्ण प्रकार नीरोग हो जाने पर देखने वालों को बड़ा आश्चर्य हुआ। मुझे भी ज्ञात हुआ कि मेरी स्त्री की दृष्टि प्रथम की अपेक्षा इस चिकित्सा से अत्युत्तम हो गई। जो दो वर्ष में बड़े प्रसिद्ध चिकित्सकों से न हो सका वह महाशय कुहनी साहब के कार्य्यालय में आठ सप्ताह से कम काल में हो गया। हम सर्वदा महाशय कुहनी के कृतज्ञ रहेंगे, और रोगियों के लिये उनके इस दयार्द्र-भाव के लिये हम ईश्वर से उनकी वृद्धि के लिये अभिलाषी हैं। वह ऐसे वैद्य हैं जो निश्चित आरोग्यता देने और सहायता करने के योग्य हैं।

लिपज़िग गस्टव पी०

---

६७ नेत्र का असाध्य रोग, शिर की रगों में खराबी, हलक की कठिन जलन, मूत्राशय की जलन, पीठ में, और एक ओर की पीड़ा।

प्रियवर महाशय कुहनी!

मेरी हार्दिक कृतज्ञता मुझे आज्ञा नहीं देती कि मैं अपने नेत्र के कठिन रोग के शीघ्र निवारण हो जाने और उसके मार्ग ग्रहण करने की सत्य रीति को न कहूं। मैं आपसे निवेदन करता हूं कि आप इस लेख को जिस प्रकार चाहें बर्तें।

मैं बाल्यावस्था से ही नेत्रों के एक प्रकार की जलन में, जो शीतला के पश्चात् शेष रह गई थीं ग्रस्त रहा करता था। मैंने कई चिकित्सकों की वृथा सम्मति ली, क्योंकि रोग थोड़े काल के लिये दब जाता था परन्तु कुछ काल के उपरान्त सदा अधिक हीन दशा में प्रकट होता था। कैलोमल—पारे से बना हुआ मरहम और जिंकलोशन से भी कुछ लाभ न हुआ और जलन कम न हुई। इन वर्षों में मैंने प्रायः १० प्रसिद्ध चिकित्सकों की सम्मति ली होगी, परन्तु कोइ भी लाभ न हुआ।

इस काल में मेरी आंखें प्रतिक्षण दूषित ही होती गईं। इजिपशन आइडिजीज (ट्रैकोमा) हो गई, और मेरी दशा शोचनीय हो गई। मैं आरोग्यता की आशा से वियना देश में नेत्रों के चिकित्सालय में बोरिक एसिड, कास्टिक पोटाश, करोसिव सबलिमेंट आइडोफार्म आदि से छः मास पर्यन्त चिकित्सा कराता रहा परन्तु किञ्चिन्मात्र भी सफलता उपलब्ध न हुई। मेरे दाहिने नेत्र पर तीन बार शस्त्रिक क्रिया की गई और इनसे मुझे अत्यन्त कष्ट हुआ।

इन सम्पूर्ण बातों के होते हुए भी मेरी दशा प्रतिक्षण अधिक बिगड़ती गई, अन्त में जब डाक्टरों ने देखा कि वह कुछ नहीं कर सकते तो उन्होंने मुझे चिकित्सालय से बिदा कर दिया और यदि मैंने आपकी चिकित्सा न की होती तो मैं अवश्य अन्धा होगया होता। छः मास पर्यन्त आपकी सम्मतियों पर (अनुत्तेजक भोजन और फ्रिक्शन बाथ्ज) पूर्ण रीति से कार्य करके मैंने इसी चिकित्सा द्वारा आरोग्यता उपलब्ध की है।

चिकित्सा करने के समय केवल यही नहीं हुआ कि मेरे नेत्रों का रोग ही प्रति सप्ताह अवनति पाता रहा, किन्तु उसके संग ही मेरे शिर की नसों की पीड़ा भी, जिसमें कि मैं तीन वर्ष से ग्रस्त था, जाती रही। तदनन्तर मेरे कंठ की बड़ी जलन और मूत्राशय की क्रिया का दोष (जो मूत्राशय की औषधियों द्वारा चिकित्सा करने के पश्चात् रह गया था) सम्पूर्ण जाते रहे। इसके संग ही वह अत्यन्त कठिन पीड़ाएं पीठ और पसलियों में आठ वर्ष से प्लूरिसी (Pleurisy) के पश्चात् होने लगी थीं जाती रही थीं।

मेरा साधारण स्वास्थ्य अति उत्तम हो गया है। मैंने जब से आपकी चिकित्सा रीति पर अमल किया है उस समय से मेरा मस्तिष्क ऐसा तरोताज़ा हो गया है कि पहिले कभी भी न था।

मेरी इच्छा है कि बहुत से रोगी आपकी चिकित्सा रीति का सेवन करें, जिससे यह चिकित्सा जो वास्तव में सच्ची चिकित्सा है मनुष्य मात्र के ध्यान का दिन प्रति दिन पात्र बनती रहे।

ऐस-(ट्रान्सलवेनिया) आपका दास—

यूजिन के०

---

६८ फेफड़ों की जलन और सूजन, डिफ्थीरिया।

प्यारे महाशय कुहनी!

मेरी ९ वर्ष की छोटी कन्या की चिकित्सा में जो आश्चर्यजनक सफलता उपलब्ध हुई मैं उसके लिये अपना हार्दिक धन्यवाद निवेदन करता हूं।

मेरे कुल-वैद्य ने फेफड़ों की जलन व सूजन बताई और दो मास पर्य्यन्त उस बालिका की चिकित्सा करने पर, सफलता न हुई। मुझे और मेरी स्त्री को उस बालिका के आरोग्य होने की आशा जाती रही थी, और समझते थे कि यह अवश्य मर जायगी।

ऐसी दुर्दशा में मुझे आपका ध्यान आया। मैंने आपको एक पत्र लिखा और इच्छा प्रकट की, कि आप आवें। आपने कहा कि "यदि तुमको निश्चय हो और आपने कुल-वैद्य की चिकित्सा बन्द कर देनी हो तो बालिका थोड़े ही काल में आरोग्य हो जावेगी; इस शर्त पर कि तुम मेरी सम्मतियों पर चलो।" मैंने और मेरी स्त्री ने प्रतिज्ञा की और आपकी सम्मतियों पर कार्य किया, और फल यह हुआ कि दूसरे ही दिन बड़ा आराम प्रतीत होने लगा। एक सप्ताह व्यतीत होने पर हम यह कह सकते थे कि अब यह सम्पूर्ण आरोग्य है। आज दिन वह इधर उधर दौड़ सकती और हंस खेल सकती है। मैं सत्य कहता हूँ, कि यदि आप कृपा न करते तो मेरी बालिका आज क़बर में सोती होती।

इसी समय मेरे एक पुराने मित्र ने मुझे आ घेरा, अर्थात् उस भयानक रोग डिफ्थीरिया ने जिसमें कि मुझे १४ वर्ष पर्यन्त पहिले पीड़ित रहना पड़ा था आ दबाया। इस रोग ने मेरे पांच बच्चों को भी एक एक करके पीड़ित किया; परन्तु आपकी चिकित्सा से सब आरोग्य हो गये। मैं अपने हार्दिक धन्यवादों का यह लिखित निवेदन आपकी सेवा में प्रेषित करता हूं और आप से प्रार्थना है कि आप इस लेख को जब जब चाहें, काम में लावें।

आपका कृतज्ञ—

कार्ल आई०

लिपज़िग—

६९ आमाशय और आंतों की पुरानी जलन, स्नायु की खराबी, स्मरण शक्ति में निर्बलता, आत्म-घाती विचार।

प्यारे साहब !

मैं ऐसे आनन्द में हूँ कि आपकी सेवा में एक समाचार (रिपोर्ट) भेजूं। उन वृत्तान्तों से जो मैंने अपने रोग के विषय में आपकी चिकित्सा आरम्भ करने के पूर्व आपकी सेवा में भेजे थे, उनसे आपको मेरी दशा स्मरण आ जायेगी।

मुझे कठिन रोग था, पिछले चार वर्षों में मेरे स्नायु को भोजन की खराबी से अति हानि पहुंची थी। इससे अनुमान लग सकता है कि मुझे दो सप्ताह में तो क्या दो मास में भी पूरा आराम नहीं हो सकता था।

मेरी स्मरण-शक्ति ने बड़ी उन्नति की है और मैं बड़ा आनन्दित हूँ। आत्मघात का अब मुझे ध्यान नहीं आता और न अब मुझे शिर पीड़ायें ही हैं। यह बातें अब पूर्णतया जाती रहीं। मैंने आपकी सम्मति पर गर्मियों और जाड़ों में खिड़कियां खोलकर सोने का कार्य किया, और उससे अत्यन्त लाभ उठाया है।

आपको प्रतीत हो कि आपकी चिकित्सा रीति से मुझे अति लाभ हुआ है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरे समान बहुत से रोगी आप के चिकित्सालय में जायें। मैं निश्चय पूर्वक कह सकता हूं कि आपकी चिकित्सा रीति के छः मास के सेवन से जो फल उपलब्ध हुआ है, वह कई वर्ष में भी न मिलता। मैं आपके चिकित्सालय के लिये प्रत्येक प्रकार की सफलता चाहता हूं, और धन्यवाद देता हूँ।

आपका दास—

सेंट (मोरोविया) ह्यु गो बो०

(आस्ट्रिया का पोस्टमास्टर)

---

७० ऋतु का अनुरोध।

प्यारे मिस्टर कुह्नी !

आपको स्मरण होगा कि गत शिशिर ऋतु में मैंने आपको अपनी स्त्री के लिये लिखा था जो अगस्त मास के आरंभ में ऋतु-अनुरोध में ग्रस्त थी। मुझे अति भय था कि यह रोग मेरी स्त्री के लिये जानलेवा न हो जाय। मैंने दश अक्टूबर को आपकी सम्मति प्राप्त करने के लिये प्रार्थना की थी, और आपने उत्तर दिया था कि मुझे चिन्ता की आवश्यकता नहीं है, सब बात ठीक हो जायेंगी। आपकी चिकित्सा रीति के सेवन करने के पश्चात यह भविष्य-वाणी १९ मार्च सन् १८९४ को सत्य सिद्धि हुई। उस समय तक ९ मास से मेरी स्त्री को ऋतु नहीं आये थे।

इस समय पर एक बड़ी सफलता आपकी चिकित्सा रीति द्वारा उपलब्ध हुई। वास्तव में ऐसा फल सदा नहीं मिलता इस आश्चर्यजनक बात पर मैं पूर्णतया आल्हादित हूं; और अपना आनन्द आपके समीप प्रगट करता हूँ।

आपका दास—

कील। ऐच० ऐच०

---

७१ काली खांसी अर्थात् कुक्कुर खांसी।

प्रियवर महाशय !

मैंने अपने मित्रों की बारम्बार प्रशंसाओं से अपने तीन बालकों की दशा में जो एक ही समय इस रोग, अर्थात् काली खांसी में ग्रस्त थे आपकी चिकित्सा विधि का सेवन अद्भुत साफल्य के साथ किया। तीन दिन के भीतर ही उनका रोग निवृत्त हुआ। ऐ मिस्टर कुहनी ! मैं आपकी सेवामें अपना धन्यवाद निवेदन करती हूं। मेरी अभिलाषा है (और इसमें किंचितमात्र भी संशय नहीं कि ऐसी होगी) कि आपकी चिकित्सा-रीति अन्य रोगियों के लिये भी ऐसी ही फलदायक होगी और यह भी कि इस नवीन स्वाभाविक चिकित्सा रीति का मनुष्य जाति अधिकाधिक आदर करेगी।

आपकी दासी—

लिपजिग। थैरेसे बी०

---

७२ सर्वांग बलहीनता, भूख का न लगना।

प्रियवर महाशय !

मैं अत्यन्त आनन्द सहित उस उत्तम सफलता का जो मुझे इस समय पर्यन्त आपकी लिखित सम्मतियों के अनुसार अपनी कन्या की चिकित्सा में उपलब्ध हुई है वर्णन करता हूं। आरम्भ के कुछ फ्रिक्शन हिप बाथ के सेवन से ही एक प्रत्यक्ष सफलता प्रतीत हुई। शरीर का आलस्य जाता रहा, क्षुधा फिर से लगने लगी, अजीर्ण दूर हुआ, और आपकी चिकित्सा प्रयोग करने के समय से त्वचा पीतवर्ण की अपेक्षा, शनैः शनैः अच्छी गुलाबी होने लगी।

मैं बारम्बार धन्यवाद करता हूँ।

आपका सेवक—

क्लीनफ़ाक। एफ़० बी०

---

७३ गठिया, जिगर का रोग, अर्श के मस्से ।

प्रियवर महाशय कुह्नी !

मुझे आपकी चिकित्सा द्वारा आरोग्यता प्राप्त किये दो वर्ष बीत चुके हैं। उस समय से किसी प्रकार की खराबी नहीं हुई है। अतः मैं अपने विचार से तथा उन मनुष्यों के विचार से जो मेरे रोग के दिनों की और प्रस्तुत दशा को जानते हैं मानो एक चलते हुए अचम्भे के समान हूं। आप जानते हैं कि मैं कैसी शोचनीय अवस्था में पहिले आपकी सेवा में आया था। मैं अपनी सम्पूर्ण आयु भर कभी भी नीरोग नहीं रहा। गठिया, जुकाम और हर प्रकार के अन्य दोष मुझे वार २ सताते रहे। तत्पश्चात् अर्श के मस्सों के कारण तथा जिगर के रोग के दोषों से, दश वर्ष तक होम्योपैथ तथा "ऐलोपैथिक" डाक्टरों से चिकित्सा कराता रहा। ऐलोपैथ डाक्टर जिसकी सम्मति ली गई वह वान महाविद्यालय का एक प्रोफेसर था। मैं उस समय ऐसा रोग में ग्रस्त हुआ कि अपना काम करने के भी अयोग्य हो गया था, अथवा यों कहो कि जीवन से हाथ धो बैठा था। मेरी दशा में आपकी चिकित्सा रीति की आश्चर्यजनक सफलता से और रोगियों को भी आपकी शरण में आने की अभिलाषा हुई, और उन्होंने भी सफलता उपलब्ध की। मैं उन अनुग्रहों का धन्यवाद जो आपने मुझ पर व मेरे कुटुम्बियों पर किये हैं प्रथम ही आपकी सेवा में निवेदन कर चुका हूं। इस पत्र का केवल यह आशय है कि आप इस शुभ कार्य्य के व अन्य असंख्य रोगियों के लाभार्थ मेरी इस आरोग्यता की रिपोर्ट को जितना हो सके प्रकट करें। मैं उन सफलताओं को, जो आप के स्नानों के सेवन व स्वाभाविक रीति से जीवन व्यतीत करने से मेरे व अन्य कुटुम्बियों में उपलब्ध हुई हैं, और जिनके देखने का मुझको अवसर मिलता है, और भी अधिक वर्णन कर सकता था, परन्तु ऐसा करने से मैं बहुत दूर निकल जाता हूं। मेरी आयु अब ५१ वर्ष की है, और इस १२५००० मनुष्यों की बस्ती में ऐवेंजलीकल मिशन का मुख्य अधिष्ठाता रहा हूं अतः विशेष वृत्तान्त विस्तार पूर्वक हर समय मिल सकता है। बड़े आदर भाव से—

आपका चिरकृतज्ञ—

बारमेन । अर्निस्ट एफ०

---

७४ आमाशय की खराबी, स्नायु का रोग, कोष्ठबद्ध अर्थात् कब्ज ।

मैं आपका अति कृतज्ञ हूं क्योंकि आपने अपनी बिना औषधि व शस्त्रिक क्रिया बिना चिकित्सा रीति द्वारा मुझे आमाशय वा स्नायु के रोग, जो मुझे छः वर्ष से पीड़ित कर रहे थे, बचाया। आपने पांच दिन में वह कर दिखाया जो प्रसिद्ध चिकित्सकों वा

समग्र औषधियों से न हो सका था। अब पाखाना यथार्थ रीति से आता है। पहले सर्वदा पिचकारी लगानी पड़ती थी।

लेखक—

वी पश्चिमी प्रशिया। जैड० अध्यापक।

———

७५ स्नायु का रोग

प्रियवर मिस्टर कुह्नी !

मेरी आन्तरिक अभिलाषा यह है कि मैं अपनी हार्दिक अवस्था प्रकट करूं। आप की चिकित्सा रीति, उन सम्पूर्ण चिकित्सा रीतियों से जिनमें कि औषधियों का सेवन है और जिनसे (जैसा कि बहुत सी घटनाओं से सिद्ध होता है) रोगी मनुष्य "साइंटिफिक" अर्थात् (वैज्ञानिक) मनुष्यों के हाथ से भी बड़ी पीड़ा व दुःख उठाते हैं, अमूल्य है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी दशा में व अपने परिवार में यह देखने का अवसर अवश्य मिला होगा। इस घटना को देखकर, यदि फिर भी अपनी बात या पक्षपात के कारण जान बूझकर नेचर (प्रकृति) के विरुद्ध चलना और अपने वा अपने प्यारों के जीवन को नित्य प्रति भय में डालना, मानो जानते हुए आंखें बन्द कर लेना है। मैं इस पत्रिका को बिना इस बात के जो मैंने बारम्बार निवेदन की है समाप्त नहीं कर सकती के रोग को निवारण करने की जो रीति आपने मालूम की है वह निश्चय एक बड़े बुद्धिमान के विचार का फल है। और मेरी यह सम्मति केवल इस कारण से नहीं कि मैं प्रथम ही से इसको अच्छा समझती थी, बल्कि वर्षों की परीक्षा और उत्तम सफलता ने जो आपने मेरे परिवार की चिकित्सा में दिखलाई है मेरी यह सम्मति स्थिर कराई है। हम निस्सन्देह यह कह सकते हैं कि आपने मेरी बहिन को मृत्यु से बचाया। मैं ईश्वर का धन्यवाद करती हूँ कि सौभाग्यवश जितने समय मैं लिपजिग में रही, और इस काल में मैंने जो कुछ भी प्राप्त किया, उस सब में आपके परिचय को मैं अत्यन्त अमूल्य समझती हूं। आपकी दया दृष्टि से मेरे बालक जो भिन्न भिन्न रोगों में ग्रस्त थे अल्पकाल में ही नीरोग हो गये। आप निश्चय रक्खें कि मैं जहां कहीं रहूंगी आपको सदैव धन्यवाद देती रहूंगी और आपके नियमों का दृढ़ता से प्रचार करूंगी।

आपकी दासी—

वियना। मिसिज़ ओलगा एल०

———

७६ गठिया का दर्द।

प्यारे महाशय !

मैं इस बात की सत्यता बड़े आनन्द से प्रगट करता हूं कि आपके स्टीम बाथ और फ्रिक्शन हिप बाथ के प्रयोग से मेरा, गठिया का रोग जाता रहा; केवल दो ही स्नानों

के पश्चात् मैं अपने पैरों से चलने के योग्य हो गया। मैं गठिया के रोगियों से आपके स्नानों की पूर्ण रीति से सिफ़ारिश कर सकता हूं।

आपका दास—

लिपज़िग। जी० ई०

---

७७ बेकार भुजा।

मेरा सब से छोटा लड़का आगस्ट वान बी, साढ़े १२ वर्ष की आयु का था जो मेरे पहिले पति से था। उसने दिसम्बर सन् १८८६ के आरम्भ में अपने दाहिने हाथ में अत्यन्त पीड़ा और भारीपन का अनुभव किया। शीघ्र ही रोग ऐसा बढ़ा कि वह अपने हाथ और भुजा से काम लेने के अयोग्य हो गया और उसको अपनी भुजा स्लिङ्ग में लटका कर रखनी पड़ती थी। बहुत सी चिकित्साएं करने पर भी कुछ लाभ न हुआ था। दैवयोग से मैंने मिस्टर कुहनी की चिकित्सा की प्रशंसा सुनी कि उन्होंने इस प्रकार के रोगियों को आरोग्य कर दिया है। अतः मैंने अपने बालक को उनके सुपुर्द किया। मैं उनकी सम्मतियों पर पूर्ण रीति से चली।

यद्यपि समय तो बहुत लगा, और हमारे धैर्य की भी इसमें परीक्षा हो गई परन्तु अन्त में उस बालक के कष्ट-साध्य रोग में एक प्रकार का परिवर्तन भलाई की ओर दीख पड़ा। फ्रिक्शन हिप, सिटिज़ बाथ और अनुत्तेजक भोजन का (आपकी सम्मति अनुसार) सेवन करने से निकम्मी भुजा ही आरोग्य नहीं हुई किन्तु अत्यन्त मन्द पाचन शक्ति, और क्षुधा भी यथावत् हो गई।

हस्ताक्षर—

ड्रेसडेन। एडली के०

लैफ़्टीनेन्ट कर्नल, के० की स्त्री।

---

७८ उदर की सख्त खराबी, प्रदर

प्रियवर महाशय जी !

मेरी इच्छा है कि आपकी उस चिकित्सा के लिये जिसमें मुझे आरोग्यता प्राप्त हुई है आपको हृदय से धन्यवाद दूं। मैंने वर्षों पर्यन्त बड़े प्रसिद्ध प्रसिद्ध चिकित्सकों की सम्मति ली, किन्तु लाभ से अधिक हानि ही हुई। इन सब लोगों ने शस्त्रिक क्रिया कराने पर हठ किया, परन्तु अब मैं आपकी सहायता द्वारा बिना किसी शस्त्रिक-क्रिया के आरोग्य हो गई हूं। मैं उन उत्तम सफलताओं का जो मैंने अपने रोगों में उपलब्ध की हैं प्रत्येक स्थान पर वर्णन करूंगी और यह भी दर्शाऊंगी कि डाक्टरों वा शस्त्रिक-क्रियाकी सहायता के बिना किस प्रकार आरोग्यता का होना सम्भव है।

आपकी कृपा के लिये मैं पुनः एकबार आपको हृदय से धन्यवाद देती हूँ ।

मैं हूं आपकी दासी—

लिपजिग । मिसिज ई० एल०

---

७६ पाचन शक्ति की खराबी ।

प्रियवर महाशय !

मैं चाहता हूँ कि अपनी स्त्री की ओर से स्नान के नुसखे के लिये आपका धन्यवाद करूं । चार वर्ष पर्यन्त मेरी स्त्री का स्वास्थ्य बहुत ही बुरा रहा । इस काल में एलोपैथिक व होम्योपैथिक डाक्टरों से किंचित् मात्र भी लाभ न पहुंचा और मृत्यु उसके सन्मुख दीख पड़ती थी । हमने ऐसे नैराश्य में आप से सम्मति ली । अब साढ़े पांच मास की चिकित्सा के पश्चात् मेरी स्त्री बिलकुल नीरोग और बलवती हो गई । आपकी सेवामें आने से पहिले उसका वजन १०५ पौंड था अब १२६ पौंड है ।

शुभ कामनाओं तथा धन्यवाद सहित

आपकी हितैषी—

कार्चिग्न-ज़ोवरलूसेटिया । टी० डबल्यू०

---

८० सुगमता से गर्भ स्थिति, वा बालक जनना ।

मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं आपकी सेवा में निवेदन करूं कि वह चिकित्सा जो आपने अपनी पत्रिका द्वारा निश्चित् की थी बड़ी ही सफल सिद्ध हुई । इस समय पर्यन्त मेरी स्त्री चार बार बालक उत्पन्न कर चुकी है । पहली बार अत्यन्त कठिनाई हुई, दूसरी बार जर्राही चीमटी का प्रयोग किया गया, तीसरी और चौथी बार में पहिले से ही आपकी चिकित्सा की गई । इसका प्रभाव अच्छा हुआ । दोनों बार बच्चा सुगमता से पैदा हुआ । मैं अपनी स्त्री की ओर से हार्दिक धन्यवाद देता हूँ । निस्सन्देह ऐसा फल धन्यवाद देने के योग्य है क्योंकि बालक जनने में कठिनाई होना बुरा है ।

आपका हितैषी—

म्यूनिच । जार्ज एम० ।

---

८१ नुकरस अर्थात् गोट ।

प्यारे महाशय !

मैं इस चिट्ठी द्वारा आपको चिकित्सा के लिये अपना हार्दिक धन्यवाद निवेदन करता हूं । मेरा रोग इतने समय का पुराना था कि (पाठशाला में पढ़ने के समय से

इसका आरम्भ हुआ था) मुझे इसके ठीक होने की कम ही आशा थी। १२ वर्ष की आयु में भी मेरे पांव के अंगूठे में पीड़ा होती थी जो कि बढ़ते बढ़ते नुक़रस हो गई। कई वर्ष तक मेरी दशा बराबर ख़राब और असहनीय होती गई विशेष कर इस कारण से कि जितने वैद्यों से सम्मति ली गई वह मेरी कुछ भी सहायता न कर सके। मेरे हाथ और पांव के जोड़ सूख कर ऐसे कड़े होगये कि मैं उनसे काम नहीं ले सकता था। डेढ़ वर्ष पर्यन्त मेरा जीवन बड़े नैराश्य से व्यतीत हुआ क्योंकि मैं हिलजुल भी नहीं सकता था। कष्ट का सहना यों और भी कठिन होगया था कि कोई चिकित्सक भी मुझे आराम न दे सका। मैं साधारण से साधारण काम भो नहीं कर सकता था और भोजन भी कोई दूसरा ही मनुष्य खिलाता। मैं नये जन्मे हुये बालक के समान विवश था।

छः मास हुये कि आपकी चिकित्सा आरम्भ करते ही मेरा रोग घटने लगा। दो तीन सप्ताह में मेरी टांग पांव ऐसी सुगमता से मुड़ने लगे कि मैं अपने अङ्गों को हिलाने और चलने फिरने के योग्य होगया। मेरे हाथ और अंगुलियां जो बुरी तरह से मुड़ी और सूजी हुई थीं प्रति दिन अति नर्म व ठीक होने लगी हैं।

केवल वही मनुष्य, जिन्हें मेरी पिछली निकृष्ट–दशा ज्ञात है, मेरी उस कृतज्ञता को, मैं जो लिखते समय अनुभव करता हूं, विचार में ला सकते हैं।

आपका शुभचिन्तक—

लिपजिग। एमिल डबल्यु०

———

८२ हलक का पुराना रोग।

मैं इस लेख द्वारा इस बात की सत्यता प्रमाणित करने की प्रार्थना करती हूं कि मिस्टर कुह्नी लिपज़िग के वैद्य ने मेरे (कण्ठ) हलक़ के दारुण रोग को (इस कण्ठ रोग को एक प्रसिद्ध चिकित्सक दूर नहीं कर सकता था) आराम कर दिया। मैंने दो वर्ष पर्यन्त उनके बतलाये हुए स्नानों का सेवन किया और उनसे अब ऐसी प्रफुल्लता ज्ञात होती है कि मैं गान विद्या की तीस संथा प्रति सप्ताह बिना थके हुए दे सकती हूं।

क्लेरा सी०

लिपजिग। सङ्गीत विद्या की अध्यापिका।

———

८३ शिर पीड़ा, मूर्छा के दौरे, कंठ रोग।

प्रियवर महाशय कुह्नी!

आपकी आश्चर्यजनक चिकित्सा रीति द्वारा शिर पीड़ा, मूर्छा के दौरे व कंठ रोग

से मुक्त हुआ। इसके बदले में मैं अपना कर्त्तव्य समझती हूं कि श्रेष्ठ फल के निमित्त अपना हार्दिक धन्यवाद इस लेख द्वारा आपकी सेवा में भेजूं। मैं यह अभिलाषा रखती हूं कि दयामय परमात्मा की कृपा से रोगियों की सहायता के निमित्त आप चिरंजीव रहें।

मैं हूं आपकी सेविका—

लिपजिग। केरोलीन के०।

---

८४ अपस्मार अर्थात् मृगी।

मैं बड़ी प्रसन्नता से इस बात को प्रमाणित करता हूं कि मिस्टर कुहनी ने (जो फ्लास स्टेज़ लिपज़ग में बने हुए कारखाने के मालिक हैं) मेरे गोल्ले नाम के एक शिष्य बालक के कष्टसाध्य मृगी के रोग को हाइड्रोपैथी अर्थात् जल की चिकित्सा से निर्मूल कर दिया।

मृगी के दौरे कई कई वार हुवा करते थे, और वाह्य चिन्हों से यह दौरे पागलपन के दीख पड़ते थे। आपकी चिकित्सा करने के समय से उसे कोई दौरा नहीं पड़ा और अब उसका रङ्ग रूप नीरोग पुरुषों का सा हो गया है।

मैंइस बात का निवेदन विशेष प्रकार से करना चाहता हूं (चाहे वह मिस्टर कुहनी की इच्छा के विरुद्ध ही क्यों न हो) कि चार मास की चिकित्सा में मिस्टर कुहनी ने यही नहीं कि उससे कोई फीस नहीं ली किन्तु उस बालक की विधवा माता मिसेज इडा गोले की रुपये पैसे से भी सहायता की जिससे वह अपने बालक की सेवा भली भांति कर सके। मिसेज गोल्ले के अतिरिक्त केवल मुझे ही अब तक इस बात का ज्ञान है।

वह मनुष्य जो रोगियों की इस प्रकार, अपनी हानि सहन करके भी चिकित्सा करे निस्सन्देह वह ऐसा मनुष्य है जो सब प्रकार से रोगियों का सच्चा मित्र होगा।

ई० एच०।

लिपजिग।

---

८५ रीढ़का टेढ़ापन, स्नायु की ख़राबी।

प्यारे मिस्टर कुहनी!

मैं हार्दिक सन्तोष से यह निवेदन करता हूं कि अपने पुत्र के रीढ़ के टेढ़ेपन और अपने स्नायु के रोग की चिकित्सा करके जो जो लाभ मुझे हुए हैं उससे मैं बहुत सुखी हूं।

छः मास परीक्षा करने के उपरान्त हम आपकी चिकित्सा को पूर्ण विश्वास से

कर रहे हैं। जब भी कभी मुझ से पूछा जाय तो मैं इसी प्रकार कहने में किंचित्मात्र भी संकोच न करूंगा।

आपको अधिकार है कि आप मेरे इस लेख को जिस प्रकार चाहें काम में लावें, शुभ कामनाओं सहित—

आपका दास—

चोभर। चो०, जहाज का अफ़सर।

---

८६ इनफ्लूऐन्जा, चित्त व्याकुलता, घबराहट, निद्रा का अभाव।

प्यारे मिस्टर कुह्नी !

मैं धन्यवादों से पूरित होकर उस अमूल्य कृपा के निमित्त, जो आपने मेरे पति के कठिन रोग की दशा में की है, आपकी उत्तम चिकित्सा रीति के सुखकर प्रभाव को स्वीकार करने में मौन नहीं रह सकती।

दिसम्बर मास १८९३ के मध्य में मेरे पति इनफ्लूएन्जा के रोग में ऐसे ग्रस्त हुए कि हमको बड़ा भय हो गया। उनके मस्तिष्क पर इतना प्रभाव पड़ा कि उनकी विचार शक्ति पर अन्धकार छा गया था। हम पूरे पन्द्रह दिन पर्यन्त प्रतिदिन बढ़ती हुई उनके चित्त की व्याकुलता और स्थाई घबराहट देखकर बहुत भयभीत हुए, और हमें रोगी की दिन रात देख भाल करनी पड़ी हम लोगों को बड़ी चिन्ता हो गई थी। मेरे पति के चिकित्सक ने कहा कि अब कुछ नहीं हो सकता और चिकित्सा छोड़ देने की सम्मति दी। उस समय उन अपने मित्रों के हठ पर, जिनको कि आपकी चिकित्सा रीति के आश्चर्यजनक प्रभाव का पूर्ण निश्चय था। मैंने अपने पति के लिये आपकी सम्मति ली। प्रथम के पांच स्नान आपने कृपा करके स्वयम ही दिये थे। इस कारण आपको इस बात के देखने का अवसर मिला है कि प्रथम ही स्नान के उपरन्त यथोचित शान्ति मिली और दूसरे स्नान के उपरान्त उन्हें नींद आ गई, जो कि पन्द्रह दिन से नींद लाने वाली औषधियों से भी न आई थी। प्रत्येक स्नान के उपरान्त ऐसे चिह्न प्रगट हुए कि जिनसे ज्ञात होता था कि ज्ञान-शक्ति आती जाती है। प्रति घंटा मस्तिष्क तथा शरीर अधिक साफ़ होता चला गया और चार दिन के पश्चात् चैतन्यता ऐसी आश्चर्यजनक जाग्रत अवस्था में आ गई कि मानो कोई मनुष्य स्वप्न से उठा है। ईश्वर का धन्यवाद है कि आज दिन तक कोई कष्ट नहीं हुआ।

मैं पहले संशयों से भरी हुई थी, परन्तु अब स्वीकार करती हूं कि निस्सन्देह आपकी चिकित्सा ने एक करामात कर दिखाई। मैं उन चिन्ताओं और व्याकुलता के लिये जिनसे आपने मुझे छुटकारा दिलाया है अपना हार्दिक धन्यवाद आपकी सेवामें निवेदन करती हूं।

ऐ प्यारे मिस्टर कुहनी ! मेरा पति यह समझता है कि आपही ने उसको जीवन दान दिया है । वह भी मेरे समान ही आपके और आपकी अमूल्य चिकित्सा के कृतज्ञ और आभारी हैं । मेरे पति की ओर से प्रणाम पहुंचे ।

आपकी दासी—

ड्रेसडेन । क्लाथेन्ड डब्ल्यू० ।

---

८७ कठिन शिर पीड़ा ।

प्रियवर मिस्टर कुहनी !

मैं अपनी शिर पीड़ा से आरोग्य हो जाने के कारण जो पन्द्रह दिन पर्यन्त रही थी और जिसने मेरे प्रिय जनों को बड़ी चिन्ता में डाल दिया था, आपको अपने अन्तःकरण से धन्यवाद देता हूँ । बाल्यावस्था से ही मुझे शिर पीड़ा हुआ करती थी । कई वर्ष पर्यन्त प्रति मास में एक बार २४ घन्टे तक अत्यन्त पीड़ा रहा करती थी, और पिछले डेढ़ वर्ष में तो मुझे प्रति सप्ताह पीड़ा होती रही है । तीन सप्ताह बीते कि दश से चौदह दिन तक मेरा शिर ऐसा ख़राब रहा कि मुझे निश्चय ही यह भय हुआ कि मेरे सम्पूर्ण दिमाग़ (मस्तिष्क) में ऐसी कठिन सूजन है, जिससे मेरे शिर के बायीं ओर, और मेरे नेत्रों पर बड़ा कुप्रभाव हुआ है। मेरी आंखों में पीड़ा थी और वे बहुत बिगड़ गई थीं । ऐसी निकृष्ट दशा में आपके पहले स्नान से मेरा कष्ट पांच मिनट में ही दूर हुआ । और अब मैं ऐसा हृष्ट-पुष्ट होगया हूं कि भली भांति चल फिर सकता हूँ। यह प्रतीत होता है कि मानों मैंने नये सिरे से जीवन पाया। यद्यपि अब मेरी आयु ५२ वर्ष की है, स्नान करते समय मैं तख्ते पर नहीं बैठता बल्कि शीतल जल के अन्दर बैठता हूँ ।

इस तरह बैठने के पश्चात् मैंने आपकी सम्मतियों पर जो मुझे बड़ी प्यारी लगती हैं उपयोग किया है । पांच मिनट में ही चूतड़ गर्म हो जाया करते थे और स्नान करने की कार्यवाही में (जिसमें करीब २० मिनट लगते थे) गर्मी बढ़ती जाती थी। तदनन्तर मैं १५ मिनट टहला करता था । अब मुझे ऐसा करते हुए १२ दिन हो चुके हैं, प्रभाव सर्वदा अच्छा रहा है। सम्पूर्ण देह वा शिर में एक शांति सी प्रतीत होती है । मैं आपका बहुत ही कृतज्ञ हूं केवल धन्यवाद ही देना नहीं चाहता बल्कि अपने पड़ौसियों और आस पास के समस्त मनुष्यों को आपकी इस नवीन चिकित्सा विद्या से जानकारी कराना चाहता हूं । यदि आप छोटी-छोटी पुस्तकें छपवाएं तो मैं उनको सम्पूर्ण रोगियों में बांट कर आनन्द प्राप्त करूंगा । मैं आपकी सेवा के लिये उद्यत हूं ।

आपका दास—

जी० ए० एल० ।

ब्रिनजिन ।

---

८८ सुगमता से गर्भस्थिति, तथा सुगमता से बालक जनना

प्यारे मिस्टर कुहनी !

मैं अभी यात्रा से आई हूं, आपकी जुबली की सूचना पाकर अपने हार्दिक धन्यवाद आपकी सेवा में समर्पित करती हूं। पूरा एक वर्ष बीता कि मैं लिपज़िग में थकी, मांदी और बुरी दशा में पहुंची थी। परमात्मा के अतिरिक्त मेरा विश्वास केवल आप ही पर था। संसार के बड़े-बड़े प्रसिद्ध जल के स्थानों में फिर आने और बड़े-बड़े विख्यात चिकित्सकों से सम्मति लेने के उपरान्त आपकी साधारण चिकित्सा के केवल तीन सप्ताह के सेवन से ही मुझे ऐसा लाभ प्राप्त हुआ कि मैंने प्रण करलिया है कि आपकी चिकित्सा सेवन को प्रचलित रक्खूं। जाड़े की ऋतु में जबकि कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था और मैं गर्भ से थी मैंने आपकी सम्मति के अनुसार जीवन व्यतीत किया था। प्रति दिन दो फ्रिक्शन सिटिज़बाथ लिये। बड़े सौभाग्य की बात है कि प्रसव सुगमता से और भय रहित हुआ। गर्भ के सम्पूर्ण समय में एक बार भी चित्त नहीं घबराया। यह अति आश्चर्य्य की बात है कि पहिले दो बालकों को दुग्ध पिलाने के लिये दाई नौकर रखनी पड़ती थी क्योंकि मेरे दुग्ध नहीं उतरता था, अबकी बार मैं बड़ी भाग्यवती हूँ कि इस बालक को अपना दुग्ध पिलाती हूं और दुग्ध के बिना जई के आटे की गाढ़ी लपसी भी देती हूं।

मैं प्रत्येक सन्ध्या को उसे एक हिप बाथ पांच मिनट का देती हूँ, कारण यह कि उसका पेट बहुत बढ़ा हुआ है। मैं प्रातःकाल को ८८ अंश फ़ारेन हाइट की गर्मी के जल में उसे स्नान कराती हूं, और शीतल जल से उसके सम्पूर्ण शरीर को धो डालती हूं। मेरी इच्छा है कि आप उसको तनिक देखें, अब वह तीन मास का है, परन्तु निस्सन्देह एक पुष्ट और आरोग्य बालक है। वे ही मनुष्य जो पहिले मेरी चिकित्सा पर हंसते थे अब स्वीकार करते हैं कि मैं अपनी वास्तविक आयु से दश वर्ष तरुण प्रतीत होती हूं। मेरा वालक और मैं आरोग्यता की मूर्ति हैं।

रोलिजो में बारह कुटुम्ब ऐसे हैं जो आपकी चिकित्सा रीति को बड़े दृढ़ विश्वास से करते हैं। मेरी बहिन जो उस समय मेरे साथ लिपज़िग में थी और गर्भवती थी उसने मेरे समान जीवन व्यतीत नहीं किया, बल्कि मांस आदि खूब खाती रही। उसको बालक जनने में अति कठिनाई हुई। उसका वालक धाय को सौंपा गया और वह स्वयं भी बहुत रुग्ण रही। उन पुरुषों से जिनको कि आपकी चिकित्सा रीति पर तनिक भी सन्देह है मैं इस प्रकार कहती हूँ, कि मिस्टर कुहनी पर विश्वास करो, उस पर ईश्वर की दया है। आपकी जुबली (५० वीं साल गिरह) के समय पर मैं यह लेख भेजती हूं ताकि आपको प्रमाणित हो जाय कि ईश्वर के बाद मैं आपकी कैसी कृतज्ञ हूं और

यह भी कि मैं आप के शिष्यों में से कैसी पुरुषार्थिनी शिष्या हूं।

मैं हूं, आपकी और आपके कुटुम्बियों की शुभचिंतका—

जोलीचो। सी० बी०।

---

८९ जिगर का रोग, जिगर की पथरी, व्याकुलता के कारण शिर में पीड़ा, उदर रोग।

प्रियवर!

आपको अवश्य स्मरण होगा कि मैं २४ जून से १३ जोलाई तक आपके चिकित्सालय लिपज़िग नगर में चिकित्सा के लिये रहा था और आपको यह भी ज्ञात है कि मैं जिगर के रोग और जिगर की पथरी में ग्रस्त था। जब मैं आपसे बिदा हुआ तो पहिले को अपेक्षा मेरी दशा उत्तम थी। इस कारण आपको आशा थी कि चिकित्सा करते रहने पर मैं शीघ्र आरोग्य हो जाऊंगा। यहां आने के कुछ दिन पश्चात् मुझे फिर कठिन पीड़ायें हुईं, और दो खंड जिगर की पथरी के और निकले। पीड़ा के समय मैंने कुछ हिप बाथ लिये, जिनसे अति लाभ हुआ। उस समय से सब बातें उत्तम रही हैं, और मैं बिना आलस्य के सम्पूर्ण दिन काम कर सकता हूँ। यहां के लोग मेरी दशा को एक आश्चर्य समझते हैं अतः मैं आपका पूर्ण धन्यवाद करता हूं। मेरी दशा में आपकी चिकित्सा रीति की सफलता से एक निर्धन विधवा ने जो वर्षों से उदर-रोग, गंठिया के कारण शिर पीड़ा और व्याकुलता में ग्रस्त हो रही थी, आप की चिकित्सा रीति की परीक्षा का दृढ़ प्रण किया है। उसको चिकित्सा करने वाले ने उसके रोग को केवल मानसिक ही बतलाया है। उस स्त्री ने आप की पुस्तक 'दी न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग' को पढ़ा था और दो तीन फ्रिक्शन सिटज़ बाथ्ज़ प्रति दिन लिये थे। उसका उदर बहुत बढ़ा हुआ था, अतः पन्द्रह दिन में ही यह बात ज्ञात हो गई कि वह कैसी दुर्बल हो गई है, वह कहती थी कि उदर की पीड़ाएं तो लगभग जाती रही हैं।

आपका दास—

बालमार्स्टिन। ऐल० एस०।

---

९० दमा, श्वांस, बवासीर, कण्ठ की जलन।

प्रियवर मिस्टर कुहनी!

मैंने आपको पिछले अक्तूबर के अन्तिम भाग में सम्मति के लिये लिखा था। आपका उपयोगी उत्तर ३ नवम्बर का लिखा हुआ पहुंचा। अब मैं इस लेख द्वारा आरोग्यता की रीति से, जो उसने ग्रहण की सूचना देना चाहता हूं। मेरी स्त्री

यथावत् छः मास से प्रति दिन फ्रिक्शन सिटिज़ बाथ और कभी-कभी अधिक भी लेती रही और गर्म-फ्रिक्शन-हिप-बाथ * और स्टीम बाथ बारी-बारी से लेती रही है।

वह बिना छने हुए आटे की रोटी और सेव खाती है। शाक और शीघ्र पचने वाले भोजन भी कभी कभी लेती है। वह खिड़कियां खोलकर सोती है और मैदान में अधिक देर तक रहती है। वह प्रथम की अपेक्षा अब स्वस्थ ज्ञात होती है। चिकित्सा के आरम्भ के मासों में उसकी योनि के निकट बड़े-बड़े छाले पड़ गये थे और मवाद निकल जाने के पश्चात् फिर भर गये। पेडू पर भी एक फोड़ा हो गया था, जिस से अति घृणित और दुर्गन्धित मवाद निकलता था। अति पीड़ा देने वाली दमे की खराबी और बवासीर जाती रही है। अब मेरी स्त्री को टहलने से कुछ कष्ट नहीं होता और निस्सन्देह अब उसका रूप बदल गया है। उसको फ्रिक्शन सिटिज़ बाथ्ज़ लेने के पश्चात् सदैव अति शीत लगा करता था, और स्वाभाविक रीति से स्वेद बहुत ही कम आता था। अब शीत का लगना कम हो गया है। उसको नीरोगियों जैसी क्षुधा भी लगती है और उसकी पाचन शक्ति ने भी पर्याप्त उन्नति की है; और जो कुछ वह खाती है वह शरीर का अंश बन जाता है। मुझे इस चिकित्सा के करने से बड़ी शांति है, और अब इस बात की पुष्टि होती है इस चिकित्सा से निस्सन्देह सफलता प्राप्त होती है, यद्यपि शनैः शनैः पहिले सम्पूर्ण रोग पुनः प्रकट होते हैं, लेकिन न्यूनता से।

मैंने फ्रिक्शन सिटिज़ बाथ स्टीम बाथ अपने साढ़े तीन वर्ष की आयु के बालक को जो कण्ठ की जलन में ग्रस्त था दिये, और अत्युत्तम सफलता उपलब्ध की। मैं बड़े ज़ोर से इस बात की सत्यता को प्रगट करता हूं कि आप की चिकित्सा ही सत्य है।

अनेक धन्यवाद सहित आपका हितचिंतक—

हम्सडोरफ़। **पी० एस० अध्यापक।**

---

९१ गठिया, फूले हुए पांव।

प्रियवर मिस्टर कुहनी !

मैं अपने भयानक रोग से शीघ्र छुटकारा पाकर आपको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकती। आपके सादा सिटिज़ बाथ ने तीन मास में मुझे भयानक रोग से बचा दिया। मुझे चिरकाल से हाथ और पांओं की गठिया थी; हाथों की हड्डियां ऐसी

* यह स्नान ६८ से ८० अंश फारेनहाइट की गर्मी के जल में लिया जाता है। शीत प्रधान देशों में ८० से ८१ अंश का जल गर्म प्रतीत होगा। गर्म फ्रिक्शन हिप बाथ से यह न जान लेना चाहिये कि यह गर्म जल में ही लिया जा सकता है तात्पर्य्य यह है कि अधिक सर्द में नहीं किन्तु गर्म में मगर अवश्य ८४ अंश गर्मी से अधिक गर्म न होगा।

थीं कि मेरे हाथ लुंजे ज्ञात होते थे। मैं किसी वस्तु को पकड़ नहीं सकती थी, और मुझे इतनी पीड़ा थी कि मैं नहीं जानती थी कि मैं क्या करूं। पांव ऐसे सूजे हुए थे कि मैं सीढ़ी पर बिल्कुल न चढ़ सकती थी। अपने कठिन रोग से इतने शीघ्र और रुपये पैसे के खर्च बिना आरोग्य हो जाने पर मैं आपकी सेवा में अपना हार्दिक धन्यवाद निवेदन करती हूं। प्रत्येक मनुष्य जो इस रोग में ग्रस्त हो वह आपको सम्मति लेवे। आपकी चिकित्सा रीति अत्यन्त सादी है उस पर व्यय भी बहुत स्वल्प होता है।

मैं हूं आपकी दासी—

लिपज़िग। (मेम साहिबा) टी०

---

६२ गर्भाशय में रसौली, ल्यूकोरिया अर्थात् प्रदर रोग।

एक दिवस मेम साहिबा एच०,एम० नगर निवासी मेरे समीप आई और यह सूचना दी कि उसकी भतीजी को वसन्त ऋतु में मेरे कार्यालय में बड़ी सफलता से आरोग्यता उपलब्ध हुई थी, और उसकी भतीजी को उस समय तक सन्तोष नहीं हुआ था जब तक कि उसकी चाची ने इस चिकित्सा को उस रीति से नहीं किया जिस रीति से कि वह (भतीजी) सीख चुकी थी। वह कहने लगी कि "वर्षों से मैं एक प्रकार के उदर के रोग में ग्रस्त थी और चिरकाल तक चिकित्सा करती रही किन्तु सब निष्फल। मेरे चिकित्सक ने कहा था कि गर्भाशय में एक रसौली हो गई है जो शनैः शनैः बढ़ती चली जाती है और शस्त्रिक क्रिया की उसके लिये शीघ्र आवश्यकता होगी। मैं ऐसी विवश हो गई थी कि मैंने अपने डाक्टर से कह दिया कि मैं शस्त्रिक क्रिया नहीं कराऊंगी। यदि मुझे मरना ही है तो शस्त्रिक क्रिया के कराये बिना ही मृत्यु होगी क्योंकि मैं शस्त्रिक क्रिया के लिये बल नहीं रखती हूं। बहुत ही न्यून आशा से, उस प्रकार से जैसा कि मेरी भतीजी ने मुझसे बताया था, आपकी चिकित्सा आरम्भ की। पाखाना जो कि वर्षों से कड़ा और अनियमित आता था, अब चिकित्सा के दूसरे ही दिन ठीक हो गया है, और उस दिन से प्रथम की अपेक्षा मात्रा में अधिक आने लगा है। मूत्र भी प्रथम की अपेक्षा तीन-चार गुना, कई बार आने लगा है। बात यह है कि मेरे भीतर का विकार जनक वस्तु नित्य निकलती गई। प्रति सप्ताह मेरा पेडू घटने लगा है, और प्रथम की अपेक्षा आकार में ठीक होने लगा है। प्रत्येक रात्रि को मुझे ऐसा स्वेद आता है कि पहिले कभी आया ही नहीं था और प्रति दिन मैं अपने को पुष्ट और अच्छी मालूम करने लगी हूं। चिकित्सा के समय मुझे यह देख कर बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि प्रतिदिन फ्रिक्शन बाथ के उपरान्त एक प्रकार का जल गर्भाशय से ऐसा निकलता था जो कि उस समय पर्यन्त मैंने कभी भी न देखा था। चार सप्ताह तक यह जल के समान वस्तु एक व दो बार नित्य निकलती रही। फिर अचानक एक दिन ऐसा प्रतीत हुआ कि गर्भाशय

(रहम) अपने स्थान से टल गया। लेकिन उस डाक्टर ने जिसको मैंने अपने दिखलाने के लिये बुलाया था कहा कि गर्भाशय नहीं टला बल्कि गर्भाशय की रसौली (जिसकी आकृति कद्दू के बर्तन की सो है और जो तोल में साढ़े चार पौंड (२। सेर है) ने जो गर्भाशय के मुंह से अपना मार्ग बना कर उस में पहुंची थी और वहां उसमें दो बुंडियां सी उत्पन्न हो गई थीं, शनैः शनैः स्वयं खाली हो गई और फ्रिक्शन सिटिज बाथ और नियमित भोजन के कुछ काल सेवन करने के पश्चात् अब मैं पहले की अपेक्षा सब प्रकार से अच्छी हूँ।"

---

९३ टांग छोटी हो जाने के कारण पूरा लंगड़ापन, कूल्हे का कठिन रोग, हर समय उदास रहने का पागलपन।

एक धन्यवाद के पत्र में मेम साहिबा ऐच० अपनी पुत्री की पहिली दशा लिखती हैं:—

"अक्टूबर सन् १८८९ ई० में मेरी पुत्री एलसा साढ़े चार वर्ष की आयु की, कूल्हे के रोग में ग्रस्त हुई और प्रथम उसकी चिकित्सा एलोपैथी रीति से हुई परन्तु सदैव के लिये रोग दूर न हुआ, क्योंकि फ़रवरी सन् १८९० में वह टांग जिसमें कि रोग था दूसरी टांग की अपेक्षा छोटी हो गई थी। वास्तव में यह कन्या बहुत काल से चलने के अयोग्य थी। तीन सप्ताह पर्यन्त प्लास्टर की पट्टी का सेवन और एक मास पर्यन्त घटने बढ़ने वाले पलङ्ग का सेवन कराया गया था किन्तु इसमें सफलता न हुई थी। लड़की को बड़ी पीड़ा उठानी पड़ी थी, तदनन्तर यह कन्या लिपज़िग के प्रोफेसर ऐस०के पास कई सप्ताह तक चिकित्सा कराने के अभिप्राय से रक्खी गई। उसे सदा शय्या पर ही पड़ा रहना पड़ता था और भिन्न भिन्न वस्तुओं का मर्दन उस पर किया गया। परन्तु यह चिकित्सा पूर्ण रीति से न की जा सकी, क्योंकि कन्या कई सप्ताह पर्यन्त चुपचाप पड़े रहने के योग्य न थी। इस कारण यह चिकित्सा भी निष्फल ही रही। अन्त में मैं अपनी कन्या को लिपज़िग के चिकित्सालय में ले गई। वहां उसकी चिकित्सा तीन सप्ताह तक की गई परन्तु सफलता न हुई। इस चिकित्सा के उपरान्त उसका कूल्हा जो इस समय पर्यन्त मुलायम रहा था, कठोर और हिलने में असमर्थ हो गया। टांग बिलकुल न बढ़ी और लड़की ९ मास पर्यन्त बिलकुल न चल सकी थी। सबसे हानिकर यह बात हुई कि मेरी कन्या अस्पताल की चिकित्सा से उदास रहने लगी; और उसके आरोग्य होने की सम्पूर्ण आशाएं जाती रहीं। चिकित्सा कराने से पहले इतना तो था कि वह खड़ी हो सकती थी किन्तु अब यह बात असम्भव हो गई। ऐसी दशा में मैंने अपनी पुत्री एलसी को आपको सौंपा।

मैंने आपकी सम्मतियों पर पूर्ण रीति से कार्य किया, और प्रथम के तीन ही फ्रिक्शन सिटिज बाथ लेने के पश्चात् उसकी उदासीनता जाती रही, जिससे मुझे अत्यंत

आनन्द हुआ और मेरी पुत्री खड़ी होने लगी। मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि वह तीन दिन में ही चलने फिरने के योग्य होगई और १५ दिन में उसकी दशा में ऐसी उन्नति हुई कि दूसरे की सहायता के बिना वह चौमंजले जीने पर जो गली से मेरे कमरे तक पहुंचता था, चढ़ने लगी। इस काल में कूल्हे के कठोर पट्टे नितान्त ही नर्म होगये और चार सप्ताह चिकित्सा करने के पश्चात् प्रत्येक मनुष्य यह देख सकता था कि छोटी टांग पहिले से बढ़ गई थी। उसके तीन मास पश्चात् रोग के सम्पूर्ण चिह्न जाते रहे और दोनों टांगों की लम्बाई समान हो गई है, तथा दोनों टांगें भली भांति से काम में लाई जा सकती हैं।"

लिपज़िग। (मिसेज़) मिन्ना ऐच०।

---

६४ गठिया, कब्ज़, बवासीर, टाइफ़स, गर्भाशय का टलजाना, काली खांसी, रक्त ज्वर।

प्यारे साहिब!

सन् १८ १ की ग्रीष्म ऋतु के अन्त में आपकी पुस्तक "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" दो बार मुद्रित होने पर मुझे मिली। आपकी शिक्षा की सत्यता मुझे पहिले ही से स्पष्ट प्रगट थी। उस समय से मैं, मेरी स्त्री, और मेरे छोटे बालक सब प्रकार से आपकी चिकित्सा रीति पर चलते हैं और इस से हमें बड़ा लाभ हुवा है। मैं चिरकाल से यह अपना कर्तव्य समझता था कि आपकी सेवा में अपने हार्दिक धन्यवाद निवेदन करूं।

मेरी आयु इस समय ५१ वर्ष की थी। चूंकि मेरे पहिले जीवन व्यतीत करने के नियम अनियमित और ढीले ढाले थे, उनका फल यह हुआ कि मुझे बड़ी घबराहट और गठिया की पीड़ायें सताने लगी थीं। मैं काम करने के अयोग्य था और प्रायः जीवन से तंग हो जाता था। मैंने फ्रिक्शन सिटिजबाथ लिये और प्रति सप्ताह एक स्टीमबाथ लिया, अनुत्तेजक भोजन खाया और खिड़कियां खोल कर सोया। मैं और मेरी स्त्री अब भी ऐसा ही करते हैं। अब पन्द्रह मास से अधिक समय बीत चुका है कि मैं बिलकुल नीरोग हूँ, और अपने काम को पूर्ण रीति से कर रहा हूँ। जन्म से मैं तेज स्वभाव वाला था, परन्तु अब मैं बदला गया हूं। अब गृहस्थी का आनन्द और पूर्ण शांति हमारे गृह में प्रतिष्ठित हुई है। मेरी स्त्री गर्भाशय के टेढ़ेपन के कठिन रोग में ग्रस्त थी, और एक एलोपैथिक डाक्टर डेढ़ वर्ष तक उसकी व्यर्थ चिकित्सा करता रहा था। मेरी स्त्री ने उसी समय से, जब से कि तीन फ्रिक्शन सिटिज बाथ प्रति दिन लेने आरम्भ किये और साधारण रीति पर जीवन व्यतीत करने लगी फल यह हुआ कि दूसरे ही

दिन उसको पाख़ाना ठीक प्रकार से आया (वह क़ब्ज़ का शिकार हो रही थी) रात्रि को भली प्रकार उसको नींद आई। वह फिर बलवती हो गई। छः सप्ताह में ही उसके आमाशय का दोष, और लगभग बवासीर भी जाती रही। इस प्रकार रोगों से छुटकारा पाकर उसने एक बालक प्रसव किया जो आपके नियमानुसार पोषित होकर एक नीरोग, आनन्द-चित्त वाला बालक हो गया है, और अपनी अवस्था के बालकों से बड़ा ज्ञात होता है। वह उस भोजन से जो और बालकों को बलात् खिलाया जाता है केवल एक तिहाई खाता है।

मेरी स्त्री को प्रसूतिज्वर और स्तनों के पक जाने और अन्य पीड़ाओं का ज्ञान तक नहीं।

दो वर्ष हुए कि मेरी स्त्री को टाइफ़स ज्वर ने आ पकड़ा। कदाचित् यह उसको उस अधिक परिश्रम वा चिन्ता के कारण हुआ होगा जो उसको मेरे दो बड़े लड़कों के निमित्त उठानी पड़ी थो। आपकी सम्मति पर चतुराई से कार्य करने पर दो सप्ताह में आराम हो गया।

मेरा छटा बालक पौने पांच वर्ष की आयु का रक्तज्वर में ग्रस्त हो गया और तीन दिन तक उसको सन्निपात रहा। हर बार जबकि उसका तीव्रज्वर अधिक बढ़ जाता था, हम उसको एक ही हिपबाथ पन्द्रह मिनट पर्य्यन्त देते थे और इस अवधि के भीतर ही उसको पूर्ण रीति से चैतन्यता आजाती थी। रोग के वग के अन्तिम दिवस हमने उसको इस भांति के पांच हिपबाथ दिये और तदनन्तर रात्रि को दो तीन हिपबाथ और दिये। अगली भोर को सन्निपात का दशा जाती रही, और शीघ्र आरोग्यता होने लगी, हमने ज्वर के आरम्भ में उस बालक को शय्या पर ही गर्म बोतलों से स्टीम बाथ दिये थे, जिससे खूब स्वेद निकलता था। कुछ काल के उपरान्त उसे काली खांसी हो गई, हमने उसको दो हिपबाथ पन्द्रह पन्द्रह मिनट तक के प्रति दिन दिये। इस दशा में भी रोग जाता रहा और बालक तीन चार सप्ताह में पूर्ण आरोग्य हो गया।

तदनन्तर हमने आपकी सम्मतियों द्वारा इससे कम दर्जे के रोगों को भी आराम किया है। हर एक दशा में आपकी चिकित्सा फलीभूत हुई है। यदि ऊपर लिखित रोगों की डाक्टरों से चिकित्सा कराई जाती तो बहुत सी अशर्फियां खर्च होतीं और फिर भी उत्तम फल को उपलब्ध करने का संशय ही रहता। आपकी पुस्तक में बताई हुई बातों ❀ पर चलने से कोई रुपया पैसा व्यय नहीं होता बल्कि थोड़ा सा परिश्रम करना पड़ता है जिसको प्रत्येक मनुष्य आनन्द सहित अपने प्यारों के हेतु उठा लेता है। आपकी यह रोग निवारक साधारण चिकित्सा तथा भोजन (जो आपकी चिकित्सा में लिये जाते

❀ स्नानों और सात्विक भोजन जिनकी बाबत "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" नाम की पुस्तक में शिक्षा दी गई है।

हैं मनुष्यों को शारीरिक आरोग्यता प्रदान ही नहीं करते बल्कि शुभ चलन की आरोग्यता प्रदान करते हैं। आप ऊपर के विवरण को जिस प्रकार आवश्यक समझें अपनी चिकित्सा रीति (जो सारी चिकित्साओं से बड़ाई ले गई है) के लाभार्थ काम में ला सकते हैं।

सच्चे हृदय से आपका शुभचिंतक—

एलवरफील्ड। बी० एच०।

---

९५ मूत्राशय में रेग का रोग।

प्रियवर मिस्टर कुह्नी !

मैं इस लेख द्वारा आप को उस परिवर्तन को सूचना देता हूं जो मेरी शारीरिक दशा में हुई है। कदाचित् आपको इससे आश्चर्य न होगा, जिस बात से कि मुझको बहुत आश्चर्य हुआ। मुझे यह बात ज्ञात न थी के मेरे शरीर का यह अङ्ग विकारजनक वस्तु से इतना पूरित है।

मुझे दो दिवस पर्यन्त प्रातःकाल मूत्र त्याग करने में बड़ा कष्ट हुआ और बायें कूल्हे से ऊपर थोड़ी देर का पीड़ा भी प्रतीत हुई। तदनन्तर मध्याह्न समय मूत्र त्याग करने में एक पथरी का टुकड़ा निकला, और इसके पश्चात् कई दिन तक पथरी की रेग का सा गंदला पेशाब आता रहा। इसके साथ एक छोटा सा पथरी का टुकड़ा निकला, परन्तु इस बार पीड़ा न हुई।

इन आश्चर्यमय बातों से मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ, कारण कि मुझे आप की चिकित्सा रीति के आरोग्यतादायक प्रभाव में अधिकाधिक निश्चय हो गया। इससे उस कथन की सत्यता प्रकट होती है जो आपकी पुस्तक में मूत्राशय की पथरियों के विषय में उनका घुल घुल कर निकलना (और इस प्रकार कठिन रोगों से बच जाना) लिखा है। मैं इसे अपना कर्तव्य समझता हूं कि उपरोक्त वृतान्त की आपको सूचना दूं।

हृदयी धन्यवाद देता हुआ मैं हूँ, आपका दास—

ब्रेडस्टेड। ए०।

---

९६ सर्वाङ्ग निर्बलता, नेत्र का रोग, आमाशय का रोग।

प्रियवर मिस्टर कुह्नी !

मेरी स्त्री १४ वर्ष से आमाशय, घबराहट और निर्बलता के रोग में मग्न रही थी। कई वैद्यों की चिकित्सा कराई गई, परन्तु किंचित् लाभ न हुआ।

वर्षों से उसकी दशा ऐसी बिगड़ गई कि उसे सर्वाङ्ग निर्बलता हो गई, वह घर का बहुत हलका काम भी न कर सकती थी, साथ ही नेत्रों की कमज़ोरी ने उसे पढ़ने के अयोग्य बना दिया। मेरी स्त्री ने १७ मार्च सन् १८८४ ई० को (आपके) स्नानों का लेना और आपकी अन्य सम्मतियों पर चलना आरम्भ किया और अब मैं यह कह सकता हूं कि ऊपर लिखित सम्पूर्ण दोष जाते रहे हैं। मैं सम्पूर्ण उन रोगियों से जिनको इस प्रकार का रोग हो इसी चिकित्सा के कराने का अनुरोध करता हूं।

आपका वफ़ादार—

लिपज़िग। जो० एफ़०।

---

९७ स्नायु का कठिन रोग।

प्रियवर मिस्टर कुहनी !

मैं इस बात से रुक नहीं सकती कि एक बार फिर इस लेख द्वारा आप की कृपा के लिये जो आपने मेरे जीवन और स्वास्थ के विषय में की है धन्यवाद दूं। यदि आप मेरी सहायता न करते तो मेरा शरीर न बचता, क्योंकि बहुधा मनुष्य इस बातको जानते हैं कि बड़े २ प्रतिष्ठित चिकित्सकों ने मुझे सान्त्वना दी कि मेरा रोग जाता रहेगा, किन्तु फिर भी वे मेरी पीड़ा को निवारण करने में असमर्थ रहे। इस बात का प्रकाशित करना उचित है कि आपने, जिस समय कि मैं नैराश्य के सागर में निमग्न हो रही थी, मुझे जीवन दान दिया। यह मेरी हार्दिक इच्छा है कि वह आपका साधारण और महान् आविष्कार मनुष्यों के लाभार्थ प्रगट हो।

आपकी कृतज्ञिनी—

विएना। एमा पी०।

---

९८ पाचन शक्ति के दोष, निद्रा का न आना।

प्रियवर मिस्टर कुहनी !

मैं बड़े आनन्द से इस योग्य हूं, कि आपकी सेवा में निवेदन करूं कि कुछ काल पर्यन्त फ्रिक्शन सिटिज़ बाथ वा हिप बाथ वा स्टीम बाथ के सेवन करने के पश्चात् मेरे स्वास्थ्य में अच्छी उन्नति हुई। पाचन शक्ति के दोष नष्ट हो गये। मैं बलवती प्रतीत होती हूं और अब मेरा हृदय प्रथम की अपेक्षा अति आनन्दित रहता है। और मैं यह भी कहती हूं कि अब मैं प्रथम की अपेक्षा भले प्रकार सो लेती हूं।

सच्चा धन्यवाद देते हुए आपकी दासी—

लिपज़िग। एमेली एफ़०।

९९ सदैव कब्ज, बवासीर, जिगर का बढ़जाना।

प्रियवर मिस्टर कुह्नी !

दो दिन हुए कि मैंने एक पोस्टकार्ड द्वारा आपकी सेवा में निवेदन किया है कि आपकी औषधि रहित चिकित्सा के फल अत्युत्तम रहे हैं। मैं अत्यानंदित हूं और इस योग्य हूं कि आपको इस बात की सूचना दूं कि चिरकालीन क़ब्ज़ जिसकी चिकित्सा ४० वर्ष तक निष्फल हुई। अब उन सम्मतियों पर, जो आपने पत्र में लिखी थीं, चलने से समग्र जाती रही हैं। अब दो बार प्रति दिन मलत्याग होता है। इसके साथ ही बवासीर का रोग भी जो क़ब्ज़ के कारण ५० वर्ष की आयु में हुआ था प्रति दिन न्यून होता जाता है।

जिगर का वर्म (जिगर का बढ़ जाना) पूर्णतया लोप हो गया है और एक पीड़ा भी जो मेरे उदर की दाहिनी ओर हुआ करती थी नष्ट हो गई है। तीन मास पूर्व इस स्थान पर तनिक से दबाव से भी पीड़ा हुआ करती थी। कथन का सारांश यह है कि मैं आपकी इस नवीन चिकित्सा रीति के प्रभाव को प्रति दिन देखता हूं। कारण यह है कि सम्पूर्ण रोग जिनमें मैं ४० वर्ष से ग्रस्त था और जिनको होम्योपैथी की चिकित्सा भी निवारण न कर सकी थी; बराबर कम होते चले जाते हैं। मैंने आपकी सम्मति के अनुसार एक प्रकार के पूर्ण अनुत्तेजक (सात्विक) भोजन पर जीवन व्यतीत किया है और इस से बढ़कर यह कि तीन फ्रिक्शन हिपबाथ प्रति दिन प्रातःकाल लिये हैं। बारम्बार धन्यवाद देता हुआ–

आपका दास–

स्थान–एवलिंग। एफ० सी० कप्तान।

---

१०० दंत पीड़ा, शिर पीड़ा, घबराहट, नींद का न आना, आवाज का बैठ जाना।

प्रियवर मिस्टर कुह्नो !

मैंने सन् १८८७ ई० में आपकी चिकित्सा रीति का हाल सुना और उससे अपने स्नायु रोग को आराम किया। उस समय से मुझे प्रायः आपकी चिकित्सा रीति के उत्तम प्रभाव के सिद्ध करने का अवसर मिला है। पिछली शीत ऋतु में एक दिन मुझे ऊपर के जबड़े की सब से पिछली खोखली दाढ़ के कारण अत्यंत कठिन दंत-पीड़ा हो गई। जलन इतनी अधिक थी कि मेरे जबड़े का दाहिना भाग मस्तिष्क तक सूज गया था और ऐसी चीस पड़ती थी कि निद्रा का आना असम्भव हो गया था। प्रतिदिन कई बार फ्रिक्शन सिटिज बाथ के लेने से कुछ कुछ शान्ति हुई। परन्तु जब मैंने आपकी

सम्मत्यानुसार एक स्टीम बाथ आध घण्टे से अधिक लिया और तुरन्त उसके पश्चात् एक फ्रिक्शन सिटिज बाथ देर तक लिया, तो मेरे गर्म स्नायु में चैन पड़ गया, और शनैः शनैः पीड़ा कम हो गई। कुछ घण्टों में ही रोग जाता रहा। हाल ही में स्टीम बाथ के सेवन से शिर पीड़ा और नेत्रों में नश्तर के से चुभने की पीड़ा की दशा में मैंने उत्तम फल उपलब्ध किये हैं।

आप एक और सफलता का वृत्तान्त, जो आपके फ्रिक्शन सिटिज बाथ के सेवन से हुई है सुनकर बड़े प्रसन्न होंगे। जैसा कि कहते हैं "मुझे सर्दी ने पकड़ लिया" मेरी आवाज इतनी बैठ गई कि कान में बात करना भी मुझे कठिन ज्ञात होने लगा। यह दशा दो दिन तक रही तीसरे दिन जब कि मेरी आवाज बैठी हुई थी, मैंने साढ़े आठ बजे प्रातःकाल एक फ्रिक्शन सिटिज बाथ लिया। इस स्नान का लेना मेरे लिये अत्यन्त सफल हुआ, और मैं उस समय पर्य्यन्त स्नान लेता रहा जब तक कि जल बहुत गर्म न होगया। दो बार जल बदलने और अढ़ाई घंटे स्नान करने के उपरान्त मुझे अनुभव होने लगा कि मेरी आवाज खुल गई है। अतः मैं जोर से बोल सकता और गान कर सकता था। इस आश्चर्यमय शान्तिदायक फल ने जो किसी और चिकित्सा द्वारा उपलब्ध न हुआ होता, मुझे अत्यन्त आश्चर्य में डाल दिया। मैं उस कृपा के लिये जो आपने अपनी अमूल्य चिकित्सा रीति द्वारा मुझ पर की है, अपना हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

इस प्रकार रोगों के आराम होने के वृत्तान्त को लोगों का जानना अन्य व्यक्तियों के लिये लाभदायक सिद्ध होगा. इस लिये मेरी आप से प्रार्थना है कि आप इस पत्र को जिस प्रकार चाहें काम में लावें।

मैं निश्चित आपका दास—

लिपजिग। कार्ल एल०।

१०१

सुगमता से बच्चा जनना।

प्यारे मिस्टर कुह्नी !

यद्यपि आपने आज्ञा नहीं की, किन्तु तो भी मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि आपकी सेवा में उस चिकित्सा के साफल्य का धन्यवाद भेजूं जो आपने मेरे लिये निश्चय की थी, और उसे मेरी स्त्री ने दूसरे व तीसरे बालक के जनने से पूर्व कार्यान्वित किया था। हमारे पहिले बालक का जन्म कठिनाई से हुआ था; उसमें डाक्टर की आवश्यकता हुई थी। उस डाक्टर ने हमको और सन्तान उत्पन्न करने से रोक दिया था क्योंकि मेरी स्त्री की शारीरिक बनावट असाधारण थी। अन्त के दो प्रसव (आपका कृतज्ञ हूँ) क्रमशः अढ़ाई घंटे व एक घण्टे के भीतर ही हुये थे; और

उनमें प्रायः दाई की सहायता की आवश्यकता न हुई थी। सबसे पिछला बालक और बालकों से भारी था।

आपका दास—

डाबकी। पाल के०।

---

१०२ न्यूरेलजिया अर्थात् पुट्ठों की पीड़ा।

इस लेख द्वारा मैं मिस्टर कुह्नी की सेवामें अपना दार्दिक धन्यवाद उस आरोग्यता के लिये जो उनकी चिकित्सा की स्वाभाविक रीति से मुझे प्राप्त हुई है प्रेषित करती हूँ। इस चिकित्सा से मेरी पुरानी और कठिन पट्ठों की पीड़ा नष्ट हो गई। मेरे स्वास्थ्य पर उसका उत्तम प्रभाव पड़ा। मैं बड़ी दृढ़ता से समस्त रोगियों से मिस्टर लुई कुह्नी के जल द्वारा चिकित्सा करने के कार्य्यालय, २४ फ्लास सैट्ज लिपजिग नगर से सम्मति लेने का अनुरोध करती हूँ।

मिस ई० एफ़०।

चित्रकारिणी।

---

१०३ कान का बहना, कर्ण पीड़ा, मौसिमी ज्वर।

प्रियवर महाशय जी!

मैं आनन्द से हूं कि आपके सम्मति पत्र के आने के पश्चात् तीन सप्ताह से कम ही की चिकित्सा में मैं अब इस योग्य हो गया हूं कि पुराने रोगों अर्थात् कर्ण प्रवाह, कर्ण पीड़ा, मौसमी ज्वर की रिपोर्ट आपकी सेवा में भेजूं। मैं आपकी इस सहायता के लिये हार्दिक धन्यवाद देता हूँ; और अब मैं बहुत ही स्वस्थ हूँ। इस समय केवल एक ही फ्रिक्शन हिपबाथ, उस चिकित्सा के विचार से जो स्वास्थ्य लाभ होने के पश्चात् की जाती है नित्य सवेरे ही लेता हूँ। पुनः आपको हार्दिक धन्यवाद देता हुवा--

प्योटो केलो आपका दास—

वेनिजुला, दक्षिणी-अमरीका। कार्लास एम० बी०।

---

१०४ कठिन गठिया।

मिस्टर लुई कुह्नी!

मैं आपकी सेवा में निवेदन करता हूं कि मैंने अभी एक पुरुष पाल के० नामी को जो २५ वर्ष से कठिन गठिया के रोग में ग्रस्त था आरोग्य। दी। पांच चिकित्सकों ने उसको असाध्य बतलाया था। मैंने उसको छः सप्ताह में ही आपकी चिकित्सा रीति के

द्वारा नीरोग कर दिया। कृपा करके एक पुस्तक 'दी न्यू साइन्स आफ हीलिंग' जर्मनी भाषा में शीघ्र ही डाक द्वारा भेज दीजिये।

मैं आपका हितैसी—

हेट, क्रिसनोस। फ्रूज्ञ एस०।

---

१०५ कूल्हे का दर्द कुलंज, हिस्टीरिया में रुदन करना अर्थात् चीख मारना।

प्रियवर मिस्टर कुइनी!

मैं अपने स्वास्थ्य का आपको अत्युत्तम समाचार देती हूं। मुझे प्रायः कूल्हे का दर्द (कुलंज) हुआ करता था जो थोड़े दिन तक रहता था। इस से एक सप्ताह पश्चात् हिस्टीरिया में चीखने के दौरे हो जाते थे, और उनसे मुझे अत्यंत ही पीड़ा हुआ करती थी। मैं आपकी बतलाई हुई बातों पर चली तो यह रोग सर्वथा नष्ट हो गये।

एक अद्भुत बात यह है कि उन चिकित्सकों से जो चिरकाल तक मेरी चिकित्सा करते रहे और जिनसे सफलता प्राप्त न हुई; जब कोई मुझे मिल जाता है तो मुझे कुछ समय के लिये अवश्य रोक लेता है और पूछने लगता है कि मेरे रोग कहां गये? कारण यह कि अब मेरा शरीर दुर्बल और हलका है और उस पर तरुणाई का अनुपम रूप रङ्ग चढ़ आया है। मैंने वेलफील्ड में २ वर्ष (रोग की अवस्था में) ३० चिकित्सकों से सम्मति ली। जो कुछ कि हम बचा सकते थे वह सब का सब डाक्टरों की फ़ीस व अत्तारों की औषधियों के दाम देने में व्यय होता रहा। बहुत बहुत प्रणाम करती हुई।

मैं हूं आपकी कृतज्ञा—

वेलफील्ड। एम० एच०।

---

१०६ डिफ़थीरिया, कब्ज, कमर, पीड़ा, ऋतु, शिर पीड़ा, नेत्र पीड़ा।

प्रियवर मिस्टर कुहनी!

मेरे पुत्र को गत शिशिर ऋतु में डिफ़थीरिया का रोग हो गया था, जो आपही की चिकित्सा रीति से ठीक हुआ। डाक्टर ने जो औषधि दी थी वह नाली में फेंक दी गई। वह मेरे पुत्र को रोग के आरम्भ ही से शोचनीय अवस्था के कारण अस्पताल ले जाना चाहता था।

मैंने बड़ी सफलता से, आपकी चिकित्सा की, अपने ऊपर भी परीक्षा की। मुझे कठिन कब्ज, पीठ में पीड़ा, अनियमित मासिक धर्म, शिर पीड़ा और नेत्र पीड़ा जो

रहती थीं वह सब शीघ्र ही नष्ट हो गई। प्रथम स्नान का अन्तड़ियों पर मनोवांछित प्रभाव हुआ, जैसा कि आपने अपनी पुस्तक में लिखा है। मैं आपको बहुत-बहुत धन्यवाद देती हूँ। मुझे सौभाग्य से ही आपकी पुस्तक मिल गई थी।

आपकी कृतज्ञा—

सीले। मिसेज ई० ऐच०।

---

१०७ मृगी और हाथ पैरों का ऐंठना!

प्रियवर मिस्टर कुहनी!

मैं अपने हार्दिक धन्यवाद को आपकी सेवा में निवेदन करना अपना परमधर्म समझता हूं; क्योंकि मेरा १० वर्ष की आयु का छोटा बालक आपकी सहायता से मृगी और हाथ पांव की ऐंठन के रोगों से आरोग्य होगया। हम बहुत समय तक औषधियों का सेवन करते रहे थे, और जब अन्त में डाक्टर ने कह दिया कि वह इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता और प्रोफ़ेसर .. से हमको सम्मति लेनी चाहिये तब उसी समय हमने आपको अमूल्य चिकित्सा का वृत्तान्त सुना। हमने आपकी सम्मति के अनुसार प्रति दिन स्नान कराये और स्वाभाविक भोजन खाने को दिया। हमको अपने बालक की निकृष्ट दशा शीघ्र ही अच्छी होती हुई देखकर बड़ी ही शांति हुई। एक सप्ताह के भीतर ही हमारे बालक को मानसिक और शारीरिक दशा ठीक हो गई, और वह पुनः पाठशाला जाने लगा। मैं आपको इस बहुमूल्य चिकित्सा रीति की जहां तक कि मुझसे हो सकेगा प्रशंसा करने से नहीं टलूंगा। पुनः धन्यवाद देता हूं।

आपका सच्चा सेवक—

सोनफ़ोल्ड। फ्रैन्ज एनटूनी बी०।

---

१०८ रीढ़ के बांस की जलन, घबराहट।

प्रियवर महाशय जी!

मैं यह अनुभव करके कि आपकी चिकित्सा रीति ने मेरे शरीर पर कैसा प्रभाव डाला है, आपको लिखे बिना नहीं रह सकता। मैं ८८ वर्ष की आयु का हूं। मैं अत्यन्त घबराहट और रीढ़ के बांस की जलन में ग्रस्त था। औषधियों की चिकित्सा से ऐसी शोचनीय दशा को पहुंच चुका था कि न मैं बैठ सकता था और न चल फिर सकता था। अन्त में औषधियों से चिकित्सा करने वालों ने मेरे रोग को असाध्य बतला दिया। आपकी चिकित्सा रीति के (जिसकी मुझसे प्रशंसा की गई थी) केवल १२ सप्ताह प्रयोग करने के उपरान्त ही मैं इस योग्य हो गया था कि लकड़ी के सहारे इधर उधर टहल

सकूं। और आज मेरी ऐसी उत्तम दशा है कि एक घण्टा व उससे भी अधिक बिना छड़ी के आश्रय के चल फिर सकता हूं। बारम्बार धन्यवाद देता हुआ।

वकस डोरफ़– आपका सच्चा सेवक–
समीप जिटो के। गस्टव एस०।

———

१०६ आमाशय की जलन, आमाशय का सर्तानी फोड़ा, जिगर कड़ा होजाना, तिल्ली का बढ़जाना, मूत्राशय वा गुरदों की खराबी, कब्ज़ आदि।

प्रियवर मिस्टर कुह्नी !

मैं इस बात को आवश्यक समझता हूं कि आपकी चिकित्सा-रीति के द्वारा अपने भयानक रोगों से छुटकारा पाने के बदले आपकी सेवा में अपने हार्दिक धन्यवाद निवेदन करूं। मैंने आपके कथनानुसार हिपबाथ और यथार्थ भोजन के सेवन करने से इन भयङ्कर रोगों से छुटकारा पाया है। मैं बड़े आनन्द सहित, आपकी आज्ञा के बिना इस बात को लिखता हूँ जिससे कि और दुखी मनुष्य भी आपकी चिकित्सा कराने पर आरूढ़ हो जावें। मैं वर्षों से आमाशय की जलन में ग्रस्त था और मुझे भय था कि मेरे उदर में सर्तान फोड़ा हो जायगा इससे मुझे अत्यन्त कष्ट और पीड़ा हो रही थी। इसके अतिरिक्त मुझे जिगर का कड़ापन; तिल्ली के वृद्धि पा जाने, मूत्राशय वा गुर्दों के दोष, मल न होने आदि की अन्यान्य पीड़ायें थीं।

सम्पूर्ण औषधियां, जो कि सेवन की गईं और सम्पूर्ण सम्मतियां जो प्रसिद्ध चिकित्सकों (महाविद्यालय के प्रोफेसरों) से प्राप्त की गईं, वह मुझ पर तनिक भी ठीक तरह पर प्रभाव न डाल सकीं, फिर रोगों को कम करने का तो कहना ही क्या था ? उसी समय से, जब से मैंने आपकी चिकित्सा रीति पर चलना आरम्भ किया है मेरे सम्पूर्ण शरीर में पूर्णतया जीवन-शक्ति आ गई है।

कोटिशः धन्यवाद देता हुआ, आपका बड़ा सच्चा––

टेटशेन डबल्यू० ए०।
(एल्ब नदी पर) शाही चुंगी का अफ़सर।

———

११० बढ़ी हुई सिल अर्थात् क्षय रोग

प्रियवर मिस्टर कुह्नी !

औषधियों द्वारा चिकित्सा करने वाले मनुष्यों से बुरे फल उठाने के उपरान्त मैंने आपकी पुस्तक 'दी न्यू साइन्स आफ़ हीलिंग' खरीदी। मेरे बच्चों को जो बढ़ी हुई

सिल में ग्रस्त था चिकित्सकों ने जवाब दे दिया था और उसके रोग को असाध्य बतला दिया था। मैंने उसकी चिकित्सा आपकी रीति के अनुसार की और उसे प्राकृतिक भोजन भी दिया। उस बच्चे के आरोग्य हो जाने पर सबको आश्चर्य हुआ।

बारम्बार धन्यवाद देती हुई, मैं हूं आपकी दासी—

लडविग गस्लस्ट। मिसेज पी० ई०।

---

१११ **जलने के घाव**

प्रियवर महाशय !

मेरे सबसे बड़े, आगस्ट नाम वाले बालक ने अपना दाहिना हाथ खौलते हुए जल में जला लिया; सौभाग्य से मेरे पास आपको पुस्तक उपस्थित थी और इसी कारण मैं जले हुए घावों की चिकित्सा आपकी सम्मति द्वारा कर सकता था। फल आश्चर्यजनक हुआ अर्थात् १ सप्ताह के भीतर ही जला हुआ प्रत्येक घाव अच्छा होगया है; और इस चिकित्सा से अब एक चिन्ह भी शेष नहीं रहा है। मैं आपको और भी धन्यवाद देता हूं क्योंकि कुछ वर्ष पूर्व मैं भी एक बार इसी प्रकार की पीड़ा में फंस गया था, और उस समय आपकी चिकित्सा से अनभिज्ञ होने के कारण मैंने औषधियों से चिकित्सा करने वाले एक मनुष्य की सम्मति ली थी। आपकी चिकित्सा की अपेक्षा उसकी चिकित्सा ऐसी थी जैसी कि दिन की अपेक्षा रात्रि। मैं सर्व साधारण के समक्ष इस प्रकार आपका धन्यवाद देने में अधिक आनन्दित होता हूं।

आपका बहुत सच्चा सेवक—

टिनर्जन हैनरिक, बी०।

---

११२ **आमाशय की खराबी, छाती की कमजोरी, फेफड़ों की जलन।**

मैं मिस्टर कुहनी की चिकित्सा रीति से आरोग्यता प्राप्त करके सर्व साधारण के सन्मुख अपनी कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूं।

१६ वर्ष पर्यन्त मैं बड़ी कठिनाई से आमाशय के दोष में ग्रस्त रहा। रेचक औषधियों के बिना मुझे पाखाना कभी आता ही न था और पिछले चार पांच वर्ष तक तो यह दशा रही की मैं पेशाब करने के अयोग्य रहा। मेरी छाती दुर्बल थी, और मुझे फेफड़ों की जलन भी थी। मैंने फ्राईबर्ग बर्न और जैनिवा में बहुत से डाक्टरों से सम्मति ली; परन्तु कुछ सहायता न मिली। मैं अब मिस्टर कुहनी की मुख्य सम्मतियों पर कुछ सप्ताह चलने के पश्चात् अपने काम को भली भांति कर सकता हूं और अब अपने होटल का प्रबन्ध करने में समर्थ हूं, और तत्सम्बन्धी पत्र व्यवहार तथा हिसाब आदि रख सकता हूं।

मिस्टर कुह्नी के बतलाये हुए भोजन से और उनकी शिक्षा पर चलने से अब मैं स्वयं पूर्णतया स्वस्थ और अपना काम करने योग्य हूँ। मैं यह बात स्वयं ही बिना पूछे हुए प्रगट करता हूँ।

श्वाजेंसी बाद — हस्ताक्षर—
कैन्टन फ्राईबर्ग, (स्वीटज़रलैंड) — ई० डबल्यू० ऐस०।

---

११३ कान का बहना, शिर पीड़ा, कान व कण्ठ में रुधिर का जमना, कान की छोटी हड्डियों से मवाद का बहना।

प्यारे मिस्टर कुह्नी!

सात वर्ष से मेरा पुत्र कान तथा कण्ठ के रोगों में ग्रस्त था, बहुत सी औषधियां की गई परन्तु किंचित् भी लाभ न हुआ। पिछले सितम्बर में मेरे बालक को कान से बहुत ही घृणित मवाद बहने व शिर पीड़ा का अत्यन्त कष्ट रहा, अतः मैंने कर्ण नासिका तथा कंठ के रोगों की चिकित्सा करने वाले डाक्टर से सम्मति ली। उसने बतलाया कि यह कर्ण व नासिका में रुधिर के जमाव का रोग है। और उसकी सम्मति के अनुसार तत्काल शस्त्रिक क्रिया कराई गई। मैंने तीन सप्ताह के पश्चात् अपने बालक का फिर परीक्षा कराई। इस बार डाक्टर ने बतलाया कि कान की छोटी हड्डियों से मवाद प्रवाहित है, अत. अब फिर शस्त्रिक क्रिया कराने की आवश्यकता है। मैंने होम्योपैथिक वैद्य की सम्मति ली उसने भी इस परीक्षा की पुष्टि की।

एक बार यात्रा के समय मुझे आपके कार्यालय के विषय में ज्ञात हुआ। मैं अपने पुत्र को साथ लेकर लिपज़िग नगर पहुंचा। आपकी सम्मतियोंके अनुसार उसकी चिकित्सा करने पर उसे पूर्ण आरोग्यता प्राप्त हो गई। इसलिये मेरा यह धर्म है कि अपना हार्दिक धन्यवाद आपकी सेवा में निवेदन करूं। मेरे पास आपकी पुस्तक "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" की कोई जिल्द नहीं है, आप कृपा करके एक जिल्द भेज दीजिये। निस्सन्देह यह पुस्तक गृहस्थी के लिये एक उत्तम भण्डार है। प्रत्येक गृह में इसका होना अत्यावश्यक है।

मैं हूं आपका बहुत सच्चा—

बालमाशियन। — ब्रूनों एस०।

---

११४ मूत्राशय की पथरी, सुगमता से बच्चा जनना, फेफड़ों का रोग।

प्रियवर मिस्टर कुह्नी!

मैं बड़े आनन्द से आपकी सेवा में निवेदन करता हूं कि मैं बहुत स्वस्थ हूँ

और पहिले से अब अधिक अच्छा हूँ। मैं अन्य रोगियों के विषय में भी जिन्होंने आपकी चिकित्सा रीति पर चलकर उत्तम फल प्राप्त किये हैं आपको सेवा में यही समाचार भेजता हूं। एक पिसनहारे का छोटा बालक मूत्राशय की पथरी के रोग में ग्रस्त था, डाक्टरों की चिकित्सा से कुछ भी न हुआ था। अन्त में उसने आपकी सम्मतियों पर पूर्ण रीति से कार्य किया और थोड़े ही काल में पथरियां घुलकर मूत्र के साथ शरीर से बाहर निकल गईं।

इसी प्रकार एक ३७ वर्ष की आयु की स्त्री ने भी जिसको कई बार बालक जनने में कष्ट हो चुका था और जो बालक को दूध भी न पिला सकती थी आपकी चिकित्सा रीति का प्रयोग किया। फल यह हुआ कि इस बार उसके दो बालक (यमज) बड़ी सुगमता से दाई की सहायता बिना ही जन्मे। पहिले वह स्त्री अपने बालकों में से किसी को भी दूध न पिला सकी थी, लेकिन इस बार उसके दोनों बच्चों के लिये पर्याप्त दूध था।

एक मनुष्य जिसको फेफड़ों का रोग है आपकी चिकित्सा रीति का प्रयोग कर रहा है, और उसकी दशा अच्छी होती जाती है यद्यपि डाक्टरों ने उसको असाध्य बतला दिया था। आपकी चिकित्सा रीति यहां बड़ी उन्नति कर रही है।

जरमेनियां, कास्टाडीसरा। आपका बड़ा सच्चा—

ब्राजील। एच० एस०।

---

११५ नेत्ररोग, चेहरे पर फुन्सियां, कण्ठ रोग, डिफ़्थीरिया, शीतला, रक्तज्वर।

प्यारे मिस्टर कुहनी!

मुझे आपका धन्यवाद पूर्णरीति से निवेदन करने के लिये आज भी पूरे शब्द नहीं मिलते जैसे कि पहिले। यद्यपि सर्वदा मेरा चेहरा गुलाबी और मैं हृष्ट पुष्ट रही हूं फिर भी प्रायः रोगिणी ही रहा करती थी। बाल्यावस्था में मुझे नेत्रों का कठिन रोग था, जो आयु बढ़ने पर जाता रहा, लेकिन उस समय में मेरी त्वचा में, विशेषकर चेहरे की त्वचा में सदा एक प्रकार की पीड़ा देने वाली फुन्सियां रहीं। कदापि एक वर्ष ऐसा न व्यतीत हुआ कि मैं कठिन रोग में ग्रसित न हुई होऊं। मुझे प्रति वर्ष कण्ठ रोग डिफ़्थीरिया, शीतला वा रक्तज्वर की ऐसी पीड़ा हुआ करती थी कि आरोग्यता प्राप्त करने में प्रायः संदेह हो जाया करता था। इस समय जबकि मैं इस बात पर ध्यान देती हूं कि मैं उस समय कैसी रोगिणी थी, और अब कैसी अच्छी हूं, तो मुझे अपने बिचारों के प्रगट करने के लिये शब्द नहीं मिलते। आपने जो चिकित्सा पत्र द्वारा मुझे बतलाई वह रोग को पूर्ण उन्मूलन करने वाली है। आरोग्यता प्राप्त करने के पश्चात् मेरे कुटुम्बियों ने मुझसे कहा

कि मेरे शरीर की बनावट अब बिलकुल कुछ दूसरी ही है। आपकी चिकित्सा रीति में मेरा दृढ़ विश्वास है। मैं आपकी चिकित्सा रीति का प्रत्येक स्थान में पक्ष समर्थन किया करती हूं। अपने हृदय से फिर आपका धन्यवाद करती हुई,

मैं हूं, आपकी सच्ची—

ओटेनजन। लीना एम०।

नं० ११६—सूजा हुआ घुटना, हड्डी के टुकड़े।

प्रियवर मिस्टर कुइनी!

मैं यह वास्तव में नहीं जानता कि किस प्रकार और किन शब्दों में आपके सन्मुख अपने हार्दिक भाव आपकी सेवामें प्रगट करूं, और उस अनुग्रह का जो आपने मुझ पर किये हैं किस भांति धन्यवाद दूं।

मुझे यह विचार में लाते हुए भय लगता है, कि डाक्टरों ने पांच वर्ष पर्यन्त किस प्रकार मेरे सूजे हुए घुटने की चिकित्सा की थी, कि अंत में हड्डी के खंड खंड हो गये थे, फलतः मुझे शस्त्रिक क्रिया करानी के लिए विवश होना पड़ा था। मैं सर्वदा इसका कथन किया करता हूँ। यहां यह कहना ही पर्याप्त होगा कि शस्त्रिक क्रिया करने के तीन मास पश्चात् ही जब कि डाक्टरों ने यह कहा कि मैं पूर्ण आरोग्य हूं, तो मैंने उस समय अपने आपको बहुत ही रोगी पाया। जब मैं आपकी सेवा में चिकित्सा के लिए उपस्थित हुआ तब आपको इस बात का प्रमाण अवश्य मिला होगा। दस गज लम्बी पट्टी पांच वर्ष पर्यन्त बांधे रखने पर भी मेरा घुटना फिर सूज आया था और उसी स्थान से जहां कि शस्त्रिक क्रिया हुई थी फिर फूट निकला था। आपकी चिकित्सा के प्रथम ही दिन पट्टी की आवश्यकता न रही। घुटना फिर अपनी वास्तविक दशा पर आ गया और शनैः शनैः घाव घटता गया और अन्त में वह बंद हो गया।

आज मैं अपनी टांगों को अच्छी देखकर अत्यन्त सुखी हूं और सत्य हृदय से आपका धन्यवाद देता हूं और अपने मन में आपके प्रति पूर्ण सम्मान रखता हूं। दयालु परमेश्वर आपको, उन शुभ क्रियाओं का, जो आपने मेरे व अन्य व्यक्तियों पर की हैं, आपको श्रेष्ठफल दें, और प्यारे मिस्टर कुइनी! मेरी आंतरिक प्रार्थना है कि आप चिरकाल तक जीवित रहें जिससे बहुत वर्षों तक मनुष्यों के हितार्थ ऐसे ही कार्य करते रहें। वारम्बार स्मरण करता हुआ।

आपका सच्चा हितैषी—

जरनोविटज़, ब्यूको वीना। स्टीफेन एस०, ब्रह्मविद्या का जिज्ञासु।

---

११७ रीढ़ के एक जोड़ की जलन, सुगमता से गर्भस्थिति।

प्रियवर महाशय !

वह भद्र स्त्री जो कि अब मेरी धर्मपत्नि है कुछ काल हुआ कि एक वैद्य के कथनानुसार स्पान लाइटिस अर्थात् रीढ़ के किसी एक जोड़ की जलन में ग्रस्त थी। दो वर्ष पर्यन्त उसको पीछे को झुका रहना पड़ा था, और प्लास्टर की पट्टियों आदि के कठिन बंधन से उसकी चिकित्सा इस प्रकार की गई जैसे उन बालकों की चिकित्सा की जाती है जिनका कोई अङ्ग टेढ़ा हो जाता है, परन्तु रोग को किसी प्रकार भी लाभ न हुआ। अन्त में डाक्टरों ने उस रोग को असाध्य बतलाते हुए यह कहा कि यह कोई फोड़ा अथवा ऐसी ही कोई वस्तु बन जायेगी। ऐसे समय में उसका आपकी पुस्तक का ध्यान दिलाया गया। उसने वह पुस्तक मोल लेली और मेरे पास सम्मति के अर्थ भेजी। मैंने सम्पूर्ण पुस्तक को ध्यान पूर्वक पढ़ा और उसको सम्मति दी कि वह आपकी चिकित्सा लग्न से करे। फल अत्युत्तम हुआ। वह फोड़ा जिसकी डाक्टर आशा करते थे निकला ही नहीं बल्कि इसके विरुद्ध उसके साधारण स्वास्थ्य में बड़ी उन्नति हुई, अतः वह शीघ्र उठने के योग्य होगई, और बिना सहारे उसे चलती फिरती देखकर डाक्टरों को अत्यन्त ही आश्चर्य हुआ। अभी बहुत काल नहीं बीता था कि उसने उस जाकट को जो रीढ़ के रोग में पहिनी जाती है त्याग दिया। पिछले वर्ष वह ही जिसको डाक्टरों ने असाध्य रोग में ग्रस्त बतलाया था मेरी धर्मपत्नि बनी और आशा है कि आज कल में वह एक स्वस्थ बालक भेंट करेगी। हम दोनों को पूर्ण निश्चय है कि आपकी चिकित्सा रीति ही, जिससे उसको जीवन दान मिला, रोगों को निवारण करने में समर्थ है। मेरी प्रार्थना है कि मुझे आज्ञा दी जाये कि मैं स्वयं एवम् अपनी धर्मपत्नी की ओर से आपकी सेवा में हार्दिक धन्यवाद समर्पित करूं। हार्दिक धन्यवाद देता हुआ,

मैं हूँ, आपका अत्यन्त कृतज्ञ—

एम० वान एस० ।

ज्यूरिच।

---

११८ सिल अर्थात् क्षय रोग।

प्रियवर मिस्टर कुह्नी !

दो वर्ष हुए कि आपकी पुस्तक "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" मेरे हाथ लगी। अब मैं आपकी सेवा में निवेदन करता हूं कि मैंने अपने क्षय रोग में इस चिकित्सा से ऐसे उत्तम फल प्राप्त किये हैं कि मैं आयु भर आपको धन्यवाद देता रहूंगा।

मेरे पड़ौस में एक भटयारे की कन्या लुजी है, डाक्टर कहते हैं कि उसे आरोग्यता प्राप्त करनी असम्भव है। लेकिन मुझे निश्चय है कि उसके लिये कुछ न कुछ

उपाय हो सकता है। क्या आप कृपा करके अपनी सम्मति और निश्चय से मुझे कृतार्थ करेंगे ?

आपका दास--

ओवर्सस्टीनाक (बेवेरिया) जोजफ एच० ।

---

११९ ट्राकोमा (नेत्रों में एक प्रकार के रोहे पड़ जाना)

मैं पांच वर्ष पर्यन्त ट्राकोमा रोग (इजिपशन आई डिजीज) में ग्रस्त रहा। कोई भी डाक्टर किञ्चिन्मात्र सहायता न दे सका। अतः मैं आपकी चिकित्सा रीति प्रयोग करने पर बाध्य हुआ और असाधारण फल प्राप्त किये। दो मास में ही मेरे नेत्र पूर्णतया अच्छे होगये और रोग पुनः न हुआ। यदि अवसर मिला तो अगले वर्ष आपकी सेवा में लिपजिग आऊंगा और आपके प्रसिद्ध कार्यालय को देखूंगा।

मैं प्रार्थना करता हूं कि आप कृपा करके बिना मूल्य वाली जर्मनी भाषा और हंगरी भाषा की तीस-तीस छोटी पुस्तकें, आरोग्यता की रिपोर्ट सहित भेज दीजिये। मेरी इच्छा उन्हें अपने मित्रों में बांटने की है।

मैं, आपका सच्चा दास—

बुडापेस्ट, (हंगरी)। कार्ल टी०।

---

१२० जलोदर, सूजी हुई टांगें, शिर पीड़ा, कब्ज।

प्रियवर !

आपकी पुस्तक "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" एक वर्ष से मेरे पास है। मेरे अनुरोध पर मेरे बहुत से मित्रों ने इस पुस्तक को मंगवाया है, और वे सब इसको उत्तम एवं उपयोगी पुस्तक पाते हैं। मेरी ३२ वर्ष की आयु की स्त्री को बचपन ही से कब्ज व शिर पीड़ा के रोग थे, और नाना प्रकार की औषधियों एवं जुल्लाब लेने पड़ते थे परन्तु आपकी चिकित्सा के आरम्भ करने से यह सम्पूर्ण पीड़ायें नष्ट होगई हैं। उसकी सूजी हुई टांगें तथा जलोदर (डाक्टरों के निदान में यही रोग आया था) अच्छा होगया है। मैंने स्वयं कब्ज में आपके स्नानों का सेवन किया, और बड़ी सफलता हुई। कृपा करके आप मुझे अपनी अन्य पुस्तकें भी भेज दीजिये और "मुखाकृति विज्ञान" तथा भोजन बनाने की भी एक पुस्तक भेजें। मैं सर्वदा यह यत्न करता रहूँगा कि "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" के नियमों का पूर्णतया प्रचार किया जाय।

प्रियवर, मैं हूं, आपका कृतज्ञ—

बालकेनहेन (सायलिसिया) कार्ल के०।

---

१२१ बवासीर के मस्सों का रोग, निद्रा का न आना, क्रोध का वेग, क़ब्ज़।

प्रियवर जी!

मैंने अपने चिकित्सकों की चिकित्सा छोड़ कर, जब कि ३ वर्ष पर्यन्त उसे करने से किंचिन्मात्र भी लाभ न हुआ तो आपके पत्र द्वारा भेजी हुई सम्मति पर चलना आरम्भ किया।

मैंने पूर्णरूप से आप की सम्मति अनुसार स्नान किये और आहार लिया। मेरी स्त्री और बच्चे मेरे अब कभी के हंसने पर चकित हुए क्योंकि मैं तीन वर्ष से हंसा नहीं था। मेरी अन्तड़ियां अब यथार्थ रीति से काम करती हैं। बवासीर के मस्से और क्रोध के आक्रमण जो मुझे अत्यन्त पीड़ा देते थे अब जाते रहे हैं। अब मैं भली भांति सो सकता हूँ, जब कि पहिले मुझे सर्वदा निद्रा न आने का रोग रहता था।

मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं अपने हार्दिक धन्यवाद भेंट करूं और हे प्यारे मिस्टर कुहनी! मुझे आप अपना सच्चा सेवक जानिये।

एच० डब्ल्यू०।

सेन्टपीटर्सवर्ग (रूस)

---

१२२ जिगर के रोग, क़ब्ज़।

प्रियवर जी!

हमको (अर्थात् मिस्टर बी० को और मुझे) आज्ञा दीजिये कि हम आपकी सेवामें, आपने जो कृपा हम पर की है, उसका धन्यवाद भेजें। हम जौलाई सन् १८९३ई० में लिपजिग नगर में थे और आपकी चिकित्सा से हमको ऐसी सफलता प्राप्त हुई कि हम उसको स्मरण करके सर्वदा सुख का अनुभव करते हैं।

मिस्टर बी० जिगर के कठिन रोग में ग्रस्त थे, और हमारे मुल्क डेन्मार्क में सम्पूर्ण मनुष्य उनके आरोग्य हो जाने को एक सच्चा अचम्भा समझते हैं। मैं भी क़ब्ज़ में ग्रस्त थी, मेरा भी रोग जाता रहा। बहुत से लोग आपकी चिकित्सा रीति और आपकी पुस्तकों के बारे में पूछताछ करते हैं। आप कृपा कर अपनी चिकित्सा का प्रचार करने वाली पुस्तकें डेन्मार्क और स्वीडेन की भाषा में भेज दीजिये, और मैं उनको डेन्मार्क, नारवे और स्वीडन देशों में बांट दूंगी। तब मेरे लिए आपकी पुस्तक का अनुमोदन करना और लोगों को उसका विश्वास दिलाना सुगम होगा।

आपकी सच्ची—

मिसेज एच० बी०।

माड्ंपगार्ड (डेन्मार्क)

---

१२३ सिल, खांसी, मुख से थूकना, थूक में खून आना

प्रियवर जी !

मेरी मन की प्रेरणा मुझे विवश करती है कि मैं उस चिकित्सा के लिये जो आपने मेरे कठिन रोग की दशा में बड़ी चतुराई से मेरे लिये निश्चित की थी आपको अपने सच्चे, और हार्दिक धन्यवाद दर्शाऊं। मैं सिल-खांसी, मुंह से थूक आना और रुधिर मिश्रित थूक आने के रोगों में आठ वर्ष तक ग्रस्त रही थी। न घर की चिकित्सा, न डाक्टर न अतारों से कुछ हो सका, प्रत्युत् मेरी दशा और भी हीन होती गई। रोग ऐसा कठिन था कि उसको विचार में लाना भी असम्भव था। मेरी दशा सर्वदा शोकमय थी और औषधियों द्वारा चिकित्सा करने वाले मनुष्योंपर से मेरा विश्वास उठगया था।

चार दिसम्बर को मेरा ध्यान आपकी चिकित्सा की ओर दिलाया गया। आपकी सम्मति पर चलने से मुझे दूसरे तीसरे दिन ही लाभ ज्ञात होने लगा। प्रति सप्ताह मेरा रोग घटने लगा और अब तीन मास के पश्चात् मैं पूर्णतया आरोग्य हो गई हूं। मैं निरोग और हरी भरी हूं और यही अभिलाषा करती हूं कि सम्पूर्ण अन्य रोगी भी आपकी चिकित्सा रीति पर चलें जिससे यह रोगियों के लिए स्थायी लाभ पहुंचाने का स्रोत बन सके। यही चिकित्सा सम्पूर्ण रोगों के निवारण करने का सत्य मार्ग है।

मैं हूँ आपकी बहुत सच्ची--

ल्पाक-विसेरेकिय सरकार (रूस) गाटफ्रे एम० (आयु ४४ वर्ष)

---

१२४ जलोदर, सिल, प्लूरिसी।

प्यारे मिस्टर कुह्नी !

मैं यह लेख आपकी सेवा में इस लिये भेजती हूं जिससे कि उस अनुपम स्वाथ्य का जो आपकी चिकित्सा रीति ने मुझे प्रदान किया है आपको अपना हार्दिक धन्यवाद दर्शाऊं। जब मुझे, आपने जो मेरे लिये किया है, उसका ध्यान आता है, तो मैं अपने हृदय में आपका बड़ा सम्मान करती हूं। आप रोगियों के लिये सच्चे मसीहा हैं।

मैं दो वर्ष से प्लूरिसी में ग्रस्त थी, और सदैव शय्या पर ही पड़ी रहती थी। मुझे जलोदर भी हो गया था। डाक्टरों ने मेरी पीड़ाओं के निवारणार्थ व्यर्थ यत्न किये, अन्त में मुझे प्रोफेसरों तथा औषधियों से चिकित्सा करने वाले लोगों से बड़ा भय हो गया। केवल आप ही की सम्मतियों से मैं स्वस्थ हुई हूं। चिकित्सा के प्रथम ही दिन से अच्छा अनुभव किया और पेडू के ऊपर की रसौली घुलने लगी।

अपना स्वास्थ सुधरने के कारण मैं आपको अपना हार्दिक धन्यवाद पुनः भेंट करतं हूं।

मैं हूं आपकी अत्यन्त हितैषिणी—

विन्ज़ क्रोन-(स्विटज़रलैंड) (मिस) इड़ा एस०।

---

१२५ गिल्टी का सूज आना, दन्तपीड़ा, नेत्र के रोग, कण्ठ की सूजन और जलन, फेफड़ों की सूजन, सांस का छोटापन, स्वांस आर्थात् दमा, स्वप्नदोष।

मेरे प्रियवर !

मैं इस पत्र का लिखने वाला एक पादरी, अपना बड़ा सौभाग्य समझता हूँ कि आपकी पुस्तक "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" का समाचार मुझे ज्ञात हुआ और मैंने उसे पढ़ा। इसी बात से कि आपकी पुस्तक का पच्चीस भाषाओं में अनुवाद हो चुका है मेरा ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। अब मैं आपकी पुस्तक "सान्इस आफ़ फेशियल एक्शपेशन" एवम् अन्य पुस्तकों को पढ़ रहा हूं और मैं जहां कहीं जाऊंगा आपकी चिकित्सा प्रणाली के प्रचार करने का प्रयत्त करूंगा। मैं दन्त पीड़ा, दायें और बायें ओर की गिलटियों की सूजन, नेत्रों की सुस्ती तथा कंठ की जलन में चिरकाल से ग्रस्त रहा था। इसी नगर, ऐसकोना में मैंने आपकी लिखित सम्मतियों का यथा शक्ति उपयोग किया, और इसका फल अति उत्तम रहा। इस बात को आप अपने व्याख्यानों में तथा जहां अपकी इच्छा हो प्रयोग में लायें तो मुझे कुछ आपत्ति न होगी। मैं निसन्देह कुछ ही वर्षं में क्षय रोग से मर गया होता परन्तु उचित समय पर मै सही मार्ग पर पहुंच गया। श्वांस का कमी से आना, फेफड़ों की जलन, दमा तथा स्वप्नदोष को भी पूर्णतया लाभ हो गया है।

आन्तरिक हृदय से मैं हूं, आपका अत्यन्त कृतज्ञ—

पादरी ई०।

एस कोन।

---

१२६ गर्भस्थिति बा बच्चा जनने में सुगमता।

प्यारे मिस्टर कुहनी !

जैसा कि आपने हमसे कहा था वैसा ही हुआ। मेरी स्त्री ने २ अप्रैल को एक हृष्ट पुष्ट बच्चा सुख पूर्वक प्रसव किया। उसने जनने से पहिले आपकी चिकित्सा प्रणाली को बड़े परिश्रम से ठीक ठीक आपकी सम्मति अनुसार पालन किया था।

गर्भका समय भली प्रकार व्यतीत हुआ। साढ़े नौ बजे प्रसूति-पीड़ा आरम्भ हुई, पावघंटे में आर्थात् पौने दस बजे बालक का जन्म हो गया। हमारा कुल वैद्य जो मेरी प्रार्थना पर उस समय वहां उपस्थित था बालक जन्मने से एक घंटा प्रथम ही इस

विचार से कि अभी दो दिन में प्रसव होगा, वहां से चला गया था। उसकी आशा के विरुद्ध, उसके चले जाने के पश्चात, वालक शीघ्र ही आ उपस्थित हुआ। अतः दाई का काम मैंने स्वयम् ही किया। वालक जनने के पश्चात् मेरी स्त्री की तबीयत तत्काल ही बहुत अच्छी हो गई। और अब मिस्टर कुह्नी! उसका ध्यान सर्व प्रथम आपकी ही ओर पहुंचा था। उसने सबसे पहिले यह बात कही "बस वैसा ही हुआ जैसी कि मिस्टर कुह्नी ने भविष्य वाणी की थी।"

आप अपनी अत्यन्त बहु-मूल्य सम्मति के लिये हमारा हार्दिक धन्यवाद स्वीकार करें। आपकी पुस्तक निस्संदेह एक पवित्र पुस्तक है, और वह ऐसी ही रहेगी। हमारा कुलवैद्य जो पीछे से आया कहने लगा कि उन्होंने ४१ वर्ष के अनुभव में (अब आयु उसकी ६५ वर्ष की है) ऐसी बात पहिले कभी नहीं देखी थी। आपकी चिकित्सा रीति के लिये यह विजय प्राप्ति का एक अमूल्य अवसर था। मेरी और मेरी स्त्री की ओर से बारम्बार आपको प्रणाम पहुंचे।

मैं हूं आपका दास—

श्लास एल, हालैंड। एo एसo रिसाले का कप्तान।

१२७

गुदा में नासूर आंत, का फोड़ा।

प्रियवर!

मेरे पास आपका दूसरा पत्र आया जिसमें आपने जिज्ञासा प्रकट की है कि इससे पहिले पत्र की सम्मति के अनुसार चलने के पश्चात मेरी दशा कैसी रही? मैं बड़े आनन्द के साथ निवेदन करती हूं कि दो सप्ताह व्यतीत हुए कि गुदा का नासूर और दांत का फोड़ा प्राय जाते रहे हैं। दुर्भाग्यवस मैं पहिले आपकी सम्मति पर पूर्ण रीति से न चल सकी परन्तु पश्चात् आपकी सम्मति का पूर्णतया पालन किया। मैंने जनवरी मास के दूसरे सप्ताह में दो व तीन फ्रिक्शन सिटिजबाथ प्रतिदिन लेने आरम्भ कर दिये परन्तु शीत की अधिकता से ६६ से ८ अंश फारेन हाइट की गर्मी का जल वर्ता गया मैं भोजन भी ठीक आपकी सम्मति के अनुसार ही खाती रही हूं। अब पूर्णतया स्वस्थ हूं। मेरी यह अभिलाषा है कि आपकी उत्तम पुस्तकें के पाठकगण प्रति दिन बढ़ते जायें।

होल्ट—(कोपेन हेजन के समीप)—

डेन्मार्क। जूलिया एलo।

१२८

अत्यन्त घबराहट, हस्तमैथुन।

मैं इस लेख द्वारा उस सहायता का धन्यवाद करता हूं जो मिस्टर कुह्नी ने अपनी चिकित्सा रीति से मेरे तीन वर्ष की आयु के बालक के कठिन रोग में की है।

उसकी दशा को न तो धमकी और न सजा ठीक कर सकी थी। लेकिन फ्रिक्शन सिट्ज़ बाथ वा सात्विक भोजन से मेरे बालक की घबराहट व हस्तमैथुन करने की आदत जाती रही। मैं बड़े विश्वास से मिस्टर कुह्नी की चिकित्सा रीति की प्रत्येक स्थान पर प्रशंसा करता हूं।

हस्ताक्षर—

लिपजिग। एच० एस०।

---

१२६ दिल के परदे में जल का आ जाना, पुरानी दमा।

प्रियवर!

मैं तीन वर्ष से अधिक से इन रोगों में ग्रस्त रहा। मैंने कई एक फौजी वा मुल्की डाक्टरों से चिकित्सा कराई, तदनन्तर प्रोफ़ेसर पी० क्रैको-निवासी की चिकित्सा कराई गई पर सब निष्फल हुआ। यह केवल आपकी ही सम्मति और आपकी ही पुस्तक के कारण मुझे उस कठिन और भयानक रोग से छुटकारा पाये छः मास व्यतीत हो चुके हैं। इस निमित्त मैं आपका सत्य हृदय से धन्यवाद करता हूँ।

मैं हूँ आपका सच्चा—

आर गेलिशिया। एम० ए०।

जिले की कचहरी का क्लर्क।

---

१३० दर्द गठिया, हृदय के रोग, गर्भाशय में सर्तान फोड़ा, बवासीर के मस्से, पाचन शक्ति के दोष, कुपच और पीठ के एक भाग में पीड़ा।

प्यारे मिस्टर कुह्नी!

मैं इस नगर की कुह्नी सभा (जिसमें कि ३०० से अधिक सभासद हैं) के सभापति की हैसियत से और इस से बढ़कर इस हेतु से कि मैं आपकी आश्चर्यमय बुद्धिमानी और उच्च-विद्वत्ता का सम्मान करने वाला हूं, आपकी सेवामें यह निवेदन करना अपना मुख्य कर्तव्य समझता हूं कि आपकी चिकित्सा रीति ने मरते हुए मनुष्यों को स्वस्थ किया है। कारण यह कि निकम्मी और अनाड़ी निर्बुद्धि चिकित्सक प्रायः रोगियों को असाध्य जानकर कोरा जवाब दे देते हैं। एक रोगी जो अन्तिम दर्जे की गठिया रोग की पीड़ा में ग्रस्त था और रोग का प्रभाव उसके हृदय तक पहुंच चुका था आपकी चिकित्सा रीति से बच गया। एक स्त्री ने भी जिसके गर्भाशय में सर्तान फोड़ा था आपकी चिकित्सा आरम्भ की। इससे प्रथम वह दस प्रसिद्ध चिकित्सकों से बिना सफलता प्राप्त किये अपनी चिकित्सा करा चुकी थी। इन चिकित्सकों में से एक इस नगर के शफ़ाख़ाने का मुख्य अधिष्ठाता था। उसने उस पर शस्त्रिक-क्रिया करनी आरम्भ की परन्तु उदर को चीरने के पश्चात् शस्त्रिक क्रिया को पूर्ण करने से भयभीत हुआ, क्योंकि वह स्त्री अत्यन्त

निर्बल थी। उसका रोग इस सीमा तक पहुंच चुका था कि समस्त डाक्टरों ने यह कह दिया था कि यह स्त्री अधिक से अधिक तीन माह जियेगी। अब छः मास व्यतीत हो चुके हैं और वह जीवित है। उसका असाध्य रोग लोप होगया है। मैंने १ वर्ष से अधिक आपके नुसखे सेवन किये, और मैं अब स्वयं को स्वस्थ समझता हूं। मुझे बवासीर के मस्से व पाचन शक्ति की मंदता पीड़ित करती थीं। इन्होंने आमाशय के अत्यन्त असह्य रोग और सामने की ओर वा दायें बायें व पीठ में पीड़ायें उत्पन्न करदी थीं। इस प्रशंसा पत्र को आप जिस प्रकार चाहें काम में लायें, जिसको बिना मांगे ही मैंने आपकी सेवा में भेजा है। बहुत प्रणाम और धन्यवाद देता हुआ।

मैं हूँ आपका दास—

ब्योनो एरीस। बिन्सैंन्ट डी०,

"कुहनी नेचर क्योर सभा" का सभापति।

---

१३१ नेत्र रोग।

प्यारे मिस्टर कुहन !

मैं आपका ऐसा कृतज्ञ हूँ कि इस बात से रुक नहीं सकता कि संक्षेप में आपकी सेवा में निवेदन करूं कि मेरे १० वर्ष के पुत्र के नेत्र रोग ने कौनसा मार्ग ग्रहण किया। मैंने आपकी सम्मति चहाने वाले पत्र का समुचित्त उत्तर पाकर आपकी सम्मतियों को पूर्ण रीति से पालन किया। इसके फल से जो मुझे आश्चर्य हुआ, मैं वर्णन नहीं कर सकता। तीन सप्ताह पर्यन्त स्नान लेने के पश्चात् मेरा पुत्र लग भग नीरोग हो गया। और एक सप्ताह पश्चात् ही वह पूर्णतया आरोग्य होगया। तत्पश्चात् रोग का कोई चिह्न नहीं देखा गया। वह बालक पूर्ण आरोग्य है। अय महाशय ! जो बात डाक्टर तीन वर्ष में न कर सके वह आपने चार सप्ताह में ही अपनी चिकित्सा रीति से कर दिखाई। मेरे हार्दिक धन्यवाद स्वीकार कीजिये। मैं यह लेख आपकी सेवा में अपने आप भेजता हूं। इसका आप जिस प्रकार चाहें उपयोग करें।

आपका दास—

रेमशिद हेस्टन। जी० एफ०।

---

१३२ मूत्र की नाली का संकीर्ण (तङ्ग) होजाना, अर्थात् कुरा पड़ जाना।

प्रियवर !

मैं बड़ी प्रसन्नता से अपनी लेखनी को उठाता हूँ कि आपकी सेवा में निवेदन करूं कि आपकी चिकित्सा रीति ने जिसपर मैंने आपके पत्र में दी हुई सम्मतियों के अनुसार २३ अगस्त से पहिली अक्टूबर तक, पूर्ण रीति से कार्य किया था। मुझे उत्तम स्वास्थ्य प्रदान किया है। दूसरे सप्ताह के आरंम्भ में जलन और सूजन कम होजाने पर कश

लोप हो गया । और मुझे आज जोर की धार में पेशाब करने में कोई कष्ट नहीं होता। इस प्रकार (उत्तम रीति से) मैं साधारण स्वास्थ्य की दशा में भी पेशाब नहीं कर सकता था। मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे सच्चे और हार्दिक धन्यवाद को स्वीकार करें। ईश्वर आपको और आपकी इस आश्चर्यजनक चिकित्सा को सहायता देवे और आपकी यह चिकित्सा रीति सम्पूर्ण-सृष्टि में फैल जावे। थोड़े दिन पश्चात् मैं आपको अपनी स्त्री की दशा लिखूंगा जो पांच वर्ष से बहिरेपन में ग्रस्त है। आप कृपा करके मेरे लिखने पर एक सम्मति पत्र भेजदें। सोचा करता हूं कि मैं शीघ्र ही किसी दिन आपकी सेवा में उपस्थित होऊंगा।

आपका सेवक—जे. एच.

अल्ट सोल, (हंगरी) कारखाने वाला।

———

१३३—सर्वजनों के समक्ष धन्यवाद का निवेदन

मैं इस बात को जानता हूँ कि मैं लिपजिग नगर से चलने के समय इस बात को नहीं भूल सकता कि मिस्टर लुई कुहनी साहिब नं० २४ फ्लास प्लेट्ज, लिपजिग नगर निवासी का धन्यवाद उस आश्चर्यजनक आरोग्यता के निमित्त जो मुझे उनकी श्रेष्ठ चिकित्सा रीति से प्राप्त हुई है उनकी इच्छा के बिना ही जनता के समक्ष प्रगट करूं। मेरी आयु ६६ वर्ष की है और मैं चिरकाल से उस भयानक रोग में जिसको मधु प्रमेह Diabetes कहते हैं, ग्रस्त था। मैंने बहुत से डाक्टरों से सम्मति ली, किन्तु किञ्चित भी लाभ न हुआ। मेरे कई वार्मेन निवासी मित्रों ने उस समय मेरा ध्यान कुहनी साहब के बिना औषधि वा शस्त्र क्रिया 'आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या' की ओर दिलाया, अतः मैं लिपजिग पहुंचा और मैंने कुहनी साहब की सम्पूर्ण सम्मतियों का यथार्थ रीति से पालन किया।

दो सप्ताह चिकित्सा करने के उपरान्त मीठे की मात्रा ८५·१ अंश से १०·१ अंश हो गई और एक और सप्ताह के उपरान्त वह पूर्णतया नष्ट हो गई। चार पांच सप्ताह के पश्चात जो परीक्षायें की गईं तो शकर का कोई भी चिह्न न मिला। इसकी सत्यता डाक्टर रोहर्म, डाक्टर एल्सनर, डाक्टर बाक, और डाक्टर प्रैंगर ने जो लिपजिग के न्यायालय की ओर से मान्य पदार्थ विद्या-वेत्ता हैं की थी। मैं पूर्ण विश्वास से सब रोगियों से कुहनी साहब की चिकित्सा रीति की प्रशंसा भली भांति करता हूं। इस कारण से उसका और भी प्रशंसक हूं कि इस स्थान में और वार्मेन में मैं ऐसे मनुष्यों को जानता हूं जो कुहनी साहिब की चिकित्सा रीति से आरोग्य हो चुके हैं।

लिपजिग से,
८ अगस्त-सन् १८९८ ई०

लेखक—एल० बी० वार्मेन निवासी कारीगर।

कुछ उदाहरण

जिनसे साइन्स आफ फेशियल एक्सप्रेशन (मुखाकृति विज्ञान) का हाल ज्ञात हो जावेगा
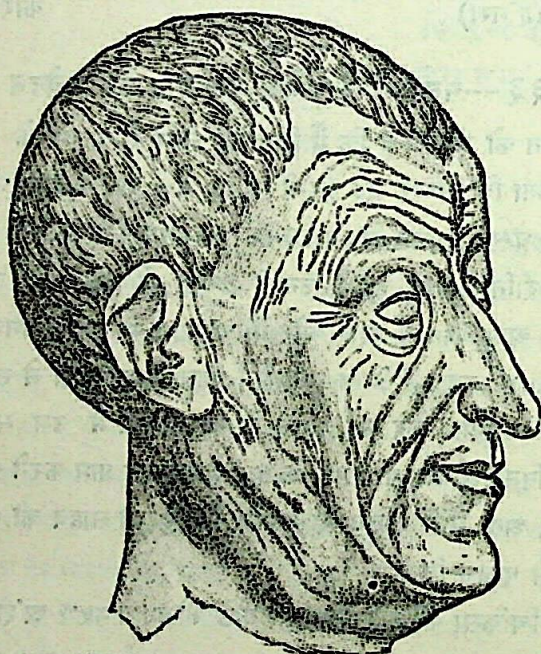
केवल सामने की ओर को विजातीय द्रव्य का भार है
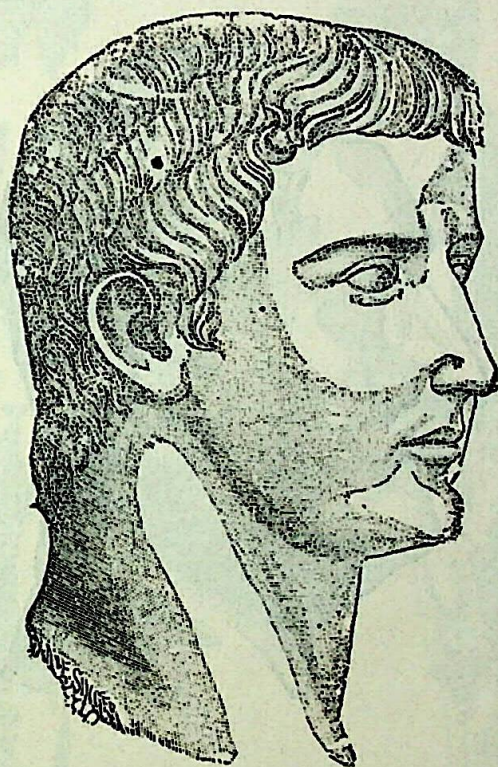
विजातीय द्रव्य का भार केवल पीछे की ओर है
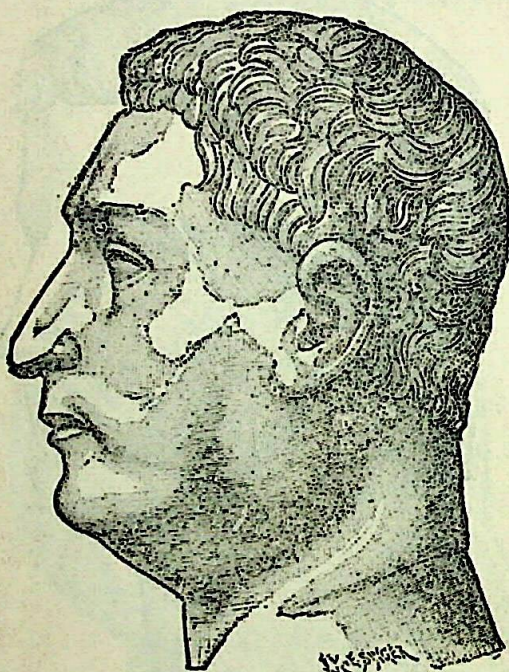
सामने, दाहिने, बायें और पीछे की ओर को विजातीय द्रव्य का भार जिसमें सामने की ओर का भार अधिक है।
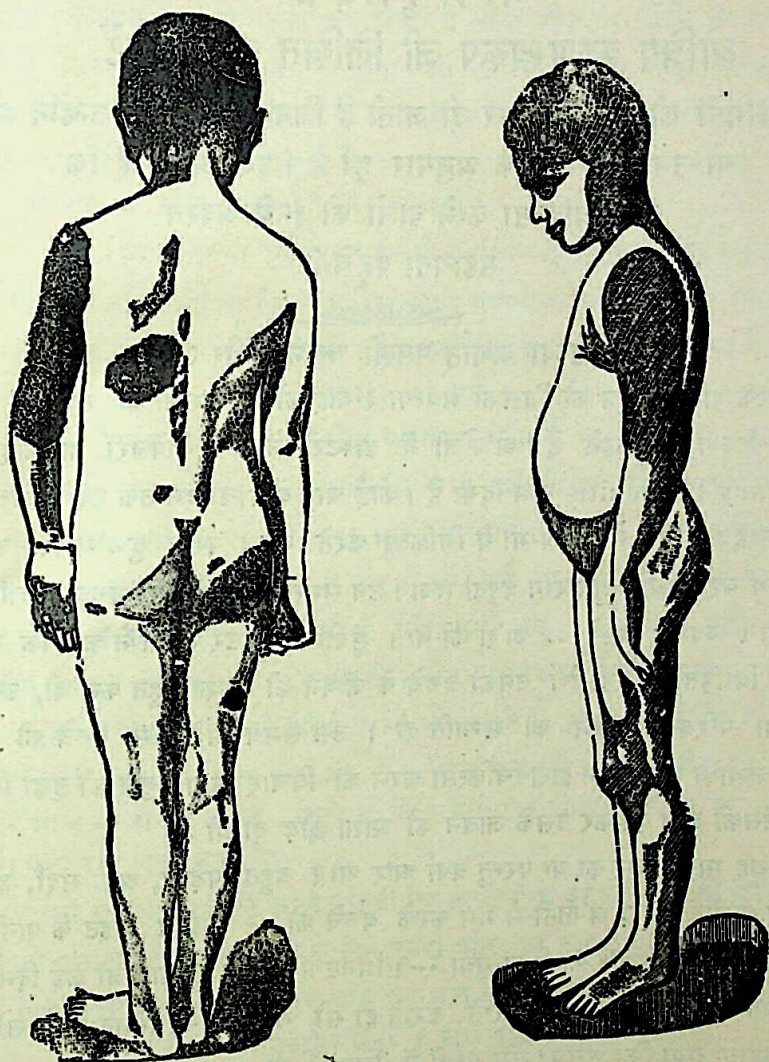
चित्र उस लड़के का जिसको ४५ दफे ट्यूबर क्यूलिन से टीका लगाया था, और उसके फल ।

※ इसके अधिक समार मेरी पुस्त "बच्चों का पालन में देखिये" हिन्दी भाषा मूल्य ।)

भाषानुवादक

श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप जी लिखित कुछ रिपोर्टें

उन रोगियों की दशा यहां पर दी जाती हैं जिनकी चिकित्सा उन्होंने की या उनकी सम्मति के अनुसार हुई है। पूर्ण आशा है कि जल चिकित्सा करने वालों को इनसे अवश्य सहायता पहुंचेगी

(१) डिब्बा अर्थात् पसली चलना और ज्वर

एक बार मेरे पुत्र को जिसकी अवस्था ३ माह की थी पसली का रोग हो गया, जिसको डिब्बा भी कहते हैं। अंग्रेजी में डाक्टरों ने उसे केपिलरी ब्रानकाइटिस Capillary bronchitis नाम दिया है। कोई चार व पांच दिन तक एक असिस्टेन्ट सर्जन साहब जो कि मेरे मित्र भी थे चिकित्सा करते रहे। परन्तु दुर्भाग्यवश उससे कुछ लाभ नहीं हुआ प्रत्युत रोग बढ़ता गया। उन समस्त दिनों में वह बच्चा कदापि न सो सका। ज्वर १०३- १०४ अंश का था। सुयोग्य डाक्टर साहब ने कहा कि रोगी की दशा बिगड़ती जा रही है। उनको बच्चे के जीवन की आशा बहुत कम थी, उन्होंने चिकित्सा परिवर्तन करने को सम्मति दी। उस समय मैंने इस बच्चे को ऐसी निराशावस्था में जल स्नान द्वारा चिकित्सा करने का विचार किया। कुल की वृद्धा स्त्रियों ने भी उसकी दशा देखकर उसके जीवन की आशा छोड़ दी थी।

यह मास क्वार का था परन्तु वर्षा और ओले बहुत पड़े थे, अतः सर्दी, होगई थी; इस कारण कमरा अंगीठी से गर्म करके बच्चे को ८२ फेहरन हाइट के पानी में एक हिपबाथ ५-६ मिनट का दिया गया। २-३ मिनट में ही वह बच्चा जो कई दिन तक तनिक भी नहीं सोया था स्नान कराते कराते ही सो गया। २-३ मिनट सोते सोते में स्नान कराया गया फिर उसको गर्म वस्त्रों में लिटा दिया गया। २ घण्टे के पश्चात् बच्चा जागा, और ज्वर जो स्नान से कम होकर १०२ से नीचे उतर गया था फिर बढ़ता हुआ प्रतीत होता था। जागने के १ घण्टे पीछे अर्थात् पहले हिपबाथ के ३ घण्टे पीछे उसे फिर एक हिपबाथ ५-६ मिनट का दिया गया, इससे बच्चे को फिर नींद आ गई। एक दिन-रात ऐसा ही किया गया जिससे बच्चा प्रत्येक स्नान के पश्चात् २ घण्टे को सो सका।

फिर विचार में आया कि यदि ५-६ मिनट के बदले १०-१२ मिनट या अधिक समय का बाथ दिया जावे तो प्रभाव अच्छा पड़ेगा जैसा कि कुहनी साहिब ने कथन

किया है (देखो पृष्ठ ५६३) अगले दिन बच्चे को १५ मिनट का स्टीमबाथ देकर १२ मिनट का हिपबाथ दिया गया तो बच्चा अब तीन घंटे सोया और ज्वर बढ़ने पर फिर जागा। उसको हिपबाथ १०–१२ मिनट का दिया गया जिससे उसको नींद आजाती, और इसी प्रकार तीन २ चार २ घंटे में १०–१२ मिनट के हिपबाथ दिये जाने से और उसको गर्म कपड़ों में माता के पास लिटाने से उसका रोग घटता गया और बच्चा दूसरे ही दिन से माता का थोड़ा थोड़ा दूध भी पीने लगा।

चार दिन में बच्चा पूर्णतया स्वस्थ हो गया और देखने वालों को उसकी आकृति से यह नहीं ज्ञात होता था कि ४–५ दिन पहिले बच्चा ऐसे कष्ट में पड़ गया था कि उसके जीवन की आशा नहीं रही थी। वह बच्चा अब जीवित और आरोग्य है।

शरीर का दर्द।

(२) एक बच्चे के पैर में खेल कूद करने से मोच आ गई थी। उसके टखने के जोड़ पर सूजन हो गई थी। उसकी चिकित्सा औषधियों द्वारा कराई और देखने में वह सूजन जाती भी रही थी परन्तु चलने में उस पैर में कुछ पीड़ा ज्ञात होती थी। कुछ दिनों पश्चात् यह पीड़ा और भी कम होगई। कई वर्ष पश्चात् उस बच्चे के शरीर में ठंड लगने के कारण पीड़ा हुई। इसकी चिकित्सा जब "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" द्वारा की गई और उसको हिपबाथ सिट्ज़बाथ और सनबाथ दिये गयें तो शरीर की पीड़ा तो अच्छी होगई परन्तु उस टखने में सूजन होगई और पीड़ा बढ़ गई जिसमें कि पहिले मोच आई थी। ३–५ दिन में यह सूजन और पीड़ा भी जाती रही और मोच भी अच्छी होगई। सनबाथ के समय मोच आए हुए स्थान पर भी केले का हरा पत्ता रख दिया जाता था।

इससे प्रगट होता है कि मोच पहिली चिकित्साओं में दूर नहीं हुई थी वरन् दब गई थी जो इस जल चिकित्सा करने से फिर उभरी और तब अच्छी हुई। १४,१५ वर्ष होगये कि फिर न तो मोच के स्थान पर कोई कष्ट ज्ञात हुआ और न शरीर में पीड़ा ही हुई।

पुराना ज्वर (क्षय रोग)।

(३) मई सन १९१४ ई० में पंडित महाबीर प्रसाद मिश्र ❀ के (जो कर्नल सर प्रतापसिंह जोधपुर वालों के सरिश्तेदार हैं) कई महीने का ज्वर ठहर गया जो प्रायः भोजन के पश्चात् बढ़ जाया करता था। डाक्टरों ने कहा कि टूबरक्यूलोसिस अर्थात् क्षय है और सम्मति दी कि उन्हें अलमोड़े या भवाली जाना चाहिये। जोधपुर से अलमोड़े या भवाली जाने के लिये वे मुरादाबाद आए और अपने चाचा साहब के पास ठहरे यहां भी आपने थूक अथवा बलराम की परीक्षा कराई तो यही निश्चय हुवा कि

❀ यह महाशय अब १९२३ में भी अच्छी स्वास्थ्य रखते हैं।

ट्यूबरक्युलोसिस है। इस समय वह मुझसे भी मिले। इसी समय मेरे पास मिस्टर कृष्णराव मदरास निवासी पधारे हुए थे जिन्होंने कई वर्ष हुये अपनी क्षय को इस जल चिकित्सा द्वारा नष्ट किया था और जिन्होंने इस चिकित्सा के कल्याणार्थ अपना शेष जीवन ही उत्सर्ग कर दिया है। मैंने महाशय कृष्णराव जी से भी उनको मिलाया और कृष्णराव जी की ही सम्मति के अनुसार उन्होंने अपनी चिकित्सा आरम्भ की। प्रथम तो उनको इस नवीन चिकित्सा करने में बहुत कुछ संकोच हुआ परन्तु मिस्टर कृष्णराव का वृत्तांत उनसे सुनकर और उनकी रुग्णावस्था के समय की और स्वस्थ होने के समय की फोटो देख कर और बाबू इन्द्रजीत जी का पत्र पढ़कर (जो आगे दिया गया है) उनको इस चिकित्सा की सत्यता पर विश्वास हुआ और उन्होंने चिकित्सा आरम्भ की।

इस समय ज्वर १०१–१०२ अंश तक बढ़ जाता था, परन्तु रोगी में शक्ति इतनी थी कि दो मील बिना थकान के वह चल सकता था। दस्त ठीक नहीं होता था, भोजन में अरुचि थी, स्वाद बहुत बुरा रहता था स्वेद केवल मस्तक और छाती का ही आता था, शेष शरीर को नहीं।

महाशय कृष्णराव जी ने उनकी दशा पर विचार किया और कहा कि यदि चिकित्सा ठीक २ की जावे और साफ़ शुद्ध रहा जावे तो एक मास में ही ज्वर शांत हो जायगा। प्रतिदिन तीन हिपबाथ कुए के स दे जल १० दिन तक बीस २ मिनट लिये। ६ बजे प्रातः १ बजे मध्यान को, और ६ बजे सन्ध्या को, । प्रत्येक बाथ के पश्चात् कुछ समय टहलना जिससे गरमाई फिर आवे। शरीर में किसी किसी स्थान पर पसीना भी स्वयं ही आने लगा और ज्वर के बढ़ने में कमी ज्ञात होने लगी (१०० अंश तक ताप बढ़ता था) पाखाना दोनों समय साफ़ होने लगा और भोजन में रुची भी होने लगी। केवल रोटी, शाक लौकी, तोरी और मूली बिना बिना घी के बनी हुई, और बिना मीठे के थोड़ा सा दूध दिया गया। चेहरे की स्याही कम होने लगी। इन सब बातों ने रोगी के विश्वास को बढ़ाया।

१० दिन पीछे मध्याह्न के हिपबाथ के बदले सिट्ज़बाथ २ या ३ दिन ही लिया गया होगा कि एक दिन ज्वर कुछ अधिक हो गया अर्थात् १०३ होगया। रोगी से पहिले ही कह दिया गया था कि ज्वर का बढ़ना भी सम्भव है अतः ज्वर बढ़ने से और कुछ डर नहीं हुआ। परन्तु अगले दिन जब ज्वर उतरा तो समस्त धड़ को पसीना लाकर उतरा। इसी प्रकार एक दिन और भी कई दिन पीछे ज्वर बढ़ा, तो समस्त शरीर को अर्थात् हाथ और पैरों को भी पसीना लाकर उतरा। उसके पश्चात् ज्वर अधिक नहीं बढ़ा, दिन प्रति दिन घटता ही गया और १ मास के भीतर ही प्रातः ९७ और तीसरे

पहर को ९७।। या ९८ अंश की गर्मी रही, अर्थात् ज्वर जाता रहा। अगले महीने में कभी कभी स्टीमबाथ भी लिये गये। रोगी अब (नवम्बर १९१४) आरोग्य हैं। परन्तु भविष्य में रोग से सुरक्षित रखने के लिए अवश्यक है कि चिकित्सा को १ साल तक बीच बीच में कुछ दिनों के लिये छोड़ छोड़ कर बराबर करते रहे। सात्विक भोजन के सेवन पर सदैव ही अवश्य दृष्टि रक्खें। और स्वास्थ्य रक्षा के उन नियमों पर जो "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" नाम की पुस्तक में बतलाए गये हैं। आरूढ़ होवें।

----

(४) हस्तमैथुन से हानियां, शरीर का घुलने लगना, कब्ज़, क्षुधा का अभाव, मूत्र पीड़ा और बलहीनता।

मई सन् १९११ ई० में एक सभ्य पुरुष* जिसकी अवस्था कोई २१ वर्ष की होगी मेरे पास आया। उस समय उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय थी वह १०० डग कठिनाई से चल सकता था। शरीर बिल्कुल पिञ्जर हो गया था। देखने से क्षई का रोगी जैसे होता है, प्रतीत होता था। थूक प्रति समय मुंह से जाता था। क्षुधा कुछ भी न थी, परन्तु एक दो रोटी बिना भूक के ही केवल इस विचार से खा लेता था कि बिना खाये हुए जीवन कैसे रह सकता है। पाखाना आठ-आठ दिन तक नहीं होता था, और जब कभी होता तो गुदा को बाहर से तरी पहुंचने पर कठिनता से होता, और बहुत थोड़ा ऊंट की मैंगनी सा होता। वह इन्ट्रेन्स तक अंग्रेजी पढ़ा था परन्तु रोगी होने के कारण उसे स्कूल छोड़देना पड़ा था। उस को वास्तव में क्षय रोग फेफड़े का तो न था परन्तु उसके शरीर की सब धातु क्षीण हो गई थी। हालत पूछने से विदित हुआ कि उसकी इस दशा को प्राप्त होने का करण हस्तमैथुन था।

यह पाप उससे संभवतः एक साल तक हुआ था जब कि उसकी अवस्था १५,१६ वर्ष की थी। जब उसने इस पाप का कुफल देखा तो वह उसके करने से विमुख हुआ परन्तु उसके शरीर को पर्याप्त हानि पहुंच चुकी थी।

औषधियों द्वारा उसने कई साल तक सर्व प्रकार की चिकित्सा की थी, परन्तु कुछ लाभ न हुआ और उसके रोग ने उसे उपरोक्त दशा को पहुंचा दिया।

इस नवीन जल-चिकित्सा में पूर्ण विश्वास रखते हुए उसने चिकित्सा प्रारंभ की और प्रतिज्ञा की कि जो कुछ बतलाया जावेगा वही आहार वह करेगा, उसकी

* यह पुरुष विवाहित होकर अब (१९२३ में) कई बालकों का पिता हो गया है।

दशा ऐसी संकटापन्न थी कि यदि वह बतलाये हुए आहार पर न चलता तो उसका नीरोग होना मेरे विचार में सम्भव न था।

प्रातः और तीसरे पहर को उसको नित्य हिपबाथ कूप के सादा जल में १०–१२ मिनट के दिये गये। जिनके पश्चात् यथा शक्ति टहलना और वस्त्र ओढ़ कर लेट जाना। भोजन के लिये गेहूं के मोटे और विना छने हुए आटे की लपटी, जो कि विना घी और बिना मीठे के केवल जल में पकाकर बनाई जाती थी, और लौकी का शाक, केवल नमक और जल से पका हुवा, आदि का प्रयोग किया गया।

इस प्रकार चलने पर ३–५ दिन में ही उसको एक पाखाना दिन रात में स्वयं आने लगा। ३–४ दिन तक उसकी ऐसी ही दशा रही। उसके पश्चात् फिर कई दिन तक पाखाना नहीं आया। विचार हुआ कि रोगी ने कोई गरिष्ट भोजन कर लिया होगा। पूरे अनुसन्धान से विदित हुआ कि रोगी ने केवल बताई हुई वस्तु ही ग्रहण की थी, परन्तु बहुत क्षुधा लगने के कारण उसने लपटी २–३ दिन तक पहिले से द्विगुणी खाई थी। उसके आमाशय में ऐसे हलके भोजन को एक थोड़ी ही मात्रा में पचाने की शक्ति शेष थी, अधिक के लिये आंते बाहर निकालने की शक्ति नहीं रखती थीं। फिर दो तीन दिन लपटी की मात्रा कम कर दी गई परन्तु उससे भी पाखाना नहीं आया। तब रोगी के आहार में परिवर्तन कर दिया, लपटी के स्थान पर गेहूं का कच्चा, सूखा दलिया थोड़ा थोड़ा खिलाया गया और उसके संग एक टुकड़ा ककड़ी या खरबूजे का दिया गया। दो ही दिन ऐसा करने से उसको एक बार पाखाना आने लगा। १५ दिन में उसमें इस भोजन से और हिप और सिटज बाथ से, आधे मील चलने की शक्ति आगई पेशाब जो जलन के संग आता था उसकी जलन भी कम हो गई। इस बीच में रोगी के पेडू पर कई दिन तक पिंडोल की पट्टी बांधी गई, परन्तु एक ही बार पाखाना आया।

एम मास चिकित्सा करने पर रोगी को अपनी दशा सुधरने का विश्वास हो गया और वह अपने घर चला गया और वहां बताई हुई चिकित्सा करता रहा। तीन चार दिन तक तो कच्चा दलिया चबा चबा कर खाने में उसको उसमें कुछ स्वाद न आया। परन्तु फिर वह कहने लगा कि वही भोजन उसको अत्यन्त स्वादिष्ट लगता है, और उसका चित उसको ही अधिक मात्रा में खाने को चाहता था। ३ हफ्ते में दोनों समय मिलाकर १० तोले के अनुमान से कच्चा दलिया खाने लगा। उससे कह दिया गया था कि जब तक रोटी पचाने की शक्ति उसमें न आ जावे रोटी कदापि न खावे। और शनैः शनैः रोटी खावे और दलिया छोड़ता जावे।

छः मास और चिकित्सा करने पर उसने मुझे लिखा कि वह ४ रोटी अच्छी तरह पचा सकता है। अपनी खेती का काम करता है, और एक दिन वह ११ मील चल कर पुष्कर स्नान करने गया।

२ जून सन् १९१२ ई० को ठीक एक साल पश्चात् वह मुरादाबाद में फिर मेरे पास आया तो मैं उसको देखकर और आवाज़ से भी न पहचान सका, उसका बदन भर आया था और सूरत, शकल, आवाज़ सब बिलकुल निराली हो गई थी। उसके पश्चात् उस मनुष्य ने अपने ग्राम में बहुत से रोगियों की चिकित्सा सफलता के साथ करी और अब तक आरोग्य है।

सभ्य पाठकगण, इस रोगी के चरित्र को पढ़कर निम्न लिखित बातों पर ध्यानधरें।

(१) हस्त मैथुन से स्वास्थ्य की दशा कैसी ख़राब हो सकती है। इसकी बुराई की ओर समझदार बच्चों और नवयुवकों का ध्यान दिलाने में शर्म न करें।

(२) इस जल चिकित्सा के करने में धैर्य्य को काम में लावें।

(३) हलका सादा, और सात्विक भोजन ग्रहण करें।

(४) चिकित्सा करने में भोजन कम खायें, सात्विक और हलका भोजन भी अधिक खाने से रोग से मुक्त होना कठिन है।

---

५ माता पिता की ओर से बच्चे का जन्म रोगी से ही होना और इस कारण मुंह में छाले पड़ पड़ कर छोटा ही मर जाना, गर्मी (सिफ़लिस) अर्थात् उपदंश और उसका पीढ़ियों तक उपद्रव।

एक सभ्य पुरुष मास्टर .... के बच्चे ३—४ दिन के होकर मरजाया करते थे। बच्चों के मुख और शरीर में छाले पड़ २ कर और उसके कष्ट से रुदन कर १—२ दिन में मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे। इस प्रकार ९—१० बच्चे मर गये। कोई चिकित्सा सफल न हुई। स्त्री पुरुष दोनों को कोई रोग अर्थात् गर्मी (उपदंश) अथवा सोजाक का कभी न हुआ था और न उनमें कोई चिन्ह इन रोगों का था। जल चिकित्सा करने का विचार हुआ तो पता लगाने से ज्ञात हुआ कि उनकी स्त्री के पिता को किसी समय बड़ा कष्टदाई उपदंश का रोग हुआ था। निश्चय यह उसी का प्रभाव था जो उस स्त्री के बच्चे उपरोक्त रीति में मृत्यु को प्राप्त हो जाया करते थे। उस स्त्री की चिकित्सा एक वर्ष करने पर जो बच्चा पैदा हुआ उसको पहिले बच्चों से कुछ कम कष्ट हुए, परन्तु वह भी ७—८ दिन ही में मृत्यु को प्राप्त हुआ। चिकित्सा का प्रभाव अवश्य प्रतीत हो गया, माता की जो चिकित्सा की गई थी उसने ही इस बच्चे को कम कष्ट दिया था। एक साल स्त्री की फिर चिकित्सा की गई और ध्यान हुआ कि अब जो बच्चा जन्मे उसकी भी यदि चिकित्सा जन्म लेने के दिन से ही जल के स्नानों से की जावे तो बच्चे का जीवित रहना सम्भव है।

बच्चा जो उत्पन्न हुआ वह पुत्र हुआ, उसी दिन से बच्चे को १, २ हिपवाथ २, ३ मिनट के दिये गए। उसके पश्चात् माता की गोद में गर्मी लाने के लिये दे दिया गया। ३, ४ दिन पीछे बच्चे के मुंह में और कुल शरीर पर छाले पड़े और कष्ट भी उन्हों ने दिया परन्तु औरों से कम। इस समय उस बच्चे को एक हलका स्टीम बाथ ८, १० मिनट का दिया गया और उसके पश्चात् हिपबाथ। ऐसा करने से छाले कम होने लगे और ४ दिन में जाते रहे, और यह बच्चा अच्छा हो गया। एक साल तक बच्चे को १ हिपबाथ करीब २ रोज़ाना दिया गया, वह बच्चा अब १० वर्ष का है और अच्छा जीता जागता है और बड़ा जहीन है।

इससे सिद्ध होता है कि (१) माता पिता के रोग का उनकी सन्तान पर कैसा प्रभाव पड़ता है। (२) उपदंश आदि इसी प्रकार के रोगों से बचने की कैसी आवश्यकता है यदि अपनी नसल को रोगों से बचाना मंजूर है। (३) माता पिता से आए हुए रोग छोटे पन में अच्छे हो सकते हैं। (४) आरोग्य संतानोत्पत्ति के लिये माता पिता को भी स्वस्थ रहने की आवश्यकता है।

---

६ श्वांस अर्थात् दमा

एक मनुष्य को कई वर्ष से श्वांस का रोग था, महीने में १०, १२ दिन में दमें का दौरा होता था। उस समय वह शय्या पर से भी कठिनता से उठ सकता था। उसके भाई ने मुझसे उसकी दशा वर्णन की और कहा डाक्टरी और हकीमी चिकित्सा करने से भी उसको आराम नहीं हो सका है। यह बात सर्द ऋतु की है मैंने कहा कि रोगी को इस ऋतु में ठंडे जल में बैठने से बड़ा संकोच होगा और विशेषकर श्वांस के दौरे के समय में। अतः उत्तम होगा कि रोगी की चिकित्सा दौरों के बीच के दिनों में की जावे जिससे दूसरे दौरे के समय आने तक १७, १८ दिन उसको चिकित्सा करने को मिल जावे, जिससे यदि अगला दौरा बन्द न हुआ तो भी पहले दौरों से कम कष्टदाई होगा।

यह समय वह था जबकि मैं इस जल चिकित्सा के प्रत्येक स्नान के प्रभाव का अनुभव कर रहा था। बहुत से लोग और कोई २ डाक्टर लोग जिनको यह ध्यान था कि इस जल चिकित्सा से उनको हानि पहुंचेगी, यह कहा करते थे कि इसमें केवल स्टीम-बाथ ही एक चिकित्सा का अङ्ग ऐसा है जिससे विजातीय द्रव्य प्रत्यक्ष निकलता दिखाई देता है और यही फल दायक है और ठंडे स्नान (अर्थात् हिप और सिटिज़ बाथ) हानि कारक और गठिया आदि उत्पन्न कर देवेंगे। इस कारण से इन ठंडे स्नानों के प्रभावों को अनुभव करने के अर्थ में किसी किसी रोगी को कुछ दिन केवल ठंडे ही स्नान कराये। इसी हेतु इस रोगी को भी मैंने कहा कि उसको केवल सिटिज़ बाथ ही लेना चाहिए।

दिन में दो दो बार यह स्नान २०, २५ मिनट के लिये जावें, उसके पश्चात् टहला जावे अथवा गर्म वस्त्र ओढ़ कर लेटा जावे जिससे फिर गरमाई आ जावे, और जहां तक हो सके स्वच्छ वायु में समय व्यतीत किया जावे जिससे फेफड़ों में साफ और शुद्ध वायु जावे। गेहूँ के मोटे, बिना छने हुए आटे की रोटी और हरी तरकारियां जो सादी रीति से बिना मसालों के पकाई हुई हों और फल खाने को बताए गए।

इस प्रकार चिकित्सा करने पर उसको चिकित्सा आरम्भ करने के पश्चात् श्वांस का दौरा ही नहीं हुआ। उसने इसी प्रकार चिकित्सा ४ मास तक की। और जब गर्मी की ऋतु आई तब उसने हिप बाथ भी लिये, और स्टीम बाथ भी लिये। लगभग १५ वर्ष हो गये उसको श्वांस का कोई रोग नहीं हुआ।

———

७ बचपन से न्यूमोनिया की बान

एक भद्र पुरुष को बचपन से न्यूमोनिया हो जाया करता था, युवावस्था में भी उनको इसकी बान हो गई थी, ठंड लगने से उनके दोनों अथवा एक फेफड़े पर "न्यूमोनिया" का असर हो जाता था। इसके अतिरिक्त उनको गुर्दे का दर्द भी कई साल से होने लगा था। और दौरा पड़ने पर इसमें बहुत कष्ट होता था।

पेचिश भी पहले उनको हो चुकी थी जिसके औषधियों द्वारा दूर होने पर दर्द गुर्दा पैदा हो गया था। जल चिकित्सा में उन्होंने बारी बारी से हिप बाथ १५, २० मिनट का और सिटिज़ बाथ २० मिनट का लिया और कई सप्ताह तक प्रत्येक सप्ताह सब शरीर का एक स्टीम बाथ २५, ३० मिनट का लिया। भोजन में रोटी और शाक (कंद तरकारिया नहीं दी गई) और गेहूँ का दलिया और दूध दिया गया। चिकित्सा करने पर करीब २ तीन सप्ताह व्यतीत होने पर पेचिश की बीमारी फिर लौटी, परन्तु कष्टदाई न थी। जल चिकित्सा जारी रक्खी गई, तो एक सप्ताह में वह पेचिश दूर हो गई। इस सप्ताह भर पाखाने में कई बार बहुत २ सी गिरह मल की निकली जिनमें आंव भी लिपटी हुई थी। ज्यों ज्यों यह गिरह निकलती थीं रोगी की तबियत हल्की और आनन्दित प्रतीत होती थी। (यह पुराना मल था जिसके कारण पहिले पेचिश हुई थी, जो औषधियों से दबादा गई थी, परन्तु पुराने सूखे मल के टुकड़े आंतों में रह गए थे जो अब चिकित्सा करने से फूले और निकले) पेचिश जब जल चिकित्सा करते करते अच्छी हुई और कुछ दिन चिकित्सा और की गई तो कई बार थोड़े चिन्ह न्यूमोनिया के प्रगट हुवे जो चिकित्सा जारी रखने पर स्वयं दूर होते गए। इन सब छिपे हुवे रोगों को शरीर से बाहर निकालने

में ३ मास लगे। रोगी ने कोई दो मास चिकित्सा और की, और तब से उपरोक्त रोगों में से उसे कोई रोग नहीं हुआ जिसको १२ वर्ष हो गए।

---

८ पेड़ू का फटना, मूत्राशय की जलन, हाथ पांव और आंखों की जलन, जमाल गोटे का जुलाब और सलाई डालने के उपद्रव।

एक रोगी ने एक बार कुछ दिनों तक मवाद को तर करने वाली औषधियां सेवन करके, जुलाब की औषधि खाई जिससे उसको बहुत ही दस्त आए और कई दिन तक आते रहे। उसी में उसका पेशाब भी बन्द हो गया था। डाक्टर से सलाई के द्वारा निकलवाया गया। कई दिन में दस्त तो बन्द हो गए। परन्तु कुछ दिनों पीछे यह पता लगा कि जमाल गोटे की गोलियां थीं जिनसे ऐसे दस्त आये थे।

दस्त बन्द होने के पश्चात् मूत्राशय में बड़ी जलन रहने लगी, मूत्र बन्द हो गई, दो तीन मिनट भी बैठना कठिन हो गया। बैठने से कमर और पेट चारों ओर से फटते हुए प्रतीत होते थे। लेटे रहने से ही आराम मिलता था। चलने फिरने में कष्ट होता था। हाथ पैरों और आंखों में जलन रहती थी, बवासीर भी उसको होगई। रोगी बहुत निर्बल हो गया था। उसने छः मास तक हकीमों और डाक्टरों की दवाएं सेवन कीं परन्तु रोग कम न हुआ। रोगी और भी निर्बल हो गया, और उसको यह निश्चय हो गया कि अब कोई चिकित्सा उसको लाभ न पहुंचावेगी।

उपरोक्त दशा में रोगी से कहा गया कि यदि वह ईश्वर पर भरोसा रखता हुआ इस "कुहनी चिकित्सा" की शरण लेवें और बिना इस बात के विचारे हुए कि नतीजा क्या होगा इस चिकित्सा को ३ मास भी यदि थोड़ा थोड़ा यथाशक्ति करे तो उसको लाभ उठाने की आशा रखनी चाहिए। चूंकि उसको अन्य प्रतिष्ठित चिकित्साओं से कोई लाभ न पहुंचा था और उनको आर से निराश हो गया था। उसने इस नवीन जल चिकित्सा विधि से चिकित्सा करना स्वीकार किया।

प्रथम उसको दो तीन मिनट के हिपबाथ बताए गए, परन्तु इनको लेने में उसे कष्ट होता था। हिप बाथ बन्द करके उसको २, ३, ४ मिनट के सिटिज़ बाथ कराये गए। चूंकि वह एक समय २, ३ मिनट से अधिक बैठ नहीं सकता था उसको दो दो तीन तीन मिनट के सिटिज़ बाथ प्रतिदिन कई बार लेने बतलाए। उसने ऐसा ही किया। एक मास तक कुछ हानि वा लाभ न मालूम हुआ। उसके पश्चात् यह प्रतीत होने लगा कि रोग रुका हुवा है बढ़ता नहीं, दूसरे मास में भी रोग स्थिर रहा परन्तु

अब रोगी एक बार में ६, ७ मिनट बिना कष्ट के बैठ सकता था, अतः सिटिज़ बाथ भी ६, ७ मिनट के लेने लगा और कुछ २ टहलने लगा, तीन महीने पश्चात् वह ३ फर्लाङ्ग टहले लगा और कुछ रोटी भी खाने लगा। इससे पहिले केवल दलिया और शाक खाता था या कभी २ कोई फल भी। उसकी बड़ी तकलीफ़ देने वाली बात अर्थात् पेडू का फटना और मूत्राशय की जलन प्रति मास कम होने लगी और उसको अपने आरोग्य हो जाने का अब निश्चय हो गया।

६ मास के अन्दर ही उसका पेडू का फटना जिससे उसको बड़ा कष्ट था और बैठा नहीं जाता था, दूर होगया, और सब बातों में भी उसको फ़ायदा मालूम होन लगा। मूत्राशय की जलन एक साल में जाती रही। मसाने पर, लिंग के नीचे सीवन पर कई सप्ताह तक पिंडोल की टिकिया रात को ऊनी वस्त्र से ढककर बांधने से इसमें अधिक लाभ हुवा। लगभग दो साल में आंखों और हाथ पांव को जलन दूर हो गई।

रोगी को पहिले ६,७ मास तक केवल सिटिज़ बाथ ही दिये गये थे। उसके पश्चात् कभी २ हिपबाथ भी थोड़ी २ देर का, ८४, ८६ दरजे फेरन हाइट के पानी में दिया गया। दो वर्ष पश्चात् यह प्रतीत होने लगा कि अब नया और शुद्ध रक्त शरीर में बनने लगा है। वह रोगी अब अच्छा है। अभी बवासीर की शिकायत कभी २ हो जाती है। यह रोग उसको पहिले पहल दस्तों की उपरोक्त औषधि खाने से दस्त आने के पीछे ही प्रगट हुवा था।

आंखों की जलन दूर होने से पहिले रोगी को चिकित्सा करने से पहिले कई बार ज्वर कई दिन तक थोड़ा आया जो अपने आप ही चिकित्सा करते रहने से जाता रहा। प्रत्येक बार ज्वर से मुक्त होने पर रोगी को अपनी दशा में उन्नति प्राप्त होती हुई प्रतीत होती थी। सन बाथ भी कई बार दिए गये और उन्होंने भी ज्वर को भीतर से निकाल कर बाहर लाकर दूर करने में बड़ी सहायता दी।

---

६ "अंगुली का घाव"

एक भद्र पुरुष की दाहिने हाथ की तर्जनी अंगुली के एक पोरवे में किसी कीड़े के काटने से अथवा किसी और कारण से एक छाला पड़ गया। डाक्टर ने उसके छाले को काट कर औषधि लगा दी। ज़ख्म बढ़ता गया ज्यों २ उसकी चिकित्सा की गई। १॥ मास डाक्टरी चिकित्सा से, जो दो असिस्टेन्ट सर्जनों ने की थी अंगुली अच्छी न हुई। सब अंगुली ऐसी हो गई जैसे पकने से फूल जाती है और उसमें दुर्गन्धित पीप निकलती थी। ऐसी दशा में उस भद्र पुरुष ने अपने एक मित्र के कहने से मेरी सम्मति लेकर जल चिकित्सा आरम्भ की। ठंडे पानी की गद्दियां जो ३, ४ घंटे में बदल दी जाया करती थीं, और आरम्भ के दिनों में स्थानिक स्टीमबाथ से जो,

अंगुली को कई दिन तक नित्य दिया गया अंगुली की बिगड़ती हुई दशा शीघ्र ही सुधरने लगी और ५, ६ सप्ताह में बिल्कुल अच्छी हो गई। कभी २ हिप और सिट्ज़ बाथ भी दिये गए थे।

---

१० ऊंचे दर्जे का बुखार कब्ज़, डकार बहुत आना, जल अथवा औषधि का भी न पचना, निद्रा का न आना और अत्यन्त बेचैनी।

एक बार मेरे एक मित्र को जो कि एक दफ्तर के हेड क्लर्क हैं बुखार आया। कई दिन तक बुखार अधिक ही रहा। बेचैनी अत्यन्त थी। क़ब्ज़ भी था। निद्रा नहीं आ सकती थी क्यो कि डकारें भी बहुत आती थीं, (एक मिनट में १०–१२)। औषधि जो दी जाती थी और जल तक भी मुंह के राह तुरन्त गिरादी जाती थी। डाक्टरों ने Bismuth बिसमथ और अन्य औषधियां दी थीं परन्तु ६—७ दिन से यही दशा थी। रोगी को चंद मिनट एक जगह चैन नहीं था, कभी खाट पर कभी फ़र्श पर। इलाज एक प्रसिद्ध हिन्दुस्तानी सिविल सर्जन का हो रहा था। जब रोगी का रोग अच्छा होता न देखा तो उनके इष्ट मित्रों ने उनके पिता को जो पेन्शनर डाक्टर थे तार भेज कर बुलवाया।

रोगी से जल चिकित्सा के लिये कहा गया था परन्तु उसको विश्वास न था कि बिना औषधि के रोग से निवृति सम्भव है। उसके पिता ने भी कुछ चिकित्सा १ दिन की, परन्तु औषधि न पची तो यही कहा कि जब औषधि अन्दर ठहरती ही नहीं तो उसका प्रभाव कैसे हो सकता है ?

वह ठंडे जल में बिठाने से डरते थे कि कहीं रोगी को निमोनिया Pneumonia (फेफड़ों में सूजन और जलन हो जाने का रोग है जिसमें मृत्यु शीघ्र प्राप्त हो सकती है) न हो जावे। जब उनको समझाया गया तो समझ में आया और जब स्मरण हुआ कि एक डाक्टर सिविल सर्जन को एक लड़की की चिकित्सा दोनों फेफड़ों में निमोनिया हो जाने की दशा में डाक्टरों ने लाहौर में, उसको बर्फ से ढक कर की थी तो उनको विश्वास हुआ कि जल में केवल नाभी तक बैठाने से (जैसा कि हिपबाथ में किया जाता है) कोई भय नहीं है। यह उनसे ज़बानी वायदा करा लिया गया कि यदि कोई हानी प्रतीत न होवे तो कम से कम ३ दिन चिकित्सा अवश्य करनी होगी। यदि रोग बढ़ता हुआ प्रतीत होवे तो चिकित्सा छोड़ देने का उनको, अधिकार है।

ईश्वर का नाम लेकर चिकित्सा आरम्भ की गई। ८ बजे प्रातःकाल कूप के ताज़े जल में एक हिपबाथ आधे घंटे का दिया गया। ५ मिनट स्नान करने पर रोगी को शांति सी प्रतीत होने लगी और कहने लगा कि कैसा सुख है, स्वर्ग में

भी ऐसा ही आराम होगा और अफ़सोस करने लगा क्योंकि उसने इस चिकित्सा को कई दिन पहिले जब उससे कहा गया था, नहीं किया। हिप बाथ लेते लेते ही डकार कम हो गईं और निद्रा आती हुई प्रतीत होने लगी। ज्वर भी कुछ कम हो गया। रोगी को कपड़े पहना कर वस्त्र ओढ़ा कर लेटा दिया गया, उसको तुरन्त निद्रा आ गई। उसके पिता जी से कह दिया गया कि जब तक सोवे उसे सोने देवें क्योंकि जब ज्वर बढ़ेगा तो वह जागेगा। दो घण्टे में उसे (यदि वह जागे तो) १ हिपबाथ फिर आधे घण्टे का देना बताया गया, नहीं तो उसे सोने दिया जावे।

कोई दो घंटे में जब ज्वर अधिक हुआ तो वह जागा परन्तु बेचैनी की दशा कम थी, जल थोड़ा पिया वह पच गया। पेशाब भी हुआ।

एक हिपबाथ फिर दिया गया तो उसके पश्चात् वह कोई ४ घंटे सोया। एक हिप बाथ फिर दिया गया और फिर उसको निद्रा आ गई। रात में कोई स्नान नहीं कराया गया। ज्वर घटने लगा था सवेरे उसका ज्वर १००.दर्जे पर आगया, डकारें बहुत कम हो गईं, जल पचने लगा; परन्तु भूख नहीं थी। रोगी के पिता जी को कुछ तो डाक्टर होने के कारण और कुछ प्रेम वश यह विचार हुआ कि इसको दूध देना चाहिये नहीं तो बलहीन हो जावेगा यद्यपि उनको भली प्रकार कह दिया गया था कि जब तक कुछ भूख न मालूम हो तो कोई वस्तु सिवाय जल के उसे न देवें। रोगी को भूख न होने और उसके इन्कार करने पर भी उन्होंने उसे कुछ दूध दे दिया जो उनकी आज्ञा अनुसार उसे पीना पड़ा।

दूध नहीं पचा, थोड़ी देर में उलटी हो गई। शाम को यह हाल मालूम हुआ तो फिर कह दिया गया बिना रोगी की इच्छा के दूध कदापि न दिया जावे।

तीसरे दिन कुछ पाखाना आया, कुछ गांठें निकलीं तो भूख भी लगी। तीसरे दिन ज्वर और कम हो गया। चौथे दिन सब जाता रहा।

तीन हिपबाथ ज्वर रहने पर नित्य दिये गए। दूसरे दिन कुर्सी पर पेडू का स्टीमबाथ आधा घंटे दिया गया था और उसके पीछे तुरन्त एक घंटे का हिपबाथ। ज्वर उतरने के पीछे ५-६ दिन तक एक हिपबाथ और एक सिट्ज़बाथ दिया गया और फिर कई दिन तक केवल एक ही स्नान कराया गया। रोगी की पाचन शक्ति जब ठीक हो गई और वह ३—४ मील चलने लगा तो छोड़ दिया।

रोगी को थोड़ा और हलका भोजन भूख लगने पर देना चाहिये, बिना भूख के देना अथवा अधिक और गरिष्ठ भोजन हानि पहुंचाता है और रोग-मुक्त होने में अधिक समय लगता है, और किसी किसी का रोग आहार के अनुचित होने से नहीं भी जाता।

---

११ क्षय रोग की ओर झुकाव, माता या पिता का क्षय रोग में ग्रसित होना, ज्वर और खांसी।

एक बाबू साहब के कुल में क्षय रोग से उनके पिता और कई भाई मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे। बाबू साहब भी जन्म से फेफड़ों से कमजोर थे। 'मुखाकृति विज्ञान के ज्ञाताओं को उन्हें देख कर यही भय हो सकता था कि इनको भी यही रोग हो जावेगा यदि ठीक ठीक चिकित्सा रोग को रोकने वाली न की गई।

एक समय उनको कुछ ज्वर की दशा में रेल की यात्रा विवशतया करनी पड़ी, रास्ते में वर्षा और ओलों के कारण सर्दी अधिक हो गई और उनके पास काफी वस्त्र न था। ज्वर खूब बढ़ गया और खांसी हो गई। निद्रा, ज्वर व खांसी के कारण जाती रही। रात भर बैठे ही बीतती थी क्योंकि ज्वर के कारण और फेफड़ों में कुछ जलन के कारण जरा भी लेटने से दुखदाई खांसी उठती थी। दो तीन रोज डाक्टरी दवा खाई, लाभ न हुआ। अति कष्ट में देख कर उनसे कहा गया कि यदि आप "हिपबाथ" अथवा "सिट्ज़ बाथ" लेवें और दवा पीनी रोक देवें तो आशा है कि कष्ट शीघ्र ही दूर होगा यद्यपि पूरे आराम होने में कई दिन लगेंगे।

यह देख कर कि दवा से ज्वर और खांसी, किसी को कुछ भी चैन नहीं पड़ता है उन्होंने "सिट्ज़ बाथ" लेना स्वीकार किया। हिपबाथ की दशा में ठंडे जल में बैठने से उन्हें भय हुआ। ५ बजे शाम को उन्हें १५ मिनट का एक "सिट्ज़ बाथ" दिया उसके पश्चात् कुछ ओढ़कर लेटा दिया गया। क्योंकि ऋतु गर्मी की थी थोड़ा ही वस्त्र उढ़ाया गया। लेटने में खांसी न उठी और निद्रा जो तीन दिन से नहीं आई थी, आ गई।

तीन घंटे में ज्वर फिर बढ़ा तो आंख खुली और कुछ खांसी उठी, एक 'सिट्ज़ बाथ" १५ मिनट का और दिया गया जिससे खांसी बंद हो गई और रोगी को ५-६ घंटे की निद्रा आई। रात्रि में एक 'सिट्ज़ बाथ' और दिया गया फिर ज्वर कम ही पड़ता गया और दो तीन दिन में अर्थात् ४८ घंटे में ज्वर और खांसी पूर्ण प्रकार दूर हो गये।

उस रोगी ने मेरी सम्मति अनुसार साल भर से अधिक कुछ दिन छोड़ २ कर 'हिपबाथ' आदि स्नान लिये।

अब १२-१३ वर्ष हुए फेफड़ों के उस रोग ने जिसकी भेंट उसका पिता और कई भ्राता हो चुके थे, अर्थात् 'क्षय' ने उस पर अपना कुछ प्रभाव नहीं दिखाया। उसको एक बार पेचिश भी हुई थी जो इसी जल चिकित्सा से ही जाती रही थी।

१२ ज्वर का भोजन के पीछे तीसरे पहर बढ़ना, अंडकोश की सूजन।

एक सभ्य पुरुष जो उपरोक्त रोगों में ग्रसित थे मेरे पास कई वर्ष हुए आए।

किन्हीं किन्हीं डाक्टरों ने उनसे कहा था कि ज्वर के बढ़ने का कारण उनके सूजे हुए एक ओर के अण्डकोश में है। उसका नाम 'टर्किल' कहा कि यह उसमें है, अर्थात् 'क्षय' का मादा है।

उनका हाल सुनने से मेरे विचार में आया कि इनको पहिले एक समय में पेचिश हुई थी जो औषधियों से दबा कर आराम हुई थी, जिसके कारण उनकी यह दशा थी। मैंने उनसे कहा कि मेरी राय में जल चिकित्सा करने से कुछ दिनों में जब मल की सूखी गांठें उनके पाखाने में निकलेंगी और सम्भव है कि पेचिश भी हो जावे, तब आराम होगा। इस पर वह हंसे और कहा कि मेरा पेट तो कमर से लग रहा है इसमें ऐसा मल कहां है। मैंने कहा, मल सूख गया है, स्नानों से जब वह फूलेगा तब आंतों में से जहां वह चिपक रहा है, निकल सकेगा, इसमें कई सप्ताह लगने आवश्यक होंगे।

एक सप्ताह तक दोनों समय कूप के ताजे जल में ११, १२ मिनट का "हिपबाथ" कराया गया और उसके पश्चात् टहलना। आहार में रोटी और तरकारी सात्विक रीति से बनी हुई दी। कुछ दिनों पीछे रोगी की इच्छानुसार उसे दाल भात भी बता दिया गया। उसको दाल भात, दूध भात, प्रिय था। दूध भी सवेरे भोजन के साथ पीता था। १ सप्ताह के पश्चात् सुबह को "हिपबाथ" के बजाय सिटिज बाथ २५, ३० मिनट का ठंडे जल में दिया गया और शाम को हिपबाथ, पहिले के समान। दोनों समय ताजी हवा में स्नानों के पश्चात् वह परिश्रम के साथ टहलता भी था।

साप्ताहिक स्टीमबाथ कई सप्ताह तक दिया गया। पाखाना कुछ पहिले से अच्छा होने लगा परन्तु जैसा होना चाहिये वैसा नहीं। कई सप्ताह चिकित्सा करने पर और फिर कई दिन तक पेडू पर आधा घंटे तक पिंडोल की पट्टी बांधने पर उसके पाखाने में बहुत सख्त २ गिरह निकलीं, जिससे उसकी दशा पहिले से अच्छी प्रतीत होने लगी। कभी कभी एक दो पाखाना बेवक्त भी उसको होने लगा जिसके द्वारा भी पुराना मल निकलने लगा। ज्वर बढ़ना कई सप्ताह तक न रुका परन्तु फिर कम होते होते बिलकुल जाता रहा। कुछ मास तक तो रोगी का भार, बुखार दूर होने पर भी घटता गया जिससे उसको एक प्रकार की चिंता सी उत्पन्न होती थी यद्यपि उसमें फुर्ती और हलकापन और शारीरिक बल अधिक प्रतीत होता था। उसको देखने से भी इष्ट मित्र उसके चेहरे पर रौनक पाते थे।

इस रोगी ने मेरे बतलाने से चिकित्सा कुछ दिनों के लिए कभी कभी बन्द भी करदी। ऐसा करने से चिकित्सा का प्रभाव किसी दशा में अधिक प्रतीत होता है और रोगी को निर्बलता भी कम होती है, यद्यपि समय तो रोग से निवृत्ति प्राप्त करने में कुछ अधिक लगता है।

कई मास, लगभग एक साल चिकित्सा इस प्रकार करने से उसके सब रोग जाते रहे और उसका वजन जो कम हो गया था वह भी ठीक हो गया। इस सभ्य पुरुष ने इस

चिकित्सा को साफल्य के साथ बड़े रोगों में जैसे टाइफ़स आदि रोग हैं अनुभव किया, और बहुत मनुष्यों को इस चिकित्सा का अनुभव करा कर लाभ पहुंचाया है।

———

१३ पुरानी मधु प्रमेह अर्थात् डायाबिटीज, निद्रा का न आना, अत्यन्त भूख प्यास लगना, पेशाब का बार बार आना, डकार का बन्द हो जाना, सख्त कब्ज़, खलड़ी के नीचे से पीप का आना, और खलड़ी जन्म से ऐसी होना जो पीछे को न खुलती हो। पुराने दाद पेट और जांघों में।

उपरोक्त रोगों और दशाओं में एक ब्राह्मण ग्रसित था जो कि १८९७ ई० में मेरा बुलाया हुआ मेरे पास आया जिसको मैंने अपने और उसके जानने वालों से यह सुनकर कि वह लाइलाज है और बड़े बड़े हकीम आर डाक्टरों ने उसे जवाब दे दिया है, उस पर इस जल-चिकित्सा की परीक्षा करने को बुलाया था। उसकी अवस्था लगभग ३५, ३६ वर्ष की होगी। क़द का लम्बा और दर्मियानी शरीर का वह मनुष्य इस समय था, और बल इतना था कि २, ३ मील तक चल फिर सकता था।

थूक बहुत आता था, पाखाने की यह दशा थी कि चार २ पांच २, दिन में एक बार और वह भी ऊंट की मेंगनी जैसा और कष्ट के साथ होता था। वह कहता था कि उसे ६ महिने से निद्रा आई ही नहीं थी, । हर समय रंज में रहने वाला और जीने से हाथ धोये हुए ऐसी दशा में था, जब वह मेरे पास मेरे बुलाने से इलाज कराने आया। क्योंकि बिना उसकी प्रेरणा के उसको चिकित्सा कराने बुलाया था उसने इसको कुछ दैवी कृपा समझा और यह विश्वास रखते हुए कि ईश्वर उसकी अवश्य सहायता करना चाहता है चिकित्सा प्रारम्भ की। पेशाब का गाढ़ापन अर्थात् Specific gravity १०·४२ दर्जे की थी और जांच करने से विदित हुआ कि मीठा भी उसमें बहुत है। चींटे और मक्खियां बहुत सी उसके पेशाब पर इकट्ठा हो जाया करती थीं। भोजन अधिक करता था और एक दो घंटे में उसे प्यास लगती तो एक लोटा जल पी लेता और थोड़ी ही देर में कई बार पेशाब आकर यह प्रतीत होने लगता कि मानों उसके पेट में कोई भोजन बाक़ी नहीं है।

आरम्भ के दिनों में उसे रोजाना सवेरे और शाम दो घंटे दिन से दो हिपबाथ, बीस मिनट के, ताजा कुएं के जल में दिये गये और उसको स्नानों के पश्चात् जङ्गल में टहलने से गर्माई लानी बतलाई गई। एक सप्ताह के अन्दर ही उसको एक दो पाखाना

बहुत खुलकर और अत्यन्त दुर्गन्धित होने लगा। प्रथम सप्ताह के अन्दर पेशाब १०·३५ दर्जे पर आगया। दूसरे सप्ताह में पेशाब १०·२६ दर्जे हो गया और मीठा भी उसमें कम हो गया तथा दस्त एक दो खुलकर हो गये। फिर एक समय उसे आधे घण्टे का सिट्ज़बाथ हिपबाथ के स्थान में दिया जाने लगा। पेशाब के दर्जे में फिर कमी होनी बन्द हो गई।

लगभग एक मास तक चिकित्सा करने पर जिसमें उसे दो स्टीमबाथ भी दिये गये उसको दस्तों का क्राईसिस हुआ। कई दिन तक ८–१० दस्त बड़ी २ मात्रा में और बहुत ही बदबूदार रङ्ग बरङ्ग के उसे आए। मैं उस समय किसी कारण से बाहर कई रोज के लिये गया हुआ था। कई दिन दस्त के बराबर आने से वह मनुष्य घबराकर अपने घर चला गया और वहां उसने एक वैद्य की औषधि जो दस्तों को बंद करने वाली था, खाई। दस्त आने से उसकी तबियत हलकी प्रतीत होने लगी थी परन्तु उनके बन्द करने से वह बात जाती रही और उसको ज्वर हो गया जिसको औषधियों से उसने रोका।

कुछ दिनों पश्चात वह फिर मेरे पास आया और सारा ऊपर कहा हुआ वृत्तान्त सुनाया जो उसकी दशा मेरी अनुपस्थिति में हुई थी। चिकित्सा फिर आरम्भ की गई और उसका रोग कम होता गया। चिकित्सा यह थी कि प्रति दिन एक सिट्ज़बाथ आधे घण्टे का सवेरे बासी ठंडे जल में और शाम को दो घण्टे दिन से एक हिपबाथ आधा घण्टे का कूये के ताजे जल में दिया जाता था। प्रत्येक सप्ताह में एक स्टीमबाथ पूरे शरीर का आधे घण्टे का देकर तुरन्त ही एक हिपबाथ आधे घण्टे का दिया जाता था। विदित हो कि इस रोगी को कई स्टीम बाथ में पसीना आया ही न था जिससे प्रतीत होता था कि त्वचाके छिद्र भीतरी ओर से विकारी वस्तु (फ़ारेन मेटर) से भर कर बन्द हो गए थे। एक मास तक उसने मेरे पास रह कर चिकित्सा की और अच्छा होता गया। पेशाब भी उसका १०·२२ तक आगया और प्यास व भूख जो पहले बहुत ही अधिक थी वह भी कम होगई परन्तु निद्रा उसको कोई ४ महीने पर आई होगी।

एक मास चिकित्सा करके वह फिर अपने घर चला गया और वहां इसी चिकित्सा को करता रहा। वहां कुछ दिनों चिकित्सा करने पर उसको फिर ज्वर होगया। घबराकर उसके घर वालो ने फिर जल चिकित्सा बंद करदी और वैद्य जी की औषधि खिलाई जिससे फिर ज्वर शान्त हो गया। घर छोड़कर वह फिर आया और यह वृत्तान्त कहा, जिससे यह विदित हुआ कि घर जाकर वह यह स्नान घंटों किया करता था इससे ज्वर के "क्राईसिस" एक बारगी होते जाते थे और उसके घरवाले घबराकर चिकित्सा छुड़ाकर वैद्यों की औषधि से उसका ज्वर रोक देते थे। उसको बताया गया कि अधिक देर के स्नान न करे। उसके पास घड़ी न होने के कारण ऐसा होता

था कि समय न मालूम होता था, और वह यह भी समझा कि अधिक स्नान करने से लाभ जल्द होगा। फिर घर जाकर वह थोड़े २ स्नान आधे घण्टे के करता रहा, उसकी दशा सुधारती गई और कोई ८-६ मास चिकित्सा करने पर उसका पेशाब १०'१५ दर्जे पर आगया। पेट पर उसके बहुत पुराने दाद थे, वह भी छोटी २ फुड़ियां और आवले बन कर पक २ कर और सूख २ कर जाते रहे। उसने चिकित्सा को अपने घर पर जारी रक्खा।

एक साल से कुछ अधिक चिकित्सा करने से उसकी खल्लड़ी के नीचे से जो पीप आती थी वह बन्द हो गई और खलड़ी जो पीछे को पूर्ण प्रकार जन्म से ही नहीं खुली थी अब अपने आप खुलने लगी।

इस रोगी को कुछ सनबाथ भी दिये। एक दिन उसने भादों के महीने में जो सनबाथ लिया वह ऐसे समय लिया जब पक्की छत बहुत गर्म थी और तप रही थी, उस पर कम्बल बिछा कर लेटा तो बहुत गर्मी नीचे से लगी मानो शरीर जल जाता था। इस गलती का यह फल हुआ, कि कई दिन तक उसने शरीर में पतंगे से लगते रहे और उसने १०-१२ दिन दो ठण्डे बाथ के बदले तीन ठंडे बाथ लिये तब वह कष्ट दूर हुआ।

कोई १८ मास कुल इलाज करने से उसकी सारी शिकायतें जाती रहीं और अब उस में बल भी पहिले से अधिक आगया है परन्तु चिकित्सा उसने बीच २ में कुछ दिनों छोड़ कर जारी रक्खी। पुरानी दशाओं में यह आवश्यक होता है कि चिकित्सा बीच २ में दस २ बीस २ दिन के लिये बंद भी करदी जाया करे।

३-४ मास यह चिकित्सा अपने घर पर ही करते रहने के पश्चात् उसके उपरोक्त रोग शांत हो गये थे। फिर मूत्र में कोई सफेद रङ्ग की वस्तु आने लगी जो खड़िया मिट्टी वा चूने के समान नीचे बैठ कर जमा हो जाती थी। इसको देख कर उसे घबराहट हुई हालांकि उसकी शारीरिक दशा पहिले से अच्छी थी और भीतरी सुख और शांति भी उसको आगये थे। इस समय घबड़ाया हुआ वह मेरे पास आया। मैंने विचार कर बताया कि अन्दर पेट की कोई गिलटियां चूनामय दशा को रोग के कारण पहुंच गई थीं और उनमें का चूना मूत्र के साथ निकलता है (देखो पृष्ठ २००-२०१) और कुछ काल में जब सब निकल जावेगा तो उसका आना बंद हो जावेगा। उसकी समझ में यह बात आगई और उसकी चिंता दूर हो गई। कोई तीन मास तक चूना सा निकलता रहा फिर स्वयं बंद हो गया।

यह मनुष्य कोई ७-८ साल तक जीवित रहा फिर किसी आकस्मिक सदमें से मृत्यु को प्राप्त हुआ। और चोट लगने तक मालूम हुआ कि अच्छी दशा में रहा।

इस रोगी से जब उसकी दशा का पिछला वृतांत पूछा गया था तो ज्ञात हुआ था कि उसको पहिले पहलवानी करने का शौक़ था और उसने दूध बहुत पिया था।

यह भी उसने कहा कि रोगी होने से पहले कोई १२, १४ मास तक उसने बराबर दिन में कई कई बार एक तांबे के विना क़लई हुए पात्र में चाय पका कर पी थी। इस प्रकार मालूम होता है कि तांबे का जहर भी उसके शरीर की इस रोगी दशा को प्राप्त होने का एक कारण था। यह मनुष्य हलवाई पेशा करने वाला था।

---

१४ अदृष्य फोड़ा अर्थात् कारबंकिल— Carbuncile

एकबार मेरी कमर में एक छोटी फुन्सी सी निकलती हुई प्रतीत हुई। प्रथम तो शाम के समय रीढ़ की हड्डी से कोई एक अङ्गुल बांई ओर हट कर कमर के बीच में कुछ खुजली सी और जलन सी मालूम पड़ी। उस जगह पर जरा खुजलाया गया परन्तु जलन और खुजलाहट कम नहीं हुई। ऐसी खुजलाहट थी जैसे लाल चींटी के काटने से होती है।

खुजलाहट और जलन बंद न होने पर एक हितैषी को दिखाया गया। तो उन्हों ने बताया कि छोटी सी फुन्सी हो गई है और सुर्खी कुछ अधिक दूर तक है। उनकी सलाह से गुलाबांस का पत्ता गर्म करके बांधा गया। इसमें जलन बढ़ती गई। कोई १ घंटे पीछे आटे की पुलटिस बांधी परन्तु कष्ट कुछ कम न हुआ बल्कि एक प्रकार का असह्य दर्द उसमें होने लगा जैसे कि कभी पहले देखा ही न था। उस समय तक मुझे अदृष्ट फोड़े के देखने का कभी अवसर न मिला था। मैंने दर्द के कारण यह अवश्य समझा कि यह कोई नये प्रकार का रोग है और इसकी चिकित्सा, सिवाय इस जल चिकित्सा के और किसी से करने में दर्द कम न होगा, क्योंकि गर्मी पहुंचाने में उसमें कष्ट बढ़ता था।

दो घंटे भी नहीं हुए थे कि पुलटिस बांधने से पीड़ा ऐसी बढ़ी कि जो सही न जा सकी। मैंने पुल्टिस अलग कर दी और पुराने साफ सफेद कपड़ों की चार तह की गद्दी बना कर और स्वच्छ ठंडे जल में भिगोकर और उसको थोड़ा निचोड़ कर कमर पर फुड़िया के ऊपर रखदी। गद्दी ऐसी बनाई गई कि फुड़िया की सुर्खी से १ अङ्गुल बढ़ी रहे। उसके ऊपर सफेद अच्छी मोटी ऊनी फलालेन का टुकड़ा जो गद्दी से एक अंगुल अधिक बड़ा और एक ही तह का था रख दिया और ऊपर से सफेद साफ पट्टी से उसे बांध दिया गया कि गद्दी अपने स्थान से हटने न पावे।

ऐसा करने से दो घंटे में ही पीड़ा बहुत कम हो गई और दो पहर के अंदर पीड़ा जाती रही। गद्दी दो दो घंटे में खोल कर फिर ठंडे जल में उसी प्रकार भिगो २ कर बांधी जाती थी। फोड़ा बढ़ता हुआ मालूम हुवा और एक दिन रात में ऐसा हो गया जैसे मुर्गी का अंडा, लेटी हुई दशा में होता है। आधा कमर के अन्दर और

आधा बाहर प्रतीत होता था। अगले दिन से जल का अर्क खींच कर केवल उससे गद्दी भिगोई गई, क्योंकि वर्षा का जल प्राप्त नहीं था।

गद्दियों के अतिरिक्त एक हिपबाथ १५-२० मिनट का, कूप के ताजे जल में, और एक सिटिजबाथ ३० मिनट का घड़ों में रक्खे हुए ठंडे जल में रोजाना लिया गया। यदि पीड़ा गद्दियों से न कम हुई होती तो ठंडे स्नानों और स्टीम बाथ से कुछ काल में अवश्य दूर हो जाती, ऐसी दशा में ठंडे स्नान नित्य लेने पड़ते! चूंकि जल चिकित्सा ही का आरम्भ, रोग के प्रगट होने के पश्चात् कुछ घंटों के अन्दर ही कर दिया गया था इस कारण पीड़ा शीघ्र नष्ट हो गई! यदि कई दिन तक औषधियों से चिकित्सा कराकर और चीर फाड़ कराकर और कष्टों को बढ़ा कर जल चिकित्सा करी जाती तो दर्द के दूर होने में भी देर लगती। इसका कारण पाठक गण जिन्हों ने पुस्तक का तीसरा भाग विचार पूर्वक पढ़ा है स्वयं ही जान लेवेंगे।

ठंडे स्नानों के सिवाय दो स्टीमबाथ भी पूरे शरीर के २०-२५ मिनट के लिये और उनके पश्चात् तुरन्त हिपबाथ और प्रथम सप्ताह में फोड़े को १५ मिनट के दो तीन स्थानिक स्टीमबाथ भी दिये गये। इतनी बात अवश्य रही कि जिस ओर फोड़ा था उस करवट से लेटा नहीं जा सकता था। फोड़े के दबने से पीड़ा होती थी। नींद भी आती थी परन्तु पहले से कुछ कम।

इस प्रकार चिकित्सा करने से फोड़े में तीसरे दिन कई छिद्र बन गये और उनमें से पीप रसने लगी। गद्दी दो २ घंटे में बदलनी पड़ती थी। रात्रि में नींद के कारण तीन २ चार २ घंटे में भी कभी कभी बदली गई। ११ दिन में फोड़ा बिलकुल अच्छा हो गया और फोड़े की जगह पर एक छोटा सा तिल के बराबर चिन्ह रह गया जो फिर अपने आप ही कुछ काल में जाता रहा।

कुहनी साहिब के सिद्धान्त की एक बात और भी देखने में आई कि भूख बहुत ही कम हो गई। दिन रात में आध सेर गाय का ताजा दूध और दो तीन आडू और लीची के फल के सिवाय कुछ भोजन न था। फोड़ा अच्छा होने पर भूख मालूम होने लगी तो कई दिन तक गेहूं का दलिया, फल तथा दूध, और फिर रोटी तरकारी दूध और फल खाए गए। ११ दिन में फोड़े ने इतना कमजोर कर दिया कि १ फर्लांग (२२० गज) चलना कठिन था। परन्तु साधारण सात्विक भोजन करने से ही १० दिन में चार मील बिना थके हुए चलने का बल आ गया। उसके पश्चात् अब तक कोई कार्बंकिल नहीं निकला। इसको १२ वर्ष के लगभग हो गए।

यह भी लिखना अनावश्यक न होगा कि जब फोड़ा दो दिन का ही हुवा था तब एक हमारे रिश्तेदार डाक्टर तजुरबेकार दैवयोग से आ गये और उन्होंने फोड़े

को देख कर कहा कि "यह तो कार्बन्किल है आप सिविल सरजन को बुलाकर दिखाइये और इलाज कराइये, किस ख़त में हो विना औषधि के इसका अच्छा होना सम्भव नहीं" परन्तु मुझे यह बात मालूम थी कि डाक्टरी में पुल्टिस अवश्य लगाई जाती है, जिसका मुझे दो घण्टे का ही अनुभव इस दशा में काफी हो चुका था, मैं किसी डाक्टर से इसकी चिकित्सा कराने पर राज़ी नहीं हुआ।

---

१५ आंखों में सुर्खी।

एक बच्चे की आंखें दुखने आई थीं। उसकी चिकित्सा एलोपैथिक रीति से की गई परन्तु आंखों की अत्यन्त सुर्खी नहीं गई। तेज़ २ औषधियों के लगाने और डालने से बड़ी पीड़ा होती थी और बच्चे के दुःख को देखना कठिन हो गया था। १५ दिन चिकित्सा करने पर भी लाली जैसी थी वैसी ही रही। इसका कारण यह था कि बच्चे की पाचन शक्ति बिगड़ी हुई थी, क़ब्ज़ भी था और भूख भी कम लगती थी। इन बातों पर डाक्टर साहब ने तनिक भी ध्यान नहीं दिया था।

बच्चे का कष्ट देख कर मैंने कहा कि क्यों जल चिकित्सा नहीं करते जो बच्चे को कष्ट भी न हो और आंखें भी ठीक हो जावें। मेरी प्रार्थना स्वीकार की गई, और जल चिकित्सा आरम्भ की गई। सुबह शाम हिपबाथ १० मिनट के दिये गये अगले ही दिन क़ब्ज़ दूर हो गया, भूख लगने लगी, आंखों की सुर्खी में भी कमी हुई। दो दिन हिपबाथ देने के पश्चात् तीसरे दिन पूरे शरीर का स्टीमबाथ १५ मिनट का दिया गया और फिर एक हिपबाथ तुरंत ही उसके पीछे। प्रथम तो स्टीमबाथ देने से आंखें खूब लाल हो गईं परन्तु दूसरे दिन सवेरे को लाली बहुत कम रह गई और दो दिन में केवल १ हिप और १ सिट्ज़ बाथ प्रतिदिन देने से बिल्कुल आराम हो गया। आंखें बहुत साफ़ हो गईं। इस चिकित्सा में उस बच्चे को जो ६ वर्ष का था कुछ भी कष्ट नहीं हुआ। स्नान करने से बच्चा प्रसन्न होता था।

---

१६ कै और दस्तों का आना, बदहज़मी।

एक बार मुझे अपने बाल बच्चों के सहित बड़ी यात्रा करनी पड़ी। खाने पीने की उस यात्रा में अनुकूलता न होने से मेरे एक ८ साल की उम्र के बच्चे को रात्रि के दो बजे दस्त और वमन (कै) होने लगे और पेट में कुछ २ पीड़ा भी हुई। रात्रि में कुछ चिकित्सा नहीं की गई। कई बार बच्चे को दस्त आए और वमन भी कई बार हुई। साढ़े तीन बजे कुछ आराम मालूम हुवा तो उसे सोने दिया गया। २ घंटे पश्चात् बच्चे की फ़िर वैसी ही दशा होने लगी और पेट में मीठा २ दर्द भी हुवा। विचार

हुवा कि किसी डाक्टर को बुलावें, फिर ध्यान हुवा कि बाथ ही क्यों न देवें। संयोग वश एक छोटा टब हमारे साथ था उसमें एक घड़ा ताजा कुए का जल डाल कर बच्चे को १० मिनट का एक हिपबाथ दिलाया गया जो उस बच्चे ने अपने हाथ से ही ले लिया। बाथ लेते ही जी मिचलाना बन्द हो गया, फिर कोई दस्त भी नहीं आया और पेट का दर्द भी तुरन्त ही दूर हो गया। १ घंटे पीछे उसे खूब भूख लगी तो उसको मूंग की दाल और चावलों की खिचड़ी दी गई। बच्चे को दूसरे बाथ की आवश्यकता ही नहीं हुई।

बच्चों पर इस चिकित्सा का प्रभाव युवा और वृद्धों से कहीं अधिक और शीघ्र होता है।

उन सभ्य पुरुषों की कुछ चिट्ठियां जिन्होंने आरोग्यता प्राप्त करने की इस नवीन चिकित्सा विद्या से अपने या दूसरों के रोगों में अद्भुत सफलतायें प्राप्त की हैं। इन चिट्ठियों और इनसे पाहले जो अनुवादक ने अपनी रिपोर्टें लिखी हैं उनको ध्यान पूर्वक विचारने से आशा है कि पाठकों को चिकित्सा करने में अवश्य बड़ी सहायता प्राप्त होगी।

हैज़ा

(१) बाबू कृष्णमुरारी सहाय* बी० ए० एल-एल० बी० वकील मैंनपुरी से लिखते हैं कि

(अ) मुझे स्वयं को तारीख १७ जून सन् १९११ ई० को तीन बजे दिन के समय सख्त हैजा शुरू हुआ, युनानी हकीमों का इलाज हुआ, लेकिन बेअसर, डाक्टर साहब तशरीफ़ लाए। उन्होंने कहा उम्मीद जीस्त की नहीं है मैं दवाई नहीं दूंगा। हालत मेरी यह थी कि नाखून का रङ्ग नीला था। तशन्नुज बहुत ज्यादा थी। आंखों के हलके बहुत गहरे थे। आवाज बिलकुल बंद थी। कै और दस्त की इन्तिहा नहीं थी। सारा जिस्म बिलकुल ठंडा था। मेरे ईमाय से मेरी बीवी ने (जो इस इलाज से वाकिफ है और मोतक़िद है) बावजूद मुमानिअत कुल साहबान हाजरीन मुझे ठंडे पानी में हिपबाथ आधे घंटे का दिया और उसके बाद स्टीम बाथ दिया नतीजा यह हुआ कि पहिले बाथ के बाद नब्ज बोलने लगी, कै और दस्त बन्द हो गये, नाखून का नीलापन दूसरे

* इन महाशय जी का अब (१९२३) कोई दो साल हुए परलोक वास हो गया।

रोज रफ़ा हुआ और मेरी जान बच गई जिसकी किसी को उम्मीद न थी। इस वाके के शाहिद* मैंनपुरी में करीब १०००–१२०० के हैं।

माथे में फोड़ा।

(आ) उक्त बाबू साहब फिर यों लिखते हैं "मेरे बड़े लड़के जिसका नाम शत्रु सूदन है उसकी पेशानी में अन्दर फोड़ा था जिसके वजूद का इल्म बहुत दिनों बाद और बहुत मुश्किल के साथ तमीज़ हुआ। डाक्टर साहब ने उसके चीरने की राय दी मैंने पसंद नहीं किया, फोड़ा अच्छा हो गया, खूबसूरती यह कि फोड़ा हटता हुआ नाक के बाहर नमूदार हो कर खुश्क हुआ।"

प्लेग और पुराना बुखार।

(इ) उक्त बाबू साहब फिर लिखते हैं "मेरा छोटा लड़का यशोदानन्द है उसको तीन साल हुए कि प्लेग हुआ यानी गिलटी भी नमूदार हुई उसका बुखार और गिल्टी २४ घंटे में ठीक हो गये। परन्तु इलाज चार पांच रोज और जारी रहा।

यही साहिब यह भी लिखते हैं कि मेरी बीबी को बच्चा पैदा होने के बाद बुखार हुआ, जिसका इलाज ४–५ मास सिवाय डाक्टरी हर किस्म का होता रहा लेकिन बुखार नहीं गया बल्कि एक गोला सा दाहनी जानिब रहता था जिसकी वजह से सख्त दर्द रहता था इसी इलाज से दो माह में सेहत कामिल हुई।

सरसाम और बुखार।

यही सज्जन फिर इस तरह लिखते हैं—

"मुन्शी इमामउद्दीन साहिब जो सब इन्सपेक्टर जसराना ज़िला मैंनपुरी में थे और अब ग़ालिबन किसी जगह इनस्पेक्टर पुलिस हैं उनको बाद बुखार सरसाम हो गया था, मैं बुलाया गया इसी इलाज से एक घंटे में रफै हुआ।"

[२] क्षय अर्थात् तपे कोहना अर्थात् टुबरक्युलोसिस

मुन्शी इन्द्रजीत जी डिप्टी सेन्ट्रल नाजिर बदाऊं जिनको क्षय रोग से इसी जल चिकित्सा द्वारा निवृत्ति प्राप्त हुई थी मेरे पत्र के उत्तर में जो लिखते हैं वह क्षय के रोगियों और अन्य कष्टसाध्य दशा वाले रोगियों के लाभार्थ लगभग सभी पत्र दिया जाता है।

"श्रीमान् परोपकारी श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप जी—

तसलीम दस्तबस्ता क़बूल हो, आपके कृपा पत्र मुवर्रखे २४ फ़रवरी सन् १६१४ के जवाब में नम्रता पूर्वक निवेदन है—

---

* जानने वाले, देखने वाले।

आपने हिन्दीदां पवलिक को वहुत ही फ़ायदा पहुंचाया कि आपने किताब "नया इल्म शफ़ावख्शी" का तरजुमा हिन्दी में कर दिया, उसको वड़ी जरूरत महसूस हो रही थी और खासकर ऐसे वक्त में जबकि पवलिक हिन्दी की क़द्र करना चाहती है और क़रीब २ हिन्दोस्तान की ज्यादा पवलिक हिन्दीदां है।

मुझको वचपन से क़ब्ज और जुकाम की शिकायत थी, बाद इख्तताम तालीम इन्ट्रेंस क्लास मुलाजिम होकर महाफ़िज्ज खाने जजी शाहजहांपुर में तईनात हो गया। वदकिस्मती से वहां ताजी हवा न मिली। जवानी की उम्र थी, काम सख्त मेहनत से अन्जाम दिया। वाद एक साल के अलावा क़ब्ज व जुकाम के बुखार भी शुरू हो गया। कुछ अर्से वाद इस क़द्र कमजोर हो गया कि काम करने से मजबूर हो गया। मजबूरन रुखसत लेनी पड़ी। दस माह की रुखसत के लिये दरख्वास्त दी। जिस पर डाक्टरी मुलाहजे का हुक्म हुआ। जनाव डाक्टर साहिव ने बजाय १० माह के बारह माह की रुखसत के लिये सिफारिश की और फ़रमाया कि अगर साल भर में भी सेहत हो जावे तो वेहतर है। डाक्टर साहिव ने मर्ज को तशख़ीश करके तहरीर फ़रमाया कि तपेदिक है, सीने में टुवरकिल पैदा हो गये हैं।

रुखसत लेकर एक साल तक मुतवातिर डाक्टरी व मिश्रानी व यूनानी इलाज करता रहा, रोज़ वरोज़ कमजोर होता गया।

किसी इलाज से कुछ फ़ायदा न हुआ। एक साल की रुखसत खत्म होने पर दुवारा रुखसत मजीद ७ मास दर्ख्वास्त दी जिस पर फिर डाक्टरी मुलाहजा हुआ, जनाव डाक्टर साहिव ने रुखसत मजकूर के लिये सिफ़ारिश फ़रमाई और हिदायत की कि "खुली जगह में रहा करो"। मेरी जवानी पर अफ़सोस करते थे। तशख़ीश मर्ज के लिये खुद मुलाहजा किया और हेल्थ आफिसर और असिस्टेन्ट सरजन से मुलाहजा कराया और तीनों साहिवान की यही राय कायम हुई कि थाईसिस हो गई है। अफ़सोस किया कि डाक्टरी में कोई मुजर्रिब इलाज इस मर्ज के लिये नहीं है सिवाय इसके कि किसी जगह जहां की आवहवा ख़ास तौर पर बहुत उम्दा हो मसलन अलमोड़ा क़याम किया जावे।

शाहजहांपुर के एक मशहूर हकीम तिब, यूनानी पासशुदा देहली, ने ६ माह तक इलाज किया, आखीर में हकीम साहिव मौसूफ़ की राय हुई कि माउलजुब्न जो सबसे उम्दा इलाज यूनानी में है दिया जावे, चुनांचे ६० योम तक और इलाज हुआ मगर नतीजा वरअक्स पैदा हुआ, पेचिश पैदा हो गई।

इलाज यूनानी से मायूस होकर इलाज मिश्रानी शुरू किया जिसकी वजह से इख्तलाफ़ क़ल्ब पैदा हो गया। ववजह तकलीफ़ इसको तर्क करना पड़ा और आखिरी इरादा यह हुआ कि अब इलाज विलकुल तर्क कर दिया जावे।

अक्सर वैद्य मिश्रानी जिनसे मेरे वालिद साहिब मुझको दिखला कर मुझसे पोशीदा तौर पर उनकी राय दर्याफ्त करते थे तो वह लोग हिसाब लगाकर फरमाते थे कि अब मौत के क़रीब इस क़दर दिन बाक़ी रह गये हैं क्योंकि इस मर्ज की मयाद क़रीबन ३ साल की है।

जब मेरे लायक दोस्त बाबू जगन्नाथ प्रसादजी सेक्रेटरी आर्य्यसमाज शाहजहांपुर को, जिन्होंने मेरे इलाज करने में बड़ी कोशिश फ़रमाई थी यह मालूम हुआ कि इलाज तर्क करने का इरादा है तो उनको किसी ज़रिये से नया इल्म शफा बख़शी के इलाज का हाल मालूम था, मुझसे फ़रमाया कि गुसल का इलाज शुरू करो। जवाब में मैंने अर्ज़ किया कि मैंने इलाज तर्क करने का इरादा कर लिया है, तो दुबारा फ़रमाया कि कोई दवा इस्तेमाल न करनी होगी सिर्फ़ गुसल करना होगा।

मुझको इस जवाब ने ताज्जुब में डाल दिया और हंस कर कहा कि जब दवाओं से कुछ फ़ायदा न हुआ तो गुसलों से क्या फ़ायदा हो सकता है। मेरे लायक दोस्त ने मुझको किताब "नया इल्म शफा बख्शी" देकर उसके पढ़ने की राय दी। मैंने एक माह तक आज़मायशन अपने दोस्त के कहने पर गुसल इलाज शुरू किया और किताब का मुताला किया।

जहां हर किस्म के इलाज से कमजोरी मालूम होती थी अब खफ़ीफ़ सी ताक़त महसूस होने लगी और नीज़ किताब की दलीलों से मालूम हुआ कि यह भी कोई इलाज है।

एक साल की रुखसत मजीद लेकर मकान चला गया और बराबर गुसल का इलाज करता रहा। इस असना में दो तीन मर्तबा बड़ी जोर से बुखार आया और पेचिश हुई। अक्सर दोस्तों और रिश्तेदारों ने व नीज वालदैन ने बुखार की हालत में बेखौफ सरसाम गुसल की मुमानअत फरमाई मगर मैं हस्ब हिदायत मुन्दर्जे किताब गुसल करता रहा और हर एक उभरा हुआ मर्ज तीन योम के अन्दर जाता रहता था जिससे सबका बड़ा ताज्जुब होता था।

अक्सर औक़ात मैंने गुसल के तरीके समझने में गलती की जिसकी सेहती लायक बजुर्ग बाबू हरनारायन साहिब सदर कानूगो शाहजहांपुर व हकीम खादिम हुसैनखां साहिब शाहाबाद से करता रहा, और एक मरतबा श्रोत्रिय कृष्णस्वरूपजी मुतरज्जिन किताब "नया इल्म शफा बख्शी" से बग़रज़ रफेगलती बमुकाम मुरादाबाद नियाज हासिल किया जिन्होंने अपने दस्त मुबारिक से गुसल देकर तरीका बतलाया।

अव्वलन मैं पेडू को बड़ी जोर से रगड़ा करता था और यकदम आध घंटे तक गुसल करता था। मौसम सरमा में गरम पानी नहीं मिलता था जिसकी निसबत

श्रीमान् श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप जी मौसूफ़ ने हिदायत फ़रमाई कि थरमामेटर * से देखकर पानी की हरारत ज्यादा कर लिया करो और ५ मिनट से शुरू करना मुनासिब है। इसके बाद हस्ब हिदायत करता रहा।

६ माह तक और इलाज जारी रक्खा बहुत कुछ सेहत हो गई। पेश्तर चला नहीं जाता था अब एक मील तक चलने लगा यहां तक कि पसीना खूब आ जाता था और ताक़त महसूस होने लगी। जुकाम बिलकुल नहीं रहा, भूख खूब लगने लगी। गोरखपुर जाकर चन्द डाक्टरों से मुलाहज़ा कराया तो आला लगाकर सीने का इमतिहान किया और फरमाया कि अब सीने में टूबर किल्स का पता नहीं है।

इसके बाद वालदैन व अहबाब की राय हुई कि हाज़िर कार-सरकार होना चाहिये। बवक्त वापसी शाहजहांपुर जनाब मिष्टर दलाल साहिब बहादुर जज ने मेरी सूरत देखकर फरमाया कि काम नहीं कर सकता है, मगर इम्तहानन चार्ज लेने का हुकुम फरमाया। चुनांचे काम बड़ी मेहनत से किया जिसके लिये केरेक्टररोल में तहरीर करा दिया कि यह शख्स देखने में कमज़ोर मालूम होता है मगर काम बड़ी मेहनत से करता है। इसके पेश्तर जनाब मिष्टर स्टील साहिब बहादुर जज जिनके जमाने में रुख़सत हासिल की थी बवक्त रवानगी विलायत मेरे केरेक्टर रोल में मेरी हालत नाजुक को ख्याल करके तहरीर कर गये कि यह शख्स शायद वापिस न आवेगा। चूंकि मेरी हालत ऐसी खराब थी और डाक्टरों ने तहरीर भी किया था जिससे साहिब बहादुर ममदूह को गुमान था कि यह शख्स मर जावेगा। चुनाचे इसी बुनियाद पर मैंने इस इलाज को "मुर्दे से जिन्दा करने वाले इलाज से नामज़द किया है।"

उक्त महाशय अपने तजरुबात जो कि उनको इस इलाज में प्राप्त हुए हैं लिखते हैं जो कि पाठकों के लाभार्थ नीचे लिखे जाते हैं। इन पर ध्यान देना चाहिये।

(१) "अव्वलन बहुत ख़फ़ीफ सा फायदा होता है, रफ्ता २ असर होता है ऐसी हालत में मरीज घबरा जाता है मगर इतमिनान से इलाज करना चाहिये।

(२) जब मरीज हर किस्म के इलाज से मायूस हो जाता है तो आखीर में गुस्ल का इलाज शुरू किया जाता है; अगर इब्तदायत मर्ज में किया जावे तो बहुत फायदा हो।

(३) भूख बहुत जोर से लगती है और हर वक्त तबियत खाने को चाहती है उस वक्त बहुत एहतयात से खाना चाहिये, मगर तबियत को रोकना बहुत मुश्किल काम है।

(४) क़ब्ल इलाज मेरे बाल सुफेद हो गये थे मगर बाद इलाज या तो सुफेद

*बुखार देखने का थर्मामेटर नहीं बल्कि फेरनहाइट यानी मौसमी सर्दी, गर्मी जानने का थर्मामेटर।

बाल गिर गये या खुद ब खुद स्याह हो गये। खिजाब लगाने वालों को इसका इलाज शुरू करना चाहिये।

(५) जिरयान के लिये सिट्जिबाथ बहुत ही मुफीद है।

(६) गिज़ा में सुबह व शाम गाय का ताज़ा दूध फ़ौरन थन से निकलता हुआ बहुत ही मुफीद है।

(७) तबियत हर वक्त मुजमहिल रहती है मगर गुस्ल के बाद फौरन बशाशत आ जाती है।

(८) तमाम तफ़क्कुरात से अलहदा रहना चाहिये और वकील श्रोत्रिय जी साहिब मुतरज्जिम किताब जिस वक्त तबियत घबरावे ईश्वर को याद करना चाहिये।

———

३–पण्डित गणेशप्रसाद शर्मा स्टेटमेंट क्लर्क दफ्तर पुलीस परतापगढ़ अपने पत्र में इस जल चिकित्सा द्वारा कई दशाओं में साफल्य प्राप्त करने की शुभ सूचना देते हैं जो नीचे लिखी जाती है:—

मुंह के अन्दर गाल में फोड़ा और बवासीर।

(अ) हेड कान्स्टेबिल जिनके गले में अन्दर की तरफ़ फोड़ा हुआ था डाक्टरी और अताई इलाज कई रोज़ तक करते रहे। जब दिन बदिन तकलीफ अधिक होने लगी तो मुझसे अपना हाल बतलाया। मैंने एक स्टीम बाथ मुकामी रोजाना एक बार सवेरे और दो हिपबाथ आध २ घंटे का रोज सुबह व शाम को लेना बतलाया। नतीजा यह हुआ कि पहले दिन सूजन और बढ़ी, तब तो रोगी को बड़ी घबराहट पैदा हुई और मुझसे फिर हाल कह सुनाया। मैंने समझा कि मैटर उभर आया है और अब जल्द अच्छा होने वाला है। खैर बाथ जारी रक्खे गये और दूसरे ही दिन जब स्टीम बाथ के बाद हिपबाथ किया गया फोड़ा फ़ौरन अन्दर की तरफ़ से फूट निकला और पीड़ा जाती रही। इसके बाद इलाज जारी रक्खा गया। ८ दिन बाद फोड़ा बिल्कुल अच्छा हो गया लेकिन एक महीने के बाद इलाज बन्द कर दिया गया। खास बात लिखने के योग्य यह है कि जब हिपबाथ शुरू किया जाता था तो मवाद निकलना शुरू हो जाता। इलाज से फोड़े ही को फ़ायदा नहीं हुआ किन्तु बवासीर को भी फ़ायदा मालूम हुआ जिसकी उनको कई साल से शिकायत थी।

एक महीने का ज्वर।

(आ) एक लड़का, उम्र दस साल, एक महीने के बुखार से पीड़ित था। क्योंकि मैंने आयुर्वैदिक इलाज भी सीखा था, इसलिये नाड़ी देखने से ज्ञात हुआ कि बुखार कुछ न कुछ हर समय रहता है। मैंने तीन हिपबाथ रोजाना १० मिनट से लेकर आध घंटे तक लेने के वास्ते राय दी, सादगी के साथ खाना बतलाया, जिससे तीन दिन के

बार बुखार जाता रहा। १ महीने इलाज जारी रहा नतीजा यह हुआ कि शिकायतें जाती रहीं और ताक़त भी आ गई।

गांठो का दर्द, पुराना क़ब्ज़।

(इ) बाबू कालकाप्रसाद जी ने जिनको गांठों के दर्द से बैठने व पाखाने तक में तकलीफ़ होती थी बाद कुल इलाजों के मुझसे राय ली। मैंने मुक़ामी १ स्टीमबाथ रोजाना और २ हिपबाथ रोजाना सवेरे व शाम ताजे पानी में करीब आध २ घंटे तक, लेकिन शुरू में सिर्फ़ १५ मिनट से शुरू करना, बतलाया। इससे तीन दिन बाद फ़ायदा मालूम होने लगा और १५ दिन में दर्द बिल्कुल जाता रहा। लेकिन १ महीने तक या कुछ अधिक वह हिपबाथ लेते रहे जिससे क़ब्ज़ की भी शिकायत दूर होगई जिसके वह कई वर्षों से शिकार हो रहे थे।

बुख़ार, ज्वर।

(ई) मैंने अपनी लड़की उम्र २ साल को जो कई बार बुख़ार मे बीमार हुई क़रीब ५ से १० मिनट के हिपबाथ व सिट्जिबाथ दिलवाया बुखार जाता रहा।

बुखार के साथ आंखों की तकलीफ़।

(उ) मेरा लड़का उम्र १ साल जिसको बुखार के साथ आंखों की तकलीफ़ भी शामिल थी करीब तीन दिन से आंखें न खोलता था, अगर खोलता भी था तो दिन में २, १ बार मुश्किल से। मैंने दो बार और कभी २ तीन बार भी करीब ३ मिनट के हिपबाथ ताजे पानी से दिये आंखें और बुख़ार दोनों साफ़ हो गये और अब अच्छा है।

जाड़ा बुखार।

(ऊ) मेरी लड़की की उम्र ४ साल जिसका जाड़ा देकर बुख़ार आता था फ़ुर्सत न मिलने के कारण कभी एक सिटिजबाथ और कभी दो हिपबाथ देता रहा इससे बुखार में कुछ कमी हुई लेकिन दोपहर को फिर जोर करता था। मैंने अपनी बुद्धि से यह तजवीज किया कि हाथों और पैरों में जलन अधिक होती है उसका कारण यह है कि असाधारण गर्मी उन आखरी सिरों (हाथ वा पैर) से बहार निकलने को कोशिश करती लेकिन कोई खुली जगह बाहर निकलने की न पाकर धक्का मारकर फिर वापिस जाती है और उस धक्के से जो Friction (रगड़) पैदा होती है उसका नतीजा हाथों और पैरों का अधिक जलन है। इससे कुछ अधिक ठंडे पानी में हाथों और पैरों के अन्तिम सिरों को भिगोने से अवश्य ज्वर में लाभ होगा, और ऐसा ही किया गया। फल यह हुआ कि ज्वर उतरने के पश्चात् फिर दूसरे दिन वापिस न आया और अब तक अच्छी है।

ज्वर, नेत्र पीड़ा, दस्तों का आना।

(ऋ) मेरा चचा जाद भाई उम्र तीन साल की जिसकी आंख इस तरह ख़राब होगई थी कि दिन में एक दो बार बाजा बजाने से ही खोलता था और जिसके साथ

बुखार और बार २ दस्त की शिकायत भी शामिल थी, मैंने तीन वार हिपबाथ देने का प्रबन्ध किया। १५ दिन बाद कुल शिकायतें जाती रहीं।

पुरानी शिर पीड़ा।

(ऋ) मेरी चाची जिनको पुरानी शिर पीड़ा का कष्ट था और कभी कभी अधिक कष्ट उठाया करती थीं एक स्थानीय स्टीमबाथ और दो सिट्ज़बाथ आध आध घण्टे के तजवीज़ किये, पहिले ही दिन में दर्द जाता रहा।

घुटनों में दर्द।

(लृ) मेरा चचाज़ाद भाई जिसको प्लेग से अच्छे होने के बाद वाय की शिकायत पैरों के घुटनों में हा गई थी जिससे उसके पैर सीधे न पड़ते थे और एक फर्लाङ्ग भी चलना कठिन था बाद कुल और इलाजों के १ स्टीमबाथ मुक़ामी और २ सिटजबाथ लेना शुरू कराया १५ रोज़ के अन्दर १ मील चलने के क़ाबिल हो गया और अब अच्छा है।

कमर वा गांठों में दर्द, शुक्र दोष।

(लृ) एक मेरी कमर में कई दिन से दर्द था, १ स्टीमबाथ व दो सिट्ज़बाथ से एक दिन में जाता रहा और एक सिट्ज़बाथ व हिपबाथ बारी बारी लेने से यह लाभ हुआ कि वीर्य का दोष जो पाख़ाना और पेशाब के समय निकलने का था लगभग बिलकुल जाता रहा। इससे एक और भी लाभ हुआ कि एक दाद का सा दाग़ जो गर्दन से नीचे पींठ की तरफ़ था आपसे आप लोप हो गया।

[५] मुन्शी हरनारायण जी सदर कानून गो पेन्शनर शाहजहांपुर से लिखते हैं:—

दिमाग़ के चक्कर और कनपटी में फड़कन।

(अ) मेरे दोस्त पंडित हरदयाल महकमे रेलवे में ५०) रुपये माहवार के मुलाज़िम थे, उनके दिमाग़ में चक्कर और दोनों कनपटियों पर फड़क या थपक इस क़दर सख़्त थी कि घण्टों सोना मयस्सर होता था, मेरे मशवरे से बाथ लिये। पांच छः हफ्ते में इस क़दर सेहत होगई कि दो दो पहर तक लिखने पढ़ने का काम किया और कुछ तकलीफ़ नहीं हुई। यह साहब इस मर्ज की वजह से स्तीफ़ा देकर आए थे। बाद सेहत तक़दीर से फिर लखनऊ में ५०) की जगह मिल गई।

टेढ़ा और सूजा हुआ पांव।

(आ) पण्डित साहब मौसूफ का लड़का छः साल का है, उसका एक पांव घुटने से एड़ी तक मुतवरम* और खमदार था तख़मीनन† तीन साल से यह हालत थी। और इस असनाय में तीन बार डाक्टरों ने आप्रेशन किये और सब

*वरम किया हुआ, अर्थात् सूजा हुआ था।

† दर्मियान का समय, अर्थात् इसी तीन वर्ष के समय, में।

बेकार। मेरे मशवरे से इलाज बाथ का किया छः सात हफ्ते में दो हड्डी सकिश्त मवाद के साथ बरामद हुई और जखम भरना शुरू हो गया और कोई तीन माह के अर्से में कामिल सेहत हो गई। मालूम हुआ कि यह सकिश्ता हड्डी को वजह से वर्म वगैरा था अब कामिल सेहत है और वह लखनऊ में मौजूद है।

[६] सय्यद महबूबअली साहब देहली निवासी, माधो कालिज उज्जैन से लिखते हैं :—

दिल और दिमाग की कमजोरी, बुखार।

(अ) मेरा दिल और दिमाग कमजोर था प्रायः सिर में दर्द रहता था मैंने हिपबाथ लिया। रोजाना आध घण्टे तक पानी में बैठा रहता था। बाज औकात जब फुरसत मिलती थी तो दिन में तीन २ मरतबा तक बैठता हूँ। मुझे बहुत फायदा हुआ लेकिन वरजिश भी की और गिजा की एतियात रक्खी यानी हलकी गिजा खाई। एक मौके पर दो हफ्ते तक सिर्फ दलिये का इस्तेमाल किया। बुखार की हालत में खुद भी और दीगर साहिब पर अजीब सरीउलतासीर पाया, बुखार की हालत में ※ स्टीम बाथ देकर हिपबाथ दिया और बुखार गायब हो गया।

दर्द गुर्दा

(आ) कई बार दर्दगुर्दे के मर्ज में फौरन फायदा बख्शा लोग हैरत में रह गये।

नर्वस कोलप्स।

(इ) सय्यद अहमद अली साहब साबिक डिप्टी कलक्टर को नर्वस कोलैप्स Nervous Collapse* होगया और करीब था Consumption (कनजम्पशन) हो जाता, साहिब मौसूफ ने यह इलाज किया और बहुत फायदा हुआ।

[७] खां साहिब मियां अली मुहम्मद डिविजनल इन्जीनियर महकमा नहर भावलपुर इस चिकित्सा के विषय में लिखते हैं :—

"मैंने इसका तजुर्बा अपने पर किया है और लोगों पर भी किया है मैं चार साल से तजुर्बा कर रहा हूं लेकिन डेढ़ साल से बवजह कम फुरसती गुस्ल बन्द कर दिये हैं। मुझको इनसे बहुत ही फायदा पहुंचा है। और जो कुछ दर असल मेरे साथ गुजरा है वह बहुत अजीब है। बसबब कम फुरसती के तमाम हाल तहरीर नहीं कर सकता हूँ। अगर मुफस्सल तहरीर करूं तो एक अलहदा किताब या इसका

※अक्सर तो ज्वर ठंडे स्नानों से अर्थात् हिपबाथ से ही जाता रहताहै यदि ज्वर में दो तीन हिपबाथ या सिट्जबाथ से भी कमी न हो या कम हो २ कर फिर कुछदेर बाद बढ़ २ जाय तो स्टीम बाथ देना चाहिये। किसी २ दशा में स्टीम बाथ अव्वल भी देसकते हैं, परन्तु एक सप्ताह में दो स्टीम बाथ से अधिक बिना खास मशवरे के न देना।

*अर्थात् स्नायु का अत्यन्त निर्बल हो जाना। ‖अर्थात् क्षई।

एक हिस्सा बन जावेगा, मैंने सिवाय गुस्लों के और भी तजुर्बा किया है और उन सबने मेरा यह एतकाद कर दिया है कि खुदा ने किसी इन्सान को बीमार होने के लिये नहीं बनाया और न क़ब्ल अज वक्त मरने के लिये बनाया है। बावजूद कि मैं खुद मुकम्मिल तौर से सेहतयाब नहीं हुआ हूं जिसकी वजह यह है कि मैंने बाकायदा इलाज सिर्फ दो साल तक किया फिर बेकायदा हो गया, लेकिन मैं उम्मीद करता हूं (मेरी उम्र ५५ साल की है) और तीस साल कम से कम जीने की। जब से मैंने गुसलों का इलाज शुरू किया है तब से मैं बीमार नहीं हुआ और न हूंगा। अलबत्ता जब माद्दा फासिद बदन में हिलता है तब वह नकलने के वक्त कुछ अलामात वैसी ही पैदा करता है जैसे कि अन्दर जाते वक्त करता था जिसको तमाम लोग कहते हैं कि "बीमार हो गया" मगर वह बीमार होना नहीं है बल्कि बीमारी का बाहर निकलना है।

८ सुस्ती, पांव पर २५ वर्ष की सूजन, गर्दन का मोटापन, पेशाब का रोग

एक मुअज्जिज अहले इस्लाम अपनी चिट्ठी में अपने तजुर्बों की बाबत लिखते हैं:—

याद दहानी के वास्ते लिखता हूं मैंने किताब "नया इल्म शफ़ा बख़्शी" अप्रैल गुजिश्ता में मंगवाई थी और उसके बाद अक्सर अपने हाल से इत्तला करता रहा और हिदायत पाता रहा। २३ अप्रैल सन् १९१५ से ताईन्दम बराबर ... . इलाज जारी है। गिजा भी हिदायत के मुआफिक़ है, अलबत्ता रमजान शरीफ़ में सिर्फ सुबह को गुस्ल कर सका दूसरे वक्त नहीं हुआ, गिजा में इस कदर बे ऐतदाली अगर ख्याल फरमाया जावे जरूर हुई कि सहरी के वक्त फरीनी जिसमें क़द्रे नमक किरामिश और सुरमा डालकर इस्तेमाल की गई। मर्ज़ वर्म था करीब २ बिलकुल जाता रहा और जो शिकायतें अंदरूनी थीं जिसको मैं मर्ज ख्याल नहीं करता था उनके रफा होने से यह बात मालूम हुई कि हकीकतन वह मर्ज था। गर्दन का मोटापन जिस वक्त कम हुआ तो पुश्त गर्दन पर मालूम हुआ फोड़े की किस्म से कोई चीज है। मगर हफ्ते अशरे में वह भी बहुत कम हो गई अब खफीफ बाकी है। मुझको मर्ज पेशाब का भी था और उसके साथ सुरअत बकिल्लत जो सुस्ती के लवाजिम में से थे बइनायत इलाही यह सब मर्ज फौरन दफे हो गये। मगर अभी तक कुल्ली इतमीनान नहीं हुआ, जिसकी वजह से अभी तक इलाज जारी है। मैंने दो एक शख्सों को भी इलाज बतलाया है उनको आराम हो गया मगर उनके मर्ज जदीद थे मेरा मर्ज पांव २५ साल से था और मर्ज पेशाब वगैरा दो साल से था इसी कदर जल्द यह रफा हो गया।

९ बुखार खांसी, खून का आना, हाजमे की सख्त खराबी।

बाबू श्यामलाल जी सब इन्सपैक्टर गवर्नमेन्ट रेलवे पुलिस बालामऊ जंकशन से इस जल-चिकित्सा की सफलता के विषय में निज अनुभव द्वारा जो मुझे अपने पत्र में लिखते हैं वह नीचे लिखता हूँ:—

"मुझको साल १९१० में बुखार आया फिर खांसी की शिकायत पैदा हो गई उसका मैंने कस्बे संडीला व लखनऊ में इलाज वैद्यक-डाक्टरी व यूनानी, हर किस्म का किया किसी से कुछ फ़ायदा न हुआ बल्कि मेरी हालत इस दर्जे खराब हो गई कि मुझको मजबूर होकर रुखसत लेनी पड़ी। रियासत ग्वालियर में एक मशहूर डाक्टर थे उनका भी इलाज किया। मेरा मर्ज इस दर्जे तरक्क़ी कर गया कि मुझको खून आने लगा और मैं रात को एक घण्टा भी नहीं सो सकता था। जिस क़दर इलाज करता गया उतना ही मर्ज तरक्क़ी करता गया। मेरा हाजमा इस क़दर खराब हो गया कि जब मैंने मुसिल लिये तो दस्त आना तो दरकिनार जो दवा पी वह भी खारिज नहीं हुई। मैं अपनी जिन्दगी से नाउम्मीद हो गया। मेरे एक दोस्त ने मुझको राय दी कि मैं डाक्टर लुई कुह्नी के बाथ लूं।

माह दिसम्बर सन् १९११ ई० को आपकी खिदमत में हाज़िर हुआ। आपने इनायत फरमाकर मुझको एक हफ्ते अपने यहां रखकर उनका अमली तरीका बतलाया। मैंने आपकी हिदायत की पूरी तामील की ६ माह में मेरी हालत बिलकुल तबदील होगई। खांसी मुझको बिलकुल नहीं रही और मैं तमाम शब आराम के साथ सोने लगा। मुझको यह भी शिकायत थी कि मेरा वज़न बढ़ता था। ६ माह में मेरा १५ सेर वजन कम होगया, हाज़मा भी दुरुस्त होगया। चूंकि मेरी रुख़सत खतम होगई थी लिहाज़ा मैं अपने काम पर हाज़िर होगया। चूंकि मर्ज बहुत पुराना था जब मैं अपने काम पर चला गया तो सन् १९११ ई० अय्याम सरमा में फिर कुछ खांसी की शिकायत पैदा हो गई मगर मैं फिर उसको पूरे तौर पर जैसा कि करना चाहिये नहीं कर सका, इस लिये इस अमल से बाद खतम मौसम सरमा शिकायत जाती रही। अगर मैं इस अमल को ६ माह आपकी हिदायत के मुवाफ़िक और कर लेता मैं यकीन करता हूं कि मुझको सेहत कुल्ली होजाती। इस लिये मैंने यह इरादा किया है अब जब मुझ को फिर सेहत रुखसत मिल जावेगी इस अमल को फिर करूंगा और मैं यकीन करता हूं कि मुझको सेहत कुल्ली हो जावेगी। यह अमल ऐसा नादिर है कि न तो मेरे कलम में ताक़त है न जुबान में गोयाई है कि इसके ओसाफ अर्ज़ कर सकूं। चूंकी इस अमल से व नीज़ आपकी इनायत से जो आपने अमली तरीके सिखाने में मेरे हाल पर फ़रमाई है उसके शुक्रिये में अरीज़ा इरसाल करता हूँ। मेरी ख्वाहिश है कि आप इस किताब का हिन्दी तर्जुमा फरमा रहे हैं अगर मुनासिब ख्याल फ़रमावें तो यह अरीज़ा उस किताब में दर्ज फ़रमावें ताकि मेरे और भाइयों को इसके करने का शौक पैदा हो और रोजमर्रह हकीम व डाक्टर साहिब के हाथ में पड़ कर हर किस्म का सरफ़ा व तकलीफ उठाते हैं इस अमल के करने से फ़ायदा उठावें, ज्यादा न्याज़।

१० दर्द गुर्दा, बवासीर, उदर की पीड़ा।

बाबू जयनारायण साहब भार्गव हेड मास्टर गढ़ी (बांसवाड़ा) राजपूताना से लिखते हैं:—

"मैं बहुत खुशी से यह जाहिर किये बग़ैर नहीं रह सकता कि मैंने इन गुसलों के नतीजे बहुत ही अजीब देखे हैं। खुद अर्से दराज से बआरजे गुर्दा मुब्तला था। कई डाक्टरी व यूनानी इलाज किये मगर बेसूद। आख़िरकार आपकी राय लेकर रोजाना तीन मरतबा फ्रिक्शनसिट्ज बाथ व हिपबाथ लेता रहा, और हफ्ते में एक मरतबा स्टीमबाथ शुरू में जारी किये मगर बाद में बन्द कर दिये थे। चार माह के बाद मर्ज़ कतई जाता रहा।

पेट का दर्द—मेरी स्त्री को जो एक अर्से से दर्द शिकम में मुब्तला थी सेहत हुई।

खूनी बवासीर—मेरे रिश्तेदार बाबू मुरलीधर जी एकाउन्टेन्ट डूङ्गरपुर जो अर्से दराज से बआरज़े खूनी बवासीर मुब्तला थे और गाहे बगाहे हमेशा उनको कई रोज तक खून जारी हो जाता था अब जबसे यह बाथ लिये हैं कोई शिकायत नहीं हुई।

मेरे एक मित्र बाबू मक्खनलाल—जोकि पेश्तर माल हाकिम रियासत धार थे अब उसी ओहदे पर बांसवाड़ा तशरीफ़ लाये हैं, फरमाते हैं कि धार के राजा साहब जिन्होंने मुद्दत तक यूनानी व डाक्टरी इलाज अपने एक मर्ज के लिये किया कुल लाहासिल हुवे। अब उनको इन गुसलों से बहुत सेहत हासिल हुई, और वे शुरू में इन गुसलों को फ़िज़ूल फ़रमाते थे अब पूरे मौतक़िद हो गये हैं। तनदुरुस्ती बहुत ही अच्छी हो गई। परहेज गिज़ा का बहुत जरूरी है सादा गिज़ा व फल जैसा कि मुसन्निफ़ ने अपनी किताब में लिखा है अमल किया जावे तो जल्द सेहत हासिल होती है। परमात्मा आपको आनन्द रक्खे कि ऐसे परोपकार के काम में इस क़दर आप मुस्तैदी से काम कर रहे हैं।

११ मधु प्रमेह (डायाबिटीज Diabetes)

राय साहब बाबू ज्वालानाथ जी बी० ए० सेक्रेटरी म्युनिसिपल बोर्ड चन्दौसी जिला मुरादाबाद लिखते हैं कि:—

"बंदा दस साल से मुब्तलाय मर्ज "जियाबतुस" (Diabetes मधु प्रमेह) था। हर तरह का इलाज डाक्टरी व यूनानी व मिश्रानी कराया मगर कुछ अफ़ाक़ा न हुआ, हालत रोज़ बरोज़ कमज़ोर व रद्दी होती जाती थी और तिश्नगी भी ज्यादती थी। २ साल तक फोड़ों से भी सख्त तकलीफ़ हुई और मौसम गर्मी पहाड़ पर गुजारना पड़ा। जब से आपकी हिदायत पर "नया इल्म शफ़ा बख्शी" के जरिये गुस्ल किया गया बन्दा बहुत अच्छा है। एक साल से ज्यादा हुआ कि फोड़ों से भी निजात मिली,

मिक़दार पेशाब में बहुत कमी है, मगर चूंकि पूरे तौर पर परहेज न हो सका कुछ शिकायत बाक़ी रही। अगर हिदायत के मुआफ़िक अमल किया जावे तो जरूर उम्मीद है कि यह मर्ज जड़ से जाता रहे। मेरा ख्याल है कि यह इलाज कुल इमराज में नाफ़े साबित होगा।"

१२ शिर पीड़ा, डायाबिटीज़ (मधुप्रमेह)

भाई मनोहर लाल साहब रईस लाहौर लिखते हैं कि—

(अ) "मुझे खुद अकसर सुबह के वक्त हर रोज सरदर्द हुआ करते थे। हिपबाथ के दो माह करने से और क़ुदरती गिज़ा के इस्तेमाल से वह रोज़ाना की तकलीफ़ रफ़ा हो गई। हालांकि उसको कई साल गुज़रे हैं और फिर कभी बाथ या खाने का परहेज नहीं किया मगर सरदर्द के दौरे कभी नहीं हुये।

(अ) 'दूसरे मेरे एक दोस्त को डायाबिटीज (मधुप्रमेह) की तक़लीफ़ थी उनको बाथ करने से निहायत फ़ायदा हुआ।

आपने जो हिन्दी में तर्जुमा किया है उसकी अगर पहली जिल्द छप गई हो तो मेहरबानी करके दो जिल्द वी० पी० से इरसाल फ़रमावें और दूसरी जिल्द के छपने पर वह भी भेज दीजियेगा ताकि किताब मुकम्मिल हो जावे।"

१३ बुख़ार, आंखों का दुखना, कण्ठमाला।

एक सज्जन अपनी चिठ्ठी में लिखते हैं—

"मैं जो कि चार साल का बीमार था हाल में आपके ज़ेर इलाज रह कर गया हूँ। मैं अब श्रीमान् की कृपा व शुभ नजर से अच्छी तरह से हूँ। अपने गृह का कार्य्य तीन चार घंटे तक कर सकता हूं, दो तीन मील का सफर कर सकता हूँ, दोनों वक्त अच्छी तरह से भूख लगती है, एक वक्त तीन चपाती और हरा साग खा सकता हूं, दस्त बाक़ायदा ठीक लगती है। यह गई गुज़री सेहत का प्राप्त होना आपकी ही शुभ नज़र का प्रभाव है। एक दिवस वह था कि मैं क़रीब खुदकशी करने को था जिस हालत को मैं ही जानता हूं या श्रीमान् वाकिफ़कार हैं। मेरी गई बीती देह को श्रीमान् ने ही जीव दान दिया। मेरी आत्मा और मेरे गृह वाले आपको बारम्बार धन्यवाद देते हैं।"

यही साहब अपने दूसरे पत्र में लिखते हैं— मैंने जो "नया इल्म शफ़ा बख़्शी" के बमूजिब जो गुसलों का इलाज किया और अब भी कर रहा हूं उसका नतीजा यह है कि मैं एक नौ जाइन्दा इन्सान फिर इस जहान में मुश्तैद हूं। मुझ मुसीबतज़दा इन्सान की वह नाज़ुक हालत थी जिसे सिर्फ आप, मेरे गांव वाले और मैं ही जानता

हूं, और जिसका हाल तहरीर से बाहर है। अपने कारबार को आपका और ईश्वर का शुक्रिया अदा करता हुआ बजा लाता हूं। इस इलाज की तारीफ़ मैं कहां तक लिख सकता हूं। मैंने अपने गांव में अपने चचा जी साहिब को एक सख्त बीमारी से दो हफ्ते तक स्टीम और हिपबाथ दे दे कर बचाया जिनकी उम्र पचास वर्ष की है।

आंखें दुखना।

अपने वालिद साहब को आंखें दुखने की बीमारी से जोकि साल भर में कई मरतबा आजाती थी बचाया जिनकी उम्र ६५ वर्ष की है।

बुखार।

अपनी एक भतीजी को जिसको बुखार ने घेर लिया था तीन रोज तक सिर्फ ६ हिपबाथ देकर बचाया जिसकी उम्र ३ वर्ष की थी।

कण्ठमाला की गिलटी।

एक को कंठमाला की गिलटी हुई, दाहिनी तरफ़ का रुखसार वरम करके करीब २ ढाई इन्च बढ़कर एक सख्त गूमड़ा होगया था जिसको सिर्फ सर्द गद्दियां वगैर गुसलों के उस्तेमाल कराके आराम किया। मेरे खुद के बहुत सी चोटों व फोड़े वगैरा को सिर्फ सर्द गद्दियों से आराम किया। सब ब्रादरों से अर्ज है कि इस इलाज को बसरो चश्म उठा लेना चाहिये और हर एक को एक २ जिल्द 'नया इल्म शफ़ा बख्शी' रखना लाजिम है।

इसमें कुदरती गिज़ा की बड़ी भारी कद्र करना चाहिये। मगर परहेज ही सब बीमारियों को गुम कर सकता है, बदपरहेज वैसे ही मरते हैं। जिनको फल दस्तयाब नहीं हो सकते या बजाय फलके रोटी को सिर्फ नमक से लगा लगा कर खावें। यह निहायत मुफ़ीद उन शख्शों के वास्ते है जिनको बहुत ही बदहज़मी की शिकायत है।

१४ क्षय

महाशय जी० वी० कृष्णराव बी० ए० सेक्रेटरी कुहनी नेचर क्योर सोसाइटी मद्रास ने जिनको क्षय का रोग हो गया था और जोकि इस लुई कुहनी की जल चिकित्सा से आराम हुए अपनी दशा में इस चिकित्सा की सफलता का वृत्तान्त जो उन्होंने मुझे लिखा है पाठकों के लाभार्थ नीचे दिया जाता है।

'प्रियवर महाशय—मैं एक वह शख्श हूं जो लुई कुहनी के लिये अत्यन्त कृतज्ञ हूं। क्षय से जिसकी चिकित्सा ने मुझे समय से प्रथम आने वाली मृत्यु के पंजे से बचा दिया, मैं अपना कर्तव्य समझता हूं कि मैं उस लाभ को जो कि मुझे लुई कुहनी की अद्वितीय चिकित्सा से प्राप्त हुआ है सर्व सज्जनों के सामने उच्च स्वर से प्रकट करूं।

मैं इस बात को अपना पवित्र धर्म समझता हूं कि अपने रोगी भाइयों के सामने इस बात को प्रकट करूं कि मैं लुई कुहनी का कितना कृतज्ञ हूँ।

आनरेरी सेक्रेटरी मदरास कुहनी नेचर क्योर सोसाइटी की हैसियत से जिसमें कि अब सैंकड़ों मेम्बर हैं, मुझे इस चिकित्सा को लोगों पर हर प्रकार से विदित करने की लेक्चरों द्वारा अथवा अखबारों द्वारा, और अत्यन्त अन्तरीय प्रेरणा होती है। मै सहस्रों मनुष्यों से अपने रोगों की कहानी और उनका अच्छा होना वर्णन करता हूं और अब मुझे आपकी पुस्तक द्वारा इस बात के प्रकट करने का जो अवसर प्राप्त हुआ है उसका अत्यन्त हर्ष है कि यह मेरी कहानी मेरे उन सहस्रों हिन्दुस्तानी भाई और बहिनों के समीप पहुंचेगी जिनके हाथ में आपकी पुस्तक एक न एक दिन अवश्य होगी।

अब मेरी कहानी सुनिये, ८ वर्ष हुए जब मेरी अवस्था १७ साल की थी कि मैं फेफड़े के क्षय रोग अर्थात् ट्यूबर क्योलोसिस आफ दी लंग्स के पंजे में फंस गया। प्रारम्भ में एक प्रकार की सूखी खांसी, सांस लेने में कठिनता, हलका ज्वर, दिल की धड़कन, आंख और हाथ पांव की जलन, और शनैः शनैः मांस का कम होना प्रकट हुआ। इनके अतिरिक्त और भी खराबियां जैसे रात को पसीना आना, ठंड लगना, मलेरिया बुखार स्वप्नदोष आदि प्राप्त हुए थे।

अपनी बीमारियों के पूरे २ हालात लिखने के लिये मुझे बहुत ही जगह चाहिये परन्तु संक्षेप में लिखता हूं कि लगभग १८ मास एलोपैथिक और आयुर्वैदिक औषधियों की चिकित्सा प्रसिद्ध विद्वानों से कराई और बहुत सा धन भी व्यय किया तो मृत्यु के द्वार के अति समीप में पहुंच गया। जो कुछ डाक्टरों ने अपनी बड़ी समझ के अनुसार मुझे करना बताया वैसे ही किया, कड़वी (अत्यन्त कटु) और दुर्गन्धयुक्त औषधियें कार्डलिवर आयल (मछली का तेल) क्रोये जूट की गोलियें, और बहुधा बुरी २ वस्तुयें ग्रहण की गईं।

जल वायु (आबहवा) बदलने को भी सलाह दी गई और ऐसा किया भी गया परन्तु किसी से कुछ काम न चला। इस समय जब कि मैं देखने में जीवित पिञ्जर ही ही मालूम होता था पीला और बहुत दुबला और जब कि मेरे चेहरे की हर लकीर पर मृत्यु का बुलावा लिखा हुआ प्रकट था और जब कि डाक्टरों ने मुझे असाध्य कह कर छोड़ दिया था तो दैवयोग से लुई कुहनी की संसार में प्रसिद्ध पुस्तक का तैलंगी भाषा से अनुवाद मेरे हाथ आया। यद्यपि आरम्भ में मुझे यह आशाएं न थीं परन्तु मैं कुछ और कर भी नहीं सकता था, इस कारण मैंने इस चिकित्सा के स्नान लेने प्रारम्भ किये। पहिले ही के चन्द स्नानों ने मुझे अद्भुत लाभ पहुंचाया और एक मास के

भीतर मैं एक छोटी सी पहाड़ी पर चढ़ने के योग्य हो गया इससे पूर्व मैं कठिनाई से ही कुछ कदम चल सकता था।

चार महीने में मैं इस योग्य हो गया कि लगभग १२ मील एक साथ चल सकता था जो कि मेरे देखने वालों को एक अचम्भे की बात मालूम होती थी। पहिले मैंने तीन फ्रिक्शन हिपबाथ बीस २ मिनट के रोजाना लिये और फिर दो सिट्जबाथ तीस २ मिनट के और एक हिपबाथ बीस मिनट का रोजाना लेने लगा।

भोजन के विषय में मैं कुहनी साहिब के मतानुसार ठीक २ चला। नमक छोड़ दिया और बिना छने आटे की रोटी, चावल, दूध फल और उबले हुए शाक खाये। चार मास व्यतीत होने पर जबकि मैं देखने में तन्दुरुस्त मालूम होता था बहुत से क्राईसिस जैसे बुखार, फोड़े दस्त आदि पैदा हुए और इसी समय में मुझे पं० काशीकृष्णाचार्य गुंटूर के एक प्रसिद्ध विद्वान की सहायता लेनी पड़ी जिन्हों ने कि इस चिकित्सा स्नानों का अपने ऊपर अनुभव करके आयुर्वेद का पठन पाठन छोड़ दिया था जोकि वह इस नवीन चिकित्सा के जानने से पूर्व किया करते थे उनका मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ क्योंकि उन्होंने अपना अनुभव और सम्मति बिना फ़ीस मुझे दिये और मैं उनकी सहायता से इस योग्य हो गया कि मेरी सर्व पीड़ायें दूर हो होगई और पूरे तीन वर्ष के भीतर ही मुझे पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त हो गया भाग्यवश मेरे पास मेरी भिन्न २ दशाओं के फोटो मौजूद हैं और उनको मैं बड़े हर्ष के साथ देखने वालों को दिखलाऊंगा। जो कोई मेरी पहिली पिञ्जर की सी तसवीर को देखता है और फिर पूर्ण आरोग्य होने में पश्चात् के भरे हुए चित्र को देखता है वह अचम्भे में आजाता है।

अपने आपको आराम करने के पश्चात् मैं चुपचाप नहीं रह सकता था, मैंने बहुत से रोगियों की चिकित्सा की और कई मनुष्यों को बड़े बड़े रोगों से बचाया इससे मुझे साहस हुआ तो मैंने मदरास में रोगियों को मुफ्त सलाह देने के लिये एक सोसाईटी बनाई। इस प्रकार अब तक मैंने लगभग १५०० रोगियों की चिकित्सा की है जो अनेक बिमारियों में ग्रस्त थे।

मेरे लिये यह बतलाना कि क्या २ चिकित्सा प्रत्येक दशा में की है कठिन होगा। यदि किसी को इस चिकित्सा विधि में तनिक भी संदेह हो और अपना संदेह मिटाना चाहे तो मैं उससे यही कहूंगा कि "मेरे पास आओ और मुझ से बातें करो। आओ और देखो।" मैं उसको उन्हीं रोगियों के पास ले जाऊंगा जोकि कुहनी चिकित्सा की अद्भुत सफलताओं के जीवित प्रमाण हैं और मैं बहुत सी चिट्ठिएं भी प्रतिष्ठित लोगों की उनको दिखला सकता हूँ जिनमें अद्भुत सफलताओं का वर्णन है।

संक्षेप से इस स्थान में कुछ आवश्यक बातें लिखता हूँ जिनको ऐसे मनुष्यों को ध्यान रखना चाहिये जो इस चिकित्सा को करना चाहे।

१ इस चिकित्सा के आरंभ करने से पूर्व यह पक्का इरादा कर लेना चाहिये कि इसको पूर्ण प्रकार धैर्य के साथ किया जाय।

२ ऐसे मनुष्यों की सलाह और बताये हुये रास्ते पर चलना चाहिये जिसको इस चिकित्सा में कम से कम १ साल का तजुर्बा (अनुभव) हो।

इस चिकित्सा के विषय में डाक्टरों से सलाह कभी न ले, वह हिम्मत तोड़ देंगे या तुम्हें अच्छी सलाह न दे सकेंगे और उससे तुम्हें नुकसान होगा।

४ एक दिन में तीन दफे से अधिक इस चिकित्सा में बतलाये हुए स्नान मत करो और न कोई स्नान ३० मिनट से ज्यादा का लो जब तक कि इनके बारे में कोई इस चिकित्सा का ज्ञाता सम्मति न दे।

५ बहुत ठंडे पानी का व्यवहार मत करो जिससे ठिरन पैदा हो।

६ चिकित्सा के आरम्भ के दिनों में कोई कठिन परिश्रम करके गर्माई मत लाओ खुले मैदान में टहलना सर्वोत्तम है।

७ काली मिर्च लाल मिर्च और हींग को प्रयोग में न लाओ।

८ बुरी आदतों को और नशों व गर्म मसालों को धीरे २ छोड़ दो।

९ सब प्रकार की दाल और शाकों में कन्द (जड़ में पैदा होने वाले शाक) मत खाओ।

१० ज्वरों की दशा में पिचकारी का बतना, और भूखा रहना बहुत लाभ पहुंचाते हैं।

११ दस्त, पेचिश, हैजा, आदि की दशाओं में पेड़ू का स्टीमबाथ बहुत लाभदायक है।

१२ सप्ताह में एक स्टीमबाथ से अधिक न लो, परन्तु स्थानिक स्टीमबाथ पैरों, हाथों, फोड़ों और जोड़ों पर आवश्यकता हो तो रोजाना दिये जा सकते हैं।

१३ दिमागी काम जहां तक हो सके मत करो। अपने चित्त को बहुत दुःखी मत रक्खो।

१४ चिकित्सा के दिनों में स्त्री प्रसङ्ग से बचो, जब कि कुछ रोग से निवृत्त प्राप्त हो चुकी है और बल भी बढ़ आया है और जीवन शक्ति भी बढ़ आई है तो अधिक से अधिक, १५ दिन में एक बार ऐसा कर सकते हो।

मैंने कुछ इस चिकित्सा विषय की शिक्षायें जो काम में आने वाली हैं एक छोटी सी अंग्रेजी पुस्तक में लिखी हैं, इनसे चिकित्सा आरम्भ करने वालों को ठीक २ चिकि-

त्सा करने में सहायता मिलेगी। यह किताब और एक दूसरा छोटा पेम्फलेट मेरे पास से १) में मिल सकता है, जिनकी बिक्री से जो लाभ होता है वह हमारे इस पवित्र काम के प्रचार करने में सहायता पहुंचाता है।

मैं हर एक मनुष्य को सही सम्मति दूंगा कि इस चिकित्सा करने में किसी अनुभवी पुरुष से सहायता लेवें और बिना सोचे समझे कुछ न कर बैठें।

किसी समय में मैं आशा करता हूं कि मैं जर्मनी जाकर इसको और भी अच्छी तरह सीखूंगा और लौटने पर मैं दूसरों को भी सिखलाऊंगा ताकि इस विद्या के निपुण लोग रोगियों को सम्मत्ति प्राप्त करने के लिये मिल सकें। अब भी हिन्दुस्तान के कई एक भागों में ऐसे सभ्य पुरुष हैं जो इस चिकित्सा पर चलने वालों को ठीक २ रास्ता बतला सकते हैं, यदि हो सके तो उनकी सहायता लेनी चाहिये। मेरी यही आशा है कि आपका हिन्दी भाषानुवाद सहस्रों हिन्दी जानने वाले स्त्री पुरुषों के लिये समस्त भारत वर्ष में अत्यन्त लाभकारी प्रमाणित होगा।

आपका अत्यन्त सच्चा—

कुह्न नेचर क्योर सोसाइटी,
१४४ थम्बू-चेट्टी स्ट्रीट, मद्रास।

जी० वी० कृष्णराव बी० ए०,
आनरेरी सेक्रेटरी।

नोट—यह महाशय हिन्दी नहीं जानते यदि कोई महाशय इनसे पत्र व्यवहार करें तो अंग्रेजी में करें। अब इन्होंने एक सोसाइटी और कायम की है उसका पता यह है—'पं० जी० वी० कृष्णराव बी० ए० जनरल सेक्रेटरी, आल इन्डिया कुह्नी हाइड्रोपैथिक सोसाइटी, प्रिन्सेस स्ट्रीट बम्बई।'

१५ जुकाम, आंखों का दुखना, शिर पीड़ा, बांझपन।

लाला मित्रसैन साहिब जैनी रईस कांधला इस चिकित्सा के विषय में अपने अनुभव द्वारा सफलताओं का वर्णन अपने पत्र में इस प्रकार करते हैं।

मेरे तजुर्बात के बारे में सिर्फ चन्द तजुर्बात हैं जोकि जैल में दर्ज करता हूँ ज्यादा तजुर्बे इस लिये नहीं हुए कि लोग अमूमन गुसलों की तकलीफ़ गवारा नहीं करते और हमेशा इस धुन में रहते हैं कि फौरन आराम हो।

और हर एक शख्स को यकीन दिलाना और इस्तकलाल पैदा करना मुश्किल है और बाज २ अपनी जुबान के काबू में होकर गिज़ा को तर्क नहीं कर सकते। चन्द दोस्तों को यह किताब मंगवादी है।

जहां से सुना गया इस इल्म के मुफीद होने में कोई शक नहीं अगरचे बाजदफा देर में आराम खफीफ होने की वजह से ऐतक़ाद मजबूत नहीं रहता, मगर अमूमन मुफ़ीद है। मैंने खुद इसको इस तरह आजमाया।

जुकाम में

हमेशा ताजे पानी में) इन गुस्लों का इस्तेमाल बहुत मोअस्सर साबित हुआ, अक्सर एक ही फ्रिक्शन हिपबाथ से मामूली जुकाम जाता रहा, वरना चन्द गुसलों के बाद जुकाम का निशान ही नहीं रहा।

मामूली शिर दर्द भी बहुत जल्द आराम हुए। आंखों के आशोब होजाने को रोकने में लासानी है।

हर किस्म के जोश को

रोकने में कामयाबी हासिल होती है, मगर माद्दा फासिद बहुत गुसलों के इस्तक़लाल के साथ करने से खारिज होता है।

बेचैनी जल्द रफा हो जाती है गो गुसलों के छोड़ देने से बाद को पैदा होती है।

गुसलों के बाद हमेशा तबियत मुफरा और हलकी मालूम होती है, कुछ गुसलों से माद्दा फासिद खारिज होजाने पर धूप में काम करना नागवार नहीं बल्कि खुशगवार मालूम होता है।

मसतूरात जो औलाद की ख्वाहिशमन्द हों इस्तकलाल के साथ गुसल करने से बराबर कामयाब हो सकती हैं।

१६ हिस्टीरिया, प्रदर, रोग, गर्भस्थिति।

एक सभ्य पुरुष ने जो यू० पी० में डिप्टी कलक्टर हैं इस प्रकार अपने पत्र में एक रोगिणी की चिकित्सा के विषय में लिखा है—

"एक स्त्री थी जो कई वर्ष से हिस्टीरिया के रोग में और बुरे प्रकार के प्रदर रोग में ग्रसित थी। वह तरुणावस्था की स्त्री थी और विवाह हुए उनका ८ वर्ष हो गये थे परंतु कभी गर्भवती न हुई थी। हिस्टीरिया के दौरों से उसके पति को बड़ा संदेह था और किसी औषधि से उसको फायदा नहीं प्रतीत होता था। एक सप्ताह मासिक धर्म से पहिले और मासिक धर्म होने के पश्चात् उसका चित्त बहुत खराब हो जाता था और यद्यपि उसका स्वभाव अच्छा था पर वह चिड़चिड़ी होगई थी, मैंने उसका इस जल चिकित्सा की ओर ध्यान दिलाया और दो सिटिजबाथ और एक हिपबाथ रोजाना लेना बतलाया उसने मेरे बतलाये हुए भोजन पर पूरा २ अमल किया। ४ मास के पश्चात् मुझे मालूम हुआ कि उसके हिस्टीरिया के दौरे ३ मास में ही दूर होगये थे और वह गर्भवती हो गई थी। अब उसकी गोद में एक अच्छा और तन्दुरुस्त बालक ६ मास का मौजूद है, और हंसता खेलता है।"

(१७) बाबू शिवशंकरलाल पोस्ट आफिस सिधौर जिला बाराबंकी, जिन्होंने इस

जल-चिकित्सा की उर्दू पुस्तकों को पढ़ कर अपनी बीवी बाल बच्चों की चिकित्सा करके लाभ उठाया था २९ दिसम्बर १९१० के पत्र में यों लिखते हैं।

"परम पूज्य वक़ील साहब नमस्कार! २७ मई सन् १९१० के ख़त में मैंने अपनी बीवी और अपने लड़के की बीमारी का हाल लिखा था। तब से साइंस आफ़ फेशियल एक्सप्रेशन देखने की नौबत अब आई है और अब मेरी आंखें पेश्तर से बहुत ज्यादा अच्छी हैं– और वक़ीया की हालत भी क़ाबिल इत्मिनान है।

हम सब का नाम व निशान दुनिया से मिट गया होता अगर आपको बदौलत यह किताबें हमको न मयस्सर आतीं। इसके लिये हम तो दमेमर्ग आपके मशकूर रहेंगे। उम्मेद है कि मिजाज आली बखैर होगा।

आपका अहसानमन्द—

शिवशङ्कर लाल।

१८ श्लीपद (फ़ीलपा) एक पैर का अत्यन्त मोटा हो जाना।

धन्यवाद के साथ नम्रता पूर्वक निवेदन करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष होता है कि "आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या" के द्वारा श्लीपद के एक असाध्य रोगी को मेरी बतलाई हुई साधारण विधि से अद्भुतआश्चर्यप्रद लाभ प्राप्त हुआ है जिसको बड़े २ सिविल सर्जन डाक्टरों ने साफ़ इङ्कार कर दिया था। रोगी को रोजाना फ्रिक्शन हिप व सिट्‌जबाथ और हफ्तेवार स्टीमबाथ कराये गए, दो महीने में मर्ज बिलकुल जाता रहा।

१९ श्रीयुत डाक्टर मक्खनलाल वर्मा, रिटायर्ड सब असिस्टेन्ट सर्जन, इस नवीन आरोग्यप्रद विद्या को व्यवहार में लाकर अपने और दूसरों की चिकित्सा में बहुत सी सफलतायें प्राप्त करके, इस विद्या में अपना अति अनुराग प्रकट करते हुए मुझे निम्नलिखित पत्र लिखते हैं, जोकि पाठकों को अवश्य इस चिकित्सा की ओर आकर्षित करेगा।

महाशय जी!

सन् १८८७ जनवरी में मेरी माता का देहान्त हुआ, जिससे कि मेरा मन डाक्टरी विद्या के सीखने की ओर आकर्षित हुआ, परन्तु माता की मृत्यु के ३ ही दिन पश्चात् मेरे जेष्ठ भ्रता जी का देहान्त होगया जिसने मेरे मन में बड़ी शीघ्रता उत्पन्न की, कि मैं डाक्टरी विद्या को शीघ्र व अवश्य सीखूं और जून मासमें जा कर मेडीकल स्कूल आगरे में प्रवेश होकर–केमिस्ट्री फारमेसी, मैटीरया मैडिका, एनोटोमी, सर्जरी, मेडिसिन फिजियालोजी, मिडवेफरी, ईयरडिजीज आइडिजीज, मेडिकल ज्यूरिस, इत्यादि विद्याओं

को पढ़कर १८६१ मई मास में उत्तीर्ण होकर डिप्लोमा प्राप्त कर प्राइवेट मैडिकल प्रेक्टिस कुछ दिन आगरा और बुलन्दशहर में करता हुआ इङ्गलेन्ड जाने की तैयारी की ताकि इस विद्या में पूर्णता प्राप्त होवे। परन्तु भाग्यवश वहां न जासका और १८६२ जनवरी में गवर्नमेन्ट सरविस ब्रह्मा देश में चला आया और मैडिकल सरविस में अनेक स्थानों में रहते हुए लाखों आदमियों की चिकित्सा की, परन्तु मुझे भी अनेक रोगों ने घेर रक्खा था। औषधि खा कर अपना समय काटता रहा। मेस्मेरिज्म भी सीखा। मेरी स्त्री का देहान्त सन् १८९५ सेप्टेम्बर मास में क्षय रोग से हुआ जिस पर हजारों औषधि की गईं पर कुछ लाभ न हुआ। अपनी आंखों के सामने सैकड़ों नर नारी, बच्चे मरते देखे परन्तु कोई ऐसा इलाज हाथ न आया कि जिससे रोग भले प्रकार दूर होसके। मन में कुढ़ा करता था कि तू अपने रोगों को भी अच्छा न कर सका तो तू दूसरों को क्या लाभ पहुंचा सकता है। किसी प्रकार मैं व्यायाम, प्राणायाम, सादा भोजन आदि से अपना जीवन निर्वाह करता रहा। १६०६ मई मास में मैं स्थान मेम्यो रेलवे डिस्पेन्सरी का इन्चार्ज होकर आया यह स्थान समुद्र के धरातल से लगभग ३५०० फोट ऊंचा है इसलिये कुछ स्वास्थ्य मेरा यहां सुधर गया।

१६१० जनवरी में मास्टर गोपालदास का जो पञ्जाब वजीराबाद के रहने वाले है दर्शन हुआ उन्होंने मुझसे कहा कि डाक्टर साहिब आप क्यों इन दवाइयों में अपना समय खोते हैं जबकि सारी बीमारियां जल, अग्नि, वायु व आहार से ही अच्छी हो सकती हैं। मैंने यह बात सुनकर ताज्जुब किया और यह कहा कि यदि ऐसा हो सकता तो हमारी गवर्नमेन्ट क्यों करोड़ों रुपया खर्च करती और लाखों डाक्टरों को तनख्वाह देकर खर्च करती। तब उन्होंने कहा कि आप आजमायश कर देखिये तब अपनी राय दीजिये, मैंने यह बात मंजूर की और पहली फरवरी सन् १९१० को पहला फ्रिक्शन हिपबाथ किया। तीन ही दिन फ्रिक्शन हिपबाथ करने से मेरे क़ब्ज में गैर मामूली फ़ायदा हुआ, तब तो मेरा मन जल चिकित्सा के नियमों की तरफ़ शीघ्रता से होगया और मैंने मास्टर साहिब से प्रार्थना की कि यदि कोई पुस्तक जल चिकित्सा के ऊपर हो तो मुझे दीजिये। उन्होंने ५ फरवरी को आपकी उल्था की हुई पुस्तक "नया इल्म शफ़ा। बख्शी" लाकर दी और मैंने उसको बड़े गौर से पढ़ना आरम्भ किया और उसी के नियम का पालन करता हुआ अपनी बीमारियों को आराम करने की चिन्ता में लग गया मुझे यह बीमारियां सता रहीं थीं मेरा बायां धड़ कमजोर था, अच्छी तरह दौड़ न सकता था, क़ब्ज दायमी था। जिरयान का मर्ज २८ वर्ष से था। आंखें अपना काम बिना चश्मे के नहीं कर सकतीं थीं।

जब धूप में जाना पड़ता था तो शिर में दर्द हो जाया करता था; रानों में दाद था, पांव की उङ्गलियों की छोटी गाहियों में जख्म हो जाया करते थे। जुकाम हर तीन या चार कभी २ दो माह बाद हो जाया करता था, जिससे कभी २ छाती में दमे की सी अलामत जाहिर हो जाती थी, मेरे ६ दांत हिल गये थे। और हर साल दाहिनी भौं में दर्द होजाया करता था, सुस्ती, काहली, पस्त हिम्मती रहा करती थी, कानों से कम सुनाई पड़ता था। शिरके सामने बांई तरफ़ एक गूमड़ी थी जिसका क़द २×१॥ इञ्च था मोटाई चौथाई इञ्च थी। मैंने नया इल्म शफा बख्शी को तीन महीने तक खूब पढ़ा, पश्चात्—"दी साइन्स आफ फेशियल एक्सप्रेशन" को बाबू रामचरणलाल जी से मंगा कर पढ़ा और इन किताबों के ऊपर पूरा अमल भी करता रहा, दूसरे बीमारों पर भी आजमाना शुरूकर दिया। मैंने पहली फरवरी १९१० से ३ फर्वरी तक तीन फ्रिक्शन हिपबाथ किये ४ फ़र्वरी को पहला स्टीमबाथ लिया था जिसके बाद मुझे बहुत ही आराम मालूम पड़ा, रोटी बिना छने आटे की व फल और तरकारी बिना घी और मसाले के काम में लाता रहा, नतीजा यह निकला कि धातु क्षीण का रोग ६ मास में अच्छा हो गया क़ब्ज बिलकुल जाता रहा। टट्टी ऐसी साफ़ आने लगी जैसे की मिस्टर कुहनी ने अपनी किताब में लिखा है बायें धड़ का बोझ कम होता गया शिरका दर्द हमेशा के लिये चला गया। १॥ वर्ष के इलाज के बाद मेरी आंखों में रोशनी आने लगी शिर पर जो गूमड़ी थी वह घट कर चौथाई रह गई। अब चश्में बगैर काम चलने लगा, दाद का नाम निशान हमेशा के लिये मिट गया—घाहियों के जख्म भी सूख गये शरीर में मजबूती और ताक़त आगई, चेहरा बदल गया, सफेद बाल फिर स्याह होने लगे। दांत अपनी अपनी जगह जम गये मगर मैंने इलाज जारी रक्खा और तीन वर्ष तक बराबर करता गया। मेरी खुराक एक वर्ष बाद कच्चे गेहूं व चना मकाई ताजा मौसमी फल वा सब्ज तरकारी हो रहे। पानी कभी पीने को काम में न लाता था और न प्यास लगती थी।

और साथ ही साथ सैकड़ों रोगियों को अच्छा करता गया जिनमें से थोड़ों का हाल यहां लिख दूगा। मुझे इस इलाज के साथ आने की इस क़दर खुशी है कि उसके इज़हार के वास्ते मेरे पास न तो काफ़ी शब्द हैं और न जिह्वा में ताक़त है बयान कर सके। जब मुझे यह इलाज पसन्द आया तो मैं उसकी सिफ़ारिश अपने पेशे वालों से भी करने लगा अगरचे वह भी मेरी बात को दिल्लगी में उड़ाना चाहते थे मगर मैंने जब उन्हें अपने तजुर्बे दिखलाये तो उन्होंने भी इस नये इल्म के सामने अपना शिर खम कर दिया।

सबसे पहिले हम पेशा मेरे मित्र डाक्टर मक़बूल आलम सब असिस्टेंट सरजन लार्ड गवर्नर ब्रह्मा कैम्प थे जिनको मर्ज एपेन्डीसाइटिस Appendecites (यानी पैर में सोजिशी मर्ज था) बगैर मसाले व घी की तरकारी व फल व बिना छने हुए आटे की

रोटी के इस्तेमाल से आराम होगया। इनके वास्ते मैंने पहिले तीन दिन फ्रिक्शन हिपवाथ २० मिनट के करवाये फिर एक सिट्ज़बाथ सुबह को और एक हिपवाथ शाम को और हफ्ते में २ पूरे स्टीमबाथ तजवीज किये थे। डा० साहिब ने बीमारी अच्छी होने के बाद एक दिन गोश्त खालिया उसी दिन फिर वह बीमारी लौट आई मगर फिर जब वह परहेजी खुराक खाने लगे और बाथ करने लगे२ हफ्ते में बीमारी अच्छी फिर होगई। उनको भी इस इलाजसे इश्क हो गया और बहुत से बीमारों पर तजुर्बा करते रहे। मैंने डा० साहब को नया इल्म शफ़ा बख्शी किताब भी मास्टर रामचरणलाल जी के पास से मंगवादी और उन्होंने अपना इरादा भी ज़ाहिर किया कि मैं पञ्जाब में जाकर इसी इल्म की बुन्याद पर एक दारुलसफ़ा खोलूंगा।"

इस पत्र में डाक्टर साहिब ने कोई ५० रोगियो की फेहरिस्त दी हैं जिनको उन्होंने इस जल चिकित्सा से आराम किया जिनके सम्बन्ध में इतना ही लिखना पर्याप्त है कि उनके रोग निम्नस्थ थे दमा, क़ब्ज़, गठिया, धातु क्षीणता, बवासीर, पेट की सूजन, पांव की सूजन, मलेरिया बुखार, डायाबिटीज, मन्दाग्नि, भौं में दर्द, अण्डकोश में पानी आजाना, मोतिया शीतला, खुजली सिफ़लिस के कारण गठिया व फुन्सियां, फालिज, जाड़ा बुखार, खांसी, पुराना सोजाक मिर्गी, कोढ़, मुंह से खून थूकना जिगर और तिल्ली के बढ़जाने के रोग जिसको स्थानाभाव से नहीं दिया गया।

श्री महाशय श्रोत्रिय जी यह थोड़ी सी फ़हरिस्त मैंने ऊपर दी है यह केवल नाम-मात्र के लिये है, मैंने इस बये इल्म शफ़ाबख्शी से अब तक सैकड़ों मनुष्य अच्छे किये हैं और अब मेरा विचार एक हास्पिटल खोलने का है जिसके लिये मैंने भूमि लेकर ५ बाग बनवाये हैं। आशा है कि ५ वर्ष में मुझे बहुत फल मिल सकेंगे। कम से कम ५० रोगियों की खुराक इकट्ठा कर सकूंगा जिसके लिये ब्रह्मा देश में पब्लिक से कुछ भिक्षा भी मांगूंगा और इस उत्तम काम में अपना सर्वस्व लगाकर सर्व साधारण को दिखाना चाहता हूं कि सब से उत्तम मार्ग रोगों के रोकने और अच्छा करने का केवल मिस्टर कुहनी का ही है। अभी गवर्नमेण्ट भी इस उत्तम तरीके से नावाकिफ है परन्तु आशा है कि पूरा यत्न करने पर सबको ज्ञात हो जावेगा। मेरा विचार भारतवर्ष में भी इस उत्तम चिकित्सा के फैलाने का है और मैं आशा करता हूँ कि आपका नागरी का एडीशन मेरी बहुत सहायता करेगा। अगले नवम्बर मास में मेरा विचार देश में आने का है तब आपके भी दर्शन करूंगा इस लिये मैं अब सरकारी सर्विस से निकल चुका हूं, कुछ पेन्शन पाता हूं। भविष्यत् में फल प्राप्तार्थ वाटिकाओं के बनाने में लगा हूँ। मुझे आशा है कि जब मैं मुरादाबाद आऊंगा तब मेरे लेक्चरों से सर्वसाधारण को लाभ पहूंचावेंगे

जो कुछ मुझे कामयाबी हासिल हुई हैं वह आपके तजुर्बे की बदौलत हुई है इसके लिये मैं आपको अनेक बार धन्यवाद देता हूं, और देता रहूंगा। आपने इस नई विद्याके उल्था करने में जो सर्व साधारण का उपकार किया है उसका बदला परमात्मा आपको अवश्य देंगे।

मैं हूँ आपका दर्शनाभिलाषी—

एम० एल० वर्म्मा

मेमियो MAYMYO। रिटायर्ड सब असिस्टेन्ट सर्जन, (वाटर क्योर।

२१ हड्डी की टयूबर क्यूलोसिस-हृदय और कूल्हे पर गुमड़ी और नासूर—पेड़ू के भीतर अर्द्ध भाग में फोड़ा—पुराना ज्वर।

बाबू गेंदनलाल जो नवम्बर सन् १९१६ ई० में सधना जिला मेरठ के सब रजिस्ट्रार दफ्तर में मुहर्रिर थे, उनकी दशा में जो आश्चर्यजनक सफलता इस जल चिकित्सा से हुई उसकी साक्षी उनके निम्न लिखित पत्र से विदित होगी जिसका अधिकतर भाग पाठकों के लाभार्थ लगभग ज्यों का त्यों मुद्रित किया जाता है वह लिखते हैं:—

"मै अपना कर्तव्य समझ कर और प्यारे रोगियों को संतोष दिलाने के अभिप्राय से आपकी सेवा में उस साधारण सफलता की चिकित्सा का धन्यवाद देता हुआ निम्नलिखित अपनी बीमारी की दशा और चिकित्सा विधि के वृत्तान्त को वर्णन करता हूँ जोकि आपने मेरे गए बीते जीवन की आरोग्यता के लिये नियत किया। जो महाशय जिस बात के विषय में मुझसे कुछ पूछेंगे सहर्ष नम्रता पूर्वक निवेदन करूंगा।

मैं प्रथम बार सन् १९०८ ई० में शारीरिक फोड़े के रोग में ग्रसित हुआ, जिसको शस्त्रक्रिया (अमल जर्राही) द्वारा विकृत द्रव्य को दबा कर दूर कर दिया। उसके कुछ दिवस पश्चात् मुझको दुबलापन, कमर दर्द, पाचन की खराबी होना प्रारम्भ हुई। मैं आरम्भ सन १९११ ई० में बहुत ही कमजोर होगया, यहां तक कि मेरा वजन एक मन तेइस सेर की अपेक्षा एक मन ग्यारह सेर रह गया और भोजन भी केवल नाम मात्र को लगभग ५ तोले के रह गया। मुलाजमत का काम करना अति कठिन होगया। इसी बीच में मुझको कमर दर्द, बुखार के अत्यन्त कठिन दौरे पड़ने प्रारम्भ हुए। दर्द का दौरा पैरों से आरम्भ होकर बिजली की चाल के समान ऊपर की ओर सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता था और यह दौरे प्रति पांच पांच मिनट में पड़ते रहते थे। नींद बिलकुल नहीं आती थी, दिन रात अत्यन्त बेचैनी के साथ बीतते थे। इलाज डाक्टरी व यूनानी व वैद्यक प्रत्येक प्रकार के कराए गये थे किन्तु आरोग्यता पूर्णतया प्राप्त नहीं हुई थी निस्सन्देह कुछ समय के लिये दर्द के दौरे न्यून हो गये थे, (वास्तव में मेरे रोग का

निदान नहीं हुआ था) इसके पश्चात् दिसम्बर सन् १९११ ई० में मेरे बाएं ओर छाती में चबक के साथ दर्द होना आरम्भ हुआ और एक सप्ताहा पीछे दर्द के स्थान पर एक सूजन की गांठ चने के बराबर उत्पन्न हुई, और वह शैनः २ बढ़ती और छाती से हटती हुई बीचो बीच हृदय पर आलू के समान गोल होकर आ जमी। इसी रीति से मेरे बाएं करवट में रीढ़ की हड्डी के पास दर्द होना प्रारम्भ हुआ और पुनः सूजन की गांठ प्रकट हुई जो कोड़ी के बराबर थी, वह भी धीरे २ बढ़ती और हटती हुई बाएं कूल्हे पर अण्डे के समान बड़ी मात्रा में होकर आ जमी, और पुनः शनैः २ हटती हुई चली गई। प्रत्येक गांठ सूजन की आकृति में थी फोड़े की आकृति में न थीं अर्थात् यह विकृत पदार्थ इकट्ठा हो गया था। अतः ऐसी दशा में प्रथम डाक्टरी चिकित्सा की की ओर विशेषतः ध्यान दिया गया। दो मास तक गाजियाबाद में भी जब कि मैं वहां पर सन् १९०६ ई० से मुहर्रिर रजिस्ट्री था, असिस्टेन्ट सर्जन साहब का इलाज किया गया किन्तु आरोग्यता न होने की दशा में देहली व मेरठ आदि में जाकर भिन्न २ प्रकार की चिकित्साएं की गईं तो भी कुछ परिमाण प्राप्त नहीं हुआ और रोग बराबर बढ़ता गया। प्रायः हकीमों व डाक्टरों ने निदान में सौदावी द्रव्य नियत किया था, परन्तु उनकी चिकित्सा से नीरोगता प्राप्त नहीं होती थी। विवश होकर कुछ महाशयों की सम्मत्यानुसार अप्रैल १९१२ ई० को मैं कसौली पहाड़ पर चला गया। वहां पर जाकर भी प्रथम एक बड़े होशियार और मशहूर सर्जन साहब बहादुर का इलाज कराया गया सर्जन साहब बहादुर ने दो मास तक पिचकारी की विधि* से इलाज किया जिसके कारण से ज्वर में न्यूनता प्रतीत होने लगी और कुछ वजन भी बढ़ना शुरू हो गया। आखीर तक चार सेर के लगभग वजन बढ़ गया था किन्तु सूजन आदि कम नहीं हुई। इस कारण रोग निदान हेतु कुछ सर्जन साहबान बहादुर की सम्मति से यह प्रयोग किया गया कि एक सफेद खरगोश बिना दुम का जो अति सुन्दर था मंगवाया गया, और मेरी छाती की सूजन में से पिचकारी द्वारा ६ माशे मवाद निकाल कर उसी पिचकारी से खरगोश की छातीके भीतर वही द्रव्य पहुंचाया गया, और उसका पालन पोषण एक अलग पींजरे में होना प्रारम्भ हुआ। १५ दिवस के बाद खरगोश बीमार हुआ और एक महीने के बाद मरगया। उस खरगोश की प्रति दिवस डाक्टरी परीक्षा होती रहती थी। मरने के पश्चात तुरन्त ही खरगोश की शस्त्रिक क्रिया (अप्रेशन) सर्जन साहबान ने की, और खुर्दबीन आदि के द्वारा खरगोश के कर्मेन्द्रिय दिल आदि में ट्यूबर क्यूलोसिस अर्थात् हड्डी की तपैदिक (क्षय) के फोड़ें

नोट*—अर्थात् त्वचा के भीतर पिचकारी से औषधि पहुंचाते हैं।

के कीड़े ज्ञात हुए, जिसके कारण मेरा रोग निदान होकर हडडी की तपेदिक के नाम से नियत हुआ। डाक्टर साहब इसी रोग की चिकित्सा ६ सप्ताह पूर्व से कर रहे थे, किन्तु कुल्हे और छाती पर विकृत द्रव्य के बोझ के कारण से शस्त्रिक क्रिया (अमल जर्राही) होना नियत हुआ था। अतएव दोनों ओर रोग स्थान पर दो २ बार अत्यन्त कठिन शस्त्र क्रिया हुई यहां तक कि कूल्हे के अप्रेशन में तो कमर के बांस तक का ऊपर का भाग चीर फाड़ डाला गया, जिसमें से उस समय दो पौंड के लगभग विकृत द्रव्य निकल कर सूजन बिल्कुल त्वचा के बराबर मिलगई। कुछ समय तक नैमित्तिक ड्रेसिङ्ग होनेके पश्चात घाव भरना आरम्भ हो गए, और जबकि घाव भर कर अच्छी दशा में आ गए और मेरे घावों की अन्तिम पट्टी के खोलने की अवधि एक सप्ताह की नियत हुई उससे चौथे ही दिवस दुर्भाग्यवश मेरे कूल्हे के अच्छे हुए घाव में सहसा एक बारही बारीक छिद्र हो कर आधे पौंड के लगभग मवाद निकल पड़ा, और मेरी आरोग्यता की बंधी हुई अन्तिम पट्टी सम्पर्ण तर हो गई। इस प्रकार से छाती के अच्छे हुए घाव में भी यही बात पैदा हो गई-और दोनों ओर नासुर होगये। उस दिन मेरी नये सिरे से आई हुई आरोग्यता के आनन्द की आशा फिर मुझसे बिदा होने लगी और मैं अत्यन्त शोकावस्था में होगया। विवश डाक्टर साहब को बुलवाया गया, जिसकी परीक्षा करके डाक्टर साहब को भी अत्यन्त शोक हुआ, और मेरे दुर्भाग्य की शिकायत बतलाकर कहा कि चूंकि अब तुम्हारे दोनों ओर नासूर पैदा हो गए हैं इसलिये आराम होने में अधिक समय की आवश्यकता होगी। क्योंकि अब शरद ऋतु का प्रारम्भ होगया था इस कारण पहाड़ की सर्दी सहन नहीं हो सकती थी। अतः मुझको सर्जन साहबान ने अत्यन्त कृपा दृष्टि के साथ पहाड़ से वापिस आने की आज्ञा दी और विश्वास दिलाया कि कुछ समय के पश्चात् तुम्हारे नासूर अवश्य अच्छे हो जावेंगे, क्योंकि तुम्हारे असली रोग अर्थात् हड्डी की तपेदिक की चिकित्सा पर्याप्त हो चुकी है। इसमें संशय नहीं कि किसौली पहाड़ की चिकित्सा में मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति के ऊपर सर्जन साहबान बहादुर ने जो २ कृपादृष्टि और सहृदयता प्रकट की हैं उनका धन्यवाद मेरी लेखनी से बाहर है। अतएव भय के आधीन होकर अक्टूबर के महीने में पहाड़ से इस आशा में वापिस चला आया कि रोग का भारी झटका तो निकल ही चुका है अब अवश्य शीघ्र नीरोगता हो जावेगी। किन्तु ऐसा कहां होने को था अभी तो दैविक विपत्ति ने प्रारम्भ ही किया था। किसी कवि का वचन है:- "इब्तदाए मर्ज है रोता है क्या-आगे २ देखिये होता है क्या ?" पहाड़ से वापिस आकर फिर एक देहली के प्रसिद्ध डाक्टर साहब की चिकित्सा शुरू की। जिसमें बहुत ही शीघ्र भिन्न भिन्न प्रकार की पिड़ायें सहने का अवसर प्राप्त हुआ जिसको

में किसी प्रकार भी सहन करने का धैर्य न कर सका। और भाग्य की प्रबलता से देहली में आकर मेरे पेडू के भीतर दाहिनी ओर भी एक ज़रासा फोड़ा और पैदा हुआ जिसने मेरे रहे सहे होश हवाश भी उड़ा दिए और अधिक नैराश्य का समय जान पड़ा। विवशतया देहली से वापिस चला आया और पन्द्रह बीस दिन के लिये हापुड़ में आकर एक और डाक्टर का इलाज किया, जिसने मुझको शर्तिया आरोग्यता की आशा दिलाई थी, परन्तु वह भी अपने प्रयत्न में असफल सिद्ध हुए।

इसके पश्चात् मैं मेरठ आगया और दो मास डाक्टरी चिकित्सा कराई किन्तु निष्फल रही और पेडू के भीतर का फोड़ा दिन प्रतिदिन वृद्धि प्राप्त करता गया, और ज्वर ने भी अपनी तीव्र गति प्रारम्भ कर दी। पहाड़ का बढ़ा हुआ वज़न पुनः घटना आरम्भ होगया, यहां तक कि मैं बहुत ही दुर्बल होगया और ज्वरदेव हर समय के मेहमान रहने लगे। सब प्रकार से नैराश्य की दशा छा गई। पेडू के भीतर फोड़े ने लगभग अर्द्ध स्थान घेर लिया था। अभिप्राय यह है कि चन्द डाक्टर साहबान ने अपनी सम्पूर्ण कोशिशों के पश्चात् अन्त में यह सम्मति प्रगट की कि पेडू का भी अप्रेशन होना चाहिये—बिना इस अमल जर्राही के और चिकित्सा असम्भव प्रतीत होती है। इस पर मैंने कर जोड़ कर यों विनय की कि जब मेरे कूल्हे आदि के घाव और नासूर अप्रेशन से अच्छे नहीं हुए तो पुनः चीर फाड़ से पेडू के भीतर का फोड़ा किस प्रकार अच्छा हो सकता है ?

द्वितीय कि मेरी शारीरिक शक्ति ने मुझको बिल्कुल जवाब दे दिया है। मैं इस निर्बलता की दशा में इस नाजुक और अत्यन्त कष्टदायक शस्त्र क्रिया को किस प्रकार सहन कर सकूंगा ? इसके सुनने के पश्चात् मुझको एक होशियार डाक्टर ने यह सम्मति दी कि वस्तुतः पेडू का अप्रेशन सब से नाजुक अप्रेशन है जो एक बहुत ही भयानक दशा का होगा—प्राण बचने मुश्किल होंगे, बिना अप्रेशन के सम्भव है कि कुछ समय तक जीवित रह सको, और इस अप्रेशन से तुरन्त ही यह फैसला हो सकता है कि या तो मर्ज़ ही नहीं या मरीज़ नहीं। वास्तव में मेरे साहस ने इस चीर फाड़ी की क्रिया को स्वीकृत न किया। अन्त में मैंने सर्व प्रकार की चिकित्साओं को निराश होकर छोड़ दिया, और अपना शेष जीवन गङ्गा तट पर बिताना विचार कर अपने रहन सहन का प्रबन्ध एक कुटिया बनवा कर करा लिया गया।

वस्तुतः मैं गंगा किनारे जाने ही वाला था कि ईश्वर की कृपा से मुझको एक सज्जन ने मेरठ में यह सम्मति दी कि तुमने और तो प्रत्येक प्रकार की चिकित्साएं करा ही ली हैं, मेरे कहने से एक जल स्नान की जो नई ईजाद चिकित्सा है, और

कर लेनी चाहिये और यहां पर आजकल पण्डित मोहनलाल हुक्कू एम० ए० सदर आला साहब बहादुर भी मौजूद हैं कि जिन्होंने पुस्तक 'आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या' के अनुवाद में श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप साहब वकील, मुरादाबाद को इमदाद दी थी ! अतः उक्त महोदय से इस जल चिकित्सा के सम्बन्ध में अवश्य सम्मति लेनी चाहिये। प्रत्युत मैं कुछ सभ्य पुरुषों के अनुरोध से डोली में बैठ कर श्रीमान् सदर आला साहब बहादुर के बङ्गले पर पहुंचा, और कर जोड़ कर अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त आरम्भ से अन्त तक कह सुनाया। वास्तव में उक्त श्रीमान ने मेरी बुरी दशा को अत्यन्त ही कृपा दृष्टि और सहृदयता से निरीक्षण करके इस प्रकार कहा कि यद्यपि तुम्हारी दशा ज्यादा नाजुक है और रोग सीमा तक पहुंच चुका है तो भी चिकित्सा से हताश न होना चाहिये। अतः मैंने निवेदन किया कि श्रीमान मुझको जल-चिकित्सा के विषय में सम्मति दें कि मुझको किसप्रकार करनी चाहिये ? श्रीमान् ने कहा कि मैं इस चिकित्सा विधि से अधिक जान-कार-नहीं हूँ क्योंकि मैंने केवल एक भाग का अनुवाद श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप साहब वकील, मुरादाबाद से मिलकर किया था, शेष कुल अनुवाद श्रोत्रिय साहब ने ही किया है और वेही इस चिकित्सा में पर्याप्त अनुभव रखते हैं। अतएव तुम मुरादाबाद जाकर उक्त श्रोत्रिय जी से चिकित्सा की सम्मति लेकर जल चिकित्सा प्रारम्भ कर दो। अपितु मैं श्रीयुत सदरआला साहब बहादुर की चिट्ठी के जरिये से माननीय उक्त श्रोत्रिय जी की सेवा में २ जनवरी सन् १६१३ ई० को मुरादाबाद पहुंचा और कुल वृत्तान्त आद्योपान्त कह सुनाया। श्रोत्रिय जी ने उसी समय अपना अत्यन्त बहुमूल्य समय मेरे निरीक्षण और चिकित्सा सम्मति में खर्च करके मुझको इस प्रकार शिक्षा बतलाई कि यदि तुम अत्यन्त सन्तोष व धैर्यता के साथ उचित पथ्य से इस चिकित्सा का प्रारम्भ करोगे तो सम्भव है कि तुम्हारे प्राण बचजाएं। क्योंकि तुम्हारा रोग पुराना और नाजुक होगया है इसी कारण चिकित्सा में अधिक समय तक सन्तोष और धैर्य की आवश्यकता है। प्रत्युत मैंने सत्य अन्तःकरण से प्रतिज्ञा करके निवेदन किया कि मैं अत्यन्त सन्तोष तथा धैर्य पूर्वक चिकित्सा करूंगा परमेश्वर मेरी सहायता करें। अतः मेरी इस प्रतिज्ञा को स्वीकार करके माननीय श्रोत्रिय जी ने उसी समय मुझको चिकित्सा की विधि और उचित भोजन का व्यवहार बतलाकर बाबू रामचरण साहब प्राइवेट मास्टर के सुपुर्द किया और एक सप्ताह तक मुझ को अपनी निरीक्षता में रखकर चिकित्सा-विधि की कुल क्रियाएं प्रयोग कराकर समझा दीं, और कहा छः मास चिकित्सा के पश्चात् तुम्हारे कूल्हे व छाती के नासूर भरने आरम्भ होंगे और पेडू के अन्दर फोड़े का विकृत द्रव्य भी नीचे की ओर टांग में को उतर कर खारिज होगा, और चिकित्सा समय में पहले दबे

हुए रोग भी उभरेंगे उस समय धैर्य की अत्यन्त आवश्यकता होगी। वास्तव में ऐसा ही हुआ कि छ मास के भीतर कूल्हे का नासूर भरना प्रारम्भ हुआ और आठ मास के पश्चात् बिल्कुल अच्छा होगया। पेडू के भीतर के फोड़े का सम्पूर्ण विकृत द्रव्य नीचे टांग की जड़ में को उतर कर ता० २ सितम्बर १९१२ को मुंह करके खारक होना शुरू हुआ। प्रथम दिवस आठ कटोरे मवाद निकला जो ढाई सेर से अधिक था और मेरी टांग का कुछ भाग जिसको जांघ कहते हैं विकृत द्रव्य के भरजाने से इतना मोटा होगया था कि जिसका परिमाण मवाद के निकालने से होसकता है। मवाद निकलने के पश्चात् टांग का वह भाग जो मोटा होगया था सिकुड़ कर अपनी असली दशा में आगया, और मैं लाठी के सहारे से खड़ा होकर चलने लगा। उस दिन से मैं अपना द्वितीय जन्म समझने लगा क्यों कि पेडू के भीतर का फोड़ा अत्यन्त ही भय-प्रद था।

परन्तु दैव को अभी और कुछ रङ्ग दिखाना बाक़ी रह गया है जिसके कारण मुझको जीवित होजाने का विचार कर लेना एक हारे का हरनाम लेना है। मुझको चिकित्सा में कमर दर्द के दौरे और अन्य भिन्न २ प्रकार के दौरे पड़ने आरम्भ हुए थे जोकि बनावटी ढंग से दबाये जा चुके थे, उनमें एक बुखार का दौरा टांग से मवाद निकलने के एक सप्ताह पश्चात् ८ सितम्बर १९१२ ई० को ऐसी तीव्रता से प्रारम्भ हुआ कि दो डेढ़ मास तक बराबर चढ़ा रहा, जब तक मुझ में सावधानता और शक्ति स्थित रही नित्य प्रति धैर्य पूर्वक बाथ लेता रहा। अन्त को ज्वर ने मुझे इतना बलहीन करदिया था कि करवट तक लेने की शक्ति न रही और किसी २ समय मनुष्य को पहिचान सकना भी दुर्लभ होगया, पैरों पर सूजन आगई, खांसी अत्यन्त बढ़ गई। खांसी के कारण से सम्पूर्ण रात्रि बेचैनी से बीतने लगी अर्थात् जीवन और मृत्यु का परस्पर विवाद होने लगा। घरवाले सब निराश हो गए, और मुझको जिस समय तनिक होश होता था इस बात की हिदायत करते थे कि इस चिकित्सा को बन्द करके किसी हकीम व डाक्टर को दिखाना चाहिये किन्तु घर वालों से मेरा उत्तर यही था कि—मैं अपने जीवन का निपटारा इस अन्तिम जल चिकित्सा पर प्रस्तुत कर चुका हूं। अपितु मैंने इस विशेष नाजुक समय पर जब कि मुझको अपने जीवन की आशा, शेष नहीं रही थी—श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप साहब को अत्यन्त खेदयुक्त अपने अन्तिम नमस्कार की सूचना और पूर्ण समाचार (वृत्तान्त) लिखाकर भेजा, और अगले दिन तार द्वारा श्रोत्रिय जी को देखने के लिये, बुलवाना चाहा—परन्तु तार का उत्तर तार द्वारा इस प्रकार मिला कि 'बाबू रामचरण साहब आते हैं घबराओ मत क्योंकि यह वही समय प्राप्त है जिसमें सन्तोष व धैर्य की सख्त जरूरत है, और यदि कुछ दिवस से जल चिकित्सा निराश होकर बन्द

करदी हो तो तुरन्त प्रारम्भ करदो।" निदान उक्त बाबू साहब तीसरे दिन मेरे पास सधंना तशरीफ लाए, और मेरी दशा का निरीक्षण करके बोले कि यह ज्वर का अन्तिम झटका है, यदि ईश्वर ने इस बार सफलता प्राप्त कर दी तो फिर कुछ संशय नहीं है। अतः उक्त बाबू साहब ने तीन दिवस ठहर कर अपनी निरीक्षकता में ऐसी नाजुक दशा में हल्के २ कुछ स्नान कराए और भविष्यत् में इसी प्रकार धैर्य पूर्वक स्नान करने की शिक्षा दी। प्रत्युत मैंने नित्यप्रति पुनः बाथ प्रारम्भ कर दिये जिससे ज्वर में एक सप्ताह के पश्चात् कुछ न्यूनता होनी प्रारम्भ हुई और कुछ समय के पश्चात् बिल्कुल जाता रहा, और शेष सम्पूर्ण शिकायतें जैसे—पैरों की सूजन, खांसी इत्यादि भी बिल्कुल दूर होगई। इस नाजुक दशा में मेरे नित्य प्रति दो बाथ २०-२० मिनट के हिप व सिटिज बाथ्ज होते थे और सप्ताह में एक दो बार सन बाथ भी लेता था। इस वक्त मेरा भोजन फल और गेहूं के फीके दलिये के सिवाय और कुछ न था। साधारणतया चिकित्सा के दिनों में मेरा भोजन सदैव गेहूं के मोटे आटे की रोटी और बिना मसाले किञ्चित् नमक की तर्कारी और दाल मूंग इत्यादि थीं। मौसमी फलों का अर्थात् सेव, अंगूर आदि का सेवन नित्य प्रति था, जिसमें से मुझको सेव अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुए। एक ग्रास को ३२ बार की अपेक्षा ६४ बार चबा २ कर खाता था। मैंने प्रायः हर बाथ का समय पौन घण्टा बढ़ा लिया था। एक मास में एक कभी दो पूरे स्टीम बाथ्ज भी लेता रहा। घी दूध का सेवन छः मास तक बिल्कुल बन्द रहा। पश्चात ६ माशे घी और पाव भर ताजा निकला हुआ गाय का दूध पीना आरम्भ कर दिया। एक वर्ष पश्चात् (अर्थात् २ सितम्बर १९१३ ई० से एक वर्ष पीछे) मेरा वह घाव भी जो पेडू के भीतर के फोड़े ने जांघ में कर लिया था और बहुत ही कष्टदायक था और जिसमें से नित्य प्रति पाव २ भर मवाद निकलता था शनैः शनैः न्यून होता हुआ बिल्कुल अच्छा होगया और छाती के ऊपर जो नासूर पड़ गए उनमें जल चिकित्सा के कारण यह परिवर्तन उत्पन्न हुए कि घाव की जगह से कुछ ऊपर को एक और फोड़ा चिकित्सा से छः मास पश्चात् उत्पन्न हुआ (अर्थात् शेष विकृत द्रव्य का उभार हुआ)। जिस पर हर समय पानी की गद्दी व सन बाथ्ज का सेवन होता रहा, जिसके कारण से वह भी कुछ समय के पश्चात् फूट गया और विकृत द्रव्य उसमें से निकलने लगा। लगभग दो तीन तोले दैनिक बहिष्कृत होता रहा, और दोनों ओर फोड़ों का पारस्परिक सम्बन्ध हो गया था। छः मास पश्चात् छाती पर के नासूर भरने आरम्भ होगए और कुछ समय के पश्चात् सिवाय एक नासूर के सम्पूर्ण नासूर अच्छे होगए।

परन्तु ईश्वर की कृपा से अब वह शेष एक नासूर भी नाम मात्र को रह गया है जो लगभग शीघ्र भरने वाला है. क्योंकि अब इसमें से विकृत द्रव्य का बहिष्कृत होना

नाम मात्र रह गया है, एक दो माशे प्रतिदिन निकलता है जो शीघ्र भर जाने वाला है।

मुझको किसौली पहाड़ पर भी सर्जन साहब बहादुर ने और श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप साहब ने भी इस बात की विशेष हिदायत की थी कि खुले और हवादार मकान में रहना और सोना चाहिये और जिस स्थान की वायु अनुकूल हो वहां रहना चाहिये। अतएव मेरा तबादला गाजियाबाद से सर्धना को बीमारी की दशा में होगया था। अनुभव से मुझ को सर्धना की जलवायु ने अधिक सहायता पहुंचाई है और मैने एक खुले और हवादार मकान में रहने का प्रबन्ध कर लिया है। निदान मैं ईश्वर की कृपा से और सर्व सज्जनों के आशीर्वाद से ६ जनवरी सन् १९१५ ई० को तीन वर्ष कठिन आपत्ति में बिताकर अपने काम पर प्रस्तुत हुआ और इस समय तक उत्तमता के साथ मुन्सरी के कार्य को कर रहा हूँ। जनाब इन्स्पैक्टर साहब बहादुर ने १९१५ ई० में मेरे काम को अपने मुआइने में इस प्रकार लिखा है कि:– "गेंदनलाल मुहर्रिर अव्वल मुहर्रिर दोयम से दुगना काम करता है।" और अब २२ मार्च १९१६ ई० को लेखक आर्य के लड़की उत्पन्न हुई है।

अब मैं अपनी इस रामकहानी को ईश्वर की अपार महिमा का दिग्दर्शन कराते हुए सहस्रशः धन्यवाद और कृतज्ञता पूर्वक जो कुछ कि कृपाएं उक्त माननीय श्रोत्रिय जी ने इस तुच्छ व्यक्ति पर प्रकट की हैं समाप्त करता हूँ।

सर्धना
२५ मार्च १९१६ ई०

लेखक—
गेंदनलाल, मुहर्रिर रजिस्ट्री।

२२ मेदा और नजले की बीमारी लागरी कमजोरी इख्तलाज क़ल्ब और और घबराहट यानी असावई बीमारी

जनाब महमूद अलीखां उर्फ आगाखां साहब रईस मुहल्ला दरियाबाद इलाहाबाद अपनी बीमारियों और उनके इलाज की मुफस्सिल रिपोर्ट इस तरह तहरीर फरमाते हैं कि मैं पांच छः वर्ष से मेदेकी शिकायत और नजले की बीमारी में मुब्तला था खाना बिल्कुल हज्म नहीं होता था जो गिजा जूद हज्म भी खाता था सीने में रक्खी रहती थी, खट्टी डकारें बराबर आया करती थीं और रिहा की तोलीद बकसरत हुआ करती थी जिसकी वजह से बमुशकिल दो चपाती खा सकता था और नजला जुजे बदन होगया था गिजा नाहज्म होने की वजह से रोज बरोज दुबला होता चला गया यहां तक कि और बहुत सी शिकायतें मसलन इख्तलाजे क़ल्ब और घबराहट यानी असवाई बीमारी और सिपहर को सेजा तबखीर और क़ब्ज की तकलीफ़ शुरू होगई। अव्वलन मैंने बक्तन फवक्तन हकीमों डाक्टरों का इलाज किया जिससे मेरी बाज़ २ औकात मेरी शिकायत

दब जाया करती थीं मगर फ़ायदा कुल्ली कभी नहीं हुआ। इस तरह अक्तूबर सन् १६१६ में जुमला शिकायतें मुझको ज्यादा हो गईं जिसकी वजह से मैं इस क़दर दुबला और कमज़ोर हो गया था कि मुझको और खौफ़नाक बीमारियां मसलन सिल वगैरा का शुबा होने लगा और जुमला शिकायतों ने इस क़दर ग़लबा किया कि मैं फ़र्शगोर होगया और जिन्दगी से मायूस हो गया था। इस दरम्यान में मैंने मुसलसिल सात आठ महीने तक इलाहाबाद और लखनऊ के मशहूर हकीम और डाक्टरों का इलाज किया मगर कुछ फ़ायदा न हुआ। मेरी खुश क़िस्मती से एक रोज़ मुझे मिस्टर लुई कुह्नी की तसानीफ़ तरीके इलाज का ख्याल आया जिसकी तारीफ़ अर्सा हुआ कि जनाब अकबर अली साहब सेक्रेट्री म्युनिस्पल बोर्ड बरेली और मौलवी अब्दुल हादीखां साहब डिप्टी कलक्टर ने की थी और उसकी तस्दीक़ मेरे दोस्त आनरेबिल सैयद रज़ाअली साहब वकील मुरादाबाद ने की थी। बस मैंने लुई कुहनी की तसानीफ़ और टब सोती कृष्ण स्वरूप साहब वकील मुरादाबाद से मंगवाया। इन तसानीफ़ को मैंने शुरू से आखीर तक पढ़ा। फ़ाज़िल सन्निफ़ ने जो असूल बीमारी के पैदा होने के और उसके बढ़ने के और तमाम बीमारियों के एक होने के और दवाइयों से जो नुक़सान मरीज़ को पहुंचता है उनको बगौर देखा और उसकी मुताबकत अपनी शिकायतों से और इलाज दवाइयों से किया तो मुझे उन तसानीफ़ की सचाई में कोई शुबा न रहा। सोती कृष्ण स्वरुप साहब से मैंने खुद खतो; किताबत की और खुद मुरादाबाद जाकर अमलन गुसलों का तरीका समझा और गिज़ा के बारे में हिदायतें हासिल कीं। तीसरी अक्तूबर सन् १६१७ से अपना इलाजशुरू किया। एक माह इलाज करने के बाद ही मेरी शिकायतें कम होना शुरू हो गईं और ६ महीने बाद मैं बिल्कुल आरोग्य हो गया जैसा कि मैं ६ साल पूर्व था।

२३ भूख का न लगना, रीढ़ की हड्डी का सख्त होना, हड्डी की ट्युबरक्लोसिस

यादव केशव अंधारे मालगुज़ार पोस्ट नरवर जिला नागपुर सी० पी०

यह सज्जन जिनकी आयु लगभग २८ वर्ष की थी मार्च सन् १६३५ ई० में कुहनी आश्रम बिजनौर में चिकित्सा कराने के लिये पधारे। उस समय उनकी दशा सन्तोषजनक न थी। शरीर दुबला पतला था, भूख बिलकुल नहीं लगती थी रीढ़ की हड्डी में इसक़दर सख्ती थी कि झुक कर किसी वस्तु का उठाना दुर्लभ था। इनको टी० बी० आफ़ स्पाइनेल कार्ड का रोग था। दो मास चिकित्सा करने के पश्चात् उनको भूख लगने लगी और कब्ज़ की शिकायत दूर हो गई। अब वह बिल्कुल आरोग्य हैं और अपना सब कार्य

करते हैं। इसी बीच में उन्हों ने अपनी स्त्री का भी जिनको कि मासिक धर्म ठीक समय पर नहीं होता था और साथ २ हिस्टीरिया का रोग भी था, जल चिकित्सा कराई और जो दो तीन मास चिकित्सा करने के पश्चात् ही पूर्ण आरोग्य हो गई। ईश्वर की कृपा से अब उनके एक पुत्र है जो पूर्ण आरोग्य है।

२४ पुराना मलेरिया बुखार, पुरानी कब्ज, जिगर की खराबी, दायें हाथ में दर्द और उसका कांपना, भूख न लगना इत्यादि।

ठाकुर पीतमसिंह साहब ठेकेदार रियासत ग्वालियर

उपरोक्त सज्जन अगस्त मास सन् १९३५ में कुइनी आश्रम बिजनौर में उपरोक्त रोगों की चिकित्सा कराने केलिये पधारे। इन्होंने १८ वर्ष तक यूनानी, डाक्टरी, होम्योपैथिक चिकित्सा कराई मगर किसी चिकित्सा से कोई लाभ न हुआ। अन्त में निराश होकर उन्होंने जल चिकित्सा आरम्भ की। पांच मास चिकित्सा कराने के पश्चात् वह पूर्ण आरोग्य हो गये और स्थान को चले गये।

२५ जिगर की खराबी, तमाम जिस्म पर वर्म, भूख का न लगना, सांस लेने में कष्ट, पसली पर नासूर

पं० गौरी शंकर त्रिपाठी आयु २४ वर्ष, मुकाम जहानाबाद डा० कटरी जिला शाहबाद आगरा (बिहार) निम्नलिखित रिपोर्ट भेजते हैं—

श्रीमन् मान्यवर महोदय जी नमस्ते! सन् १९३० में जबकि मैं एफ० ए० में पढ़ता था और साहित्य शास्त्री की तैयारी कर रहा था अचानक मेरी तबियत खराब हो गई बुखार व खांसी का रोग दिनबदिन बढ़ता गया। आयुर्वेदिक, एलोपेथिक, होम्योपैथिक यूनानी, हर प्रकार की चिकित्सा कराई मगर कुछ लाभ न हुआ और दिन बदिन रोग बढ़ता ही गया। इसके पश्चात् मैं पटना जनरल अस्पताल में गया वहां पर डाक्टर ने मेरे बायें फेफड़े का तीन बार आपरेशन किया जो चार इन्च के करीब गहरा था। ६ मास पटना अस्पताल में रहने के बाद डाक्टरों ने मुझे असाध्य कह कर अस्पताल से चले जाने को कह दिया। इसके पश्चात् करांची, कलकत्ता इत्यादि मुख्य २ शहरों के डाक्टरों से मिला और उनकी चिकित्सा कराई किन्तु कुछ लाभ न हुआ। अन्त में निराश होकर मैं मई सन् १९३७ में कुइनी आश्रम बिजनौर में अपनी माता सहित आया और आपकी सम्मति के अनुसार चिकित्सा आरम्भ की। तीन मास इलाज करने के पश्चात् मैं पूर्ण आरोग्य हो गया। उसके पश्चात् फिर मुझे जिगर का रोग हो गया। दो मास और चिकित्सा करने के पश्चात् यह रोग भी जाता रहा। अब मैं पूर्ण आरोग्य

हूं। इसी बीचजो आपने मेरी सहायता की है उसका मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

२६ कमर व तमाम शरीर में दर्द, पुराना कब्ज़, जिगर की खराबी, शरीर पर सुर्ख दागों का निकलना, खून में जोश, दिल की धड़कन, बेहोशी, पेड़ू में वायु जमा होकर ऊपर की तरफ़ दबाव डालना,।

श्री डाक्टर कल्लूसिंह रईस आयु ४६ साल नानपारा बहराचंच से लिखते हैं—

श्रीमान् मैनेजर महोदय, मैं २० अगस्त सन् १९३५ को जल चिकित्सा कराने के लिये कुहनी आश्रम बिजनौर में आया। एक सप्ताह चिकित्सा कराने पश्चात् वापिस चला गया। न तो मुझे इससे कुछ लाभ ही हुआ और न मुझे कुछ विश्वास ही था। यहां से वापिस जाकर मैंने पटना और लखनऊ के मेडिकल कालिज के मुख्य २ डाक्टरों से चिकित्सा कराई परन्तु कोई लाभ न हुआ। उसके पश्चात् मैंने हकीमों, वैद्यों और स्यानों इत्यादि की चिकित्सा भी की मगर कोई लाभ किसी प्रकार का न हुआ। फिर एक बनारस के मुख्य और विख्यात वैद्यराज की चिकित्सा ६ मास तक की। उससे भी कोई लाभ की सूरत न हुई और रोग दिनबदिन बढ़ता ही गया। अन्त में मैं निराश हो कर २९ मई सन् ३६ को फिर इसी जल चिकित्सा की शरण में आया और लगभग दो मास आपके आश्रम में रह कर आपके बताये अनुसार चिकित्सा करता रहा। उसका फल यह हुआ कि मैं इस समय पूर्ण आरोग्य होगया जिसके लिये मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

२७ हाथ पैरों का सुन होजाना, खून में हिद्दत ज्यादा होजाना (जुज़ाम)

बाबू कृष्णदेव नारायण साकिन सुवकिया, डा० गुज़वारा मधुवन ज़िला चम्पारन (बिहार)

यह महाशय कुहनी आश्रम बिजनौर में चिकित्सा के लिये पधारे। क्योंकि आपका रोग छूतदार था और ऐसे रोगियों का आश्रम में रहने का कोई प्रबन्ध न था फिर भी आपके लिये एक दूसरी जगह का प्रबन्ध किया गया और कुछ काल यहां रख कर चिकित्सा की विधी बताई गई। इसी बीच में उनको दो तीन क्राइसिस भी हुये जिसमें जहरीला और बदबूदार विजातीय द्रव्य निकला जो छालों के रूप में बाहर हुआ था। उसके बाद आप अपने मकान चले गये और वहां पहुंच कर पत्र द्वारा अपनी चिकित्सा कराते रहे कुछ मास चिकित्सा करने के पश्चात् आपका स्वास्थ पूर्ण रूप से अच्छा हो गया।

———

विषय-सूची

नोट :—पन्ना पुस्तक ४०४ बाद ४५५, ४५६, ४५७, ४५८ बस फिर ४०९

(अ)

अङ्क	पृष्ठ
१. अगोरे फोबिया	२५७
२. अदृष्ट फोड़ा (कारबंकिल)	४३० (५१), ५०३, ५०४
३. अपक्व फल	१३५, १३७, ३६६
४. अपक्व अन्न (बिना उबाला हुआ)	१३७-१३८
५. अतिसार (दस्त आना)	६३, १३६, २९५-२९६
६. अपाचन वा अशुद्ध पाचन	१४२-४३, २६८, २८६, २८८, २९५-९६, ४२१, ४४९
७. अवयवों का मुड़ जाना	९०, ९२
८. अवयव के सूखने में सनबाथ	११५
९. (क) अंगुली का घाव	४९५
९. (ख) अंडा	१४४

(आ)

अङ्क	पृष्ठ
१०. आंखों की सुर्खी	५०५
११. (क) आटे की रोटी	१६५, १७१
(ख) आटे की लपसी	१६६
१२. आधा सीसी	२८८, २८९, ४२५
१३. आधिक्यता भोजन की	२२, २३, १३२, १४२
१४. आत्मघात विचार	१७९, २२७, २४७, -२६८, ४४४
१५. आमाशय का फैल जाना	४१६
१६. आमाशय की जलन	४६१, ४४४, ४६८
१७. आमाशय के रोग (अथवा पेट व उदर के रोग)	३०, ४६१, ४४०, ४४६, ४६१
१८. आवश्यक सूचनायें	१७३-७४
१९. आयोडाइड आफ पोटेशियम	२१९, ३५८
२०. आयोडीन	२१९, ३४३, ३५८
२१. आइडोफार्म,	२१९, २२२, ३५०, ४४२
२२. आवाज का बैठ जाना	४१५, ४८३ ४७३-७४
२३. आरोग्यता का नया मार्ग ढूंढ़ने की इच्छा मुझमें कैसे उत्पन्न हुयी	१-१५
२४. आरोग्य शरीर का वृतान्त	११, १५, ९१

अङ्ग	पृष्ठ
२५. आरोग्य शरीर	११, १२
२६. आरोग्य स्वरूप	९१-९२
२७. आंत का उतरना	३२५, ३२६
२८. आँख (नेत्र के रोग)	२६९, २७७, ४१६-१७, ४२५, ४३८, ४४२, ४६१, ४६६, ४७१, ४७४, ४७७, ४८०
२९. आँखो की कमजोरी	४६१
३०. आँख की जलन	४९४
३१. आँखों के सामने काले दाग दीखना	४६०
३२. आँत (गुदा) का व्रण (फोड़ा)	२३४
३३. आँतों की पुरानी जलन	४४४
३४. आँधी का उदाहरण	५६
३५. आँसू (अश्रुपात)	१४
३६. आहार में अधिकता	१३०-३१, १४१
३७. आलू और गाजर	१६८
३८. आलू और धरती का फूल	१६९
३९. आलू के लड्डू	१७०
४०. आलू और शलजम	१६८
४१. आलू और सेव	१६९
४२. आलू और सोया पालक	१६७
४३. औरतों के रोग	३८३-३९६
४४. अतड़ियों की जलन	४०५, ४६१, ४२६
४५. अंगूर के वृक्ष का उदाहरण	११७
४६. अङ्ग का काट डालना	३४१

(इ)

४७. इनफ्लूएनजा	७१, ४५२

(उ)

अंग	पृष्ठ
४८. उँगली में फाँस का प्रभाव	११
४९. उदास रहने का रोग	४५८
५०. उद्योग-स्वास्थ्य प्राप्त करने का	५६
५१. उदर (पेट आमाशय) के रोग	३०, ४५६, ४६१, ४४०
५२. उदर की पीड़ा	४४६, ४९८, ४९५
५३. उदर के रोग और भोजन में अन्न	१३७, ३८
५४. उदर के रोग और फल	१३६-१३७
५५. उन्माद (पागलपन)	६७, १७९, ३५८
५६. उन्माद के रोगियों को स्टीम बाथ नहीं देना चाहिए	११०
५७. उपदंश (सिफलिस)	२१५, २१७-१९, २२३-२४, ४९१-९२
५८. उलटी ओर से बालक का पैदा होना	३८०

(ऊ)

अंग	पृष्ठ
५९. ऊँचा कंधा	९२, ९४

(ऋ)

६०. ऋतु बदल से फारेन मैटर में सड़न २६, २९

६१. ऋतु (मासिक धर्म) का बन्द होना अथवा उनके बिगाड़ ११२, २५९, ३७०, ३७४, ४६२, ४४४, ४६६

(ए)

६२. एक के दो देखना २७३

६३. एक्यूट २८, २९, ४०, ६४

६४. एट्रेपीन से चिकित्सा २७२, २७६

६५. एमारोसिस (स्याह मोतियाविन्द) २७१

६६. एन्टी पापरीन ६७, २९८, ३००

६७. एन्टी फेमोन ६७, ३००, ३५९

६८. एन्टीसेप्टिक चिकित्सा ३३८, ३५०, ३५४

६९. एरीसिफलिस ४६२

७०. एलोपैथी ५

७१. एलोपैथी और आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या ८

(ऐ)

७२. एक्यता रोगों की ४०-४२

७३. ऐंठन (तशन्नुज खिचाव के रोग) ६३ २५८, २६०, ४२२, ४३२, ४३३ ४५०-५१, ४६७

७४. ऐंठन मूत्राशय की २३४

(क)

७५. कच्चे फल और दस्त १३६

७६. कच्चे फल वा भोज्य पदार्थ १३६-३७

७७. कब्ज १०४, १४२, २६८, २९६, ४१३, ४१७, ४४६, ४५९, ४६३, ४६६, ४६८, ४२०, ४७५, ४८९, ४९६, ५०५, ५०३, ५१२, ५२६, ५३८

७८. कब्ज बच्चों का ४१३, ४१७

७९. कमजोरी दिमाक १९१, ४५१-४५२

८०. कमजोरी सर्व प्रकार की ३५०, ४४१

८१. कमर का दर्द २५१, ४५८, ४६३, ४३६, ४३७, ४६६, ४७९-८०, ५२९-३०

८२. कर्ण (कान) का बहना २७८, २७९, ४६५, ४७०

८३. कर्ण मूल ६३

८४. कर्ण (कान) में खून जम जाना ४७०

८५. कर्णों में झनझनाहट २७८, ४६२

(क)

अंग	पृष्ठ
८६. कर्ण पीड़ा	४६५
८७. कर्ण (कान के रोग)	२६९, २७९, ४६२, ४६५, ४७०
८८. करोसिव सबलिमेट	२४५, ४४२
८९. करमकल्ला और ग्रोट्स	१६७
९०. कंठ हलक के दोप (रोग)	१९२, २८३, ४२०-४२१, ४२४, ४३०-३१, ४५०, ४५५, ४७१-७२
९१. कंठ की जलन	१९२, २८४, ४०५, ४१५, ४१६, ४३८, ४३२, ४४२, ४५५-४५६
९२. कंठ में रुकावट	४१५
९३. कंठ माला	६९, २२१, ५१९
९४. कलेवा	१६६
९५. कागज गुप्त स्थान के साफ करने का	१४, १४२
९६. कागज शौच कर्म का	"
९७. काम चेष्टा	१५८-१५९ २१६-१७, २२६-२७, ३८७-८८, ४०३-४
९८. काम की अधिकता	३८७-८८
९९. कार्वोलिक एसिड	३४३-४८
१००. कारबंकल	४३१, ५०३
१०१. काले दाग आंखों के आगे	४६०
१०२. काहू	१६८
१०३. कीड़े भिन्न २ प्रकार के	३२२-२४
१०४. कीड़े मकोड़े का उदाहरण	३३-३४
१०५. कीहिस	३०२
१०६. कुचट	३४८, ३५०, ३६०
१०७. कुत्ते जख्मी का उदाहरण	३४२, ३४३
१०८. कुनीन (कोनेन कुनाइन)	६७, २६३, २९८-३००, ४०६, ३५८
१०९. कुत्ते बावले का काटना	३६३-६७
११०. कुपथ्य और पाचन शक्ति	१३१-१४३
१११. कुवड़ापन	९७-९९
११२. कुरूपता-हाथ पांव की	६०-९२
११३. कुलंज-कूल्हे का	
११४. कुष्ट	२४७, ३११-२१, ५३९
११५. कुहनी साहिब की चिकित्सा विधि के स्नान	१०६-२९
११६. कूल्हे का रोग	८७-४५७, ४२५, ४५८, ४६६, ५२९
११७. केन्सर (केकड़ा फोड़ा, सर्तान फोड़ा)	६७, २२१, ३२६, ३३८, ४५६, ४५९, ४१९, ४६८
११८. कै और दस्त	५०५-५०६
११९. क्राइसिस	११७, ३५९-६०, ४२०
१२०. क्रानिक	२९, ३६, ६४, ६७
१२१. क्रोध का वेग	४३१, ४७५
१२२. क्रोध से शरीर में विजातीय द्रव्य का सड़ना या उबलना	२६
१२३. क्रेमिक एसिड	२३६
१२४. क्रयो जौट (Cresote)	२०२
१२५. क्लोरोसिस	१०३, ११२, ११८, १७६, २६८, ४१६
१२६. क्वारेन टाइन	७४

(ख)

अंग	पृष्ठ
१२७. खट्टी डकार	१४३
१२८. खरगोश का उदाहरण	१३३
१२९. खमीर विजातीय द्रव्य में	६५
१३०. खसरा (शीतला)	४१,४५-४६,४७१
१३१. खांसी	५५, ५६, ४३६, ४७६, ५१५,
१३२. खांसी काली	५५, ५६
१३३. खुजलाहट त्वचा की	३६०
१३४. खुजली (खारिश)	३२३-२६, ३६४,
१३५. खुले हुए घाव	३५७, ४०९, ४१९
१३६. खून थूकना	३५७,४५९,४१९

(ग)

अंग	पृष्ठ
१३७. गठिया अर्थात रुमेटिज्म	७६, ७९, ८०, ८५, ३९२, ४२०, ४२२, ४३९, ४४६, ४४७, ४५६, ४७९
१३८. गद्दियां घाव पर	३४५-४६ ३५२
१३९. गर्दन और सिर का स्टीम वाथ	११२-१३
१४०. गर्दन के देखने से दशा की जांच	१७
१४१. गर्दनपर गुमड़िया, तवदीलियां और सूजन	१७, १८, २८४-८५, ४५८, ४१६, ४१९, ४२०, ४७७
१४२. गर्दन मोटी	
१४३. गर्भपात	३७५,३८३
१४४. गर्भ स्थिति और सुगमता से बच्चा जनना	३७४,३८२,३९६,४५४,४७३, ५२४
१४५. (क) गर्भ न रहना	५२४,
१४६. गर्भ स्थिति में खराबियां	३८७,३८८
१४७. गर्भाशय का तिर्छा हो जाना	३७४
१४८. गर्भाशय का टल जाना	३७४,४५९
१४९. गर्भाशय से रुधिर प्रवाह	४१२,४३४, ३८७,३८८,४३७
१५०. गर्भाशय का (रहम)का सर्तान फोड़ा	४८९,३७२
१५१. गर्भाशय में रसौली	३२०,४३४,५५
१५२. गर्भ शिर	८९,९०
१५३. गर्मी के बढ़ने घटने से विजातीय द्रव्य के सड़ने में न्यूनाधिकता	२५,२६
१५४. गर्मी सर्दी का घटना बढ़ना	२५,३०
१५५. गर्मी की दशा को ठीक करना	३६१, ३६२
१५६. गाइट (नुकरस)	८५-८६
१५७. गाजर और आलू	१६८-१६९
१५८. गांठी का दर्द	
१५९. गिल्टी	१९९, २०१, १९०
१६०. गिल्टयां चूनामय दशा में	२०१
" का काट डालना	२००
१६१. गुदा की सूजन (अथवा बड़ी आंत में जलन)	४६१
१६२. गुदा में नासूर का फोड़ा	४७८
१६३. गुमड़ियां यक्ष्मा (सिल) को	२०१, २५५

(६)

अंग	पृष्ठ
१६४. गुमड़ियों में सनवाथ	११५
१६५. गुर्दों के रोग	२२८, २३४, ४६०, ४२९, ४२४, ४२६
१६६. गुर्दों की जलन	४२९
१६७. गूंगापन	४२२
१६८. कीड़े गेंडुये	६२२-२५
१६९. गोलियां (वहियां)	३२७
१७०. गोली का निकलना	३५
१७१. गोली के घाव	३५
१७२. गंजा	६
१७३. ग्रीन सिकनेस (क्लोरिस)	१०३ ११८,२६२,२६८,४१
१७४. ग्रेक्टे रेक्ट (भूरा मोतियाबिंद)	२७
१७५. ग्लोकोमा	२७१-७

(घ)

अंग	पृष्ठ
१७६. घबराहट	४५२, ५३६
१७७. घाव अँगुली का	५९६, ४९७
१७८. घाव कटे हुये, छिदे हुये, कुचले हुये, और फटे हुये	३४३-४८
१७९. घाव गोली के	३५५
१८०. घाव जलने से	३५४-५५, ४६९
१८१. घाव से ज्वर	३३९
१८२. घावों का खुलना और बहना	३६१-६३
१८३. घावों की चिकित्सा	३३८-४
१८४. घावों में सनवाथ	११५
१८५. घेंगा	२८४
१८६. घुटने पर गुमड़ी या सूजन	२१०,४७२
१८७. घुटने में दर्द	
१८८. घुमेर घुमनी	११६, २५८
१८९. घोड़े का उदाहरण	२१

(च)

अंग	पृष्ठ
१९०. चक्कर दिमाक में, कनपटी में फड़कन	
१९१. चन्द्रमा और स्त्रियों के मासिक-धर्म का सम्बन्ध	३७०-७२
१९२. चटनी चुकन्दर की	१६९
१९३. चटनी आलू और सेव की	१६९
१९४. चर्म रोग (फुंसिया इत्यादि)	२०, २१०-१२, २३७, ३०२, ४३२
१९५. चादर भीगी हुई में लपेटना	४
१९६. चावल और सेव	१६८
१९७. चावल के गुलगुले	१६८
१९८. चाय	१३२
१९९. चिकित्सा आरम्भ कैसे करनी चाहिये	१७३-७७
२००. चिकित्सा की विधियां	१०६-२
२०१. चिट्ठियें धन्यवाद की लुई कूने के नाम की	४०५-८
,, ,, अनुवादक	४८६-५३
२०२. चिन्ता की व्याकुलता	४५
२०३. चिन्ता	२३
२०४. चिरे हुये या फटे हुये घाव	३३८-३३

अंग	पृष्ठ
२०५. चेचक शीतलता	५०-५४, २९२
२०६. चेष्टा रोग की और चेहरे के पट्ठों में पीड़ा	४१६
२०७. चेहरे पर फुन्सियां	२११-१३,४३२,५७१
२०८. चोकर की आवश्यकता, भोजन में	१३८
२०९. चोट के कारण ज्वर	३८९
२१०: चोट बाहरी (घाव आदि)	३३९-३६७
२११. चोटें भीतरी	३४८, ३५२
२१२. चोटें नीली	३४८-३५२

(छ)

अंग	पृष्ठ
२१३. छाजन (रोग)	२३७
२१४. छाती की जलन, नासूर	१४३
२१५. छूत का भय	३२, ६५, ७५
२१६. छोटी हाजिरी	

(ज)

अंग	पृष्ठ
२१७. जई की लपसी	१५५, १६३
२१८. जख्म देखो घाव के प्रकरण में	३३८-३६७, ४७०, ४७३
२१९. जनना आसानी से	३८२, ३९६, ४४८, ४७८, ५५४
२२०. जनना उलटी ओर से	३८८
२२१. जनना समय के पहले	४२५
२२२. जनने के पीछे का प्रवन्ध	३९७-९९
२२३. जननेन्द्रियों के रोग	२१४-२२७, ४२४, ४४८ ४५७
२२४. जल और सूर्य का मिला प्रभाव	११५-१७
२२५. जल का दिल के परदे में आ जाना	४७९
२२६. जल की गद्दियां	३५२,३४५-४६,३५०
२२७. जल मस्तिष्क के ऊपर	७७२
२२८. जल शरीर में	२४३-४४, ४६०
४२९. जलोदर	२२१, २३८-५० ३११ ४६०, ४२९, ४७४, ४७६
४३०. जलन आमाशय की	४६१,४४४,४६८
३३१. जलन आंतों की पुरानी	४४४,
मूत्राशय	४६८
२३२. जलन आंतों की	४९४
२३३. जलन कंठ की	१९२, ४५६(४०६) ४१६-४१७,४१६,४०५,४५५,४७७
२३४. जलन फेफड़े की	२०१, ४५६, ४४३, ४६९,४७१, ४७६-७७
२३५. जलन नासिका की झिल्ली की पुरानी	१९३
२३६. जलन मूत्राशय की	२३१-३३,४४२
२३७. जलन स्वांस की नालियों की	१९२, ४५६-४१६-१७, ४१६, ४०५
२३८. जलने के घाव	३५१-३५२
२३९. जाड़ा-बुखार	२९७-९८
२४०. जात उलजंब (प्लूरिसी)	२००-२०३
२४१. जिगर का वढ़ जाना	४६३

(ड)

अंग पृष्ठ

२४२. (क) जिगर का बढ़ जाना और सनवाथ ११५
(ख) जिगर की सख्ती ४६८, ५३८, ५३९
२४३. जिगर के रोग २३५, ३६, ४५६, ४६०-६१, ४४६, ४५५, ४६३, ४६८, ४७५
२४४. जीवन २७
२४५. जीवन का निर्भर ११६
२४६. जीवन शक्ति २९, १२७, १३१, १३५-३६
२४७. जीवन शक्ति का निर्भर १३३
२४८. जुकाम
२४९. जुल्लाव के उपद्रव (जमाल गोटे से)
२५०. जूं आदि (मैल से पैदा हुये) जानवर (पैरेसाइट्स) ३२३-२५
२५१. ज्वर (बुखार) २६, ६४, ६७
२५२. ज्वर और पसली चलना
२५३. ज्वर का दूर करना ३५,-३७
२५४. ज्वर का हाल (क्या वस्तु है) १६-३७
२५५. ज्वरों की चिकित्सा ३५-३७
२५६. ज्वर गर्म देशों का २९७-३०३
२५७. ज्वर ऊँचे दर्जे की बेचैनी लिए हुए जिसमें औषधि भी न पचती थी आदि
२५८. ज्वर घाव के कारण ३३८-३९
२५९. ज्वर टाइफइड या टाइफस ९१, २९१-९३, ३०६, ४५९
२६०. ज्वर प्रसूतिका ३७८-८१
२६१. ज्वर पित्त का २९७-९९
२६२. ज्वर मलेरिया २९७-९९, ३००-३०६
२६३. ज्वर में किनसे बचना ३५-६४
२६४. ज्वर मौसमी २९७, ३०४, ४००-०४
२६५. ज्वर स्थानिक ३३९,
२६६. ज्वर लाल (रक्त ज्वर) ४३-५० ४१५, ४७१

(ट)

२६७. टखने की नसों के बंधन का चोट खाना ३५०-५१
२६८. टखने की निर्बलता ३५१
२६९. टल जाना गर्भाशय का ३७४-७५, ४४९
२७०. टमाटो और लोभिया १६८
२७१. टांके घाव पर ३४७, ३९४
२७२. टांग पर घाव ४०९
२७३. टांग सूजी हुई ४७४
२७४. टिमाटर और स्वेत करम कल्ला १६७
२७५. टीका ५४, ६६-६७, २०४, २३७, २६९, ३५८, ४२०, ४२२
२७६. टीका टयूवर क्यूलोसिस का १९४-९५ २०४
२७७. टूटा पांव ३५५, ३५७
२७८. टेढ़ा पांव अवयवों का ९०-९१
२७९. ट्राकोमा (रोहे आंखों में) २७२, ४४२, ४७४
२८०. ट्रैक्मा टोमी (नर्खरे पर जर्राही) ४१९

(ठ)

अंग — पृष्ठ

२८१. ठंडा करना शरीर का भाप लेने के पीछे ११०-११
२८२. ठंडे हाथ पांव ३१, ८८, ८९, २४५, ३०४, ४५६, ४५८
२८३. ठोड़ी पर खुजली (साइकोसिस) ४१३

(ड)

२८४. डकार खट्टी १४३
२८५. डाया बिटीज (मधु-प्रमेह) २३२, ४८१
२८६. डिपसोमेनिया ३२८
२८७. डिफ्थीरिया ४७, ५०-५१, ४१५ ४१९, ४२०, ४४३, ४६६, ४७१
२८८. डिब्बा और ज्वर ४८६
२८९. डंक मारना ३६३-३६६

(त)

२९०. तम्बाकू २१
२९१. तम्बाकू का विष (निकोटीन) १४३
२९२. ताऊन की चिकित्सा ३०७-१०
२९३. तितली का उदाहरण ६१
२९४. तिल्ली का बढ़ना ४६८
२९५. तिल्ली के बढ़ने में सनवाथ ११५
२९६. तीव्र रोग ३६
२९७. त्वचा का असाधारण वर्ण (लाल रंग) २३२
२९८. त्वचा का काम ४८
२९९. त्वचा का तनाव ३०
३००. त्वचा का रंग क्लोरोसिस रोग में १४३
३०१. त्वचा के रंधों को खोलना ३०
३०२. त्वचा के रोग २०, ३०, १०१, १०३, २११-१२, २२३, २३६-३७, २९८-३००, ३६१, ४६२, ४३२, ४७१

(थ)

३०३. थनैला ३७६
३०४. थूक मुंह से आना ४७६
३०५. थैली के समान रसौली ४१२

(द)

३०६. दम घुटने वाले दौरे ४३२, ४३३, ४३६
३०७. दम अर्थात श्वास १९२, २०७-०८, ४३२, ४३८-३९, ४५५-४५६, ४७७, ४७९

अंक पृष्ठ

३०७. (क) दलिया मोटा १३७
३०८. दर्द एक ओर का ४४२, ४७९-८०
३०९. दर्द शरीर का ४८६
३१०. दर्द कमर का २५१
३११ दर्द गठिया ८०, ४३९, ५१२, ५१३
३१२. दर्द में सनवाथ ११५
३१३. दर्द दांत में स्टीम वाथ ११३
३१४. दांत का दर्द १२, ४२९, ४६३, ४७७
३१५. दांतों का उखड़वाना और नये लगवाना २८२
३१६. दांतों की सफाई २८१
३१७. दांत गले हुए २८०
३१८. दांतों में पीड़ा जो कभी २ जल चिकित्सा से भी हो जाती है २८०
३१९. दांतों के रोग २८०-८२, ४२९, ४६३-६४, ४७७
३२०. दाद पुराने
३२१. दाल मोठ मसूर और आलू बोखारे १६९
३२२. दालों का शीघ्र रीति से पकाना १७०
३२३. दिमाग पिलपिला हो जाना ४३१
३२४. दिमाग और दिल की कमजोरी
३२५. दिमाग की जलन-दिमाग की क्षीणता २८६-९०
३२६. दिमाग के ऊपर पानी २७३
३२७. दिमाग में रुधिर का जमा होना ४२२
३२८. दिमाग में सूजन-दिमाग क्षई २५५
३२९. दिल का धड़कना ४१८, ५३९
३३०. दिल के रोग २३८-५०
३३१. दिल के परदे में जल आ जाना ४७९
३३२. दूध का न उतरना ३७७-७९
३३३. दूध जमा हुआ ४०१-०२
३३४ दूध पका हुआ और बिना पका हुआ १६३, ४००-०२
३३५. दूर का दीखना ४१६
३३६. दो दीखने का रोग २७३
३३७. द्रव का इकट्ठा होना ३१-३२
३३८. द्रव में उबाल व सड़न पैदा होने के कारण २५, २६
३३९. द्रव सड़ता हुआ किधर को चलता है ३१-३२
३४०. द्रव्य विजातीय की सड़न २४-२८
३४१. दर्द शरीर का

(ध)

३४२. धरती का फूल और आलू १६९
३४३. धूप और जल का प्रभाव ११५-११८
३४४. धूप स्नान (सनबाथ) ११३-१८

(न)

३४५. नपुंसकता अर्थात नामर्दी (सुस्ती) २२४-२७, ४१३
३४६. नमक १३५
३४७. नरवस कोलैप्स १२४, १२५

अंग पृष्ठ

३४८. नरवस सिम्पैथाइकस १२४-२५
३४९. नसों का खिच कर वढ़ जाना ४३८-३९
३५०. नाड़ियों का बांधना ३४४-४५
३५१. नासिका का सर्तान ३२९-३०,४५९
३५२. नासिका की झिल्ली में पुरानी जलन १९३
३५३. नासिका के रोगों में स्टीम बाथ ११३
३५४ नासूर २०, ५३८
३५५. निकट से दीख पड़ना (कम दीखना)
३५६. निद्रा न आना ४०५, ४१६, ४१७, ४१८, ४२२, ४२८, ४३०, ४५२, ४२८, ४६२, ४७५, ४९३
३५७. निमोनिया की बान १७९-८०
३५८. निराशता २४७
३५९. निस्टेगमस ८७
३६०. नेचर कोर ३
३६१. नेत्र पीड़ा-नेत्रों (आंखों में) सुर्खी १७९, ४३२, ४५५, ४६५
३६२. न्यूरेलजिया (शिर पीड़ा) बातशूल
३६३' न्यूरेज्लिया चेहरे के पट्ठों की पीड़ा ४१६
३६४. न्यूरेस्थेनिया १७९,४१६,४३६,४३७
३६५. न्यू साइन्स आफ हीलिंग १०

(प)

३६६. प्लूरिसी (क) पसली चलना ४७६
३६७. पसीना आना ४१, २९१, २९४
३६८. पसीना ठंडा २४५
३६९. पसीजना पांव के तलुओं का २३५-३६
३७०. पथरी रोग २३१,२३३,४२९,४६१४७०
३७१. पथरी और दर्द गुर्दा २३५, २३६, ४०५, ४५५
३७२. पथरी जिगर की २३५-३६ ४०५ ४५५
३७३. पक्षाघात ६७, १७९, २८९-९१
३७४. पायरवने के स्थान (गुदा) की बनावट १४, १४२
३७५. पागलपन उन्माद ६७, १७९, ३५८
३७६. पाचन की खराबी १४१,१४३,२०९ २१०,२६८,२९५-९६,४२०-२१,४४९,४६२
३७७. पाचन क्रिया १४०, १४३
३७८. पारामिश्रित (मिली) औषधियां २१४-१५
३७९. पाचन शक्ति १४४-४५
३८०. पांडु रोग १२०,२३५-३६,४५७,(४०७)
३८१. पानी और सूर्य का प्रभाव ११३-११७ ३०४
३८२. पानी की भीगी गद्दियां ३४५-४७, ३५१-५२
३८३. पानी मस्तिष्क के ऊपर २७२
३८४. पानी शरीर में २४१-४४
३८५. पाली परिया की चोट ३५५
३८६. पांव (तलुओं) का पसीजना २३५
३८७. पांव का सूजना ४३१, ४५६
३८८. पांव की कुरूपता २१८-१९

अंग	पृष्ठ
३८९. पांव ठंडे	८८-८९,२४५, ४५६,
३९०. पिचकारीसे औषधि पहुंचाना	२१९-२२
३९१. पिंडोल मट्टी की पट्टियां	१२८,३०४-३०६, ३४६, ३९१
३९२. पिचकारी से सीसा, जस्ता पारा आदि शरीर में प्रवेश करना	२२२
३९३. पित्ती का उछलना	६३
३९४. पित्त ज्वर	२९७-३०३
३९५. पिसारी का सेवन	३७४-३७५
३९६. पीठ उभरी हुई रिपोर्ट ७)	९७,
३९७. पीठ में दर्द	४५८, (४०८) ४१३, ४३६, ४४२,४६६,४७९,
३९८. पेट का बड़ा होना	१२, ४०५, ४३१-३२
३९९. पेट का फूलना	२२८,२२९
४००. पेट (आमाशय-उदर) के रोग	३०, ४०६,४६१(४१०),४४०,४४६,४६१
४०१. पेड़ू का बहुत बड़ा होना	४०६
४०२. पेड़ू का भाप स्नान	११२

अंग	पृष्ठ
४०३. पेड़ू की गुमड़िया (डलियां) फोड़ा	१८, ११८
४०४. पेड़ू के रोग	३२४, ४४१, ४५५
४०५, पेशाब (मूत्र) औंर पसीना स्वेद	२२९
४०६. पेशाब (मूत्र त्याग) की इच्छा और उसका रोकना और उसकी हानियां	२२९-२३२
४०७. पेड़ू का कष्ट	२२९-३२
४०८. पेशाब में रुधिर	४२६
४०९. पेशाब के रास्ते का तंग हो जाना	२३०
४१०. पेशाब व पाखाना रोकने की हानियां	२२८-२२९
४११. पैर टूटे हुए	३५५-५७
४१२. पैरों पर खुले घाव	४०९-४१०
४१३. पोई	१४५
४१४. पोदीने की चाय	३००
४१५. प्रदर	२१५,२२१,४४८,४५७, ४५८, ५२४
(क) प्रोस्टेट गिल्टी	२३४
४१६. प्लेग अर्थात् ताऊन	३०७,३०८,३१०, ३१७ ५०७

(फ)

अंग	पृष्ठ
४१७. फल कच्चे	१३६
४१७. फालिज	६७, १७९, २३९, ४२२ ४२५, ४२७, ४४८
४१९. फिनिष्टीन	६८
४२०. फीलया	५२५
४२१. फेफड़ों का कर्म	२०२-२०३
४२२. फेफड़ों को ठोक कर देखना (फेफड़ों की क्रिया का शब्द सुनना	२९३-९४
४२३. फूलना पेट का	२२८
४२४. फेफड़े की जलन	४५६, ४६९ ,४७० ४७६
४२५. फेफड़े की जलन व सूजन	४४३
४२६. फेफड़ों की जई	१९३, २००, २०८, २०९,२२१, ३५७-५९, ४२६, ४६८, ४७३, ४७६

अङ्क	पृष्ठ
४२७. फेफड़ों के रोग	२९२,२२९,३५९, ४५६,४१८,४२६,४३०,४३२,४४०, ४४३, ४६८, ४७०, ४७३, ४७६
४२८. फैल जाना आमाशय का	४१६
४२९. फैरिंग्स की जलन	२०१, ४५६,४१६, ४३२
४३०. फोड़ा आंत का या गुदा का	२३३,४७८
४३१. फोड़ा सिफलिस का	२१५
४३२. फोड़े फुंसी	११३ १७६, १९९,४७१
४३३. फोड़े माथे के गाल में	५०७
४३४. फोटो फोबिया	८७
४३५. फौलाद	२६३, २६७

(ब)

अङ्क	पृष्ठ
४३६. बच्चों की चिकित्सा	४३३
४३७. बच्चों के रोग	४१३,४१७
४३८. बच्चों का कब्ज	३८,४१
४३९. बद	२१५
४४०. बन्दूक के गोली के घाव	३५२-३५६
४४१. बनस्पति खाने वाले जीव	१४८,१४९
४४२. बमन (कै)	२९५,४१८
४४३. बल हीनता	
४४४. बवाशीर (अर्श)	१९८,२४५,२५१-५६, २८६, २९०,३२७,४२९, ४४६, ४५५,४५९,४६३, ४७५,४७९, ५११, ५१७
४४५. बहिरापन	२७८, ४१५, ४२२, ४३०
४४६. बहुमूत्रता	२३२
४४७. बांझपन	२२५, ३७५-७६, ५२३
४४८. बाथ्ज (सभी स्नान) सन (धूप)	१०६-२९
४४९. बाथ्ज सिट्ज (मेहन स्नान)	१२०-२६
४५०. बाथ्ज स्टीम भाफ स्नान	१०६-११३
४५१. बाथ्ज सिट्ज उदर स्नान पेड़ू	११८-११९
४५२. बारूद के ढेर का उदाहरण	४०-४१
४५३. बालक को उलटी ओर से पैदा होना	३८८
४५४. बालों का सिर पर दुबारा निकलना	२०८
४५५. बावले कुत्ते का काटना	३६४
४५६ बिल्ली का उदाहरण	३४०-४१
४५७. बिक्षिप्तता	१७९, ३५८
४५८. बुद्धि की न्यूनता	१७९
४५९. बैक्टीरिया	६५
४६०. बेचैनी	४१८
४६१. बेसिलाई	३१,३४
४६२. बेसिलाई कुष्ट के	२४७-५०
४६३. बेसिलाई सड़न से उत्पन्न हुए जीव	२७-३१
४६४. बोतल का उदाहरण	२९-३१
४६५. बन्द गोभी और दलिया	१६७
४६६. बन्द गोभी और टमाटर	१६७
४६७. बन्द गोभी और सेब	१६७
४६८. ब्रत	१३३
४६९. ब्रोमाइड आफ पोटैशियम	२५८
४७०. ब्रोमाइन	३५८

(भ)

अंग	पृष्ठ
४७१. भाफ के स्नान	१०६-१३
४७२. भाफ स्नान पेड़ू (उदर) का	११२
४७३. भाफ स्नान शिर व गर्दन का	११२
४७४. भाफ स्नान सर्वांग	१०७-०९
४७५. भार विजातीय द्रव्य का दाहिनी वायीं ओर	
४७६. भार विजातीत द्रव्य का पीठ की ओर	
४७७. भार विजातीय द्रव्य का पीढ़ी दर पीढ़ी	६४
४७८. भार विजातीत द्रव्य का माता-पिता से	६४
४७९. भार विजातीय द्रव्य का सामने की ओर	
४८०. भुजा का वेकार हो जाना	४४८
४८१. भूख अर्थात् क्षुधा न लगना	१३२
४८२. भेंगापन	२७४-७७
४८३. भोजन और जीवन बल	१३०-१४०
४८४. भोजन और सरद ऋतु	१३२
४८५. भोजन कच्चा, दला, या पिसा हुआ अन्न	१३७
४८६. भोजन कमजोर रोगियों के	१६२-७२
४८७. भोजन का चवाना	१५०
४८८. भोजन का चुनाव रोगी के लिये	१६२-६३
४८९. भोजन का पकाना	१६२
४९०. भोजन का पचाना	१३४-३७
४९१. भोजन की अधिकता	१६४
४९२. भोजन की अधिकता और उसके प्रभाव	१३२-३३
४९३. भोजनों में नमक, मसाला व सिर्के में डाले हुए	३६-३७
४९४. भोजन के नुस्खे और उनकी क्रिया	१६२-६३
४९५. भोजन के विषय में अनुवादक का नोट	१७२-७७
४९६. भोजन के विषय में आवश्यक वार्ता	६३
४९७. भोजन घुवां लगे हुए	१३५
४९८. प्राकृतिक भोजन के चुनाव में सूचनायें	१६६-१७०
४९९. भोजन में बल पहुंचाने की योग्यता	१४४-१४९
५००. भोजन रसेदार अथवा पतले	१३५

(म)

अंग	पृष्ठ
५०१. मकड़ी	१९३, २३१, २३६-३७, ३०२
५०२. मच्छर का उदाहरण	३३
५०३. मट्टी की पट्टियां और उनके वनाने की रीति	१२८
५०४. मटर मोट, मसूर के शीघ्र पाचक बनाने के लिए पकाने की रीति	१७०
५०५. मदिराओं के बुरे प्रभाव	१३२
५०६. मदिरा पान का रोग	३२८

अंग पृष्ठ

५०७. मल त्याग में शरीर का मैला होना १४, १४२-४३
५०८. मधु प्रमेह २३२, ४८१ ५००-५०३, ५१७-५१८, ५००-५०१
५०९. मधुमक्खी का काटना ३६५
५१०. मलमूत्र त्याग के रोकने की हानियां २२९-३०
५११. मल का ठीक रंग १४२
५१२. मलेरिया २९७, ३००-३०१
५१३. मलेरिया ज्वर की चिकित्सा ३०४-०६
५१४. मसा १९८
५१५. मस्तिष्क उष्ण दिमाग पर रोग का प्रभाव ३७९-८०
५१६. मस्तिष्क के ऊपर पानी २७२-७३
५१७. मस्तिष्क में रुधिर ४२२
५१८. मस्तिष्क क्षय १९१
५१९. मस्तिष्क क्षीणता २८७-८९
५२०. माइकोरज ६५
५२१. मानसिक विकार १७८, १९१, ३५८, ३५९, ३६४
५२२. मारपिया ६७
५२३. मालिश २१४-१५, २२३-२२४
५२४. मासिक धर्म का बन्द होना ११२, २५९, ३७०-७३
५२५. मायोपिया (कम निगाह) २७१
५२६. मांसाहारी ३३, १४९
५२७. मांस के रेशों की शक्ति १७
५२८. मांस भोजन से दूध की न्यूनता १५६
५२९. मांस से हानि १३२, १३५, १५६
५३०. मिरगी २५७-६१, ३५८, ४३२, ४३६ ४५१, ४६७
५३१. मुँ कतरन से हानि (सार) १६२
५३२. मुँह के छाले ६३
५३३. मूर्छा २५९, ४३२
५३४. मूत्राशय की ऐंठन २३४
५३५. मूत्राशय की जलन २३४-३५, ४४२, ४९४-९५
५३६. मूत्राशय की पथरी २३०-३१, ४६१, ४७०
५३७. मूत्राशय के रोग २२८-२३८, ४२४, ४२६, ४४२, ४६१, ४६८
५३८. मूत्र के संग रुधिर आना ४२६
५३९. मूत्र पीड़ा ४८९-९०
५४०. मूत्र प्रवाह २३०
५४१. मूत्र नाली का तंग हो जाना २३१, ४८०
५४२. मैथुन की इच्छा १५९, २१६-१८, २२३-२५, ३८६-८८, ४०३-४०४
५४३. मुटापा १२
५४४. मोतिया बिन्दु २७१-७७
५४५. मोतियाबिन्दु भूरा २७७
५४६. मोतियाबिन्दु २७१
५४७. मोतियाबिन्दु स्याह २७१

(य)

५४८. यकृत (जिगर) पथरी २३५, ४०५, ४५५
५४९. यूरेनिया २३३

(र)

अंग पृष्ठ

५५०. रसायन परीक्षा रसायन विद्या १४४
५५१. रसेदार भोजन देर में पचते हैं १३५
५५२. रसौली को सनवाथ ११५
५५३. रसौली गर्दन व गले की गिल्टियों की सूजन १७-१८,४०८,४२७,४१६, ४१९, ३३, ४७७
५५४. रसौली या गूमड़ी हड्डी पर ४३४
५५५. रसौली गर्भाशय में ४५७-५८
५५६. रसौली थैली के समान ४१२
५५७. रसौली (पेट की गिल्टियों की सूजन) या गुमड़िया १८, ३२१
५५८. रसौलिया रुधिर की ३४८-४९
५५९. रिक्टेस २१०-२२१
५६०. रिपोर्ट, आरोग्यता विषयक, लुई कुह्नी लिखित ४०५
५६१. रिपोर्ट, जल चिकित्सा की श्रोत्रिय कृष्णस्वरूप मिश्रित ४८६
५६२. रीढ़ का टेढ़ापन ९५-९९,४५१
५६३. रीढ़ के वांस की जलन २५१-५४,४६७
५६४. रीढ़ के वांस का नष्ट होना २५१-५४, ४११, (६१), ४२२
५६५. रीढ़ के एक जोड़ की जलन ४७३
५६६. रीढ़ के वांस या मेरूदंड के रोग २५१-५४, ४११,४२२, ४६७,४७३
(क) रीढ़ का सख्त होना ५३७
५६७. रूदन करना ४६६
५६८. रुधिर का गर्भाशय से जाना ४१२, ४३४, ४३७
५६९. रुधिर का जम जाना ३४८-४९
५७०. रुधिर का मूत्र के संग जाना ४२६
५७१. रुधिर का रुक जाना २३८
५७२. रुधिर की थैलियां ३४८
५७३. रुधिर की नाड़ियों का बांधना ३४३ -४८
५७४. रुधिर या रक्त की न्यूनता ११९, २६२-२६८,४०८,(५८),४३२,४३८
५७५. रुधिर में विष का फैलना ३६३-६५
५७६. रूप का बदलना १२-१३, १७-१९
५७७. रोकना पेशाब व पाखाने का २२९-३०
५७८. रोग का रोकना ४०
५७९. रोग किसे कहते हैं २०
५८०. रोग की ओर स्वाभाविक चेष्टा ७२-७५
५८१. रोगी के लिये श्रेष्ठ भोजन १३८, १६३-६४
५८२. रोगों कीं एकता रोगों के भिन्न-भिन्न स्वरूप ३६-३७
५८३. रोग कैसे पैदा होता है १६-३७
५८४. रोग क्या है ? २०-२१
५८५. रोग ववाई ७०-७१
५८६. रोग स्त्रियों के ३६८-८१
५८७. रोटी का नुस्खा १६५-६६,१७१-७२
५८८. रोटी विना छने आटे की १६५-६६, १७१-१७२
५८९. रोहे आंखों के (ट्राकोमा) अर्थात् इजिपिशयन आई डिसीज २७२,४४२, ४७४

अंग	पृष्ठ	अंग	पृष्ठ

(ल)

५९०. लपसी जई के आटे की — १६३
५९१. लपसी बनाने की क्रिया — १६६
५९२. लंगड़ा और गंजापन — ४०७ (५७)
५९३. लंगड़ी का दर्द (अकुंलनिसां) ८६-८८, ४०७, ४१४, ४२५, ४५८
५९४. लिझड़ी का जनने के पश्चात अन्दर लगा रह जाना — ४०८, ४७३
५९५. लिझड़ी के निकलने में कष्ट — ४०८
५९६. लेरिक्स की जलन — २८४
५९७. ल्यूपस, ल्यूपस चेहरे का — १९२-९३, २११-१३, ४३२
५९८. लंव्रेगो — २५४

(व)

५९९. विजातीय द्रव्य — ९
६००. विजातीय द्रव्य के उदाहरण — ४८२-८५
६०१. विजातीय द्रव्य में किस कारण से उबाल या सड़न पैदा होती है — २६
६०२. विष — २२
६०३. विशूचिका अर्थात हैजा — २९१-९६
६०४. विषयुक्त औषधियों का सेवन — ३२८
६०५. विषैला होना खून का — ३६३-३६७
६०६. विषैली औषधियों का प्रभाव — १८०
६०७. वीर्य और उसमें उपस्थित हुए गुण — १९५
६०८. व्याख्यान पहिला — १-१५
६०९. व्याख्यान दूसरा — १६-३७
६१०. व्याख्यान तीसरा — ३८-७५
६११. व्याख्यान चौथा — ७६-१०५

(श)

६१२. शब्द के यंत्र (हलक) में रुकावट (पाली पाई) — ४१५-४१६
६१३. शरीर का नीला पड़ जाना — ४१७-१८
६१४. शरीर की आकृति में बदलाव — १२-१५, १६-१७
६१५. श्लीपद, फीलपाव, एक पैर का अत्यन्त मोटा हो जाना — ५२५
६१६. श्वास (दमा) पीड़ा — १९२, २०६-२०७, ४१८, ४३८-३९, ४५५-५६, ४७७, ४७९, ४९२
६१७. शस्त्र क्रिया, चीरा-फाड़ी, अमल जर्राही — ३३३-३४
६१८ शिथिल रोग — ३६
६१९. शिर का स्टीमवाथ (बफ़ारा देना) — १०९-११२-११३
६२०. शिर की ओर विजातीय द्रव्य का दबाव — ८८-९०
६२१. शिर की गर्मी और ठंडापन — ८८-९०
६२२. शिर पीड़ा गठिया के कारण — ४५५

अंग पृष्ठ

६२३. शिर में दर्द या पीड़ा ११६,२८६-९०, ४०७,(५७),४२८,४३०-३१,४३२, ४३८,४६६,४७०,४७४
६२४. शुक्र दोष २१५-२२१, २२३
६२५. श्वेत प्रदर २२१, ४४८
६२६. शिर पीड़ा २८८-९०,४५३

(स)

६२७. (क) सदाचार १५८-५९
६२७. (ख : स्क्रोफुला (कंठमाला) ५९,६२, २२१, ४१६, ४२७
६२८. स्टीम बाथ्ज़ १०६-१४
६२९. सफेदी का आना २१५ ४४८,४५७
६३०. स्मरण शक्ति की निर्बलता ४३०-३२
६३१. सड़ना विजातीय द्रव्य का २५-२८
६३२. सनबाथ ११४-१८
६३३. स्नान विधियां १०६,१२९
६३४. स्नायु का खिंचाव (सेंट वाइटसडांस) ४२१,४२२
६३५. स्नायु अर्थात् (मांस के रेशों) की सख्ती १७-१८
६३६. स्नायु क्या हैं १२४
६३७. अस्नायु के रोग अर्थात् नर्वस बीमारियां, व्याकुलता, घबराहट १७८-१९१, ४०५,४२१,४२२,४३२,४३७,४३८, ४४२,४४४,४४६,४४७,४५१,४५२, ४५५,४५८,४५९,४६२,४६३,४६५, ४६७-४६८
६३८. सर्प का उदाहरण १३३
६३९ सर्प का काटना ३६३,३६७
६४०. सर्वभक्षी जीव १४९
६४१. सर्तान फोड़ा गर्भाशय का अर्थात् रहमका ३२८,४१४,४७९-८०
६४२. सर्तान फोड़ा छाती का ३२८, ३३३
६४३. सर्तान फोड़ा जवान का ३२८
६४४. सर्तान फोड़ा पेट में ४१८
६४५. सर्तान फोड़ा नाक का दूधी का ३२८, ३२९-३०,४०९
३४६. सर्तान फोड़ा होंठ का ४१९-२०
६४७. सर्तान फोड़े के वच्चे ४१९-२०
६४८ सर्वाङ्ग निर्बलता ४०७ (४५७) ४४०, ४०८, (४५८)
६४९. साइन्स आफ फेशियल एक्सप्रेशन ६, १०
६५०. सार १६२
६५१. सांस (श्वांस) की नलियों में जलन १९२
६५२. सांस लेने में कष्टता (दमा) १९२, २०६,२०७,४१८,४३८,४५५-५६, ४७७
६५३. साइनोटिस ४१७
६५४. साधारण बल हीनता ४३८
६५५. स्वप्नदोष (वीर्य का स्वयं निकलना) २१५
६५६. स्वप्नदोष वीर्यपात हो जाना २१५ ४२२, ४७७
६५७, संतान उत्पन्न करने की इच्छा २१६ ३८७, ४०३

अंग पृष्ठ

६५८. संतान उत्पन्न करने की योग्यता ३७६
६५९. सरसाम व बोखार
६६०. सिट्ज बाथ ६, १२०-२५, १२८
६६१ सिट्जबाथ मुसलमानों का १२३
६६२. सिफिलस (उपदंश) ६७, २१५, २१७-१८, २२३-२४, ४९१
६६३. सिफलिस का फोड़ा २१६
६६४. सिर्के में डाले हुये भोजन १३५
६६५. स्त्रियों के रोग ३६८-८१
६६६. सुर्ख बादा ४१२
६६७. सूचनायें आवश्यक १७३-७७
६६८. सूचनायें प्राकृतिक भोजन के चुनाव में १६६-७२
६६९. सूजन ४५६-५७, ४७२, ४७४, ४७७-४८०
६७०. सुजाक़ २१५, २१७-१८, २२३
६७१. सुजाक का पीव २२१-२२
६७२. सूजन और जलन गुर्दों की ४४९
६७३. सूजन और जलन फेफड़े की १९२, २०१
६७४. सूजन और जलन (बड़ी, मोटी) आंत की अर्थात् गुदा की ४६१

अंग पृष्ठ

६७५. सूजन और जलन मस्तिष्क की २५५-५६, २८६-८७, २९०
६७६. सूजन और जलन रीढ़ की ४६७
६७७. सूजन और जलन सिट्जबाथ में रगड़ के स्थान की
६७८. सूजन और जलन हलक की १२३, ३३८
६७९. सेलिसिलक एसिड २३६-३४८
६८०. सेव और आलू १६९
६८१. सेव और चावल १६८
६८२. सेव और लोविया-सेव और हरी सेम १६८-८९
६८३. स्टीमबाथ्ज १०६-१२
६८४. स्टीम बाथ्ज गर्दन का-पेड़ू का-नाक का-शिर का ११२-११३
६८५. स्टीम बाथ्ज के बर्तन व लैम्प
६८६. स्पेशलिज्म १८४
६८७. स्वास्थ्य की जांच ११-१५, १४२
६८८. स्वास्थ्य की परीक्षा अवयवों से ११-१६
६८९. स्वास्थ्य प्राप्त करने का समय ५६, ५७, ११६, ४२०
६९०. सेंट वाइट्स डैंस (कोरिया) २५१, ४२१
(निद्रा न आना, चल न सकना, बोल न सकना, बहुत से अन्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं जैसे)

(ह)

६९१. हड्डी टूटना ३५६
६९२. हड्डी पर गुमड़िया २१०, ४५७, ४३४, ५२९
६९३. हड्डियों का सड़ना या गलना १९२, २१०-१५, ४७२-७३
६९४. हड्डी के टुकड़े
६९५. हरिण व खरगोश की उपमा १३३
६९६. हलक की जलन ४२४, ४४२, ४७७
६९७. हवायें पाचन की २२८-२९
६९८. हस्तमैथुन की हानि का उदाहरण ४८९-९१

अंग पृष्ठ

६९९. हस्त मैथुन वा क्रिया २२६, २२८, ४०३-४०४, ४७८
७००. हाइपोकौन्ड्रिया (स्नायु विकार का अध्याय देखो) १७९
७०१. हाथ का टूटना ३५७
७०२. हाथ भुजा का बेकार हो जाजा ४४८
७०३. हाथ पांव की जलन
७०४ हाथों का ठंडापन ८८-८९, २४५, ४०८ (५८)
७०५. हिपवाथ ११८-१९
७०६. हिमेच्यूरिया ४२६-२७
७०७. हिस्टीरिया (स्नायु विकार का का अध्याय देखो) १७९-५२४
७०८. हिस्टीरिया में रुदन ४६६
७०९. हैज़ा अर्थात विशूचिका २९२-९६, ५०६
७१०. होंठ का सर्तान ४१९
७११. होम्योपैथी ५९-२४३
७१२. हृदय कंपन २३९
७१३. हृदय (दिल) की धड़कन ४१८
७१४. हृदय का रोग १८, २२१, २३८, २४९, ४१० (६०), ४१८, ४२६, ४४०, ४७९ ५१४, ५२९
७१५. हृदय की किवाड़ियों का रोग २३८, २४१
४१६. हृदय की नाड़ियों का उभर आना ४१८
४१७. हृदय के पर्दे में जल आ जाना २४१

(क्ष)

७१८. क्षई की ओर झुकाव की चिकित्स. ४९८
७१९. क्षई फेफड़ों की ६७, १९२, २००, २०८, २०९-१०, २२१-२२, ३५८, ४२६, ४६८, ४७०-७१, ४७३, ४७६, ४८७-८९, ५०७-११, ५१९-२३ ५२९-३६
७२०. क्षई मस्तिष्क की २५५-५६, २८६-९०
७२१. क्षई (नष्ट होना) मेरु दण्ड अर्थात् रीढ़ के बांस की २५१-५६, ४११, (६१); ४२२
७२२. क्षई रोग की जड़मूल १९६
७२३. क्षई रोग (धावत) १९२, १९५, ४८७
७२४. क्षुधा का न लगना १३२, ४४०-४१, ४८९-९०

इति विषय-सूची समाप्त